ते(8२1

"हरिः ॐ"

भूमिका

नेक जन्मार्जित पुण्यपुञ्जवश भारतवर्षमें मनुष्यशरीर तिस पर भी मुक्तिमार्गके सोपानके अभिमुखीभूत द्विजदेहको पाकर प्राणीको पूर्णविश्वासके साथ समझना चाहिये, कि-परमेश्वरका पुनीत पूर्ण-ज्ञानरूप वेद ही विश्वका हितू सारवस्तु ग्रहण करने योग्य अविनश्वरसम्पत्ति वर्णाश्रम धर्मका आश्रय सनातनधर्मकी भित्ति नास्तिकताका नाशक धर्मादि परोक्षपदार्थोंका सूचक ब्रह्मप्राप्तिका साधन यावन्मात्र शास्त्रोंका मूलसूत्र और इतिहास पुराणादिके विस्तारका बीजभूत है।

ऐसे चातुर्वर्ण्यके सर्वस्व सनातन आर्यधर्मके निर्भ्रान्ततत्त्वका ज्ञापक एकमात्र वेद ही है, गोभिलगृह्यादि सूत्र और मनु याज्ञवल्क्यादि स्मृति, मार्कण्डेय मात्स्य आदि पुराण और भारत रामायणादि इतिहास महर्षियोंने वेदके विधिनिषेधके आधार पर ही विधि-बद्ध किये हैं, व्याकरण गणितादिके आचार्य और दर्शनविद्याओंके प्रचारक मुनिजन वेदकी दुहाई देकर ही लब्धप्रतिष्ठित हुए हैं, बौद्ध आदि परमविद्वान् होने पर भी एक वेदके ऊपर आस्था न होनेसे नास्तिक कहाये, जिस वेदके यथाविधि अनुष्ठानसे दिव्य-दृष्टि पाकर हमारे पुरुषा जगत्भरके गुरुत्वका गौरव पाकर ऐसे २ अस्त्र शस्त्र और व्योमयानादिका आविष्कार कर गये हैं, कि-जिनकी बात सुनकर संसारभर चकित होता है, अनेकों बार राष्ट्रविप्लव होने पर भी जिस वेदकी सनातनमर्यादा गर्भाधानादि अन्त्येष्टिपर्यन्त संस्कारोंके द्वारा आज तक चातुर्वर्ण्यको अपनी प्रभुतासे पुरातन वर्णा-श्रमावलम्बी बनाए हुए हैं, ऐसे प्राणोंसे भी अधिक मूल्यवान् वेदकी पुस्तक प्रत्येक भारतवासी द्विजके घरमें होनी आवश्यक है।

इस ही वेदके अनुसार अनेकों प्रकारकी इष्टियाँ करके हमारे पूर्वपुरुषा अनेकों प्रकारकी सुत-वित्त अन्नादि विषयक अभिलाषाओंको अपने पुरुषार्थसे सफल कर

लिया करते थे यद्यपि आज कल शिश्नोदरपरायणोंको यह बातें आकाशकुसुमवत् प्रतीत होती होंगी. परन्तु पुरातन इतिहासमें भारतवासियोंके ऐसे वैदिकचमत्कारके अनेकों उदाहरण हैं।

इन्द्रियपरायण मलिनान्तःकरण और वेदधर्ममें आस्थाहीन स्थूलदृष्टि पुरुषोंको सूक्ष्म बातें प्रत्यक्ष और हृदयगम्य हो ही कैसे सकती हैं ? हर एक कार्यकी सिद्धिके लिये उसकी साधनसामग्रीकी आवश्यकता होती है, पहिले वैदिकधर्मी द्विज जन्मसे ही संस्कार और नित्य नैमित्तिकादि कर्मानुष्ठानके द्वारा हृदयको शुद्ध करते हुए अपने अधिकारानुसार श्रद्धाके साथ वेदानुशीलन और तदनुसार मानवजन्मको कृतार्थ करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे, उन वेदाध्ययन करने वालोंके मुखसे असत्य बात बहुत ही कम निकलती थी. ऐसे ही महानुभावोंके यथार्थरूपसे उच्चारण किये हुए वेदमन्त्र अभिलषित फल देते थे, आज कल संस्कार लुप्त होगए, वेदाध्ययनकी परिपाटी उठ गई, नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें आस्था नहीं रही, तुच्छ विषयानन्दके लालचमें सच्चा आत्मानन्द छुप गया, स्वार्थने अधिकतर मनुष्योंको बात २ में असत्यमार्गका बटोही बना दिया, फिर चित्तकी निर्मलता और योगसिद्धि कहाँ ऐसी दशामें वैदिकचमत्कार किसके स्वच्छांतःकरणमें प्रतिफलित हो और किन आँखोंसे दीखे, सार यह है कि-आज कल भारतवर्षके द्विजोंके पास वैदिकचमत्कारसे अपना और दूसरोंका अभिलषित सिद्ध करनेकी आत्मिक साधनसामग्री हो नहीं रही, इसी कारण अधोगति होरही है, प्यारे सनातनधर्मियों ! एक बार आँखें खोलो, अपनी पुरातन आत्मिक उन्नतिको स्मरण करके वर्तमान अधोगति पर आँसू बहाओ और यदि आपसे न होसके तो अपनी संतानोंको पुरातनमर्यादासे सुसज्जित करके सुखप्राप्तिके बीज बोओ।

तुम्हारा चञ्चल चित्त स्वभावसे विषयोंकी ओरको झुकता है, उसको रोककर वैदिक अनुष्ठानकी ओर लगाओ, तुम्हारे स्वतन्त्र मनको जो अच्छा लगे उसको ही धर्म न समझो, किन्तु वेदमें जिसको कर्तव्य कहा है उसको धर्म और जिसका निषेध किया है उसको अधर्म समझो, आस्तिक पुरुष भले बुरेकी व्यवस्था अपनी बुद्धिसे न करके ईश्वरीयज्ञान वेदके आधार पर अपने सुख दुःखके साधनका निर्णय करते हैं।

पहिले वेदकी वाक्यमाला एकत्रित थी, वेदको कण्ठस्थ रखने वाले द्विज उसकी प्रयोगविधिको गुरुमुखसे सीख लिया करते थे, व्यासदेवने सुभीता करनेके लिये उस पवित्र वाक्यराशिके चार भाग किये ऋक्, यजु. साम और अथर्व। पद्यमय वाक्यावलि ऋक् गीतिमय वाक्यावलि साम और शेष गद्यपद्यमय वाक्योंका नाम यजुः हुआ इस विभागसे पहिले यह समस्त वाक्यावलि त्रयी नामसे प्रसिद्ध थी, त्रयीका ही एक अंश स्वतंत्र भावसे अथर्व नामसे प्रसिद्ध है यही व्यासजीने किया है, त्रयीके कर्मों की अपेक्षा अथर्वके कर्म स्वतन्त्र हैं इसी कारण त्रयीविषयक कर्मोंमें अथर्वका नामोल्लेख और अथर्वविषयक कर्मोंमें त्रयीका नामोल्लेख नहीं है।

ऋक्, यजु और साममें कर्म, उपासना और ज्ञानका वर्णन कहीं स्वतंत्ररूपसे और कहीं मिश्रितरूपसे है, अन्तःकरणशुद्धिके द्वारा प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्तिमें लानेके निमित्त यजुर्वेद यज्ञीयप्रयोगोंकी भित्ति है, ऋग्वेदके मन्त्र उस भित्तिको सुशोभित करनेवाले चित्ररूप हैं और उन चित्रोंमें सामगीतिरूप मणिमुक्ता सजे हुए हैं, परंतु वैदिक कर्म की भूमिरूप यजुर्वेद ही है इस कारण सबसे पहिले यजुर्वेदसंहितासे ही धार्मिकोंका गृह सुशोभित होना चाहिये।

वेद किसीका रचा हुआ नहीं है, प्रतिकल्पकी आदिमें परमात्मा उसका स्मरण करके प्रजापतिके हृदयमें उसकी प्रेरणा करते हैं, इसी कारण लिखा है, कि—

न कश्चिद्वेदकर्त्तास्ति वेदस्मर्त्ता महेश्वरः।

'वेदका बनानेवाला कोई नहीं है, महेश्वर उसका स्मरण किया करते हैं, तदनंतर ऋषिपरम्परासे श्रवण हो होकर उसका प्रचार होता रहता है, इसी कारण वेदका दूसरा नाम श्रुति भी है। वेदकी आनुपूर्वी सदासे एकरूप और अनादि है इसी कारण वेदके अक्षरोंका यथाविधि उच्चारण होने पर ही शास्त्रोक्त फल प्राप्त होता है, इसी कारण मन्त्रोंका यथावत् उच्चारण होनेके लिये स्वरोंका विन्यास और उच्चारणका क्रम स्वतन्त्ररूपसे विधिबद्ध किया गया है।

कर्ममें वेदके मंत्रोंका अर्थज्ञान केवल उच्चारणशुद्धिके निमित्त ही जानना आवश्यक

है, मुख्य तो मंत्रोंका यथार्थरूपसे उच्चारण ही है, इसी कारण कर्मके समय वेदमंत्र के अर्थका विचार वा वर्णन न होकर केवल शुद्धोच्चारणार्थ अर्थ पर ध्यान रखते हुए मन्त्रपाठका विधान है, क्योंकि-वेद कोई इतिहासरूप गाथा नहीं है, जिसका अर्थ सुनाया जाय, जो लोग वेदमन्त्रोंकी कथा बाँचनेका ढोंग दिखाया करते हैं, वह स्वार्थी पुरुष अनर्थ करते हैं।

वास्तवमें जब तक पुरातनरीतिसे यथावत् द्विजोंके संस्कार न हों और जबतक यथाविधि ब्रह्मचर्यपूर्वक धर्ममात्र समझ कर वेदका सस्वर अभ्यास न किया जाय और तदनन्तर यदि वैदिक यागादि कर्म करनेमें पूर्ण रुचि और ठीक सुलभता न हो तब तक वेदमन्त्रोंके अर्थको जाननेसे पुरुष वास्तविक लाभ नहीं उठा सकता, आज कल भारतवर्षके द्विजसमाजकी जैसी अकर्मण्य दशा है,जैसे लोग मुखसे कहनेमात्रको वैदिक बने हुए हैं, इस दशामें वेदमन्त्रोंका अर्थ बाँचनेमात्रसे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकता, प्रत्युत लोग अर्थको पढ़कर आश्चर्यमें पड़जायेंगे कि-ऐसा वेद क्या ? जिसके अर्थको पढ़कर हम कोई प्रयोजन सिद्ध न कर सकें प्यारे भारतवर्षीय द्विजों ! वास्तवमें हम आप ऐसे ही बनगये हैं कि-जब तक हम वेदके अर्थको समझनेके योग्य अधिकारी न बनलें तबतक हमपर वेदभगवान्की वह कृपा हो ही नहीं सकती कि-जिससे हम अपने द्विजजन्मको सार्थक कर सकें,वेद केवल ऐतिहासिक प्रमाणोंको संग्रह करनेकी सामग्री नहीं है अथवा अन्य अपौरुषेय मतोंके धर्मपुस्तकोंकी समान उन संप्रदायोंके प्रवर्त्तकोंके चमत्कारमय चरित्रका बोधक उपाख्यानरूप भी नहीं है, किन्तु वेद वह ईश्वरीय पुस्तक है कि-जिसका केवल अर्थ तो अनधिकारी धुरंधर तार्किकों को भी अपने समीप नहीं ठहरने देता। भारतीय महर्षियोंके प्राणप्रिय वेदका वेदत्व यही है कि-यह कर्मानुष्ठानकालमें अर्थावधानपूर्वक यथाविधि उच्चारित हुआ ईश्वरीय नियमसे उन अभीष्टफलोंको प्राप्त कराता है जिनके संपन्न होनेके तत्त्वको सिवाय कर्मफलनियामक ईश्वरके कोई बड़ेसे बड़ा वैज्ञानिक भी नहीं समझ सकता।

वेदका महत्त्व यथाविधि मन्त्रोच्चारणपूर्वक कर्मानुष्ठानकी पूर्त्ति होने पर ही विदित

होता है। आजकल वैदिक कर्मानुष्ठानकी परिपाटी भारतवासियोंके दुरदृष्टवश विस्खलित होगई, कर्मानुष्ठानकी शक्तिसे हीन द्विज वेदमन्त्रोंके अर्थज्ञानमात्रसे क्या पुरातन व्यास वाल्मीकिके सी प्रतिष्ठा पासकता है ? यदि वेदके प्रभावको प्रत्यक्ष देखना हो यदि वैदिक कर्मानुष्ठानका तत्त्व संसारको प्रत्यक्ष करके दिखाना हो तो भारतके द्विजों आँखें खोलो, लोकैषणासे चित्तको हटा कर अपनी सन्तानोंको संस्कृत करके पुरातन परिपाटीसे वर्णाश्रमकी मर्यादानुसार वेदका सांगोपांग अभ्यास कराओ, तब तुमको मालूम होगा कि--हमारे घरमें कैसी रत्नोंकी खान छुपी हुई है, नहीं तो तुम जितना वेदसे हटते जाओगे उतनी ही अधोगति होती जायगी, जिस समय भारतमें वर्णाश्रम मर्यादा और वेदानुशीलनकी परिपाटी थी उस समय ऐहिक उन्नतिके लिये पृथक् प्रयत्न नहीं करना पड़ता था, उस समय भारतवासी विषयोन्नतिको हेय समझ कर ठुकराते थे, और वह सर्वोन्नतभावसे स्वयं ही पीछे २ फिरती थी, और देशोंने इधर के समयमें स्थूलपदार्थोंके सूक्ष्मांशोंकी परीक्षा करके वाहवाही पाई है, परंतु भारतवर्ष की समान संसारके सूक्ष्मभावों पर प्रभुता पानेका यश भारतके ही भाग्यमें रहा है। भारतवासी जबसे सूक्ष्मजगत्से वा यों कहिये कि अन्तर्दृष्टिपनेसे हट कर स्थूलजगत् की ओरको झुके तबसे अपने सर्वस्वको ही खो बैठे। इस कारण यदि अपने सर्वस्व आत्मिक राज्यमें प्रभुता पाना है तो उसके साधन वेदविद्याका पुरातनरीतिसे परिशीलन करो तो तुम्हारा पुरातन जगद्गुरुत्वका पद हाथमें आवेगा।

आजकलके लोगोंने अन्य नवीन संप्रदायोंके धर्मग्रन्थोंके अनुसार वेदको भी उसी शैली पर दिखानेके लिये स्वर्गादि अलौकिक फलोंके स्थानमें मनुष्यसाध्य रेल तार आदिकी उत्पत्ति खैंचातानी कर वेदमेंसे निकाल कर वेदकी अमानुषिक शासकता को नष्ट करना आरम्भ कर दिया, इस कार्यका श्रीगणेश दयानन्दजीने किया, लोगोंको धोखा देनेके लिये भूमिकामें यह प्रतिज्ञा तो करली कि-मैं वेदका अर्थ पुरातन शैली पर निरुक्त आदि वेदांग और शतपथादि ब्राह्मणोंके आधार पर करूँगा परंतु अर्थ लिखते समय अनर्थ कर डाला प्रायः लौकिक अर्थसे ही वेदकी सार्थकता

सिद्ध करनेके लिये निरुक्त आदि और ब्राह्मणादिके विरुद्ध अर्थ लिख डाला, परंतु स्वरोंके चिन्हों पर कुछ ध्यान नहीं दिया कि-मनमाना अर्थ करनेसे पुरातन मर्यादानुकूल स्वरविन्यासके प्रतिकूल मेरा हास्य और वैदिकधर्मकी मूलमें कुठाराघात होगा, जो केवल अर्थमात्र दिखाकर वेदको ऐहिकोन्नतिमात्र साधनके प्रेमियोंका रुचिकर बनाना चाहते हैं, वह वेदके वेदत्वको जानते ही नहीं। ऐसे कल्पित अर्थमात्र सार वाले वेद न समझे जायँ इसकारण यह वेदका संक्षिप्त अर्थ पुरातन महीधर उव्वट आदि रचित भाष्योंके अनुसार लिखा है।

वैदिक यज्ञादिमें पशुआलम्भनके विषयको लेकर आज कल प्रायः विवाद होता है, इसका कारण यह है, कि--आजकल लोग धर्मका स्वरूप मनमाना बनाते हैं, पहिले लोगोंका विश्वास था, कि-जिसको वेद कर्त्तव्य कहता है वह धर्म है और जिसका वेद निषेध करता है वह अधर्म है, इस नियमका पालन करके निज कर्त्तव्यका पालन करने वालोंको कुछ शक्ति प्राप्त होती थी, उस शक्तिको धार्मिकजन योगानुष्ठानसे सम्मार्जित कर पञ्चभूतों पर प्रभुता जमा लेते थे, सूक्ष्मसृष्टिमें पहुँच जानेके कारण उनको देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन होता था, यह प्रकृति और पुरुषके स्वरूपको करामलकवत् देखते थे, इस प्रकार अपना उद्धार करके वह परमपदको पाते थे, ऐसे ही महात्मा वैदिक यज्ञोंमें यजमान होता ऋत्विज् आदिके आसनको सुशोभित करते थे, उन मन्त्रोंके प्रभावसे स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकारके पाञ्चभौतिक शरीर उनकी इच्छानुसार परिचालित होते थे, उनके विश्वासानुसार जैसा कि-पूर्वमीमांसादिमें निर्णय किया है, वैदिक यज्ञोंमें यथाविधि पशुआलम्भन धर्म था, उसमें उदरम्भरोंकी की हुई हिंसाकी समान भाव नहीं होता था, आजकलके शिश्नोदरपरायण स्वकल्पित कृत्यको धर्म मानने वालोंके सामने इस बातको रख कर मानो वैदिकधर्मसे उनकी रुचि हटाना है, इसी कारण शास्त्रने सिद्धान्त किया है कि हर एक बात अधिकारीसे कहना चाहिये, आजकलके स्वतन्त्र चित्तोंका अनुमान करके ही पुरातन महर्षि कलिमें अश्वमेधादि यज्ञोंके करनेका निषेध कर गये इसके अतिरिक्त ऐसे यज्ञोंमें श्रद्धा न होनेके

कारण आजकलके वेद २ पुकारने वाले उन यज्ञोंके अधिकारी भी तो नहीं हैं, फिर वह इनकी चर्चा ही क्यों करें, अथवा वैदिक यज्ञादि कर्मकलाप काम्य है, जो प्रवृत्ति-मार्गके बटोही स्वर्गादिकी चाहना रखते हों और उनको यह विश्वास हो, कि-इन यज्ञोंके करनेसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है, तो वह इन यज्ञोंका पुरातन रीतिसे यथा-विधि अनुष्ठान करें और उनको यदि इन उपायोंसे स्वर्गादि मिलनेकी श्रद्धा नहीं है, तो वह इनका अनुष्ठान करेंगे ही क्यों ? और शास्त्र उनको करनेकी प्रेरणा ही कब करता है, क्योंकि-वह श्रद्धाहीन होनेसे उस कर्मके अधिकारी नहीं हैं, धर्ममें तो सब से पहिले अधिकारी होनेकी आवश्यकता है, जैसे वैद्यकशास्त्रमें अनेकों रोगों पर बहुतसी औषधियें काष्ठादिक लिखी हैं और बहुतसी मांसमयी लिखी हैं, जिनकी मांस में घृणा हो वह मांसमयी औषधि क्यों खायँ, जिन प्रवृत्तिप्रेमियोंको मांसका अभ्यास है उनके ही निमित्त वह उपयोगी होंगी, ऐसे ही जिनको मांससे घृणा है और जो प्रवृत्तिको हेय समझ कर निवृत्तिसे प्रेम करने वाले हैं वह उन काम्य यज्ञोंको क्यों करें उनकी चित्तशुद्धिके लिये नित्यनैमित्तिक कर्तव्य कर्मानुष्ठान तथा योगसाधनके अङ्ग-रूप शमदमादि निर्दिष्ट हैं। ऐसे ही निवृत्तिमार्गप्रेमी कितने ही धार्मिक मित्रोंकी प्रेरणा से मैंने इस संक्षिप्तार्थको लिखते समय अश्वालम्भनादि स्थलोंपर पुरातन भाष्योंके अविरुद्ध हिंसाभासको भी बचा दिया है, वास्तवमें मुझे इस संक्षिप्तार्थके लिखनेका अहन्त्व नहीं है, क्योंकि—इस अनुवादमें मेरी अपनी रचना कुछ नहीं है, मैंने अब तकके छपे हुए संस्कृतभाष्य और भाषानुवादोंको सामने रखकर इस अनुवादका स्वतन्त्र रीति पर सम्पादनमात्र कर दिया है और अतिसुलभ मूल्य पर पताकाके ग्राहकोंकी सेवामें भेजनेकी इच्छासे छपवाकर प्रकाशित किया है।

निवेदक—

सम्वत् १९६७ }

ऋ० कु० रामस्वरूपशर्मा

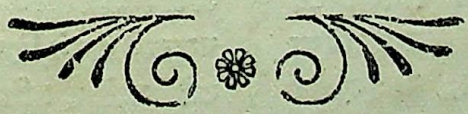

❀ हरिः ॐ ❀

श्रीशुक्लयजुर्वेदः

अन्वयेन भावार्थेन च सहितः

प्रथमोऽध्यायः

प्रणम्य साम्बं गिरिशं गणेशं भाष्यं समालोक्य महीधरीयम् ।
यजुर्मनूनां विलिखामि चार्थं परोपकाराय निजेक्षणाय ॥ १ ॥

हरिः ॐ ॥ परमात्माका श्वासरूप वेद प्रथम ब्रह्माजीको प्राप्त हुआ, ब्रह्माजीसे ऋषियोंको प्राप्त हुआ, परन्तु कितने ही कालके अनन्तर मनुष्योंको मन्दमति देख कर कृपालु भगवान् वेदव्यासने वेदको ऋक्, यजुः साम और अथर्व इन चार भागोंमें विभक्त किया, एवं क्रमसे पैल वैशंपायन, जैमिनि तथा सुमन्तु इन अपने चार शिष्योंके अर्थ उपदेश किया, उन्होंने भी अपने शिष्योंके अर्थ उपदेश किया, इस प्रकार वेदकी सहस्रों शाखा होगईं । उन मेंसे व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनजीने याज्ञवल्क्यादि अपने शिष्योंको यजुर्वेद पढ़ाया था, सो दैवात् किसी कारणसे क्रुद्ध होकर वैशम्पायनजीने याज्ञवल्क्यजीसे कहा, कि-मेरे पढ़ाये हुए वेदको त्याग दे, उसी समय याज्ञवल्क्यजीने योगसामर्थ्य से वेदविद्याको मूर्तिमान् करके उगल दिया उन उगले हुए यजुर्मन्त्रोंको, "ग्रहण कर लो" इस प्रकार गुरुके कहने पर वैशम्पायनजीके अन्य शिष्योंने तित्तिरि (तीतर) बन कर चुग लिया, वह यजुः बुद्धिकी मलिनताके कारण कृष्ण होगए तब दुःखित याज्ञवल्क्यजीने सूर्य भगवान्की आराधना करके अन्य शुक्ल यजुर्मन्त्र पाए । उन यजुर्मन्त्रोंको याज्ञवल्क्यजीने जाबाल, पौधेय, कण्व एवं मध्यन्दिन आदि अपने १५ पंद्रह शिष्योंके अर्थ उपदेश किया, इस विषयको सूचित करने वाली श्रुति भी है-"आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूँषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त इति (बृहदा० माध्य० ।५।५।३३) अर्थात्-(आदित्यानि) आदित्यसे पढ़ेहुए (शुक्लानि) शुद्ध (वाजसनेयेन) बाज कहिये अन्नका सनि कहिये दान है जिसके वह हुआ वाजसनि तिसके अपत्य वाजसनेय (याज्ञवल्क्येन) याज्ञवल्क्यने अपने शिष्योंके अर्थ (आख्यायंते) कहे जाते हैं । तिन याज्ञवल्क्यऋषि से

मध्यन्दिन महर्षिने जो यजुर्वेदकी शाखा प्राप्त की वह माध्यन्दिन नाम वाली हुई। यद्यपि याज्ञवल्क्यने यह मंत्र बहुतसे शिष्यों को उपदेश किये थे, परन्तु ईश्वरकी कृपासे मध्यन्दिन महर्षिके नामसे ही लोकमें प्रसिद्ध हुए उस माध्यन्दिन वेदका जो पढ़ते हैं वा जानते हैं शिष्यपरम्परासे वर्तमान वह भी माध्यन्दिन कहाते हैं।

शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।७ में लिखा है कि-"स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" अर्थात् स्वाध्याय (अपने पितृपितामहादि परम्परा करके प्राप्त वेदशाखा) को पढ़ना चाहिये, परन्तु वह अध्ययन (पढ़ना) प्रत्येक मंत्र के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जान कर करना चाहिये, नहीं तो "एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवत्यथान्तराश्वगर्त्तं वापद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान् भवति" अर्थात् इन ऋषि छन्द आदिको विना जाने जो वेद पढ़ता है, पढ़ाता है, गायत्री आदिका जप करता है, व्याहृत्यादि से हवन करता है, यज्ञ करता है तथा औरों को यज्ञ कराता है उसका ब्रह्म (वेद) निर्वीर्य (कार्यको सिद्ध न करने वाला) यातयाम (निष्फल) होता है और ऋषि छन्द आदिको न जान कर वेदाध्ययन आदि करने के अनन्तर श्वगर्त (नरकविशेष) में पड़ता है, वायु आदिसे टूटी है शाखा जिसकी ऐसे शुष्कवृक्षकी योनि को प्राप्त होता है (प्रमीयते) अन्ध वा बधिर होता है और अत्यन्त पापाचारी होता है जिसका फल यह होता है कि—म्लेच्छ चांडाल आदि योनिमें जन्म धारण करना पड़ता है। ऐसा कात्यायन ऋषि का कथन है। जो ऋषि छन्द आदिको जान कर वेदाध्ययन आदि करते हैं उनके विषयमें कात्यायन ऋषिका ऐसा कथन है कि—"अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽविज्ञातस्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते" अर्थात् जो ऋषि छंद आदिको जानकर वेदाध्ययन आदि करता है उसका वेद वीर्यवान् (कार्य को सिद्ध करने वाला) होता है, जो अर्थको भी जानता है, उसका वेद अत्यन्त वीर्यवान् होता है, ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थको जान कर जो जप होम तथा यज्ञ करता है वह उसका फल पाता है। इस कारण वेद मन्त्रोंके ऋषि आदिका जानना तथा अर्थको जानना अत्यन्त ही आवश्यक है, नहीं तो वेदाध्ययनादिका फल नहीं प्राप्त होसकता। अतएव हम पूर्वाचार्योंके भाष्यों के अनुसार वेदोंके ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थके लिखनेका संकल्प करके प्रथम यजुर्वेदका प्रारम्भ करते हैं, तहाँ यजुर्वेद के मन्त्रोंमें कोई यजु है और कोई ऋचा हैं, तिनमें नियत हैं अक्षर पादावसान जिनके ऐसी ऋचाओंका आवश्यक छन्द कात्यायन ऋषिने कहा है, और एकाक्षरादि नियताक्षर यजुषोंका छन्द पिङ्गल

से जानना क्योंकि-साधारणतः तो बत्तीस अक्षरका अनुष्टुप् होता है, परन्तु "इषे त्वा" इस तीन अक्षरके मन्त्रका जो अनुष्टुप् छंद कहा है सो कैसे ? इस विषयमें पिंगल का यह सूत्र है कि—छंदः । गायत्री । दैव्येकम् आसुरी पञ्चदश । प्राजापत्याष्टौ । यजुषां षट् । साम्नां द्विः । ऋचां त्रिः । द्वौ द्वौ साम्नां वर्द्धेत । त्रींस्त्रीनृचाम् । चतुरश्चतुरः प्राजापत्यायाः । एकैकं शेषे । जह्यादासुरी । तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यः । तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य एकैका ब्राह्म्यः प्राग्य जुषामार्ष्य इति' अर्थात् दैवी गायत्री छंद पंद्रह अक्षरका प्राजापत्या गायत्री छंद आठ अक्षर का, याजुषी गायत्री छंद छः अक्षरका, साम्नी गायत्री छन्द बारह अक्षरका, आर्चीगायत्री छन्द अठारह अक्षरका, आर्षीगायत्री छन्द चौबीस अक्षर का, ब्राह्मी गायत्री छन्द छत्तीस अक्षरका है दैवीगायत्री पर एक २ बढ़ाने पर क्रमसे उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, और जगती छन्द होते हैं। और आसुरीमें एक २ घटानेसे, प्राजापत्या में चार चार बढ़ानेसे, याजुषीमें एक एक बढ़ानेसे, साम्नीमें दो २ बढ़ानेसे, आर्चीमें तीन तीन बढ़ानेसे ब्राह्मीमें छः २ बढ़ानेसे तथा आर्षी में चार चार बढ़ाने से क्रमशः उष्णिक् आदि छन्द होते हैं, स्पष्ट होनेके लिये नीचे ७२ कोष्ठका यन्त्र लिखते हैं।

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
दैवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

जहाँ दो तीन छंदोंकी संख्या समान हो, जैसे कि दैवी त्रिष्टुप् और याजुषी गायत्री की तथा साम्नी गायत्री-याजुषी जगती एवं आसुरी बृहती की है, ऐसे स्थल पर यदि संदेह हो कि यहाँ कौनसा छंद है तो "देवतादितश्च" पिङ्गल ७।२ के प्रमाणानुसार चतुर्थाध्यायके १०।११।१२ खंडोंमें वर्णन करे हुए गायत्री आदि छन्दोंके देवताओंसे निश्चय करे और यदि तहाँ वर्णन करे हुए देवताओंसे अन्य देवता होय तो जितने छंद प्राप्त हों उनमेंसे चाहे जौनसा छन्द मान लेय और जहाँ आचार्यने स्वयं छन्द लिखे हैं तहाँ तो सन्देह करनेकी कोई आवश्यकता है ही नहीं। इस प्रकार एक अक्षरसे लेकर एकसौ छः अक्षर तकके यजुः का छंद पिङ्गलके अनुसार जानना, परंतु इससे अधिक अक्षरोंके 'होता यक्षद्वनस्पतिमित्यादि' (य० २१।४६) मंत्रोंमें छन्दकी कल्पना है ही नहीं

अब ऋषिका स्वरूप लिखते हैं, कि-'ऋषिर्दर्शनात्' इस निरुक्तके प्रमाणानुसार जिसने जिस मन्त्रको देखा वह उसका ऋषि हुआ, क्योंकि—"अजान्ह वै पृश्नींस्तपमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्तदृषयोभवन्" इस प्रमाणके अनुसार वेदकी प्राप्तिके निमित्त तप करने वाले जिन पुरुषोंको स्वयम्भू वेद प्राप्त हुआ, वह परमेश्वरके अनुग्रहसे अतीन्द्रिय वेदका मानस दर्शन करनेसे ऋषि कहलाए, इस ही आशयको लेकर स्मृतिमें भी लिखा है कि-"युगांतेऽन्तर्हितान् वेदान्सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताःस्वयम्भुवा।"

अब देवताका स्वरूप कहते हैं, कि—"देवता मन्त्रान्तर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजो वा" अर्थात्—मन्त्रोंके मध्यमें पढे हुए हविर्भोक्ता वा सूक्तभोक्ता अग्नि, सोम, इन्द्र, विष्णु आदि देवता हैं। और "यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति" (नि० ७।१) अर्थात् जो कामना करने वाला ऋषि जिस देवतामें आर्थपत्य (उस कार्यसाधनके स्वामित्व) की इच्छा करता हुआ स्तुति करता है वह उस मंत्र का देवता होता है।

प्रथम अध्यायसे प्रारम्भ करके द्वितीय अध्यायकी अट्ठाईस कण्डिका पर्यन्त दर्शपौर्णमास यज्ञ* के मन्त्र हैं, उनका परमेष्ठी प्रजापति ऋषि है, अथवा प्रजापतिके पुत्र देवता ऋषि हैं, उव्वट भाष्यमें ऐसा लिखा है कि-'परमेष्ठिनः प्राजापत्यस्यार्षं देवानां वा प्राजापत्यानाम्' अर्थात्—इन दर्शपौर्णमास मन्त्रोंका प्राजापत्य (प्रजापतिका अपत्य) परमेष्ठी ऋषि है अथवा प्रजापतिके पुत्र देवता ऋषि हैं। ऐसा ही ब्राह्मणमें भी लिखा है कि—"परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्यद्दर्शपौर्णमासाविति" तथा "ते देवा अकामयन्ते" त्युपक्रम्य 'तत एतं हवि-

* अमावस्यामें जब कि—चन्द्रमा सूर्यका परस्पर दर्शन हो, जो याग किया जाता है उसको दर्श कहते हैं, और पूर्णिमाके दिन जो इष्टि की जाती है उसका पौर्णमासयाग कहते हैं, इस विषयमें यह श्रुति है कि-"दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत॥"

र्यज्ञं दहशुर्यद्दर्शपौर्णमासाविति ॥" इस कारण आगे हम दर्शपौर्णमास मंत्रों का महीधरके अनुसार प्रजापति परमेष्ठी ऋषि न लिखकर श्रुति प्रमाणयुक्त होनेके कारण उव्वटके अनुसार दर्शपौर्णमास मन्त्रोंका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि लिखेंगे ॥

द्वितीय अध्यायके अन्तकी छः कण्डिका पितृयज्ञके मन्त्र हैं. उनका प्रजापति ऋषि है। प्रथम अध्यायमें सब मन्त्र यजु हैं एक "पुरा क्रूरस्य" इत्यादि मन्त्र ऋक् है, यजुः मन्त्रोंका पिंगलके अनुसार छन्द जानना अधिक विस्तार होजानेके कारण यहाँ नहीं कहेंगे। ऋचोंके छन्द कहेंगे।

तहाँ (प्रथम अध्यायमें) प्रथम कण्डिका में पाँच मन्त्र हैं दो तीन २ अक्षरके, तीसरा चार अक्षरका, चौथा बासठ अक्षरका; और पाँचवां नौ अक्षरका है।

प्रकृतिरूप होनेके कारण प्रथम दर्शपौर्णमासके मन्त्र कहते हैं। विधि दो प्रकारकी होती हैं, एक प्रकृतिसंज्ञक, दूसरी विकृति संज्ञक जहाँ सकल अंगोंका उपदेश होता है अर्थात् जिनके मन्त्रोंमें सकल विधान वर्णित होता है वह प्रकृति कहाती हैं और जहाँ किसी विशेष अङ्गमात्रका उपदेश होता है एवं शेष अङ्ग (विधान) प्रकृति मंत्रोंसे जाने जाते हैं वह विकृति कहाती है। प्रकृति तीन प्रकार की है, अग्निहोत्र, इष्टि और सोम।

यद्यपि दर्शपौर्णमास यज्ञमें कृताधान (अग्निहोत्र करनेवाले) को ही अधिकार है इस कारण प्रथम अग्न्याधान (अग्निस्थापना) के मन्त्र कहने चाहिये थे परन्तु अग्न्याधान में पवमान नामक इष्टि करनी पड़ती है, अतः पवमान इष्टियों के विना अग्न्याध्यान हो ही नहीं सकता और पवमान इष्टि दर्श पौर्णमासकी विकृति हैं अतः दर्शपौर्णमास के ज्ञान के विना पवमानेष्टि नहीं हो सकतीं इसकारणसे; तथा सोमयाग में भी दक्षिणीय प्रायणीय आदि के विषैं दर्शपौर्णमासकी अपेक्षा होती है इसकारण भी प्रथम दर्शपौर्णमास मन्त्रोंका कथन ही उचित है वह दर्शपौर्णमासके मन्त्र आगे लिखे 'इषे त्वा' इत्यादि हैं—

हरिः ओ३म्। इषे त्वा। ऊर्जे त्वा वायवः स्थ। देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳ सोध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥

भावार्थ-मूलमें जो "इषे त्वा" इत्यादि लिखा है, वह एक कण्डिका है और उस कण्डिकामें पाँच मन्त्र हैं, प्रथम मन्त्रके दो पद और तीन अक्षर हैं, उसका दैवी अनुष्टुप् छन्द, शाखा देवता और पलाश की शाखाका छेदन करने में विनियोग है, यहाँ

शङ्का होती है कि—शाखा तो अचेतन (जड़) है वह देवता कैसे हो सकती है ? इसका उत्तर यह है कि-यद्यपि यह शाखा उखा आदि अचेतन हैं परन्तु इनके अभिमानी देवताओंका सान्निध्य होनेसे इनमें देवतात्व माना है, भगवान् वेदव्यास जीने भी वेदान्तदर्शनमें "अभिमानिव्यपदेशस्तु अ० २ पा० १ सूत्र ५" इस सूत्र के द्वारा यही वर्णन किया है. तथा "मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्' अर्थात् मृत्तिका बोली, जल बोलेय ह श्रुति अभिमानी देवताओंके सान्निध्यसे मृत्तिका आदिमें देवतात्व माननेसे ही संगत होती है, यही कारण है कि—शास्त्र के तत्त्व को जानने वाले विद्वान् अचेतन भी सालिग्राम की शिलामें शास्त्रदृष्टिसे विष्णु भगवान्की सन्निधि मानते हुये विष्णु भगवान् को ही सम्बोधनक रकै षोडशोपचारके द्वारा पूजन करते हैं। ऊपर उत्थानिकामें लिख आयें हैं कि—"इषे त्वा" इत्यादि दर्शपौर्णमासके मन्त्र हैं उसका ही प्रसंग उठाते हैं कि—प्रतिपदामें दर्शयागको करनेकी इच्छा करने वाला पुरुष, अमावस्याके दिन प्रातःकाल के समय अग्निहोत्र करके दर्शयागके निमित्त कात्यायनमुनि प्रणीत श्रौतसूत्र अ०२ का० १ सू० ३ में कहे हुए "अग्निर्वर्च इत्यादि" मन्त्र के द्वारा अग्नियों में समिदाधानरूप अन्वाधान करके बत्सापाकरण (गौओं के समीपसे बछड़ोंको हटाना) करै दर्शयागमें तीन हवि होते हैं—आठ कपालों (इस प्रकार के पात्र) में पकाया हुआ अग्नि है देवता जिसका ऐसा दधि, इन्द्र है देवता जिसका ऐसा दधि तथा इन्द्र है, देवता जिसका ऐसा पय (दुग्ध) इस दधि दुग्धाधिरूप हविकी प्रतिपदाके दिन हवन करने की आवश्यकता होती है इस कारण दधि बमानेके लिये अमावस्याकी रात्रिमें गौओं को दुहे, तिस दुहनेके निमित्त अमावास्या के दिन प्रातःकालके समय प्रतिदिनके नियमानुसार गौओंके लौकिक दुहनेके अनन्तर अपनी माताओंके साथ चरते हुए बछड़ों को पलाशकी शाखासे अलग करे, इस कारण पलाशकी शाखाका छेदन किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण १।७।१।८।२।१०में लिखा है, कि—जब गायत्री पक्षीका रूप धारण करके स्वर्गसे सोमवल्ली लाई थी, उस समय तिस सोमवल्लीका पत्र (पत्ता) भूमि पर गिर कर उग आया तिससे पलाश हुआ इस कारण शास्त्रोंमें पलाशकी प्रशंसा करी है और उसको ब्रह्मत्व कहा है, अतएव बछड़ोंको हटानेके लिये पलाशकी शाखाका तथा शमी (१) की शाखाका भी छेदन करना कहा है, तिस छेदन करनेके समय प्रथमका मन्त्र "इषेत्वा" पढ़ना चाहिये इसका अर्थ यह है, कि-(शाखे) हे पलाश की शाखे ! अथवा शमीकी शाखे (त्वा) तुझको। (इषे) वृष्टिके निमित्त (छिनद्मि) छेदन करता हूँ (क्योंकि-शाखासे बछड़ों को पृथक् किया जायगा तब गौओंका दुग्ध

(१) पर्णशाखां शमीलींवा (कात्या०) अस्यार्थः पालाशशाखाशमीशाखा वात्र विकल्पिता

बुहकर दधि होगा--तिस दधिका हवन करनेसे "अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रम-भ्राद् वृष्टिः" इस श्रुतिके अनुसार वर्षा होती है इस कण्डिकामें दो पद और तीन अक्षर का दूसरा मन्त्र है "ऊर्जे त्वा" इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि दैवी अनुष्टुप छंद शाखा देवता माध्यन्दिनी शाखा वालोंके मतमें इस मन्त्रका भी शाखाके छेदनमें विनियोग है अर्थात् इनके यहाँ शाखाछेदन के मन्त्रमें विकल्प है चाहें इस द्वितीय मंत्र से शाखाछेदन करे और चाहें प्रथम मन्त्र से शाखा छेदन करे, परन्तु काण्व शाखा वालोंके मतमें इस द्वितीय मन्त्रका शाखाके सन्नमन में विनियोग है अर्थात् काण्व शाखावाले शाखा छेदन प्रथममन्त्रसे ही करते हैं और इस दूसरे मन्त्रसे शाखाका सन्नमन (शाखामें लगी हुई धूलि आदि को दूर करके शुद्ध और सूधी) करते हैं ❀ इस द्वितीय मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे शाखे ! मैं (ऊर्जे) सकल मनुष्य पशु आदिकों को पान आदिके द्वारा दृढ़ शरीर करने वाले अथवा चेष्टारूप जीवन देनेवाले वर्षा के जलरूप रसकी प्राप्तिके लिये (त्वा) तुझको (छिनद्मि) (माध्यन्दिनी शाखा वालोंके मतमें) छेदन (काण्व शाखा वालों के मतमें) शोधन करता हूँ। इस सबका तात्पर्य यह है कि—अध्वर्यु (यजुर्वेदियों को यज्ञ कराने वाला आचार्य) इन दोनों मन्त्रों को पढ़ कर शाखाभिमानी देवता से प्रार्थना करता है कि-इस वृक्षकी शाखाका छेदन और शोधन जो किया जाता है तिस से यज्ञके द्वारा वर्षा हो और वर्षाके द्वारा हमारे इस यजमानको अन्न तथा बल-कारक घृत दुग्धादि प्राप्त हो।

दो पद और चार अक्षर का तीसरा मन्त्र है "वायवःस्थ" इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द, वायु देवता और गौओंके समीपसे बछड़ोंको हटानेमें इसका विनियोग है। इस मन्त्रको पढ़ कर गौओं को दुहने के निमित्त तिस पलाश शाखाके द्वारा बछड़ोंको गौओंसे अलग करके हटा देय। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि—(वत्साः) हे बछड़ो ! तुम, (वायवः) गमन करने वाले होजाओ, क्योंकि बिना तुम्हारे अलग हुये सायंकालको यज्ञ के निमित्त दोहना नहीं होसकेगा। अथवा ऐसा अर्थ समझना कि-हे ! बछड़ो तुम वायुरूप [वायुकी समान] हो, जिस प्रकार वायु पादप्रक्षालन [चरण धोना] निष्ठीवन [थूकना] आदिसे दोषयुक्त हुई पृथ्वीको सुखा कर पवित्र करता है तिसी प्रकार तुम लीपनेके निमित्त गोमय (गोबर) दे

❀ इषे त्वेत्यूर्जे त्वेति वा छिनद्मि इति वोभयोः साकांक्षत्वात्सन्नमयामीति वोत्तर इति कात्यायनोक्तेः। अस्यार्थः-शाखाच्छेदने इषेत्वोर्जेत्वेति द्वौ मन्त्रौ विकल्पितौ तयोः क्रियापदा-कांक्षत्वादर्थावबोधाय छिनद्मि इति पदमध्याहर्त्तव्यमित्येकः पक्षः। इषेत्वेति छेदनार्थो मन्त्रः। ऊर्जेत्वेति सन्नमनार्थः। सन्नमनं ऋजूकरणं शाखालग्नधूल्याद्यपनयनम्। इदंपक्षान्तरमित्यर्थः

कर भूमिको पवित्र करते हो। अथवा इस मन्त्रका अभिप्राय यह है कि-जिस प्रकार अपने निवास करनेके निमित्त मनुष्योंको गृह आदि बनानेकी सामर्थ्य है तिस प्रकार पशुओंको नहीं है, अतः पशु निरावरण (बिना छाये) अन्तरिक्षमें विचरते हैं तिस अन्तरिक्ष का अधिपति वायु अपने अवयवों (अङ्गों) की समान पशुओंका पालन करता है अतः हे बछड़ों! हम तुमको गौओंसे पृथक् करके चरते हुए तुम्हारी रक्षा करने के निमित्त वायु देवताको समर्पण करते हैं अथवा यह अर्थ जानना कि हे बछड़ो! तुम वायुकर होओ अर्थात् अब गौओंसे पृथक् हुये तुम दिनमें तृण भक्षणके निमित्त जहाँ तहाँ वनमें विचरकर सायंकालके समय वायुकी समत्व वेगसे लौट कर यजमान (अपने स्वामी) के घरको आओ।

बासठ अक्षरका तीसरा मन्त्र है, इस का भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, ब्राह्मी पंक्ति छन्द, इन्द्र देवता और पलाशशाखा से गौओंका उपस्पर्शन करनेमें विनियोग है। पूर्वोक्त मन्त्रसे पृथक् करे हुए बछड़ों की माता जो गौएँ हैं, उनमेंसे एक गौको पृथक् करके "देवो व इत्यादि" इस मंत्रको पढ़ता हुआ पलाशसे स्पर्श करे, ऐसा करनेसे उस गौका दधिरूप हवि इन्द्र देवताका होता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि-(गावः) हे गौओं! (सविता) सबका प्रेरक (देवः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर (वः) तुमको, (श्रेष्ठतमाय) यज्ञरूप श्रेष्ठतम* (कर्मणे) कर्मके निमित्त, (प्रापयतु) बहुतसे तृणों वाले वनमें पहुँचावे (जिससे तुम यथेष्ट तृणभक्षण करके बहुतसे दुग्धदधिरूप हविको उत्पन्न करती हुई यज्ञमें सहायक होओ)। (अघ्न्याः) हे अवध्य गौओं! [यज्ञमें] (इन्द्राय) इंद्र के निमित्त (भागम्) हवि बनानेके अर्थ तिस हविरूप दधिके हेतुभूत दुग्धको (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ (प्रजावतीः) जीवित सन्तति वालीं (अनमीवाः) कृमिपीड़ा आदि क्षुद्र रोगरहित (अयक्ष्माः) राजयक्ष्मा आदि प्रबल रोगरहित (वः) तुमको (स्तेनः) चोर पुरुष, (अपहर्तुम्) चुरानेको, (मा) मत, (अघशंसः) चांडाल वा व्याघ्रादि हिंसक जीव (निहन्तुम्) वध करनेको (मा) मत, (ईशत) समर्थ हो (अस्मिन्) इस (गोपतौ) गौओंके स्वामी यजमानके समीप (ध्रुवाः) निरंतर रहने वालीं (बह्वी) बहुतसी (स्यात) होवो।

नौ अक्षरका पाँचवाँ मन्त्र है "यजमानस्य पशून्पाहि" इसका भी परमेष्ठी

---

* कर्म चार प्रकारके होते हैं, अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम-लोकविरुद्ध हिंसा चोरी आदि अप्रशस्त कर्म हैं, लोकमें श्लाघनीय कुटुम्बपालन आदि प्रशस्त कर्म हैं. स्मृतियोंमें कहे हुए वापी कूप तड़ागादि श्रेष्ठ कर्म हैं और वेदोक्त यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म कहाते हैं, ऐसा ही श्रुतिमें भी कहा है कि—"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"।

प्राजापत्य ऋषि, याजुषी बृहती छन्द, शाखा देवता और शाखाके उपगूहन (ग्रहण) करनेमें विनियोग है। यजमानके अग्न्यागार (आहवनीय वा गार्हपत्य अग्निके स्थान) के आगे शाखाको उपगूहन करता हुआ "यजमानस्य पशून्पाहि" इस मन्त्र को पढे। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि— (शाखे) हे शाखाभिमानी देवते! (यजमानस्य) यजमानके (पशून्) पशुओं [गौओं के बछड़ों] को (पाहि) व्याघ्र चोर आदिसे रक्षा कर [जिससे कि सायंकालको आनंद पूर्वक यजमानके घरको लौट कर आवें और गौओंके दुहनेमें सहायक हों तथा यज्ञके निमित्त हवि सम्पादित हो] ॥१॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृंहस्व माऽहार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वीषीत् ॥ २ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं-प्रथम "वसोरित्यादि" मन्त्रका प्रजापतिका अपत्य परमेष्ठी ऋषि; याजुषी उष्णिक् छंद, वायु देवता और पलाश शाखामें पवित्र बाँधनेमें विनियोग है। दो या तीन कुशा को पवित्र कहते हैं. पलाशकी शाखामें वह कुशाओंका पवित्र बाँधे. तिस पवित्रके बाँधतेमें इस प्रथम मन्त्रको पढे, "वसोः पवित्रमसि" इसका अर्थ यह है कि (पवित्र) हे कुशाओंके पवित्र! (वसोः) इन्द्र देवता के भागरूप दुग्धको पवित्रम्) पवित्र करने वाले असि) हो।

"द्यौरसि पृथिव्यसि" यह दूसरा मंत्र है तिसका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी जगती छन्द, उखा देवता और दुग्ध धारणार्थ उखाग्रहणमें इसका विनियोग है। पलाशशाखामें पवित्र बाँधनेके अनन्तर जिस स्थालीमें दुग्ध रखना हो उसको ग्रहण करते समय द्यौरसीत्यादि मंत्रको पढे, इसका अर्थ यह है कि (स्थालि) हे स्थालि! अर्थात् हाँडी (द्यौः) द्युलोकके अवयवभूत जलसे बनी हुई (असि) है इस कारण द्युलोकरूप है (पृथिवी) पृथिवीमें से ली हुई मृत्तिकाके द्वारा बनीहुई (असि) है, अतः पृथिवीरूप है।

"मातरिश्वेत्यादि" तीसरा मन्त्र है, इसका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्रजापत्या जगती छन्द, उखा देवता और दुग्धकी हांडीको अग्नि पर चढानेमें इसका विनियोग है, द्वितीय मंत्रसे हाँडीमें दुग्ध करने अनन्तर उस दूधकी हांडीका गार्हपत्य अग्निमेंसे अंगारोंको निकाल, उस गार्हपत्य के उत्तरमें बिछाय उन पर चढा देवे उस समय "मातरिश्वेत्यादि" यह तीसरा मंत्र पढ़ा जाता है। इस मंत्रका अर्थ यह है कि-(उखे) हे उखे! अर्थात् हाँडी तुम्हारे भीतर अंतरिक्ष शून्य स्थान में वायु का संचार होता है अतः तुम (मातरिश्वनः)

वायुकी (घर्मः) दीपक कहिए अभिव्यञ्जक वा प्रकाशक (असि) हो, इस कारण अंतरिक्ष लोक रूप हो, दूसरे मंत्र में द्युलोकरूप पृथिवी लोकरूप स्थालीको कहा और इस मंत्रमें अंतरिक्ष लोकरूप कहा, इस प्रकार तीनों लोकोंके धारण करनेसे (विश्वधाः) विश्व का धारण करने में समर्थ (असि) हो, (परमेण) बहुत दुग्धको धारण करनेकी सामर्थ्यरूप उत्तम (धाम्ना) तेज करके (दृंहस्व) दृढ़ हो अर्थात् तेजका अधिष्ठातृ देवता तुमको दृढ करे, नहीं तो टूट जानेसे दुग्ध निकल जायगा (व्हाः) टेढी (मा) मत होवो, जिससे कि (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान (माव्हार्षीत्) कुटिल [तुझमें स्थितदुग्ध के निकल जानेसे यज्ञानुष्ठानमें विघ्न वाला] न हो (यह मैं यज्ञ पुरुष परमेश्वरसे प्रार्थना करता हूँ) ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसो पवित्रेण शतधारेण सुप्वा । कामधुक्षः ॥ ३ ॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्" का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः छन्द, वायु देवता और उखा पर पवित्रको स्थापन करनेमें विनियोग है। उखा [हाँडी] के मुख पर कुशोंके पवित्रेको इस प्रकार रक्खे, कि जिस में पवित्रे के कुशाओंका अग्रभाग पूर्व वा उत्तर दिशा की ओरको रहे इस प्रकार पवित्रेको रखते समय यह मन्त्र पढा जाता है। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि (शाखापवित्र) हे शाखा में बँधे हुये पवित्र (वसोः) इन्द्रदेवताके निवासके हेतु दुग्धका (त्वम्) तू (शतधारम्) सैंकड़ों धारावाला (सहस्रधारम्) सहस्रों धारावाला। (पवित्रम्) शोधक। (असि) है।

दूसरे "देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप्छन्द, पयो देवता और दुग्धके पवित्र करने में विनियोग है। दुहने के अनन्तर हाँडी में दुग्ध डालते समय यह मन्त्र पढ़ा जाता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे क्षीर! (सविता) सबका प्रेरक (देवः) द्योतमान परमात्मा (शतधारेण) यज्ञसन्बन्धी शतधार, (सुप्वा) अच्छे शोधक (पवित्रेण) पवित्रे से त्वा) तुझको (पुनातु) पवित्र [निर्दोष] करे।

तीसरे "कामधुक्षः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द, प्रश्न देवता और गोदोहनके प्रश्नमें विनियोग है अध्वर्यु इस मन्त्रको पढ़ कर दुहने वालेसे प्रश्न करे। इस मन्त्रका अर्थ यह है। अध्वर्यु दुहनेवालेसे बूझता है कि-हे दोग्धः तुमने इन विद्यमान गौओंमेंसे (काम्) कौन सीको (अधुक्षः) दुहा ॥ ३ ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा । विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥ ४ ॥

इस कण्डिकामें पाँच मन्त्र हैं, प्रथम "सा विश्वायुः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द, गौ देवता और प्रथम प्रश्नके उत्तरमें विनियोग है। दोग्धा जब उत्तर देय कि मैंने इस गौको दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्रको पढे। इसका अर्थ यह है अध्वर्यु कहता है कि हे दोग्धः ! जिस गौ को तुमने दुहा और मैंने बूझा (सा) वह गौ (विश्वायुः) विश्वायु शब्द से कहने योग्य है अर्थात् परमेश्वरसे प्रार्थना है कि यह गौ यजमानको पूर्ण आयु देनेवाली हो

दूसरे "सा विश्वकर्मा" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, गौ देवता और द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें विनियोग है कात्यायन महर्षिने लिखा है कि-जिस प्रकार प्रथम गौ के दुहनेका भी प्रश्न करे, इस कारण, दूसरी गौ के दुहने पर दोग्धासे अध्वर्यु प्रश्न करे कि "कामधुक्षः" कौनसी गौको दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्र को पढे। इसका अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस दूसरी गौको तुमने दुहा और मैंने बूझा (सा) वह, (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा शब्दसे कहने योग्य है अर्थात् वह गौ जगत्की स्थितिकी कारण है क्योंकि यज्ञोंमें हविकी साधन हो कर सबकी कामनाओंको सिद्ध करती है सो। हमारे इस यजमान की कामना को सिद्ध करे।

तीसरे "सा विश्वधायाः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवीपंक्ति छंद, गौ देवता और तृतीय प्रश्नके उत्तरमें विनियोग है। तृतीय बार 'किस गौको दुहा' अध्वर्यु के इस प्रकार प्रश्न करने पर जब दोग्धा कहे कि—मैंने इस गौको दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्रको पढे। इसका अर्थ यह है कि-अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस तीसरी गौको तुमने दुहा और मैंने बूझा (सा) वह (विश्वधायाः) विश्वधाया शब्दसे कहने योग्य है क्योंकि क्षीर दधि आदिरूप हवि देकर सकल देवताओंको पुष्ट करती है सो परमेश्वरसे प्रार्थना है कि-इस यज्ञ में भी इन्द्रादि देवताओंको दधिदुग्धादिरूप हवि दे कर हमारे यजमानकी कामना को सिद्ध करावे !

चौथे "इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्यऋषि याजुषी जगती छन्द, इन्द्र देवता और दधिको जमानेमें विनियोग है। गरम करे हुए दुग्धको अग्नि परसे उतार कर कुछ एक गरम रहने पर उसमें प्रातःकालके होमसे बचे हुए दधिको डाल कर दधि बनावे उस समय इस मन्त्रको पढ़े। इसका

अर्थ यह है, कि-हे क्षीर! (इन्द्रस्य) इन्द्र के (भागम्) भागरूप (त्वा) तुझको, (सोमेन) सोमवल्लीके रसरूप माने हुए हवनसे बचेहुए दधिके द्वारा (आतनच्मि) कठिन करता हूँ कहिए जमाता हूँ, अर्थात् परमेश्वरकी कृपासे यह दधि जमे और उससे देवताको भाग प्राप्त होकर यजमान की अभीष्टसिद्धि हो।

पाँचवें "विष्णो हव्यं रक्ष" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, पयो देवता और विष्णुकी प्रार्थना में विनियोग है। उस दुग्धकी हाँडीको जल भरे हुए किसी, मृत्तिकाका न हो ऐसे पात्रसे ढके और उस समय इस मन्त्रको पढ़े। इसका अर्थ यह है, कि—(विष्णो) हे यज्ञपुरुष (हव्यम्) हविको (रक्ष) रक्षा करो, [क्योंकि-जगत्में रक्षा करनेका भार आपके ही ऊपर है अर्थात् आप रक्षाके अभिमानी देवता हैं]॥ ४॥

अग्ने व्रतपते व्रतञ्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।५।

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं प्रथम "अग्ने व्रतञ्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, उष्णिक् छन्द, अग्नि देवता और यज्ञानुष्ठानकी प्रतिज्ञामें इसका विनियोग है यजमान आहवनीय अग्निके समीप पूर्वको मुखकर अग्निको देखता हुआ दाहिने हाथमें जल लेकर इस मन्त्रको पढ़े। इसका अर्थ यह है, (व्रतपते) हे इस किये जाते हुए कर्म के पालक [विष्णुभगवान्के अंशयुक्त] अग्निदेव! (व्रतम्) व्रतको (चरिष्यामि) करूँगा, (तत्) उसको, (शकेयम्) कर सकूँ (मे) मेरे, (तत्) उसव्रतको (राध्यताम्) सिद्ध करो। अर्थात् तुम्हारा भरोसा करके मैं इस कर्मको करता हूँ, आपके अनुग्रहसे मैं इस कर्मके करनेको समर्थ होऊँ, मेरा यह कर्म निर्विघ्नतापूर्वक फल की प्राप्तिपर्यन्त सिद्ध हो।

"इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी गायत्री छन्द, अग्नि देवता और सत्यप्राप्तिकी प्रार्थनामें विनियोग है। आहवनीय अग्नि के समीप पूर्वोक्त प्रकारसे इस मन्त्रको भी पढे। इसका अर्थ यह है, कि-हे अग्निदेव (अहम्) मैं यजमान (अनृतात्) अनृत कहिये स्वप्नमें देखे हुए हस्ती आदिकी समान शीघ्र ही नाशको प्राप्त होने वाले मनुष्य शरीरसे (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य कहिये बहुत काल पर्यन्त स्थित रहने वाले देवशरीरको (उपैमि) प्राप्त होता हूँ ऐसा अर्थ करनेमें इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्त्तत इति (१।१।१।४) यह शतपथकी श्रुति प्रमाण है। अथवा लोकप्रसिद्ध ही सत्य अनृतको मान कर ऐसा अर्थ करना चाहिये, कि-हे अग्निदेव! (अहम्) मैं (अनृतात्) मिथ्या

भाषणसे पृथक् होकर (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य भाषणको (उपैमि) प्राप्त होता हूँ। "नानृतं वदेत्" अर्थात् मिथ्या-भाषण न करे, इस प्रमाणके अनुसार सत्य भाषण कर्मका अङ्ग है अतः कर्मानुष्ठानके समय सर्व प्रकारसे सत्यभाषणका पालन करना चाहिये ॥ ५ ॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं—प्रथम "कस्त्वा-इत्यादि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप्छन्द, प्रजापति देवता और जल प्रणयन तथा आहवनीय अग्निके उत्तर प्रदेशके विषें धारणमें विनियोग है पञ्चम कण्डिकामें कही हुई रीति से सत्यभाषणादि रूप प्रतिज्ञा करके यज्ञ के आरम्भमें अपने कर्तृत्व (मैं कर्त्ता हूँ, इस अभिमान) को त्याग कर प्रजापति को यज्ञका कर्त्ता माने अतएव तदनन्तर ब्रह्माका वरण करके जलोंका प्रणयन करे, यजमान ब्रह्मासे प्रश्न करे, कि—ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि—हे ब्रह्मन्! जलोंका प्रणयन करूँ। तब ब्रह्मा "(का० २।२।८ प्रणय यज्ञं देवता वर्द्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानोऽस्तु सप्त ऋषीणाँ सुकृतां यत्र लोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानञ्च धेहि) इस प्रकार धीरे २ पढ़ कर "ॐ प्रणय" इस प्रकार ऊँचे स्वरसे कहे, कि-जिसमें अध्वर्यु सुन लेय फिर अध्वर्यु चमस (काष्ठके बने हुए यज्ञके पात्रविशेष) को लेकर आहवनीय अग्निकी उत्तर दिशामें वेदीके बाहर कुशों पर स्थापन करे उस समय इस मन्त्रको पढ़े। इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि—हे प्रणीता जलको धारण करने वाले पात्र! (त्वा) तुझको (कः) कौन पुरुष, (युनक्ति) आहवनीय अग्निके उत्तर भागमें स्थापन करता है, यह प्रश्न है, जो सकल वेदोंमें निर्वाह करने वाला प्रसिद्ध है, वह प्रजापति परमेश्वरही हे पात्र! तुझको स्थापन करता है यह उत्तर हुआ (कस्मै) किस प्रयोजनके लिये (त्वा) तुझको (युनक्ति) स्थापन करता है? यह प्रश्न है, (तस्मै) तिस प्रजापति परमेश्वरकी प्रसन्नताके अर्थ (त्वा) तुझको (युनक्ति) स्थापन करता है, (इसका ही निष्कर्ष श्रीकृष्ण भगवान्ने गीतामें अर्जुनसे कहा है-' ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत् यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्)

दूसरे "कर्मण इत्यादि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, स्रुक् और स्रुवाभिमानी देवता तथा

शूर्प एव अग्निहोत्रहवणीके ग्रहणमें विनियोग है। कुशोंका परिस्तरण कर दो दो पात्रोंको रखकर शूर्प और अग्निहोत्रहवणी को ग्रहण करे, उस समय इस मन्त्रको पढ़े। इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे शूर्प हे अग्निहोत्रकी हवणि मैं (कर्मणे) यज्ञ सम्बन्धी कर्मके निमित्त (वाम्) तुमको, ग्रहण करता हूँ तथा (वेषाय) सूचित कर्मोंमें व्याप्तिके अर्थ (वाम्) तुम दोनों को ग्रहण करता हूँ शकट [गाड़ी] में स्थित धान्योंको हविके निमित्त अलग करना तथा प्रोक्षण करनेके निमित्त जलको धारण करना इत्यादि अग्निहोत्रहवणी [काष्ठके पात्रविशेष] के व्यापार हैं। धान्योंका फटकना धारण और उलूखलमें डालना फिर निकालना इत्यादि शूर्पके व्यापार हैं ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः। निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं प्रथम "प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः" मन्त्र और द्वितीय "निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी बृहती छन्द, रक्षोघ्न देवता और अग्निहोत्रहवणी तथा शूर्पको तपाकर राक्षसोंके जलानेमें विनियोग है। इन दोनों मन्त्रोंमें से किसी एकको पढ़ता हुआ अग्निहोत्रहवणी और शूर्पको गार्हपत्य अग्निमें तपावे इन दोनोंका अर्थ यह है, कि-अग्निहोत्रहवणी और सूर्पके तपानेसे इनमें अपनी मायाके बलसे स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (प्रत्युष्टम्) एक एक करके दग्ध हुई, (अरातयः) देवताओंको हवि देनेमें प्रतिबन्धक होकर यज्ञ में विघ्न करने वाले (प्रत्युष्टाः) दग्ध हुए। अपनी मायाके प्रभावसे शूर्प आदिके विषें गुप्तरूपसे स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (निष्टप्तम्) विशेषरूपसे सन्तप्त हुई, (अरातयः) यज्ञसिद्धि में विघ्न करनेवाले (निष्टप्ताः) निःशेषरूप से सन्तप्त हुए।

तीसरे "उर्वन्तरिक्षमन्वेमि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्य गायत्री छन्द, रक्षोघ्न देवता अवकाशमें चलनेमें विनियोग है। धान्योंकी गाड़ीके समीप जाता हुआ इस मन्त्रको पढ़े। इस मंत्रका अर्थ यह है, कि-(उरु) विस्तारयुक्त (अंतरिक्षम्) अवकाशको (अन्वेमि) पाकर चलता हूँ अर्थात् जानेमें मुझको विघ्नकर्त्ता प्रतिबन्धक न हो इस लिये यज्ञ पुरुष परमेश्वर चलते समय मेरे दोनों ओरके राक्षसों को दूर करें ॥ ७ ॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं, प्रथम "धूरसीत्यादि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, अग्नि देवता और अग्नि की प्रार्थनामें विनियोग है। गार्हपत्य अग्नि के पश्चात् भागमें स्थित सुन्दर अङ्गों वाला शकट [छकडा] होता है उसके धुर [वृषभ] जोतनेके (स्थान) को स्पर्श करता हुआ "धूरसीत्यादि" मन्त्रको पढ़े, वृषभको जोतनेके स्थानमें शास्त्रमें वर्णित एक हिंसक अग्नि है, उसकी प्रार्थना करनेका यह मंत्र है। इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे अग्ने तुम (धूः) हिंसक [दग्ध करने वाले] (असि) हो, अतः (धूर्वन्तम्) हिंसा करने वाले पापको (धूर्व) विनष्ट करो, (यः) जो राक्षसादि, यज्ञमें विघ्न करके (अस्मान्) हमको (धूर्वति) हिंसा करनेको उद्यत होता है, (तम्) उसको एवं जिस आलस्यादि रूप वैरीका (वयम्) हम (धूर्वामः) हनन करना चाहते हैं (तम्) उसको (धूर्व) विनष्ट करो।

दूसरे "देवानामसीत्यादि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, शकटाभिमानी देवता और शकटके उपस्तम्भन नामक काष्ठके पश्चाद्भागमें ईषाका स्पर्श करनेमें विनियोग है गाड़ीके दीर्घकाष्ठ ईषा का अग्रभाग जिसमें कि युग (जुआ) बाँधा जाता है भूमिमें स्पर्श न हो इस कारण इसके रोकनेके निमित्त एक काष्ठ लगाया जाता है उसको उपस्तम्भ कहते हैं, तिस उपस्तम्भके पश्चाद्भागमें तिस ईषाका स्पर्श करता हुआ इस मन्त्रको पढ़े। इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि—हे शकटाभिमानी देव! (त्वम्) तुम (देवानाम्) देवताओंके (वह्नितमम्) अतिशय करके व्रीहिरूप हविके पहुँचाने वाले (सस्नितमम्) अत्यन्त शुद्ध (पप्रितमम्) व्रीहियों करके अत्यन्त पूर्ण (जुष्टतमम्) देवताओंके अत्यंत प्रिय (देवहूतमम्) देवताओंका अतिशय करके आवाहन करने वाले (असि) हो (तुम मेरे ऊपर भी अनुग्रह करके अपनी सकल शक्तियोंके द्वारा मेरे यज्ञको पूर्ण करो) ८

अहुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व माऽहार्माते यज्ञपतिर्ऽहार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमताम्। उरु वाताय अपहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ ९ ॥

इस कण्डिकामें 'अहुत' यहाँसे लेकर माऽहार्षीत् पर्यन्त जो मन्त्र है वह पूर्वकी अष्टम कण्डिकाके अन्तिम मन्त्रका शेष है, शेष नवम कण्डिकामें चार मन्त्र हैं-प्रथम "विष्णुस्त्वा क्रमताम्" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, शकटाभिमानी देवता और शकटपर आरोहण करनेमें विनियोग है। दूसरे "उरु वाताय" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि दैवी पङ्क्ति छन्द, शकटाभिमानी देवता

और व्रीहियोंके अवलोकनमें विनियोग है। तीसरे "अपहतꣳ रक्षः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी, गायत्री छन्द, रक्षो देवता और तृणादिके अपाकरणमें विनियोग है। चौथे "यच्छन्तां पञ्च" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, हवि देवता और हवि ग्रहण करनेमें विनियोग है।

भाषार्थ-अहृतमित्यादि प्रथम मन्त्रके शेषका अर्थ यह है कि-हे शकटके अभिमानी देव! तुम (अहृतम्) अकुटिल हो [अतः चढ़ते समय टूटनेका भय नहीं है] (हविर्धानम्) व्रीहिरूप हविके धारण करनेवाले (असि) हो, (दृंहस्व) दृढ होवो (मा) मत, (व्हाः) कुटिल होवो, जिससे कि-(ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान, (माह्वार्षीत्) यज्ञक्रियामें विघ्नरूप कुटिलतायुक्त न हो।

विष्णुरित्यादि प्रथम मन्त्रको पढ़ कर शकट पर आरोहण किया जाता है तिस मन्त्रका अर्थ है कि-हे शकट (विष्णुः) सर्वव्यापी यज्ञ पुरुष विष्णु भगवान् (त्वा) तुम्हारे ऊपर (क्रमताम्) चढ़ें, [इसप्रकार कर्म करनेमें अपनी निरभिमनिता दिखाई]

उरु इत्यादि द्वितीय मन्त्रको पढ़ कर शकटमें के व्रीहियोंको देखा जाता है, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे शकट! अपनेमें स्थित व्रीहियोंके विषें (वाताय) वायुका संचार होनेके निमित्त, (उरु) विस्तीर्णहो [इस मन्त्रसे व्रीहिरूप हविको वायुरूप प्राणका प्रवेश करके सप्राण कियाजाता है] अपहतमित्यादि तीसरे मन्त्रको पढ़ कर व्रीहियोंके ऊपरसे तृण आदि अलग किये जाते हैं, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि—(रक्षः) राक्षस [यज्ञ विघातक तृणादि] (अपहतम्) दूर हुआ॥

यच्छेत्यादि चौथे मन्त्रको पढकर शकट मेंसे मुट्ठी भरकर व्रीहि लिये जाते हैं, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि-(पञ्च) पाँच अंगुलियोंकी बँधी हुई मुट्ठी (यच्छन्ताम्) व्रीहिरूप हविको ग्रहण करें॥ ९॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णामि अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥ १०॥

इस दशवीं कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं-उनमेंसे प्रथम "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता और हविके ग्रहण करनेमें विनियोग है। दूसरे "अग्नये जुष्टं गृह्णामि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, लिंगोक्त-देवता और हविके ग्रहणमें विनियोग है। तीसरे "अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि" मंत्र

का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छंद, लिंगोक्त देवता और हविके ग्रहणमें विनियोग है ॥

भाषार्थ-इस कण्डिकाके तीन मंत्रोंको पढ़ कर हवि ग्रहण किया जाता है और वह अग्निहोत्रहवणीके अग्निके निमित्त चार मुट्ठी तदनन्तर अग्नि सोमके अर्थ चार मुट्ठी, तिसमें से तीन मुट्ठी मन्त्र पढ कर और चौथी मुट्ठी मौन होकर डाली जाती है इन तीनों मन्त्रोंका अर्थ यह है। कि-हे हवि ! (सवितुः) सबके प्रेरक (देवस्य) ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर के (प्रसवे) प्रेरणा करने पर (अश्विभ्याम्) देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार की बाहुओंकी करी है भावना जिनमें ऐसे अपने बाहुओंसे (पूष्णः) देवताओंके समीप उनके भागको देने वाले पूषा देवता के (हस्ताभ्याम्) हस्तोंकी करी है भावना जिसमें ऐसे अपने हस्तोंसे, (अग्नये) अग्नि देवताके अर्थ (प्रियम्) प्रिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्निसोम देवताओंके अर्थ (जुष्टम्) प्रिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥

"सत्यं नेवा अनृतं मनुष्याः" इस श्रुति के अनुसार देवता सत्यरूप हैं सो उनके नामके स्मरणके साथ हवि ग्रहण करनेसे यज्ञ सत्यफल और निर्विघ्न होगा। देवताओंका स्मरण न करके मनुष्योंका किया हुआ अनुष्ठान मनुष्योंके अनृतरूप (अस्तु-शीघ्रविनाशी) होनेसे असृत (निष्फल) होता है ॥ सर्वात्मक अग्निके मन्त्रोंसे अभिमंत्रित करेहुये हविको ग्रहण करनेमें मनुष्य समर्थ नहीं होसकता, अतः प्रार्थना करने पर परमेश्वरकी आज्ञासे बाहुओंमें अश्विनी कुमारकी बाहुओंकी और हस्तोंमें पूषा देवताके हस्तोंकी भावना करनी होती है, क्योंकि-अश्विनीकुमार देवताओंके अध्वर्यु और पूषादेव देवताओंका भागधुक् हैं १०

भूतायाः त्वा नारातये । स्वरभिविख्येषम् । दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्याम् । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष ॥ ११ ॥

इस कण्डिकामें पाँच मन्त्र हैं—प्रथम 'भूताय त्वा नारातये' मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,प्राजापत्या गायत्री छन्द हविर्देवता और व्रीहिशेषके विचारमें विनियोग है दूसरे 'स्वरभिविख्येषम्' मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि याजुषी गायत्री छन्द,सूर्य देवता और पूर्वाभिमुख होकर यज्ञभूमिके अवलोकनमें विनियोग है। तीसरे'दृꣳहंतां दुर्याः पृथिव्याम्' इस मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; प्राजापत्या गायत्री छन्द गृह देवता और शकटसे उतरनेमें विनियोग है चौथे 'उर्वन्तरिक्षमन्वेमि' मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; प्राजापत्या गायत्री छन्द, शकट देवता और अन्तरिक्ष में चलने में

विनियोग है, पाँचवें 'पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि साम्नी पंक्ति छन्द, हविर्देवता और हविके स्थापन करने में विनियोग है ॥

इस कण्डिकाके प्रथम मन्त्रको पढ़ कर शकटमें शेष रहे हुए व्रीहियोंका अभिमर्शन किया जाता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे शकटमें शेष रहे हुए व्रीहि! हम (त्वा) तुझे [सद्भावके अर्थ अर्थात् शेष रहे हुये तुम्हारे द्वारा अन्य याग ब्राह्मण भोजन तथा बीज बना कर अन्य बहुतसे व्रीहियोंकी उत्पत्ति हो इस निमित्त शेष छोड़ता हूँ] (अरातये) कृपणताके कारण अदानके अर्थ (न) नहीं।

दूसरे मन्त्रको पढ़ कर पूर्वमुख होकर यज्ञभूमिको देखा जाता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि-मैं (स्वः) यज्ञको (अभिविख्येषम्) देखूँ (अर्थात् ईश्वर मुझको अन्न धनादिसे सम्पन्न करें जिससे कि मैं फिर भी अपनेको ऐसा ही यज्ञ करता देखूँ)

तीसरे मन्त्रको पढ़ कर शकट परसे उतरे, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि-(पृथिव्याम्) भूमि पर (दुर्याः) गृह (दृꣳहन्ताम्) दृढ़ हों (हव्य लेकर ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए उतरते हुए अध्वर्यु के भार से गृहक्षोभ होनेकी सम्भावना है वह इस मन्त्रके द्वारा निवारण करी जाती है)।

चौथे मन्त्रको पढ़ कर उत्तर दिशाकी ओरको चले; तिस मन्त्रका अर्थ यह है कि (उरु) विस्तीर्ण (अन्तरिक्षम्) अवकाशको (अन्वेमि) अनुसरण करके गमन करता हूँ।

पाँचवें मन्त्रको पढ़ कर गार्हपत्य वा आहवनीय अग्निके पश्चात् भागमें शूर्पमें स्थित हविका स्थापन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि हे हवि! मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) मध्यमें (अदित्याः) देवमाता की (उपस्थे) गोदमें (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अग्ने) हे अग्ने! (हव्यम्) तुम्हारे समीपमें स्थापन करे हुए इस हवि की (रक्ष) रक्षा करो ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ। सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं-प्रथम "पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, लिङ्गोक्त देवता और पवित्रोंके छेदनमें विनियोग है दूसरे "सवितुर्व इत्यादि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या पंक्ति छन्द,

आपो देवता और जलके अतिशय करके पवित्र करनेमें विनियोग है। तीसरे 'देवीरापो इत्यादि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः आपो देवता और अतिशय पवित्र जलसे पूर्ण अग्निहोत्रहवणीको ऊपर चलानेमें विनियोग है।

इस बारहवीं कण्डिकाके प्रथम मन्त्र को पढ़ कर पूर्ण, अन्तर्गर्भ (जिसकी तै के भीतर तै हों) एक समान दो कुशोंको छुरीरूप बनाए हुए अन्य कुशोंसे छेदन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-(पवित्रे) हे कुशरूप शोधक दोनों पवित्रों! (वैष्णव्यौ) यज्ञसम्बन्धी (स्थः) हो (अतः तुम यज्ञ में सहायता देकर यजमानकी अभीष्ट सिद्धि करो)।

दूसरे मन्त्रको पढ़ कर, अग्निहोत्रहवणीमें जल डाल कर पूर्वोक्त दोनों कुशों से पवित्र करे-मंत्रका अर्थ यह है कि-हे जलों! (सवितुः) प्रेरक परमात्माके (प्रसवे) प्रेरणा करनेपर (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र (पवित्रेण) वायुकी समान शोधक पवित्रके द्वारा (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणोंके द्वारा (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ।

तीसरे मन्त्रको पढ़ कर, पूर्वमन्त्रसे पवित्रसे करे हुए जलोंसे भरी हुई अग्निहोत्रहवणीको वाम हाथ पर स्थापन करके दाहिने हाथसे ऊपरको चलावे। मन्त्रका अर्थ यह है कि-(देवीः) हे प्रकाशमान! (अग्रेगुवः) प्रथम समुद्रको प्राप्त होने वाले (अग्रेपुवः) जहाँ जाओ उस स्थान को प्रथम पवित्र करने वाले अथवा सोम रसका पान करने वाले (आपः) जलों (अद्य) आज सुन्दर दिनमें प्रवर्त्तमान (इमम्) इस (यज्ञम्) दर्शपौर्णमास नामक यज्ञको (नयत) निर्विघ्न समाप्त करो, (सुधातुम्) दक्षिणादिके द्वारा यज्ञको पुष्ट करने वाले (यज्ञपतिम्) यज्ञका पालन करने (देवयुवम्) देवताओंको यज्ञमें एकत्र करने वाले अथवा यज्ञपुरुष परमेश्वरकी कामना करने वाले (यज्ञपतिम्) यजमानको (नयत) यज्ञका फल प्राप्त कराअ

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

इस तेरहवीं कण्डिका में प्रथम का "युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये' इतना भाग प्रथम कंडिका के अन्तिम मन्त्रका शेष है। आगे चार मन्त्र हैं—उनमेंसे प्रथम "प्रोक्षिता स्थ" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि दैवीबृहती

छन्द, आपो देवता और जलोंके प्रोक्षण करनेमें विनियोग है । दूसरे "अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि-याजुषी बृहती छन्द लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारण पूर्वक हविके प्रोक्षण करनेमें विनियोग है तीसरे 'अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप्छन्द लिंगोक्त देवता और देवतानामोच्चारणपूर्वक हविके प्रोक्षण करने में विनियोग है । चौथे 'दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः परा जघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि" मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, पात्र देवता और यज्ञपात्रों के प्रोक्षण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—पूर्वमन्त्रशेष 'युष्मा इत्यादि वृत्रतूर्ये' पर्यन्त का अर्थ यह है कि-हे जलो! (इन्द्रः) इन्द्र (वृत्रतूर्ये) वृत्रासुरके वध के निमित्त (युष्मा) तुमको (अवृणीत) सहायताके निमित्त चाहता हुआ और (यूयम्) तुमने (इन्द्रम्) इन्द्रको (वृत्रतूर्ये) वृत्रासुरके निमित्त, (अवृणीध्वम्) सहायता देते हुए (इसी प्रकार यह यजमान अपने पापकी निवृत्तिके अर्थ तुमसे प्रार्थना करता है तुमभी पापको दूर करनेके निमित्त इस यजमानको चाहो) ॥

इस कण्डिकाके प्रथम मन्त्रको पढ़कर जलोंका प्रोक्षण किया जाता है, अर्थ यह है हे जलो! तुम (प्रोक्षिताः) प्रोक्षित (स्थ) हो [क्योंकि विना संस्कार हुए औरोंको संस्कृत (शुद्ध) करनेको समर्थ नहीं होसक्ते]

दूसरे मंत्रको पढ़कर अग्नि देवताके निमित्त हविका प्रोक्षण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि हे हवि ! (अग्नये अग्नि देवताके निमित्त (जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुमको (प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूँ

तीसरे मन्त्रको पढ़कर अग्निसोमके अर्थ हविका प्रोक्षण किया जाता है मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे हवि ! (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नीषोम देवताके निमित्त(जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुमको (प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूँ ।

[इसी प्रकार अन्यदेवताओंके हवियों का भी प्रोक्षण करे]

चौथे मन्त्रको पढ कर कृष्णाजिन उलूखलादि अन्य यज्ञके पात्रोंको प्रोक्षण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि हे यज्ञके पात्रों (दैव्याय) ईश्वर सम्बन्धी (देवयज्यायै) देवता सम्बन्धी (कर्मणे) दर्शादि यागकर्मके निमित्त (शुन्धध्वम्) तुम शुद्ध होवो, (अशुद्धाः) नीच जाति बढई आदि (यत्) जो (वः) तुमको (पराजघ्नुः) अंगको छीलने आदिके समय अपने हस्तस्पर्शसे अपवित्र करते हुए (तत्) सो (इदम्) इस (वः) तुम्हारे अंगको (शुन्धामि) प्रोक्षणादिसे पवित्र करता हूँ ॥ १३ ॥

शर्म्मासि । अवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयः । अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु ।
अद्रिरसि वानस्पत्यः ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

इस चौदहवीं कण्डिकामें पाँच मन्त्र हैं प्रथम "शर्म्मासि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिनको ग्रहण करने में विनियोग है। द्वितीय "अव धूत ँरक्षोऽवधूता अरातयः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; आसुरी अनुष्टुप् छन्द, रक्षो देवता और राक्षसदूरीकरण में विनियोग है। तीसरे "आदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिनके बिछानेमें विनियोग है। चौथे "अद्रिरसि वानस्पत्यः" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी अनुष्टुप्छंद, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में विनियोग है। पाँचवें 'ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रतित्वादित्यास्त्वग्वेत्तु' मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी गायत्री छंद, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखनेमें विनियोग है॥

प्रथम मन्त्रको पढ़ कर कृष्णाजिन (कृष्ण मृगका चर्म) ग्रहण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे कृष्णाजिन! तू उलूखलके धारणके निमित्त (शर्म) सुख का हेतु (असि) है । अर्थात् तुझको हम शास्त्रकी विधिके अनुसार कृष्णाजिन पर रख कर यज्ञको पूर्ण करें तिससे तेरा अभिमानी देवता हमको सुख देय ।

दूसरे मन्त्रको पढ़ कर पात्रोंसे अलग करके मृगचर्मको झाडा जाता है-मन्त्रका अर्थ यह है, कि-कृष्णाजिनके झडनेसे उसमें छुपा हुआ (रक्षः) राक्षस (अवधूतम्) अलग गिरा दिया और (अरातयः) यज्ञ में विघ्न करने वाले शत्रु भी (अवधूताः) गिरा दिये ।

तीसरे मन्त्रको पढ़ कर दोनों हाथोंसे कृष्णाजिनको इसप्रकार बिछावे, कि-पश्चिम को ग्रीवा रहे, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे कृष्णाजिन तू (अदित्याः) भूमि देवताका (त्वक्) चर्म* रूप (असि) है इस कारण (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) ग्रहण करके अपना ही जाने।

चौथे मन्त्रको पढ़ कर कृष्णाजिन पर उलूखल रक्खे मन्त्रका अर्थ यह है, कि—हे उलूखल तू (अद्रिः) व्रीहि आदिका विदीर्ण करने वाला है और यद्यपि (वानस्पत्यः)

* पुरा यज्ञो देवेषु रुष्टः कृष्णमृगो भूत्वागमत्तदा देवा ज्ञात्वा तदीयां त्वचमुत्क्षिप्य जगृहुस्तस्माच्चर्म्मास्तरणमित्यभिप्रायः श्रुतावाम्नातः १ । १ । ४ । १ ॥

काष्ठका है परन्तु (ग्रावा) दृढ होनेके कारण पाषाणकी समान (असि) है।

पाँचवें मन्त्रको पढ़ कर भी × कृष्णाजिन पर उलूखल रक्खा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे उलूखल ! (पृथुबुध्नः) तेरी जड स्थूल है (मूसल लगनेके आघात से हिले नहीं यह उलूखलाभिमानी देवतासे प्रार्थना की जाती है) अतः दृढतामें पाषाण की समान है. (अदित्याः) नीचे बिछाई हुई कृष्णाजिनरूप भूमिकी त्वक्)त्वचा त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जाने अर्थात् अपने अंगके अभिमानसे चेतन करे ॥१४॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि । बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः । स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ।१५।

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं—प्रथम "अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आर्ची उष्णिक् छन्द, हवि देवता और हविका आवपन करनेमें विनियोग है। दूसरे "बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी जगती छन्द, मूसल देवता और मूसलके ग्रहण करनेमें विनियोग है। तीसरे "स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; यजुः मूसल देवता और मूसलको उलूखलमें स्थापन करनेमें विनियोग है। चौथे 'हविष्कृदेहि, हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि" मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, वाग्देवता और हविका संस्कार करने वाले का आह्वान करनेमें विनियोग है।

पहिले मन्त्रको पढ़ कर हवि छोड़नेके निमित्त ओखलीमें डाला जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे हवि ! (जलोंके प्रणयन कालमें मौन हुई यजमानकी वाणी हविके आवपनके समयमें खुलती है अतः) (वाचः) वाणीका (विसर्जनम्) खोलने वाला, (अग्नेः) अग्निका (तनूः) शरीर (असि) है (क्योंकि-हवि अग्निमें डालते ही अग्निरूप होजाता है) (देववीतये) देवताओंकी तृप्तिके लिये (त्वा) तुझको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

दूसरे मन्त्रको पढकर मूसलको हाथमें लिया जाता है; मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे मूसल ! तू (वानस्पत्यः) काष्ठका बना हुआ ग्रावा) पाषाणकी समान दृढ (बृहत्) महान् (असि) है।

× कृष्णाजिन पर उलूखल रखनेमें चौथे और पाँचवें दोनों मन्त्रोंका विकल्प है अर्थात् चाहे चौथेको पढ कर रक्खे और चाहे पाँचवेंको पढ़ कर रक्खे परन्तु "प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु" यह दोनों ही मन्त्रोंमें पढ़ना पड़ता है।

तीसरे मन्त्रको पढ कर मूसल उलूखल (ओखली) में स्थापन किया जाता है, इस मन्त्रका अर्थ यह है, कि—हे मूसल (सः) वह (त्वम्) तू (देवेभ्यः) अग्नि आदि देवताओंके उपकारके निमित्त (इदम्) इस हविको (शमीष्व) भूसी आदिका दूर करके शान्तरूप करो तथा (सुशमि) भूसी दूर होने पर तण्डुलोंके ऊपरकी मलिनता को भी दूर करके (शमीष्व) शान्तरूप करो

चौथे मन्त्रको पढकर अध्वर्यु हविको कूटनेके निमित्त यजमानकी पत्नी वा और जो कोई हो उसको तीन वार पुकार कर बुलावे मन्त्रका अर्थ यह है, कि-(हविष्कृत्) हे हविका संस्कार करने वाले (एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हविका संस्कार करने वाले (एहि आओ (हविष्कृत्) हे हविका संस्कार करने वाले (एहि आओ [तीन वार कहे हुए अर्थको देवता मानते हैं इस कारण तीन वार आह्वान है] १५

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातꣳ संघातं जेष्म । वर्षवृद्धिमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु । परापूत ँ रक्षः परापूता अरातयः । अपहत ँ रक्षः । वायुर्वो विविनक्तु । देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १५ ॥

इस कण्डिकामें सात मंत्र हैं—प्रथम "कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयं संघातं संघातं जैष्म" मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप् छंद वाक् देवता और शम्यासे हषत् उपलको कूटने में विनियोग है। दूसरे "वर्षवृद्धमसि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छंद, शूर्प देवता और शूर्पके ग्रहण में विनियोग है। तीसरे 'प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु" मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी बृहती छंद, हवि देवता और हवि को उलूखलसे बाहर निकाल कर शूर्पमें डालनेमें विनियोग है। चौथे 'परापूत ँ रक्षः परापूता अरातयः' मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी उष्णिक् छंद रक्षो देवता और निष्पवन करने में विनियोग है। पाँचवें "अपहत ँ रक्षः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, रक्षो देवता और भूसीको दूर करनेमें विनियोग है। छठे "वायुर्वो विविनक्त" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी उष्णिक् छन्द, तण्डुलाभिमानी देवता और भूसीमिले तण्डुलोंको पृथक् करनेमें विनियोग है। सातवें "देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साक्षी त्रिष्टुप् छन्द, तण्डुलाभिमानी देवता और तण्डुलोंको पात्रमें रख कर अभिमन्त्रण करनेमें विनियोग है।

भावार्थ-पहिले मंत्रको पढ कर शम्या से दृषद् और उपलको कूटा जाता है‡मंत्र का अर्थ यह है, कि-हे शम्या नामक यज्ञके आयुधके अधिष्ठात्रीदेवता! तुम (कुक्कुटः) कुक्कुट अर्थात् यज्ञ में विघ्न करने वाले असुर कहाँ कहाँ हैं, यह जानने के लिये उनको मारनेके अर्थ सर्वत्र विचरते हो, अथवा असुरोंको भयभीत करनेके निमित्त कुक्कुटकी समान शब्द करनेवाले (मधुजिह्वः) मधुरभाषिणी जिह्वावाले देवताओं के भृत्य (असि) हो, हमको (इषम्) अन्न को और (ऊर्जम्) बलदायक रस को (आवद) बोलो अर्थात् तुम अपना शब्द करके असुरोंको यज्ञ भूमिसे दूर करो जिससे कि-(त्वया) तुम्हारे द्वारा (वयम्) हम (संघातम् संघातम्) प्रत्येक समूहको (जेष्म) जीतें। हम निर्विघ्नताके साथ यज्ञ करें और उस यज्ञके द्वारा वर्षा होकर हमको अन्न और बलकारक रसकी प्राप्ति हो, जिससे कि-हम बलिष्ठ होकर प्रत्येक संग्राम में असुरोंको जीतें और कदापि हमारा पराजय न हो।

दूसरे मन्त्रको पढ़कर शूर्प ग्रहण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे शूर्प! (वर्षवृद्धम्) वर्षाके जलसे बढ़ी हुई वेणुशलाका (तुली) ओं के बने होनेके कारण वर्षवृद्ध (असि) हो (अतः तुम्हारा अभिमानी देवता इस यज्ञमें सहायता देकर तुम्हारी वृद्धिकी कारणरूप वर्षाको यज्ञके द्वारा करावें)।

तीसरे मन्त्रको पढ़कर हविको ओखली मेंसे बाहर निकाल कर शूर्पमें डाला जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे हवि! (वर्षवृद्धम्) शूर्पाभिमानी देवता (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जाने (क्योंकि शूर्प और तुम दोनों वृद्धिको प्राप्त हुए हो)।

चौथे मन्त्रको पढ़कर हवि फटका जाता है अर्थात् भूसी उससे पृथक् करके नीचे गिराई जाती है, मन्त्रका अर्थ वह है कि-(रक्षः) राक्षसोंको (परापूतम्) दूर किया (अरातयः) आलस्यादि शत्रु (परापूताः) निरादर किये गए। (अर्थात् शूर्पसे भूसी को दूर करने पर उसमें मायासे छुपी हुई राक्षस जातिको भी दूर किया ॥

---

‡ मनु राजाका एक वृषभ था, उस वृषभमें असुरोंकी नाश करने वाली वाणी स्थित थी अतः उस वृषभके शब्द करने पर तिस शब्दको सुनते ही असुर मरणको प्राप्त होजाते थे, इस कारण किलात और अकुली नामक असुरयाजकों (असुरोंको यज्ञ कराने वालों) ने मनुके पास जाकर तिस वृषभके द्वारा ही यज्ञ कराया, तब वह वृषभकी असुरघ्नी वाक् मनुकी स्त्रीमें प्रविष्ट होगई तब तो उन असुरयाजकोंने उस स्त्रीके द्वारा भी मनुको यज्ञ कराया, तब वह असुरघ्नीवाक् यज्ञके शास्त्रोंमें प्रविष्ट होगई, अतः असुरोंका तिरस्कार करनेके निमित्त उस असुरघ्नी वाक्को प्रकट करनेकी इच्छासे शम्यासे दृषद् और उपल को कूटा जाता है यह श्रुतका कथन है (शत० १।१।४।१४)

पाँचवें मन्त्र को पढ कर पृथिवी पर गिरी हुई हविको भूसीको उठाकर कूड़ेके स्थान पर डाले, मन्त्रका अर्थ यह है कि- (रक्षः) राक्षसको (अवहतम्) दूर लेजा कर मारा (अर्थात् भूसीमें मायासे स्थित राक्षसों को भी भूसी के साथ हवि से पृथक् किया)।

छठे मन्त्रको पढ़ कर भूसीके चावलों मेंसे विना भूसिकोंको पृथक् करे मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे तण्डुलो ! (वायुः) शूर्पके चलानेसे उठा हुआ वायु (वः) तुम को (विविनक्तु सूक्ष्मकणोंसे पृथक् करे ।

सातवें मन्त्रको पढ कर शूर्पमेंके तंडुलों को किसी पात्रमें डाल कर अभिमन्त्रण करे मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे तण्डुलो ! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि (सुवर्णकी अंगुठी आदि आभूषण युक्त हैं हाथ जिसके अथवा दैत्योंने प्राशित्रके प्रहारसे सविता के हाथ काट दिये थे उनको देवताओं ने हिरण्यमय किया यह बव्हृच कहिय ऋग्वेद के किसी सूक्तकी कथा है इस कारण हिरण्यपाणि) (सविता) सविता (देवः) देव (वः) तुमको, (विविनक्तु) मिलित हैं अङ्गुलियें जिसमें ऐसे हाथसे (प्रतिगृभ्णात्) स्वीकार करे (जिससे कि पात्रमें डालते समय तण्डुल भूमिमें न गिरें) १६

धृष्टिरसि । अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेध । आदेवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳहब्रह्म वनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय १७

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं । प्रथम "धृष्टिरसि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द—उपवेष देवता और पलाश शाखाका उपवेष ग्रहण करनेमें विनियोग है । दूसरे "अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेध" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, अग्निदेवता और अंगारों को पूर्वभाग में स्थित करनेमें विनियोग है । तीसरे "आदेवयजं वह" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी जगती छन्द, अग्नि देवता और अंगारों मेंसे उपवेषसे एक अंगारको अलग करनेमें विनियोग है । चौथे "ध्रुवमसि पृथिवीं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, कपाल देवता और अंगार को कपालसे ढकनेमें विनियोग है ॥

भावार्थ--प्रथम मन्त्रको पढकर उपवेष (पलाशकी शाखाको मूलसे काटकर लिये हुए काष्ठके भाग) को ग्रहण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे उपवेष ! तू (धृष्टिः) धृष्ट [जाज्वल्यमान अंगारों को इधर उधर हटानेवाला] (असि) है [इस यज्ञमें भी तेरा अभिमानी देवता तुझ को अंगारों का इधर उधर हटाने की शक्ति देय] ।

दूसरे मन्त्रको पढकर उपवेषसे गार्हपत्य अग्निमेंसे तीन अंगारोंको पूर्वभागमें अलग करा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-(अग्ने) हे गार्हपत्य अग्ने ! (आमादम्) जिसमें यागकी योग्यता नहीं है ऐसे अपक्वभक्षण करनेवाले (अग्निम्) लौकिक अग्नि [लौकिक अग्नि नामक अपने रूप] को [अपजहि] त्यागो तथा (क्रव्यादम्) शवका दाह करने के समय मांस भक्षण करने वाले चिताग्नि [चिताग्नि नामक अपने रूप] को भी (निःषेध) त्यागो ॥

तीसरे मन्त्रको पढकर उपवेषसे अलग करे हुये अंगारों में से एक अंगार लिया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे अग्ने (देवयजम्) देवताओंके अर्थ याग करने के योग्य तीसरे अग्नि [अपने रूप] को (आवह) हमारे समीपमें प्राप्त करो ॥

चौथे मन्त्रको पढ कर उस अलग करे हुये अंगारको कपालसे ढका जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि-हे कपाल ! तू (ध्रुवम्) स्थिर (असि) है [क्योंकि-अंगारके ऊपर स्थित होकर इधर उधरको चलायमान नहीं होता है] (पृथ्वीम्) पृथ्वीको (दृ॑ह) दृढ कर [जिससे कि—पुरोडाश का पाक करनेके समय तेरे व्यवधानसे भूमिको अग्निके दाहसे शिथिलता न हो अर्थात् जल कर धसक न जाय] और (ब्रह्मवनि) पुरोडाश बनानेके निमित्त ब्राह्मणसे स्वीकार करे हुये (क्षत्रवनि) क्षत्रिय करके स्वीकार करे हुए एवं (सजातवनि) यजमानके सजातियों करके स्वीकार करे हुये (त्वा) तुझको मैं (भ्रातृव्यस्य) असुर और पापों का (वधाय) नाश करनेके निमित्त (उपदधामि) अंगार पर स्थापन करता हूँ १७

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व । धरुणमस्यन्तरिक्षं दृ॑ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृ॑ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि । चितं स्थोर्ध्वचितः । भृगूणामंगिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

इस कण्डिकामें छः मन्त्र हैं—प्रथम "अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी उष्णिक् छन्द, अग्नि देवता और स्थापनमें विनियोग है । दूसरे "धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह ब्रह्मवनित्वा क्षत्रवनि सजात—वन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, कपालदेवता और पूर्वस्थापित कपाल के पश्चिमभागमें द्वितीय कपालके स्थापन करनेमें विनियोग है । तीसरे "धर्त्रमसि

दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप्छंद कपाल देवता और प्रथम कपालके पूर्वभाग में तीसरे कपालको स्थापन करनेमें विनियोग है। चौथे "विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषीत्रिष्टुप्छन्द, कपाल देवता और प्रथम कपालके दक्षिण भागमें चतुर्थ कपालको स्थापन करनेमें विनियोग है। पाँचवें "चितस्थोर्ध्वचितः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, कपाल देवता और दक्षिण एवं उत्तरमें दोर कपाल स्थापन करनेमें विनियोग है। छठे "भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि; आसुरी अनुष्टुप्छंद कपाल देवता और अंगारोंसे कपालोंके छादन करनेमें विनियोग है॥

भावार्थः—प्रथम मन्त्रको पढ़कर सव्य हाथकी अंगुलि करके शून्यमें अंगारको स्थापन कियाजाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे स्थापन करे हुये अंगार रूप अग्ने! (ब्रह्म) हमारे करे हुये प्रौढ़ कर्मको वा ब्राह्मणको (गृभ्णीष्व) ग्रहण करो अर्थात् हमारे ऊपर अनुग्रह करके इस कर्ममें विघ्न करनेवाले राक्षसोंका वध करके इस यज्ञको पूर्ण करो अथवा हे अग्ने! मुझ ब्राह्मणके ऊपर अनुग्रह करो अर्थात् अग्निके विषे लगी हुई मेरी अंगुलिको दृढ करो जिससे दाहजनित पीड़ा न हो॥

दूसरे मन्त्रको पढ कर पूर्व स्थापित कपालके पश्चिममें दूसरा कपाल स्थापन किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे दूसरे कपालके अभिमानी देव! तुम (धरुणम्) पुरोड़ाश धारण करने वाले (असि) हो, इस कारण (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षको (दृंह) दृढ़ करो, [जिससे कि पुरोड़ाशके पाकसे उत्पन्न हुई ज्वाला करके अन्तरिक्षमें उपद्रव न हो यद्यपि यह कपाल, ज्वाला और अन्तरिक्षके बीच में व्यवधान करने वाला नहीं है तथापि अन्तरिक्षकी दृढताके निमित्त कपालाभिमानी देवताकी प्रार्थना कीजाती है] हे कपाल! पुरोड़ाशसिद्धिके लिये (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों करके स्वीकार करे हुये (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके स्वीकार करे हुये और (सजातवनि) यजमानके सजातियों करके स्वीकार करे हुये (त्वा) तुमको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पाप का (वधाय) बध होनेके लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूँ।

तीसरे मन्त्रको पढ कर पूर्व स्थापित कपालके पूर्वमें तृतीयकपाल स्थापन किया जाता है; मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे तृतीय कपालाभिमानी देव! तुम धर्त्रम् पुरोड़ाश को धारण करने वाले (असि) हो, तुम (दिवम्) द्युलोकको (दृंह) दृढ़ करो, [अर्थात् यज्ञसमाप्तिमें साधन होकर द्युलोकका वर्षा करने वाला करो] पुरोड़ाश सिद्धिके निमित्त (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणोंकरके प्रार्थना करे हुये (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके

प्रार्थना करे हुये तथा (सजातवनि) यजमानके सजातियों करके प्रार्थना करे हुये (त्वा) तुझको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पाप का वधाय) वध होनेके लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूँ।

चौथे मन्त्रको पढकर पूर्वस्थापित कपालके दक्षिणमें चतुर्थ कपालको स्थापन किया जाता है. मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे चतुर्थ कपाल! (विश्वाभ्यः) सकल (आशाभ्यः) दिशाओंकी दृढताके लिये तुझको (उपदधामि) स्थापन करता हूँ [इस प्रकार तीन कपालोंको स्थापन करनेसे यजमान त्रिलोकीको जीतता है और चौथेसे दिशाओं को जीतता है,अर्थात् उन कपालोंमेंका पुरोडाश त्रिलोकीरूप होकर देवताओंको तृप्त करता है] आग्नेयपुरोडाश अष्टाकपाल [आठ कपालोंमें पकाया हुआ]होता है,उनमें से चार कपाल तो उपर्युक्त मन्त्रोंसे स्थापन किये गये, शेष चार कपालों में से दो दो पाँचवें मन्त्रको पढकर दक्षिण और उत्तर में स्थापन किये जाते हैं, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे कपालविशेषों ! तुम (चितः) प्रथम कपालका तथा (ऊर्ध्वचितः) ऊर्ध्व स्थापित द्वितीयादि कपालका उपकार करने वाले (स्थ) हो।

षष्ठ मन्त्रको पढकर अंगारोंसे कपालों का आच्छादन किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे कपालों ! तुम (भृगूणाम्) भृगु और (अंगिरसाम्) अंगिरा नामक देवर्षियोंके (तपसा) तपोरूप अग्नि से (तप्यध्वम्) तप्त होवो [अर्थात् तुम्हारे अभिमानी देव तुम्हारे विषें भृगु और अंगिरा नामक देवर्षियोंका तपोरूप तेज प्राप्त करें] ॥ १८ ॥

शर्मासि। अवधूतꣳ रक्षोवधूता अरातयः। अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु। दिवः स्कम्भनीरसि। धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं—प्रथम "शर्म्मासि" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिनके ग्रहणमें विनियोग है। दूसरे "अवधूत ँ रक्षोऽवधूता अरातयः" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी त्रिष्टुप्छन्द, रक्षो देवता और राक्षस तथा शत्रुओंके अपाकरणमें विनियोग है। तीसरे "अदित्यास्त्वगसि प्रतित्वादितिर्वेत्तु" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन को बिछानेमें विनियोग है। चौथे "धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरीगायत्री

छन्द, दृष्ट्यभिमानी देवता और मृग चर्म पर शिलाको स्थापन करनेमें विनियोग है। पाँचवें "दिवस्कम्भनीरसि" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी उष्णिक् छन्द, शम्या देवता और शिलाके पश्चाद्भागमें नीचेसे शम्या रखनेमें विनियोग है। छठे 'धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु' मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, उपल देवता और ऊपरकी शिलाको ग्रहण करनेमें विनियोग है।

भावार्थ—प्रथम मन्त्रको पढ़कर मृगचर्म ग्रहण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे मृगचर्मके अधिष्ठातृ देव! तुम (शर्म) सुखके हेतु (असि) हो।

दूसरे मन्त्रको पढ़ कर राक्षसादि दूर किये जाते हैं, मन्त्रका अर्थ यह है कि (रक्षः) राक्षस जाति (अपहतम्) दूर हुई (अरातयः) आलस्यादि शत्रु (अवधूताः) निरादर किये गये।

तीसरे मन्त्रको पढ़कर मृगचर्म विछाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे मृगचर्म तुम (आदित्याः) भूमि देवताके (त्वक्) त्वचा रूप (असि) हो, (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुमको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जाने।

चौथे मन्त्रको पढकर मृगचर्मके ऊपर शिला विछाई जाती है मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे शिला! तुम (पर्वती) पर्वतकी पुत्री (असि) हो [क्योंकि पर्वतसे उत्पन्न हुई हो] (धिषणाः) कर्मको देने वाली [साधन होकर यज्ञरूप कर्मका फल देने वाली] (असि) हो, (अदित्याः) भूमिकी (त्वक्) त्वचा [मृगचर्म] (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) स्थितिकी आज्ञादेय।

पाँचवें मन्त्रको पढकर शिलाके पश्चिमकी ओर नीचे शम्याको स्थापन किया जाता है, मन्त्रका अर्थका अर्थ यह है कि-हे शम्याके अधिष्ठातृ देव! तुम (दिवः) स्वर्गलोकको (स्तंभनी) स्तम्भन करने वाली (असि) हो।

छठे मन्त्रको पढ कर शिला पर उपल [ऊपरका छोटा पत्थर] रक्खा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे ऊपरकी शिला! तू (पार्वतेयी) पेषणके व्यापारको धारण करने वाली और नीचेकी शिलाकी बालक रूप (असि) है, (पर्वती) माताकी समान नीचेकी शिला (त्वा) तुझका (प्रतिवेत्तु) पुत्रीभावसे जाने ॥ १९ ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान्। प्राणाय त्वा। उदानाय त्वा। व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥ २० ॥

इस कण्डिकामें सात मन्त्र हैं-प्रथम "धान्यमसि धिनुहि देवान्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी बृहती छन्द, हविर्देवता और तण्डुलोंको शिलापर स्थापन करनेमें विनियोग है। दूसरे "प्राणाय त्वा" तीसरे "उदानाय त्वा" एवं चौथे "व्यानाय त्वा" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दूसरे चौथे मन्त्रका दैवी बृहती छंद तथा तीसरेका दैवी पंक्ति छन्द, सबका हविर्देवता और तण्डुलोंको पीसनेमें विनियोग है। पाँचवें "दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,आर्षी त्रिष्टुप्छन्द, हविर्देवता और मृगचर्म पर पिसे तण्डुलोंको गिरानेमें विनियोग है। छठे "चक्षुषे त्वा मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी बृहती छन्द, हविर्देवता और पिष्ट तंडुलों का अवलोकन करनेमें विनियोग है। सातवें "महीनां पयोऽसि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि' दैवी त्रिष्टुप्छन्द, आज्यदेवता और अन्यपात्रमेंसे घृतको हविमें डालनेमें विनियोग है॥

भावार्थ-प्रथम मन्त्रको पढ कर शिला पर चावल रक्खे जाते हैं, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे हवि! (धान्यम्) तृप्त करने वाला होने के कारण तू धान्य (असि) है सो तू इस यज्ञमें (देवान्) अग्न्यादि देवताओंको (धिनुहि) तृप्त कर [जिससे यज्ञ सिद्ध होकर यजमानकी अभीष्टसिद्धि हो]।

दूसरे तीसरे और चौथे मन्त्रको पढ कर तण्डुलोंको पीसा जाता है, मन्त्रोंका अर्थ यह है कि-हे तण्डुलों ! मैं (त्वा) तुमको (प्राणाय) सर्वदा अधिकता के साथ मुखमें चेष्टा करनेवाले प्राण [श्वास] वायुके देनेके लिये पीसता हूँ, (उदानाय) ऊपरको चेष्टा करनेवाले उदानवायुके देने के लिये (त्वा) तुमको, पीसता हूँ तथा (व्यानाय) सब शरीरमें व्यापक होकर चेष्टा करने वाले बलके हेतु व्यान वायुके देनेके लिये (त्वा) तुमको पीसता हूँ [देवताओंका हवि सजीव होता है इस कारण यह हवि सजीव किया गया]।

पाँचवें मन्त्रको पढ़ कर शिला परका पिसा हुआ तण्डुल रूप हवि नीचे बिछी हुई कृष्णाजिन पर गिराया जाता है; मंत्र का अर्थ यह है, कि-हे हवि ! (आयुषे) निरन्तर यज्ञादिकर्म परम्पराके होनेके निमित्त यजमानकी आयुको बढ़ानेकी इच्छा से (दीर्घाम्) अविच्छिन्न (प्रसितिम्) कर्मसन्ततिको (धाम्) धारण करता हूँ [अथवा पूर्वके तीन मन्त्रोंको सजीव किया और इस मंत्रसे हविको आयु दिया जाता है, अर्थ ऐसा होगा कि—हे हवि . तेरी आयुकी वृद्धि करनेके लिये तुझको दीर्घ कृष्णाजिन पर स्थापन करता हूँ,इस वेदोक्त कर्मसे कृष्णाजिनका अभिमानी देवता आयु देय]। हे हवि ! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि (सविता) सविता (देवः) देवता (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र

(पाणिना) हस्तसे प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करे छठे "चक्षुषे त्वा" मन्त्रको पढ़कर उस पिसे हुए हविको देखा जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (चक्षुषे) यजमानके चक्षुः इन्द्रियका प्रकाश अधिक होनेके लिये अथवा हविको सजीव करने पर चक्षुरादिकी अपेक्षा होती है अतः चक्षुः-शक्तिके देनेके निमित्त (त्वा) तुमको (पश्यामि) देखता हूँ।

सातवें मन्त्रको पढ़ कर पिसे हुए हवि में दूसरा पुरुष घृत डालता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे आज्य ! तू दुग्धसे उत्पन्न होनेके कारण (महीनाम् गौओंका (पयः) दुग्धरूप (असि) है ॥ २० ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । संवपामि । समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ संमधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, प्रथम "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता पिष्टको पवित्रायुक्त पात्रीके विषैं डालनेमें विनियोग है। दूसरे "संवपामि" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, हविर्देवता और पिष्टको पात्रीमें डालनेमें विनियोग है, तीसरे "समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ संमधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, आपोदेवता और पिष्टमें जल मिलानेमें विनियोग है।

प्रथम तथा दूसरे मन्त्रको पढ़कर कुशोंके पवित्रे युक्त पात्रमें पिसा हुआ तंडुलोंका हवि डाला जाता है दोनों मन्त्रोंका अर्थ यह है कि - सवितुः) सबके प्रेरक सविता (देवस्य) देवताके (प्रसवे) प्रेरणा करने पर (अश्विनोः) अश्विनीकुमारकी बाहुओं की करी है भावना जिनमें ऐसे (बाहुभ्यां) बाहुओं करके और (पूष्णः) पूषा देवता के हस्तोंकी करी है भावना जिनमें ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके हे हवि ! (त्वा) तुझको (संवपामि) विधिपूर्वक भली प्रकार पात्रमें डालता हूँ [सविता देव तुझ को यज्ञ पूर्ण करनेकी शक्ति देय]।

तीसरे मन्त्रको पढ़ कर अग्नीध्र पिष्ट हविमें डालनेके उपसर्जनी नामक जलको लावे और अध्वर्यु पवित्राओं करके उस जलको पात्रीमें लेय अर्थात् पवित्रोंके ऊपर होकर जलकी धारा पात्रमें गिरावे, मन्त्र का अर्थ यह है कि (आपः) जल (ओषधीभिः) पिष्ट तण्डुल रूप औषधियोंसे (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिलें, (ओषधयः) पिष्ट तण्डुल (रसेन) जल करके

(सम्पृच्यन्ताम्) मिलें (रेवतीः) जल (जगतीभिः) पिष्ट तण्डुलोंसे (संपृच्यन्ताम्) मिलें और (मधुमतीः) माधुर्ययुक्त जल (मधुमतीभिः) मधुर ओषधियोंसे (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिलें २१

जनयत्यै त्वा संयौमि । इदमग्नेः । इदमग्नीषोमयोः । इषे त्वा । घर्मोऽसि विश्वायुः । उरुप्रथा उरु प्रस्थस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् । अग्निष्टे त्वचं माहिꣳसीत् । देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥ २२ ॥

इस कण्डिकामें आठ मन्त्र हैं, प्रथम "जनयत्यै त्वा संयौमि" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द; हविर्देवता और जलपिष्टके संमिश्रण में विनियोग है। दूसरे "इदमग्नेः" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, हविर्देवता और हविके पिंडको स्पर्श करनेमें विनियोग है। तीसरे "इदमग्नीषोमयोः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी जगती छन्द, हविर्देवता और हविके पिंडको स्पर्श करनेमें विनियोग है। चौथे "इषे त्वा" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी अनुष्टुप् छन्द, आज्य देवता और घृतको तपानेमें विनियोग है। पाँचवें "घर्मोऽसि विश्वायुः" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशको अग्नि पर चढ़ानेमें विनियोग है। छठे "उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि आर्षी गायत्री छंद पुरोडाश देवता और पुरोडाशके कपालमें फैलानेमें विनियोग है। सातवें "अग्निष्टे त्वचं माहिꣳसीत्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्य गायत्री छन्द; पुरोडाश देवता और पुरोडाशके ऊपर जलस्पर्श करनेमें विनियोग है। आठवें "देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशको पकानेमें विनियोग है।

प्रथम मन्त्रको पढ़कर जल और तंडुलों के पिष्टको मिलाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे जल और पिष्ट! (त्वा) तुम को (जनयत्यै) पुरोडाश बनानेके निमित्त अथवा यजमानके संतति उत्पन्न होनेके निमित्त (संयौमि) मिलाता हूँ क्योंकि जैसे जल और पिष्टका मेलन होता है तिसी प्रकार शुक्र शोणित (वीर्यरज) के मेलनसे यजमानके संततिकी उत्पत्ति हो।

दूसरे मंत्रको पढ़कर मिलाए हुए पिष्टके अवदान (छेदन) के चिन्हयुक्त दो पिण्ड करके अलग अलग स्थापन कर एक

को स्पर्श करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिंड (अग्नेः) अग्नि देवता का है [अतः इसको अग्नि ग्रहण करके यजमानके ऊपर प्रसन्न हो]।

तीसरे मन्त्रको पढ़कर पूर्वकी समान दूसरे पिंड को स्पर्श करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-(इदम्) यह पिंड (अग्नीषोमयोः) अग्नीषोम देवताका, है, उक्त देवता इस को ग्रहण करके यजमानके ऊपर प्रसन्न हों

चौथे मन्त्रको पढ़कर पिघलानेकेलिये घृतका पात्र अग्निपर तपाया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि-हे घृत (इषे) इच्छित वृष्टिके अर्थ (त्वा) तुझको, तपाता हूँ, [क्योंकि तेरे द्वारा पुराडोश तयार होने पर उससे यज्ञ होकर वृष्टि होगी]।

पांचवें मंत्रको पढकर पुराडोश अग्नि पर चढ़ाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे पुराडोश ! तू (घर्मः) दीप्यमान यज्ञ का अंश (विश्वायुः) यजमानको पूर्ण आयु देनेवाला (असि) है ।

छठे मन्त्रको पढ़ कर पुराडोश सब कपालोंमें रखनेके लिये फैलाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे पुरोडाश ! तू स्वभावसे ही (उरुप्रथाः) विस्तार के साथ फैलने वाला है । (उरु) फैलकर (प्रथस्व) प्रख्यात हो । और (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञपति यजमान (उरु) बहुतसे पुत्रपशु आदिको प्राप्त होकर (पृथताम्) प्रसिद्ध हो

सातवें मन्त्र को पढ़कर पुराडोश क ऊपर जल छिड़का जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे पुराडोश ! (अग्निः, पकाता हुआ अग्नि (ते) तेरे (त्वचम्) त्वचारूप ऊपरके भागको (माहिंसीत्) जला कर वा काला करके नष्ट न करे ।

आठवें मन्त्रको पढ़कर पुरोडाश पकाया जाता है,मंत्रका अर्थ यह है कि हे पुरोडाश ! (सविता) सविता (देवः) देवता (वर्षिष्ठे) बड़े वेगके साथ बड़ी ज्वालाओंसे प्रज्वलित होते हुए राक्षसोंके नाशक (नाके) स्वर्गके नाकनामक अग्निमें (त्वा) तुझको (अधिश्रपयतु) पक्व करे ॥ २२ ॥

मा भेर्मा संविक्थाः । अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा । द्विताय त्वा एकताय त्वा ॥ २३ ॥

इस कण्डिकामें पाँच मन्त्र हैं, प्रथम 'माभेर्मासंविक्थाः' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छंद, पुरोडाश देवता और पुरोडाशको स्पर्श करनेमें विनियोग है । दूसरे "अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्षी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और अङ्गारोंके द्वारा दबा कर भली प्रकार पक्व करनेमें विनियोग है तीसरे "त्रिताय त्वा" मन्त्रका प्राजापत्य

मेष्ठी ऋषि, दैवी बृहतीछन्द, त्रित देवता पात्र और अंगुलियोंके प्रक्षालनके जलको औंधानेमें विनियोग है। चौथे 'द्वितीय त्वा' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवीबृहती छन्द, द्वित देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है। पाँचवें "एकताय त्वा" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, एकत देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है।

प्रथम मन्त्रको पढकर, पुरोडाश पका है या नहीं यह जाननेके निमित्त स्पर्श करा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे पुरोडाश (माभेः) भयभीत मत हो, (मा संव्यथाः) चलायमान मत हो।

दूसरे मन्त्रको पढ कर पके हुए पुरोडाशको अङ्गारोंसे ढक कर पकाया जाता है मन्त्रका अर्थ यह है कि-(यज्ञः यज्ञसाधक पुरोडाश (अतमेरुः) ऊपर भस्म जमजाने की मलिनतारूप ग्लानिरहित हो (यजमानस्य) यजमानकी (प्रजा) पुत्रपौत्रादि सन्तति (अतमेरुः) ग्लानिरहित (भूयात्) हो, अर्थात् यजमानकी सन्ततिको कदापि दुःख न हो।

तीसरे चौथे और पाँचवें मन्त्रको पढ कर पिष्टलिप्तपात्र तथा अँगुलियोंके धोवनका जल पात्रमें तपाकर गार्हपत्य अग्निके ऊपर औंधावे, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे पात्र और अँगुलियोंके प्रक्षालनके जल! (त्रिताय) त्रित * नामक देवताके अर्थ (त्वा) तुझको (द्विताय) द्वित नामक देवताके अर्थ (त्वा) तुझको और (एकताय) एकतनामक देवताके अर्थ (त्वा) तुझको त्यागता हूँ॥ २३॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, प्रथम देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता और स्फ्यको ग्रहण करनेमें विनियोग है। दूसरे "आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः"

* पूर्वकालमें किसी कारणसे भयभीत हुआ अग्नि देवता जलमें प्रवेश कर गया तदनन्तर देवताओंने जान कर ग्रहण किया, उस समय अग्निने अपने वीर्यको जलमें त्यागा, उससे त्रित, द्वित और एकत नामक व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने देवताओंके साथ विचरते हुए, यज्ञमें पात्र और अँगुलियोंके प्रक्षालनका जलरूप भाग पाया, यह कथा शतपथ १।२ ३।१ में लिखी है।

मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, स्फय देवता और पूर्वमन्त्रोक्त विनियोग है। "इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः वायुरसि तिग्मतेजाः द्विषतो वधः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या जगती छन्द, स्फय देवता और पवित्र सहित स्फयको सव्य हाथमें लेकर दक्षिण हस्तसे स्पर्श करते हुए संहिता—स्वरसे इस मन्त्रका जप करनेमें विनियोग है।

प्रथम और द्वितीय मन्त्रको पढ कर स्फय [खड्गाकार खोदने आदि के लिये यज्ञका कुदाल—वा फावड़ा] को ग्रहण किया जाता है, दोनों मन्त्रोंका अर्थ यह है कि-हे स्फय ! (सवितुः सविता (देवस्य) देवताकी (प्रसवे) प्रेरणा होने पर (अश्विभ्याम्) अश्विनीकुमारोंके (बाहुभ्याम्) बाहुओंकी करी है भावना जिनमें ऐसे बाहुओंसे और (पूष्णः) पूषा देवताके (हस्ताभ्याम्) हस्तोंकी करी है भावना जिनमें ऐसे हस्तोंसे (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (अध्वरकृतम्) वेदि खोदने आदिके द्वारा यज्ञके साधन (त्वा) तुझको (आददे) ग्रहण करता हूँ।

तीसरे मन्त्रको संहिता स्वरसे जपते हुए स्फयको वाम हाथमें लेकर दाहिने हाथ से स्पर्श किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे स्फय ! तू (सहस्रभृष्टिः) कर्म द्वेषी सहस्रों असुरोंका नाश करने वाला, (शततेजाः) शतशः देदीप्यमान (इन्द्रस्य) इन्द्रकी दक्षिणः दक्षिण (बाहुः) भुजाकी समान (असि, है तथा (वायुः) वायुकी समान तिग्मतेजाः) तीव्रतेज अर्थात् जिस प्रकार वायु अग्निको प्रदीप्त करके तीव्र ज्वालाको उत्पन्न करता हुआ तीव्रतेज होता है तिसी प्रकार तू स्तम्बके छेदनरूप कर्मको करता हुआ तीव्रतेज कहने योग्य और (द्विषतः) शत्रुका (वधः) हनन करने वाला (असि) है॥ २४॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं माहिꣳसिषम्। व्रजं गच्छ गोष्ठानम्। वर्षतु ते द्यौः बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥ २५॥

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं, प्रथम "पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं माहिꣳसिषम्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, वेदि देवता और तृणोंको हटाकर भूमिको स्फयसे खोदनेमें विनियोग है। दूसरे व्रजं गच्छ गोष्ठानम्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी जगती छन्द, पुरीष देवता और खोदी हुई मृत्तिकाको

ग्रहण करनेमें विनियोग है। तीसरे "वर्षतु ते द्यौः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द वेदि देवता और वेदीको अवलोकन करनेमें विनियोग है। चौथे 'बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याँ शतेन पाशैर्योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः सविता देवता और खोदी हुई मृत्तिकाको उत्कर (घूरा) स्थानमें डालनेमें विनियोग है।

प्रथम मन्त्रको पढकर तृणोंको हटा कर भूमि खोदी जाती है, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-(देवयजनि) देवताओंके यज्ञ करने के योग्य (पृथिवि) हे पृथिवी ! मैं (ते) तेरी (ओषध्याः) तृणरूप औषधि की (मूलम्) मूलको (माहिंसिषम्) नष्ट नहीं करता हूँ, (किन्तु यज्ञके निमित्त खोदताहूँ)

दूसरे मन्त्रको पढ कर पुरीष [कुदाल से खोदने पर उत्पन्न हुई मृत्तिका] को ग्रहण किया जाता है मन्त्रका अर्थ यह है; कि-हे खुदी हुई मृत्तिका ! तू (गोष्ठानम्) जहाँ इस समय गौएँ स्थित हैं ऐसी (व्रजम्) गोशालाको (गच्छ) जा।

तीसरे मन्त्रको पढकर वेदिको [ठीक-हुई या नहीं यह जाननेके लिये] देखा जाता है मन्त्रका अर्थ यह है कि हे वेदी ! (ते) तेरे लिये (द्यौः) द्युलोकका अभिमानी देवता (वर्षतु) जलकी वर्षा करे [जिससे खोदनेसे होनेवाले दुःखकी शांति हो]।

चौथे मन्त्रको पढ कर उत्कर (कूडा डालनेके स्थान] पर कुदाल से खोदी हुई मृत्तिका डाली जाती है, मन्त्रका अर्थ यह है कि— सवितः, हे सविता (देव) देवता (यः) जो (अस्मान्) हमारे ऊपर (द्वेष्टि) द्वेषदृष्टि रखता है (च) और (यम्) जिसके प्रति (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेषदृष्टि रखते हैं (तम्) इस दोनों प्रकारके हमारे शत्रु को (परमस्याम्) अन्तिम (पृथिव्याम्) पृथिवीके विषें अर्थात् जहाँ भूमिके अंतिम स्थानमें अन्धतामिस्रनरक है तहाँ (शतेन) सैंकडों (पाशैः) पाशोंसे (बधान) बाँधो और (अत) उस अन्धतामिस्र नरकमेंसे (मामौक्) कदापि मत छोडो ॥ २५ ॥

अपारुं पृथिव्यै देवयजनाद्ध्यासम् । व्रजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्ततो मामौक् । अररो दिवं मापप्तः । द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् । व्रजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मामौक् ॥ २६ ॥

इस कण्डिका में नौ मन्त्र हैं—प्रथम "अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद् वध्यासम्" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, असुर देवता और उत्कर स्थानमें द्वितीयवार मृत्तिका डालनेमें विनियोग है। द्वितीय "व्रजमित्यादि" तृतीय "वर्षत्वित्यादि" और चतुर्थ "वधानेत्यादि" मन्त्र इनके ऋषि इत्यादि पच्चीसवीं कण्डिकाकी समान जानने। पाँचवें "अररो दिवं मापप्तः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः असुर देवता और उत्करके अभिमुख हाथोंको रखनेमें विनियोग है। छठे "द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन्" मंत्र का प्रा० प० ऋषि, यजुः, असुर देवता और तृतीय वार मृत्तिकाको उत्कर स्थानमें डालनेमें विनियोग है। सप्तम अष्टम और नवम मन्त्रका ऋषि- छन्दादि पच्चीसवीं कण्डिकाकी समान जानना।

प्रथम मन्त्रको पढ़ कर द्वितीय वार, खोदी हुई मृत्तिकाको ग्रहण कर उत्कर स्थानमें डाले, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(पृथिव्यै) पृथिवीके (देवयजनात्) देवयजननामके वेदिके स्थानसे (अररुम्) अररु नामक असुरको (अपवध्यासम्) दूर लेजाकर मारता हूँ।

[द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ मन्त्रका कार्य और भावार्थ पूर्व अर्थात् पच्चीसवीं कण्डिकाकी समान जानना]

पाँचवें मन्त्रको पढ़कर उत्करके अभिमुख हाथ रखे जाते हैं मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे अररुनामक असुर! (दिवम्) यज्ञ के फलरूप द्युलोकको (मा पप्तः) तू मत प्राप्त हो।

छठे मंत्रको पढ़कर तृतीय वार मृत्तिका को ग्रहण कर उत्कर स्थानमें डाला जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे वेदिके देवता! (ते) पृथिवीरूप जो तू तिसका (द्रप्सः) उपजीव्य रस अर्थात् भोग (द्याम्) स्वर्गलोकको (मास्कन्) मत जाओ।

[सातवें आठवें और नवें मन्त्रोंका कार्य और भावार्थ पच्चीसवीं कण्डिकाकी समान जानना]॥ २६॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि। स्योना चासि सुषदा चासि। ऊर्जस्वती चासि पयस्वती च॥ २७॥

इस कण्डिकामें छः मन्त्र हैं—प्रथम 'गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि' मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द विष्णुदेवता और वेदि खोदने से पहिले स्फ्यसे रेखा खेंचनेमें विनियोग है। द्वितीय "त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परि-

गृह्णामि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि आसुरी अनुष्टुप्छन्द, विष्णु देवता और स्फ्यसे द्वितीय रेखा खेंचनेमें विनियोग है। तृतीय "जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि आसुरी अनुष्टुप्छन्द, विष्णु देवता और स्फ्यसे तीसरी रेखा करनेमें विनियोग है। चौथे 'सुक्षमा चासि शिवा चासि' मन्त्रका प्राजापत्य पर० ऋषि; प्राजापत्या गायत्री छन्द वेदि देवता और वेदि खोदनेके पश्चात् स्फ्यसे रेखा करनेमें विनियोग है। पाँचवें 'स्योना चासि सुषदा चासि' मन्त्रका प्रा० परमेष्ठी ऋषि, आसुरी जगती छन्द वेदि देवता और द्वितीय रेखा करनेमें विनियोग है। छठे 'ऊर्जस्वती चासि पयस्वती च' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी पंक्ति छन्द वेदि देवता और तृतीय रेखा करनेमें विनियोग है।

जिस स्थानसे अररु नामक असुरको निकाला तहाँ वेदीके परिमाणका निश्चय करनेके लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर इन तीन दिशाओंमें स्फ्यसे रेखा करी जाती है, तिस मेंसे प्रथम मन्त्रको पढ़कर दक्षिणमें द्वितीय को पढ़ कर पश्चिममें और तृतीय मन्त्रको पढकर उत्तरमें रेखा करे इस कर्मका नाम पूर्वपरिग्रह है तीनों मन्त्रोंका अर्थ यह है कि-हे यज्ञ! गायत्री त्रिष्टुप् और जगती छन्दरूपसे भावना करे हुए स्फ्यके द्वारा (त्वा) तुझको (गायत्रेण) गायत्रीके (छन्दसा) छन्दोरूप स्फ्य करके (परिगृह्णामि) परिग्रहण करता हूँ (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप्के (छन्दसा) छन्दोरूप स्फ्य करके (त्वा) तुझको (परिगृह्णामि) परिग्रहण करता हूँ (जागतेन) जगतीके (छन्दसा) छन्दोरूप स्फ्य करके (त्वा) तुझको (परिगृह्णामि) परिग्रहण करता हूँ, [तीनों छंदों के देवता तीनों दिशाओंमें तेरी असुरोंसे रक्षा करेंगे और पूर्वदिशामें आहवनीय अग्नि ही रक्षा करेगा] चौथे पाँचवें और छठे मन्त्रको पढ़ कर उत्तर परिग्रह किया जाता है अर्थात् पहिले जो पूर्व परिग्रह कर्म कहा वह वेदि खोदनेसे पूर्व किया जाता है और वेदी खोदनेके अनंतर चतुर्थ आदि तीनों मन्त्रोंको पढकर फिर दक्षिण आदि तीनों दिशाओंमें स्फ्यसे तीन रेखा करी जाती हैं, इसका नाम उत्तरपरिग्रह कर्म है। मन्त्रोंका अर्थ यह है कि-हे वेदी! तुम ईश्वरके तेजसे युक्त होनेके कारण (सुक्षमा) सुन्दर (असि) हो (च) और उग्र असुरके निकल जाने तथा यज्ञपुरुष का निवासस्थान होनेसे (शिवा) शान्तस्वरूप (च) भी (असि , हो च) और (स्योना) सुखरूप (असि) हो (च) और (सुषदा) देवताओंकी सुन्दर स्थिति की स्थान (च) भी (असि) हो (ऊर्जस्वती) अन्न वाली (असि) हो (च) और (पयस्वती) दध्यादिके मूलभूत दुग्ध की खान (च) भी हो ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय । द्विषतो वधोऽसिः ॥ २८ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं; प्रथम 'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुं यामैरयन् चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽनुदिश्य यजन्ते' मंत्र का अवशंस ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, चन्द्रमा देवता और वेदीको समान तथा शुद्ध करने में विनियोग है। दूसरे 'प्रोक्षणीरासादय' मन्त्रका अवशंस ऋषि याजुषी उष्णिक् छन्द, प्रैषदेवता और प्रोक्षणीपात्रका स्थापन करनेमें विनियोग है। तीसरे "द्विषतो वधोऽसि" मन्त्रका अवशंस ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द अभिचारिक देवता और स्फ्य का ऊपरका उठानेमें विनियोग है। प्रथम मन्त्रको पढकर वेदीको लोष्ट्रादि निकाल कर समान और शुद्ध किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(विरप्शिन्) हे परमेश्वर विष्णो ! तुम प्रार्थनाको (शृणु) सुनो, और अनुग्रह करो ❀ (विसृपः) नाना योधायुक्त (क्रूरस्य) युद्धके (पुरा) प्रथम देवताओंने (जीवदानुम्) जीवोंको धारण करनेवाली सारभूत (याम् जिस (पृथिवीम्) पृथिवीके आत्माको (उदादाय) ऊँचा उठाकर (स्वधाभिः) वेदों सहित (चन्द्रमसि) चन्द्रमामें (ऐरयन्) स्थापन कर दिया था (ताम्) उस ही चन्द्रमामें स्थित पृथिवीके आत्माको (अनुदिश्य) शास्त्रोपदेशके द्वारा सिद्ध करके अर्थात् वही सारभूत भूमि इस वेदीमें विद्यमान है ऐसी भावना करके (धीरासः) धीर-पुरुष (यजन्ते) यज्ञ करते हैं।

दूसरे मन्त्रको पढ़ कर प्रोक्षणीको लाया जाता है, अध्वर्यु कहता है, हे अग्नीध्र ! (प्रोक्षणीः) प्रोक्षण करनेके जलोंको (आसादय) वेदी पर स्थापन करो।

तीसरे मन्त्रको पढकर स्फ्यको ऊँचा करके उत्तर स्थानमें डाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि-हे स्फ्य ! तू (द्विषतः) यज्ञमें विघ्न करने वाले शत्रुओंका (वधः) वध करने वाला (असि) है ॥ २८ ॥

❀ किसी समय असुरोंके साथ देवताओंका युद्ध हुआ उस समय देवताओंने आपस में सम्मति करी कि—इस भूमिका जो देवयजन नाम उत्तम स्थल है उसको चन्द्रमामें स्थापन करके युद्ध करें, यदि हमारा पराजय होजायगा तो फिर भी यज्ञ करके असुरोंको जीत लेंगे, यहसम्मति करके पृथिवीके सारभूत देवयजन भागको चन्द्रमामें स्थापित किया अब भी वह कृष्णवर्ण दीखता है। (शत० १ । २ । ५ । १८)

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः । निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद् वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि । प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः । निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनि शितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि

इस कण्डिकामें छः मन्त्र हैं, प्रथम "प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः" और दूसरे "निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः" मन्त्रका ऋषि आदि सातवीं कण्डिकाके अनुसार जानना केवल विनियोगमें अन्तर है अर्थात् इसका स्रुवको तपानेमें विनियोग है। तीसरे "अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या बृहती छंद स्रुवदेवता और स्रुवका मार्जन करनेमें विनियोग है। चौथे "प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः" और पाँचवें "निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः" मन्त्रका ऋषि आदि ७ वीं कण्डिकाके समान है और स्रुच्को तपा कर अध्वर्युको समर्पण करनेमें विनियोग है। छठे "अनिशितेत्यादि" मन्त्रका प्रा० परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या परमेष्ठी बृहती छन्द, स्रुच् देवता और स्रुच्का मार्जन करनेमें विनियोग है। प्रथम वा द्वितीय मन्त्रको पढकर स्रुव [खैरके काठका हस्त की समान यज्ञका पात्र] अग्नि पर तपाया जाता है, इन दोनों मन्त्रोंका अर्थ ७ वीं कण्डिकाके १ । २ मन्त्रके अर्थकी समान जानना। तीसरे मन्त्रको पढ कर स्रुवका सम्मार्जन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि— हे स्रुव ! तुम हमारे विषयमें (अनिशितः) तीक्ष्णतारहित, उपद्रव न करनेवाले (असि) हो (सपत्नजित्) हमारे शत्रुओंका वध करते हो, इस कारण हमारे हितैषी होने से (वाजिनम्) यज्ञके द्वारा अन्नसे युक्त, अथवा यज्ञनामक अन्नके योग्य तुमको (वाजेध्यायै) यज्ञनामक अन्नके प्रकाश के अर्थ (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार शोधता हूँ, क्योंकि मार्जन करे हुए स्रुवमें आज्यके ग्रहण करने और होम करनेसे अग्निदेवता प्रज्वलित होता है। उसमें आहुति देनेसे तिस आहुतिका फलरूप अन्न प्रकाशित [उत्पन्न होता है]। छठे मन्त्रको पढकर सम्मार्जन करे हुए जुहू, उपभृत और ध्रुव नामक तीन स्रुच् [वटके पत्रकी समान आकृति वाला बाहुको बराबर विङ्कत काष्ठका यज्ञका पात्र] का मार्जन करके प्रत्येकको चौथे और पाँचवें मंत्रको पढ २ कर अग्नि पर तप्त कर २ के वेदीमें स्थापन करनेके निमित्त अध्वर्युको देय चौथे पाँचवें मंत्रका अर्थ ७वीं कण्डिकामें कहे अनुसार जानना और छठे मंत्रका अर्थ इसी कंडिका के तीसरे मन्त्रकी समान जानना ॥ २६ ॥

अदित्यै रास्नासि । विष्णोर्वेष्योऽसि । ऊर्जे त्वा । अदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।

अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

इस कण्डिकामें चार मंत्र हैं, प्रथम "अदित्यै रास्नासि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छंद योक्त्र देवता और मुंजकी रज्जुसे यजमानकी स्त्रीकी कमरको युक्त करनेमें विनियोग है। दूसरे "विष्णोर्वेष्योऽसि" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी पंक्ति छंद, योक्त्र देवता और कमरकी रज्जुको दक्षिणके पाशको उत्तरकी ओर कमरमें लगानेमें विनियोग है। तीसरे "ऊर्जे त्वा" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी अनुष्टुप् छंद, आज्य देवता और घृतपात्रका अग्नि परसे उतारनेमें विनियोग है। चौथे 'अदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने भव यजुषे यजुषे" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, आज्य देवता और पत्नीके घृतावलोकन करनेमें विनियोग है ॥ प्रथम मन्त्रको पढ कर, अग्नीध्र योक्त्र [तीन बलकी मुंजकी मेखला] से, गार्हपत्य अग्निके दक्षिणमें ईशान कोणका मुख करके बैठी हुई यजमानकी भार्याकी नाभिसे नीचे कमरमें प्रदक्षिण लपेटे, मंत्रका अर्थ यह है कि— हे मुंजकी मेखला तू (अदित्यै) भूमिकी (रास्ना) मेखला (असि) है। दूसरे मंत्र को पढ कर, तिस मेखलाके दक्षिण पाश [सिरे] को शङ्कुस्थानीय [घुण्डी युक्त] दूसरे पाश (सिरे) में दो लपेटोंसे उरस कर ऊपरको उद्गूहन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे दक्षिण पाश ! तू (विष्णोः) यज्ञका (वेष्यः) व्यापक (असि) है। तीसरे मन्त्रको पढ कर घृतको अग्नि परसे नीचे उतारकर यजमानकी स्त्रीके सन्मुख रख कर कहे कि-हे यजमानकी पत्नी घृत को अवलोकन कर, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे घृत ! (त्वा) तुझको (ऊर्जे) उत्तम रसकी प्राप्तिके अर्थ । अग्नि परसे तार्य कर उतारता हूँ [क्योंकि तार्या हुआ घृत दोष रहित होनेके कारण अति स्वादरस युक्त होता है]। चौथे मन्त्रको पढते समय यजमानकी स्त्री घृतको देखे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे घृत ! (त्वा) तुझको (अदब्धेन) अधोमुखी होकर नीरोग (चक्षुषा) नेत्रोंसे (अवपश्यामि) अवलोकन करती हूँ. हे घृत ! तू (अग्नेः) अग्निकी (जिह्वा) जिह्वारूप है [क्योंकि-अग्निमें घृतका हवन करने पर जिह्वाकी समान ज्वाला उत्पन्न होती है] तुम (देवेभ्यः) देवताओंकी प्रसन्नताके निमित्त (सुहूः) श्रेष्ठतासे होमे जाने वाले (असि) हो अथवा तुम अग्नि की जिह्वाहो कि-जिसके द्वारा देवताओं

का आवाहन होता है, [क्योंकि-यज्ञमें मेरे के मन्त्रोंसे प्रज्वलित हुई । अग्निकी ज्वाला को देख कर देवता आते हैं] अतः हे घृत यज्ञकी आहुतियोंमें उत्तमतासे साधनरूप होकर तू (मे) मेरे (धाम्ने धाम्ने) सब यागोंके फलोंके उपभोगके स्थानोंकी प्राप्ति करानेके अर्थ और (यजुषे यजुषे) तिस २ यागकी सिद्धि करानेके अर्थ [समर्थ] (भव) हो ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं, प्रथम 'सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, साम्नी जगती छन्द, आज्य देवता और घृतको पवित्र करनेमें विनियोग है । दूसरे 'सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या पंक्ति छन्द, आपो देवता और प्रोक्षणके जलका शोधन करनेमें विनियोग है। तीसरे 'तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि; याजुषी त्रिष्टुप् छन्द आज्य देवता और घृतके अवलोकनमें विनियोग है । चौथे "धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्ची उष्णिक् छन्द, आज्य देवता और स्रुवेसे घृतका ग्रहण करनेमें विनियोग है । प्रथम मन्त्रको पढ कर घृत को पवित्र करा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-(सवितुः) सविता देवताकी (प्रसवे) आज्ञामें वर्त्तमान होने पर मैं हे घृत (त्वा) तुझको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणोंसे (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । द्वितीय मन्त्रको पढ कर प्रोक्षणका जल शोधा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे जलो ! (सवितुः) सर्वप्रेरक देवकी (प्रसवे) प्रेरणा होने पर मैं (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणोंसे (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । तीसरे मन्त्र को पढकर घृतका अवलोकन किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे आज्य ! तू (तेजः) शरीरकी कान्तिका हेतु होनेसे तेजःस्वरूप (असि) है [अथवा गीताके भगवद्वचनानुसार भगवान्की विभूति है] दीप्तिमान् अथवा वर्षा अन्नादिकी उत्पत्ति का हेतु होनेसे वीर्यरूप है, (अमृतम्)

अमृत [चिरकाल पर्यन्त निर्दोष रहने वाला] (असि) है अथवा अमृतकी समान देवताओंको तृप्ति देने वाला है, अथवा पूर्ण मन्त्रका ऐसा वाक्यार्थ समझना कि-जो घृतका भक्षण, दान वा हवन करता है उसको घृताभिमानी देवता, तेज, वीर्य और अमृत [चिरकालस्थायित्व] देता है चौथे मन्त्रको पढकर एक स्रुवेमें घृत लेय और तीन स्रुवेमें विना मन्त्र बोले मौन होकर घृत लेय, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे आज्य ! तू (धाम) धाम (देवताओंको चित्तकी वृत्तिके धारण होनेका स्थान) (असि) है (नाम) नाम [सकल जीवों को अपनी ओर झुकाने वाला (असि) है क्योंकि—घृतको देख कर भोजन करनेके लिये सब नमते हैं] (देवानाम्) देवताओं का (प्रियम्) प्रिय (अनाधृष्टम्) यज्ञमें विघ्न करने वाले राक्षसों करके अप्रतिहत (देवयजम्) देवताओंके यागका साधन (असि) है, इस कारण मैं तुझको ग्रहण करता हूँ ॥ ३१ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत-माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ—भारद्वाजगोत्रोद्भूत-गौडवंशावतंस-श्रीमद्भोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा प्राचीन उव्वटमहीधरादि भाष्योंके अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनीय शाखाका आज्यग्रहान्त प्रथम अध्याय समाप्त।

पुस्तक मिलने का पता-

सनातनधर्म यन्त्रालय

मुरादाबाद ।

द्वितीयोऽध्यायः

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि।

बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, प्रथम "कृष्णोऽस्याखरेष्ठोग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, इध्म देवता, इध्मप्रोक्षणमें विनियोग है। दूसरे "वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि,, मन्त्रका प्रा०पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, लिंगोक्त देवता और वेदी प्रोक्षणमें विनियोग है। तीसरे "बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्य उष्णिक् छन्द, लिंगोक्त देवता और कुशप्रोक्षणमें विनियोग है। प्रथम मन्त्रको पढ कर इध्म [ईंधन] काष्ठका प्रोक्षण किया जाता है। मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे इध्म तू (आखरेष्ठः) स्वर्ग देनेवाले आहवनीय अग्निमें स्थित, (कृष्णः) कृष्णवर्ण रूप यज्ञ (असि) है; अग्नि के अर्थ (जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) शुद्धिके निमित्त जलसे प्रोक्षण करता हूँ। दूसरे मन्त्रको पढ कर वेदीका प्रोक्षण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे वेदी तुम (वेदी) असुरोंसे देवताओंको प्राप्त होनेके कारण वेदी नाम वाली (असि) हो (बर्हिषे) बर्हिके अर्थ (जुष्टाम्) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूँ। तीसरे मंत्र को पढकर, वेदीमें पूर्वग्रन्थि करके कुशों का प्रोक्षण करे, मंत्रका अर्थ यह है कि— हे दर्भ ! (बर्हिः) बहुत होनेसे वेदीकी वृद्धि करनेमें समर्थ (असि) हो (स्रुग्भ्यः) स्रुचोंके धारणार्थ (जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूँ।१।

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽसि। ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः।

भुवनपतये स्वाहा। भुवनपतये स्वाहा। भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

इस कण्डिकामें छः मंत्र हैं, प्रथम "अदित्यै व्युन्दनमसि" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, आपो देवता और प्रोक्षणावशिष्ट जलको कुशोंके पूलेकी मूल पर डालनेमें विनियोग है। द्वितीय "विष्णोस्तुपोऽसि" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, दैवी पंक्ति छंद, प्रस्तर देवता और प्रस्तरग्रहणमें विनियोग है। तृतीय

"ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, वेदि देवता और वेदीको कुशाओंसे आच्छादन करनेमें विनियोग है चतुर्थ "भुवपतये स्वाहा" मंत्रका प्रा०पर० ऋषि, दैवी जगती छन्द, अग्नि देवता स्कन्नके स्पर्शमें विनियोग है। पंचम "भुवनपतये स्वाहा" मंत्रका प्रा०.परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, अग्निदेवता और स्कन्नको स्पर्श करनेमें विनियोग है। छठे "भूतानां पतये स्वाहा" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छंद, अग्निदेवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है। प्रथम मन्त्र को पढ कर प्रोक्षणसे बचे हुए जलको कुशोंके पूले की जड़में डाले, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे प्रोक्षणशेष जलके अभिमानी देव ! तुम (अदित्यै) भूमिको (व्युन्दनम्) विशेषकरके आर्द्र करनेवाले (असि) हो। दूसरे मन्त्रको पढ कर कुशाओंके पूलेको खोल कर पूर्वभागसे प्रस्तरको ग्रहण करे मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे दर्भके पूलेरूप प्रस्तर तुम (विष्णोः) यज्ञपुरुषकी (स्तुपः) शिखा (असि) हो। तीसरे मन्त्रको पढकर वेदीके ऊपर कुशाओंको बिछावे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे वेदी (ऊर्णम्रदसम्) जिस प्रकार स्वामी के बैठालने को भूमि ऊर्णासन बिछा कर कोमल करी जाती है तिसीप्रकार (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (स्वासस्थाम्) सुखपूर्वक स्थिति होनेके लिये (त्वा) तुझको कुशाओंसे (स्तृणामि) आच्छादन करता हूँ। चौथे पांचवें और छठे मन्त्रको पढकर स्कन्न ❀ [हवि को ग्रहण करते समय जो परिधिसे बाहर गिरा हो उस] को स्पर्श करा जाता है, चतुर्थ मन्त्रका अर्थ यह है कि—यह स्कन्न हवि अग्निके प्रथम भ्राता (भुवपतये) भुवपति के अर्थ (स्वाहा) दिया। पञ्चम मन्त्रका अर्थ यह है कि—यह स्कन्न हवि अग्नि के द्वितीय भ्राता (भुवनपतये) भुवनपतिके अर्थ (स्वाहा) दिया। छठे मन्त्रका अर्थ यह है कि-यह स्कन्न हवि अग्निके तृतीय भ्राता (भूतानां पतये) भूतपति के अर्थ (स्वाहा) दिया ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड

❀ पूर्वकालमें अग्निके भ्राता वषट्कारके भयसे भूमिमें प्रवेश कर गये उनके दुःखसे अग्नि भी भाग कर जल में प्रवेश कर गया, तब देवताओंने अग्निको लाकर उनके अधिकार में स्थापित किया, उस समय अग्निने कहा कि मेरे भ्राताओंको मेरे पास ही चारों ओर रखो, और इनको यज्ञका भाग दो, उस समयसे वह अग्निके भ्राता परिधिरूप हुए और स्कन्न (गिरा हुआ) हवि उनका भाग हुआ। यह कथा शतपथ १।३।३।१३-१६ में लिखी है ॥

ईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ ३ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, प्रथम "गंधर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः" मन्त्र और द्वितीय "इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः" मन्त्र तथा तीसरे "मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः" मन्त्रका प्रा० परमेष्ठी ऋषि, यजुः, परिधि देवता और क्रमसे पश्चिम दक्षिण और उत्तरमें तीनों परिधियोंके स्थापनमें विनियोग है। प्रथम मन्त्रको पढ़ कर पश्चिम दिशामें परिधिको स्थापन करा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे परिधिदेव! (विश्वावसुः) विश्वावसु (सर्वत्र निवास करने वाला) ❀ (गन्धर्वः) गन्धर्व (विश्वस्य) आहवनीय अग्निके सफल स्थानको (अरिष्ट्यै) रक्षाके निमित्त (त्वा) तुमको (परिदधातु) पश्चिम दिशामें सर्वत्र स्थापन करे, जिस से राक्षस उस स्थानमें प्रविष्ट होकर विघ्न न करें, तुम केवल आहवनीय अग्निके ही परिधि नहीं हो किंतु तुम (यजमानस्य) यजमानकी भी रक्षाके लिये (परिधिः) पश्चिम दिशामें स्थापन करे हुए हो। तुम (इडः) स्तुतिके योग्य और (ईडितः) होता आदि करके स्तुति करे हुए (अग्निः) भुवपति नामक अग्निके प्रथम भ्राता (असि) हो। दूसरे मन्त्रको पढ कर दक्षिण दिशा में दूसरे परिधिको स्थापन करा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे द्वितीय परिधि देव तुम (विश्वस्य) सकल विघ्नोंकी (अरिष्ट्यै) शांति करनेके निमित्त (इन्द्रस्य) इन्द्रके (दक्षिणः) दक्षिण (बाहुः) बाहु की समान समर्थ (असि) हो, तथा (यजमानस्य) यजमानके भी (परिधिः) रक्षक (असि) हो, तुम (इडः) स्तुतिके योग्य और (ईडितः) होता आदि करके स्तुति करेहुए (अग्निः) भुवनपति नामक अग्नि के द्वितीय भ्राता (असि) हो। तीसरे मंत्र को पढ कर उत्तर दिशामें तीसरे परिधि को स्थापन करा जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि हे तीसरे परिधिदेव! (मित्रावरुणौ) वायु आदित्य देवता (विश्वस्य)

❀ द्युलोकमें स्थित सोमकी रक्षा करनेके लिये उसके समीपमें सर्वत्र गन्धर्व बसता था यह शतपथकी श्रुतिमें कथा है।

सकल विघ्नोंको (अरिष्टयै) शान्तिके लिये (त्वा) तुमको (ध्रुवेण) निश्चलता के साथ (धर्मणा) धारण करके (उत्तरतः) उत्तर दिशामें (परिवृत्ताम्) स्थापन करे; तुम (यजमानस्य) यजमानके भी (परिधिः) रक्षक (इडः) स्तुतिके योग्य और (ईडितः) होता आदिकों करके स्तुति करे हुए (अग्निः) भूतपति नामक अग्नि के तीसरे भ्राता (असि) हो ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

इस मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, गायत्री छन्द अग्नि देवता और परिधिको स्पर्श कर समिधाको अग्निमें छोड़नेमें विनियोग है। इस मंत्रको पढ़कर समिधासे परिधिको स्पर्श कराकर अग्निमें छोड़े मंत्र का अर्थ यह है कि-(कवे) हे भूत भविष्य और दूरवर्त्ती पदार्थोंके प्रतिक्षण जानने वाले कवि (अग्ने) भगवान् अग्निदेव ! हवन करनेसे (वीतिहोत्रम्) यजमानको पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि प्राप्त कराने वाले (द्युमन्तम्) स्वतः प्रकाशवान् (बृहन्तम्) महान् (त्वा) तुमको (अध्वरे) इस यज्ञमें यजमानको पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धिकी प्राप्तिके निमित्त (समिधीमहि) ईंधनके काष्ठसे हम प्रज्वलित करते हैं ।४।

समिदसि । सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थः । ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः । आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्या सदन्तु ॥५॥

इस कण्डिकामें पाँच मन्त्र हैं, प्रथम "समिदसि" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि,दैवी बृहती छन्द अग्नि देवता और परिधिको विना स्पर्श करे दूसरी समिधाको अग्निमें छोड़नेमें विनियोग है। दूसरे "सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द लिङ्गोक्त देवता और अग्निको देखते हुए इस मन्त्रका जप करनेमें विनियोग है। तीसरे "सवितुर्बाहूस्थः" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, विधृति देवता और दो कुशोंको उत्तराग्र स्थापन करनेमें विनियोग है। चौथे "ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः" मन्त्र का प्रा०पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, प्रस्तर देवता और कुशों पर प्रस्तरको स्थापन करनेमें विनियोग है। पाँचवें "आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्या सदन्तु" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, प्रस्तर देवता और प्रस्तर पर दोनों हाथ रखनेमें विनियोग है। प्रथम मन्त्रको पढ कर परिधिको विना स्पर्श करे अग्निमें दूसरी समिधा

छोड़े, मन्त्रका अर्थ यह है, कि हे समिधा तू (समिद्) अग्निको दीप्त करने वाला (असि) है। दूसरे मन्त्रको अध्वर्यु बैठ कर आहवनीय अग्निको देखता हुआ पढ़े, मंत्र का अर्थ यह है, कि-हे आहवनीय अग्ने! (पुरस्तात्) पूर्व दिशामें (सूर्यः) सूर्य (त्वा) तुमको (कस्याश्चित्) किसी (अभिशस्त्यै) हिंसाओंसे (पातु) रक्षा करे [तीनों दिशाओंमें तीन परिधि रक्षक हैं, इस कारण शेष पूर्व दिशामें सूर्यको रक्षक कहा, इस ही विषयको "गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्त्यथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद् गोप्तारं करोति" यह शतपथ १।३।४।८ की श्रुति कहती है]। तीसरे मन्त्रको पढ कर दो कुशाके तृणप्रस्तरको स्थापन करनेके लिए उत्तरको अग्रभाग रहे इस प्रकार स्थापन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि— हे कुशतृणों! तुम दोनों (सवितुः) सविताकी (बाहू) बाहुरूप (स्थः) हो। चौथे मन्त्रको पढ कर उन दोनों कुशाओं पर प्रस्तर बिछावे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे प्रस्तर! (ऊर्णम्रदसम्) ऊनकी समान कोमल (स्वासस्थम्) देवताओंके सुखासनरूप (त्वा) तुझको (स्तृणामि) बिछाता हूँ। पाँचवें मन्त्रको पढकर प्रस्तरपर दोनों हाथ रक्खे; मंत्रका अर्थ यह है कि—हे प्रस्तर! प्रातः माध्यन्दिन और तृतीय इन तीनों सवनोंके अभिमानी (वसवः) वसु, (रुद्राः) रुद्र और (आदित्याः) आदित्य देवता (त्वा) तुझे (आसदन्तु) सर्वतः फैलावें ॥ ५ ॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि। पाहि यज्ञम्। पाहि यज्ञपतिम्। पाहि मां यज्ञन्यम् ।६।

इस कण्डिकामें छः मन्त्र हैं, प्रथम "घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, जुहू देवता और जुहूको प्रस्तर पर स्थापन करनेमें विनियोग है। दूसरे "घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, उपभृत् देवता और प्रस्तर पर उपभृत्को स्थापन करनेमें विनियोग है तीसरे "घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद" मन्त्रका प्राजापत्य

परमेष्ठी ऋषि; साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, ध्रुवा देवता और ध्रुवाको प्रस्तरपर स्थापन करनेमें विनियोग है। चौथे "प्रियेण धाम्ना प्रिय ँसद आसीद" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि याजुषी जगती छन्द हविर्देवता और हवियोंको वेदीपर स्थापन करनेमें विनियोग है। पाँचवें 'ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञपतिम्' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि यजुः, विष्णुदेवता और सबका स्पर्श करनेमें विनियोग है। छठे 'पाहि मां यज्ञन्त्वम्' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, विष्णुदेवता और अपनेको स्पर्श करनेमें विनियोग है।

प्रथम मन्त्रको पढ कर जुहूको ग्रहण कर प्रस्तर पर स्थापन करे मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे जुहू! तुम (घृताची) घृतसे पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (जुहूः) तुम्हारे द्वारा हवन किया जाता है, इस कारण जुहू नाम वाले (असि) हो। (सा) ऐसे तुम (प्रियेण) देवताओं के प्रिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम् इस (प्रियम्) प्रिय (सदः) प्रस्तररूप स्थान पर (आसीद) स्थित होवो। दूसरे मन्त्रको पढ कर उपभृत्को ग्रहण कर प्रस्तर पर स्थापन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे उपभृत्! तुम (घृताची घृत से पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (उपभृत्) समीपमें स्थित होकर घृतको ग्रहण करने वाले (असि) हो। (सा) वह तुम (प्रियेण) देवताओंके प्रिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस प्रस्तररूप (सदः) स्थान पर (आसीद) स्थित होवो तीसरे मन्त्रको पढ कर ध्रुवाको ग्रहण कर प्रस्तर पर स्थापन करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि हे ध्रुव! तुम (घृताची) घृतसे पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (असि) हो (ध्रुवा) निश्चल अर्थात् जुहू और उपभृत्को समान चलायमान नहीं (असि) होते हो [इसकारण तुम्हारा नाम ध्रुवा है] (सा) वह तुम (प्रियेण) देवताओंके प्रिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस प्रस्तररूप (प्रियम्) प्रिय (सदः) स्थान पर (आसीद) स्थिर होवो। चौथे मन्त्रको पढ कर आज्यस्थाली पुरोडाशादि हविको वेदीके विषें स्थापित करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे हवि। (प्रियेण) देवताओंके प्रिय (धाम्ना) घृतके साथ (इदम्) इस (प्रियम्) प्रिय (सदः) स्थान पर (आसीद) स्थित होवो।

पाँचवें मन्त्रको पढ कर सबको स्पर्श करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(ऋतस्य) अवश्य फलयुक्त होनेके कारण सत्यरूप यज्ञके (योनौ) स्थानमें जो हवि (असदन्) है, (विष्णो) हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णुभगवान् (ताः) उन हवियोंको (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञम्) यज्ञको (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञपतिम्) यजमानको (पाहि) रक्षा करो। छठे मन्त्रको पढकर अध्वर्यु

अपने हृदयको स्पर्श करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे विष्णुभगवन् (यज्ञन्यम्) यज्ञ कराने वाले (माम्) मुझ अध्वर्युकी (पाहि) रक्षा करो ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि । नमो देवेभ्यः । स्वधा पितृभ्यः । सुयमे मे भूयास्तम् ॥ ॥

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं; प्रथम "अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः अग्नि देवता और अग्नि के मार्जनमें विनियोग है। दूसरे "नमो देवेभ्यः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी पंक्ति छन्द, देवा देवता और अंजुलि करनेमें विनियोग है। तीसरे "स्वधा पितृभ्यः" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,दैवी पंक्ति छन्द, पितर देवता और दक्षिणको उत्तान अंजुलि करनेमें विनियोग है। चौथे 'सुयमे मे भूयास्तम्' मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि आर्ची उष्णिक छंद जुहूपभृत् देवता और जुहू उपभृत्को ग्रहण करनेमें विनियोग है। प्रथम मंत्रको पढकर इंधनके बाँधनेके तृण (जूने) से दक्षिण उत्तर और पश्चिमकी परिधियोंके समीप तीन तीन वार आहवनीय अग्निका मार्जन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि:(वाजजित्) हे अन्नको जीतने वाले (अग्ने) अग्निदेव ! (अन्नम्) अन्नको (सरिष्यन्तम्) सम्पादन करनेमें उपयुक्त (वाजजित्) अन्नके प्रतिबन्धका निवारण करने वाले (त्वा) तुमको सम्मार्ज्मि) सम्मार्जन करता हूँ ॥

दूसरे मन्त्रको पढकर पूर्व दिशाकी ओरको हाथ जोड़े; मन्त्रका अर्थ यह है कि (देवेभ्यः) जो देवता इस यज्ञरूप अनुष्ठानके ऊपर अनुग्रह करते हैं उनको (नमः) नमस्कार करता हूँ। तीसरे मन्त्रको पढ़कर दक्षिण दिशाकी ओरको ऊपरको हाथ जोड़े जाते हैं, मन्त्रका अर्थ यह है, कि— (पितृभ्यः) जो पालन करने वाले पितर हैं, उनके अर्थ (स्वधा) स्वधा हो अर्थात् उनको देना योग्य है सो दूँगा। चौथे मन्त्र को पढकर जुहू और उपभृत्को ग्रहण करे मन्त्रका अर्थ यह है कि-जुहू और उपभृत् (मे) मेरे निमित्त (सुयमे) भलीप्रकार सावधान (भूयास्तम्) होवो जिससे कि अनुष्ठानमें तुह्मारे विषय धारण करा हुआ घृत गिरे नहीं, तुह्मारे अभिमानी देव तुम को ऐसी शक्ति दें ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ सम्भ्रियासम् । अंघ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषम् ।

वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसि । इत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात्

इस कण्डिकामें 'अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्य ँ सम्भ्रियासम्' पूर्व मन्त्रका शेष है, इससे आगे प्रथम 'अंघ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषम्' मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, याज्ञुषी त्रिष्टुप् छन्द, विष्णु देवता और दक्षिणातिक्रमणमें विनियोग है। दूसरे वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसि' मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि यजुः अग्नि देवता और अवस्थानमें विनियोग है। तीसरे 'इत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात्' मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि यजुः इन्द्र देवता और हवन करनेमें विनियोग है । प्रथम मंत्रके शेषका अर्थ यह है कि—तुम्हारे सावधान होने पर (अद्य) आज इस अनुष्ठानके दिनमें (देवेभ्यः) देवताओंके उपकारके निमित्त (आज्यम्) घृत तुममें (अस्कन्नम्) जैसे भूमिमें न गिरे तिस प्रकार (सम्भ्रियासम्) धारण करता हूँ। प्रथम मंत्रको पढकर दक्षिण दिशा अर्थात् यजनके स्थानको गमन करे, मंत्रका अर्थ यह है कि-(विष्णो) हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णुभगवन् ! मैं (अङ्घ्रिणा) चरण करके (त्वा) तुमको (मावक्रमिषम्) अवक्रमण न करूँ अर्थात् चरणसे तुमको उल्लंघन करनेका दोष मुझको न हो। दूसरे मंत्रको पढकर यजनस्थानमें ईशानको मुख करके बैठे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(अग्ने हे अग्निदेव ! (ते) तुम्हारी छायाम् (छाया की समीपवर्ती (वसुमतीम्) भूमिको (उपस्थेषम्) सेवन करूँ, हे भूमि तू (विष्णोः) यज्ञपुरुषका स्थानम्) स्थान (असि) है अर्थात् यहाँ बैठकर यज्ञ करनेमें समर्थ होते हैं, अथवा ऐसा अर्थ करना कि-हे अग्निदेव ! मैं धनराशि करने वाले तुम्हारे आश्रयका सेवन करता हूँ क्योंकि-तुम यज्ञ पुरुष विष्णुका स्थान हो। तीसरे मन्त्रको पढकर अग्निमें घृतका हवन करे। मन्त्रका अर्थ यह है कि-(इन्द्रः) इन्द्र (इह) इस देवयजन नामक स्थानसे उद्युक्त होकर (वीर्यम् , शत्रुवधरूप वीरका कार्य (अकृणोत्) करता हुआ इस कारण ही (अध्वरः) यज्ञ (ऊर्ध्वम्) श्रेष्ठ (आस्थात्) माना गया है ॥ ८ ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यम् । अवतां त्वां द्यावापृथिवी । अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत् स्वाहा । संज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

इसमें "अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यम् अवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत स्वाहा" यह पूर्व मन्त्रका शेष है और

"संज्योतिषा ज्योतिः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, आज्य देवता और जुहूस्थ घृतको ध्रुवामें टपकानेमें विनियोग है। भावार्थ—इसमें प्रथम मन्त्रके शेष "अग्ने इत्यादि" का अर्थ यह है कि-(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (होत्रम्) होताके कर्मको (वेः) जानो और देवताओंके (दूत्यम् दूत कर्मको (वेः) जानो [अर्थात् इस यागमें दूतरूप * होकर देवताओंका भाग पहुँचाओ] (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीके अभिमानी देवता (त्वाम्) तुमको (अवताम्) रक्षा करें और तुम (द्यावापृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवीके अभिमानी देवताओंकी (अव) रक्षा करो, इस प्रकार परस्पर रक्षा करने से (इन्द्रः) इन्द्रदेव इस यागमें हमारे दिये हुए (आज्येन) घृतरूप हविके द्वारा (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (स्विष्टकृत्) शोभन इष्ट करने वाले [भले प्रकार अभीष्ट भाग देने वाले] (भूत्) हों अर्थात् हम जो २ भाग जिस २ देवताके अर्थ दें वह (स्वाहा) पूर्णाङ्गतापूर्वक उन सकल देवताओंको प्राप्त हो हमारा इन्द्रके उद्देश्यसे होमा हुआ घृतरूप हवि सुहुत हो अर्थात् इन्द्र देवताको प्राप्त हो इस "संज्योतिषेत्यादि" मन्त्रको पढकर जुहू नामक स्रुचूमें के घृतका बिन्दु ध्रुवामें डाले, मन्त्रका अर्थ यह है (ज्योतिषा) ध्रुवामें स्थित घृतरूप ज्योतिके साथ (ज्योतिः-) टपकाया हुआ घृत (सङ्गच्छताम्) मिले ॥ ९ ॥

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माताह्वयताम्। अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥ १० ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं, प्रथम "मयीद मन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि; यजुः, आशीर्देवता और आशालनमें विनियोग है। दूसरे "उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयताम्, अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, पृथिवी, देवता और हविः प्राशनमें विनियोग है। प्रथम मन्त्रको प्रधान यागके अनन्तर शेष पुरोडाशके प्राशनके समय होता आशीर्वाद देय उस समय यजमान पढ़े, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(इन्द्रः) परमेश्वर (इदम्) इस

* होतृत्वं दूतत्वं चाग्नेः कर्म तथा च श्रुतिः "उभयं वा एतदग्निर्देवानाꣳ होता च दूतश्च" (शत० १।४।५।४)

(इन्द्रियम्) इच्छित वीर्यको (मयि) मुझ यजमानके विषें (दधातु) स्थापन करे, (रायः) धन और (मघवानः) धनवान् (अस्मान्) हमको (सचन्ताम्) सेवन करें (अस्माकम्) हमको (आशिषः) अभीष्ट अर्थके आशीर्वाद (सन्तु) हों और वह (नः) हमारे विषयके (आशिषः) आशीर्वाद (सत्याः) सत्य (सन्तु) हों। होता के द्यावा पृथिवीका उपह्वान करते समय दोनों पुरोडाशोंमेंसे एक २ अंशके छः छः भाग कर आग्नीध्रको देवे और इस दूसरे मन्त्रको पढकर उनका भक्षण करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि-(माता) जगत्का निर्माण करने वाली पृथिवी (उपहूता) मुझसे आवाहन की गई है, यह (माता) माता रूप मानी हुई (पृथिवी) पृथिवी (माम्) मुझको (उपह्वयताम्) शेषहविके भक्षण की आज्ञा देय मैं (आग्नीध्रात्) अग्निका कर्म करने वाला होनेके कारण (अग्निः) अग्निरूप [अग्निदेव करके अपनाया हुआ] होकर तिस हविःशेषको भक्षण करता हूँ, यह जाठराग्निमें (स्वाहा) सुहुत हो १०

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥ ११ ॥

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं, प्रथम "उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा" मन्त्रका-प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, द्यौर्देवता और द्वितीयवार प्राशनमें विनियोग है। द्वितीय "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्" मन्त्र का बृहस्पति ‡ ऋषि प्राजापत्या बृहती छंद; सविता देवता एवं तृतीय "प्रतिगृह्णामि" मन्त्रका बृहस्पति ऋषि दैवी पंक्ति छंद, प्राशित्रदेवता और द्वितीय तृतीय इन दोनों मन्त्रोंका स्वीकार करनेमें विनियोग है। चौथे "अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि" मन्त्रका बृहस्पति ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छंद, प्राशित्र देवता और भक्षणमें विनियोग है, प्रथम मन्त्रको पढकर दूसरा भाग भक्षण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि— (पिता) जगत्का पालन करने वाला (द्यौः) स्वर्ग (उपहूता) मुझसे आवाहन किया गया वह (पिता) पितारूपभावना किया हुआ (द्यौः) स्वर्ग (माम्) मुझको (उपह्वयताम्) इस शेष हविके भक्षणकी आज्ञा देय, मैं (आग्नीध्रात्) अग्निका कर्म करने वाला होनेके कारण (अग्निः) अग्निरूप

‡ यहाँसे लेकर "ॐ प्रतिष्ठ" यहाँ पर्यन्तके मन्त्रोंको ब्रह्मत्व है, इनका आङ्गिरस बृहस्पति ऋषि है।

[अग्नि देवता करके अपनाया हुआ होकर] तिस हविः शेषको भक्षण करता हूँ, यह जाठराग्निमें (स्वाहा) सुहुत हो। दूसरे और तीसरे मन्त्रको पढकर प्राशित्रको ग्रहण किया जाता है मन्त्रोंका अर्थ यह है कि—हे प्राशित्र! (सवितुः) सविता (देवस्य) देवताकी (प्रसवे) प्रेरणा होने पर मैं (अश्विनोः) अश्विनी कुमारोंके बाहुओंकी करी है भावना जिनमें ऐसे (बाहुभ्याम्) बाहुओं करके और (पूष्णः) पूषा देवताके हस्तोंकी करी है भावना जिन में ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके (त्वा) तुझको (प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूँ चतुर्थ मन्त्रको पढकर तिस ग्रहण करे हुए प्राशित्रको इस प्रकार भक्षण करे कि-दंतों से स्पर्श न हो, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे प्राशित्र! (अग्निः) अग्नि देवताके (आस्येन) मुख करके (त्वा) तुझको (प्राश्नामि) भक्षण करता हूँ ॥ ११ ॥

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव १२

इस मन्त्रका बृहस्पति ऋषि, यजुः, विश्वेदेवा देवता और आज्ञाकरणमें विनियोग है ॥ इस मन्त्रको पढकर, समिदाधानकी आज्ञाके निमित्त कहा गया ब्रह्मा आज्ञा देय, मन्त्रका अर्थ यह है कि- देव) हे दानादिगुणयुक्त देव! (सवितः) हे सवितः (एतम्) इस समय किये जाते हुए इस (यज्ञम्) यज्ञको यजमान (ते) तुझारे निमित्त (प्राहुः) कहते हैं और [बृहस्पति देवताओंके यज्ञमें ब्रह्मा बने थे तथा उन करके अधिष्ठित ही मनुष्य इस यज्ञमें ब्रह्माका कार्य करता है इस कारण] (ब्रह्मणे) ब्रह्मरूप (बृहस्पतये) बृहस्पतिके अर्थ भी कहते हैं सो हे विश्वदेव! तुझारा है (तेन) तिस कारण इस (यज्ञम्) यज्ञको (अव) रक्षा करो, (तेन) तिस कारण ही (यज्ञपतिम्) यजमानको (अव) रक्षा करो और (तेन) तिस कारण ही (माम्) मेरी (अव) रक्षा करो ॥ १२ ॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोतु। अरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ १३ ॥

यह मन्त्र पूर्व १२ वें मंत्रका शेष है, इसका बृहस्पति ऋषि यजुः, विश्वदेवा देवता और पूर्व मंत्रोक्त विनियोग है। हे सवितः आपका (जूतिः) भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके पदार्थोंमें जाने वाला (मनः, मन, इस यज्ञके (आजस्य) घृतको (जुषताम्)सेवन करे (बृहस्पतिः, बृहस्पति (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञको (तनोतु) फल

से बढ़ावे और (अरिष्टम्) निर्विघ्नतापूर्वक (सन्दधातु) पूर्ण करे (विश्वे) सकल (देवासः देवता (इह) इस यज्ञमें (मादयन्ताम्) तृप्त हों, (तथास्तु) सविता देवता समिदाधानके समय यजमानके अभीष्टको जानकर स्वीकार करते हुए पूर्ण करें और (प्रतिष्ठ) प्रयाण करें ॥ १३ ॥

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि । अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवांसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥ १४ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं, प्रथम 'एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व वर्धिषीमहि' मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि अनुष्टुप् छंद, अग्नि देवता और होता के अनुमन्त्रणमें विनियोग है । दूसरे 'अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवांसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि' मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, यजुः अग्नि देवता और सम्मार्जनमें विनियोग है प्रथम मन्त्रको पढकर होता समिधाका अनुमन्त्रण करे मंत्रका अर्थ यह है कि (अग्ने) हे अग्निदेव ! (एषा) यह जो (ते) तुमको प्रज्ज्वलित करनेवाली (समित्) काष्ठकी समिधा है (तया) तिस समिधा करके (वर्धस्व) वृद्धिको प्राप्त होवो (च) और (आप्यायस्व) इसके सुकृतजनित फलसे हमको भी वृद्धिको प्राप्त करो, (च) और ऐसा होनेसे (वयम्) हम (वर्धिषीमहि) वृद्धिको प्राप्त हों, (च) और (आप्यासिषीमहि) अपने पुत्र पौत्र पशु आदिको बढावें प्रथम जिस प्रकार काष्ठ बाँधनेके तृणों [जूने] से अग्निका मार्जन करना कह आये हैं तिसी प्रकार इस मन्त्रको पढकर भी करे परन्तु वहाँ तीन तीन वार परिक्रमा कर किया था और यहाँ विना परिक्रमाके एक वार करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि (च) और (वाजजित्) हे अन्नको जीतनेवाले (अग्ने) अग्निदेव ! (वाजम्) अन्नको (ससृवांसम्) सम्पादन करने वाले तथा (वाजजितम्) अन्नको स्वाधीन रखनेवाले (त्वा) तुह्मारा (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार सम्मार्जन करता हूँ

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । अग्नीषोमौ तमपनुदताम् योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि इन्द्राग्नी तमपनुदतां, योस्मान् द्वेष्टि यश्च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

इस कण्डिकामें "अग्नीषोमयोरित्यादि । इन्द्राग्न्योरित्यादि । इन्द्राग्नी इत्यादि ।" यह तीन मन्त्र हैं तीनोंका प्राजापत्य ऋषि, छंद पहिले का यजुः, दूसरेका आर्षी उष्णिक् तीसरेका आर्षी पंक्ति और तीनोंका लिंगोक्त देवता पहिले मन्त्रका पढ़कर यजमान जुहूको अपने स्थान पश्चिमसे उठाकर पूर्वमें रक्खे और उपभृत् को पूर्वसे उठाकर पश्चिममें रक्खे मन्त्रका अर्थ यह है कि—(अग्नीषोमयोः) द्वितीय पुरोडाश देवताओंके (उज्जितम्) निर्विघ्नताके साथ हविको स्वीकार करने पर उत्तम विजयको (अनु) अनुसरण करके (उज्जेषम्) उत्तम जयको प्राप्त हुआ हूँ (वाजस्य) पुरोडाश आदि अन्नकी (प्रसवेन) प्रेरणासे (मा) मुझ जुहूरूप यजमानको (प्राहामि) उत्साह देता हूँ। [उपभृत्को पश्चिममें रक्खे] (यः) जो असुरादि शत्रु (अस्मान्) हमारे प्रति (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (यम्) जिस अनुष्ठानविरोधी शत्रुके प्रति (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तम्) उसका (अग्नीषोमौ) अग्नि और सोमदेवता (अनुनुदताम्) तिरस्कृत करें (वाजस्य) अन्नके (प्रसवेन) आज्ञा करने पर (अपोहामि) निराकरण करता हूँ। अगले दूसरा और तीसरा दोनों मन्त्र दर्शके अधिष्ठात्री देवताकी प्रार्थना विषयके हैं। एक समान पद होनेसे सबका अर्थ प्रथम मन्त्रके अनुसार है केवल (अग्नीषोमौ) के स्थानमें (इन्द्राग्नी) पद है, उसका अर्थ है-इन्द्र और अग्निदेवता ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा आदित्येभ्यस्त्वा सञ्ज्ञानाथा द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् । व्यन्तु वयोऽक्तथ्ंरिहाणाः मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह । चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

इस कण्डिकामें "वसु० इ० । रुद्र० इत्यादि । आदि० इत्यादि । सञ्ज्ञा० इ० । व्यन्तु०इ०। चक्षुष्पा०" छः मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋषि है। छन्द-पहिले और दूसरे का दैवी बृहती, तीसरेका दैवीपंक्ति। चौथे का यजुः। पाँचवेका प्राजापत्या गायत्री। छठेका बृहती। १। २। ३ मन्त्रका परिधि देवता। ४।५ का प्रस्तर देवता और ६ का परिध्यग्नि देवता है। पहिले मन्त्रको पढ़कर मध्यमपरिधिको जुहूके द्वारा घृतसे छिड़के मन्त्रका अर्थ यह है कि हे मध्यम परिधि (वसुभ्यः) वसुदेवताओंकी प्रीतिके लिए (त्वा) तुझको, घृतसे सींचता हूँ। दूसरे मन्त्रसे दक्षिण परिधिको सींचा जाता है, मंत्रका अर्थ यह है कि हे दक्षिण परिधि ! (रुद्रेभ्यः) रुद्रोंकी प्रीतिके

निमित्त (त्वा) तुझको, घृतसिक्त करता हूँ। तीसरे मन्त्रसे उत्तरपरिधिको सींचा जाता है, अर्थ यह है—हे उत्तर परिधि ! (आदित्येभ्यः) आदित्य देवताओंकी प्रसन्नतार्थ (त्वा) तुझको घृतसिक्त करता हूँ। चौथे मन्त्रसे प्रस्तर ग्रहण किया जाता है, मन्त्रार्थ यह है कि-(द्यावापृथिवी) हे द्युलोक भूलोकके अधिष्ठात्री देव ! (सज्ञानाथाम्) इस ग्रहण किये हुए प्रस्तरको भली प्रकार जानो। हे प्रस्तर ! (मित्रावरुणौ) वायु और सूर्य देवता (त्वा) तुझको (वृष्ट्या) जलकी वर्षासे (अवताम्) रक्षा करें। पाँचवें मन्त्रको पढ कर ग्रहण करे हुए प्रस्तरके अग्र-मध्य-और मूलभागोंको क्रमसे जुहू-उपभृत्-और ध्रुवा में स्थित घृतसे लिप्त करे, मन्त्रार्थ-(अक्तम्) घृतलिप्त प्रस्तरको (रिहाणाः) चाटते हुए (वयः) अन्तरिक्षचारी देवता वा पक्षीरूप गायत्री आदि छन्द (व्यन्तु) विचरें [इस प्रस्तर के हेप पूलीमेंसे एक कुश अलग करके उसका नीचे हाथसे छठे मंत्र को पढता हुआ अग्निमें छोड़े] मन्त्रार्थ यह है-हे प्रस्तर ! तुम (मरुताम्) मरुत् नामक देवताओंके (पृषतीः) वाहनको (गच्छ) प्राप्त हो अर्थात् पवनके वाहन की समान वेगसे जा। (वशा) स्वाधीन (पृश्निः) दिव्यशरीर धारिणी कामधेनु गौ की समान तृप्ति करनेवाली (भूत्वा) होकर (दिवम्) स्वर्गको (गच्छ) जा (ततः) तिस के अनन्तर (नः) हमारे निमित्त (वृष्टिम्) वर्षाको (आनय) ला। अर्थात् अन्तरिक्षमें जाकर तहाँ वाहन सहित मरुद्गणोंको तृप्त करो, फिर स्वर्गमें जाकर देवताओंको तृप्त करो जिससे पृथिवीपर वर्षा हो;यह आहुति का फल दिखाया [आगेके मन्त्रसे अध्वर्यु प्रस्तरसे लियेहुए तृणको आहवनीय अग्नि में डाल कर आत्माको हृदय देश पर स्पर्श करके आचमन करे] मन्त्रार्थ यह है (अग्ने हे अग्निदेव ! क्योंकि—तुम (चक्षुष्पाः) नेत्रोंकी रक्षा करने वाले (असि) हो इस कारण (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रको (पाहि) रक्षा करो. अर्थात् प्रस्तरकी तीव्र ज्वाला से नेत्रोंको पीड़ा न पहुँचे ॥ १६ ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः। तं त एतमनु जोषम्भराम्येष नेत्त्वदपचेतयातै। अग्नेः प्रियं पाथोपीतम् ॥ १७ ॥

इस कण्डिकामें—यं परिधिमित्यादि और अग्नेरित्यादि दो मन्त्र हैं, दोनों का देवता ऋषि, अग्निदेवता तथा पहिलेका विराट्रूप त्रिष्टुप् छंद और दूसरेका याजुषी छंद है। पहिले मन्त्रको पढ़कर मध्यम परिधिको अग्निमें डाला जाता है. मन्त्र का अर्थ यह है कि-(अग्ने देव) हे आहवनीय अग्निदेव (पणिभिः) असुरोंसे (गुह्य-

मानः) रुके हुए तुम (यम्) जिस (परिधिम्) परिधिको, असुरोंका उपद्रव दूर करनेको पश्चिम दिशामें (पर्यधत्थाः) स्थापित करते हुए (ते) तुम्हारे (जोषम्) प्रिय (तम्) उस (एतम्) इस परिधिको (अनुभरामि) अग्निमें डालकर तुम्हारे अर्पण करता हूँ (एषः) यह परिधि (त्वत्) तुमसे (न-इत्-अपचेतयातै) वियुक्त न हो [दूसरे मन्त्रको पढ़कर दक्षिण उत्तर परिधिको अग्निमें डाला जाता है] मन्त्रार्थ-हे दक्षिण उत्तर परिधि तुम (अग्नेः) अग्निके (प्रियम्) प्रिय (पाथः) भक्षणयोग्य अन्नभावको (इतम्) प्राप्त करो ॥ १७ ॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः । इमां वाचमभिविश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् । स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं। १ संस्रवभागा इ०। २ स्वाहावाट्। दोनोंका सोमशुष्म ऋषि। पहिलेका त्रिष्टुप् छन्द दूसरेका यजुः और दोनोंके विश्वदेवा देवता हैं। पहिलेको पढ कर अध्वर्यु घृतसे गीले प्रस्तरका हवन करे। मन्त्रार्थ यह है कि-(हे विश्वेदेवाः) हे विश्वदेवा तुम (संस्रवभागाः ताए हुए घृतके भागी (इषा) घृत युक्त अन्नके द्वारा (बृहन्तः) महान् (च) और (प्रस्तरेष्ठाः) प्रस्तर पर स्थित (परिधेयाः) परिधिसे प्रादुर्भूत (स्थ) हो (इमाम्) इस मेरी (वाचम्) वाणीको (अभिगृणंतः) सादर ग्रहण कर वर्णन करते हुए (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) यज्ञमें (आसद्य) प्राप्त होकर (मादयध्वम्) तृप्त होवो [दूसरे मन्त्रसे होम करे] (स्वाहा) हमारे दिए हुए हविको ग्रहण करो (वाट्) हमारी दी हुई आहुतिको भली प्रकार स्वीकार करो ॥१८॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञनमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं—घृताची इत्यादि पहिले मन्त्रका प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द स्रुक् स्रुच् देवता और यज्ञनम इत्यादि दूसरे मन्त्रका शूर्पादि ऋषि, यजुश्छन्द तथा यज्ञ देवता है। पहिले मंत्रको पढकर अध्वर्यु जुहू और उपभृतको शकटकी धुरी पर धरे। मन्त्रार्थ—हे जुहू उपभृत् तुम दोनों (घृताची) घृतको प्राप्त करने वाले (स्थः) हो (धुर्यौ) शकटके दोनों वाहनोंको (पातम्) रक्षा करो तुम (सुम्ने) सुखरूप (स्थः) हो (सुम्ने) सुखमें (मा) मुझको (धत्तम्) स्थापन करो

[दूसरे मन्त्रको पढ कर वेदीको स्पर्श किया जाता है] मन्त्रार्थ-(यज्ञ) हे वेदी ! (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार हो (च) और (उपच) वृद्धि भी हो (यज्ञस्य) यज्ञके (शिवे) कल्याणमें (सन्तिष्ठस्व) स्थित हो (मे) मेरे (स्विष्ट) सुन्दर याग में (सन्तिष्ठस्व) प्राप्ति कराओ ॥ १९ ॥

अग्नेऽदब्धायोशीतम पाहि मा दिद्योः । पाहि प्रसित्यै । पाहि दुरिष्ट्यै । पाहि दुरद्मन्या अविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाट् । अग्नये संवेशपतये स्वाहा । सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

इस कण्डिकामें ३ मन्त्र हैं । १ अग्ने-दब्धा०इ० । २ अग्नये०इ० । ३ सरस्व०इ० पहिलेका प्रजापति परमेष्ठी ऋषि, याजुषी छन्द, गार्हपत्याग्नि देवता । दूसरेका प्र० ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द, दक्षिणाग्नि देवता । और तीसरेका प्र० ऋ० या० त्रि० छन्द तथा लिङ्गोक्त देवता है । पहिले मन्त्र को पढकर अध्वर्यु होमार्थ स्रुक और स्रुच् को ग्रहण करे । मन्त्रार्थ-(अदब्धायो) हे यजमानके मंगलकारिन् (अशितम्) बहुभोजी वा सर्वत्र व्यापक (अग्ने) गार्हपत्यनामाग्ने (मा) मुझको (दिद्योः) शत्रुके वज्र समान शस्त्रसे (पाहि) रक्षा करो (प्रसित्यै) बन्धन करने वाले जालसे (पाहि) रक्षा करो (दुरिष्ट्यै) अशास्त्रीय यागसे (पाहि) रक्षा करो (दुरद्मन्याः) दूषित भोजनसे (पाहि) रक्षा करो (सुषदायौनौ) सम्यक् स्थितियोग्य स्थान में (नः) हमारे (पितुम्) अन्न जलको (अविषम्) विषरहित (आकृणु) करो (स्वाहावाट्) यह आहुति भली प्रकार स्वीकृत हो [दूसरे तीसरे मन्त्रको पढकर स्रुवेसे दक्षिणाग्निमें हवन करे] मन्त्रार्थ (संवेशपतये) स्त्रीपुरुषोंके एकत्र शयनको संवेश कहते हैं तिसके पति (अग्नये) अग्निके निमित्त (स्वाहा) सुन्दर हवि दिया अर्थात् इस आहुतिके फलसे हमको संवेशका फल मिले (यशोभगिन्यै) यशकी वहिन वाणीरूप (सरस्वत्यै) सरस्वतीके अर्थ (स्वाहा) सुन्दर आहुति हो अर्थात् इसके फलसे हमको यश मिले ॥ २० ॥

वेदोऽसि येन त्वन्देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातु विदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं। १ वेदोसीति। २ वित्वा इत्या०। पहिलेका प्रजापति ऋषि; याजुषी छन्द, वेदा देवता। दूसरेका मनस्पति ऋषि त्रिपदा विराट् छन्द और वातदेवता है, पहिलेको पढकर यजमानकी पत्नी मुट्ठी भर दर्भके पूलेकी गाँठको खोलती है जो कि—वेदीसे पहिले ही बनाया जाता है, मन्त्रार्थ-हे कुश मुष्टि से निर्मित वेदपदार्थ (वेदोऽसि) तुम ऋगादि वेदरूप हो (देव) हे प्रकाशात्मक (वेद) सबके ज्ञाता (येन) जिस कारण से तुम यज्ञका समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त जानते हो अतः (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (वेदः) ज्ञापक (अभवः) होते हुए (तेन) तिस कारणसे (मह्यम्) मेरे निमित्त (वेदः) ज्ञापक (भूयाः) हो [दूसरे मंत्र को पढ कर यज्ञके आगेसे देवताओंका विसर्जन किया जाता है] मन्त्रार्थ-(गातुविदः) यज्ञके जानने वाले (देवाः) देवताओं! (गातुम्) यज्ञके सब वृत्तान्तको (वित्वा) जानकर (गातुमित) यज्ञके प्रति आओ वा हमारे यज्ञसे सन्तुष्ट होकर अपने लोकोंको जाओ (मनसस्पते) हे मन के प्रवर्त्तक (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञको (स्वाहा) तुम्हारे अर्पण करता हूँ, आप इस यज्ञको (वाते) वायुरूप देवतामें (धाः) स्थापित करो॥ २१॥

सम्बर्हिरङ्क्ताᳬं हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः समरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वेदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥ २२॥

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है, इसका प्रजापति परमेष्ठी ऋषि, विराट् रूपा त्रिष्टुप् छन्द और बर्हि देवता है, इसको पढकर जुहूसे कुशाका होम होताहै। मंत्रार्थ (इन्द्रः) इन्द्र देवता (बर्हिः) कुशाको (हविषा) हविरूप (घृतेन) घृतसे (समङ्क्ताम्) भली प्रकार लिप्त करो (आदित्यैः) १२ आदित्योंके (सम्) साथ (वसुभिः) ८ वसुओंके (सम्) साथ (विश्वदेवेभिः) विश्वदेवोंके (सम्) साथ (अङ्क्ताम्) लिप्त करो, वह (यत्) जो (दिव्यम्) दिव्यप्रकाशरूप (नभः) सूर्यरूप ज्योतिको (गच्छतु) प्राप्त हो (स्वाहा) सुन्दर होम हो॥ २२॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुंचति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि॥ २३॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं। १ कस्त्वा० २ रक्षसां०। पहिलेका प्र० ऋषि, याजुषी छन्द, प्रजापति देवता। दूसरेका प्र० ऋषि याजुषी गायत्री छन्द और रक्षो देवता है। पहिले मन्त्रको पढकर पूर्व स्थापित (१,६) पात्रका विसर्जन करे। मन्त्रार्थ-अध्वर्यु स्वयं आहवनीयकी परिक्रमा करके वेदीके दक्षिण भागमें उत्तर मुख होकर प्रणीता-पात्रको वेदीके मध्यमें स्थापन कर किसी स्थान पर पलट देय। हे प्रणीतापात्र! (कः) कौन (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्याग करता है (सः) वह प्रजापति (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (कस्मै) किस निमित्त (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (तस्मै) उस प्रजापतिके संतोषार्थ (त्वा) तुझको (विमुञ्चति) त्यागता है (पोषाय) यजमानके पुत्र पौत्रादिको पोषण करनेके निमित्त तुझको त्यागता हूँ दूसरे मन्त्रको पढ कर प्रथम पुरोडाशके कपालसे ओदन कणोंको निकालकर कृष्णाजिनके समीप स्थानमें उत्कर पर डाले। मन्त्रार्थ-हे कणसमूह तुम (रक्षसाम्) राक्षसोंके (भागः) भाग (असि) हो २३

संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा संशिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है, तिसका प्र० ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और त्वष्टा देवता है। इस मन्त्रको पढकर यजमान अंजलीसे पूर्णपात्रको ग्रहण करे। अध्वर्यु आहवनीय की परिक्रमा कर दक्षिणमें बैठा हुआ उत्तर को मुखकर पूर्णपात्रको लेय तथा यजमान अंजुलिमें जल लेकर मुख शुद्ध करे। मन्त्रार्थ-हम आज (वर्चसा) ब्रह्मतेजसे वा अन्नसे (समगन्महि) संयुक्त हों (पयसा) दुग्धादि रससे संयुक्त हों (तनूभिः) अनुष्ठानमें समर्थ शरीरके अवयवोंसे संयुक्त हों। (शिवेन) शान्तकर्म श्रद्धायुक्त (मनसा) मनसे संयुक्त हों (सुदत्रः) उत्तम दानी (त्वष्टा) त्वष्टा देवता (रायः) धन (विदधातु) विधान करे (यत्) जो (तन्वः) शरीरका (विलिष्टम्) दोषरूप न्यून अंग है उसको (अनुमार्ष्टु) शोधन करे ॥२४॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रथंस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रथंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च

वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । अस्मादन्नात् । अस्यै प्रतिष्ठायै । अगन्म स्वः । संज्योतिषाभूम २५

इस कण्डिकामें ७ मन्त्र हैं। पहिले दिवि इत्यादि मन्त्रका प्र० ऋषि; याजुषी छ० विष्णुदेवता। दूसरे अस्यै इत्यादिका प्र० ऋषि, याजुषी गायत्री छ० विष्णुदेवता तीसरे पृथि० इत्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, विष्णुदेवता। चौथे अस्मात् इत्यादि मन्त्रका प्रजापति ऋषि, दैवी बृहती छन्द भागदेवता पाँचवें अस्यै इत्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी गा० छन्द, भूमिदेवता। छठे अगन्मस्वः का प्र० ऋषि, दैवी बृहती छन्द, देवा देवता और सातवें संज्यो० इत्यादिका प्रजापति ऋ०; गायत्री छंद, आहवनीय देवता है। पहिले तीन मन्त्रोंको पढ कर यजमान अपने आसनसे उठ कर वेदी पर खड़ा हो धीरे धीरे कुछ पग चले, ऐसे प्रदक्षिणा करे और यह विचारे कि—यज्ञपति विष्णु ही यह चरण रख रहे हैं। मन्त्रार्थ-(विष्णुः) सर्वव्यापी नारायण (जागतेन छन्दसा) जगतीछन्दरूप अपने चरणसे (दिवि) द्युलोकमें (व्यक्रंस्त) विशेष विचरण करते हुए (ततः) तिस कारणसे (यः) जो (अस्मान् द्वेष्टि) हमसे द्वेष करता है (यञ्च) और जिसके ऊपर (द्विष्मः) हम द्वेष करते हैं (निर्भक्तः) वह दोनों भागहीन किए गये। (विष्णुः) सर्वव्यापी नारायण (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्दरूप चरणसे (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षलोकमें (व्यक्रंस्त) विशेष विचरण करते हुए (ततः यः अस्मान्, द्वेष्टि.यञ्च, वयं, द्विष्मः, निर्भक्तः) ऐसा होने पर जो हमसे द्वेष करता है और जिसके ऊपर हम द्वेष करते हैं, वह दोनों शत्रु भागहीन करके निकाले गए (विष्णुः) सर्वव्यापक नारायण (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री छन्दरूप तीसरे चरणसे (पृथिव्याम्) पृथिवीमें (व्यक्रंस्त) विशेष विचरण करते हुए (ततः योस्मान् इत्यादि) ऐसा होने पर जो हमसे द्वेष करता है और जिसके ऊपर हम द्वेष करते हैं वह दोनों भागहीन कर पृथ्वीलोकसे निकाले गये। चौथे मन्त्रको पढ कर यजमान अन्नभागको देखे। मंत्रार्थ-(अस्मात्) इस देखे हुए (अन्नात्) अन्नसे, द्वेषियों को निराश किया। पञ्चम मन्त्रको पढता हुआ यजमान भूमिको देखे। मन्त्रार्थ— (अस्यै) इस देखी हुई यज्ञभूमिके (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठाके लिये, द्वेषियोंको निराश किया। छठे मन्त्रसे पूर्वदिशामें बैठा हुआ सूर्यको देखे। मन्त्रार्थ-हम इस यज्ञके फल से पूर्वदिशामें स्थित (स्वः) स्वर्ग वा सूर्य को (अगन्म) प्राप्त हुए। सातवें मन्त्रसे आहवनीयको देखे। मन्त्रार्थ-(ज्योतिषा) आहवनीय ज्योति वा ब्रह्मज्ञानसे (समभूम) हम युक्त हुए ॥ २५ ॥

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृत्तमन्वावर्त्ते ।२६।

इस कण्डिकामें तीन मंत्र हैं। १ स्वयंभूरित्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी छंद सूर्य देवता। २ वर्चोदेत्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी छन्द, सूर्य देवता। ३ सूर्यस्येत्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी बृ० छन्द, सूर्य देवता है। पहिले दूसरे मन्त्र को पढ कर सूर्यको देखे। मन्त्रार्थ-हे सूर्य तुम (स्वयंभूः) स्वयंसिद्ध (असि) हो (श्रेष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ (रश्मिः) हिरण्यगर्भ पुरुष, हो। क्योंकि तुम (वर्चोदा) तेजके देने वाले (असि) हो, अतः (मे) मेरे निमित्त (वर्चः) ब्रह्मतेजको (देहि) दो; तीसरे मन्त्रको पढ कर प्रदक्षिणा करे मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्यकी (आवृत्तम्) प्रदक्षिणाको (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वया ऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयास ँ सुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूयाः। अस्थूरिणौ गार्हपत्यानि सन्तु शतँ हिमाः। सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्ते २७

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं, पहिले अग्ने इत्यादि मन्त्रका प्रजापति ऋषि, ब्राह्मी बृहती छन्द, गार्हपत्याग्नि देवता। दूसरे सूर्यस्य इत्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी बृहती छन्द और सूर्य देवता है, पहिले मन्त्रसे गार्हपत्यका उपस्थान करे। मन्त्रार्थ-(गृहपते) मेरे घरके रक्षक (अग्ने) हे गार्हपत्य अग्निदेव! (त्वया) तुम गृहपतिना) गृहपति करके (अहम्) मैं (सुगृहपतिः) सुन्दर गृहपति (भूयासम्) होऊँ (अग्ने) हे अग्निदेव! (त्वम्) तुम (मया) मुझ (गृहपतिना गृहपति करके (सुगृहपतिः) श्रेष्ठ घरके रक्षक (भूयाः) होवो (अग्ने) हे अग्निदेव (नौ) हम दोनोंके (गार्हपत्यानि) गृहपतिसम्बंधी कर्म (शतम्) पूर्णायुपर्यन्त (हिमाः) वर्षों तक (अस्थूरिणौ) निरन्तर (सन्तु) हों। अगले मन्त्रसे सूर्यकी परिक्रमा करे। मन्त्रार्थ-(सूर्यस्य) सूर्यकी (आवृतम्) परिक्रमाको (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि। इदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ।२८।

इस कण्डिकामें दो मंत्र हैं, पहिले अग्ने इत्यादिका प्रजापति ऋषि, साम्नी पंक्ति छन्द, अग्नि देवता। दूसरे इदमहमित्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी पंक्ति छंद और अग्नि देवता है। पहिलेको पढ कर व्रतका विसर्जन करे। मन्त्रार्थ-(अग्ने) अग्निदेव। (व्रतपते) व्रतके पालक (व्रतम्) जिस व्रतको (अचारिषम्) किया (तम्)

उसको (अशकम्) तुम्हारी कृपासे करने में समर्थ हुआ (मे) मेरे (तत्) उस कर्म को (अराधि) आपने सिद्ध किया। दूसरे मंत्रको पढकर कर्मको समाप्त करे (इदम्) यह (अहम्) मैं (यः जो (अस्मि) था (सः) वही देवता (अस्मि) हूँ ॥ २८ ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः ॥ २९ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, पहिले अग्नये इत्यादिका प्रजापति ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, देव देवता। दूसरे सोमाय इत्यादिका प्र० ऋषि, याजुषी छन्द, देव देवता और तीसरे अपहता इत्यादिका प्र० ऋषि, उष्णिक् छंद, असुर देवता है। पहिले और दूसरे मंत्रको पढ़ता हुआ सार चावल को कुछ एक पका कर अभिघारण उद्वासन और देखनेके पश्चात् होम करे मंत्रार्थ (कव्यवाहनाय) पितरोंके हविको उनके पास पहुँचाने वाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (स्वाहा) यह आहुति सुन्दररूपसे प्राप्त हो (पितृमते) पितरोंके अधिष्ठान (सोमाय) सोमदेवताके अर्थ (स्वाहा) यह आहुति सुन्दररूपसे प्राप्त हो। तीसरे मंत्रसे दक्षिण की ओर रेखा करे मन्त्रार्थ—(वेदिषदः) वेदिपर स्थित होनेवाले (असुराः) असुर (रक्षांसि) राक्षस (अपहताः) वेदीसे दूर निकाले गये ॥ २९ ॥

ये रूपाणि प्रतिमुंचमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टान् लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

इस कण्डिकामें एक मंत्र है, उसका प्र० ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और कव्यवाहन अग्नि देवता है। इसको पढ कर वेदीके आगे एक जलती हुई लकड़ी घुमाकर रखदेय। मन्त्रार्थ-(स्वधया) पितरोंका अन्न भक्षण करना चाहिये इस इच्छासे (रूपाणि) अपने रूपोंको (प्रतिमुञ्चमानाः) पितरों की समान करते (सन्तः) हुए (ये) जो (असुराः) असुर (चरन्ति) पितृयज्ञमें फिरते हैं (ये) जो असुर (परापुरः) स्थूल शरीर (निपुरः) अपना असुरत्व छुपानेके लिये सूक्ष्म शरीरोंको (भरन्ति) धारण करते हैं (अग्निः) उल्मुकरूप अग्नि (अस्माल्लोकात्) इस पितृयज्ञस्थान से (तान्) उन असुरोंको (प्रणुदाति) दूर हटाओ ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं । पहिले अत्र इ० का प्र०ऋ०, साम्नी बृहती छन्द, पितर देवता । दूसरे अमी इ० का प्र० ऋ० सा० बृ० छ० और पितर देवता है । यजमान षडञ्जलि करे पीछे पिंडके सामने श्वास रोककर जब तक न थके पहिले मंत्र का जप करे, थकनेपर दूसरे मन्त्रका पढकर रोका हुआ श्वास छोड़दे मंत्रार्थ-(पितरः) हे पितरों ! (अत्र) इन कुशोंपर (मादयध्वम्) बैठकर प्रसन्न हूजिये (यथाभागम्) अपने २ भागोंको (आवृषायध्वम्) वृषकी समान भोजनकर तृप्ति पाओ (पितरः) यह पितर (अमीमदन्त) अत्यन्त प्रसन्न होते हुए (यथाभागम्) अपने २ भागको (आवृषायिषत) वृषभकी समान स्वीकार कर तृप्त होवें ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रसाय । नमो वः पितरः शोषाय । नमो वः पितरो जीवाय । नमो वः पितरः स्वधायै । नमो वः पितरो घोराय । नमो वः पितरो मन्यवे । नमो वः पितरः पितरो नमो वः । गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्म । एतद्वः पितरो वास आधत्त ॥ ३२ ॥

इस कण्डिकामें ८ मन्त्र हैं । नमो वः इत्यादि पहिले ६ मन्त्रोंका प्रजापति ऋषि याजुषी बृहती छन्द षड्ज स्वर उष्णिक छंद लिङ्गोक्त देवता । गृहान्त इत्यादि सातवें का प्रजापति ऋषि, साम्नी अनुष्टुप् छन्द, पितर देवता, और एतत् इत्यादि आठवें का प्रजापति ऋषि, प्राजापत्य गायत्री छंद पितर देवता हैं पहिले छः मन्त्रोंका पढता हुआ पितरोंके आगे हाथ जोड़े । मन्त्रार्थ-१ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे (रसाय) रसस्वरूप वसन्त ऋतुके अर्थ (नमः) नमस्कार है । २ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे (शोषाय) ग्रीष्म ऋतुके अर्थ (नमः) नमस्कार है । ३ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे (जीवाय) प्राणियोंके जीवन—स्वरूप वर्षा ऋतुके अर्थ (नमः) नमस्कार है ४ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारी (स्वधायै) स्वधारूप शरद्ऋतुको (नमः) नमस्कार है । ५ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारी (घोराय) जीवमात्रको असह्य हेमन्त ऋतुको (नमः) नमस्कार है । ६ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे (मन्यवे) क्रोधरूप शिशिरऋतुको (नमः)

नमस्कार है, अर्थात् हे पितरों ! आपके अनुग्रहसे देशमें बसन्त ऋतुके प्रचारसे सब वस्तु रसयुक्त हों ग्रीष्म शुभदायक होकर वर्ते, सबको सजीव करने वाली वर्षा उत्तम हो, शरद्में श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न हों, हेमन्तसे किसीको कष्ट न हो और शीतऋतुमें किसीका स्वास्थ्य न बिगड़े। (पितरः) हे छः ऋतुरूप पितरों ! (वः) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार है, (पितरः वः, नमः) हे पितरों ! आपको नमस्कार है। सातवें मन्त्रको पढ़ता हुआ स्त्रीकी ओर देखे। मन्त्रार्थ-(पितरः) हे पितरों ! (नः) हमारे अर्थ (गृहान्) स्त्री पुत्रादि घरके स्वरूपको (दत्त) दो। (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे अर्थ (सतः) देने योग्य विद्यमान वस्तुएँ (देष्मः) देते हैं अर्थात् दान करते हुए हमारा धन कभी कम न हो आठवें मन्त्रको पढ़ कर पितृ-पिण्डों पर ऊनके दशासूत्र या साठ वर्षसे अधिक अवस्थाका यजमान अपनी छाती के बाल धरे मन्त्रार्थ-(पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे अर्थ है (एतत्) यह (वासः) सूत्ररूप पहिरनेका वस्त्र (आधत्त) धारण करो ॥ ३२ ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है, उसका प्र० ऋ०, गायत्री छ० और पितर देवता है। इसको पढ़तेमें पुत्रकी इच्छा वाली पत्नी बीचके पिण्डको उठाकर खालेय। मंत्रार्थ (पितरः) हे पितरों ! (यथा) जैसे(इह) इस ऋतुमें (पुरुषः) देव पितर मनुष्यों की अभिलाषाको पूरी करनेवाला (असत्) होवे, इस प्रकार (पुष्करस्रजम्) पुष्कर मालाधारी अश्विनीकुमारकी समान नीरोग सुन्दर (कुमारम्) पुत्ररूप (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) स्थापन करो ॥ ३३ ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है, उसका प्र० ऋषि, त्रिपदाविराट् छंद और आप देवता है, इसको पढ़ कर कुशमार्जनसे बचे जल को पिण्डों पर सींचे। मन्त्रार्थ-(ऊर्जम्) अनेक प्रकारके स्वादुरस (अमृतम) सकल रोग और मृत्युनाशक (परिस्रुतम्) पुष्प-सार (घृतम्) घृत (कीलालं) सब बन्धन दूर करने वाले (पयः) दुग्धको (वहन्तीः) धारण करने वाले जलों (स्वधा, स्थ) पितरोंकी हविःस्वरूप हो (मे) मेरे(पितॄन्) पितरोंको (तर्पयत) तृप्त करो ॥ ३४ ॥

इन दोनों अध्यायोंका दयानन्दजीका किया अर्थ ब्राह्मण कल्पसूत्र मीमांसा आदि के सर्वथा विरुद्ध होनेके कारण मान्य नहीं होसकता।

१३।५।३८

अथ तृतीयोऽध्यायः

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । अस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

इस कण्डिकामें एक मन्त्र है, उसका आङ्गिरस ऋषि, गायत्री छन्द और अग्नि देवता है। चार ऋत्विजोंके खाने योग्य चावल पका कर उनका माँड अलग कर थालीमें परोस बीचमें गढा करे उसमें घी भर कर उसके तैजाने पर पीपलकी तीन समिधा उसमें भिगो कर, अध्वर्यु, होता और अग्नीध्र क्रमसे तीन कण्डिका पढ कर अग्निमें आहुति दें। मन्त्रार्थ—हे ऋत्विजों तुम (समिधा) समिद्से (अग्निम्) अग्नि को (दुवस्यत) पूजो (घृतैः) घृतोंके द्वारा (अतिथिम्) अतिथिकर्म वाले पूजनीय अग्नि को (बोधयत) प्रज्वलित करो (अस्मिन्) इस प्रज्वलित अग्निमें (हव्या) अनेकों हव्य पदार्थ (आजुहोतन) सर्वथा हवन करो ॥ १ ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ २ ॥

इस मन्त्रका वसुश्रुत ऋ०, गायत्री छन्द और अग्निदेवता है, इसको पढ कर ऋत्विजोंको होमके लिये प्रेरणा करे। मन्त्रार्थ—हे ऋत्विजों! (सुसमिद्धाय) भली प्रकार प्रज्वलित (शोचिषे) लपटों वाले (जातवेदसे) सर्वज्ञ (अग्नये) अग्नि देवके अर्थ (तीव्रम्) अतिस्वादु वा शुद्ध (घृतम्) घृतको (जुहोतन) हवन करो २

तं त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचायविष्ठ्य ॥ ३ ॥

इस कण्डिकाके एक मन्त्रका भरद्वाज ऋषि, गायत्री छन्द और अग्निदेवता है। इस मन्त्रको जपे। मन्त्रार्थ-(अंगिरः, तम् त्वा, समिद्भिः, घृतेन, वर्द्धयामः) हे कंपन-स्वभाव अग्निदेव, उक्त गुणयुक्त, तुमको, यज्ञके काष्ठोंसे, घृतसे, बढाते हैं (यविष्ठ्य, बृहत्, शोचा, असि) हे सदा तरुण रहने वाले !, वृद्धिको प्राप्त और प्रदीप्त हो ॥३॥

उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥ ४ ॥

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है उसका प्र० ऋ०, गायत्री छन्द, अग्निदेवता है, इस मन्त्रको पढ कर सबको लक्ष्य करके कहे, मन्त्रार्थ—(अग्ने) हे अग्निदेव ! (हवि-

प्रतीः) हविसे युक्त (घृताचीः) घृतमें भीगी हुई यह समिधा (त्वा) तुमको (उपयन्तु) प्राप्त हों (हर्यत) हे कान्ति-युक्त (मम) मेरी (समिधः) समिधाओं का (जुषस्व) प्रीतिसे सेवन करो ॥ ४ ॥

भूर्भुवः स्वः । द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे-ऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ५ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं । भूरिति । भुवरिति । स्वरिति । द्यौरिति । चारोंका प्रजापति ऋषि है । छन्द पहिलेका दैवी गायत्री दूसरेका दैवी उष्णिक् । तीसरेका दैवी गायत्री । चौथेका याजुषी गायत्री है देवता पहिलेका अग्नि । दूसरेका वायु । तीसरेका सूर्य और चौथेका त्रिगोक्त है । पहिले तीन मन्त्रोंको पढ कर स्फ्यसे रेखा की हुई भूमिमें जल, सोना, खारी मिट्टी चूहेकी खोदी मिट्टी और शर्करा, इन एक पात्रमें अलग २ रक्खे हुए ५ संभारोंको स्थापन कर उस पर सूखे काठसे जलती हुई अग्निको भूर्भुवः इन ३ अक्षरोंका उच्चारण करता हुआ स्थापन करे, यह आहवनीयका स्थापन है, ऐसे ही ८ अक्षरयुक्त होनेसे अग्निको गायत्रत्व कहा है, क्योंकि गायत्री सहित अग्नि प्रजापतिके मुखसे उत्पन्न हुई है । जो वेदी (भूः) भूलोकरूप (भुवः) अन्तरिक्षस्वरूप (स्वः) स्वर्गरूप है । चौथे मन्त्रको पढ कर समिधाका पूर्वार्द्ध ग्रहण करे । मन्त्रार्थ-(देवयजनि) हे देवताओंके यज्ञ करने योग्य पृथ्वी (तस्याः, ते, पृष्ठे) उस, तेरी, देवयजन योग्य पीठ पर (अन्नाद्याय, अन्नादम्, अग्निम्, आदधे) अन्नादि लाभकी इच्छाके लिये, अन्नके भक्षक, अग्निको स्थापन करता हूँ । और उसको स्थापन करके (भूम्ना, द्यौरिव) बहुतायतसे तारागणसे भरे द्युलोककी तुल्य पुत्र पौत्र आदिसे युक्त होऊँ (वरिम्णा, पृथ्वीव) बहुतोंके आश्रय बड़ी होनेके कारण, पृथ्वीके समान अनेकोंका आश्रय होऊँ (तैत्तिरीय उपनिषद्के ५ वें अनुवाकमें ३ व्याहृतिका विस्तारके साथ वर्णन है) ॥ ५ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन् स्वः ॥ ६ ॥

इस कण्डिकामें एक मन्त्र है, उसका सर्पराज्ञी कद्रू ऋषि गायत्री छन्द और अग्नि देवता है, यहाँसे तीन मन्त्रोंको पढ कर गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निको क्रमसे स्थापन करे । मन्त्रार्थ—(अयम्) यह अग्नि (गौः) यज्ञ साधनार्थ यजमान

के घर जाने वाला (पृश्निः) अनेकों वर्णकी ज्वालायुक्त (आ अक्रमीत्) सब ओर तीनों अग्नियोंके स्थानोंमें पादक्रमण करता हुआ (पुरः, मातरम्, असदत्) मैंने आहवनीयरूपसे पृथ्वीको पाया (स्वः प्रयन्) सूर्यरूपसे स्वर्गमें, विचरा, (पितरञ्च असदत्) द्युलोकको भी, प्राप्त किया अर्थात् अग्निसे सब जगत्का पालन होता है ॥६॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है, उसका प्र० ऋषि गायत्री छन्द, अग्नि देवता है। वायु रूपसे अग्निकी स्तुति करते हैं। मन्त्रार्थ-(अस्य, रोचना, प्राणात्, अपानती, अन्तः, चरति) इस अग्निकी, वायुनामक कोई शक्ति, प्राणके अनन्तर, अपानकी शक्तिको बढ़ाती हुई, पृथ्वी स्वर्गके मध्यमें, चलती है। इसप्रकार वायु आदित्यस्वरूप अपनी शक्ति से जगत् के ऊपर अनुग्रह करके (महिषः, दिवम्, व्यख्यत्) अग्नि, भोगस्थान द्युलोकको विशेष प्रकाशित करता हुआ ॥७॥

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतंगाय धीयते । प्रतिवस्तोरहद्युभिः ॥ ८ ॥

इस कण्डिकाके १ मन्त्रका प्रजापति ऋषि और अग्नि देवता है। इससे अग्नि का उपस्थान होता है। मन्त्रार्थ—(वाक् त्रिंशद्धाम, विराजति) जो वेदवाणी, तीस मुहूर्त स्थानोंमें, शोभा पाती है (प्रतिवस्तोः, अहद्युभिः, पतङ्गाय, धीयते) प्रतिदिन, ब्रह्मादि आगे कहे रूपोंसे, अग्निके अर्थ, उच्चारण की जाती है। अर्थात् वेदमन्त्रोंमें अग्निकी जो स्तुति की जाती है, वह विशेष विराजित होती है ॥ ८ ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा

इस कण्डिका में । १ अग्निरित्यादि । २ सूर्योज्योतिरित्यादि ३ अग्निर्वर्चरित्यादि ४ सूर्योवर्चरित्यादि । ५ ज्योतिः सूर्य इत्यादि ५ मन्त्र हैं । ऋषि पहिले और दूसरेका तक्षा, तीसरे चौथेका प्र० और पाँचवेंका जीवल । छन्द पाँचोंका एकपदा गायत्री, तथा देवता पाँचोंका लिङ्गोक्त है। यहाँसे अग्निहोत्रके मन्त्र हैं। पहिले मन्त्रको पढ़ कर सायंकाल समिधासे होम करे। मन्त्रार्थ-(अग्निः, ज्योतिः, ज्योतिः अग्निः, स्वाहा) जो अग्निदेव है, वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है वही अग्निदेव है, ऐसे अग्निको मैं हवि देता हूँ। दूसरे मन्त्रसे प्रातःकाल होम करे। मन्त्रार्थ—

(सूर्यः, ज्योतिः, ज्योतिः, सूर्यः, स्वाहा) जो सूर्य देवता है, वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है; वही सूर्य है, इससे ज्योति को मैं हवि देता हूँ। ब्रह्मतेज चाहने वाला तीसरे मन्त्रसे सन्ध्याके समय हवन करे। मन्त्रार्थ—(अग्निः, वर्चः, ज्योतिः वर्चः, स्वाहा) जो अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है, जो ब्रह्मज्योति है वही तेज है, उसके अर्थ अच्छा होम हो ब्रह्मतेजकी इच्छासे प्रातः-काल हवन करनेका चौथा मन्त्र है उसका अर्थ-(सूर्यः, वर्चः, ज्योतिः, वर्चः, स्वाहा। जो सूर्य है, वही ब्रह्मतेज है, जो ज्योति है वही तेज है, उसके अर्थ श्रेष्ठ होम हो। प्रातःकाल हवन, करनेके पाँचवें मन्त्रका अर्थ—(ज्योतिः, सूर्यः, सूर्यः, ज्योतिः; स्वाहा) जो ज्योति है, वही सूर्य है, जो सूर्य है, वही ब्रह्मज्योति है, उसके लिए श्रेष्ठ होम हो ॥ ९ ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं, १ सजूरित्यादि, २ सजूरित्यादि। दोनोंका प्रजापति ऋषि, एकपदा गायत्री छन्द और लिङ्गोक्त देवता है। दोनों मन्त्रोंको पढ कर हवन किया जाता है। मंत्रार्थ-१ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सबके प्रेरक, सूर्यदेवके साथ, प्रीति करने वाले (इन्द्रवत्या; रात्र्या, सजूः) इन्द्र देवता वाली, रात्रिके साथ, प्रीति करने वाले (जुषाणः, अग्निः, वेतु, स्वाहा) हम पर प्रीति करने वाले, अग्नि देवता, इस को स्वीकार करें, उनको यह श्रेष्ठ आहुति दी। २ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सर्व-प्रेरक, देवके साथ प्रीति करनेवाले (इन्द्र-वत्या, उषसा, सजूः) इन्द्र देवता वाली, उषाके साथ, प्रीति करने वाले (जुषाणः सूर्यः, वेतु, स्वाहा) हम पर प्रेम करने वाले सूर्यदेव, आहुतिको वा हमारे कर्मको प्राप्त करो, उनके निमित्त यह सुन्दर होम हो

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका गौतम ऋ०, निच्यृद्गायत्री छन्द और अग्नि देवता है, यहाँ से लेकर ३६ वीं कण्डिका तकके मन्त्रोंको तीन २ वार पढ कर तीन २ आहुति देता हुआ दोनों प्रकारकी अग्निका उपस्थान करे, पहिले आहवनीय का उपस्थान है। मन्त्रार्थ—(अध्वरं, उपप्रयन्तः, आरे, च, अस्मे, शृण्वते, अग्नये, मन्त्रं, वोचेम) यज्ञके प्रति, जाते हुए हम, दूर और अपने समीप सुननेवाले अग्नि देवके अर्थ मनन करते ही रक्षा और उच्चारण करते ही मनोरथ सिद्ध करने वाले शब्दसमूह रूप मन्त्रको, उच्चारण करते हैं ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १२ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका विरूप ऋ०; निचृद्गायत्री छ०, और अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अयम् अग्निः, दिवः, मूर्द्धा, ककुत्) यह, अग्नि स्वर्गलोकका, शिरका समान प्रधान, बैलके कन्धेकी समान सर्वोन्नत वा जगत्का महान् कारण है। (पृथिव्याः, पतिः) सूर्य-रूपसे प्रकाश देनेके कारण पृथिवीका, पालक है (अपाम्, रेतांसि, जिन्वति) जलोंके, सारभागोंको, पुष्ट करता है अर्थात् द्युलोकसे गिरते हुए वर्षाके जलों को अन्नादिके पकानेकी शक्ति देता है, वा आहुतिके फलसे वर्षाको उत्पन्न करता है॥

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै । उभा दातारा विषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका भरद्वाज ऋ० त्रिष्टुप् छन्द और इन्द्राग्नी देवता है। मन्त्रार्थ-(इन्द्राग्नी, वाम्, उभा, आहुवध्यै) हे इन्द्र अग्नि देवताओं!, तुम दोनों को, आह्वान करना चाहता हूँ उभा, सह, राधसः, मादयध्यै) दोनोंका, एक साथ हविरूप धनसे, प्रसन्न करना चाहता हूँ। (उभा, इषाम्, रयीणाम्, दातारौ) तुम दोनों, अन्नोंके, और धनों वा जलोंके, देने वाले हो। (वाम्, उभा, वाजस्य, सातये, हुवे) तुम, दोनोंको, अन्नके, दानार्थ, आह्वान करता हूँ ॥ १३ ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ १४ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका देवश्रव और देववात ऋषि, स्वराट् अनुष्टुप् छन्द और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने, अयम्, ते ऋत्वियः, योनिः) हे गार्हपत्ये अग्ने! यह, तुम्हारा, सायं प्रातःकाल सम्बन्धी, उत्पत्ति स्थान है (यतः, जातः, अरोचथाः, जिससे, प्रकट हुए तुम, कर्मकालमें प्रज्वलित होते हो (तम्, जानन्, आरोह) उस गार्हपत्यको जानते अर्थात् अपना अंश मानते हुए उसमें प्रविष्ट हूजिये (अथ नः, रयिम्, आवर्द्धय) फिर हमारे निमित्त यज्ञ साधन धनको चारों ओरसे बढाइये॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका वामदेव ऋषि, जगती वा भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द और अ० दे० है। (अयम् होता, यजिष्ठः, अध्वरेषु, ईड्यः, इह, धातृभिः, आधायि) यह अग्नि देवताओंका आवाहन करने वाला, यज्ञमें स्थित वा अतिशय यज्ञ कराने वाला, यज्ञोंमें ऋत्विजोंसे स्तुति किया हुआ, इस कर्म-स्थानमें, स्थापन करने वालों करके स्थापित किया गया है। (अप्नवानः भृगवः विशेविशे चित्रम् विभुम् यम् वनेषु रुरुचुः) पुत्रवान् यज्ञविद्या जानने वाले भृगुवंशी मुनियोंने यजमानके उपकारार्थ आश्चर्य-रूप व्यापक शक्तिवाले जिस अग्निको वनों में प्रज्वलित किया है ॥ १५ ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका अवत्सार ऋ० गायत्री छन्द और गोग्निपय देवता है। मन्त्रार्थ—(अह्रयः अस्य प्रत्नाम् द्युतम् अनु ऋषिम् सहस्रसाम् शुक्रम् पयः दुदुह्रे) संस्कारशुद्ध होनेसे अयोग्यताकी लज्जासे रहित ऋषि इस अग्निकी पुरातन कान्ति को अनुसरण करके दोहनस्थानमें जाने वाली गौके द्वारा सहस्रों कार्योंके साधक शुद्ध दूधको दुहते हुए ॥ १६ ॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मे आपृण ॥ १७ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका अवत्सार ऋ० त्रिष्टुप् छ० और अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने, तनूपाः असि) हे अग्निदेव, तुम स्वभावसे ही अग्निहोत्रियोंके रक्षक, हो (मे, तन्वम्, पाहि) मेरे, शरीर को, रक्षा करो (अग्ने आयुर्दा असि) हे अग्ने तुम आयु देने वाले हो (मे आयुः देहि) मेरे लिये आयु दीजिये (अग्ने वर्चोदा असि) हे अग्ने तेज देनेवाले हो (मे वर्चः देहि) मेरे लिये तेज दीजिये (अग्ने मे तन्वा यत् ऊनम् तत् आपृणः) हे अग्निदेव मेरे शरीरका जो अंग कम हो उसको सब प्रकारसे पूर्ण करो ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय

इस कण्डिकाके मन्त्रका अवत्सार ऋ० निच्यृद्ब्राह्मी पंक्ति वा महापंक्ति छन्द

और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने इन्धानाः वयस्वन्तः सहस्वन्तः अदब्धासः द्युमन्तम् वयस्कृतम् सहस्कृतम् सपत्नदंभनम् अदाभ्यम् त्वा शतम् हिमाः समिधीमहि)। हे अग्निदेव दीप्तिमान् अन्नवान् बलवान् पीड़ारहित हम कान्तिमान् अन्नवान् बलवान् शत्रुओंके हिंसक किसीसे पीड़ा न पाने वाले तुमको सौ वर्षोंपर्यन्त निरंतर प्रज्वलित करें। अर्थात् हमको यह सब पदार्थ प्राप्त हों (चित्रावसो स्वस्ति ते पारम् अशीय) हे चन्द्रतारागणादिको निवासस्थान रात्रि कल्याणपूर्वक तेरे पार को पाऊँ। देवयज्ञमें राक्षस न घुस आवे इसलिये रात्रिसे प्रार्थना की है ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणा ँ स्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया स ँ रायस्पोषेण गिमषीय ॥ १९ ॥

इस मन्त्रका अवत्सार ऋ० जगती छन्द और अग्नि देवता है मन्त्रार्थ—(अग्ने त्वम् सूर्यस्य वर्चसा समगथाः) हे अग्निदेव ! तुम रातमें सूर्यके तेजसे युक्त हुए हो (ऋषीणाम् स्तेतुन सम्) मन्त्रोंके स्तोत्र से संयुक्त हुए हो (प्रियेण धाम्ना सम्) प्रिय आहुतिसे संयुक्त हुए हो। उसी प्रकार (अहम् आयुषा संगिमषीय) मैं आपकी कृपासे अपमृत्यु रहित आयुसे युक्त होऊँ (वर्चसा सम्) विद्या ऐश्वर्य आदिके तेज से युक्त होऊँ (प्रजया सम्) पुत्रादिसे संयुक्त होऊँ (रायस्पोषेण सम्) धनकी पुष्टिसे संयुक्त होऊँ ॥ १९ ॥

अन्धस्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका याज्ञवल्क्य ऋषि, भुरिग्बृहती छन्द और गौ देवता है बीसवीं और इक्कीसवीं कण्डिकाको पढ कर गौओंके पास जाय। मन्त्रार्थ हे गौओं तुम (अन्धः स्थ) दूध आदि अन्नको उत्पन्न करनेवाली, हो (वः अन्धः भक्षीय) तुम्हारे दूध घी आदिको खाता रहूँ (महः स्थ) पूज्यरूप हो (वः महः भक्षीय) तुम्हारी पूज्यताको पाऊँ (ऊर्णः स्थ) बलरूप हो (वः ऊर्जं भक्षीय) दुग्धादिके द्वारा बलको पाऊँ (रायस्पोषः स्थ) धनपुष्टिरूप हो (वः रायस्पोषम् भक्षीय) तुम्हारे अनुग्रहसे धनकी पुष्टिको पाऊँ ॥ २० ॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिल्लोकेऽस्मिन्क्षये। इहैव स्त मापगात २१

इस कण्डिकाके मन्त्रका याज्ञवल्क्य ऋ० उष्णिक् छन्द और गौ देवता है। मन्त्रार्थ—(अस्मिन् गोष्ठे अस्मिन् लोके अस्मिन् क्षये रमध्वम्) हे धनप्राप्तिकी साधन गौओं इस दुहनेके स्थानमें इस गोठमें इस यजमानकी दृष्टिमें या रातमें इस यजमानके घरमें क्रीड़ा करो (इह एव स्त मा अपगात) यहाँ यजमानके घर में ही रहो मत जाओ ॥ २१ ॥

स ॐ हितासि विश्वरूप्यूर्जमाविश गोपत्येन । उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ २२ ॥

इस कण्डिकामें दो मंत्र हैं। पहिले संहितेत्यादिका वैश्वामित्र मधुच्छंदा ऋषि भुरिगासुरी गायत्री छ०, गौ देवता। दूसरे उपेत्यादिका पूर्वोक्त ऋ०, गायत्री छन्द, और अग्नि देवता है। पहिले मन्त्रसे गौको स्पर्श करे। मन्त्रार्थ-हे गौ तुम (विश्वरूपी संहिता, असि) अनेकों रूपवाली, हविके निमित्त यज्ञमें संयुक्त, हो ऊर्जा, गोपत्येन माम्, आविश) दूध आदि रससे; गोस्वामित्वसे मुझमें, सब प्रकारसे प्रवेश कर अर्थात् हमारा गोस्वामित्व अटल रहे। दूसरे मन्त्रसे गार्हपत्यमें जाय। मन्त्रार्थ-(दोषावस्तः अग्ने, वयं, दिवे दिवे, धिया, नमोभरन्तः, त्वा, उपएमसि) रातमें भी निरन्तर बसनेवाले; हे अग्निदेव !, हम, प्रतिदिन श्रद्धायुक्त बुद्धिसे, नमस्कार करते हुए, तुमको, प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानꣳ स्वे दमे ॥ २३ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका वै० मधु० ऋ० गाय० छ०, अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(राजन्तम्, अध्वराणाम्, गोपाम्, ऋतस्य, दीदिविम्, स्वे, दमे, वर्धमानम्) दीप्तिमान्, यज्ञोंके, रक्षक, सत्यवचन रूपव्रतके रक्षक, अपने घरमें, सोम आदिसे बढ़ने वाले अग्निकी हम शरण हैं ॥ २३ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २४ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका वै० मधु० ऋ० विराट् गायत्री छन्द और अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(अग्ने सः, नः, सूपायनः भव) हे अग्निदेव ! पूर्वोक्त तुम हमको सुखसे प्राप्त होने योग्य हूजिये (सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आसचस्व) पुत्रके लिये पिता जैसे हमारे कल्याणके निमित्त इस कर्मका सेवन करिये ॥ २४ ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवोभवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥ २५ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका सुबन्धुऋषि भुरिग्बृहती छन्द और अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ—(अच्छा अग्ने वसुः अग्निः वसुश्रवाः त्वम् नः अन्तमः उत त्राता शिवः वरूथ्यः भव) हे निर्मलस्वभाव! अग्नि देव ब्रह्मरश्मि रूप आहवनीयरूपसे गमन करनेवाला धन देनेसे कीर्तिमान् तुम हमारे अतिसमीप रहनेवाले और रक्षक शान्तरूप पुत्रादिके हितकारी सर्वथा हूजिये। (अच्छ नक्षि द्युमत्तमम् रयिम् दाः) हे निर्मल हमारे होमस्थानमें आओ अतिदीप्ति युक्त धनको दीजिये ॥ २५ ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः । स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

कण्डिकाके इस मन्त्रका सुबन्धु ऋ० सुराड् बृहती छ० और अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(शोचिष्ठ दीदिवः तम् त्वा सखिभ्यः सुम्नाय नूनम् ईमहे) अत्यन्त कान्तियुक्त सबको प्रकाशित करनेवाले, पूर्वोक्त गुणयुक्त तुमको मित्रोंके निमित्त सुखके निमित्त निश्चय याचना करते हैं (सः नः बोधि) वह तुम हमको जानो (हवम् श्रुधी) आव्हानको सुनो (समस्मात् अघायतः नः उरुष्य) सम्पूर्ण पापोंसे या शत्रुओंसे हमारी रक्षा करो ॥ २६ ॥

इड एह्यदित एहि । काम्या एत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ २७ ॥

इस कण्डिकामें—इड इत्यादि और काम्येत्यादि दो मंत्र हैं। दोनोंका श्रुतबन्धु ऋषि विराट् गायत्री छन्द और गौ देवता है। पहले मन्त्रको पढ़ता हुआ गौके समीप जाय मन्त्रार्थ—(इडे एहि) हे पृथ्वीकी समान पालन करने वाली गौ यहाँ आओ (अदिते एहि) हे अदिति रूप गौ यहाँ आओ। दूसरे मन्त्रसे गौको स्पर्श करे (काम्याः एत) सबके चाहने योग्य गौओं यहाँ आओ (वः कामधरणम् मयि भूयात्) तुम्हारा हमारे देनेको धारण किया हुआ फल मुझ अनुष्ठान करने वालेमें हो। तुम्हारी कृपासे मैं इच्छित फल पाऊँ ॥२७॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ २८ ॥

इस कण्डिकाके मंत्रका मेधातिथि ऋ० गायत्री छन्द। और ब्रह्मणस्पति देवता है। अग्निका दर्शन कर पूर्वकी ओर बैठा हुआ यहाँसे आगेके नौ मन्त्रोंको जपता रहे। मन्त्रार्थ—(ब्रह्मणस्पते सोमानम् स्वरणम् कृणुहि) हे वेदका ज्ञान देनेवाले परमात्मन् सोमका अभिषव करने वाले स्तुतिरूप शब्दसे युक्त कीजिये (यः औशिजः कक्षीवन्तम्) जो उशिक्का पुत्र कक्षीवान् था उसको जैसे किया था ॥२८॥

या रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका मेधातिथि ऋ० गायत्री छन्द और ब्रह्मणपति देवता है। मन्त्रार्थ (यः रेवान् यः अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः यः तुरः सः नः सिषक्तु) जो जगदीश्वर सब प्रकारके धनोंसे युक्त है जो सब रोगोंका नाशक सब धनोंका ज्ञाता और पुष्टिका बढ़ानेवाला है जो क्षणभरमें सब कुछ कर सकता है वह परमात्मा हमको इन सब पदार्थोंसे युक्त करे ॥२९॥

मा नः शꣳसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, निचृद् गायत्री छन्द और ब्रह्मणस्पति देवता है मन्त्रार्थ -(ब्रह्मणस्पते अररुषः मर्त्यस्य शंसः धूर्त्तिः नः मा प्रणक नः आरक्ष) हे वेदरक्षक जगदीश्वर ! देव पितरोंको कभी हव्यकव्य न देने वाले यज्ञ से विमुख मनुष्यका अनिष्टचिन्तन द्रोह हमको न सतावे, हमारी सब प्रकारसे रक्षा करो ॥ ३० ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्य्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका सत्यधृति वारुणि ऋषि, विराट् गायत्री छन्द और आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ—(मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य त्रीणाम् महि द्युक्षम् दुराधर्षम् अवः अस्तु) प्राणवृत्ति और दिनके अधिष्ठात्री देव मित्र, नेत्र वा सूर्यके अधिष्ठात्री देव अर्यमा, अपान और जलोंके अधिष्ठात्री देव वरुण, इन तीनोंसे सम्बन्ध रखने वाली बड़ी कांतिमान् सुवर्ण आदिसे युक्त तिरस्कार पानेको अशक्य, रक्षा हम को प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशꣳसः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका सत्यधृति वारुणि ऋषि निच्यृद्गायत्री छन्द और आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ—(तेषाम् अमा अध्वसु वारणेषु चन अघशंसः रिपुः नहि ईशे) ईश्वर और इन तीन देवताओंकी उपासना करने वालोंके घरमें मार्गमें दुर्गम वन आदि और संग्रामोंमें भी स्थित यजमानको कष्ट पहुँचानेको पापकर्मा शत्रु समर्थ न हो ३२

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका सत्यधृति वारुणि ऋषि वि० गायत्री छन्द और आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ-(हि ते अदितेः पुत्रासः मर्त्याय प्रजीवसे अजस्रम् ज्योतिः प्रयच्छन्ति) क्योंकि वह मित्र अर्यमादि देवमाताके पुत्र इस मनुष्य यजमानको चिरजीवनके निमित्त निरन्तर अखण्ड तेज देते हैं ॥ ३३ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते

इस कण्डिकाके मन्त्रका मधुच्छन्दा ऋषि पथ्या बृहती छन्द और इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ -(इन्द्र कदाचन स्तरीः न असि) हे परमैश्वर्यवान् तुम कभी भी हिंसक नहीं हो दाशुषे उप इन्नु सश्चसि) हवि देने वालेके हविको समीप होकर सेवन करते हो (मघवन् देवस्य ते भूय इत् दानम् नु इत् उपपृच्यते) हे ज्ञान धन वाले इन्द्र नामक जगदीश्वर दीप्यमान तुम्हारे बहुत से दानको शीघ्र ही यजमान प्राप्त होता है॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका विश्वामित्र ऋषि, निच्यृद्गायत्री छन्द और सविता देवता है। मन्त्रार्थ- सवितुः, देवस्य तत् वरणीयम्, भर्गः, धीमहि, यः, नः, धियः, प्रचोदयात्) आदित्यमण्डलस्थित अन्तर्यामी सविता नामक, प्रकाशस्वरूप परब्रह्मके, उस, सबके वरणीय; सर्वपापनिवर्त्तक तेजको, ध्यान करते हैं, जो सविता देवता, हमारी, बुद्धियोंको, सत्कर्मोंमें प्रेरित करे ॥ ३५ ॥

परि ते दूडभो रथोऽस्मात् २॥ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

इस करिडकाके मन्त्रका वामदेव ऋ० नि० गायत्री छन्द और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने (ते, दूडभः, रथः, अस्मान् विश्वतः पर्यश्नोतु, येन, दाशुषः, रक्षसि) तुम्हारा, स्वच्छन्दगति वाला, रथ हमको रक्षा करनेके लिये सब दिशाओंमें स्थित हो, जिसके द्वारा, यजमानों की रक्षा करते हो ॥ ३६ ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्यं प्रजां मे पाहि। शᳬस्य पशून्मे पाहि। अथर्यं पितुं मे पाहि ॥ ३७ ॥

इस करिडकामें चार मन्त्र हैं, १ भूरित्यादिका वामदेव ऋषि ब्राह्मी उष्णिक् छंद और अग्निदेवता है। २ नर्यंत्यादिका वाम० ऋ० यजुः छ०, अग्निदेव शंस्येत्यादिका वाम० ऋ०, यजुः छ० और अग्निदेवता है ४ अर्थर्यित्यादिका वामदेव ऋषि, यजुः छन्द और अग्नि देवता है। पहिले मन्त्र से जुल्लकोपस्थान, दूसरे से ग्रामान्तर को जाते समय गार्हपत्य उपस्थान, तीसरे से आहवनीयोपस्थान और चौथे से दक्षिणाग्निका उपस्थान करे, मन्त्रार्थ-१ (भूः, भुवः स्वः प्रजाभिः सुप्रजाः, वीरैः, सुवीरः, पोषैः, सुपोषः, स्याम्) हे अग्ने! तुम भूः, भुवः, स्वः तीन व्याहृति वा तीन लोक—स्वरूप हो तुम्हारे अनुग्रहसे, सन्तानोंसे सुन्दर सन्तान वाला वीरपुत्रोंसे, प्रशंसित वीर पुत्रों वाला और अधिक सम्पत्तियोंसे, सुन्दर सम्पत्तिवाला प्रसिद्ध होऊँ (नर्यं, मे, प्रजाम्, पाहि) हे हितसाधक अग्ने, मेरी, पुत्रादि प्रजाको रक्षा करो। ३ (शंस्य, मे, पशून्, पाहि) हे अनुष्ठान वालोंसे प्रशंसित अग्ने, मेरे, गौ आदि पशुओंको रक्षा करो। ४-(अथर्यं, मे पितुम्, पाहि) हे निरन्तर गमनशील अग्ने, मेरे, पिताको रक्षा करो ॥ ३७ ॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥

इस करिडकाके मन्त्रका आसुरि ऋ० अनुष्टुप् छन्द और आह० अग्निदेवता है, मन्त्रार्थ—(सम्राट् अग्ने, अभ्यागमन्म, विश्ववेदसम्, अस्मभ्यम्, वसुवित्तमम्, द्युम्नम्, सह, अभि आयच्छस्व, हे सम्यक् प्रदीप्त, अग्निदेव ! ग्रामान्तरसे आये हैं, क्योंकि-तुम विश्वके सब चरित्र जानते हो हमको अत्यन्त धनके देने वाले हो धनयुक्त बलके सहित आइये और हममें धनबल स्थापित कीजिये ॥ ३८ ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३९ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका आसुरि ऋ० न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्द और गार्हपत्याग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (अयम्, गार्हपत्यः, अग्निः, गृहपतिः, प्रजायाः, वसुवित्तमः) यह, गार्हपत्य, अग्नि ही हमारे घर का अधिपति है, पुत्र पौत्रादिका अनुग्रह करने वाला, अत्यन्त धनवान् है। (गृहपते, अग्ने द्युम्नम्, अभि, सह अभि; आयच्छस्व) हे गृहपालक, अग्निदेव, धनको, सब ओरसे, बलको भी सब ओरसे, दीजिये

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व

इस कण्डिकाके मन्त्रका आसुरि ऋ० निचृद् अनुष्टुप् छ० और दक्षिणाग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (अयम् अग्निः, पुरीष्यः रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः पुरीष्य द्युम्नम् अभि सह अभि आयच्छस्व) यह दक्षिणाग्नि, पशुओंका हितकारी धनी पुष्टिवर्धक है, हे पशुओंके हितकारिन् ! सब ओरसे धनको सब ओरसे बलको दीजिये ॥ ४० ॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि । ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका आसुरि ऋ० आर्षी पंक्ति छन्द और वास्तु अग्निदेवता है। मन्त्रार्थः-(गृहाः मा बिभीत) हे घरके अधिष्ठात्री देवताओं ! मत डरो (मा च वेपध्वम्) और मत काँपो (ऊर्जम् बिभ्रतः एमसि) बलको धारण करनेवाले आपके निकट प्राप्त हुए हैं (ऊर्जम् बिभ्रत् सुमनाः सुमेधाः मनसा मोदमानः गृहान् एमि) मैं भी बलको धारण करता हुआ, श्रेष्ठ मन वाला सुन्दर बुद्धिसे युक्त दुःख रहित मनसे प्रसन्न होता हुआ घरोंमें प्राप्त होता हूँ ॥ ४१ ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ४२

इस कण्डिकाके मन्त्रका शंयु ऋ० अनुष्टुप् छन्द और वास्तुपति अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ—(प्रवसन् येषाम् अध्येति) देशान्तरको जाता हुआ यजमान जिन घरों को कुशल चाहता है (येषु बहुः सौमनसः गृहान् उपह्वयामहे) जिन घरोंमें बहुत

प्रीति करता है, उन गृहोंको प्रीतिसे आ-
ह्वान करते हैं। घरके अधिष्ठात्री देव हमारे
निकट आवें (ते जानतः नः जानन्तु) वह
हमारे बुलाये हुए देवता उपकारको जानने
वाले हमको अकृतघ्नी जाने ॥ ४२ ॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः ॥ ४३ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं, उपहूता
इत्यादि पहिले मन्त्रका शंयु बार्हस्पत्य
ऋ० भुरिग् जगती छन्द वास्तुपति देवता
क्षेमायेत्यादिका शंयु बार्हस्पत्य ऋ० यजुः
छन्द और वास्तुपति देवता है। मन्त्रार्थ-
(इह नः गृहेषु गावः उपहूताः अजावयः
उपहूताः अथ अन्नस्य कीलालः उपहूतः)
इन हमारे घरोंमें गौएँ हमारी आज्ञासे
सुखपूर्वक रहा करो भेड़ आदि सुखपूर्वक
रहो और अन्नसम्बन्धी रस बढ़ता रहे।
यह हमारी आपसे प्रार्थना है। २-(क्षेमाय
शान्त्यै वः प्रपद्ये) हे गृहोंके अधिष्ठात्री
देवो ! धनकी कुशल के लिए सकल
अरिष्टोंकी शान्तिके लिए आपको शरणा-
गत होता हूँ। (उ शंयोः शिवम् शंयोः
शग्मम्) सब सुख चाहने वाले मुझ
यजमानका कल्याण हो, पारलौकिक सुख
चाहने वाले मुझ यजमानका कल्याण हो ॥

अथ चातुर्मास्यमंत्राः

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥ ४४ ॥

इस कण्डिकाके मंत्रका प्रजापति ऋ०
गायत्री छन्द और मरुत् देवता है। चातु-
र्मास्य यज्ञके चार पर्व हैं, वैश्वदेव, वरुण
प्रघास, साकमेध, सुनासीरीय। वैश्वदेव
और शुनासीरीयका इसमें उपदेश नहीं है
शेष दोनोंका विधान करते हैं। वरुणप्रघास
नाम दूसरे पर्वमें दक्षिण उत्तर दोनों वेदियों
में हवि स्थापन कर आह्वान करे। मन्त्रार्थ
(रिशादसः करम्भेण सजोषसः च प्रघा-
सिनः मरुतः हवामहे) शत्रुकी कीहुई हिंसा
को दूर करने वाले दधि मिले सत्तूके साथ
सब समान प्रीति करने वाले तथा प्रघास
नामक हविको भक्षण करने वाले ! हे मरुत्-
गणों ! हम तुम्हारा आवाहन करते हैं ४४

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमावयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ४५

इस कण्डिकाके मन्त्रका प्रजापति ऋ० स्वराट् अनुष्टुप् छन्द और मरुत् देवता है। यजमान पत्नीको साथ लेकर करम्भ भरे कई पात्रोंको शूर्पमें मस्तक पर रखकर वेदीके पूर्व पश्चिममें खड़ा होकर दक्षिणाग्निमें हवन करता हुआ इस मन्त्रको पढ़े। मन्त्रार्थ—(यत् एनः ग्रामे यत् अरण्ये यत् सभायाम् इन्द्रिये अचकृम तत् इदम् अवयजामहे स्वाहा) जो पाप ग्राममें चलते हुए जो पाप वनमें, जो पाप सभामें और इन्द्रियोंके विषयमें किया है उस इस पापको आहुति देकर नष्ट करता हूँ, यह हवि पापनाशक देवताको सुन्दररूपसे प्राप्त हो ॥ ४५ ॥

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

इस कण्डिकाके मंत्रका अगस्त्य ऋषि भुरिक् पंक्ति छन्द और इन्द्रमरुत् देवता है। इसका जप करे। मन्त्रार्थ—(शुष्मिन् इन्द्र अत्र पृत्सु देवैः नः मा सु ते अवयाः हि स्म मीढुषः हविष्मतः यव्याः महश्चित् गीः मरुतः वन्दते) हे बलवन्! इन्द्रदेव इन संग्रामोंमें मरुत् देवताओंके साथ हम को विनष्ट न करो भले प्रकार रक्षा करो, तुम्हारा यज्ञीयभाग स्थित है वर्षाके द्वारा जगत्को सींचनेवाले, हवि पाने वाले आप की यवकी पिट्ठीके करम्भ-पात्रोंसे निष्पन्न हुई होमक्रियासे निश्चित पूजा करते हैं, हमारी स्तुति आपके सखा मरुत् देवताओं को प्रणाम करती है ॥ ४६ ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ४७

इस कंडिकाके मन्त्र का अगस्त्य ऋषि विराट् अनुष्टुप् छन्द और अग्निदेवता है प्रतिप्रस्थाता यजमानको करंभपात्रके होमस्थानसे अपने स्थानको लेजाता हुआ इस मन्त्रको पढ़े। मंत्रार्थ—(कर्मकृतः मयोभुवा वाचा सह कर्म अक्रन् सचाभुवः देवेभ्यः कर्म कृत्वा अस्तम् प्रेत) वरुणप्रघास कर्मको करनेवाले ऋत्विज् सुखरूप स्तुति के साथ वरुणप्रघासको कर चुके इस कर्म स्थित हे ऋत्विजो! देवताओंके लिए वरुण प्रघास कर्म करके घरको जाओ ॥ ४७ ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यै-

मर्त्यकृतम् । पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका और्णवाभ ऋषि आर्ची अनुष्टुप् छन्द और यज्ञदेवता है। वरुणप्रघासकर्मके अंत में स्त्री पुरुषको जलमें अवभृथस्नान करावे, उस समय पढ़नेका यह मन्त्र है। मन्त्रार्थ-निचुम्पुण अवभृथ निचेरुः असि) हे मन्दगति! जलाशय अवभृथ नामक यज्ञ तुम अत्यन्त गमन करने वाले हो (निचुम्पुण) यहाँ पर मन्दगति हूजिये (देवैः देवकृतम् एनः अवयासिषम्) ज्ञानेंद्रियोंसे जो कुछ हवि के स्वामी देवताओंका ज्ञानपूर्वक पाप किया वह सब मैंने इस जलाशयमें त्याग दिया (मर्त्यैः मर्त्यकृतम् अव) हमारे सहायक ऋत्विजों करके यज्ञ देखनेको आए हुए मनुष्योंका अवज्ञारूप पाप किया है उसको इस जलमें त्याग दिया (देव पुरुराव्णः रिषः पाहि) हे अवभृथ यज्ञके अधिष्ठात्री देव विरुद्ध फल देने वाले वध वा हिंसासे हमारी रक्षा करो ॥ ४८ ॥

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥४९॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका और्णवाभ ऋ० अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है। इस मन्त्रको पढ़ कर दर्वीके द्वारा स्थालीसे ओदन ग्रहण करे। मन्त्रार्थ-(दर्वि पूर्णा परा पत) हे अन्न देनेके साधन काष्ठपात्र तुम स्थालीके निकटसे अन्नको ग्रहण करने से पूर्ण होकर उत्तमताको प्राप्त होते हुए इन्द्रके प्रति गमन करो। (सुपर्णा पुनः आपत) कर्मफलसे सम्यक् पूर्ण होकर फिर हमारे निकट आओ (शतक्रतो वस्नेव इषम् ऊर्जम् विक्रीणावहै) हे बहुकर्मा इन्द्र मूल्य द्वारा अभीष्ट हविरूप अन्नको परस्पर बेचें। अर्थात् मैं तुम्हें हवि देता हूँ और तुम मुझको बल तथा पुण्य दो ॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारश्च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का और्णभाव ऋषि भुरिक अनुष्टुप् छ० और इन्द्र देवता है। इसको पढ़कर आहुति देय। मन्त्रार्थ मनमें यह कल्पना करे कि-इन्द्र कह रहे हैं (मे देहि ते ददामि) हे यजमान! तुम मुझ इन्द्रके अर्थ प्रथम हवि दो, तुझ यजमानके अर्थ पीछे अपेक्षित हवि दूँगा (मे निधेहि ते निदधे) मुझ इन्द्रके निमित्त पहले

हवि सम्पादन कर तुझ यजमानके अर्थ फिर मैं इच्छितफल देता हूँ। यजमान कहता है-(निहारम् मे हरासि निहारम् ते निहराणि स्वाहा) हे इन्द्र मूल्य से खरीदने योग्य पदार्थ मुझे दीजिये मूल्य रूप हविको मैं तुम्हारे अर्थ समर्पण करता हूँ, यह आहुति भली प्रकार फलीभूत हो॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा-न्विन्द्र ते हरी ५१॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका गौतम ऋषि विराट् पंक्ति छ० और इन्द्र देवता है, इस को पढ़कर पितृयजन करे। मन्त्रार्थ—इस पितृयज्ञ कर्ममें जो पितर हैं वह हमारे दिए हविस्वरूप अन्नको (अक्षन् हि अमीमदन्त प्रियाः अधूषत प्रियाः अवाधूषत) खाचुके क्योंकि-प्रसन्न हुए और हमारी भक्तिको जानकर प्रीतियुक्त हो, अपना शिर हिलाते हुए अपने शरीरोंको कम्पित करते हुए। और (स्वभानवः विप्राः नविष्ठया मती अस्तोषत) स्वयं दीप्तियुक्त वह बुद्धिमान् नवीन बुद्धिसे युक्त होकर स्तुति करते हुए अर्थात् हमारी आहुतिको स्वीकार करके कृतज्ञता प्रकाशित की इस कारण (इन्द्र नु ते हरी अयोज) हे इन्द्र! तुम भी सन्तुष्ट होकर इन पितरोंके साथ मिलनेके उद्देश्यसे शीघ्र ही तुम अपने हरितवर्णके दोनों घोड़ोंको जानेके निमित्त रथमें जोतो अर्थात् पितरों की तृप्ति से सन्तुष्ट होकर आपको आना चाहिये।५१।

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो यासि वशान् २॥

अनु योजान्विन्द्र ते हरी॥ ५२॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका गौतम ऋषि विराट् पंक्ति छ० और इन्द्र देवता है इस से आहवनीयका उपस्थान होता है मंत्रार्थ (मघवन् वयम् सुसन्दृशम् त्वा वन्दिषीमहि) हे इन्द्र देव ! हम सबको अनुग्रह युक्त समदृष्टिसे देखने वाले आपकी स्तुति करते हैं (स्तुतः वशान् अनु नूनम् प्रयासि पूर्णवन्धुरः इन्द्र ते हरी आयोज) स्तुति किये हुए तुम अभिलाषा वाले यजमानों को देखकर अवश्य आओगे कारण कि तुम हमारी कामना पूरी करनेको रथपर स्थित हो अतः हे इन्द्र ! तुम अपने घोड़ोंको जोतो।

मनो न्वाहामहे नाराशंसेन स्तोमेन। पितॄणाञ्च मन्मभिः॥ ५३॥

इस कण्डिका के मन्त्रका बन्धुर्ऋषि अतिपाद निच्यृद् गायत्री छ० और मन देवता है। इससे गार्हपत्यका उपस्थान करे। मन्त्रार्थ—(नाराशंसेन स्तोमेन च पितृणाम् मन्मभिः नु मनः आह्वामहे) हम मनुष्योंके योग्य स्तुति वाले स्तोत्र और पितरोंके इच्छित स्तोत्रोंसे शीघ्र मनके अधिष्ठात्री देवताको आव्हान करते हैं। अर्थात् पितृयज्ञको करते समय हमारा मन पितृलोकको गयासा होगया था, उसको बुलाते हैं ॥ ५६ ॥

आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋ० विराट् गायत्री छन्द और मन देवता है। इससे भी गार्हपत्य का उपस्थान करे। मन्त्रार्थ—(नः मनः क्रत्वे दक्षाय ज्योक् जीवसे सूर्यन्दृशे च आयतु) हमारा मन यज्ञसङ्कल्पके लिए कर्मानुष्ठानके उत्साहके लिए चिरकाल तक जीवनके लिए चिरकाल तक सूर्यके दर्शनके लिये भी प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातꣳ सचेमहि ॥ ५५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका बन्धुर्ऋषि निच्यृद् गायत्री छ० और मन देवता है। इससे भी उपस्थान करे। मन्त्रार्थ-(पितरः दैव्यः जनः नः मनः पुनः ददातु) हे पितरो आपकी आज्ञासे देवसम्बन्धी पुरुष हमारे लिए हमारे पूर्वोक्त मनको फिर इस कार्य के लिए देय। इस प्रकार अनुष्ठान करके हम आपके अनुग्रह से (जीवम् व्रातम् सचेमहि) जीवन वाले पुत्र पशु आदिको को हम सेवन करें ॥ ५५ ॥

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका बन्धुर्ऋषि गायत्री छ० और सोम देवता है। इससे दक्षिणाग्नि का उपस्थान कर जप करे। मन्त्रार्थ-(सोम वयम् तव व्रते तनूषु मनः बिभ्रतः प्रजावन्तः सचेमहि) हे पितृयज्ञके सोमदेव ! हम यजमान तुम्हारे व्रतानुष्ठान में वर्त्तमान हुए आपके शरीरोंमें चित्तको धारण करते हुए आपके अनुग्रहसे पुत्र पौत्रादिको प्राप्त हुए हम सेवन करते हैं। ५६

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं। एषत इत्यादि पहिले मन्त्रका बन्धुर्ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द और रुद्र देवता है। दूसरे एषत इत्यादि मंत्रका याजुषीगायत्री छ० और रुद्र देवता है। शाकमेधके अङ्ग पितृयज्ञके शेषांश त्र्यम्बकयाग [चन्द्रयाग] का आरम्भ होता है, उसमें इस कण्डिका के पहिले मंत्रसे अवदान हवन करें मंत्रार्थ (रुद्र ते स्वस्रा अम्बिकया एषः भागः तं जुषस्व) हे पापियों और देहाभिमानियोंको रुलाने वाले रुद्र अपनी भगिनी अम्बिका के साथ यह हमारा दिया हुआ पुरोडाश रूपभाग है, उसको सेवन करिये, यजमान के जितने पुत्र पौत्रादि पुरुष हों उनमेंसे हरएकका एक २ पुरोडाश फिर उनमेंसे और एक अधिक पुरोडाश निर्वपण करें। उस अतिरिक्त पुरोडाशका होम न करें। किंतु चूहेके खोदे बिलके समीप खोदी हुई मट्टी पर इस दूसरे मंत्रको पढ़ कर बखेरे देय मन्त्रार्थ-(रुद्र एषः ते भागः ते आखुः पशुः) हे रुद्र ! यह हमारा बखेरा हुआ तुम्हारा पुरोडाश सेवनीय है, आपका चूहा रक्षणीय पशु है ॥ ५७ ॥

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका बन्धुर्ऋषि विराट् पंक्ति छ० और रुद्र देवता है. चूहे की मट्टीके पाससे आकर इसका जप करे मन्त्रार्थ—(रुद्रम् त्र्यम्बकम् देवम् अव अदीमहि) शत्रुओंको रुलाने वाले तीनों लोकोंके रक्षक, सृष्टि आदिसे क्रीड़ा करने वाले वा शत्रुजयशील वा सब प्राणियोंमें आत्मस्वरूपसे चेष्टा करने वाले द्युतिमान् स्तोत्रोंसे स्तुत वा सर्वगत परमेश्वरको गुरु तथा शास्त्रके द्वारा जान कर सब दुःखोंका नाश करते हैं (यथा नः वस्यसस्करत् यथा नः श्रेयसस्करत् यथा नः व्यवसाययात्) जिस प्रकार हमको वह उत्तम प्रकार से निवास करने वाले करें, जिस प्रकार हमको ज्ञातियों में श्रेष्ठ करें, जिस प्रकार हमको सब कार्योंमें निश्चययुक्त करें इस प्रकार इनका जप करते हैं ॥ ५८ ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका बन्धुर्ऋषि, स्वराट् गायत्री छ० और रुद्र देवता है जप करे मन्त्रार्थ-(भेषजम् असि हे रुद्र आप औषधकी समान सब उपद्रवोंको दूर करने

वाले हो (गवे अश्वाय पुरुषाय भेषजम् मेषाय मेष्यै सुखम्) गौ घोड़े और पुत्र पौत्रादि परिवारके लिये रोग दूर करनेको औषधि दो मेष मेषी आदि पशुओंके निरुपद्रव जीवन के लिये अपने सुखदायक स्वरूपका प्रकाश करिये ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।६०।

इस कण्डिकामें दो मंत्र हैं, त्र्यम्बकम् इत्यादि पहिलेका वशिष्ठ ऋषि बाड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छ० और रुद्र देवता है, दूसरे त्र्यम्बकमित्यादिका ऋषि आदि पूर्वोक्त है। जैसे पितृमेधमें पुत्रादि अपनी वाम ऊरुको ताड़न करके उलटी प्रदक्षिणा करते हैं। देवताकी सेवामें दाहिनी जंघा ताड़न करके तीन प्रदक्षिणा करते हैं, तिसी प्रकार इसमें भी पुरुष पहिले मंत्र जपकर अग्निकी तीन प्रदक्षिणा करते हैं। मन्त्रार्थ—(सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम् त्र्यम्बकम् यजामहे) दिव्य-गन्धयुक्त मर्त्यधर्महीन उभय लोकका फल देने वाले धन धान्यादिकी पुष्टि बढ़ानेवाले पूर्वोक्त तीन नेत्रों वाले शिवको हम पूजते हैं। वह हमको (मृत्योः मुक्षीय बन्धनात् उर्वारुकमिव अमृतात् मामुक्षीय) संसार के मरणसे छुड़ावें बन्धनसे कर्कटी फलको जैसे अर्थात् जैसे पका हुआ फल अपनी घुंडीसे छूट कर भूमि पर गिर जाता है, तैसे ही शिवकी कृपासे मैं जन्ममरण रहित होजाऊँ और अमरतारूप मुक्तिसे भ्रष्ट न होऊँ। दूसरे मंत्रको पढ़ कर यजमान की कन्या तीन परिक्रमा करे। मन्त्रार्थ-(पतिवेदनम् सुगन्धिम् त्र्यम्बकम् यजामहे ऊर्वारुकम् इव इतः बन्धनात् मुक्षीय अमुतः मा) सुंदर पतिके प्राप्त कराने वाले दिव्य यशवाले-धर्माधर्मके ज्ञाता त्र्यम्बक शिवको हम पूजतीं हैं, कर्कटीफलकी समान इस माता पितादि कुटुम्बरूप बन्धनसे छूटकर विवाह उपरान्त पतिके समीप से मत छुटाओ। अर्थात् पिताके गोत्र और घरसे अलग होकर पतिके घर और गोत्रमें शिवजी के अनुग्रहसे सदा निवास करूँ ॥ ६० ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अव ततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा

अहिꣳसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

इस कण्डिकाके एतत्त पहिले मन्त्रका वशिष्ठ ऋषि भुरिगास्तार पंक्ति छ० और रुद्र देवता है, दूसरे कृत्तिवासा इत्यादिका वशिष्ठऋषि भुरिगास्तार पंक्ति छ० और

रुद्र देवता है। त्र्यम्बक यागके हवनसे हुए चावल जौ आदि पुरोडाशको तृण बाँस आदिके बने हुए दो पात्रोंमें रखकर एक बाँस की लकड़ी के दोनों सिरों में उसको बाँध कंधे पर रखकर उत्तरको मुख किए कुछ दूर जाकर जिसको गौ मुख उठाकर सूँघ न सके ऐसे वृक्ष आदि ऊँचे स्थान पर इस मंत्रको पढ़कर स्थापन करे, इससे गौओंको रोग न होगा। मन्त्रार्थ—(रुद्र एतत् ते अवसम्) हे रुद्रदेव! यह आपका हविःशेष नामक भोजन है (तेन अवततधन्वा पिनाकावसः मूजवतः परः अतीहि) तिसके साथ तुम हमारे विरोधियोंके न रहनेसे प्रत्यञ्चा उतारे हुए अपने पिनाक धनुषको वस्त्रसे ढाँपे मूँजवान नाम पर्वतके पार होकर गमन करो। जिससे कि प्राणी भयभीत न हों। दोनों पात्रोंको वृक्ष आदि ऊँचे स्थानमें स्थापित करके यजमान वेदीके पास आ दूसरे मंत्रसे जल स्पर्श करे। (कृत्तिवासाः नः अहिंसन् शिवः अतीहि) हे रुद्र तुम चर्माम्बर धारण किए हो वा सब प्राणियोंके अन्तर्यामी होने से चर्माम्बरधारी हो हमारी हिंसा न करते हुए हमारी पूजासे प्रसन्न हो कल्याणस्वरूप होते हुए अपने स्थान में निवास करो ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ६२

इस कण्डिकाके मंत्रका नारायणऋषि उष्णिक् छ० और रुद्र देवता है। यजमान शिरका मुंडन करावे उस समय पहिले इस मंत्रको पढ़े। मन्त्रार्थ-(जमदग्नेः त्र्यायुषम् कश्यपस्य त्र्यायुषम् यत् देवेषु त्र्यायुषम् तत् त्र्यायुषम् नः अस्तु) जमदग्नि ऋषिकी जो बालकपन आदि तीन अवस्था हैं। कश्यप प्रजापतिकी जो तीनों अवस्था हैं, जैसी देवताओंमें तीन अवस्था हैं, वह सब त्र्यायुष हम यजमानों को प्राप्त हों अर्थात् रुद्रके अनुग्रहसे हमारे चरित्र इनके से होजायँ ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥ ६३ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, पहिले शिव इत्यादिका नारायण ऋषि भुरिग् जगती छ० और क्षुर देवता है, निवर्त्तयेत्यादि दूसरे मंत्रका नारायण ऋ० भुरिग् जगती छन्द और लिङ्गोक्त देवता है। पहिले को पढ़ कर क्षुर उठावे। मंत्रार्थ-सर्व-व्यापक होने से क्षुरे में भी विद्यमान देव! तुम (नाम शिवः असि) नामसे

शान्त—स्वभाव वा कल्याण—कारक हो। (स्वधितिः ते पिता) वज्र तेरा रक्षक है (ते नमः) तुझको नमस्कार है, (माम मा हिंसीः) मुझको मत हिंसित करो। दूसरे मंत्रको पढ़ कर मुंडन करे। मन्त्रार्थ हे यजमान इस कर्मके फलसे (आयुषे अन्नद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय निर्वपामि) जीवनके लिये अन्नादि भक्षणके लिये अधिक सन्तान के लिये धन-पुष्टि के लिए सन्तान उत्पन्न करनेकी उत्तम शक्तिके लिये और श्रेष्ठ बल की प्राप्तिके लिये मुण्डन करता हूँ ॥ ६३ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ भारद्वाजगोत्रोद्भूतगौड-वंशावतंस श्रीमद्भोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा उव्वटमहीधरादि-प्राचीनभाष्योंके अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भावार्थ-सहित अग्न्याधानादि पितृयान्त तृतीय अध्याय समाप्त ॥

—०—

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे ऋक्सामाभ्याꣳ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व । स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ १ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं। १ एदमित्यादिका प्रजा० ऋ० विराड् ब्राह्मी जगती छन्द देवयजन देवता है। २ आप इत्यादिका प्र० ऋ० पूर्वोक्त छन्द आप देवता है। ३ ओषध इ० का प्र० ऋ० वि० ब्रा० पंक्ति छ० औषधि देवता है। ४ स्वधित इत्यादिका ऋषि छ० पूर्वोक्त और क्षुर देवता है। तीसरे अध्यायमें आधान अग्निहोत्र उपस्थान और चातुर्मास्यके मंत्र कहे अब ४ अध्यायमें ३२ कण्डिका तक अग्निष्टोमके मन्त्र कहे जायँगे आदि में यजमान १६ ऋत्विजोंका वरण करके अरणी में अग्निका समारोपण कर पहिले मन्त्रको पढ़ता हुआ यज्ञशालामें प्रवेश करे, मंत्रार्थ (इदम् पृथिव्याः देवयजनम् आ अगन्म) हम इस पृथ्वीसम्बन्धी देवयजनस्थानमें आये हैं, यत्र विश्वेदेवाः अजुषन्त) जहाँ सब देवता प्रीतिसे स्थित हुए, (ऋक्सामाभ्याम् यजुर्भिः सन्तरन्तः रायः पोषेण इषा सम्मदेम) हम ऋग्वेद सामवेद और

यजुर्वेदके मन्त्रोंसे समुद्र समान गम्भीर सामयागको करते हुए धन की पुष्टि और इच्छित अन्नसे हृष्ट और तृप्त हों। दूसरे मन्त्रसे यजमानके बाल भिगोवे। मन्त्रार्थ- (देवीः आपः मे शम् उ सन्तु) प्रकाशयुक्त निर्मल शिर पर लगाए हुए जल मुझ यजमानके निमित्त सुखदायक—हों हों। तीसरे मन्त्रको पढ़ते हुए सूचर कुशाग्रको छुरेसे काटकर जलपात्रमें डाले। मन्त्रार्थ- (ओषधे त्रायस्व) हे कुशतरुण ओषधिके देवता यजमानको छुरेसे रक्षा करो अध्वर्यु चौथे मन्त्रके पढ़े जाने पर नाईको छुरा देय वह यजमानका क्षौर करे। मन्त्रार्थ-(स्वधिते एनम् मा हिंसीः) हे छुरके अधिष्ठात्री देव इस यजमानको पीड़ा मत दो॥ १॥

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वꣳ हि रिप्रम्प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तान्त्वा शिवाꣳ शग्माम्परिदधे भद्रं वर्णम्पुष्यन्॥ २॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, आप इत्यादि और दीक्षेत्यादि दोनों का प्रजा० ऋ० और स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द है, पहिलेका आप और दूसरेका वास देवता है। १ मन्त्रसे तडाग आदि में स्नान करके निकले। मन्त्रार्थ (मातरः आपः अस्मान् शुन्धयन्तु) माताकी समान पालनकर्त्ता हे जलो हमको शुद्ध करो (घृतप्वः नः घृतेन पुनन्तु) पड़ते हुए जलोंसे पवित्र करने वाले हे जल देवतो! क्षरितजलसे हमको शुद्ध करो (हि देवीः आपः विश्वम् रिप्रम् प्रवहन्ति) निश्चय दीप्तिमान् निर्मल जल सम्पूर्ण पापको धो देते हैं (आभ्यः शुचिः आपूतः उत् इत् एमि) इन जलोंसे स्नान करने पर शुद्ध बाहर भीतर पवित्र हुआ मैं इस जलसे ऊपर आता हूँ। दूसरे मन्त्र से स्नानके अनन्तर रेशमी वा कोरी धोती पहिरे फेंट न बाँधे। मन्त्रार्थ—(दीक्षातपसोः तनूः असि) हे क्षौमवस्त्र! तुम दीक्षाभिमानी और तपोऽभिमानी देवताके शरीर समान प्रिय हो (ताम् शिवाम् शग्माम् त्वा वर्णम् पुष्यन् परिदधे) उस दीक्षातपके शरीररूप कल्याणरूप सुखस्पर्श तुमको तुम्हारे धारने से कल्याणरूप कांति को पुष्ट करता हुआ मैं धारण करता हूँ।२।

महीनाम्पयोऽसि वर्चोदा असि वर्चो मे देहि। वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि॥ ३॥

इस कण्डिकामें महीनामित्यादि और वृत्रस्येत्यादि दो मन्त्र हैं, दोनोंका प्रजा० ऋ० भुरिक्त्रिष्टुप्छंद और पहिलेका नवनीत देवता तथा दूसरेका अञ्जन देवता है पहिले मन्त्रसे यजमान शालाके पूर्व में कुशाओं पर पूर्वमुख बैठकर गौके मक्खन का मस्तक से चरण तक उबटन करे। मन्त्रार्थ-(महीनाम् पयः असि) हे नवनीत तुम गौओंके दूधरूप हो। (वर्चोदाः असि मे वर्चो देहि) तेज सम्पादन करने में समर्थ हो मुझको तेज दो। दूसरे मन्त्र से त्रिककुत् पर्वतके उसके न मिलने पर दूसरे अञ्जनको यजमान दाईं आँखमें दो बार और बाईंमें तीनवार आँजे। मन्त्रार्थ-(वृत्रस्य कनीनकः असि) हे अञ्जन तुम वृत्रासुरकी काली पुतलीरूप हो (चक्षुः असि मे चक्षुः देहि) चक्षु इन्द्रियको शक्ति देने वाले हो मुझको दृष्टि दो ॥ ३ ॥

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं तीनोंका प्रजापति ऋ० निचृद्ब्राह्मी पंक्ति छन्द और प्रजापति सविता देवता है। इन ३ मन्त्रोंको सात सात वार पढ़ कर कुशसे शिर पर मार्जन करे। मन्त्रार्थ-(चित्पतिः अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः मा पुनातु) ज्ञानाधीश ब्रह्मा वायुरूप पवित्रसे सूर्यकी किरणोंसे मुझको पवित्र करें। (वाक्पतिः मा पुनातु) वाणी का अधिष्ठात्री देवता मुझको पवित्र करे (सविता देवः मा पुनातु) सर्वान्तर्यामी देव मुझको पवित्र करें। (पवित्रपते तस्य पवित्रपूतस्य ते यत् कामः पुने तत् शकेयम्) हे पवित्रात्माके रक्षक उस पवित्रपूत आपके पवित्रसे मैं पवित्र हुआ हूँ, जिस कामना से मैं पवित्र हुआ हूँ उसको करने को मैं समर्थ होऊँ ॥ ४ ॥

आवो देवास ईमहे व मम्प्रयत्यध्वरे। आ वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ।५।

इस कण्डिकामें १ मन्त्र है; उसका प्र० ऋ० निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्द और आशीर्देवता है। इस मन्त्रको अध्वर्यु यजमानसे कहलावे। मन्त्रार्थ-(देवासः अध्वरे प्रयति धामम् वः आईमहे) देवताओं! इस यज्ञ के वर्त्तमान होने पर आपसे माँगने योग्य यज्ञफलको आपसे माँगते हैं। (देवासः यज्ञियासः आशिषः आ वः हवामहे) हे देवताओं यज्ञसम्बन्धी फलरूप आशीर्वादों के प्राप्त करनेको आपका आवाहन करते हैं

स्वाहा यज्ञम्मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् । स्वाहा द्यावा पृथिवीभ्याᳬ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, चारोंका प्र० ऋ० निचृदार्ष्यनु० छन्द और यज्ञ-देवता है। पहिले मन्त्रसे दोनों हाथकी कन अँगुलियों को सकोड़ कर तथा शेष मन्त्रोंसे और अँगुलियों को सकोड़ कर मुट्ठी बाँध स्वाहा कहे और मौन होकर फिर खोले मन्त्रार्थ-(मनसः यज्ञम् आरभे स्वाहा) चित्तसे यज्ञको आरम्भ करता हूँ, यह सुसिद्ध हो (उरोः अन्तरिक्षात् स्वाहा) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष से यज्ञ लाभ करते हैं (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) द्युलोक और भूलोक से यज्ञ—लाभ करते हैं। (वातात् स्वाहा) प्रवहमानवायु से यज्ञलाभ करते हैं। (स्वाहा) यह अनुष्ठान सुसिद्ध हो ॥६॥

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा। आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में ५ मन्त्र हैं। पहिले ४ का प्र० ऋ० पंक्ति छ० अग्नि देवता है। ५ वें का प्र० ऋ० आर्षी बृहती छ० और लिङ्गोक्त देवता है। इनमें पहिले ४ मन्त्रोंसे अन्न ग्रहण करके ५ वें मन्त्रसे तथा अगली कण्डिका के मन्त्रों से स्थालीमें से स्रुवेके द्वारा दो उद्ग्रभण (कार्यारम्भसूचक) आहुति देय। मंत्रार्थ—(आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहा) यज्ञ करनेकी मनकी प्रबल इच्छाको पूरी करनेके लिये प्रेरक अग्निके अर्थ यह आहुति सुसिद्ध हो (मेधायै मनसे अग्नये स्वाहा) धारण शक्तिके लिये मनके प्रेरक अग्निके अर्थ यह आहुति सुसिद्ध हो (दीक्षायै तपसे अग्नये स्वाहा) व्रतनियमादि दीक्षाकी सिद्धिके लिये तपके प्रवर्त्तक अग्निदेव के अर्थ यह आहुति सुसिद्ध हो (सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहा) मंत्रोच्चारणकी शक्तिके लिये पुष्टिके साधक अग्निदेवके अर्थ यह आहुति सुसिद्ध हो (देवीः बृहतीः विश्वशम्भुवः आपः द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा) प्रकाशवान् महान् जगत्के सुखदाता हे जलो, हे पृथिवी द्युलोक, हे विस्तीर्ण अंतरिक्ष, तुम्हारे अर्थ और बृहस्पतिके अर्थ हवि देते हैं, सुहुत हो ॥७॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, उसका स्वस्त्यात्रेय ऋषि आर्ष्यनुष्टुप्छन्द और सविता देवता है। इस मन्त्रसे औदुम्बरभण का हवन करे। मन्त्रार्थ—(विश्वः मर्त्तः नेतुः देवस्य सवितुः सख्यम् वुरीत) सकल मनुष्योंके कर्मानुसार नियामक दानादि-गुणयुक्त परमात्माके भक्तिभावको चाहो। (पुष्यसे द्युम्नम् वृणीत) कर्म—उपासना ज्ञानकी पुष्टिके लिये अन्नको चाहो (विश्वः राये इषुध्यति स्वाहा) सकल मनुष्य धनके लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं उस परमेश्वरके लिए श्रेष्ठ होम हो ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पात मास्य यज्ञस्योदृचः । शर्म्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, दोनोंका आङ्गिरस ऋ० आर्षीपंक्ति छ० और कृष्णाजिन देवता है। पहिले मन्त्रसे यजमान बैठनेको बिछाई हुई मृगचर्म के शुक्ल कृष्ण रोमोंकी संधिको छुए। मन्त्रार्थ-(ऋक्सामयोः शिल्पे स्थः) हे मृगचर्मकी श्वेतश्याम रेखाओं तुम ऋक्साम के मन्त्रों के अधिष्ठात्री देवताओं के चातुर्य हो (ते वाम् आरभे) उन तुमको स्पर्श करता हूँ (ते मा अस्य यज्ञस्य आ उदृचः पातम्) वह तुम मुझको इस यज्ञकी समाप्ति तक रक्षा करो। दूसरे मन्त्रसे मृगचर्म पर दाहिने जानुसे चढ़े और पश्चिम भागमें उसी दक्षिण जानुसे बैठे। मन्त्रार्थ-(शर्म असि मे शर्म यच्छ) शरणदाता हो मुझे शरण दो। (ते नमः अस्तु मा माहिंसीः) तुम्हें नमस्कार हो मुझको मत पीड़ा दो ॥ ९ ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्पूर्णमृदा ऊर्जम्मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्म्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहस अस्य यज्ञस्योदृचः ॥ १० ॥

इस कण्डिका में ६ मन्त्र हैं। सबका आङ्गिरस ऋ० १।२।३।४। का निचृदार्षी जगती छ० ५। ६ का साम्नीत्रिष्टुप्छन्द १।२।३।४ का मेखला—नीवी-वस्त्र—कृष्ण-विषाण देवता ५।६ का कृष्ण विषाण दण्ड देवता है। पहिले मन्त्रसे यजमान वेणीके आकारकी तिहैरी सन मूँज मिली मेखला धोतीके भीतर बाँधे। मन्त्रार्थ-(आंगिरसी ऊर्क् ऊर्णम्मृदाः असि ऊर्जम् मयि धेहि) हे मेखला तुम अंगिरावंशी ऋषियों से सम्बन्ध रखने वाली अन्नरसरूप ऊनकी समान कोमल हो अन्नरसको मुझमें स्थापन करो। दूसरे मन्त्रसे मेखलाको कमरमें बाँधे मन्त्रार्थ—(सोमस्य नीविः) हे मेखले ! तुम सोम देवताकी नीवी हो। तीसरे मंत्र से शिर पर पगड़ी पहिरे मन्त्रार्थ-(विष्णोः शर्म असि) हे उष्णीष तुम बहुव्यापी यज्ञ की कल्याणरूप हो (यजमानस्य शर्म मुझ यजमानका कल्याण करो। चौथे मंत्र से तीन वा पाँच रेखा वाले काले मृगके सींगको दुपट्टेके किनारेमें बाँधे इससे खुजावे और दक्षिण भौंके ऊपर ललाटमें स्पर्श करे। मन्त्रार्थ (इन्द्रस्य योनिः) हे विषाण तुम जैसे इंद्रके स्थान हो तैसे मेरे होओ। पाँचवें मंत्रसे वेदीके बाहर विषाणसे रेखा करे। मंत्रार्थ—(कृषिः सुशस्याः कृधि) हे विषाण तुम खेतीको सुन्दर धान्य वाली करो। छठे मंत्रसे यजमान अपने मुख तक ऊँचा गूलड़का दण्डा लेकर उसको खड़ा करे। मंत्रार्थ- वनस्पते उच्छ्रयस्व ऊर्ध्वः अस्य यज्ञस्य उदृचः मा अंहसः पाहि-) हे वनस्पतिके दण्ड तुम ऊँचे होवो ऊँचे होकर इस यज्ञकी समाप्ति पर्यंत मुझको पापसे रक्षा करो। ॥ १० ॥

व्रतङ्कृणुत व्रतङ्कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः दैवीन्धियम्मनामहे सुमृडीकामभिष्टये। वर्चोधा यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों के आंगिरस ऋषि पहिलेका स्वराड्ब्राह्मी अनुष्टुप्छंद यज्ञ देवता दूसरेका प्राजापत्या जगती छ० यज्ञ देवता और तीसरेका प्रा० त्रि०छ० और अग्निमित्रावरुणादित्यविश्वेदेवा देवता हैं। पूर्वमुख दीक्षित यजमान आहवनीयके सामने व्रतं कृणुत इस मंत्रको तीन बार पढ़ कर 'अग्निर्ब्रह्म' कह कर वाग्विसर्जन कर ऋत्विजोंको यज्ञकी आज्ञा देय। मंत्रार्थ—(व्रतम् कृणुत व्रतम् कृणुत अग्निः ब्रह्म अग्नि यज्ञः वनस्पतिः यज्ञियः) हे ऋत्विजों व्रतानुष्ठान करो दुग्धको दोहन

आदिसे सम्पादन करो यह यज्ञाग्नि तीनों वेदरूप है यह अग्नि यज्ञसाधनरूप है खदिरादि वनस्पति यज्ञके योग्य होनेसे यज्ञस्वरूप है। दूसरे मन्त्रसे यजमान आचमन करे। मन्त्रार्थ-(अभिष्टये दैवीम् सुमृडीकाम् वर्चोधाम् यज्ञवाहसम् धियम् मनामहे) इस अनुष्ठानकी सिद्धिके लिए देवसंबन्धिनी सुन्दर सुखकारिणी तेजाधारिणी यज्ञका निर्वाह करने वाली बुद्धिको परमात्मासे प्रार्थना करते हैं (सुतीर्थाः नः वशे अस्तु) सर्वप्रशंसनीय बुद्धि हमारे वशमें हो, तीसरे मन्त्रसे यजमान मृत्तिका के पात्रमें दूध पिये। मन्त्रार्थ—(ये मनोजाताः मनोयुजः दक्षक्रतवः देवाः ते नः अवन्तु तेभ्यः स्वाहा) जो इच्छारूप मन से प्रकट हुए रूपादिको देखनेमें मनसे युक्त सत्सङ्कल्प वाले चक्षुरादि इन्द्रियरूप प्राण, वे सब हमको विघ्न दूर कर रक्षा करें। उन देवताओंके अर्थ यह क्षीर सुफल हो ॥११॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, इसका आंगि० ऋ० जगती छ० और आप देवता हैं। इस मन्त्रसे यजमान अपनी नाभिका स्पर्श करे। मन्त्रार्थ-(आपः यूयम् पीताः श्वात्राः भवत) हे दुग्धरूप जलो तुम पिये हुए शीघ्र ही जीर्ण होजाओ (अस्माकम् अन्तरुदरे सुशेवाः ताः अयक्ष्माः अनमीवाः अनागसः ऋतावृधः देवीः अमृताः अस्मभ्यम् स्वदन्तु) हम पीने वालोंके उदरके भीतर सुखकारी वह तुम रोगादि रहित साधारण रोगोंको दूर करने वाले भूँख प्यास आदि दोषोंको दूर करने वाले यज्ञवृद्धिके हेतु प्रकाशवान् मृत्युको हटानेवाले स्वयं मरण धर्म रहित तुम हमारे लिए स्वादयुक्त होवो ॥ १२ ॥

इयन्ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्। अथेदो मुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, तीनों के आंगिरस ऋषि १।३ का प्राजापत्या गा० छ० २ का याजुषी छ० १ का यज्ञदेवता २ का यजमान देवता और ३ का पृथिवी देवता है। १ मन्त्रसे प्रस्तावके समय यजमान काले हिरन के सींगसे मट्ठो या कुशे

तृण ग्रहण करे। मन्त्रार्थ-(इयम् ते यज्ञिया तनूः) हे यज्ञपुरुष ! यह पृथिवी तुम्हारा यज्ञके योग्य शरीर है । अतः यहाँ मूत्रकी अपवित्रता दूर करनेको ढेले वा तृण ग्रहण करता हूँ। दूसरे मन्त्रसे मूत्र त्याग किया जाता है। मन्त्रार्थ (अपः मुञ्चामि न प्रजाम अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीम आविशत) मैं मूत्ररूप जलको छोड़ता हूँ, नकि सन्तानोत्पत्तिके कारण वीर्यको हे मूत्ररूप जल अशुचिरूप तुम दूर पीते समय स्वाहामंत्र से स्वीकृत तुम पृथिवी में प्रवेश करो. वह ग्रहण की हुई मृत्तिका वा तृण दुर्गन्धि दूर करनेको मूत्रकी भूमि पर डाले। मन्त्रार्थ-(पृथिव्या सम्भव) हे लोष्ठ आदि तुम पृथिवी के साथ एकी—भाव को प्राप्त होजाओ ॥ १३ ॥

अग्ने त्वꣳसुजागृहि वयꣳसुमन्दिषीमहि। रक्षाणो अप्रयुच्छन् प्रबुधे न पुनस्कृधि १४

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, उसके आंगिरस ऋ० अनुष्टुप्छन्द और अग्नि देवता है। इस मन्त्रसे यजमान आहवनीय अग्निके दक्षिणमें उत्तरमुख वा पूर्वको शिर करके अग्निकी अपेक्षा नीची भूमिमें सोवे मन्त्रार्थ-(अग्ने त्वं सुजागृहि) हे अग्ने ! आप भले प्रकार जागिये (वयम् सुमन्दिषीमहि) हम सुखसे सोवें (अप्रयुच्छन् नः अ.रक्ष) सावधानी से हमको चारों ओर से रक्षा करो। (नः पुनः प्रबुधे कृधि) हम को फिर प्रबोधके निमित्त उपयुक्त करो १४

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्म आगन्। वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, उसके आंगिरस ऋषि भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्द और अग्नि देवता है। फिर जागकर इस मन्त्रको पढ़े। मन्त्रार्थ—(मे मनः पुनः आगन्) मेरा मन सुषुप्ति कालमें विलीन होकर फिर शरीरमें प्राप्त हुआ (आयुः पुनः) स्वप्नमें नष्टप्राय हुई आयु फिर प्राप्त हुई (प्राणः पुनः आगन्) वही प्राण फिर प्राप्त हुए (मे आत्मा पुनः) मेरा जीवात्मा फिर प्राप्त हुआ (चक्षुः पुनः) चक्षु इंद्रिय फिर प्राप्त हुई (मे श्रोत्रम् पुनः आगन्) मेरी श्रोत्र इन्द्रिय फिर प्राप्त हुई (वैश्वानरः अदब्धः तनूपाः अग्निः अवद्यात् दुरितात् नः पातु) सब मनुष्योंका उपकारक अविनाशी हमारे शरीरका रक्षक ईशानाग्नि निन्दित पापसे हमारी रक्षा करे १५

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आमर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः । रास्वेयत्सोमाभूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का वत्स ऋ० भुरिगार्षी पंक्ति छ० १ का अग्नीषोम देवता और २ का सोम देवता है, १ मन्त्रसे यजमान किसी कारण क्रुद्ध होना पड़ा हो या यज्ञविरुद्ध भाषण करना पड़ा हो उसका दोष दूर करनेको प्रायश्चित्त करे। मन्त्रार्थ-(अग्ने देवः त्वम् आमर्त्येषु व्रतपाः असि) हे अग्ने प्रकाशात्मक तुम मनुष्यपर्यन्त सब प्राणियों में यज्ञ कर्म के रक्षक हो, (यज्ञेषु आईड्यः) यज्ञोंमें सब प्रकारसे पूजन योग्य हो। दूसरे मन्त्रसे अग्निमें हवन करनेको लाए हुए सुवर्णको स्पर्श करे। मन्त्रार्थ—(सोम इयत् रास्व भूयः आभर वसोः दाता सविता देवः नः वसु अदात्) हे सोम! इतना धन दीजिये फिर भी धन दीजिये। क्योंकि धनके दाता सविता देवताने हमको धन दिया था। १६।

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का वत्स ऋषि और आर्षी त्रिष्टुप् छन्द पहिले का हिरण्याज्य देवता और दूसरेका वाग्देवता है। पहिले मन्त्रसे अध्वर्यु ध्रुवे के आज्यसे जुहूको ४ वार भरकर उस घीमें दर्भसे बँधे हुए सुवर्णको छोड़े मन्त्रार्थ—(शुक्र एषा ते तनूः एतत् वर्चः तया संभव भ्राजम् गच्छ) हे दीप्यमान अग्ने यह घृत तुम्हारा शरीर है, यह सुवर्ण तेज है, इन दोनोंसे एकीभाव को प्राप्त हूजिये सुवर्णमें की कान्ति को प्राप्त हूजिये। दूसरे मन्त्रसे अग्निमें समिदाधान करता हुआ होम करे मन्त्रार्थ-(जूः असि मनसा धृता विष्णवे जुष्टा) हे वाणी तुम वेगवान् हो वा जीवन देने वाली हो मनसे धारण की हुई यज्ञ पुरुषके लिये प्रीतियुक्त हो १७ ॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा । शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका वत्स ऋ० स्वराडार्षी बृहती छ० और वाक्य हिरण्य देवता है। इस मन्त्र से जुहूमेंके तृणबद्ध सुवर्ण को निकाल कर वेदी पर धरे।

मन्त्रार्थ—(तस्याः ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वाः यन्त्रम् अशीय स्वाहा) उस तुझ सत्य अनुज्ञा वाली वेदवाणीकी आज्ञामें वर्त्तमान मैं शरीर के नियमनकी दृढताको प्राप्त करूँ, इस घृतकी सुन्दर आहुति हो (शुक्रम् असि चन्द्रम् असि अमृतम् असि वैश्वदेवम् असि) हे सुवर्ण तुम दीप्यमान हो आल्हादके देने वाले हो जीवनके उपाय हो सब देवताओं के सम्बन्धी हो। क्योंकि-सब देवता सुवर्णदानसे तृप्त होते हैं

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी। सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीताम्पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९॥

इस कण्डिका के मन्त्रका वत्स ऋ० भुरिग्ब्राह्मी पंक्ति छ० और वाग्देवता है। इस मन्त्रसे वाग्रूप अध्यारोप कल्पना करके सोमक्रयणी गौकी स्तुति की जाती है। मन्त्रार्थ—(चित् असि मनासि धीः असि) हे सोमक्रयणी गौ ! तुम चिदात्मा हो ब्रह्माविष्णुमहेशरूप पूज्य हो बुद्धिस्वरूपा हो (दक्षिणा असि क्षत्रिया असि यज्ञिया असि) दक्षिणारूप हो दाता की कष्टसे रक्षा करने वाली हो यज्ञसम्बन्धिनी होनेसे यज्ञके योग्य हो (अदितिः असि उभयतःशीर्ष्णी) अखंडिता देवमातारूप हो पृथिवी और स्वर्ग दोनों ओर शिर रखने वाली अर्थात् दिव्य एवं भौम भोगोंकी देने वाली हो (सा नः सुप्राची सुप्रतीची एधि) वह तुम हमारे लिए पूर्वमुखी पश्चिममुखी होवो (मित्रः पदि त्वा बध्नीताम्) सूर्य दक्षिणपादमें तुझको बाँधे (पूषा अध्यक्षाय इन्द्राय अध्वनः पातु) पूषा देवता यज्ञके स्वामी इन्द्रदेवताकी प्रसन्नताके अर्थ मार्गमें तुम्हारी रक्षा करें ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनुपितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका वत्स ऋ० पूर्वार्द्धका साम्नी जगती और उत्तरार्द्धका भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्द वाक् देवता तथा गौ देवता हैं। इससे भी गौ की स्तुति की जाती है। मन्त्रार्थ-(त्वा माता अनुमन्यताम्) हे गौ हे वाक् सोम लानेमें प्रवृत्त तुमको तुम्हारी पृथिवी माता आज्ञा देय (पिता अनु) पिता स्वर्ग आज्ञा देय (सगर्भ्यः भ्राता अनु) सहोदर भाई ईश आज्ञा देय (सयूथ्यः सखा अनु) एक यूथमें प्रकट होने वाला सखा आत्मप्रतिबिम्ब आज्ञा देय (देवि सा इन्द्राय सोमम्

देवम् अच्छेहि) हे दिव्यगुणयुक्त सोमक्रयणी वह तुम इन्द्र के अर्थ सोमलता देवता को पानेको जाओ (रुद्रः त्वा वर्त्तयतु) रुद्र देवता तुमको हमारी ओरको लौटावें (सोमसखा स्वस्ति पुनः एहि) सोमसहित तुम क्षेमपूर्वक फिर आओ ॥ २० ॥

वस्वस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ॥ २१ ॥

इस मन्त्रका वत्स ऋ० विराडार्षी बृहती छन्द और वाक् गौ देवता हैं। इस मन्त्रसे सोमक्रयणीको उत्तरकी ओर गमन कराके उसके पीछे २ जाकर स्तुति करें। मन्त्रार्थ—(वस्वी असि अदितिः असि आदित्या असि रुद्रा असि चन्द्रा असि) हे वाक् हे गौ तुम वसुदेवताकी शक्तिरूप हो देवमातारूप हो द्वादश आदित्यरूप हो एकादश रुद्ररूप हो चन्द्ररूप हो (बृहस्पतिः त्वा सुम्ने रम्णातु) बृहस्पति देवता तुमको सुखमें रमण करावें (रुद्रः वसुभिः आचके) रुद्र देवता आठ वसुओंके साथ तुम्हें रक्षा करनेकी कामना करें ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत्स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म सोतो रायः ।२२।

इस कण्डिका में ७ मन्त्र हैं, सबका वत्स ऋ० और ब्राह्मी पंक्ति छ० है, देवता पहिलेका आज्य दूसरेका स्थान तीसरेका पद चौथे और पाँचवेंका यजमान छठेका अध्वर्यु और सातवें का पत्नी है। पहिले मन्त्रसे सोमक्रयणी के पीछे छः पग चल कर जहाँ सातवाँ पग पड़ कर खुर का चिन्ह हो उसमें सोने का टुकड़ा डाल कर उसपर घीकी आहुति देय। मन्त्रार्थ—(अदित्याः पृथिव्याः मूर्धन् देवयजने त्वा आजिघर्मि इडायाः पदम् असि घृतवत् स्वाहा) अखंडित पृथिवीके शिरःस्वरूप हे घृत देवताओंके यज्ञयोग्य स्थानमें तुमको टपकाता हूँ, हे स्थान तुम गौके चरणचिह्न हो घृतयुक्त श्रेष्ठ होम होय। दूसरे मन्त्रसे अध्वर्यु गोचरणचिह्नमें स्फ्यसे ३ रेखा करें मन्त्रार्थ—(अस्मे रमस्व) हे गोपद तुम मुझमें क्रीड़ा करो। तीसरे मन्त्रसे उसमें की मट्टी सोनेको हटाकर हाथसे ले थाली में डाले। मन्त्रार्थ-(अस्मे ते बन्धुः) हम तुम्हारे बन्धुरूप हैं। चौथे मन्त्रसे गौके उठाए हुए पदके स्थान पर जल डालकर

वह पद यजमानको देय। मन्त्रार्थ—(त्वे रायः) हे यजमान तुममें धन इस पदरूप से स्थित हो, पाँचवें मन्त्रसे यजमान ग्रहण करें मन्त्रार्थ-(मे रायः) यह मेरे धन वा पशु हैं। छठे मन्त्रसे अध्वर्यु अपने हृदय को छुए। मन्त्रार्थ-(वयम् रायः पोषेण मा वियौष्म) हम धनकी पुष्टिसे न वियुक्त हों अध्वर्यु यजमानसे पद लेकर पत्नीको देय और सहकारी अध्वर्यु ७ वें मन्त्रको पढ़े, मन्त्रार्थ-(तोतः रायः) ब्रह्मा विष्णु-महेश परारूपधारी पत्नीसहित यजमानको धन वा पशु प्राप्त हों ॥ २२ ॥

समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा। मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहन्तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ २३ ॥

इस मन्त्रका वत्स ऋ० आस्तारपंक्ति छन्द और वाग्देवता है। सोमक्रयणीको देखने वाली पत्नीसे अध्वर्यु यह मन्त्र पाठ करावे। मन्त्रार्थ—(देव्या दक्षिणया उरुचक्षसा धिया समख्ये) हे सोमक्रयणी गौ प्रकाशवान् यज्ञकी प्रधान दक्षिणाके योग्य विशाल दर्शन वाली तेरे द्वारा मैं बुद्धिपूर्वक यज्ञपुरुषको देखती हूँ (मे आयुः मा प्रमोषीः) तुम मेरी आयुको मत खंडित करो (तव आयुः अहम् मा उ) तेरी आयु को मैं खण्डित न करूँ (देवि तव सन्दृशि वीरम् विदेय) हे पराशक्ति तेरा सुन्दर दर्शन होने पर बली पुत्रको प्राप्त करूँ २३

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाꣳ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रहो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं, १।२।३ का वत्स ऋ० ब्राह्मी जगती छ० लिङ्गोक्त देवता ४ का वत्स ऋ० याजुषी पंक्ति छ० और लिङ्गोक्त देवता हैं। १।२।३ मंत्रको अध्वर्यु सोमकी ओर जाने वाले यजमानसे कहलावे, मंत्रार्थ-(सोमाय मे इति ब्रूतात् ते एषः भागः गायत्रः) हे अध्वर्यु सोमाधिष्ठात्री देवताके अर्थ मेरा यह वचन कहो, कि—तुम्हारा यह भाग गायत्री सम्बन्धी है १। (ते एषः भागः त्रैष्टुभः इति मे सोमाय ब्रूतात्) तुम्हारा यह भाग त्रिष्टुप्छन्दसम्बन्धी है, ऐसा मेरा वचन

सोमदेवताके अर्थ कहो २। (एषः ते भागः जागतः इति मे सोमाय ब्रूतात्) यह तुम्हारा भाग जगतीछन्दसम्बन्धी है, यह मेरा वचन सोमदेवतासे कहो (छन्दोनामानाम् साम्राज्यम् गच्छ इति मे सोमाय ब्रूतात्) तुम उष्णिक् आदि सब छन्दोंके आधिपत्य को पाओ यह मेरा वचन सोम देवतासे कहो ३। यजमान पूर्वमुख बैठ कर इस ४ मंत्रसे सोम स्पर्श करें, मंत्रार्थ-(आस्माकः असि शुक्रः ते ग्रह्यः विचितः त्वा विचिन्वन्तु) हे सोम क्रयमार्गसे प्राप्त हुए तुम हमारे हो यह शुक्रनामक सब तुम्हारे ग्रहण करने योग्य है, यह सब महात्मा तुम्हारा सारासार जाननेमें समर्थ हैं, सारासार विचार कर तुम्हारे सारभागको ग्रहण करें

अभित्यन्देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवसꣳ रत्नधामभि प्रियम्मतिङ्कविम् । ऊर्ध्वा यस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों का वत्स ऋ० १ का विराट् ब्राह्मी जगतीछंद २ का निचृदार्षी गायत्रीछंद ३ का यजुश्छंद और तीनोंका सविता देवता है एक मंत्रसे सोम बाँधनेके कपड़ेको दुहरा तिहरा करके उसमें १० चुटकी सोम डाले, मंत्रार्थ (तम् ओण्योः देवम् कविक्रतुम् सत्यसवसम् रत्नधाम अभिप्रियम् मतिम् कविम् सवितारम् अभ्यर्चामि) उस द्यावा पृथ्वी के प्रकाशक ब्रह्मसङ्कल्पसे प्रकट सत्य प्रेरणा वाले रत्नोंके धाम समस्त चराचरके प्रिय अनूपम कल्पना शक्ति वाले वेदविद्याके उपदेशक सूर्यदेवको सब ओरसे पूजता हूँ (यस्य अमितिः ऊर्ध्वा भाः सवीमनि अदिद्युतत्) जिस सूर्यकी अनन्त आकाशाभिमुखी दीप्ति आकाश अथवा पराप्रकृतिरूप ब्रह्माण्डको प्रकाशित करती है। (हिरण्यपाणिः सुक्रतुः कृपाः स्वः) ज्योतिःस्वरूप हाथ वाले सत्यसंकल्प जिसकी कृपासे स्वर्ग रचा गया है, उसकी पूजा करता हूँ।

दूसरे मंत्रसे उष्णीष के दोनों सिरे मिलाकर गाँठ देय। मंत्रार्थ—(प्रजाभ्यः त्वा) हे सोम! प्रजाके उपकारके अर्थ तुझको बाँधता हूँ। तीसरे मंत्रसे गाँठके बीचमें अँगुली देकर छिद्र करे, जिससे उष्णीषमें बँधे सोमका श्वास न रुके। मंत्रार्थ-(प्रजाः त्वा अनुप्राणन्तु त्वम् प्रजाः अनुप्राणिहि) हे सोम! प्रजा, श्वास लेते हुए तुझको, अनुसरण करके जीवित रहें, तू, श्वास लेनेवाली, प्रजा का, अनुसरण कर ॥ २५ ॥

शुक्रन्त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेण मृतममृतेन सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषम्पुषेयम् ॥ २६ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं। सबका वत्स ऋषि, भुरिग् ब्राह्मी पंक्ति छन्द और देवता पहिलेका सोम, दूसरे तीसरेका लिङ्गोक्त, तथा चौथेका अजा है। यजमान को सुवर्णका स्पर्श कराकर पहला मंत्र उच्चारण करवावे। मन्त्रार्थ-(चन्द्रम्, अमृतम्, शुक्रम्, त्वा, शुक्रेण, अमृतेन, चन्द्रेण क्रीणामि) हे सोम ! तुम आल्हाद करनेवाले, अमृतकी समान स्वादु, दीप्तिमान् हो, तुमको, दीप्तिमान् विनाशरहित, आल्हादकारक, सुवर्णसे क्रय करता हूँ। दूसरे मंत्रसे सोना सोम बेचने वाले को देकर उसको कंपित करे। मन्त्रार्थ (गोः, ते, सग्मे) हे सोम बेचने वाले, सोमके मूल्यमें दी हुई गौ, तेरी गौ, फिर लौटकर यजमानके घरमें स्थित हो। तीसरे मन्त्र से, सोमविक्रेता को फिर सोममूल्य की एक गौ देय सुवर्ण फेर लेय। मन्त्रार्थ-(ते, चन्द्राणि, अस्मे) हे सोमविक्रेता तुम को दिये हुए सुवर्ण, हमारे पास आवें। चौथे मन्त्रके प्रथमार्धको पढ़ता हुआ पश्चिमाभिमुख अजाके प्रति कहे दूसरे आधेको पढ़कर सोमक्रयको उत्तेजित करे मन्त्रार्थ-(तपसः, तनूः प्रजापतेः, वर्णः, असि) हे अजे तुम पुण्यका शरीर, प्रजापति का शरीर हो। (परमेण, पशुना, क्रीयसे, सहस्रपोषम्, पुषेयम्) हे सोम ! उत्तम लक्षणवाले, इस अजारूपी पशुद्वारा तुम क्रय किये जाते हो, तुम्हारे अनुग्रहसे पुत्रपशु आदि सहस्रोंकी पुष्टि जिस प्रकार हो तैसे, मैं पुष्ट हूँ ॥ २६ ॥

मित्रो न एहि सुमित्रध इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम्। स्वास्थ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानावेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वम्मा वोदभन्२७

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, तीनोंका वत्स ऋ०, भुरिग्ब्राह्मी पंक्ति छन्द, पहिले दूसरेका सोम देवता और तीसरेका सोम रक्षक देवता है। पहिले मन्त्रसे बायें हाथ से सोमविक्रेताको अजा देकर दाहिने हाथ से सोम लेय। मन्त्रार्थ-(मित्रः, सुमित्रधः, नः, एहि) हे सोमसखा प्रीतियुक्त, मित्रों के पोषक तुम, हमारे पास आओ। दूसरे मंत्रसे अध्वर्यु यजमानकी दाहिनी ऊरुपर वस्त्र बिछा कर उसपर सोम धरे, मंत्रार्थ-

(उशन्, स्योनः, इन्द्रस्य, उशन्तम्, स्योनम, दक्षिणम्, ऊरुम्, आविश) हे सोम ऊरुको इच्छा करने वाले, सुखरूप तुम, ऐश्वर्यवान् यजमान की, सोमकी इच्छुक, सुखकारी, दाहिनी जंघा पर स्थित होवो सोम बेचने वालेको देखता हुआ यजमान तीसरे मंत्रको जपे और गौ आदि सोमके मूल्यको सोमविक्रयी के अधिदेवता भूतगन्धर्वोंको निवेदन करे मंत्रार्थ-(स्वान, भ्राज, अंबारे, बम्भारे, हस्त, सुहस्त, कृशानो, वः, एते, सोमक्रयणाः, तान्, रक्षध्वम्, वः, मा, धवन्) हे शब्दोपदेश करने वाले, प्रकाशवान्, पापके शत्रु विश्वके पोषक सर्वदा प्रसन्न सुन्दर हाथ वाले, दुर्बलको जिवाने वाले सोमरक्षक सात देवता विशेष, तुम्हारे, यह सोमक्रय करने पर प्राप्त आगे स्थापित पदार्थ हैं, तिनको रक्षा करो, तुमको शत्रु पीड़ा न दें ॥ २७ ॥

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषादेस्थाममृताꣳ अनु २८

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनोंका वत्स ऋ०, छन्द पहिलेका साम्नी बृहती और दूसरेका साम्नी उष्णिक् देवता तीनों का अग्नि है। पहिला मन्त्र सोम ग्रहण करने वाले यजमानसे पढ़वावै। मन्त्रार्थ-(अग्ने, दुश्चरितात्, मा, परिबाधस्व, सुचरिते, मा, आभज) हे अग्निदेव, पाप से मुझको सब ओरसे हटाओ, सदाचार रूप पुण्य में मुझ यजमानको सब प्रकार से स्थापित करो। दूसरे मन्त्रसे यजमान के ऊरुके ऊपरसे सोमको हाथसे ऊपरको उठावै। मन्त्रार्थ-(उदायुषा, स्वायुषा, अमृतान्, अनु, उदस्थाम्) उत्तम चिरजीवन रूप आयुसे, तथा याग दानादिके द्वारा शोभन हुये आयुसे, सोमादि देवताओं को लेकर मैं उठता हूँ ॥ २८ ॥

प्रतिपन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दते वसु २९

इस मन्त्र का वत्स ऋ० निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द और पथ देवता है। इस मंत्र को पढ़कर अपने शिर पर सोमको रखकर और शिर पर हाथ रखकर शकट की ओर को जाय। मन्त्रार्थ—(स्वस्तिगाम् अनेहसम् पन्थाम् प्रत्यपद्महि) क्षेमपूर्वक गमन करने योग्य पापरूप चोर आदि बाधासे रहित पथिकोंके सुखदायक मार्गको हम प्राप्त हों (येन विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति वसु विन्दते) जिस मार्गसे पुरुष सकल चोरादिकोंको सब प्रकारसे दूर करता है, धन और मोक्षको पाता है ॥ २९ ॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीद । अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरि-

माणं पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥३०॥

इस कण्डिकामें ३ मन्त्र हैं, ऋषि तीनों का वत्स। छन्द पहिलेका स्वाराड् याजुषी त्रिष्टुप् दूसरेका त्रिराडार्षी त्रिष्टुप् और तीसरेका स्वाराड् ब्राह्मी है। देवता पहिले का कृष्णाजिन दूसरेका सोम और तीसरे का वरुण है। पहिले मन्त्रसे शकटके ऊपर मृगचर्म बिछावे। मन्त्रार्थ—(अदित्याः त्वक् असि) हे कृष्णाजिन तुम पृथिवीके त्वचारूप हो। दूसरे मन्त्रसे उस पर सोम को गाँठ रक्खे। मन्त्रार्थ-(अदित्यै सदः आसीद) भूमिसम्बन्धी स्थान पर सब प्रकार स्थित होवो। तीसरा मन्त्र सोमको स्पर्श करता हुआ पढ़े। मन्त्रार्थ-(वृषभः द्याम् अन्तरिक्षम् अस्तभ्नात्) श्रेष्ठब्रह्मरूप वरुण द्युलोकको अन्तरिक्षको स्थिर करता हुआ (पृथिव्याः परिमाणम् अमिमीत) पृथिवीके विस्तारको जानता हुआ (सम्राट् विश्वा भुवनानि आसीदत विश्वा इत वरुणस्य व्रतानि) सम्यक् प्रकाशवान् ब्रह्म सम्पूर्ण संसार में प्रविष्ट हुआ सब ही वरुणदेवके कर्म हैं अर्थात् वह सदा जगन्निर्माणादि कर्म करता है ॥ ३० ॥

वनेषु व्यन्तरिक्षन्ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु । हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निन्दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका वत्स ऋषि विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द और वरुण देवता है सोम बाँधनेके वस्त्रसे सोमको सब ओर से बाँधकर इस मन्त्रको जपे, मन्त्रार्थ-(वरुणः वनेषु अन्तरिक्षम् विततान) वरुणस्वरूप विष्णुने वनके वृक्षोंके अग्रमें आकाश को फैलाया है (अर्वत्सु वाजम् उस्रियासु पयः हृत्सु क्रतुम् विक्षु अग्निम् दिवि सूर्यम् अद्रौ सोमम्) पुरुषोंमें वीर्यको गौओंमें दुग्धको हृदयों में संकल्पात्मक मनको प्रजाओंमें जाठराग्नि को द्युलोकमें सूर्यको पर्वतोंमें बल्लोरूप सोमको स्थापित किया है ।३१।

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ३२

इस कण्डिकाके मन्त्रका वत्स ऋषि निध्रुवदार्ष्यनु० छ० और कृष्णाजिन देवता है। इस मन्त्रको पढ़ कर आसनके लिए जो दो मृगचर्म हैं, उनमेंसे एकको शकटके पूर्वभाग में जुएके समीप ऊँचे दण्डमें लगावे यदि आसनका मृगचर्म एक ही हो तो उसकी ग्रीवाकी ओरके भागको अलग करके शकटके पूर्वभागमें लगावे, मन्त्रार्थ-

(सूर्यस्य चक्षु अग्नेः अक्ष्णः कनीनकम् आरोह) हे कृष्णाजिन तुम-सूर्यके नेत्र और अग्निके नेत्रके तारे पर आरोहण करो (यत्र विपश्चिता आजमानः एतशेभिः ईयसे) जहाँ इन दोनोंके दर्शन वा प्रकाशमें सर्वज्ञ सूर्य और अग्निसे प्रकाशित होता अश्वों के द्वारा गमन करता है। क्योंकि- सूर्य और अग्निकी दृष्टि पड़नेसे मार्ग राक्षसों की बाधासे मुक्त होता है ॥ ३२ ॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का व० ऋषि ऊर्ध्वबृहती छ० और अनड्वाह देवता हैं इससे बैलोंको शकटमें जोड़े। मंत्रार्थ— (उस्रौ धूर्षाहौ अनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ एतम् युज्येथाम् स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम्) हे अनड्वानो शकटके धुरको धारण करनेमें समर्थ उत्साह वाले सींगोंसे बालकोंको न मारने वाले ब्राह्मणों को यज्ञमें प्रेरणा करने वाले तुम दोनों इस शकटमें जुत जाओ कुशलपूर्वक यजमानके घरोंको जाओ ॥ ३३ ॥

भद्रो मेसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभिधामानि। मा त्वा परिपरिणो विदन्मा त्वा परिपन्थिनो विदन्मा त्वा वृका अघायवो विदन्। श्येनो भूत्वा परावत यजमानस्य गृहान् गच्छतन्नौ संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका व० ऋ० भुरिगार्षी गायत्री और भु० अ० वृ० छंद तथा सोम देवता है। सोम लेकर यज्ञशालामें जाने वाले यजमानसे अध्वर्यु यह मन्त्र कहलावे। मन्त्रार्थ-(मे भद्रः असि भुवः पते विश्वानि धामानि अभिप्रच्यवस्व) हे सोम तुम मुझ यजमानके लिए कल्याणरूप हो, हे यजमान अध्वर्यु आदि सबके पालक सब पत्नीशाला हविर्धानादि स्थानों को देखकर चलो (त्वा परिपरिणः मा विदन्) तुमको सब ओर फिरने वाले तस्कर न जाने (परिपन्थिनः त्वा मा विदन्) यज्ञद्रोही तुमको न जानें (अघायवः वृकाः त्वा मा विदन्) दूसरोंका अपराध करने वाले दुर्जन तुमको न जाने (श्येनः भूत्वा परापत) श्येनकी समान वेगगामी होकर

सन्मुख चलो (यजमानस्य गृहान् गच्छ तत् नौ संस्कृतम्) यजमान के घरों को जाओ वह यज्ञस्थान हम तुम दोनोंके लिए सब सामग्रीसे युक्त है ॥ ३४ ॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महोदेवाय तदृतꣳ सपर्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ ३५ ॥

इस क० के मंत्र का व० ऋ० नि० जगती छ० और सूर्यदे० है । इसको पढ़ कर प्रतिप्रस्थाता शालाके पूर्वमें कृष्णसारङ्ग पशुको, उसके अभावमें लोहित सारंगको लेकर स्थित होय । मन्त्रार्थ-(मित्रस्य, वरुणस्य, चक्षसे, महोदेवाय, दूरेदृशे, देव जाताय केतवे दिवः पुत्राय सूर्याय नमः तत् ऋतम् सपर्यत शंसत) चराचरके मित्र दुःखोंको दूर करने वाले सूर्यदेवताके सन्मुख महातेजःस्वरूप प्रकाशवान्, सब जगत्को दूरसे ही देखने वाले देवताओं पर अनुग्रह करनेको उत्पन्न हुए प्रज्ञानघन द्युलोकके पुत्रवत् प्रिय, सूर्य देवताके अर्थ नमस्कार है उस सत्यब्रह्म को भजो, तथा उनकी स्तुति करो ॥ ३५ ॥

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्जनो स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥ ३६ ॥

इस कण्डिकामें ५ मंत्र हैं । ऋषि सब का वत्स, छन्द विराड्ब्राह्मी बृहती और देवता वरुण हैं । पहलेको पढ़कर शालाके समीप शकटको पूर्वमुख वा उत्तरमुख खड़ाकर तिपाएसे बाँधे । मंत्रार्थ-(वरुणस्य उत्तम्भनम् असि) हे काष्ठाभिमानी देवता तुम वरुण देवताकी प्रीतिके लिए इस शकटमें वस्त्रबद्ध सोमके उन्नमन हो दूसरे मंत्रसे दोनों बैलोंको शम्यासे मुक्त करे । मंत्रार्थ-(वरुणस्य स्कम्भसर्जनो स्थः) हे शम्ये तुम दोनों वरुण की रोकने वाली हो । तीसरे मन्त्रसे अध्वर्यु आदि चारों ऋत्विज् गूलड़की बनी हुई, नाभि प्रमाण वाले पायोंकी, फैली कन अंगुलिसे मुट्ठी तक नापमें लम्बी दिव्य कपासके डोरोंसे बुनीहुई मञ्चिकाको आसन्दी कहते हैं, उसे सोम रखनेको शकटके समीप लावे और हाथसे स्पर्श करे मन्त्रार्थ-(वरुणस्य ऋतसदनी असि) हे आसन्दी तुम वरुण देवताकी प्रीतिके लिए, यज्ञकी प्राप्तिका स्थान हो । चौथे मन्त्रसे मञ्चिका पर मृगचर्म बिछावे । मन्त्रार्थ-(वरुणस्य

ऋतसदनम् असि) हे कृष्णाजिन तुम वरुणकी प्रीतिके लिए अथवा बद्ध सोमके यज्ञके निमित्त बैठनेका स्थान हो। पाँचवे मंत्रसे मृग चर्मपर सोमवल्लीको गाँठ धरे मन्त्रार्थ-(वरुणस्य ऋतसदनम् आसीद) हे सोम तुम वरुणदेव की प्रीतिके लिए लाए गए हो, यज्ञसम्बन्धी आसन्दी पर बिछे हुए मृगचर्म पर सुखसे स्थित हूजिये ॥ ३६ ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥ ३७ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका गोतम ऋ० निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द और सोमदेवता है। सोमको स्थापित कर अध्वर्यु यजमान से यह मंत्र कहलावे। मन्त्रार्थ-(सोम ते या धामानि हविषा यज्ञम् यजन्ति) हे सोम तुम्हारे जिन प्रातःसोमादि स्थानोंको पाकर तुम्हारे रसरूप हविसे यज्ञपुरुषका पूजन करते हैं (ते ता विश्वा परिभूः अस्तु) तुम्हारे वह सम्पूर्ण स्थान तुमसे सब ओरसे व्याप्त हों (गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः अवीरहा दुर्यान् आचर) घरकी वृद्धि करने वाले, यज्ञको प्राप्त कराने वाले हम ऋत्विज् वा यजमानके पुत्र पौत्रादिसे सम्पन्न तुम वीर पुरुषोंको पालने वाले, यज्ञगृहोंको प्राप्त हूजिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ-भारद्वाजगोत्रोद्भूतगौडवंशावतंस-
श्रीमद्भोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा उव्वटमहीधरादिप्राचीन-
भाष्योंके अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भावार्थ
सहित शालागमनाद्याचानान्त चतुर्थ अध्याय समाप्त.

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

चौथे अध्यायमें ऋत्विज् सहित यजमानके शालाप्रवेशसे लेकर सोमक्रय करके शाला आगमन तकके मंत्र कहे अब पाँचवें अध्याय का प्रारम्भ होता है, जिसकी आदिमें आतिथ्येष्टि हविर्ग्रहणादिके मन्त्रोंका वर्णन है--

ॐ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥ १ ॥

इस कण्डिकाके मंत्रका गौतम ऋषि, स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्द और विष्णु-देवता है। इस मंत्रसे हविर्ग्रहण करे मन्त्रार्थ-१ (अग्नेः तनूः असि विष्णवे त्वा) हे सोम तुम अग्निके शरीर हो, परमात्मा की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ। २ (सोमस्य तनूः असि विष्णवे त्वा) तुम सोम देवता के शरीर हो विष्णु के अर्थ तुमको ग्रहण करता हूँ। ३ (अतिथेः आतिथ्यम् विष्णवे त्वा) हे सोम तुम यज्ञ-मंडपमें आयेहुए अतिथिके अतिथिसत्कार से सन्तुष्ट करने वाले हो, विष्णुदेवकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ। ४ (सोमभृते श्येनाय विष्णवे त्वा) हे सोम सोम लानेवाले शत्रुके दमन करनेको श्येन की समान उद्योगी मुझ यजमानके कल्याणार्थ यज्ञाधिष्ठात्री विष्णुदेवताके प्रसन्नतार्थ तुमको ग्रहण करता हूँ। ५ (रायस्पोषदे अग्नये त्वा विष्णवे त्वा) धन सम्बन्धी पुष्टि देने वाले अग्निके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ यज्ञपति विष्णुदेव की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ १

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि। गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

इस कण्डिकामें ८ मंत्र हैं, ऋषि सब का गौतम छंद पहिले ५ का आर्षी गायत्री ६। ७। ८ का आर्षी त्रिष्टुप् देवता १ से ५ तकका शकलादि ६ से ८ तकका अग्नि है, पहिलेसे यज्ञसंबन्धी वृक्षके टुकड़ेको लेकर वेदी पर उत्तरको अग्रभाग करके धरे। मंत्रार्थ-(अग्नेः जनित्रम् असि) हे खण्ड तुम अग्निके उत्पन्न करने वाले हो, दूसरेसे उस टुकड़े पर कुशतरुणको रक्खे मन्त्रार्थ-(वृषणौ स्थः) हे दोनों कुश तुम सींचने वाले अर्थात् अरणिकाष्ठोंमें अग्नि उत्पन्न करनेकी शक्ति देने वाले हो। तीसरेसे इन दोनों कुशाओं पर नीचेकी अरणिको उत्तराग्र धरे मन्त्रार्थ-(उर्वशी असि हे नीचेकी अरणि! अग्निकी उत्पत्ति के लिए हमने तुमको स्त्रीरूप माना है अब तुम उर्वशी नाम वाली हो, चौथे मन्त्रसे आज्यस्थालीसे उत्तरारणिका स्पर्श करे।

मन्त्रार्थ-(आयुः असि) हे स्थालीके आज्य तुम-अग्निकी आयु हो। पाँचवें मन्त्रसे नीचेको अरणि पर उत्तर अरणि धरे। मंत्रार्थ-(पुरूरवा असि) हे उत्तरारणि! हम अग्नि उत्पन्न करनेके निमित्त तुमको पुरुवरूपसे कल्पना करते हैं अतः तुम पुरूरवा नामक हो। ६। ७। ८ मन्त्र से दोनों अरणियोंको मथकर अग्नि निकाले मन्त्रार्थ (गायत्रेण छन्दसा त्वा मन्थामि) गायत्री छन्दके अधिष्ठाता अग्नि देवता के बलसे तुमको मन्थनसे प्रकट करता हूँ। (त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वा मन्थामि) त्रिष्टुप् छन्दके अधिष्ठाता इन्द्रदेवताके बलसे तुम को दो अरणियोंके द्वारा मथता हूँ (जागतेन छन्दसा त्वा मन्थामि) हे अग्ने जगती छन्दके अधिष्ठाता विश्वेदेवाके बलसे तुम को दो अरणीके द्वारा मथता हूँ ॥ २ ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिञ्जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका ऋ० गो० छन्द आर्षीपंक्ति और देवता निर्मथ्याहवनीयाग्नि है, इससे मथीहुई अग्निको आहवनीय अग्निके साथ युक्त करे। मन्त्रार्थ— (जातवेदसौ नः समनसौ सचेतसौ अरेपसौ भवतम्) हे दोनों अग्नि! हमारी कार्यसिद्धिके लिए एकाग्रमन समानचित्त हम पर कोप न करने वाले हुजिये (यज्ञम् मा हिंसिष्ट यज्ञपतिम् मा) यज्ञका मत नष्ट करो यज्ञपति को मत क्षतिग्रस्त करो (अद्य नः शिवौ भवतम्) आज हमारे निमित्त कल्याणस्वरूप हुजिये ॥ ३ ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपा वा। स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्स्वाहा ॥ ४ ॥

इस कण्डिकाके मंत्रका ऋ० गोतम, छंद आ० त्रि० और देवता अग्नि है। स्रुवे से आज्यस्थालीमेंका घी लेकर डाली हुई अग्निपर इस मन्त्रसे आहुति देय। मंत्रार्थ (ऋषीणाम्, पुत्रः, वा, अभिशस्तिपाः, अग्नि अग्नौ, प्रविष्टः चरति, सः, नः, स्योनः, सुयजा, इह, सदम्, अप्रयुच्छन्, देवेभ्यः, हव्यम्, यज, स्वाहा) वेदवेत्ता ऋषियोंके उत्पन्न कियेहुए ऋषिकुमार, या वैकल्यनिमित्तक अभिशापसे या दुष्टोंके आक्रमणसे

रक्षा करनेवाला, मथित अग्नि, आहवनीय अग्निमें प्रविष्ट हुआ, हविको भक्षण करता है वह अग्नि तुम, हमको, सुखरूप होकर, सुन्दर यागसे इस स्थानमें सदा प्रमादरहित होकर इन्द्रादि देवताओंके अर्थ हवि ले जाओ तुम्हारे निमित्त घृतका श्रेष्ठ होम हो

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वने ओजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्य-

नाधृष्यन्देवानामोजोनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳस्विते मा धाः

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं ऋषि दोनों का गोतम छन्द पहिलेका आर्ष्युष्णिक्, दूसरेका भुरिगार्षी पंक्ति देवता पहिलेका वायु और दूसरेका आज्य है । पहिलेको पढकर व्रतप्रदान पात्रमें स्रुवेसे दो वार आज्य लेय। मन्त्रार्थ—(त्वा परिपतये तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वने ओजिष्ठाय आपतये परिपतये गृह्णामि) हे आज्य ! तुझको सर्वज्ञ सब जगत्के विस्तारकर्ता आत्मा पौत्र आकाशके पुत्र सब कर्मोंमें समर्थ बलवान् सदागति वायुदेवताके लिये ग्रहण करता हूँ। वेदीकी दक्षिण श्रोणि अर्थात् नैर्ऋत्य कोण पर आज्यपात्र रख कर ऋ० और यजमान सब मिलकर पात्रको स्पर्श करते हुए इस दूसरे मन्त्रको पढें, मंत्रार्थ (अनाधृष्टम् अनाधृष्यम् देवानाम् ओजः अनभिशस्ति अभिशस्तिपम् असि आञ्जसा अनभिशस्त्येनम् सत्यम् उपगेषम् स्विते मा धाः) हे आज्य तुम आज तक किसीसे तिरस्कार न पाने वाले न आगे किसीसे तिरस्कार पाओगे तुम देवताओंके सारपदार्थ स्वयं अनिन्दनीय निन्दित कर्मसे हमारी रक्षा करने वाले हो। इसकारण हे आज्य सीधे मार्गसे अनिन्दित मोक्षके प्राप्त कराने वाले हो आज हम सरल अंतःकरणसे तुमको स्पर्श कर शपथपूर्वक यज्ञ करनेका भार लेते हैं । अब शोभन मार्ग वाले यज्ञानुष्ठानमें मुझको स्थापन करो ५

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि । सह

नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

इस मन्त्रका ऋषि गोतम छन्द विराड् ब्राह्मी पंक्ति और देवता अग्नि है। इसको पढ़कर आहवनीय और गार्हपत्य अग्निमें समिधा छोड़े। मन्त्रार्थ-(व्रतपाः अग्ने त्वे व्रतपाः तव या तनूः सा इयम् मयि या मम तनूः सा एषा त्वयि व्रतपते नौ व्रतानि

सह दीक्षापतिः मे दीक्षाम् अनुमन्यताम् तपस्पतिः तपः अनु) हे सब व्रतोंके रक्षक अग्निदेव तुम हमारे व्रतकी रक्षा करो। तुम्हारा जो शरीर है, वह यह मुझमें हो, जो मेरा शरीर है वह यह तुममें हो। हे व्रत रक्षक हम दोनोंके अनुष्ठित कर्म साथ हों। दीक्षाका रक्षक सोम मेरी दीक्षाको माने। उस सद्रूप तपका रक्षक सोम देवता मेरे सद्रूप तपको माने ॥ ६ ॥

अ॒ꣳशुर॒ꣳशुष्टे देव सोमाप्या॒यता॒मिन्द्रा॒यैकधन॒विदे। आ तु॒भ्य॒मिन्द्रः॒ प्याय॒तामात्व॒मिन्द्राय प्यायस्व। आप्यायया॒स्मान्त्सखी॒न्त्सन्या मे॒धया स्व॒स्ति ते देव सोम सु॒त्याम॒शीय। एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋ॒तमृ॒तवादिभ्यो नमो द्यावापृथि॒वीभ्याम् ॥ ७ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं, ऋषि पहले का गोतम, दूसरेका वत्स। छन्द पहिलेका आ० बृहती, दूसरेका आ० जगती देवता पहलेका सोम और दूसरेका लिङ्गोक्त है। पहिले मन्त्रसे ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु अग्नीध्र यह पाँचों ऋत्विक् और छठा यजमान सोमको जलसे सजीव करें। मन्त्रार्थ-(देव सोम ते अंशुः अंशुः एकधनविदे इन्द्राय आप्यायताम् तुभ्यम् इन्द्रः आप्यायताम् त्वम् इन्द्राय आप्यायस्व सखीन् अस्मान् सन्या मेधया आप्यायस्व सोम-देव ते स्वस्ति सुत्याम् अशीय) हे सोम देवता तुम्हारे सब अवयव गाँठ मुख्य धन प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव की प्रीतिके लिये वृद्धि पाओ। तुम्हारे पीनेके लिए इंद्र प्रादुर्भूत हों। तुम इन्द्रके पानके लिए सब ओरसे वृद्धि पाओ। हे सोम—सखाकी समान प्रीतिके पात्र हम ऋत्विजोंको धन दान और धारणशक्तिसे बढाओ। हे सोम देवता तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी कृपा से मैं सोमयज्ञके अन्तस्नान दिनको पाऊँ। दूसरे मन्त्रसे सब ऋत्विज् प्रस्तरके ऊपर दोनों हाथोंको ऊँचा करके या दाहिने हाथ को ऊँचा रखकर रक्षाके लिए सोमकी परिचर्या करें। मन्त्रार्थ—(एष्टाः रायः प्रेषे भगाय ऋतवादिभ्यः ऋतम् द्यावापृथिवीभ्याम् नमः) हे सोम हमारे इच्छित धन जिसे तुम अवश्य प्रेरणा करो ऐसे ऐश्वर्यादि हमको प्राप्त हों। सत्य बोलने वाला हमारा अवश्यभावियुक्त कर्म सम्पादन करो स्वर्गपृथिवीके अभिमानी देवताओं को नमस्कार है ॥ ७ ॥

या ते अग्नेयःशया। तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचोअपावधीत्स्वाहा।

या ते अग्नेरजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा।

या ते अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ८

इस कण्डिकामें ३ मन्त्र हैं, ऋषि पहले का गोतम, दूसरे तीसरेका वत्स। छन्द पहलेका त्रि० आ० बृहती दूसरे तीसरेका नि० आ० बृ० देवता तीनोंका अग्नि है। पहिले मन्त्रसे जुहूआदिमें प्रस्तरको लगा कर परिधिस्थापन पूर्वक स्रुवेसे उपसद अग्निमें हवन करे। मन्त्रार्थ-(अग्ने या ते अयःशया तनूः वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचः अपावधीत् त्वेषम् वचः अपावधीत् स्वाहा) हे उपसद नामक अग्ने जो तुम्हारा लोह-पुरवासी शरीर देवताओंको इच्छित फल देनेवाला और असुरोंके विषम देशमें स्थित रहने वाला है उसने दैत्योंकी कठोर वाणी को प्रतिकल्पमें नष्ट किया है। असुरोंके कहे देवताओंपर आक्षेपरूप वाक्यको नष्ट किया ऐसे उपकारक तुझ अग्निके लिये श्रेष्ठ होम हो। दूसरे दिन दूसरी उपसद नामक अग्निमें आहुति देय। मन्त्रार्थ-(अग्ने या ते रजःशया तनूः वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रम् वचः अपावधीत् त्वेषम् वचः अपावधीत् स्वाहा) हे उपसद अग्ने जो तुम्हारा रजतपुरवासी शरीर देवताओंको इच्छित फलदाता और असुरोंके विषम देशमें स्थितिशील है उसने दैत्योंकी छिन्धि भिन्धिरूप उग्र वाणीको नष्ट किया था, उनके आक्षेपरूप वचनको नष्ट किया था ऐसे उपकारक अग्निके लिए श्रेष्ठ होम हो, तीसरे दिन तीसरे मन्त्रसे आहुति देय। मन्त्रार्थ-(अग्ने या ते हरिशया तनू वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रम् वचः अपावधीत् त्वेषं वचः अपावधीत् स्वाहा) हे अग्ने जो तुम्हारा सुवर्णपुरवासी शरीर देवताओं को इच्छित फलदाता और असुरोंके विषम-देशमें स्थितिशील है उसने असुरोंके तीव्र वचनोंको विनष्ट किया है, असुरोंके आक्षेप-रूप वचनोंको नष्ट किया है ऐसे उपकारक अग्निके लिए श्रेष्ठ होम हो।

आख्यायिका—ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरश्चक्रिरे अयस्मयीमेवास्मिन् लोके रजतामन्तरिक्षे हरिणीं दिवि [३।४।४।३ शतपथ] इत्यादि श्रुतियोंमें लिखा है कि प्रजापतिके पुत्र देवता और असुरोंमें परस्पर वैर था अतः असुरोंने तप करके त्रिलोकीमें ३ पुर बनाये, पृथिवीमें लोहेका अन्तरिक्षमें चाँदीका और स्वर्गमें सुवर्ण का तब देवताओंने अग्निकी उपासना करी वह अग्नि उपसद् नाम वाला हुआ उसने

देवताओंके हितार्थ उन पुरोंमें प्रवेश कर उनको भस्म कर डाला तब वह तीनों पुर अग्निके शरीर कहाए और देवताओंकी विजय हुई इसी प्रकार जो कोई उन अग्नियोंकी उपासना करेगा वह शत्रुओंके किले आदि तोड़ कर जय पावेगा ॥ ८ ॥

तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो-नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि योस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे । अनुत्वा देववीतये ९

इस कण्डिकामें १४ मंत्र हैं ऋषि १ से ४ तकका गोतम ५ से १४ तकका वत्स छन्द १ से ४ तक का भुरिगार्षी गायत्री ५ वें का भुरिग्ब्राह्मी बृहती ६ ठे का निचृद्ब्राह्मी जगती, ७ वें का यजुः ८ वेंका भु० ब्रा० बृ० ९ म का नि० ब्रा० ज० १० वें का यजुः ११ वें का भुरि० १२ वें का नि० ब्रा० ज० १३ वें का यजुः १४ वें का याजुषी अनुष्टुप् है । देवता १ से ४ तक का पृथिवी, ५ । ८ । ११ वें का अग्नि, ६ । ७ । ९ । १० । १२ । १३ । १४ वें का लिङ्गोक्त है । चारों दिशामें शम्या गाढ़कर स्फ्यसे चौकोण रेखा करे उन चारों रेखाओं को करते समय पहिले चारों मन्त्र पढे । मन्त्रार्थ (मे तप्तायनी असि) हे भूमि तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करनेको निर्धनतासे दुःखी पुरुषोंको शरण देने वाली हो (मे वित्तायनी असि) हे भूमि मेरे निमित्त धनार्थियोंको धनकी खानि हो (मा नाथितात् अवतात्) हे भूमिदेवि मुझको याचनासे रक्षाकरो (मा व्यथितात् अवतात्) हे भूमि मुझे मनकी पीड़ासे रक्षा करो । ५वें मन्त्रसे उन रेखाओंके आगे को स्फ्यसे चत्वाल खोदे जिस स्थानमेंसे वेदी बनाने के लिए मट्टी खोदी जाय उसको चत्वाल कहते हैं । मन्त्रार्थ—(नभः नाम अग्निः विदेत्) हे चत्वालमेंकी मृत्तिके नभ नाम वाला तेरा अधिष्ठाता अग्नि मुझसे खोदी हुई तुझको जाने । छठे मन्त्रसे गढेमेंसे खोदी हुई मिट्टी निकाले । मंत्रार्थ-(अङ्गिरः

अग्ने आयुना नाम्ना एहि) हे गतिमान् अग्ने आयु नामसे तुम इस स्थानमें आओ ७ वेंसे उत्तर वेदीके स्थानमें उस मृत्तिका को डाले । मन्त्रार्थ-(अस्याम् पृथिव्याम् असि ते यत् यज्ञियम् अनाधृष्टम् तेन त्वा आदधे) हे अग्ने जो तुम इस पृथिवीमें हो इससे तुम्हारा जो यज्ञके योग्य अनिन्दनीय नाम है उससे तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ । ८ वें से दूसरी रेखाकी ओर चत्वाल खोदे । मन्त्रार्थ-(नभः नाम अग्निः विदेत्) हे मृत्तिके तुमको नभ नामा अग्नि जाने । ९ वें से खोदी मट्टी गढेसे निकाले । मन्त्रार्थ-(अङ्गिरः अग्ने आयुना नाम्ना एहि) हे गतिमान् अग्ने आयु नाम से आओ । १० वें से उत्तर वेदीके स्थान में सब मट्टी डाले । मन्त्रार्थ-(यः द्वितीयस्याम् पृथिव्याम् असि) हे अग्ने क्योंकि तुम दूसरी पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्षमें हो (ते यत् अनाधृष्टं यज्ञियम् नाम तेन त्वा आदधे) इस कारण तुम्हारा जो यज्ञके योग्य अनिन्दनीय नाम है, उससे तुमको यहाँ स्थापन करता हूँ । ११ वें से तीसरी ओर खोदे मंत्रार्थ-(नभइत्यादि) अर्थ ५ वेंकी समान जानना । १२ वेंसे मृत्तिका निकाले । मन्त्रार्थ-(अङ्गिर इत्यादि) अर्थ नवमकी समान । १३ वें से मृत्तिका डाले मंत्रार्थ (यः तृतीयस्याम् पृथिव्याम् असि ते यत् यज्ञियम् अनाधृष्टम् नाम तेन त्वा आदधे हे अग्ने जिससे कि तुम तीसरी पृथ्वी द्युलोकमें स्थित हो शेष अर्थ १० वें मन्त्रवत् जानना १४ वें से चौथी ओर खोद कर मट्टी निकालना डालना आदि सब कार्य करे । मंत्रार्थ-(देववीतये त्वा अनु) हे मृत्तिके देवताओंकी प्रीतिके निमित्त उत्तरवेदी बनेगी अतः पूर्ववत् तुम को आहरणादि करता हूँ ॥ ९ ॥

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

इस कण्डिकामें ३ मन्त्र हैं, तीनोंका ऋ० गोतम छ० ब्राह्मी उष्णिक् और देवता वेदि है । पहिलेको पढ़ कर वेदीको शम्या से ठीककर चारों ओर मध्यभागमें समान करे । मंत्रार्थ-(सिंही सपत्नसाही असि देवेभ्यः कल्पस्व) हे वेदी तुम सिंहीके समान शत्रुओंका तिरस्कार करने वाली हो देवताओंके उपकारार्थ उत्तर वेदीरूप से समर्थ होजाओ । दूसरेको पढ़कर वेदी का प्रोक्षण करे मन्त्रार्थ—(सिंही सपत्नसाही असि देवेभ्यः शुन्धस्व) सिंही समान शत्रुओंका पराभव करती हो, देवताओं

की प्रीतिके अर्थ शुद्ध होजाओ। तीसरे को पढ़कर वेदीके कंकर आदि दूर करे। मन्त्रार्थ-(सिंही सपत्नसाही असि देवेभ्यः शुम्भस्व) हे उत्तर वेदी तुम सिंही-समान शत्रुओंका तिरस्कार करने वाली हो, देवताओंकी प्रीतिके लिए सिकता पड़नेसे शोभित होजाओ ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहन्तमं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ११

इस कण्डिकामें ५ मन्त्र हैं पाँचोंका गोतम ऋ० निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द और उत्तर वेदि देवता है। पहिले चार मन्त्रोंसे उत्तर वेदीकी पूर्वादि चारों दिशा में जलद्वारा हाथसे मार्जन करे। मंत्रार्थ-(इन्द्रघोषः वसुभिः त्वा पुरस्तात् पातु) हे उत्तर वेदी इन्द्र नामसे प्रसिद्ध देवता आठ वसुओंके साथ तुमको पूर्वदिशामें रक्षा करे। (प्रचेताः रुद्रैः पश्चात् त्वा पातु) वरुणदेव ११ रुद्रोंके साथ पश्चिममें तुमको रक्षा करें। (मनोजवाः पितृभिः दक्षिणतः त्वा पातु) मनकी समान वेग वाले यमदेवता दिव्य पितरों सहित दक्षिण में तुम्हारी रक्षा करें (विश्वकर्मा आदित्यैः उत्तरतः त्वा पातु) विश्वकर्मा १२आदित्यों के साथ उत्तरमें तुम्हारा रक्षा करें। पाँचवें मंत्रको पढ़कर मार्जनसे बचा जल वेदीके बाहर दक्षिणमें लगा हुआ डाले। मंत्रार्थ-(अहम् तप्तम् इदम् वाः यज्ञात् बहिर्धा निःसृजामि) मैं असुर निवारणार्थ जिस से प्रोक्षण किया था उस अग्राह्य इस जल को यज्ञकी वेदीसे बाहर डालता हूँ ॥११॥

सिंह्यसि स्वाहा सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिंह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा । सिंह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा । सिंह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

इस कण्डिकामें ६ मन्त्र हैं, १ से ५ तकका गोतम ऋ० भुरिग्ब्राह्मी पंक्ति छ० वेदि देवता। ६ ठेका गो० ऋ० यजुः और स्रुग् देवता है। पहिले ५ मन्त्रोंको पढ़कर वेदीकी दोनों श्रोणी और दोनों अंश तथा नाभिमें कुछ २ सुवर्ण स्थापन करके उस को देखते २ अध्वर्यु जुहूमें आज्य लेकर पाँच आहुति देय। पहिली दक्षिण अंश आग्नेय कोणमें मन्त्रार्थ-(सिंही असि स्वाहा) हे उत्तरवेदी असुरोंका भक्षण

करने वाली हो तुमको यह हवि देते हैं सुन्दर रूपसे ग्रहण करो। दूसरी आहुति उत्तर श्रोणि वायुकोणमें देय। मन्त्रार्थ—(आदित्यवनिः सिंहो असि स्वाहा) हे उत्तरवेदि! तुम आदित्योंको प्रसन्न करने वाली, सिंहरूप हो तुमको हवि देते हैं सुंदर रूपसे ग्रहण करो। तीसरी आहुति दक्षिण श्रोणी नैर्ऋत्यकोणमें देय। मंत्रार्थ-(ब्रह्मवनिः सिंही असि स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम ब्राह्मण क्षत्रियोंकी प्रीतिको देने वाली सिंही समान हो, यह सुन्दर आहुति तुमको देते हैं। चौथी आहुति उत्तर अंश ईशानकोणमें देय। मंत्रार्थ-(सुप्रजावनिः रायस्पोषवनिः सिंही असि स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम अच्छी प्रजा और धन पुष्टिको देने वाली पराक्रममें सिंही हो, यह आहुति देते हैं इसको श्रेष्ठरूपसे स्वीकार करो। ५ वीं आहुति उत्तरवेदीके मध्यबिंदु नाभिमें देय। मन्त्रार्थ-(सिंही असि यजमानाय देवान् आवह स्वाहा हे उत्तरवेदी तुम सिंहीरूप हो यजमानके उपकारार्थ देवताओंको यहाँ पहुँचाओ, यह हवि तुमको देते हैं। छठेसे वेदीके ऊपर जुहूको ग्रहण करे। मन्त्रार्थ-(भूतेभ्यः त्वा) हे घृतयुक्त जुहू सब प्राणियोंकी प्रीतिके लिये तुमको वेदीके ऊपर ग्रहण करता हूँ तुम जरायुजादि भाग हो ॥१२॥

ध्रुवोसि पृथिवीन्दृ ँह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृ ँहाच्युतक्षिदसि दिवं दृ ँहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं, चारोंका गौतम ऋ० १ से ३ तकका भुरिगार्ष्यनु० छन्द ४ थे का दैवी जगती छ० देवता १से ३ तकका परिधि और ४ थे का सम्भार है पहिले ३ मन्त्रोंको पढ़कर देवदारुकी बनी ३ परिधियोंके द्वारा उत्तरवेदीकी नाभिसे दर्श पौर्णमास इष्टिकी समान पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तीन दिशाओंमें परिधि करे मन्त्रार्थ-(ध्रुवः असि पृथिवीम् दृंह ध्रुवक्षित् असि अन्तरिक्षम् दृंह) अच्युतक्षित् असि दिवम् दृंह) हे मध्यम परिधि तुम स्थिर हो यहाँकी पृथिवीको दृढ़ करो। हे दक्षिण परिधि तुम स्थिर यज्ञमें निवास करती हो, अन्तरिक्षको दृढ़ करो हे उत्तर परिधि! तुम अविनाशी यज्ञमें निवास करती हो द्युलोकमें दृढ़ करो। चौथे मंत्रसे नाभिके मध्यबिन्दुमें संभार (गूगल तेजपात भेड़के बाल) स्थापन करे। मंत्रार्थ-(अग्नेः पुरीषम् असि) हे सम्भार! तुम अग्निके पूर्णकर्त्ता हो ॥ १३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। विहोत्रादधे वयुन

विदेक इन्महोदेवस्य । सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

इस कण्डिकाके मंत्रका श्यावाश्व ऋ० स्वराडार्षी ज०छ०और सविता देवता है। हविर्धान मण्डप बनकर अध्वर्युशालामें प्रवेश कर आज्यका संस्कार करके चार बार ग्रहण कियेहुए आज्यको परिस्तरण-समिदाधानपूर्वक अग्निमें इस मन्त्रसे आहुति देय। मन्त्रार्थ—(बृहतः विपश्चितः विप्रस्य विप्राः होत्राः मनः युञ्जते उत धियः युञ्जते वयुनावित् एकः इत् विदधे सवितुः देवस्य परिष्टुतिः मही स्वाहा) वेदपाठसे महत्वको प्राप्त सर्वज्ञ यजमानके वेदवेत्ता, होम करनेवाले ऋत्विज् मनको, यज्ञानुष्ठान में लगाते हैं और इन्द्रियोंको लगाते हैं, क्योंकि सब प्राणियोंके मनबुद्धिकी वृत्तियों को जानने वाले अकेले सृष्टिकर्त्ताने ही इन ब्राह्मणोंकी मनोवशीकारादि सामर्थ्यको रचा है क्योंकि प्रेरक अन्तर्यामी परमात्मा देवकी सदा की हुई स्तुति बड़ी है उस परमेश्वरके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ १४ ॥

इदम्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

इस मन्त्रका मेधातिथि ऋ०भु०गाय० छ० और विष्णु देवता है। फिर घृतका संस्कार कर और ४ वार ग्रहण किये हुए को लेकर दक्षिण हविर्धानके दक्षिण चक्र-मार्गमें सुवर्णको रख कर शालाद्वारकी अग्निमें इस मन्त्रसे होम करे। मन्त्रार्थ—(विष्णुः इदम् विचक्रमे त्रेधा पदम् निदधे अस्य पांसुरे समूढम् स्वाहा) सर्वव्यापी त्रिविक्रमावतारधारी विष्णुने इस विश्व को विभागपूर्वक उल्लंघन किया पहिला भूमिमें दूसरा अन्तरिक्षमें तीसरा द्युलोक में ऐसे तीन प्रकार पद रक्खा इस विष्णु के पदमें सम्यक्प्रकार विश्व अन्तर्भूत है उस परमात्माको हवि देते हैं।

इस मन्त्रमें वामन अवतारकी कथा गर्भित है जिसका प्रमाण निरुक्तका यह वचन है—"यदिदं किञ्च विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहेण विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यत इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा" ॥ १५ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका वशिष्ठ ऋ० स्व० आ० त्रि० छ० और विष्णु देवता है आहवनीय अग्निके ईशानकोणमें रक्षित उत्तर शकट (हविर्धान) के दक्षिण चक्र-मार्गमें सुवर्ण रख कर प्रतिप्रस्थाता और अध्वर्युके दिये हुए स्रुवे और स्थालीको लेकर चारवार लिये हुए घृतका हवन करे मन्त्रार्थ-(रोदसी इरावती धेनुमती सूयवसनी मनवे दशस्या भूतम् विष्णो एते व्यस्कभ्नाः पृथिवीम् मयूखैः अभितः दधर्थ स्वाहा) हे द्यावापृथिवी इस यजमानके कल्याणार्थ अन्नजल वाली बहुतसी धेनुओं से युक्त बहुतसे उत्तम खानेके पदार्थवाली ज्ञानी यजमानके लिये यज्ञसाधनोंकी देने वाली हो हे सर्वव्यापी परमात्मन् ! इन स्वर्ग पृथिवीको स्तंभित किये हो पृथिवी को अपने तेजःस्वरूप सूर्यचन्द्रादिके द्वारा सब ओरसे धारण कर रहे हो उन विष्णु को यह आहुति देते हैं ॥ १६ ॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम्प्राची प्रेतमध्वरङ्कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञन्नयतम्मा जिह्वरतम् । स्वङ्गोष्ठमावदतन्देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टम्प्रजाम्मा निर्वादिष्टमत्र रमेयां वर्ष्मन पृथिव्याः ॥ १७ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं, ऋषि चारों का वशिष्ठ छन्द पहिले चौथेका याजुषी पंक्ति २ रेका निचृदार्षी गायत्री तीसरेका भुरिगार्षी गा० और देवता चारोंका हविर्धान है । शालाके दक्षिण द्वारसे लाई हुई पत्नी चारवार लिये हुए होमसे शेष घृतका लेकर दोनों अक्षके धुरोंमें इस मन्त्रसे लगावे । मन्त्रार्थ-(देवश्रुतौ देवेषु अघोषतम्) हे अक्षधुरों तुम देवसभामें प्रसिद्ध देवताओंमें उच्च स्वरसे कहो, कि-यजमान यज्ञ करता है । शकटके यथास्थानमें आने पर यजमान इस मन्त्रको पढ़ कर पूर्वमुख हो इसकी दृढ़रूपसे रक्षा करे । मन्त्रार्थ-(अध्वरम् कल्पयन्ती प्राची प्रेतम् यज्ञम् ऊर्ध्वम् नयतम् मा-जिह्वरतम्) हे दोनों शकट यज्ञको समर्थ करते हुए पूर्व मुख जाओ । यज्ञको ऊर्ध्वलोकवासी देवताओंके समीप लेजाओ कुटिल मत होओ तीसरे मन्त्रसे यजमान अक्षको आघात कर शब्द करे । मन्त्रार्थ-(दुर्ये देवी स्वम् गोष्ठम् आवदतम् । आयुः मा-निर्वादिष्टम् प्रजाम् मा-निर्वादिष्टम्) हे गृहसमान शकटरूप देवताओं अपने गोठको सब ओर से कहो, यजमानकी आयुको पशु आदिसे रहित मत उच्चारण करो, पुत्रादि प्रजाको शापरूप दुर्वाक्यको मत कहो । चौथे मन्त्र से उत्तर वेदीके पश्चिममें ३ परिक्रमा हो जाने पर दोनों शकटको मध्यफलका-

धारस्थ करके स्थापन कर इस मन्त्रसे अभिमन्त्रण करे। मन्त्रार्थ (पृथिव्याः अस्य वर्ष्मन् रमेथाः) पृथिवी के इस देवयजन रूप स्थानमें क्रीड़ा करो ॥ १७ ॥

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि । यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं, दोनोंका औतथ्य दीर्घतमा ऋ० छ० १ लेका स्वराडार्षी त्रि० २रेका यजु और देवता दोनोंका विष्णु है। अध्वर्यु दोनों हविर्धानको उत्तर ओर से परिक्रमण कर दक्षिण हविर्धानको इस मन्त्रसे स्तम्भ पर खड़ा करे। मन्त्रार्थ (विष्णोः नुकम् वीर्याणि प्रवोचम् यः पार्थिवानि रजांसि विममे यः त्रेधा विचक्रमाणः उरुगायः उत्तरम् सधस्थम् अस्कभायत) सर्वव्यापी विष्णुभगवान्के किन किन कर्मोंको कहूँ, अर्थात् परमात्माकी क्या स्तुति करूँ उनकी महिमा असीम है, जिस परमात्माने भूमि अन्तरिक्ष स्वर्ग सम्बन्धी ज्योतियोंको रचा है, जो परमात्मा तीन लोकमें अग्नि, वायु सूर्यरूपसे तीन पद धारण करता हुआ महात्माओंसे गाया गया है, ऊपरके देवताओंके स्थानरूप द्युलोक को स्तम्भित किया है। दूसरे मन्त्रसे अग्नि कोणमें स्थूण गाढ़े। मंत्रार्थ-(विष्णवे त्वा) हे स्थूणकाष्ठ विष्णुदेवकी प्रसन्नताके लिए तुझको गाढ़ता हूँ ॥ १८ ॥

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

इस कण्डिकाके मन्त्रका औत०दीर्घ० ऋ० निच्यृदार्षी जग० छ० और विष्णु देवता है। इस मन्त्रसे प्रतिप्रस्थाता उत्तर शकटको खड़ा करता हुआ भूमिमें पूर्ववत् स्तम्भको खनन कर गाढ़े मन्त्रार्थ-(विष्णो विष्णो दिवः वा पृथिव्याः उत वा महः उरोः अन्तरिक्षात् वा वसुना उभा हि हस्ता पृणस्व दक्षिणात् उत सव्यात् आप्रयच्छ विष्णवे त्वा) हे सर्वव्यापिन् परमात्मन् स्वर्गलोकसे वा पृथिवीलोकसे भी और बड़े विस्तीर्ण अन्तरिक्षसे भी धनसे दोनों ही हाथ पूर्ण करो तब धन पूर्ण दाहिने वा वामहस्तसे अनेक प्रकारके धन रत्न हमको दो, हे काष्ठस्तम्भ विष्णुदेवकी प्रीतिके लिए तुझको गाढ़ता हूँ ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

इस मन्त्रका औ० दी० ऋषि विरा० त्रि० छन्द और विष्णु देवता है। मध्यम छदीको स्पर्शकर इस मन्त्रको पढ़े, मंत्रार्थ (तत् भीमः कुचरः मृगः-न गिरिष्ठाः विष्णुः वीर्येण प्रस्तवते यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति) वह जिससे चराचर भय मानते हैं, सिंह की-समान पृथिवी पर मत्स्यादि रूपसे विचरने वाला देह में अंतर्यामी—रूप से स्थित सर्वव्यापी परमात्मा असुर—वध तथा भक्त और धर्मकी रक्षारूप पराक्रम से स्तुतिको प्राप्त होता है जिस परमात्मा के महान् तीन पादप्रक्षेपण स्थान तीनों लोकोंमें सब लोक निवास करते हैं ॥२०॥

विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

इस कण्डिकामें ५ मन्त्र हैं, ऋषि चारोंका औ० दी०, छन्द १ ले का याजु० उ०, २।३।४ का दै० पंक्ति, ५ वें का याजु० बृह० देवता चारोंका विष्णु है। दोनों हविर्धान शकटको दक्षिणोत्तर स्थापन करके उनके ढकनेको मण्डप बनावे और विष्णुदेवता होनेसे मण्डपको भी विष्णु कहते हैं और विष्णुके सब अवयव होनेसे जैसे ललाट उच्च अवयव है उसी प्रकार हविर्धान मण्डपके पूर्व द्वारवर्त्ती स्तम्भके मध्यमें एक कुशोंकी माला गूथी जाती है उस माला वा उसके बन्धनाधार तिरछे बाँसका सम्बोधन करते हैं उसका मंत्र। मन्त्रार्थ- (विष्णोः रराटम् असि) हे दर्भमालाधार वंश तुम यज्ञरूप विष्णुके ललाट स्थानीय हो। दूसरे मंत्रसे उच्छ्राई ललाटके प्रान्तोंको स्पर्श करे। मन्त्रार्थ—(विष्णो श्नप्त्रे स्थः) हे ललाटके प्रान्त तुम दोनों यज्ञरूप विष्णुके ओष्ठसन्धिरूप हो। तीसरे मन्त्रसे अध्वर्यु सुपमें सुतली पिरो कर उससे रराटीके चारों थूण द्वारशाखाओंको सींवे। मंत्रार्थ-(विष्णोः स्यूः असि) हे बृहत्सूची तुम यज्ञीयमण्डपकी सूची हो चौथे मन्त्रसे सींवनके आरम्भमें रस्सीकी जड़में गाँठ देय। मन्त्रार्थ-(विष्णोः ध्रुवः असि) हे ग्रन्थि तुम यज्ञीय विष्णुरूप मण्डपकी अतिदृढ़ ग्रन्थि हो। पाँचवें मंत्र से पूर्वाग्र बाँसोंके मण्डपको बनाकर स्पर्श

करे। मन्त्रार्थ-(वैष्णवम् असि विष्णवे त्वा) हे हविर्धान तुम विष्णुसम्बन्धी हो इस कारण विष्णुकी प्रीतिके अर्थ तुझको स्पर्श करता हूँ ॥ २१ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं, चारोंका औ० दीर्घ० ऋ० छन्द १ ले का प्राजा० बृह० २ रेका याजु० गाय० ३ रेका आसु० उष्णिक् ४ थे का आर्षीपंक्ति। देवता पहिले और दूसरेका अग्नि, ३ रे का रक्षोघ्न और ४ थे का उपरव है। १ ले मन्त्रसे काठका कुदाल लेकर यूपवाटकी समान चार गढ़ों का चिन्ह करे। मन्त्रार्थ-(सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णः हस्ताभ्याम् त्वा आ ददे) हे अग्नि सवितादेवता की प्रेरणा होनेपर अश्विनीकुमारकी बाहुभावको प्राप्त अपनी भुजाओंसे पूषादेवता के हस्तभावको प्राप्त अपने हाथोंसे तुझको उपरवकार्यमें ग्रहण करता हूँ। इस अग्नि को खननोन्मुख करके दूसरे मन्त्रसे दृढ़ मुष्टि करे। मन्त्रार्थ (नारी असि) हे अग्नि तुम हमारा उपकार करने वाली हो। तीसरा मंत्र पढ़ कर अग्निद्वारा अग्निकोण आदि चारों कोनोंमें चार गढ़हे खदनेको प्रादेश भर गोल आकारमें कुरेदे। मंत्रार्थ-(इदम् अहम् रक्षसाम् ग्रीवा अपि कृन्तामि) यह मैं अध्वर्यु यज्ञविनाशक राक्षसोंकी गर्दनोंको भी काटता हूँ। चौथे मंत्रसे परकण्डिकाके प्रथम मन्त्र तक चारों ओर लिखनेके अनुसार बाहु भरके चार गढ़हे खोदे। मन्त्रार्थ-(बृहत् बृहद्रवाः असि इन्द्राय बृहतीम् वाचम् वद) हे घोरतर शब्दकारी उपरव तुम महान् महाशब्द करते हो इन्द्रदेवताकी प्रीतिके लिये ऐसी उच्चध्वनि वाली वाणीको बोलो ॥ २२ ॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्ट्यो यमपात्यो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

इस कण्डिकामें ५ मन्त्र है पाँचोंका औत० दी० ऋ० छन्द १ ले का निचृ० गाय० २। ३। ४ थे का भुरि० गाय० ५ वें का याजुषीगा० देवता सबका लिङ्गोक्त है।

पूर्वमन्त्रका शेष (रक्षोहणम् वलगहनम् वैष्णवीम्) राक्षसवधविषयक, कृत्यानाशक और यज्ञरक्षक विष्णुसे सम्बन्ध रखने वाला है यह इन्द्रसे कहो । १ ले मन्त्रसे अग्निकोणके गढेमेंसे मट्टी निकाले। मंत्रार्थ-(निष्ट्यः यम् अमात्यः यम् मे निचखान अहम् तम् इदम् वलगम् उत्किरामि) अत्यंत संघातरूपसे वर्त्तमान चाण्डाल आदि या शरीरके सम्बन्धी आदिने जिस का घरके कृत्यज्ञाता सम्मतिदाताने जिस का मेरे अनिष्टके लिये प्रयोग किया मैं उस इस अभिचारको दूर करता हूँ । दूसरे मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणके गढ़हेसे मट्टी निकाल कर फैंके । मन्त्रार्थ-(समानः यम् असमानः यम् मे निचखान अहम् तम् इदम् वलगम् उत्किरामि) धनकुल आदि समान ने जिस कृत्यको तथा जिसको धनकुल आदिमें न्यून वा अधिकने मेरे वधके निमित्त प्रयोग किया है मैं उस इस कृत्याको उत्खात सहित निकाल कर फेंकता हूँ। तीसरे मंत्रसे वायुकोणकी मृत्तिका निकाले मन्त्रार्थ-(सबन्धुः यम् असबन्धुः यम् मे निचखान अहम् तम् इदम् वलगम् उत्किरामि) मातुलादि समान कुल वालेने जिस कृत्याको तथा असम्बन्धीने जिसको मेरे निमित्त प्रयोग किया मैं उस इस कृत्याको दूर फेंकता हूँ । ४ थे मन्त्रसे ईशानकोणके गढ़हेकी मट्टी निकाले । मन्त्रार्थ-(सजातः यम् असजातः यम् मे निचखान इत्यादि पूर्ववत्) समवयस्कने जिस कृत्याको वा असमवयस्कने जिसको मेरे निमित्त प्रयोग किया इत्यादि पूर्ववत् पाँचवें मंत्रसे चारों गढ़हौंमेंसे क्रमशः सब मट्टी निकाल डाले। मन्त्रार्थ—(कृत्याम् उत्किरामि) प्रयोगकर्त्ता शत्रुओंकी की हुई कृत्याको निकाल कर फेंकता हूँ ॥ २३ ॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥२४॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं, चारोंका औ० दीर्घ० ऋ० छन्द १ । ३ । ४ थे का प्राजा०गाय० २रे का याजु० बृह० । देवता सबका उपरव है । १ से ४ तक मन्त्रोंसे अध्वर्यु क्रमसे आग्नेय आदि कोणोंमें जल युक्त हाथसे उपरवोंको चिकना करे । मन्त्रार्थ—(स्वराट् सपत्नहा असि) हे प्रथम गर्त्त तुम स्वयं दीप्तिमान् हो, अतः शत्रुघाती हो तुम्हारे अनुग्रहसे हमारे शत्रु नष्ट हों । (सत्रराट् अभिमातिहा असि) हे द्वितीय अवट तुम द्वादशाहादि सत्रोंमें दीप्तिमान् हमसे घमण्ड करने वालेके नाशक हो (जनराट् रक्षोहा असि) हे तीसरे गर्त्त तुम सबके सामने दीप्तिमान् राक्षसोंके घातक हो। (सर्वराट् अमित्रहा असि) हे चौथे गर्त्त तुम सबके अधिपति शत्रुघाती हो, तुम्हारे अनुग्रहसे हमारे शत्रु नष्ट हों ॥ २४ ॥

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोवनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां वलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥ २५ ॥

इस कण्डिकामें ७ मन्त्र हैं ऋषि सब का औ० दीर्घ०। छन्द १ ले का प्राजा० अनु० २। ३। ५ वें का भु० प्रा० अनु० ४ थेका आर्चीगा० ६। ७ वेंका दैवीपंक्ति देवता १।४।६।७ का विष्णु तथा २।३।५ का उपरव है। पहिले मन्त्रको पढ़ कर क्रमसे जल द्वारा उपरवोंका प्रोक्षण करे। मंत्रार्थ-(रक्षोहणः वलगहनः वैष्णवान् वः प्रोक्षामि) राक्षसोंके नाशक मारण प्रयोग के नाशक विष्णुसम्बन्धी तुम गर्त्तोंका मैं प्रोक्षण करता हूँ। दूसरे मन्त्रको पढ़ कर प्रोक्षण से बचा जल अलग डाल देय। मन्त्रार्थ—(रक्षोहणः वहगहनः वैष्णवान् वः अवनयामि) राक्षसघाती अभिचार-नाशक विष्णुसम्बन्धी तुमका सींचकर शेष जल अलग करता हूँ। तीसरे मन्त्रसे गर्त्तों पर कुछ कुश बिछावे। मन्त्रार्थ— रक्षो-हणः वलगहनः वैष्णवान् वः अवस्तृणामि) राक्षसघाती अभिचारनाशक विष्णुसंबंधी तुमको कुशाओंसे ढकता हूँ। चौथे मन्त्रसे उपधान करे। मन्त्रार्थ—(रक्षोहणौ वल-गहनौ वैष्णवी वाम् उपदधामि) राक्षस-घाती अभिचारनाशक विष्णुसम्बन्धी तुम दोनोंको दो गर्त्त पर स्थापित करता हूँ, ५ मन्त्रसे पर्यूहण करे अर्थात् गर्त्तके मध्यमें रक्खे हुए फलकके मुख पर मट्टी लगा कर दोनों फलकोंको दृढ़ करे। मन्त्रार्थ-(रक्षो-हणौ वलगहनौ वैष्णवी वाम् पर्यूहामि) राक्षसघातक अभिचारनाशक विष्णुसंबंधी तुम दोनोंका पर्यूहण करता हूँ। छठे मंत्र से उन दोनों फलकोंके ऊपर सब ओर लालवर्ण और चारों ओरसे काटकर समान किये हुए अधिषवणचर्मको रक्खे। मंत्रार्थ (वैष्णवम् असि) हे अधिषवण तुम विष्णु देवता सम्बन्धी यज्ञरक्षक हो। सातवें मंत्र से उनपर ५ पत्थर रक्खे इनसे सोम कूटा जाता है। मन्त्रार्थ—(वैष्णवाः स्थ) हे पाषाणों तुम यज्ञरक्षक विष्णुसम्बन्धी हो॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यामूषणो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसाङ्ग्रीवा अपि कृन्तामि। यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवया रातीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः। पितृषदनमसि ॥ २६ ॥

इस कण्डिका में ७ मन्त्र हैं। ३ का विनियोग आदि लिख चुके हैं। ऋषि सब का औतथ्य दीर्घतमा है। छन्द ४ का आसुरी उष्णिक् ५का याजुषी जगती ६ का याजुषी पंक्ति और ७ का दैवी जगती है। देवता ४।।।६ का यव ७ का औदुम्बरी ८ का पितर है। २२ वीं कण्डिकामें प्रथम ३ मन्त्रोंका विनियोग और व्याख्या हो चुकी है। चौथे मन्त्रसे इस गर्त्तके चारों ओर जल छिड़क कर गीली भूमिमें जौं बोवे। मन्त्रार्थ-(यवः असि द्वेषः अस्मत् यवय अरातीः यवय) हे शस्य! तुम यवहो हमारे शत्रु वा दुर्भाग्यको हमसे दूर करो। हमारे वैरियोंका दूर करो। ५ वें मन्त्रसे गूलड़की शाखाके अग्र मध्य और मूलमें जलपात्रमें जौं डालकर प्रोक्षण करे मंत्रार्थ (देवि त्वा अन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा) हे गूलड़की शाखाके अग्रभाग! द्युलोककी प्रीतिके अर्थ तुझको प्रोक्षण करता हूँ। हे मध्यभाग! अन्तरिक्षकी प्रीतिके अर्थ तुझको प्रोक्षण करता हूँ, हे मूलभाग! पृथिवी की प्रीतिके अर्थ तुझको प्रोक्षण करता हूँ, छठे मन्त्रसे बचे हुए जलको उस गर्त्तमें डाले। मन्त्रार्थ- पितृषदनाः लोकाः शुध्यन्ताम्) पितरोंके निवासस्थान लोक शुद्ध हों। ७ वें मन्त्रसे गर्त्तके चारों ओर उत्तराग्र कुशा बिछावे। मन्त्रार्थ (पितृषदनम् असि) हे कुशाओं! तुम पितरोंके बैठने का आसन हो॥ २६॥

उद्दिवꣳस्तभानान्तरिक्षम्पृण दृꣳहस्व पृथिव्यान्द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनिस्त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳह युर्दृꣳह प्रजान्दृꣳह॥ २७॥

इस कंडिकामें ४ मन्त्र हैं, ऋषि चारोंका औतथ्य दीर्घतमा। छन्द पहिलेका भुरिक् प्राजा० दूसरेका आर्ष्युष्णिक् तीसरे का भुरिक्साम्नीबृहती और चौथेका आसुरी गायत्री है। देवता चारोंका औदुम्बरी है, प्रथम मन्त्रसे औदुम्बरी को खड़ा करे। मन्त्रार्थ—(दिवम् उत्तभान अन्तरिक्षम् पृण पृथिवीम् आदृंहस्व) हे औदुम्बरी देवता! द्युलोकको स्तम्भित करो। अन्तरिक्षको पूरित करो। पृथिवीको दृढ करो, दूसरे मंत्रसे गूलड़की शाखाको गढ़ेमें डाले मंत्रार्थ—(मित्रावरुणौ द्युतानः मारुतः ध्रुवेण धर्मणा त्वा मिनोतु) हे गूलड़की शाखे मित्रावरुण नामक दोनों देवता दीप्तिमान वायु देवता स्थिर धर्मसे तुझको गढ़ेमें डाले। तीसरे मंत्रसे यूपकी समान मट्टी डालकर जलसे पूरित करे। मन्त्रार्थ (ब्रह्मवनि क्षत्रवनि रायस्पोषवनि त्वा पर्यू

हासि) हे गूलरकी शाखे ब्राह्मणोंसे सेवनीय, क्षत्रियोंसे सेवनीय, धनपुष्टिके लिये सेवनीय ! तुझको इस गढ़ेमें मट्टी डाल कर दृढ करता हूँ। चौथे मंत्रसे अध्वर्यु उस मट्टीसे भरे हुए गढ़ेको मैत्रावरुण दंडसे कूटे और मट्टी को गढ़ेमें डाले। मन्त्रार्थ-(ब्रह्म दृंह। क्षत्रम् दृंह। आयुः दृंह। प्रजाम् दृंह) हे शाखा ! ब्राह्मण जातिको दृढ़ कर क्षत्रिय-जातिको दृढ़ कर। जीवनको दृढ़ कर। पुत्र आदि प्रजाको दृढ़ कर ॥ २७ ॥

ध्रुवासि ध्रुवेऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

इस कंडिकामें ३ मंत्र हैं। ऋषि तीनों का औतथ्यदी० छंद १ ले का निच्यृदार्षी गायत्री २ रेका याजुषी त्रिष्टुप् और ३ रे का साम्न्युष्णिक् है। देवता १ लेका औदुम्बरी २ रेका द्यावापृथिवी और ३ रे का इन्द्र है। १ ले मंत्रको पढ़कर औदुम्बरी को स्पर्श करे। मंत्रार्थ—(ध्रुवा असि। अयम् यजमानः अस्मिन् आयतने प्रजया पशुभिः ध्रुवः भूयात्) हे शाखा! तू स्थिर है। यह यजमान इस अपने स्थान में सन्तान सहित पशुओं सहित स्थिर हो। दूसरे मंत्रसे अध्वर्यु औदुम्बरीके जहाँसे २ शाखा उत्पन्न हुई हों उस प्रदेशमें स्रुवे से घृतका होम करे। मंत्रार्थ—(घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्) होमे हुए घृतसे पृथिवी और स्वर्ग पूरित हो। तीसरे मंत्र से औदुम्बरीको गाढ़कर सद्यः नाम मण्डप को बनाकर उसको छानेके लिये तृणोंकी चटाईको लगावे। मंत्रार्थ-(इन्द्रस्य छदिः विश्वजनस्य छाया असि) हे तृणकी चटाई तू ऐश्वर्यवान् यजमानके इस मंडपको छाने वाली सब जनोंकी छायारूप हो २८

परित्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः २९

इसका मधुच्छन्दा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है। इस मन्त्रसे छानेके परिवारकोंसे छतको चारों ओरसे आच्छादन करे। मन्त्रार्थ-(गिर्वणः इमाः अनुवृद्धयः गिरः त्वा विश्वतः परिभवन्तु। वृद्धायुम् जुष्टयः जुष्टाः भवन्तु) हे स्तुतियोग्य सभाके अधिष्ठात्री इन्द्रदेव ! यह सवनक्रमसे वृद्धियुक्त स्तोत्र शास्त्ररूप वाणी तुमको सब ओरसे ग्रहण करो, बड़े अन्नवान् तुमको हमारी सेवा प्रिय हों ॥ २९ ॥

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ३० ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं। ऋषि ४ रोंका मधुच्छन्दा। छन्द-१।२।४। का याजुषी गायत्री और ३ रे का दैवी बृहती है देवता १।२।३ का इन्द्र और ४ थे का विश्वेदेवा है। १ ले मन्त्रको पढ़ कर पूर्व द्वारके दक्षिण स्थूण आदिके प्रदक्षिण क्रमसे चारों द्वार्योंका परिषीवण करे अर्थात् रस्सीको मिलावे। मंत्रार्थ-(इन्द्रस्य स्यूः असि) हे रस्सी तू सभाके अधिष्ठात्री इन्द्रदेवताके सम्बन्धकी सीवन है। दूसरे मन्त्रसे गाँठ देय। मन्त्रार्थ-(इन्द्रस्य ध्रुवः असि) हे गाँठ तू इन्द्रके सम्बन्ध वाली स्थिर है ३ रे मन्त्रसे सभाको सम्बोधन करे। मन्त्रार्थ—(ऐन्द्रम् असि) हे सभा तू इन्द्रदेवताकी प्रसन्नताके लिये निर्मित है। ४ थे मंत्रसे हविर्धान मण्डपके वायव्य कोणके उत्तरभागमें आग्नीध्र नामक अग्नि-स्थान बनाकर उसको स्पर्श करे। मंत्रार्थ-(वैश्वदेवम् असि) हे आग्नीध्र तुम सब देवताओंके आवाहन स्थान हो ॥ ३० ॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोसि प्रचेतास्तुथोसि विश्ववेदाः ।३१।

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र है। ऋषि-सबका मधुच्छन्दा। छंद १ लेका प्राजापत्या गायत्री दूसरे तीसरेका याजुषी गायत्री और चौथेका दैवी जगती है। देवता चारों का अग्नि है अध्वर्यु उत्तरमुख बैठ कर अग्नियोंकी आश्रय छोटी वेदीरूप धिष्ण्यों को मट्टीसे बनावे उसमें पहिले आग्नीध्र की वेदीको प्रथम मंत्र पढ़ कर सम्हाले। मन्त्रार्थ-(विभूः प्रवाहणः असि) हे आग्नीध्रीय धिष्ण्यके अग्नि तुम नानारूपधारक हविके पहुँचानेवाले हो। तदनन्तर पश्चिम-मुख अध्वर्यु पूर्वमें सदके द्वारको उसके उत्तरमें होता के धिष्ण्यको दूसरे मन्त्रसे सम्हाले। मन्त्रार्थ—(वह्निः हव्यवाहनः असि) हे होतृधिष्ण्यके अग्नि तुम यज्ञ कर्मके निर्वाहक देवताओंको हव्य प्राप्त कराने वाले हो। फिर उत्तरमुख अध्वर्यु औदुम्बरीके अग्निकोण और होतृधिष्ण्य के दक्षिणमें मैत्रावरुणके धिष्ण्यको तीसरे मन्त्रसे सम्हाले। मन्त्रार्थ-(श्वात्रः प्रचेताः असि) हे मैत्रावरुण धिष्ण्यके अग्नि तुम शीघ्रगामी मित्ररूप श्रेष्ठ ज्ञान वाले वरुण-रूप हो। होतृधिष्ण्यके उत्तर ब्राह्मणाच्छंसि पोता नेष्टा अच्छावाक् चारों ऋत्विजोंके धिष्ण्योंको समानान्तर चौथे मंत्रसे सम्हाले मन्त्रार्थ—(तुथः विश्ववेदाः असि) हे ब्राह्मणाच्छंसि धिष्ण्यके अग्नि तुम ब्रह्मरूप अथवा देवताओंमें दक्षिणा विभाग करने वाले सर्वज्ञ हो ॥ ३१ ॥

उशिगसि कविरंघारिरसि बम्भारिरवस्युरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्युरसि माजालीयः सम्राट्

डसि कृशानुः परिषद्योसि पवमानो नभोसि प्रतक्वा मृष्टोसि हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिकामें ९ मन्त्र हैं। ऋषि—सबका मधुच्छन्दा छन्द १।६।७ का याजुषी गायत्री २।३।४।८।९ वें का याजुष्यनुष्टुप् और ५ वें का याजुष्युष्णिक् है। देवता १।२।३।४ का अग्नि ५ वें का आहवनीय ६ ठेका वहिष्पवमान ७ वें का चत्वाल ८ वें का शामित्र और ९ वेंका औदुम्बरि है। ब्रह्मणाच्छंसि धिष्ण्यके कुछ उत्तरमें पोतृधिष्ण्य बना कर उस पर अधिष्ठित अग्निका प्रथम मन्त्रसे नामकरण करे। मन्त्रार्थ-(उशिक् कविः असि) हे पोतृधिष्ण्याग्ने! तुम कमनीय और क्रान्तदर्शी होनेसे कवि नाम वाले हो। पोतृधिष्ण्यके कुछ दूर नेष्टृधिष्ण्य बना कर उस पर अधिष्ठित अग्निका दूसरे मंत्रसे नामकरण करे। मन्त्रार्थ—(अंघारिः बम्भारिः असि) हे नेष्टृधिष्ण्यके अग्नि! तुम पापनाशक होनेसे अंघारि पोषक होनेसे बम्भारि हो। ३ रे मन्त्रसे नेष्टृधिष्ण्यके कुछ दूर मंडपके मध्यगत आग्नीध्रसे कुछ दक्षिणमें अच्छावाक् धिष्ण्य बनाकर उस पर स्थित अग्निका नामकरण करे। मंत्रार्थ-(अवस्यूः दुवस्वान् असि) हे अच्छावाक् धिष्ण्यके अग्नि तुम अन्न चाहने वाले, हविष्मान् हो। चौथे मन्त्रसे मार्जालीयधिष्ण्य बनाकर उसपर अधिष्ठित अग्निका नामकरण करे। मन्त्रार्थ-(शुन्ध्यूः मार्जालीयः असि) हे मार्जालीय धिष्ण्यके अग्नि तुम पवित्र करने वाले मार्जन करने वाले हो। ५ वें मन्त्रसे सभामण्डपके पूर्वभाग की उत्तरवेदीमें स्थित आहवनीय अग्नि का नामकरण करे मंत्रार्थ-(सम्राट् कृशानुः असि) हे उत्तर वेदीके आहवनीय अग्ने तुम बहुत प्रकारकी आहुति धारण करने से भले प्रकार शोभायमान और पवोव्रत आदि से कृश यजमानके अनुगामी हो। ६ ठे मन्त्रसे पश्चिममें ऐष्टिक वेदीके उत्तर बहिष्पवमान धिष्ण्य बनाकर उसका नाम करण करे। मन्त्रार्थ-(परिषद्यः पवमानः असि) हे बहिष्पवमान देश तुम स्तुतिकारक ऋत्विजोंकी सभाके योग्य और पवित्र करनेवाले हो। ७ वें मन्त्रसे सभामण्डपके पूर्वद्वारमें चत्वालका नामकरण करे। मन्त्रार्थ-(नभः प्रतक्वा असि) हे चत्वाल तुम छिद्रयुक्त होनेसे आकाशस्वरूप और ऋत्विजोंके प्रदक्षिण चलनेसे प्रतक्वा नाम वाले हो। ८ वें मन्त्रसे चत्वालके दक्षिणमें शामित्रधिष्ण्यका नामकरण करे मन्त्रार्थ—(मृष्टः हव्यसूदनः असि) हे शामित्र तुम पवित्र और हविपाकके कारण हो। ९ वें मन्त्रसे सदोमण्डपके मध्य

पश्चिम प्रान्तकी औदुम्बरीका नामकरण करे । मन्त्रार्थ-(ऋतधामा स्वर्ज्योतिः असि) हे औदुम्बरि तुम उद्गाताकी प्रधान कार्यस्थान और स्वर्गप्रकाशक हो ॥ ३२ ॥

समुद्रोसि विश्वव्यचा अजोस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्तासमध्वनामध्वपते प्रमातिरस्वस्ति मेस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिकामें ६ मन्त्र हैं। ऋषि सब का मधुच्छन्दा छन्द १ ले का प्राजा०गाय० २ । ३ का दै० पंक्ति ४ का याजुषीबृ० ५ वें का याजुषी० प० ६ ठे का निचृदार्षीगा० है, देवता १ ले का ब्रह्मासन २ रे का अग्नि ३ रे का गार्हपत्याग्नि ४ थे का सदः ५ वें का द्वार्यशाखे ;६ ठे का सूर्य है १ । २ । ३ मन्त्रसे सदोमण्डपके पूर्वद्वारके पूर्वभागमें स्थित होता ब्रह्मासन शालाद्वार और प्राजहितको देखे । मन्त्रार्थ—(१ समुद्रः विश्वव्यचाः असि) हे ब्रह्मासन तुम सब देवताओंके सन्मुख आनेके स्थान अथवा समुद्र तुल्य ज्ञानसे गम्भीर ब्रह्माके आसन यज्ञमें कृत अकृत देखनेके स्थान हो । (२ अजः एकपात् असि) हे शालाद्वारके अग्ने तुम आहवनीयरूपसे यज्ञमें जानेवाले वा अजन्मा अद्वितीय रक्षक वा सब प्राणी जिसके एक चरणमें हैं ऐसे हो । ३ अहिः बुध्न्यः असि) हे प्राजहितनाम गार्हपत्य अग्ने ! तुम शालाद्वार के नए गार्हपत्यके उत्पन्न होनेपर भी अक्षयरूप और आधानकालमें प्रथम स्थापित होनेके कारण मूल रूप हो । ४ थे मंत्रसे सदोमंडपका मार्जन करे । मंत्रार्थ—(४ वाक् असि । ऐन्द्रम् असि सदःअसि) हे सभामण्डप तुम अपने मध्यवाक्से कर्म होनेके कारण वाणीरूप हो इन्द्रको देवता रखने वाले हो । बैठनेके स्थान हो ५ वें मन्त्रसे द्वारके दोनों ओर स्थापित केलेके खंभ आदिका मार्जन करे मंत्रार्थ-(५ ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्तासम्) हे यज्ञके द्वारकी शाखाओं तुम मुझको मत सन्तप्त करो । ६ ठे मन्त्रसे यजमान देवयानमार्गके संस्कारके लिये सूर्यका अभिमन्त्रण करे । मन्त्रार्थ-(६ अध्वपते अध्वनाम् मा प्रतिर । अस्मिन् देवयाने पथि मे स्वस्ति भूयात्) हे मार्गके रक्षक सूर्य, मार्गोंमें वर्त्तमान मुझको बढ़ाओ, इस देवयान मार्गमें मेरा कल्याण हो ॥ ३३ ॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नयः पिपृतमाग्नयो गोपायत मा नमो वोस्तु मा मा हिंसिष्ट ॥ ३४ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं । ऋषि दोनोंका मधु० छन्द १ ले का याजुषीबृहती और २ रे का निच्यृद्ब्राह्मी अनु० है । देवता १ ले का ऋत्विज् और दूसरेका धिष्ण्य है । १ ले मन्त्रसे यजमान सब ऋत्विजोंका अभिमन्त्रण करे । मन्त्रार्थ-(मित्रस्य चक्षुषा मा ईक्षध्वम्) हे ऋत्विजों मित्रकी दृष्टिसे मुझको देखो । दूसरे मन्त्र से अध्वर्यु आठों धिष्ण्योंको देखता हुआ प्रार्थना करे । मन्त्रार्थ—(सगराः अग्नयः सगरेण नाम्ना सगराः स्थ । अग्नयः रौद्रेण अनीकेन मा पातम् । अग्नयः मा पिपृत । मा गोपायत । वः नमः अस्तु । मा मा हिंसिष्ट) हे स्तुतियुक्त धिष्ण्योंकी अग्नियों! स्तुतियुक्त नाम धिष्ण्यसे स्तुति की हुई हो, हे अग्नियों ! उग्र सेना वा मुखसे मुझको रक्षा करो । हे अग्नियों मुझको धनादिसे पूर्ण करो मुझको रक्षा करो । तुम्हारे अर्थ प्रणाम हो मुझको मत मारना अर्थात् यज्ञ में कोई विघ्न न हो ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाꣳसमित् । त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्यो-न्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा । जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं । ऋषि १ ले का मधु० २ । ३ का भृगुसुत ऋतु । छन्द १ लेका साम्नी अनुष्टुप् २ का अनवसानागाय० ३ रे का एकपदा विराट् है देवता १ लेका विश्वेदेवा २ । ३ का सोम १ ले मन्त्रसे ध्रुवेमेंसे ५ बार दधि मिला पृषदाज्य लेय । मन्त्रार्थ-(विश्वरूपम् ज्योतिः असि विश्वेषाम् देवानाम् समित् । हे आज्य ! तुम रूप देनेसे विश्वके रूप और दीप्ति देनेसे ज्योति हो । सब देवताओंके प्रकाशक हो । २ मन्त्रसे प्रज्वलित समिधाके ऊपर एक बार लिये हुए घीका जुहूसे होम करे । मन्त्रार्थ-(सोम त्वम् अन्तकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः तनूकृद्भ्यः यन्ता उरु वरूथम् असि स्वाहा) हे सोम ! तुम हमारे विरोधियोंसे प्रेरित शत्रुओं और शरीरछेदक राक्षसोंके लिये दण्डदाता और बड़े बलरूप हो ऐसेके निमित्त यह होम हो । ३ मंत्रसे फिर भी जुहूमें एक बार लिये हुए घृतको प्रदीप्त समिधा पर आहुति देय । मंत्रार्थ-(जुषाणः अप्तुः आज्यस्य वेतु स्वाहा) प्रसन्न सोम मेरे दिये हुए घृतका पान करो हमारी दी हुई आहुति सुन्दररूपसे ग्रहण की जाय ।३५।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

इसका अगस्त्य ऋ० त्रिष्टुप्छन्द और अग्नि देवता है। इस मंत्रको पढ़ता हुआ अध्वर्यु आग्नीध्रके समीप जानेको प्रवृत्त होने पर यजमानसे कहे। मंत्रार्थ-(अग्ने देव विश्वानि वयुनानि विद्वान् अस्मान् राये सुपथा नय। अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि ते भूयिष्ठाम् नम उक्तिम् विधेम) हे अग्नि देव सब ज्ञानोंको जानने वाले तुम हमको धन और यज्ञफलके लिये श्रेष्ठ मार्गसे प्राप्त करो। हमारी इच्छित क्रिया के प्रतिबन्धक पापको दूर करो। तुम्हारे अर्थ बहुत नमस्कार वचनको हम उच्चारण करते हैं ॥ ३६ ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्। अयम्वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

इसका अगस्त्य ऋ० आ० त्रि० छन्द और अग्नि देव० है। इसको पढ़ता हुआ सबको मण्डपके उत्तर भागमें लेजा कर आग्नीध्रीय धिष्ण्यमें अग्निको स्थापित करे। मन्त्रार्थ-(अयम् अग्निः नः वरिवः कृणोतु) यह अग्नि हमारे धनको करे। (अयम् मृधः अभिन्दन् पुरः एतु) यह अग्नि संग्राममें शत्रुसेनाओंको छिन्नभिन्न करता हुआ आगे आवे। (अयम् वाजसातौ वाजान् जयतु) यह अग्नि अन्न विभाग करनेमें अन्नोंको हमें देनेके निमित्त जीते। (जर्हृषाणः अयम् जयतु स्वाहा) अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ यह अग्नि शत्रुओंको जीतो वह हमारी आहुतिको सुन्दररूपसे ग्रहण करे ॥ ३७ ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि घृतङ् घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

इसका अग० ऋ० भुरिग् आ० अनु० छन्द विष्णुदेव० है। इसको पढ़कर उत्तर वेदीके आहवनीय अग्निकुण्डमें आहुति देय। मन्त्रार्थ-(विष्णो उरु विक्रमस्व) व्यापक आहवनीय अग्निरूप परमात्मन् बहुत पराक्रम करो (क्षयाय नः उरु कृधि) ब्रह्ममें निवासके निमित्त हमको अधिकता करो। (घृतयोने घृतम् प्रपिब) हे घृतसे बढ़ने वाले घृतको पियो (यज्ञपतिम् प्रतिर स्वाहा) यजमानको बढ़ाओ तुमको यह आहुति देते हैं ॥ ३८ ॥

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् एतत्त्वं देव सोम देवो देवानाꣳ उपागा इदमहम्मनुष्यान् सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

इस कण्डिकामें ३ मंत्र हैं। ऋषि तीनों का अगस्त्य छन्द १ का आ० गाय० २ का प्रा० त्रि० ३ का याजु० त्रि० है। देवता १ का सविता २ का सोम ३ का लिङ्गोक्त है जुहू आदि आज्यस्थालीपर्यन्त स्थापन करके यजमानसे सोम लेकर हविर्धानमें प्रवेश करे फिर दक्षिण हविर्धानमें मृगचर्म बिछाकर उसपर सोम रखता हुआ पहिला मन्त्र पढे। दूसरे मन्त्रसे सोमका उपस्थान करे। तीसरे मन्त्रसे हविर्धान मण्डपसे निकले। मन्त्रार्थ-(१ सवितः देव एष सोमः ते। तं रक्षस्व। त्वा मा दभन्) हे सबके प्रेरक देवता यह सोम आपके अर्पण है। उसको रक्षा करो। तुम सोमके रक्षक को कोई उपद्रव प्राप्त न हो (२ सोम देव त्वम् देवः देवान् एतत् उपागाः। इदम् अहम् रायस्पोषेण सह मनुष्यान्) हे सोम देव तुम देवता हो अतः देवताओंको इस समय प्राप्त हो जाओ। यह मैं यजमान धन और पुष्टिके साथ अपने मनुष्योंको प्राप्त हूँ। (३ स्वाहा वरुणस्य पाशात् निर्मुच्ये) सोमरूप अन्न देवताओंको पहुँचे, उस सोमदानके प्रभावसे मैं वरुणके पाश से छूटूँ ॥ ३९ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि या मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि। यथायथन्नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानुतपस्तपस्पतिः ४०

इसका अगस्त्य ऋ० नि० ब्रा० त्रि० छन्द और अग्नि देवता है इस मन्त्रसे आहवनीयमें समिध रख कर मदन्तीका स्पर्शकर गाढ़तर मुष्टि मेखलाको करे। मन्त्रार्थ-(अग्ने व्रतपाः त्वे व्रतपाः तव या तनूः मयि अभूत् सा एषा त्वयि) हे अग्निदेव! तुम स्वभावसे सब व्रतोंके रक्षक हो अतः तुम मेरे व्रतके पालक होओ। आपका जो शरीर मुझमें स्थित हुआ था, सो यह तुम्हारा शरीर तुम्हारा ही हो। (या उ मम तनूः त्वयि अभूत् सा इदम् मयि) और जो यह मेरा शरीर तुममें स्थित था, वह यह मेरा शरीर मुझमें स्थित हो। (व्रतपते नौ व्रतानि यथायथम्) हे व्रतके पालक हम तुम दोनोंके कर्म सम्बन्धको न तोड़ें। (दीक्षापतिः मे दीक्षाम् अन्वमंस्त) दीक्षाके स्वामी तुमने मेरी दीक्षाको अंगीकार किया है। (तपस्पतिः तपः अनु) उपसद् तपके पालक अग्निने मेरा व्रतपालन उपसद्रूप तप स्वीकार किया। ४०।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतङ् घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

यूप काटनेके लिये वनको जाता हुआ सफलताके लिये चार बार स्रुवेमें घी लेकर इस मन्त्रसे आहवनीय कुण्डमें हवन करे इसकी व्याख्या ३८ वें मन्त्रमें होचुकी ४१

अत्यन्या५ अगान्नान्या५ उपागामर्वाक्त्वा परेभ्योविदम्परोवरेभ्यः । तन्त्वा जुषामहे देववनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । औषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हि ५ सीः ॥ ४२ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं । ऋ० सब का अग० छन्द १ । २ का भु० ब्रा० बृ० ३ का याजु० गा० ४ का दैवीज० है । हुतशेष घृत लेकर तक्षा (बढ़ई)के साथ वन में जाने पर १ मन्त्रसे यूपके योग्य एक वृक्षको पूर्वाभिमुख हो अभिमर्शन वा अभिमन्त्रण करे । २ मन्त्रसे स्रुवेमें जो हुतशेष घी हो उससे वृक्षको स्पर्श करे। ३ मंत्रसे कुशतरुणको रख कर उसके ऊपर कुठार का प्रहार करे । ४ मंत्रसे यूपके योग्य वृक्ष को काटे । मन्त्रार्थ-(१ अन्यान् अत्यगाम् अन्यान् न उपागाम् । त्वा परेभ्यः अर्वाक् अवरेभ्यः परः अविदम् वनस्पते देव देवयज्यायै तम् त्वा जुषामहे देवाः देवयज्यायै त्वा जुषन्ताम्) हे आगे वर्त्तमान यूपवृक्ष मैं तुमसे अन्य वृक्षोंको छोड़कर आया हूँ। यूपके योग्य अन्यवृक्षोंके समीप नहीं गया तुमको दूरके वृक्षोंसे निकट और निकटोंसे श्रेष्ठ पाकर आया हूँ हे वनके पालक देव! देवयज्ञके लिये ऐसे तुमको हम सेवन करते हैं । देवता भी देवयजनके कार्यके लिये तुमको सेवन करें । (२ त्वा विष्णवे) हे यूपवृक्ष तुमको परमात्माकी प्रीतिके लिये स्पर्श करता हूँ । (३ औषधे त्रायस्व) हे औषध तुम वज्रभयसे मेरी रक्षा करो। (४ स्वधिते एनम् मा हिंसीः) हे कुठार इस यूपके अन्य स्थानका मत व्याघात करो ॥ ४२ ॥

द्यामा लेखीरन्तरिक्षम्मा हि ५ सीः पृथिव्या सम्भव । अयं ५ हित्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वन्देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शो विवय ५ रुहेम ॥ ४३ ॥

इस कण्डिकामें ३ मंत्र हैं। ऋषि सब का अगस्त्य है। छन्द १का नि०साम्नीवृ० २ का साम्नात्रि० ३ का आर्षी वृ० है। देवता तीनोंका बृहस्पति है। १ मन्त्रसे यूपके निमित्त कटकर गिरती हुई शाखाका अभिमन्त्रण करे। २ से उस शाखाके पत्ते आदि दूर करे। ३से आज्यस्थालीमेंसे एक बार लिये घृतको जुहू में लेकर, काटनेके स्थानमें आहुति देय। मन्त्रार्थ--(१ द्याम् मा लेखीः। अन्तरिक्षम् मा हिंसीः। पृथिव्याः सम्भव) हे यूपवृक्ष तुम द्युलोकको मत विगाड़ो। अन्तरिक्षको पीड़ा मत दो पृथिवीके साथ मिलो अर्थात् तीनों लोकों में शान्ति हो। (२ हि तेतिजानः अयम् स्वधितिः महते सौभगाय त्वा प्रणिनाय) क्योंकि-यह अति तीक्ष्ण कुठार बड़ाभारी ऐश्वर्य पानेके लिये तुमको यूप बनाता है (३ वनस्पते देव अतः त्वम् शतवल्शः विरोह। वयम् सहस्रवल्शः विरुहेम) हे वृक्षदेवता इस स्थाणुसे तुम बहुत अंकुर वाले होतेहुए उपजो। हम पुत्रपौत्र आदि बहुतसी शाखा वाले हों ॥ ४३ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिता का सानुवाद पञ्चम अध्याय समाप्त

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

जिसमें सोमकी वेदी प्रधान है ऐसे पञ्चम अध्यायमें आतिथ्यसे लेकर यूपनिर्माण-पर्यन्त मन्त्र कहे। अब छठे अध्यायमें यूपसंस्कारसे लेकर सोमाभिषव उद्योगपर्यन्त मन्त्र कहे जायँगे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसाङ्ग्रीवा अपि कृन्तामि। यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवया रातीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः। पितृषदनमसि ॥ १ ॥

पीछे पाँचवें अध्यायकी २६वीं कंडिका में इस मन्त्रकी व्याख्या करचुके हैं। वहाँ लिङ्गशरीरका संस्कार था, यहाँ स्थूलशरीर के संस्कारका वर्णन है ॥ १ ॥

अग्रेणोरसि स्वावेशा उन्नेतणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्या-

नक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षम्मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृ ꣳ हीः ॥ २ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं। सबका साकल्य ऋ० छन्द १।४ का नि० गाय० २ का याजु० प० ३ का याजु० बृ०। देवता १ का शकल २।४ का यूप ३ का चषाल है। १ से यूपके गढ़ेमें पहिले यूपके मूलभाग का खंभ डाले। २ से उसके ऊपरके भागमें घृत लेपे ३ से ऊपर घृतसे लिप्त चषालको यूप के अग्रभाग पर स्थापन करे ४ से ऊँचा करे। मन्त्रार्थ-(१ उन्नेतॄणाम् स्वावेशः अग्रेणीः असि एतस्य वित्तात् त्वा अधि स्थास्यति) हे यूप खण्ड उठाने वाले ऋत्विजों को हलकी होनेसे सुखसे प्रवेश करने योग्य अग्रसर हो तुम इस कर्मको जानो जो कि तुम्हारे ऊपर दूसरा और खण्ड स्थापित होगा (२ सविता देवः मध्वाः त्वा अनक्तु) सबके प्रेरक देव मधुर घृतसे तुमको सींचें (३ सुपिप्पलाभ्यः ओषधीभ्यः त्वा) हे चषाल ! शुभफलयुक्त औषधियोंके निमित्त तुझको यूपखण्ड पर स्थापित करता हूँ। (४ अग्रेण द्याम् अस्पृक्षः मध्येन अन्तरिक्षम् आ अप्राः उपरेण पृथिवीम् अदृंहीः) हे यूप तुमने अग्रभागसे द्युलोकको स्पर्श किया है, मध्यभागसे अन्तरिक्षको पूर्ण किया है, अधोभागसे पृथिवीको दृढ़ किया

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्पदमवभारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रन्दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजान्दृꣳह ॥ ३ ॥

इस कण्डिकामें ३ मन्त्र हैं। ऋषि सबका दीर्घतमा छन्द १ लेका त्रि० २ का साम्न्यु० ३ का नि० प्रा० बृ० देवता तीनोंका यूप है १ से गढ़ेके मध्यमें यूपकी जड़को प्रविष्ट करे। २ से उस गढ़ेको मट्टीसे भरे। ३ से भरे हुए गढ़ेको चारों ओर दण्डेसे कूटे। मन्त्रार्थ-(१ या ते धामानि गमध्यै उश्मसि यत्र भूरिशृङ्गाः गावः अयासः अत्र उरुगायस्य विष्णोः परमम् पदम् आह तत् भूरि अवभारि) हे यूप ! जो तेरे स्थान पर गमन करनेको हम कामना करें, जहाँ सूर्य देवता की अति प्रकाशवान् किरणें विस्तृत होती हैं, इस स्थानमें महात्माओंसे स्तुति किये हुए व्यापक परमात्माके उत्तम स्थानको कहते हैं, वह बहुत प्रकारसे प्रकाश करता है। (ब्रह्मवनि क्षत्रवनि रायस्पोषवनि त्वा

पर्यूहामि) हे यूप! ब्राह्मणोंसे स्वीकार योग्य क्षत्रियोंसे चाहने योग्य धन पुष्टिके निमित्त स्वीकृत तुझपर चारोंओरसे मट्टी डालता हूँ (ब्रह्म दृंह क्षत्रम् दृंह आयुः दृंह प्रजाम् दृंह) हे यूप ब्राह्मण जाति को दृढ़कर क्षत्रिय जातिको दृढ़कर आयुको दृढ़कर सन्तानको दृढ़कर ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

इसका मेधातिथि ऋ० निच्यृदा० गा० छन्द और विष्णु देवता है, अध्वर्यु यूपका मध्यभाग यजमानको छुवाकर इस मन्त्रको पढवावे। मन्त्रार्थ-(विष्णोः कर्माणि पश्यत यतः इन्द्रस्य युज्यः सखा व्रतानि पस्पशे) हे ऋत्विजों परमात्माके सृष्टि संहार आदि कर्मोंको देखो क्योंकि वह इन्द्रका अनुरूप मित्र है, उसने लौकिक वैदिक कर्मों को रचा है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोः परमपदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥

इसका मेधा० ऋ० नि० आ० गा० छन्द और विष्णु देवता है। अध्वर्यु यजमानको चषाल दिखाता हुआ यह मन्त्र पढवावे। मन्त्रार्थ—(सूरयः विष्णोः तत् पदम् सदा पश्यन्ति दिवि चक्षुः इव आततम्) वेदान्तके वेत्ता योगी सर्वव्यापक परमात्माके उस मोक्षस्वरूप परमपदको सदा देखते हैं, निरावरण आकाशमें चक्षु की समान व्याप्त है ॥ ५ ॥

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् । दिवः-सूनुरस्येष ते पृथिव्यँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं। सबका दीर्घ० ऋ० छन्द १ का प्राजा० त्रि० २ का दै० त्रि० ३ का साम्न्यु० है। देवता १।३ का यूप २ का स्वरु है। १ मन्त्रसे ३ लड़वाली कुशाकी रस्सी बनाकर यूपकी नाभ में लपेटे। २ से अग्निष्टके उत्तरभागमें स्वरु का अवगूहन करे ३ से वर्षिष्ट यूपके दक्षिण में बिना छिले १२ यूप स्थापन करे मंत्रार्थ (१ परिवीः असि दैवीः विशः त्वा परिव्ययन्ताम् । मनुष्याणाम् रायः इमम् यजमानम् परि) हे यूप तुम चारों ओर रस्सी से वेष्टित वा हमसे घिरे हो, देवताओंकी मरुत्गण आदि प्रजा अथवा पशु तुमको चारों ओरसे घेरें मनुष्य सम्बन्धी धन इस यजमान को चारों ओरसे घेरें। (२ दिवः सूनुः असि हे स्वरु! तुम स्वर्गके पुत्र हो

अर्थात् द्युलोकसे वर्षा, वर्षासे वृत्त, उससे यूप और यूपसे स्वरु होता है, इस कारण पुत्र कहा है। (पृथिव्याम् एषः ते लोकः आरण्यः पशुः ते) हे यूप पृथिवी पर यह तेरा आश्रयस्थान है, वन—सम्बन्धी पशु तेरा ही है ॥६॥

अग्निषोमीय पशुप्रयोग।

मीमांसादर्शनमें बताई हुई परिसंख्या-विधिके अनुसार जो क्षत्रियजाति आखेटमें अत्यन्त प्रवृत्त होकर तामसप्रवृत्तिमें को झुकती चली जा रही है, उसको निवृत्ति मार्गमें लानेके लिये वेदमें अग्निषोमीय पशु प्रयोग देखनेमें आता है। यह अग्निषोमीय यज्ञ सोमयागका अङ्गभूत है, इसमें पशुका संस्कार किया जाता है। तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद काण्ड ६ प्रपाठक १ अनुवाक ६ में लिखा है—"आसोमं वहन्त्यग्निना प्रतिष्ठ ते वहन्त्यग्निना प्रतिष्ठते तौ सम्भवन्तौ यजमानमभिसम्भवतः। यदग्निषोमीयं पशुमालभते आत्मनिष्क्रय एव सः।" जिस समय ऋत्विक् यज्ञशालामें अग्निके पास सोमको लाते हैं, उस समय यज्ञ क्रियामें दीक्षित हुआ यजमान अपने शरीरका यज्ञ के निमित्त समर्पित मानता है, उस समय जो अग्निषोम देवताके निमित्त पशु दियाजाता है सो मानो यजमान अपने शरीरका मूल्य देता है, इस प्रकारके पशुप्रयोगके द्वारा स्वाभाविक हिंसा करने वालोंके कदाचार का संकोच किया है, अर्थात् राजरक्षाके निमित्त आखेट आदि करनेपर स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार पशुमें अत्यन्त प्रीतिवाला क्षत्रिय यदि स्वच्छ सुख चाहे तो इन हिंसाप्रधान कर्मोंको सर्वथा त्याग देय और यदि एक साथ इन्द्रियोंको रोकनेमें असमर्थ हो तो उनके रोकनेकी शास्त्रमें यह युक्ति कही है, कि—यज्ञमें ही ऐसा करे। और वह भी केवल सोमादिमें ही और वह भी क्षत्रिय ही, इससे यह नहीं समझलेना कि-वेद मांस-भक्षणके लिये पशुयागकी आज्ञा देता है, किन्तु इसका भी एक प्रकारसे हिंसाके निषेधमें ही तात्पर्य है, जैसे यदि कोई बालक अत्यन्त खेलकूदमें लगा हो और खेलमें गुथी हुई उसके मन की प्रवृत्ति यदि एकसाथ न रोकी जासके तो कुछ नियम कर दिया जाता है, कि-हे बालक! यदि तुझसे खेले विना रहा ही नहीं जाता तो अपने पढ़े हुए को बुद्धिस्थ कर लेनेके अनन्तर खेल लिया कर और वह भी अच्छे लड़कोंके साथ तथा थोड़े ही समय, इस प्रकार खेलनेका संकोच करते २ विद्या और संगतिके प्रभावसे वह स्वयं ही खेलको, अमूल्य समय और भविष्य जीवनका विनाशक समझ कर त्याग देगा, इसी प्रकार यदि उपकारक शास्त्रग्रन्थ अनेकों प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें आसक्त पुरुषों को उन हानिकारक प्रवृत्तियोंसे एक साथ निवृत्त करें तो कुछ भी

परिणाम न निकले, इसकारण कुछ नियम लिखकर संकोच किया है, इस प्रकार जैसे बालकके खेलनेका नियम बाँधनेसे उसकी माताका तात्पर्य खिलानेमें नहीं होता है, किन्तु खेलनेका स्वभाव छुटानेमें होता है, तैसे ही आखेटासक्त क्षत्रियोंके लिये पशु-याग आदिके नियम धीरे २ हिंसामें अरुचि कराकर उस अनर्थकारी स्वभावसे सर्वथा बचानेके ही लिये हैं, इसी कारण पशुयाग आदिका वेदमें विधानसा दीखने पर भी वास्तवमें वह निवृत्तिमार्गमें ही पहुँचानेका उपाय है, क्योंकि-यहाँ तक संकोच किया है, कि यज्ञ करने वाला भी उसको सूँघ कर ही छोड़ देय। और सच्चा सुख तो सर्वथा अहिंसा आदि नियमोंके पालनमें ही है, यज्ञके निमित्त की हुई हिंसाका भी शास्त्रमें दुःखरूप फल ही कहा है। इस कारण पशुयाग आदि विषयके वाक्य विधि नहीं हैं, किन्तु अगतिकगति हैं, कि-जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य न होसके वह ऋतुकालमें स्वभार्यागमन करनेके लिये वेदविधिसे विवाह करलेय, जिसको मांस विना न सरे वह हुतशेषको स्वीकार करे और जिसको मद्य विना न सरे वह यज्ञ करके ऋत्विजों के निर्मित महौषधियोंके रसका सेवन करे वास्तवमें तो जहाँ तक होसके तहाँ तक मधुरताके साथ इनके त्यागमें ही वेदका तात्पर्य है, वेद यह नहीं कहता कि—सब को ऐसा करना ही चाहिये, इस कारण जो हिंसादियुक्त कर्मोंसे स्वयं निवृत्त हैं, वह तो यज्ञादि करने वालों से उच्चकोटि के जीव हैं उनको ऐसे यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस कर्मकी वेद भी प्रशंसा नहीं करता, किन्तु २० वीं कण्डिकामें कहा है यजमान कहै, कि-मैंने जो पशुके साथ बुरा व्यवहार किया है वह मेरा पाप दूर हो तथा मेरे घर पशु आदि बहुत बढ़ें इससे सिद्ध है, कि-इस प्रकारके उपदेशसे यज्ञकर्ता मांसप्रेमी भी सचेत होकर अवश्य ही हिंसा--प्रधान कर्मोंको त्याग देगा, क्योंकि-उस प्रवृत्तिमें परममग्न यजमानको निवृत्तिमार्गमेंका ले जानेके लिये यह यागादिकर्म सोपानरूप हैं, इससे आगे उपासना और ज्ञानकी भूमिकामेंको बढ़ने पर तो इसका सर्वथा ही निषेध है, देखो राजा जो अफीम भाँग आदि मादक वस्तुओं पर कर लगाता है, और उनके बेचनेके नियम बनाता है, तो इसका तात्पर्य मादक वस्तुओंके प्रचारके लिये नहीं होता किन्तु रोकनेके लिए होता है यदि ऐसा न हो तो उनके प्रचारका कुछ ठिकाना न रहे, यह ही अभिप्राय यागादि के विषयमें है, बहुत सूक्ष्मरीति के साथ विचार करने पर विद्वानोंने यह ही तत्त्व निकाला है। धर्म अधर्मका ज्ञान हमको वेदसे ही होता है, इस कारण वेदमें जो कर्त्तव्य लिखा है वह धर्म है जिसका निषेध किया है, वह अधर्म है, उसमें अल्पज्ञ मनुष्य को ननु नच करनेका अधिकार नहीं है।

वेदमें जो कर्त्तव्य है, वह सांसारिक

अल्पज्ञ पुरुषोंकी दृष्टिमें अशुद्ध प्रतीत होता हो तब भी वह शुद्ध है, उससे अन्य संस्कारशून्य होनेके कारण अशुद्ध है, जैसे ज्वरकी औषध रोगीकी दृष्टिमें घृणास्पद होने पर भी शास्त्रकी दृष्टिसे वह ज्वरको दूर करने वाली है, परन्तु वह ही औषध संग्रहणीके लिये अनुपयोगी है, इसीप्रकार वेद जिस कर्मको कल्याणकारक बताता है वह वेदविधिसे प्रतिकूल किया जाय तो शुभदायक न होकर उलटा हानिकारक हो जायगा।

अथवा इस पशुयागके विषयमें एक प्रकारका तत्त्व और भी है, वह यह कि— इस संसारक्षेत्रमें तिसमें भी भारतवर्षमें मनुष्यशरीरको पाकर तिस पर भी मोक्ष-साधन मार्गके द्वारपर्यन्त पहुँचे हुए द्विज-शरीरको पाकर अपने उद्धारका उपाय करते हुए अतिदूर अन्धकारमें पड़कर कष्ट पाने वाले पशु आदिका भी उद्धार करके उनको भी निरतिशय सुखका भागी बनाना चाहिये अन्यथा पशुओंसे स्वयं तो अपनी उस योनिके दुःखसे उद्धारका उपाय बन नहीं सकता, अतः महात्माओंका कर्त्तव्य है कि-वह कृपा कर उनके उद्धारका उपाय करें। तुरीयावस्थामें पहुँचने पर ही प्राणी को निरतिशय सुख वा मुक्तिकी प्राप्ति होती है, जो तुरीया मनुष्योंके परमसाधन करने पर प्रकट होता है वह पशु शरीरोंमें नादसे ही प्रकट होने लगती है, इसी कारण सर्प, मृग आदि बीनके नादको सुनते ही अपने शारीरिक भानको भूल जाते हैं, उस समय सांसारिक सुख दुःखका भान दूर होकर एक अनिर्वचनीय सुखका प्रवाह बहने लगता है, जिस समय यज्ञमें साम-वेदका नाद होने पर पशु तुरीयावस्थामें आते थे उसी समय ब्रह्मा ऋत्विक् आदि यथोचित मन्त्र-प्रयोगसे उसके परलोक-गमनका विधान करते थे, यह मानो पशु के संसाररोगकी चिकित्सा है चिकित्साके निमित्त शरीरका खण्डन होनेमें चिकित्सक को कुछ दोष न होकर उसको दुःखसे छुटानेके कारण कुछ पुण्य ही होता है। और रोगी भी रोगमुक्त होने पर अनेकों आशीर्वाद देता है, इसी प्रकार यज्ञीय पशु पशुशरीरसे छूटनेके अनन्तर मन्त्रके प्रभाव से दिव्यशरीरको पाकर स्वर्गादि सुख-प्रधान लोकोंमें गमन करते थे, परन्तु तुरीयाका प्रकट करनेकी योग्यता और तपका प्रभाव न रहनेसे कलियुगमें पशु-यागोंके करनेका स्मृतियों में निषेध कर दिया है, तथा उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें पहुँचने पर एवं ब्राह्मण, वैश्योंके निमित्त तो इन पशुयागादिका विधान है ही नहीं इस कारण आगेके पशुयाग विष-यक मन्त्रोंका पशुयाग विषयक विनियोगों के अनुसार अर्थ लिख कर हम निवृत्ति-मार्गोन्मुख धार्मिकोंके चित्तको प्रवृत्तिमार्ग की उलझनमें नहीं डालना चाहते। किन्तु वेदको आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीन प्रकारकी व्याख्याओं

मेंसे आध्यात्मिक व्याख्या लिखना सङ्गत समझते हैं। और प्रसङ्गवश पशुयागके विषय पर जो यह इतना आन्दोलन किया इसका कारण यह है, कि—संस्कृत तथा भाषा आदिमें जो अन्य व्याख्याएँ पशुयाग-विषयक विनियोगोंके अनुसार लिखी जा चुकी हैं, उनको पढ़ने पर वास्तविक तत्त्व के न जानने से वा वैदिक नामधारी प्रच्छन्न वेदशत्रुओंके बहकानेसे धार्मिकोंके चित्तमें उत्पन्नहुए सन्देहाभास दूर होजायँ

यजुर्वेद अ० २३।११ में लिखा है, कि-'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।' अर्थात् वेदी ही पृथिवी का अन्त है जहाँ सर्वत्र यज्ञक्रिया होरही है, वह यज्ञ भुवनकी नाभि है, जिसमें सब क्रियाएँ सूक्ष्मरूपमें होती हैं। ऐसे प्राकृतिक यज्ञमें दीक्षित हुए पुरुषको उचित है कि—योगाग्नि वा ज्ञानाग्निमें प्राणरूप पशु का बलि देय क्योंकि—'अग्नीषोमात्मकं जगत्।' अर्थात् यह जगत् अग्नीषोमात्मक है और ऐसा जगत् जिसका देवता है वह पशु अभिमान एवं प्राण ही है, उसीका बलिदान करने पर आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, अतएव आगेके पशुयागविषयक मन्त्रोंका आध्यात्मिक अर्थ ही लिखते हैं-

उपवीरस्युपदेवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान । देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

(उपवीः असि) हे सुषुम्नाके अधिष्ठातृदेव! तुम प्राणपशुके निकटमें रहकर उसके रक्षक सखा हो (दैवीर्विशः उशिजः वह्नितमान् देवान् उप प्रागुः) योगसाधना करने वालेके प्राण योगयुक्तोंको चाहने वाले श्रेष्ठ अग्निकी समान प्रकाशस्वरूप नर नारायणको प्राप्त हों (देव त्वष्टः वसु रम) हे दिव्यस्वरूप भगवन्! योगीके आत्मप्रतिबिम्ब वा प्राणरूप धनमें रमण कीजिये (ते हव्या स्वदन्ताम्) हे भूतात्मन्! तुम्हारी प्राणरूप हवि तुमको रुचे

रेवती रमध्वम्बृहस्पते धा रया वसूनि । ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

(रेवतीः रमध्वम्) क्षीर आदि धन वाली गौओंकी समान शम दम आदि धन से युक्त इन्द्रियरूप पशु आत्मस्वरूप यजमानके शरीरमें क्रीड़ा करें (बृहस्पते वसूनि रया धाः) हे,परमात्मन्! प्राण और इन्द्रियों को योगलक्ष्मीके द्वारा पुष्ट करो (देवहविः

ऋतस्य पाशेन त्वा प्रतिमुंचामि) हे भूतात्मन्! योगयज्ञके पाशसे तुझको बाँधता हूँ और कर्मबन्धनके पाशसे तुझको योगयज्ञ के द्वारा मुक्त करता हूँ (मानुषः धर्षा) विष्णुरूप प्राणाभिमानी देवता तुझको शमन करनेमें समर्थ है ॥ ८ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्याञ्जुष्टं नियुनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

प्रतिबिम्बके हवनसे पहिले भूतात्माके हवनको कहते हैं,कि-हे भूतात्मन् (सवितुः देवस्य प्रसवे अग्नीषोमाभ्याम् जुष्टम् त्वा अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णः हस्ताभ्याम् नियुनज्मि) आत्मविचारकी ओरको प्रेरणा करने वाले गुरुदेवकी प्रेरणा करने पर मैं प्रकृति पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको मन हृदयको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप बाहुओंसे और मानससूर्यकी ग्रहण करनेकी शक्तिरूप हाथोंसे निश्चल करता हूँ (अग्नीषोमाभ्याम् जुष्टम् त्वा अद्भ्यः ओषधीभ्यः प्रोक्षामि) हे भूतात्मन्! प्रकृति पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको ज्योति रसरूप जल और जन्मरूप रोगका नाश करने वाली ज्ञानस्वरूप औषधियोंसे प्रोक्षण करता हूँ (त्वा माता अनुमन्यताम्) ऐसे प्रोक्षित तुझको प्रकृति आज्ञा देय (पिता अनु) पुरुष आज्ञा देय (भ्राता अनु) सहोदर भ्रातासमान जीवात्मा अनुमति देय (सयूथ्यः सखा अनु) समान यूथवाला ईशरूप मित्र आज्ञा देय ॥

अपाम्पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तश्चित्सद्देवहविः । सन्ते प्राणो वातेन गच्छतां समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥ १० ॥

हे भूतात्मन्! तू (अपाम् पेरुः असि) ब्रह्मज्योतिके रसरूप अमृतका पान करने वाला है (देवीः आपः स्वदन्तु) ब्रह्मज्योतिके रसरूप जल तुझको स्वीकार करें (देवहविः स्वात्तम् सत् चित्) क्योंकि-ईशका हवि भली प्रकार भक्षित होता हुआ ब्रह्मरूप हो जाता है (ते प्राणः वातेन सङ्गच्छताम) हे भूतात्मन्! तेरा प्राण समष्टिप्राणसे संयुक्त हो (अङ्गानि यजत्रैः सम्) तेरे अंग योगयज्ञकी साधनामें लगें (यज्ञपतिः आशिसा सम्) आत्मारूप यजमान योगयज्ञके फलरूप आशीर्वादसे युक्त हो ॥ १० ॥

घृतेनाक्तौ पशूꣳस्त्रायेथां रेवति यजमाने प्रियन्धा आविश उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्तमना यज समस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिन्धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

(घृतेन अक्तौ पशून् त्रायेथाम्) हे बुद्धिमन् तुम दोनों अग्निकी समीपतासे घृतकी समान विषयों की समीपता से पिलघने वाली इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंसे लिप्त हो, भूतात्माके अङ्ग प्राण आदिकी रक्षा करो (रेवति यजमाने प्रियम् धाः) हे महावाणी! आत्मरूप यजमानमें इसके इच्छित मोक्ष को धारण करो (देवेन वातेन सजूः उरोः अन्तरिक्षात् आविश) प्रकाशवान प्राणके साथ प्रीतिवाली होकर गुरुके हृदयाकाश से ज्ञानदानके द्वारा यजमानमें प्रवेश कर (अस्य हविषस्तमना यज) इस भूतात्माके हविरूप शरीरका हवन कर (अस्य तन्वा सम्भव) इस भूतात्माके शरीरसे 'अहं ब्रह्मा स्म' इस आकारसे प्रकट हो (वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिम् धाः) हे विस्तार वाली सुषुम्ना! अति विस्तार वाले विष्णु-परमात्मामें योगयज्ञके कर्त्ताको स्थापन कर (देवेभ्यः स्वाहा) कर्मेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओंके अर्थ कर्मेन्द्रियोंका हवन हो (देवेभ्यः स्वाहा) ज्ञानेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओंके अर्थ ज्ञानेन्द्रियोंका होम हो ११

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त आतानानर्वा प्रेहि । घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु १२

(अहिः पृदाकुः मा भूः) हे सुषुम्ना! तू सर्पकी समान कुटिलचाल चलनेवाली और बीछूके समान मर्मस्थानको पीड़ा देने वाली मत हो (आतान ते नमः) हे योगयज्ञ! तुम्हारे लिये भूतात्मारूप अन्न है (अनर्वा प्रेहि) हे योगयज्ञके साधक! तुम काम आदि शत्रुओंसे रहित होते हुए सुषुम्नाके द्वारा गमनकरो (ऋतस्य पथ्याः घृतस्य कुल्याः अनु उपप्रेहि) ब्रह्ममार्गमें हितकारी इन्द्रियोंकी सकल शक्तियों के प्रवाहरूप नदियोंको देख कर त्रिदेवरूप-धारी महाविष्णुको प्राप्त करो ॥ १२ ॥

देवीरापः शुद्धा वोद्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयम्परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

(देवीः आपः शुद्धाः सुपरिविष्टाः देवेषु वोद्वम्) हे इन्द्रिय सम्बन्धी गोलकरूप अन्तरिक्षो! सांसारिक सुख और शयनका दाता जो सुख है उसके धारण करने वाले देहमें प्रविष्ट हुए तुम भूतात्माको देवताओं में पहुँचाओ अर्थात् उसकी ज्ञानदशाकी

प्राप्तिके साधन बनो (सुपरिविष्टाः वयम् परिवेष्टारः भूयास्म) और तुम्हारे प्रसाद से सब प्रकार योगयज्ञमें प्रविष्ट होकर तृप्त हुए हम वाक् आदि ऋत्विज् देवताओंको हो कर्मका फल अर्पण करने वाले हों १३

वाचन्ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि । नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चारित्रांस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

बुद्धि कहती है कि-हे भूतात्मन् (ते वाचम् शुन्धामि) मैं तेरी वाक् इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते प्राणम् शुन्धामि) तेरे प्राणको शुद्ध करती हूँ (ते चक्षुः शुन्धामि) तेरी चक्षु इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते श्रोत्रम् शुन्धामि) तेरी श्रोत्रेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते नाभिम् शुन्धामि) तेरी नाभि को शुद्ध करती हूँ (ते मेढ्रम् शुन्धामि) तेरी लिङ्गेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते पायुम् शुन्धामि) तेरी गुदेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते चारित्रान् शुन्धामि) तेरे चरणोंको शुद्ध करती हूँ ॥ १४ ॥

मनस्त आप्यायताम्वाक्त आप्यायताम्प्राणास्त आप्यायताञ्चक्षुस्त आप्यायताꣳश्रोत्रन्त आप्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितन्तत्त आप्यायतान्निष्ट्यायतान्तत्ते शुद्धयतु शन्नोभ्यः ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ १५ ॥

हे भूतात्मन् (ते मनः आप्यायताम्) तेरा मन सारूप्य मोक्षको पानेके लिये समष्टिमनके भावको पानारूप वृद्धिको पावे (ते वाक् आप्यायताम्) तेरी वाक् इन्द्रिय समष्टिभावको पावे (ते प्राणः आप्यायताम्) तेरा प्राण समष्टिभावको पावे (ते चक्षुः आप्यायताम्) तेरा चक्षु समष्टिभावको पावे (ते श्रोत्रम् आप्यायताम्) तेरी श्रोत्रेन्द्रिय समष्टिभावको पावे (ते यत् क्रूरम् आस्थितम् ते तत् आप्यायताम्) तेरा जो कष्टदायक संसार बन्धन है वह तेरा शान्त हो (निष्ट्यायताम्) द्वैतभावरहित होकर एकीभावरूप ब्रह्मभावको पावे (ते तत् शुद्धयतु) तेरा वह सब शुद्ध हो (अहोभ्यः शम्) देवयानके सम्बन्धी दिनोंके निमित्त कल्याण हो (ओषधे त्रायस्व) हे इन्द्रियों की शक्तियों ! रक्षा करो उन्मार्गमेंको न जाओ (स्वधिते एनम् मा हिंसीः) हे मन इस भूतात्माको संसारबन्धनसे नष्ट न करो १५

रक्षसाम्भागोसि निरस्तꣳ रक्ष इदमहꣳ रक्षोभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोबबाध इदमहꣳ रक्षोधमन्तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेस्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसम्मारुतङ्गच्छतम् ॥ १६ ॥

हे क्रोध आदिके समूह तुम (रक्षसाम् भागः असि) राक्षस समान काम आदिके भाग हो (रक्षः निरस्तम्) योगयज्ञमें विघ्न करनेवाले अज्ञानका त्याग कियागया (अहम् इदम् रक्षः अभितिष्ठामि मैं इस राक्षसरूप अज्ञानको पाँवसे दबाकर स्थित होता हूँ (अहम् इदम् रक्षः अबबाधे) मैं इस अज्ञानको नष्ट करता हूँ (अहम् इदम् रक्षः अधमम् तमः नयामि) मैं इस अज्ञान को अतिनिकृष्ट उसके उत्पत्तिस्थान तमोगुणमें पहुँचाता हूँ (द्यावापृथिवी घृतेन प्रोर्णुवाथाम्) मेरे हृदय मन तुम दोनों इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहसे अपने आत्मा को आच्छादन करो (वायो स्तोकानाम् वेः) हे प्राणवायो ! ब्रह्मरन्ध्रसे टपकने वाले अमृतरसकी बूँदोंका ज्ञान पाकर उसको पिये (अग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा) आत्माग्नि इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहको पिये और भलीप्रकार स्वीकार करे (स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसम् मारुतम् गच्छतम्) ब्रह्मज्ञान का उपदेश होने पर तुम दोनों व्यष्टि और समष्टि-प्रतिबिम्ब ब्रह्मरन्ध्राकाशमें ऊपर वर्त्तमान समष्टिवायुको पाओ ॥ १६ ॥

इदमापः प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

(आपः इदम् प्रवहत्) हे ज्योतिरसामृतरूप जलो इस कामनाओं के दाता अज्ञानको दूर करो (च यत् अवद्यम् च मलम् च यत् अनृतम् अभिदुद्रोह) और जो निन्दित विषयभोग हैं और जो ज्ञानका आवरण मल है तथा जो अहंकार ममता युक्त मिथ्यामोह हैं उसको मार दिया (च यत् अभीरुणम् शेपे आपः च पवमानः तस्मात् एनसः मा मुञ्चतु) और जो अद्वैत आत्माको ब्रह्मसे पृथक् जानकर उसकी अवहेलना की ब्रह्मामृतरूप जल और समष्टिवायु उस पापसे मुझे छुड़ाओ ॥ २७ ॥

सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समी-

रणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतन्द्वेषः ॥ १८ ॥

हे भूतात्माके हृदय (ते मनः मनसा संगच्छताम्) तेरा मन समष्टिमनसे संयुक्त हो (प्राणः प्राणेन सम्) प्राण समष्टिप्राण से संयोग पावे (रेट् असि) हे मानस-सूर्य ! तुम परिछिन्न होनेसे नष्टसे हो । (अग्निः त्वा श्रीणातु) ब्रह्माग्नि तुझको स्वीकार करके बढावे (आपः त्वा समी-रणन्) ज्योतिरसामृत तुझको भले प्रकार बढावे (वातस्य ध्राज्यै पूष्णः रंह्यै त्वा) प्राणको दहराकाशमें पहुँचानेके लिये और मानससूर्यकी भृकुटीमें गतिके लिये तुझको स्वीकार करता हूँ (ऊष्मणः व्यथिषत्) ब्रह्माग्निकी ज्वालारूप व्यथा प्रकट हो (द्वेषः प्रयुतम्) कामनारूप राक्षस दूर हुआ १८

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

(घृतपावानः घृतम् पिबत) हे इन्द्रियों की शक्तियोंके समूहको पीनेवाले समष्टि-रूप मन-बुद्धि-प्राण ! इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंके समूहको पियो (वसापावानः वसाम् पिबत) हे मानससूर्यका पान करने वाले ब्रह्मपरा नारायण नामके देवताओ ! मानससूर्यको पियो (अन्तरिक्षस्य हविः असि स्वाहा) हे मानससूर्य ! तुम हार्दान्तरिक्षके हवि हो तुम्हारा श्रेष्ठ होम होय, (दिशः विदिशः प्रदिशः आदिशः उद्दिशः दिग्भ्यः स्वाहा) विशेषरूपसे शास्त्रका उपदेष्ट ब्रह्मपराका उपदेष्टा तीन प्रकारका है सावित्रीका उपदेष्टा निर्गुण और सगुणका उपदेष्टा एवं उत्तम योगमार्गका उपदेष्टा इन ब्रह्मा विष्णु महेशरूप गुरुओंसे उपदेश किया गया है ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अंगे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अंगे निधीतः । देव त्वष्टर्भूरिते सꣳ समेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवत्रायन्तमवसे सखायोनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

(ऐन्द्रः प्राणः अंगे अंगे निदीध्यत्) भूतात्माका प्राण ईश्वरके अंग २ में स्थित हुआ (ऐन्द्रः उदानः अंगे अंगे निधीतः) भूतात्माका उदान ईश्वरके अंगोंमें धारित हुआ (देव त्वष्टः ते सम् भूरि) हे ज्योतिःस्वरूप ईश्वर ! तुम्हारा विष्णुरूप परि-

पूर्ण है (अ यत् वः इषुरूपम् भवाति सलक्ष्मा सम् एतु) हे सर्वव्यापिन् ! क्यों कि-निवृत्तात्मा बाणरूप होता है, अतः अङ्गुष्ठस्वरूप आत्मा विष्णुको प्राप्त हो (देव अवसे त्र आयन्तम् त्वा सखायः माता पितरः अनुमदन्तु) हे सायुज्यके योग्य आत्मन् ! संसारसे रक्षा पानेके निमित्त विष्णुरूप अग्निमें जाने वाले तुझको प्राण आदि प्रकृति और देवता आज्ञा दें ॥२०॥

समुद्रङ्गच्छ स्वाहान्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारङ्गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञङ्गच्छ स्वाहा सोमङ्गच्छ स्वाहा दिव्यन्नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरङ्गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवन्ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मना पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

देहके अवयवोंमें हरएक अवयवको उपदेश करता है कि (समुद्रम् गच्छ स्वाहा) हे भूतात्मामेंके जल ! तुम अपनी समष्टि-रूप समुद्रमें लीन होजाओ श्रेष्ठ होम हो (अन्तरिक्षम् गच्छ स्वाहा) हे भूतात्मामें के वायु ! तुम अन्तरिक्षमें जाओ श्रेष्ठ होम हो (देवम् सवितारम् गच्छ स्वाहा) हे आत्मप्रतिबिम्ब ! तुम सूर्य देवताको पहुँचो श्रेष्ठ होम हो (मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा) हे जीवात्मा तुम नर नरायणको पहुँचो, श्रेष्ठ हवन हो (अहोरात्रे गच्छ स्वाहा) हे जन्म मरणकाल ! अहोरात्रिको पहुँचो श्रेष्ठ हवन हो (छन्दांसि गच्छ स्वाहा) हे शरीरके अवयवों ! तुम समष्टि शरीरके अङ्गोंको पहुँचो सुन्दर हवन हो (द्यावा-पृथिवी गच्छ स्वाहा) हे मन हृदय आदि के कमलों ! तुम पृथिवी और स्वर्गके अधिष्ठातृदेवोंको पहुँचो, श्रेष्ठ होम हो (यज्ञम् गच्छ स्वाहा) हे यज्ञक्रियाओ ! तुम यज्ञ पुरुष विष्णुको पहुँचो, श्रेष्ठ होम हो (सोमम् गच्छ स्वाहा) हे अन्न पान आदि भोगके समूह तुम सोम देवताको पहुँचो, उत्तम होमहो (दिव्यम् नभः गच्छ स्वाहा) हे भूतात्मामें के आकाश ! तुम दिव्य आकाशमें जा मिलो, श्रेष्ठ होम हो (वैश्वानरम् अग्निम् गच्छ स्वाहा) हे जठराग्ने ! तुम वैश्वानर अग्निदेवताको प्राप्त होओ श्रेष्ठ होम हो (मे हार्दि मनः यच्छ) हे योगशक्ते ! मेरे हृदयसम्बन्धी मन को रोको (ते धूमः दिवम् गच्छतु) हे भूतात्मन् ! तेरा धूम्र स्वर्गको जाय (ज्योतिः स्वः) आत्मज्योति सूर्यको प्राप्तहो (भस्मना पृथिवीम् आपृण स्वाहा) भस्मके द्वारा पृथिवी के पूर्ण कर, इस प्रकारका प्राकृतिक होम हो

मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयन्द्विष्मः ॥ २२ ॥

वाणीसे भूतात्माका हवन करके अब प्रारब्ध समाप्ति पर्यन्त फिर प्रार्थना करता है कि-हे मन ! तू (आपः मा हिंसीः) इन्द्राग्नियोंके अन्तरिक्षोंको मत नष्ट करो (औषधीः मा) इन्द्रियोंकी शक्तियोंको मत नष्ट करो (राजन् वरुण ततः धाम्नः नः मुञ्च) हे राजन् मन अपने पाशरूप प्रत्येक इन्द्रियसे हमको छोड़ो (अघ्न्याः इति यत् आहुः वरुण इति शपामहे वरुण ततः नः मुंच) ईश्वरके पूजक देहके अवयव अवध्य हैं ऐसा जो शास्त्र कहते हैं हे मन हम तो इस योगकी विधिसे इनका वध करते हैं हे मन उस पापसे हमको मुक्त कर (आपः ओषधयः नः सुमित्रियाः सन्तु) इन्द्रियोंके अन्तरिक्ष और इन्द्रियें हमारे श्रेष्ठ मित्र हों (यः अस्मान् द्वेष्टि च वयम् यम् द्विष्मः तस्मै दुर्मित्रियाः सन्तु) जो काम हमारे प्रतिकूल होता है और हम योगी जिस कामको शत्रुदृष्टिसे देखते हैं उस कामके लिये इन्द्रियान्तरिक्ष और इन्द्रियें शत्रुरूप हों अर्थात् हमारी इन्द्रियोंमें किसी प्रकार की विषयवासना उत्पन्न न हो ॥ २२ ॥

इति अग्निषोमीय पशुप्रयोगकी आध्यात्मिक व्याख्या समाप्त

प्रथम प्रयोग अ० ५ की क० ७ तक पूर्ण किया, अब शेष कृत्य लिखते हैं कि-सूर्यास्त से पहिले नदी आदिमें से बहते हुए वसतीवरी नाम जलको ग्रहण करे तिसका मन्त्र-

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान् आविवासति । हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्मान् अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

(हविष्मान् इमाः हविष्मतीः आपः आविवासति) हविसे युक्त यजमान इन हविसे युक्त वसतीवरी नाम जलोंकी परिचर्या करता है अर्थात् जलके समूहमेंसे पृथक् करके लेता है (देवः अध्वरः हविष्मान् अस्तु) प्रकाशवान् यज्ञ हविसे युक्त हो (सूर्यः हविष्मान्) सूर्य भी हविष्मान् हो । क्योंकि सूर्य जलको अन्य सब देवताओंके लिये ग्रहण करता है सब देवता इस विराडात्मा सूर्यकी किरणें हैं ॥ २३ ॥

अग्नेर्वोपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ

विश्वेषान्देवानां भागधेयी स्थ असूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् २४

इस कण्डिकामें ५ मन्त्र हैं । सबका मेधातिथि ऋ० । छं० १ आसुरीगा० २ प्राजापत्या गा० ३ याजुषी त्रि० ४ या० त्रि० ५ आर्च्युष्णिक् और देवता सबका आप है । मंत्रार्थ (वः अपन्नगृहस्य अग्नेः सदसि सादयामि) हे वसतीवरी जलो ! तुमको अविनश्वर घरवाले अग्निके निकट स्थापन करता हूँ (इन्द्राग्न्योः भागधेयी स्थ) तुम इन्द्र और अग्निदेवताके भाग हो (विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ) तुम सम्पूर्ण देवताओंके भागरूप हो (असूर्याः उपसूर्ये वा सूर्यः याभिः सह ताः नः अध्वरम् हिन्वन्तु) जो सम्पूर्ण जल बहुत काल तक रहनेके कारण सूर्यकी किरणोंसे अदृश्य सूर्यके समीप स्थित हैं अथवा जिनके साथ सूर्य गमन करते हैं वे जल हमारे यज्ञको परितृप्त करो ॥ २४ ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा ऊर्ध्वमिममध्वरन्दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥२५॥

इस कं० मेधाति० ऋ० विराडनुष्टुप्छन्द सोम दे० । मन्त्रार्थ-(मनसे त्वा हृदे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा होत्रा इमम् अध्वरम् ऊर्ध्वम् दिवि देवेषु यच्छ) हे सोम ! हृदयवान् मनुष्योंके निमित्त संकल्प विकल्पात्मक मनके निमित्त तुमको द्युलोककी प्राप्तिके निमित्त सूर्यदेवताके निमित्त उपाहरण करता हूँ इस यज्ञको उन्नत करके यज्ञके षष्टकर्त्ता सात होताओंको देवलोक में देवताओंके मध्य देवत्व प्रदान करो २५

सोम राजन्विश्वास्त्वम्प्रजा उपावरोह विश्वास्त्वाम्प्रजा उपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवम्मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवम्मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इस कं० २ मन्त्र हैं । सबका मेधातिथि ऋ० । छं० १ का साम्न्युष्णिक् २ याजुषी त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टु० मंत्रार्थ- (सोम राजन् त्वं विश्वाः प्रजाः उपावरोह विश्वाः प्रजाः त्वां उपावरोहन्तु) हे राजा सोम तुम इन सम्पूर्ण ऋत्विग् गणोंको अपनी प्रजा जान कर कृपा करो, हे सोम सम्पूर्ण प्रजा तुमको प्रणामद्वारा प्राप्त हो (अग्निः समिधा मे हवं आपः च धिषणा देवी च ग्रावाणः विदुषः नः यज्ञम् आश्रोत सविता देवः मे हवं शृणोतु) अग्निदेवता समिधापूर्वक मेरी इस आहुतिसे मेरे आह्वानको सुने ।

हे ग्रावासमूह अभिषवके निमित्त प्राप्तहुए तुम विद्वानोंकी समान एकाग्रचित्तसे मेरे यज्ञके आह्वानको सब प्रकार सुनो, सबका प्रेरक परमात्मा देवता मेरे आह्वानको श्रवण करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २६ ॥

देवीरापो अपान्नपाद्यो व ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः । तन्देवेभ्यो देवत्रा शुक्रपेभ्यो येषां भागः स्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं। सबका मेधातिथि ऋ० । छं० १ भुरिगार्षी पं० २ दैव्युष्णिक् और देवता १, २ का आप्। मन्त्रार्थ—(आपो देवीः वः अपाम् नपात् हविषः इन्द्रियावान् मदिन्तमः ऊर्मिः) हे जलदेवियो तुम्हारे जलोंके, अपत्यरूप, हवियोग्य, वीर्यवान्, तृप्त करनेवाली लहर है (देवत्रा तम् शुक्रपेभ्यः देवेभ्यः दत्त) देवताओंके प्रति जाने वाली उस ऊर्मिको शुक्रादि सोम ग्रह पीने वाले देवताओंको प्रदान करो (येषां देवानां भागः स्थ) जिन देवताओंके तुम भाग हो इन सबके उद्देश्यसे तुमको हवि देते हैं (स्वाहा) यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २७ ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्या उन्नयामि । समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः २८

इस कण्डिकामें ३ मं० । सबका मेधा० ऋ० । छं० १ दैवी बृ० २ याजु० त्रि० ३ साम्न्यनु० और देवता १ का आज्य २, ३ का आप्। मन्त्रार्थ-हे घृत तुम (कार्षिः असि) देव उच्छिष्ट पापके दूर करनेवाले हो (समुद्रस्य अक्षित्यै त्वा उन्नयामि) हे जलो वसतीवरी लक्षण वाले सागररूप जलके अक्षीणताके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (आपः अद्भिः समग्मत ओषधीः ओषधीभिः सम्) हे मित्रावरुण चमसमें स्थित जलो तुम इस वसतीवरीके जलके संग भली प्रकार मिश्रित हो, सम्पूर्ण ओषधी ओषधियोंके साथ भली प्रकारसे मिश्रित हों ॥ २८ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यञ्जुनाः । सयन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगार्षी गायत्री छं० अग्निर्देवता है मन्त्रार्थ-(अग्ने पृत्सु यम् मर्त्यम् अवाः वाजेषु यम् जुनाः सः शश्वतीः इषः यन्ता स्वाहा) हे अग्निदेव बड़े संग्रामोंमें जिस मनुष्यको तुम रक्षा करते हो, किञ्च हविलक्षणवाले अन्नों में अन्नके निमित्त जिस मनुष्यके निकट तुम हविग्रहण करनेको उपस्थित होते हो वह मनुष्य तुम्हारे प्रसादसे निरन्तर अन्न

अन्नों तथा धनोंको पाता है, हमारी यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २९ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे रावासि गम्भीरमिममध्वरङ्कृधीन्द्राय सुषूतमम् उत्तमेन पविनोर्ज्जस्वन्तम्मधुमन्तम्पयस्वन्तन्निग्राभ्यास्थ देव श्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

इस कण्डिकामें २ मंत्र हैं। सबका मधु० ऋ० । छं० १ ब्रा० पं० २ आ० अ० और देवता १ अद्रि २ आप । मन्त्रार्थ— हे उपांशु सवन (सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णः हस्ताभ्याम् त्वा आददे) सविता देवताकी प्रेरणासे अश्विनीकुमारकी बाहु पूषा देवताके हाथों से तुझको ग्रहण करता हूँ (रावा असि) अभीष्ट फलके देनेवाले हो (इमम् अध्वरम् गंभीरम् कृधि उत्तमेन पविना इन्द्राय सुषूतमम् ऊर्जस्वंतम् मधुमंतम् पयस्वंतम्) इस हमारे यज्ञको महान् करो उत्कृष्ट श्रेष्ठ वज्रसदृश तुम्हारे द्वारा इंद्रदेवताके निमित्त प्रीतिवर्द्धक बलयुक्त स्वादिष्ट मधुर रसयुक्त दुग्धके स्वादुरससे युक्त सोमको अभिषुततम करता हूँ (निग्राभ्यः स्थ देवश्रुतः मा तर्पयत) हे जलो तुम हमसे सम्यक् प्रकारसे ग्रहण किये हो, देवताओं के मध्यमें चिरप्रसिद्ध हो इस प्रकार बहुत मानसे युक्त तुम इस समय इस यज्ञमें मुझको तृप्त करो ॥ ३० ॥

मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणम्मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

इसका मधुछं० ऋषि वाड्ब्रा० ज० छं० आप देवता है । मन्त्रार्थ-हे निग्राभ्य (मे मनः तर्पयत मे वाचं तर्पयत मे प्राणं तर्पयत मे चक्षुः तर्पयत मे श्रोत्रं तर्पयत मे आत्मानं तर्पयत मे प्रजां तर्पयत) मेरे मन को तृप्त करो, मेरे प्राणको तृप्त करो, मेरी नेत्रइन्द्रियको तृप्त करो, मेरे कर्णोंको तृप्त करो, मेरी आत्माको तृप्त करो, मेरी प्रजा को तृप्त करो । (मे पशून् तर्पयत मे गणान् तर्पयत मे गणाः मा वितृषन्) मेरे पशुओं को तृप्त करो, मेरे मनुष्यसमूहोंको तृप्त करो, मेरे आत्मीयजन किसी प्रकारसे तृष्णासे कातर न हों ॥ ३१ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवत इन्द्रायत्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

इस कं० में ५ मन्त्र हैं । सबका मधु० ऋ० । छं०१ सा० गा० २, ३, ४ प्रा० गा० ५ या० बृ० और देवता सबका सोम है । मंत्रार्थ-हे सोम ! (वसुमते रुद्रवते इन्द्राय त्वा आदित्यवते इन्द्राय त्वा अभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा सोमभृते श्येनाय रायस्पोषदे अग्नये त्वा) वसुनाम देवतासे युक्त माध्यन्दिन सवनके रुद्रदेवतासे युक्त इन्द्रदेवता के निमित्त तुमको परिमित करता हूँ, हे सोम तीसरे सवनके आदित्य देवताके सहित वर्तमान इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करता हूँ, हे सोम शत्रुघाती इन्द्र देवताके निमित्त तुमको परिमित करता हूँ, हे सोम धन और पुष्टि देनेवाले अग्निदेवताके निमित्त तुमको परिमित करता हूँ ॥ ३२ ॥

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे तेनास्मै यजमानायोरुराये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

इस मंत्रका मधुच्छं० ऋ० भुरिगा० बृ० छं० सोम देवता हैं । मन्त्रार्थ-(सोम दिवि यत् ते ज्योतिः पृथिव्याम् यत् उरौ अन्तरिक्षे यत् तेन अस्मै उरु कृधि) हे सोम द्युलोकमें जो तुम्हारी ज्योति है, पृथ्वीमें जो ज्योति है, विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें जो ज्योति है, उस ज्योतिके प्रभावसे इस यजमानके निमित्त इष्टधन विस्तार करो अथवा इसके यज्ञमें अपने शरीरको विस्तार करो (राये उरु कृधि दात्रे अधिवोचः) ऋत्विग्गणोंको धनप्राप्तिके निमित्त अपने शरीरका विस्तार करो, दाता यजमानके निमित्त में सम्पूर्ण ज्योतिसे प्राप्त हुआ ऐसा कहो ३३

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता अमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञन्नयतोपहूता सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

इसका मधुछं० ऋ० सुराडार्षी प०बृ० छं० आपो देवता है मंत्रार्थ-हे जलो ! तुम (श्वात्राः वृत्रतुरः राधोगूर्तः अमृतस्य पत्नीः स्थ) शीघ्र कार्यकारी, शत्रुहृदय मर्दनकारी, इष्ट कामनाके देने वाले, सोमके पालक हो (देवीः ताः इमम् देवत्रा

नयत) हे सम्पूर्ण निग्राभ्यदेवता इस प्रकार के तुम इस यज्ञको देवताओंके प्रति प्राप्त करो (उपहूताः सोमस्य पिबत) अनुज्ञा को प्राप्त हुए तुम सोमको पियो ॥ ३४ ॥

माभेर्मा संविक्था उर्ज्जन्धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्ज्जन्दधाथाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

इसमें मधुच्छंदा ऋ० । भुरिगार्ष्यनु० छं० । अर्द्धस्य द्यावा पृथिवी दे० । मंत्रार्थ- हे सोमसमूह तुम (माभेः मा संविक्थाः ऊर्जं धत्स्व) आघातसे भय मत करना, कम्पित मत होना, रसको धारण करो (धिषणे वीड्वी सती वीडयेथाम् ऊर्ज्जं दधाथाम्) हे द्यावापृथिवी दृढ़ताको प्राप्त हुई इस उपांशु सवनके आघात और सोम सवनको दृढ़ करो, इस सोमके रसको वृद्धिकर बल प्रदान करो इस वज्राघातसे यजमानके सम्पूर्ण (पाप्मा हतः सोमः न) पाप नष्ट होते हैं और सोम नहीं हत होता किन्तु संस्कारयुक्त होता है ॥ ३५ ॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश आधावन्तु । अम्ब निष्पर समरीचिदाम् ॥ ३६ ॥

इसका मधु० छं० ऋ० आर्ष्युष्णिक् छं० सोमदेवता है मंत्रार्थ-(प्राक् अपाक् उदक् अधराक् दिशः सर्वतः त्वा आधावन्तु) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणादि सम्पूर्ण दिशा सब ओरसे तुम्हारे सन्मुख धावमान हों (हे अम्ब निष्पर अरीः सम्चिदाम्) हे माता अपने भागोंसे सोमको पूर्ण करो, सब प्रजा इस यज्ञको जाने ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ३७ ॥

इसका गौतम ऋषि- पथ्या बृहती यद्वा भुरिगार्ष्यनु० छं० इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ- (अङ्ग शविष्ठ मघवन् इन्द्र देव त्वं मर्त्यम् प्रशंसिषः) हे सर्वत्र प्राप्त अतिशय बलवान् सुखकारी धनवान् परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मन् आप इस मनुष्य यजमानको प्रशंसा देते हो (त्वत् अन्यः मंडिता न अस्ति) आपके सिवाय और कोई सुख देने वाला नहीं है (ते वचः ब्रवीमि) आपका आप ही सुखरूप हैं यह वचन कहता हूँ ३७

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद षष्ठ अध्याय समाप्त

❀ अथ सप्तमोऽध्यायः ❀

छठे अध्यायमें यूपसंस्कारसे सोमाभिषव तक मन्त्र कहे अब सातवें अध्यायमें ग्रह-ग्रहणके मन्त्र कहे जाते हैं।

॥ हरिःॐ ॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अंशुभ्यांगभस्तिपूतः। देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोसि ॥ १ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं। सबका गौतम ऋषि है छन्द १ का साम्नी बृ० २ आसुर्य० और देवता प्राण है। मंत्रार्थ-हे सोम तुम (वृष्णः अंशुभ्याम् गभस्तिपूतः वाचस्पतये पवस्व) सम्पूर्ण कामना के फलवर्षी, अंशुद्वय तथा हमारे हाथसे पवित्र हुए तुम प्राणोंकी प्रीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, हे सोम (देवः देवेभ्यः पवस्व येषाम् भागः असि) देवतारूप तुम देवताओंकी प्रीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, जिन देवताओंका भाग हो ॥ १ ॥

मधुमतीर्न इषः कृधि यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका गो० ऋ०। छन्द १ या० बृ० आर्ष्यु० ३ आसु० ज० और देवता सबका लिङ्गोक्ता है। मन्त्रार्थ-हे सोम (नः इषः मधुमतीः कृधि) हमारे अन्न मधुर रसयुक्त सुस्वादु करो, (सोम ते यत् अदाभ्यम् जागृवि नाम सोम तस्मै ते स्वाहा) हे सोम ! तुम्हारा जो हिंसाशून्य जागरणशील नाम है (हे सोम तस्मै ते स्वाहा स्वाहा उरु अन्तरिक्षम् अन्वेमि) हे सोम उस तुम्हारे निमित्त यह अंशुद्वय फिर प्रदान करते हैं उद्देश्य देवताकी प्रीतिके निमित्त यह भली प्रकार आहुत होता है, इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षके मध्यमें गमन करता हूँ ॥ २ ॥

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाथंशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरि प्रुता भङ्गेन हुतोसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

इस कण्डिका में ५ मन्त्र हैं। सबका गो० ऋ० छन्द १ भू० प्रा० ज० २ या०बृ० ३ सा० त्रि० ४।५ दै० बृ० है और देवता १ उपांशु २ देवा ३ लिंगोक्ता ४ ग्रह ५ उपांशु हैं, मन्त्रार्थ-हे प्राणरूप उपांशुग्रह (विश्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यः पार्थिवेभ्यः दिव्येभ्यः स्वांकृतः असि) सम्पूर्ण इन्द्रियों से सम्पूर्ण पार्थिव द्विपद चतुष्पद और दिव्य प्राणियों से स्वयं प्रादुर्भूत हो (मनः त्वा अष्टु) मन प्रजापति तुम्हारे प्रति आधिपत्य करे (सुभव सूर्याय त्वा स्वाहा) हे प्रशंसितजन्मन् सूर्यरूप प्रजापतिकी प्रीतिके निमित्त तुमको आहुत करता हूँ, यह आहुति सुंदर रूपसे गृहीत हो पहलेपात्र मरीचिपेभ्यः देवेभ्यः त्वा) मरीचिपालक देवगणकी तृप्तिके निमित्त तुमको मार्जन करता हूँ। (देव अंशो यस्मै त्वा ईडे तत् सत्यं उपरि प्रुता भङ्गेन हतः असौ फट्) हे दीप्यमान अंशुदेव जिसके अभिचार मारणादि की कामनाके निमित्त तुमको प्रार्थना वा साधन करता हूँ, वह यह अमुक मेरा शत्रु सत्य हो अकस्मात् प्राप्त हुई महापीड़ासे निहत हुआ यह शत्रु विशीर्ण होजाय हे उपांशुसवन व्यानाय त्वा) व्यान देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतोस्यन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोमम् । उरुष्य राय एषो यजस्व ॥ ४ ॥

इस मन्त्रका गो० ऋ० । छ० प्राजा० त्रि० इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-हे अन्तर्याम ग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः असि मघवन् अन्तः यच्छ सोमम् पाहि) क्षुद्र कलश द्वारा गृहीत हो, हे इन्द्र ! तुम इस गृहीत सोम रसको अन्तर्गृह पात्रमें ग्रहण करो सोमरसको शत्रु आदिसे रक्षा करो तथा (रायः उरुष्य इषः आ यजस्व) पशुओंको रक्षा करो, अन्नोंको सब प्रकार से दो ॥ ४ ॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवैभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन्मादयस्व ॥ ५ ॥

इस मन्त्रका गो० ऋ० । आर्षीपं० छ० और मघवा देवता है। मन्त्रार्थ हे मघवन् (ते द्यावापृथिवी अन्तर्दधामि उरु अन्तरिक्षम् अन्तर्दधामि) आपके अनुग्रहसे स्वर्ग और पृथ्वी अन्तः स्थापन करता हूँ, विस्तीर्ण अन्तरिक्षको द्यावापृथिवीके मध्य में स्थापन करता हूँ (मघवन् अवरैः परैः देवैः सजूः अन्तर्यामे मादयस्व) हे इन्द्र ! पृथिवी के स्थान वाले द्युस्थाननिवासी देवताओंसे समान प्रीति वाले तुम अन्तर्याम ग्रहमें अपनेको तृप्त करो ॥ ५ ॥

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा । स
सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं । सबका गो० ऋ० है। छन्द १ भुरिग्ब्रा० २ या०बृ० ३ दै० पं० और देवता १ अन्तर्यामी २ देव ३ ग्रह हैं । मन्त्रार्थ—प्रथम दूसरे मन्त्रकी व्याख्या इस अध्यायके ३ मन्त्रमें हैं, हे अन्तर्याम ग्रह (उदानाय त्वा) उदान देवता की प्रीतिके निमित्त तुझको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रन्ते नियुतो विश्ववार । उपो ते अन्धो मद्यमयामि
यस्य देव दधिषे पूर्व्वपेयं वायवे त्वा ॥ ७ ॥

इस मन्त्रका वशिष्ठ ऋषि निचृदार्षी ज० छन्द वायुदेवता । मन्त्रार्थ-(शुचिपाः वायो नः उप आभूष विश्ववार ते सहस्रं नियुतः मद्यम् अन्धः ते उप आयामि) हे हे अग्ने! पवित्र पानकारी वायुदेवता तुम हमारे समीप आगमन करो, तृप्तिका करने वाला सोम लक्षण अन्न तुम्हारे समीपमें समर्पण करके भिजवाता हूँ (देव यस्य पूर्वपेयं दधिषे) हे दीप्यमान वायो जिस सोमका प्रथम वषट्कार लक्षण वाला पूर्व-पान तुम धारण किये हो उसीको इस समय तुम्हारे निकट उपस्थित करते हैं ७

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोसि
वायव इन्द्रवायुभ्यान्त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यान्त्वा ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, सबका मधु० ऋ० छन्द १ आर्षी गा० २ सुराडा० गा० और देवता १ इन्द्रवायु २ इन्दु । मन्त्रार्थ—(इन्द्रवायु इमे सुताः प्रयोभिः उप आगतम् हि इन्दवः वाम् उशन्ति) हे इन्द्रवायु! तुम्हारे निमित्त यह सोम प्रस्तुत किये हैं, इस सोमरस-रूप अन्नपानके निमित्त हमारे समीप आइये, जिस कारण कि-यह सोमरस तुम्हारे प्रिय होनेकी इच्छा करते हैं, हे तृतीयग्रह सोमरस तुम (वायवे उपयामगृहीतः असि) वायु देवता के उद्देश्यसे उपयामपात्र द्वारा ग्रहण किये गये हो (इन्द्रवायुभ्यां त्वा) युगचर इन्द्र-वायु देवताके संतोषके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, इन्द्रवायु ग्रह (एषः ते

योनिः सजोषोभ्याम् त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, युगचर इन्द्र वायु देवताद्वयकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳ हवम् । उपयामगृहीतोसि मित्रावरुणाभ्यान्त्वा ॥ ९ ॥

इस कं०में २ मंत्र हैं। सबका गृत्समद ऋ० है। छं० १ आर्षी गा० २ आसुरी गा० और देवता सबका मित्रावरुण है। मंत्रार्थ- (मित्रावरुणा ऋतावृधा वाम् अयं सुतः इह ममेत् हवम् श्रुतम्) हे मित्रावरुण, हे सत्य, तुम्हारी प्रीतिके निमित्त यह सोमरस प्रस्तुत किया है इस यज्ञमें हमारे ही इस आह्वानको श्रवण करो हे चतुर्थग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः असि मित्रावरुणाभ्याम् त्वा) मित्रावरुण संज्ञक उपयाम पात्रमें गृहीत हो मित्रावरुण संज्ञक देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः। तान्धेनुम्मित्रावरुणा युवन्नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यान्त्वा ॥ १० ॥

इस कं०में २मं०हैं। सबका त्रिसदस्यु ऋ०। छं०१ आर्षी त्रि० २ याजुषी पं० और देवता १ मित्रावरुणौ २ ग्रह है। मंत्रार्थ- जिस गौके घरमें होनेसे (वयं राया ससवाꣳसः मदेम देवाः हव्येन गावः यवसेन मित्रावरुणा युवम् ताम् अनपस्फुरन्तीम् धेनुं नः विश्वाहा धत्तम्) हम धनसे सम्पन्न होकर प्रसन्न होते हैं, देवगण हविपानेसे जैसे प्रसन्न होते हैं, गौ जैसे घासादिसे प्रसन्न होती है,हे मित्रावरुण देवताओं तुम उस दूसरे पुरुषके निकट न जाने वाली धेनुको हमारे निमित्त सर्वदा प्रदान करो (एषः ते योनिः ऋतायुभ्याम् त्वा) हे ग्रह यह तुम्हारा स्थान है, मित्रावरुण देवता ! ब्रह्मकी संतुष्टिके निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूँ ॥ १० ॥

या वाङ्कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती तया यज्ञम्मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वैष ते योनिर्माद्ध्वीभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका मेधातिथि ऋषि है। छं० १ भुरिगार्षीगा० २ याजुषी त्रि०और देवता १ अश्विनौ २ ग्रह मन्त्रार्थ-(अश्विना वाम् या कशा मधुमती सूनृतावती तया यज्ञम् मिमिक्षतम्) हे अश्विनीकुमारद्वय तुम्हारी जो प्रकाश करने वाली वाणी ब्रह्मवती ब्राह्मण उपनिषद् प्रशंसासे युक्त प्रिय और सत्यतासे युक्त है उस वाणीसे इस यज्ञको सींचकर पूर्ण क हे पंचमग्रह! तुम अश्विनी देवताकी प्री के निमित्त इस (उपयामगृहीतः असि प ते योनिः माध्वीभ्यान्त्वा) उपयाम पात्र ग्रहण किये हुए हो हे अश्विग्रह! तुम्हारा स्थान है, मधुमय मंत्र ब्राह्म पढ़ने वाले अश्विनीकुमारके निमित्त तु को ग्रहण करता हूँ ॥ ११ ॥

तम्पृत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिम्बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्। प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुञ्जयन्तमनु यासु वर्द्धसे। उपयामगृहीतोसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरताम्पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋषि है। छं० १ निचृ० ज० २ आर्च्युष्णि० ३ या० गा० ४ या० पं० ५ दै० पं० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह ३ लिंगोक्ता ४ आभिचारक ५ शुक्रपा ६ वेदिश्रोणि। मंत्रार्थ-हे इन्द्र! तुम (यासु अनुवर्द्धसे तम् ज्येष्ठतातिम् बर्हिषदम् स्वर्विदम् धुनिं आशुम् जयंतम् वृजनम् दोहसे, जिन यज्ञक्रियाओंमें पुनःपुनः सोमरस पान करके वृद्धिको प्राप्त होते हो तृप्त होते हो, उस उत्कृष्ट विस्तारवान् सर्वज्येष्ठ यज्ञमें कुशासनके सेवी स्वर्गवेत्ता शत्रुओंको कम्पित करने वाले जेतव्य वस्तुओंको शीघ्र जीतने वाले तुम बलपूर्वक यज्ञ-फलको यजमानके प्रति देते हो (प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथा इमथा ते) समस्त यज्ञके प्राचीन नियमकी समान पूर्व- प्रथाके अनुसार सब प्रकार इस समय यजमानकी समान इस यज्ञका फल देते ऐसे आपकी हम स्तुति करते हैं, हे षष्ठग्रह शुक्र (उपयामगृहीतः असि शण्डाय त्वा तुम उपयामपात्रमें गृहीत हुए हो, शण्ड नामक जनके निवासके निमित्त तुमको ग्रह करता हूँ (एषः ते योनिः वीरतां पाहि) तुम्हारा स्थान है इस स्थानमें अवस्थान के यजमानके वीरत्वकी रक्षा करो (शण्ड अपमृष्टः शुक्रपाः देवाः त्वा प्रीणयंतु) अ नेता अपमार्जित हुआ, हे ग्रह शुक्रनाम ग्रहमें स्थित सोमपान करने वाले देव तुमको निरापद् आहवनीय स्थानमें प्राप्त हे उत्तर वेदी श्रोणी तुम (अनाधृष्टा अ अनुपहिंसित हो, अर्थात् तुम्हारे द्वारा ग्रहको हानि नहीं पहुँच सकती ॥ १२

सुवीरो वीरान्प्रजनयन्परिह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋ०छन्द १ सा०त्रि०२ साम्न्यनु० ३ दैवी पं० ४ प्रा० गा०और दे० १, २ का शुक्र ३ अभिचारक ४ सकल। मन्त्रार्थ-हे ग्रह तुम (सुवीरः वीरान् प्रजनयन् रायस्पोषेण यजमानम् अभि परीहि) सुन्दर वीरतासे युक्त हो इस यजमानके शूरतासे युक्त पुत्र भृत्यादिको उत्पन्न करते हुए, अनेक प्रकारको धनपुष्टि द्वारा यजमानके ऊपर कृपा कर सब प्रकारसे प्राप्त करो (शुक्रः शुक्रशोचिषा पृथिव्या दिवा संजग्मानः) यह शुक्रग्रह अपनी पवित्र कान्तिके साथ पृथिवी और द्युलोकसे संगतिको प्राप्त होकर दीप्तिमान् होरहा है (शण्डः निरस्तः शुक्रस्य अधिष्ठानम् असि) शण्डनामक असुर दूर हुआ, हे यूपकाष्ठ खण्ड ! तुम शुक्रग्रहके अधिष्ठान हो ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋ० छ० १ प्रा० पं०२ विराडार्षी त्रि०और देवता १ सोम २ इन्द्र है, मन्त्रार्थ (सोमदेव अच्छिन्नस्य सुवीर्यस्य ते रायस्पोषस्य ददितारः स्याम) हे सोमदेवता खण्डरहित निरन्तर कल्याण प्रभाव वाले बली, आपके प्रसादसे हम धनपुष्टिके देने वाले हों (सा विश्ववारा संस्कृतिः प्रथमा वरुणः मित्रः सः अग्निः प्रथमः) वह सम्पूर्ण ऋत्विग्जनोंसे वरणीय यह संस्कार क्रिया जिस कारण कि इन्द्रके निमित्त की जाती है, इससे यह मुख्य है और जगत्की उत्पत्तिका कारण होनेसे सोमका वरुण मित्र और वह अग्निदेवता मुख्य भृत्य है१४

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वांस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा । तृप्यन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥ १५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋ० । छं० १ प्रा० बृ० २ दै० बृ० और सबका होत्रा देवता है मंत्रार्थ-(सः चिकित्वान् बृहस्पतिः प्रथमः तस्मै इन्द्राय

सुतम् स्वाहा आजुहोत) वह अनुपम चेतनावान् महाबुद्धि सम्पन्न बृहस्पति मुख्य मन्त्री है, उस इन्द्रके उद्देशसे यह प्रस्तुत सोमरस आहुत होता है यह आहुति भली प्रकार स्वीकार हो, इसप्रकार स्वाहाकार कर हवन करो (होत्राः तृप्यन्तु याः मध्वः स्विष्टाः याः सुप्रीताः यत् स्वाहा सुहुताः अग्निः अयाट्) छन्दोंके अभिमानी वे देवता तृप्त हों जो मधुस्वाद वाले सोमको इष्ट वाले प्रेम करनेवाले जो अत्यन्त प्रसन्न हैं, जिस कारणसे स्वाहाकार द्वारा होमके निमित्त नियुक्त हुए हैं, शुक्र ग्रह सोमसम्पन्न हुआ ॥ १५ ॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳬ संगमे सूर्यस्य शिशुन्न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । छं० १ निच्यृ० त्रि० २ साम्नी गा० और देवता १, २ सोम है । मन्त्रार्थ- (अयं ज्योतिर्जरायुः वेनः रजसः पृश्निगर्भाः अचोदयत्) यह विद्युत् लक्षणवाली ज्योति से वेष्टित कान्तिमान् चन्द्र जलके निर्माण करनेमें जलोंको प्रेरणा करता है (विप्राः सूर्यस्य अपां सङ्गमे इमं शिशुं न मतिभिः रिहन्ति) बुद्धिमान् ब्राह्मण सूर्यके जलकी सङ्गतिके समयमें इस सोमको प्रियपुत्रकी समान बुद्धिपूर्वक वाणियोंसे स्तुति करते हैं हे सप्तग्रह तुम (उपयामगृहीतः असि मर्काय त्वा) उपयाम पात्रद्वारा ग्रहण किये गये हो मर्क असुरके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १६ ॥

मनोनयेषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णो अस्या श्रोणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वना धृष्टासि ॥ १७ ॥

इस कं०में ४ मन्त्र हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । छं० १ आ० पं० २ या० बृ० ३ या० पं० ४ या० गा० और देवता १ सोम २ ग्रह ३ मन्थि ४ आभिचारक । मन्त्रार्थ- (द्रवन्ता विपः शच्या मनोनयेषु हवनेषु तिग्मं वनुथः यः तुविनृम्णः गभस्तौ अस्य शर्याभिः आदिशम् अश्रोणीत) लघुहस्त, क्षिप्रकारी, बुद्धिमान् कर्मद्वारा मनको उत्साहपूर्वक जिन सोमरसके हवनोंमें मन की समान तीक्ष्ण उत्साहसे विशेष मन

लगाये रहे हैं जो बहुत धनवाला ऋत्विक् हाथोंमें स्थित इसको अङ्गुली समूहके द्वारा सब ओरसे सक्तुओंसे मिश्रित करता है, हे मन्थिग्रह (ते एषः योनिः प्रजाः पाहि मर्कः अपमृष्टः) तेरा यह स्थान है, इस स्थानमें स्थित करते यजमानकी प्रजाको रक्षा करो, मर्क असुर अपमार्जित हुआ हे मन्थीग्रह (मन्थिपाः देवाः त्वा प्रणयन्तु अनाधृष्टा असि) मन्थिग्रहके पान करने वाले देवता तुझको यज्ञ स्थानमें प्राप्त करें हे वेदिश्रोणी अनुपहिंसित हो ॥ १७ ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सङ्गच्छमानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । छं० १ सा० त्रि० २ साम्न्यनु० ३ दैवी पं० ४ प्राजापत्या गा० और १, २, मन्थि दै० ३ आभिचारिक ४ शकल । मन्त्रार्थ-हे ग्रह (सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् रायस्पोषेण यजमानं अभि परीहि) तुम सुप्रजा हो यजमान सम्बन्धिनी प्रजाको उत्पन्न करते हुए धनकी पुष्टिके साथ यजमानके संमुख आगमन कीजिये (मन्थी मन्थिशोचिषा दिवा पृथिव्या सङ्गच्छमानः) यह मन्थी नाम ग्रह अपनी दीप्तिसे द्युलोक और भूलोकके सहित संगतिको प्राप्त होकर यूपकी पालना करता है (मर्कः निरस्तः मन्थिनः अधिष्ठानम् असि) मर्क निरस्त हुआ दूर हुआ, हे यूपकाष्ठखण्ड तुम मन्थीग्रहके अधिकरण हो ॥ १८ ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमञ्जुषध्वम् ॥ १९ ॥

इसका परुच्छेप ऋ० भुरिगार्षी पं० छं० विश्वेदेवा देवता है। मन्त्रार्थ-(देवासः ये महिना दिवि एकादश स्थ पृथिव्यां अधि एकादश स्थ) हे देवताओ ! जो तुम अपनी महिमाके प्रभावसे द्युलोकमें ग्यारह हो तथा महाभाग्य होनेसे पृथिवीके ऊपर ग्यारह हो (अप्सुक्षितः एकादश स्थ देवासः ते इमम् यज्ञम् जुषध्वम्) अंतरिक्षमें भी ग्यारह स्थित हो हे देवताओं इस यज्ञको सेवन करो ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि त्वाग्रयणः । पाहि यज्ञम्पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुन्त्वम्पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥

इसका परुच्छेप ऋषि है, पं० निचृदार्षीज० छं० आग्रयण देवता है। मन्त्रार्थ हे ग्रह तुम (उपयामगृहीतः असि आग्रयणः स्वाग्रयणः असि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि) उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो आग्रयण नाम वाले श्रेष्ठताके प्राप्त करने वाले हो इस यज्ञकी रक्षा करो यज्ञपति यजमानकी रक्षा करो (विष्णुः इन्द्रियेण त्वा पातु त्वं विष्णुं पाहि सवनानि अभि पाहि) यज्ञके अधिपति विष्णुदेव अपनी सामर्थ्य से तुमको रक्षा करें तू भी यज्ञदेवको रक्षा कर प्रातरादि तीन सवनको सब ओरसे रक्षा कर ॥ २० ॥

सोमः पवते सोमः पवतेस्मै ब्रह्मणेस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत इप ऊर्जे पवतेद्भ्यः ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्याम्पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः। एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका परुच्छेप ऋ० है। छं० १ भू० ब्रा० प० २ दै० ज० ३ याजु०ज० और देवता १ विश्वेदेवा २, ३, ग्रह। मन्त्रार्थ-(सोमः अस्मै ब्रह्मणे सोमः अस्मै क्षत्राय पवते अस्म सुन्वते यजमानाय पवते अद्भ्यः ओषधीभ्यः पवते) यह सोम इस ब्राह्मण जातिकी प्रीतिके निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होता है, सोम इस क्षत्र जातिकी तुष्टिके निमित्त ग्रहपात्र में क्षरित होता है इस सोमाभिषव करने वाले यजमानके निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होता है, अच्छी वर्षाके निमित्त ओषधियों से क्षरित होता है (द्यावापृथिवीभ्याम् पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यः देवेभ्यः त्वा) दोनों लोककी सन्तुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, लोकत्रय और समस्त चराचरकी संतुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, समस्तके ही आनन्दके निमित्त यह सोमग्रह पात्रमें क्षरित होता है, हे ग्रह (एषः ते योनिः विश्वेभ्यः देवेभ्यः त्वा) यह तुम्हारा स्थान है सम्पूर्ण देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुझे स्थापन करता हूँ २१.

उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यङ्गृह्णामि । यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यङ् यज्ञस्यायुषे गृह्णामि२२

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका परुच्छेप ऋ० ३ आर्षी पं० २ दै०ज० ३ आर्ची गा०और सबका लिङ्गोक्ता देवता। मंत्रार्थ- हे उक्थग्रह ! (उक्थाव्यम् त्वा बृहद्वते

वयस्वते इन्द्राय गृह्णामि) उक्थके साहित्य देवताओंका तृप्तिकारक जान कर तुमको बृहत्साम सोमरूप अन्न वाले इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ (इन्द्र यत् ते बृहत् वयः तस्मै त्वा विष्णवे त्वा) हे परम भाग्यवान् इन्द्र जो तुम्हारा महान् सोमरूप अन्न है उसके पानेके निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, हे सोम यज्ञके अधिष्ठात्री देवता विष्णुकी प्रीतिके निमित्त तुझको ग्रहण करता हूँ हे उक्थग्रह (एषः ते योनिः उक्थेभ्यः त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, उक्थप्रियदेवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ हे सोम (देवाव्यम् देवेभ्यः त्वा यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि) मित्रावरुणादि देवताओं के प्रीतिकारक जान कर देवताओंको संतुष्टिके अर्थ तुझको ग्रहण करता हूँ, यज्ञकी समाप्तिके फल पर्यन्त ग्रहण करता हूँ २२

मित्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा बृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

इस कं० में ६ मन्त्र हैं । सबका परुछेप ऋ० । छं० १ आर्ची गा० २ आसुरी गा० ३ प्राजापत्यानु० ४ आर्ची गा० ५ निचृद् प्रा० ६ भुरिग् साम्न्यनु० और सबका लिंगोक्त दे० । मन्त्रार्थ-(देवाव्यम् मित्रावरुणाभ्यां यज्ञस्य आयुषे त्वा देवाव्यम् इन्द्राय यज्ञस्य आयुषे त्वा) देवगणों की तृप्तिकारक जानकर मित्रावरुण देवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न समाप्ति के निमित्त तुझ अंशको ग्रहण करता हूँ देवगणोंकी तृप्तिकारक जान कर इन्द्रदेवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ समाप्तिके निमित्त तुझको ग्रहण करता हूँ (देवाव्यम् इन्द्राग्निभ्याम् यज्ञस्यायुषे त्वा देवाव्यम् इन्द्रावरुणाभ्याम् यज्ञस्य आयुषे त्वा देवाव्यं इन्द्राबृहस्पतीभ्याम् त्वा यज्ञस्य आयुषे) देवसमूहोंका तृप्तिकारक जान इन्द्र अग्निदेवताके निमित्त यज्ञकी समाप्तिके निमित्त तुझको ग्रहण करता हूँ, देवगणोंका तृप्तिकारक जान कर इन्द्रवरुण देवताकी प्रीति के निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुझको ग्रहण करता हूँ देवगणोंका तृप्तिकारक जानकर इन्द्र और बृहस्पति देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, देवाव्यं इन्द्राविष्णुभ्याम्

यज्ञस्य आयुषे त्वा) देवताओंका तृप्तिकारक जानकर इन्द्र और विष्णुदेवताकी प्रीतिके निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुझ तीसरे अंशको ग्रहण करता हूँ ॥२३॥

मूर्द्धानन्दिवो अरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिञ्ज-नानामासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० आर्षी त्रि० छं० वैश्वानर दे० । मन्त्रार्थ-(देवाः दिवः मूर्द्धानं पृथिव्याः अरतिम् वैश्वानरम् ऋते आजातम् कविं सम्राजम् जनानां अतिथि अग्निं आपात्रं अजनयन्त) देवताओंने द्युलोकके मस्तकस्वरूप सूर्यरूपसे प्रकाशित पृथिवीके सीमा-स्वरूप जाठराग्नि-रूपसे समस्त नरलोकके हितकारी यज्ञमें अरणीद्वयसे उत्पन्न, अविचल तथा दीप्तिमान्, क्रान्तदर्शी, भक्तोंके सन्मुख होने वाले, नक्षत्रमण्डलीमें सम्राट् यजमानादि समस्त जनोंके अतिथिवत् हविसे आदरणीय इस ब्रह्माग्निको मुख्यपात्र चमस करके प्रकट किया ॥ २४ ॥

उपयामगृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवाक्षितिर्ध्रुवाणान्ध्रुवतमोच्युतानामच्युतक्षित्तम एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवन्ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा न इन्द्र इद्विशो सपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ निचृदार्ष्यनु० २ या० त्रि० ३ निच्यृद्साम्नी बृ० ४ निच्यृदार्षी गा० और दे० १, २, ३, ध्रुव, ४ इन्द्र है । मन्त्रार्थ-हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः असि ध्रुवक्षितः ध्रुवाणां ध्रुवतमः अच्युतानां अच्युतक्षित्तमः ध्रुवः असि) उपयाम पात्रमें गृहीत हो स्थिरनिवासवाले समस्त ग्रह नक्षत्र मण्डलको अपेक्षा अत्यंत अचल तथा च्युतिरहित पात्रमें निवास करनेवाले ध्रुवनामसे प्रसिद्ध हो ध्रुवदेवके प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ । हे ध्रुवग्रह (एषः ते योनिः वैश्वानराय त्वा ध्रुवेण मनसा वाचा ध्रुवं सोमं अवनयामि) यह तेरा स्थान है, समस्त नरलोकके हितकारी देवकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ, स्थिर मन और वाणीसे इस ध्रुवग्रहमें स्थित सोमको होतृचमस पात्रान्तरमें सिंचन करता हूँ, (अथ आ इन्द्रः इत् नः विशः असपत्नाः समनसः करत्) इसके अनन्तर इन्द्र देवता ही हमारी प्रजाको शत्रुशून्य स्थिरप्रज्ञ करें २५

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्ते अंशुरवच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तन्ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं । सबका देवश्रवा ऋ०है । छं०१ भुरिगा०त्रि० २ दैव्यु० ३ आसु० जग० और देवता १ सोम २ अग्नि ३ चत्वाल मन्त्रार्थ-हे सोम (ते यः द्रप्सः स्कन्दति यः ते अंशुः अवच्युतः धिषणयोः उपस्थात् वा अध्वरयोः वा यः पवित्रात् परितं मनसा वषट्कृतं स्वाहा जुहोमि) तुम्हारा जो किञ्चित् रस पात्रमें करते समय भूमिमें पतित होता है और जो तुम्हारा खण्ड अभिषवकालमें पत्थर द्वारा खण्डन करते करते अवच्युत होकर इधर उधर उड़ता है और जो तुम्हारा अंश रस अधिषवण फलकके मध्यसे गिरता है या अध्वर्युके व्यवहारसमयमें जो कुछ नष्ट हुआ है, या जो पवित्रतासे सकल रसबिन्दु भूमिमें पतित हुई हैं, हे सोम तुम्हारे यह सब अंश मनसे ग्रहण कर वषट्कारपूर्वक स्वाहाकारपूर्वक आहुति प्रदान करता हूँ हे चत्वाल तुम (देवानां उत्क्रमणम् असि) देवताओंके स्वर्गगमन के सोपान हो ॥ २६ ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतू दक्षाभ्याम्मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्याम्मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

इस कं० में ७ मन्त्र हैं । सबका देवश्रवा ऋ०छं० १ आसुर्यनु० २ आसुर्यनु०, ३ आसुर्युष्णिक्, ४ साम्नी गायत्री, ५ आसुरी गा०६ आसु०७ आसुर्यु० मंत्रार्थ-यह ग्रह यज्ञके प्राण हैं इस कारण प्राणरूपसे स्तुति करते हैं, हे उपांशुग्रह ! जिस कारणसे कि तुम स्वभावसे (वर्चोदाः मे प्राणाय वर्चसे पवस्व) तेजके देने वाले हो इस कारण मेरे हृदयमें स्थित प्राणवायु में तेज बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ । हे उपांशु सवन तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः मे व्यानाय वर्चसे पवस्व) कान्ति देनेवाले हो, मेरे व्यानवायुसंबन्धी कान्तिके बढ़ाने के निमित्त प्रवृत्त होओ, हे अन्तर्याम ग्रह जिस कारणसे कि तुम (वर्चोदाः मे उदानाय वर्चसे) कान्ति देने वाले हो मेरी उदानवायु सम्बन्धी कान्तिको बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे इन्द्रवायव ग्रह तुम

स्वभावसे ही (वर्चोदाः मे वाचे वर्चसे) कान्तिप्रद हो, मेरी वाक्‌सम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ हे मैत्रावरुण ग्रह तुम स्वभावसे (वर्चोदाः मे ऋतूदक्षाभ्यां वर्चसे पवस्व) कान्ति देने वाले हो मेरे कामना और समृद्धि तथा कार्य निपुणता सम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ। हे अश्विन ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः मे श्रोत्राय वर्चसे पवस्व) कांति देने वाले हो मेरे श्रोत्रेन्द्रियकी कान्तिदान के निमित्त प्रवृत्त होओ हे शुक्र! और मंथिग्रह जिस कारण कि तुम (वर्चोदसौ मे चक्षुर्भ्याम् वर्चसे पवेथाम्) स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो मेरी नेत्रसम्बन्धी कान्ति को बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ ॥ २७ ॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं। सबका देवश्रवा ऋ० है। छं०', २, ३ का आसुर्यनु० ४ भुरिग्सामन्यु० और देवता सबका लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ-हे आग्रयण ग्रह! (वर्चोदाः मे आत्मने वर्चसे पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो, मेरी आत्मसम्बन्धी कान्तिके देनेको प्रवृत्त होओ हे उक्थग्रह! (वर्चोदाः मे ओजसे वर्चसे पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो मेरे शरीरादि बलसम्बन्धी कान्तिकी वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ, हे ध्रुवग्रह! (वर्चोदाः मे आयुषे वर्चसे पवस्व) स्वभावसे कान्ति देनेवाले हो मेरी आयुः सम्बन्धी कान्तिकी वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ हे धृतभृत! आहवनीय ग्रह तुम स्वभावसे (वर्चोदसौ मे विश्वाभ्यः प्रजाभ्यः वर्चसे पवस्व) कांतिप्रद हो, मेरी सम्पूर्ण प्रजावर्गको कान्ति देनेको प्रवृत्त होओ ॥ २८ ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका देवश्रवा ऋ० है, छं० आर्ची पं० २ भुरिग्सा० पं० और सबका प्रजापति देवता है। मन्त्रार्थ-हे द्रोणकलश! तुम (कः असि कतमः असि कस्य असि कः नामासि यस्य ते नाम अमन्महि यं त्वा सोमेन अतीतृपाम) कौन प्रजापति हो कौनसे अतिशय वा बहुतोंके मध्यमें हो किस प्रजापतिके हो, क्या नाम है, जिस तेरे नामको हम जाने जिस तुमको जानकर सोमरससे तृप्त कर चुके हैं

क्या तुम वही हो, तुम हमको नाम बता कर कामनासे तृप्त करो (भूर्भुवः स्वः प्रजाभिः सुप्रजाः स्याम्) हे अग्नि, वायु और सूर्य ! आपके प्रसादसे मैं प्रजाओंसे अच्छी प्रजा वाला होऊँ (वीरैः सुवीरः पोषैः सुपोषः) वीरतायुक्त पुत्र पौत्रादि लाभ करके सुपुत्रवान्, विख्यात होऊँ, उत्कृष्ट धन संपत्तिसे प्रसिद्ध होकर अच्छी संपत्ति वाला विख्यात होऊँ ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोसि मधवे त्वोपयामगृहीतोसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोसि शुचये त्वोपयामगृहीतोसि नभसे त्वोपयामगृहीतोसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोसीषे त्वोपयामगृहीतोस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोसि सहसे त्वोपयामगृहीतोसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोसि तपसे त्वोपयामगृहीतोसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोस्यंहसस्पतये त्वा ॥

इस कं० में १३ मन्त्र हैं, सबका देवश्रवा ऋषि है। छं० १, २, ३, ४, ५, ९, ११ का साम्नी गा० ६, १०, १२ का आसुर्यनु० ७, ८ का याजुषी पं० १३का आसुर्युष्णिक् और सबका देवता ऋतु है। मन्त्रार्थ-हे प्रथम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः असि मधवे त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो मधु देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे द्वितीय ऋतुग्रह (उपयाम गृहीतः असि माधवाय त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो, वैशाखकी सन्तुष्टिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे तृतीय ऋतुग्रह ! (उपयामगृहीतः असि शुक्राय त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो ज्येष्ठके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः शुचये त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो, आषाढ मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ— हे पंचम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः असि नभसे त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो श्रावण मासके निमित्त ग्रहण करता हूँ— हे षष्ठ ऋतुग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि नभस्याय त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो भाद्र मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे सप्तमग्रह (उपयामगृहीतः असि इषे त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो आश्विन मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ—हे अष्टमग्रह (उपयामगृहीतः ऊर्ज्जे त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो कार्त्तिकमासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हे नवमग्रह (उपयामगृहीतः असि सहसे त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो मार्गशीर्षके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे दशमग्रह (उपयामगृहीतः असि सह-

स्याय त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो पौषमासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे एकादश ग्रह (उपयामगृहीतः असि तपसे त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो माघ मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे द्वादश ऋतुग्रह ! (उपयामगृहीतः असि तपस्याय त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो फाल्गुन मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे त्रयोदश ग्रह (उपयामगृहीतः असि अँहसस्पतये त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो पापके अधिपति मलमासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ॥

इन्द्राग्नी आगतꣳ सुतङ्गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातन्धियेषिता । उपयामगृहीतो-सीन्द्राग्निभ्यान्त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

इस कं०में २ मन्त्र हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १ निचृदा० गा० २ आर्ष्यनु० और देवता १ इन्द्राग्नी २ ग्रह । मन्त्रार्थ-(इन्द्राग्नी सुतम् गीर्भिः नभः वरेण्यम् आगतम् धिया अस्य पातम्) हे इन्द्राग्नी देवताओ तुम अभिषवण ऋक् यजुःसामके मन्त्रोंसे आदित्यकी समान प्रार्थनीय, सोमरस पानके निमित्त आओ, यजमानकी बुद्धिसे प्रार्थनीय होकर तुम इस सोमरसके स्वभागको पान करो, (उपयामगृहीतः असि इन्द्राग्निभ्यान्त्वा) हे चौबीसवें ग्रह तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो इन्द्राग्नी देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे इन्द्राग्नी ग्रह (एषः ते योनिः इन्द्राग्निभ्यां त्वा) यह तुम्हारा स्थान है इन्द्राग्नी देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३१ ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयाम-गृहीतोस्यग्नीन्द्राभ्यान्त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यान्त्वा ॥ ३२ ॥

इस कं०में २ मन्त्र हैं । सबका त्रिशोक ऋषि है । छं० १ आर्षी गा०२ आर्च्युष्णिक् और दे० १ अग्नीन्द्र २ ग्रह है । मन्त्रार्थ-(ये अग्निम् आ इन्धते आनुषक् बर्हिः स्तृणन्ति येषाम् युवा इन्द्रः सखा अघा) जो यजमान अग्निको इष्ट आदि यज्ञोंमें प्रज्वलित करते हैं और क्रमसे कुशाओंको बिछाते हैं और जिनके सदा तरुण इन्द्र-नारायण सखा हैं वह सदा निष्पाप हैं (उपयामगृहीतः असि अग्नीन्द्राभ्याम् त्वा) एषः ते योनिः अग्नीन्द्राभ्याम् त्वा) हे सोम उनके यज्ञमें तुम उपयामपात्रसे गृहीत हो अग्नि इन्द्र देवताओंके लिये तुम्हें स्वीकार करता हूँ, हे सोम यह तेरा स्थान है अग्नि इन्द्र देवताओंके निमित्त तुझे स्थापन करता हूँ ॥ ३२ ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृही-तोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका मधुच्छंदा ऋ० । छं० १ आर्षी गा० २ आर्ची बृ० और देवता १ विश्वेदे० २ गृह । मंत्रार्थ-(विश्वेदेवासः ओमासः चर्षणीधृतः सुतम् दाशुषः दाश्वांसः आगत) हे विश्वेदेवा ! तुम सब हमारे सब प्रकारसे रक्षक हो तथा मनुष्योंको पुष्ट करनेवाले हो मनुष्य तुम्हारे प्रसादसे ही पुष्ट होते हैं अभिषुतसंस्कार किये सोमको देने वाले यजमानको फल देने वाले तुम सोमपानके निमित्त आओ हे पंचविंशगृह(उपयामगृहीतः असि विश्वेभ्यः देवेभ्यः त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे वैश्वदेवगृह (एषः ते योनिः विश्वेभ्यः देवेभ्यः त्वा) यह आप का स्थान है विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३३ ॥

विश्वेदेवास आगत शृणुता म इमꣳ हवम् । एदम्बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

इस कं में २ मन्त्र हैं। सबका गृत्समद ऋ० छं० १ आर्ची गा० २ आर्ची बृ० और देवता १ विश्वेदेवा २ गृह मंत्रार्थ (विश्वेदेवासः आगत मे इमं हवं आशृणुत) हे विश्वेदेव देवताओं ! हमारे इस यज्ञमें आओ मेरे आह्वानको सब प्रकारसे श्रवण करो(इदम् बर्हिः आनिषीदत)इस विस्तीर्ण कुशा पर स्थित होओ, शेषं पूर्ववत् ॥३४॥

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

इस कं०में २ मन्त्र हैं। सबका विश्वामित्र ऋ० छं० १ आर्षी त्रिष्टुप् २ आर्ष्युष्णिक् और देवता, १ विश्वेदेवा, २ गृह मंत्रार्थ-(मरुत्वः इन्द्र यथा शार्याते सुतस्य अपिबः मरुत देवताओं वाले हे इन्द्र जिस प्रकार बड़े परिश्रम करने वाले शर्यातिके

यज्ञमें अभिषुत सोमके अंशोंको तुमने पिया था, इसी प्रकारसे (इह सोमं पाहि शूर तव प्रणीती सुयज्ञाः कवयः तव शर्मन् आविवासन्ति) इस हमारे यज्ञमें सोमकी रक्षा करो और पियो हे विक्रान्तवीर तुम्हारी सुनीति और अनुज्ञासे श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले दूरदर्शी तुम्हारे सुखप्रद स्थान में चिरकाल तक तुम्हारी परिचर्या करते हैं. हे प्रथमगृह ! (उपयामगृहीतः असि मरुत्वते इन्द्राय त्वा) तुम इस उपयाम-पात्रमें गृहीत हो, मरुत् देवताओंसे युक्त इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको गृहण करता हूँ। हे प्रथम मरुत्वतीय गृह ! (एष ते योनिः मरुत्वते इन्द्राय त्वा) तुम इस उपयामपात्रमें गृहीत हो मरुत् देवताओंसे युक्त इन्द्रदेवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३५ ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिन्दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳहुवेम । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते । उपयामगृहीतोसि मरुतान्त्वौजसे ॥ ३६ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं, सबका विश्वामित्र ऋ० है। छन्द १ विराडार्षी २ आ० ३ साम्न्युष्णिक् और देवता १ इन्द्र २।३ ग्रह है। मन्त्रार्थ-(मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानं अकवारिम् दिव्यम् शासं विश्वासाहं सहोदां नूतनाय अवसे उग्रं तं इन्द्रं इह आहुवेम) मरुद्गणोंसे युक्त उचित समय जल वर्षाने वाले व्रीहि धान्यादिक बढ़ाने वाले उत्कृष्ट ऐश्वर्यवान् द्युलोकमें रहने वाले दुष्टोंके शासक आलस्यरहित विश्व के पालक बल देनेवाले नूतन यजमानका रक्षण करनेके निमित्त निरन्तर उद्यत वज्र वाले उस इन्द्रको इस यज्ञमें रक्षाके निमित्त आह्वान करते हैं। हे द्वितीय ग्रह तुम (उपयामगृहीतः असि मरुत्वते इन्द्राय त्वा एष ते योनिः मरुत्वते इन्द्राय त्वा उपयामगृहीतः असि) उपयाम पात्रमें गृहीत हो शेष अर्थ पूर्ववत्। हे तृतीय मरुत्वतीय ग्रह ! (मरुत्वतां ओजसे त्वा) मरुत् देवताओंके बलसम्पादनके निमित्त तुमको इस ऋतुग्रहमें ग्रहण करता हूँ ३६

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमम्पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रूꣳरप मृधो नुदस्वाथाभयङ्कृणु हि विश्वतो नः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरि-

न्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ निचृदार्षी त्रि० २ प्रा० त्रि० और देवता १ इन्द्र २ ग्रह हैं, मंत्रार्थ-(शूर इन्द्र सजोषः सगणः वृत्रहा विद्वान् मरुद्भिः सोमं पिब शत्रून् जहि) हे विक्रांत इन्द्र तुम हमारे यज्ञको प्रीतिसे सेवन करो वृत्रके मारने वाले सब कुछ जानने वाले मरुद्गणोंके परिवार सहित सोमको पान करो शत्रुओंको मारो (मृधः अपनुदस्व अथ नः विश्वतः अभयम् कृणुहि) संग्राम से शत्रुओंको निवृत्त करो शत्रुनाशके अनन्तर हमको सब प्रकारसे अभय कीजिये (उपयामगृहीतः इत्यादि पूर्ववत्) हेग्रह इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् ॥ ३७ ॥

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधम्मदाय । आसिञ्चस्व जठरे मद्ध्व ऊर्मिन्त्वꣳराजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ निचृदार्षी त्रि० २ प्रा० त्रि० । देवता १ इन्द्र २ ग्रह मंत्रार्थ-(इन्द्र मरुत्वान् वृषभः अनुष्वधम् सोमं मदाय रणाय आ पिब मध्वः ऊर्मिं जठरे आसिञ्च) हे इन्द्र मरुद्गणोंसे संयुक्त जलके वर्षाने वाले तुम स्वधापूर्वक पुरोडाश धान्यमंथ दधि पय लक्षण वाले सोमरसको तृप्तिके निमित्त और दैत्योंसे युद्धके निमित्त पान कीजिये, इस मधुर रसकी कल्लोलको उदरमें आसिंचन करो (त्वं प्रतिपत्सुतानां राजा असि) तुम प्रतिपद् प्रभृति तिथियोंमें अभिषुत हुए सोमके राजा हो, हे ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः) उपयाम पात्रमें गृहीत इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३८ ॥

महाँ इन्द्रो नृवदाचर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ३९

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । छं० १ भुरि गा० २ साम्नी त्रि० और देवता १ माहेन्द्र २ ग्रह है । मन्त्रार्थ-राजा जिस प्रकार प्रजावर्गकी अभिलाषा पूर्ण करता है, तद्वत् (आचर्षणिप्राः द्विबर्हाः सहोभिः अमिनः उत अस्म-

द्रयक् महान् इन्द्रः वीर्याय वावृधे उरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः अभूत्) मनुष्योंके अभीष्ट पूर्ण करने वाले प्रकृति विकृतिरूप सोमयागके बढ़ाने वाले बलों करके उपमारहित तथा हमारे प्रति अनुकूल महा प्रभावशाली इन्द्र वीरकर्मके निमित्त वृद्धिको प्राप्त होता है, तथा यज्ञसे विस्तीर्ण बलसे विस्तृत इन्द्र यजमानों द्वारा सत्कारित हुआ हमारी बलवीर्यकी वृद्धि करे। हे चतुर्थ ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि महेन्द्राय त्वा) उपयामपात्रमें गृहीत हो महेन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे माहेन्द्र ग्रह ! (एष ते योनिः महेन्द्राय त्वा) यह तुम्हारा स्थान है महेन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ३९

महा ँ२इन्द्रो य ओजसा पर्ज्जन्यो वृष्टिमा ँ२इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका वत्स ऋ० है । छं० १ आर्षी गा० २ विराडार्षी गा० । देवता १ महेन्द्र २ ग्रह है मंत्रार्थ-(यः महान् इन्द्रः ओजसा वृष्टिमान् पर्जन्य इव वत्सस्य स्तोमैः वावृधे) जो महा प्रभावशाली इन्द्र तेजसे महान् वर्षावाले मेघके समान मनसे की हुई स्तुतियोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है, हे ग्रह ! (उपयामगृहीतः) तुम उपयाममें गृहीत हो । शेष पूर्ववत् ॥ ४० ॥

उदुत्यञ्जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यꣳ स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसका प्रस्कण्व ऋ० भुरिगार्षी गा० छं० सूर्य देवता है । मन्त्रार्थ-(केतवः त्यं जातवेदसं देवं सूर्यम् विश्वाय दृशे उ उद्वहन्ति स्वाहा) किरणसमूह उस प्रसिद्ध सब पदार्थोंको जानने वाले प्रकाशात्मक सूर्यदेवको इस समस्त विश्वके प्रकाश करनेके निमित्त वितर्कके साथ प्रतिनियत ऊर्ध्व वहन करती हैं अर्थात् स्वर्गमें पहुँचाती हैं इन्हीं देवके उद्देश्यसे दिया हुआ यह हवि भली प्रकार गृहीत हो ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्म्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसका कुत्स ऋ० भुरिगा० त्रि० छं० सूर्य दे० । मन्त्रार्थ-(चित्रं देवानां अनीकं मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः जगतः तस्थुषः आत्मा सूर्यः उदगात् द्यावापृथिवी

अन्तरिक्षं आप्राः स्वाहा) यह कैसा आश्चर्य है कि देवताओंके जीवनाधार ब्रह्मा विष्णु महेश-रूप—धारक परमेश्वरके नेत्रवत् प्रकाशवान् जंगम और स्थावर जगत्के अंतर्यामी सूर्य उदयको प्राप्त हुए भूलोकसे द्युलोकपर्यंत अंतरिक्षको अपने तेजसे पूर्ण करता है उन सूर्यदेवके निमित्त दी हुई आहुति भली प्रकारसे स्वीकृत हो ॥ ४२ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देववयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस मन्त्रकी व्याख्या ५ अ० ३६ वें मन्त्रमें होगई ॥ ४३ ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

इस मन्त्रकी व्याख्या अ० ५ मन्त्र ३७ में होगई ॥ ४४ ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

इस कं०में ३ मन्त्र हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० । छं० १ प्रजाप०ज०, २ याजुष्यनुष्टुप्, ३ दैवी त्रि०, और सबका दक्षिणा देवता है । मन्त्रार्थ-(चन्द्रदक्षिणाः रूपेण वः रूपं अभ्यगां विश्ववेदाः तुथः विभजतु) सुवर्ण दक्षिणा वाली हे गौओं ! मैं यजमानकी मूर्त्तिसे तुम्हारे रूपको प्राप्त हुआ हूँ, सर्वज्ञ ब्रह्म तुमको यथा योग्य विभाग करके ऋत्विजोंके निमित्त प्रदान करे (ऋतस्य पथा प्रेत) यज्ञके मार्गसे गमन करो । हे दक्षिणारूप संपूर्ण गौओं ! आज हम तुमको प्राप्त करके (स्वः विपश्य अन्तरिक्षं वि) स्वर्गके देवयान मार्गको देखते हैं, अन्तरिक्ष पितृयान मार्गको देखता हूँ । हे ऋत्विग्गण ! तुम इस प्रकार (यतस्व, सदस्यैः) यत्न करो कि जिस प्रकार सभासदोंको यथाभाग पूर्ण होकर भी कुछ गोदक्षिणा शेष रह जाय ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमद्य विदेयम्पितृमन्तम्पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुयातुदक्षिणम् । अस्मद्दाता देवत्रा गच्छ प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

इस कं०में २ मन्त्र हैं। सबका आङ्गिरस ऋषि है। छं०१ आर्ची बृ०, २ आर्ची गा० और देवता १ हिरण्य, २ दक्षिणा देव है। मन्त्रार्थ—मैं (अद्य पितृमन्तम् पैतृमत्यं ऋषि आर्षेयं सुधातुदक्षिणं ब्राह्मणं विदेयम्) आज विख्यात विद्वान् यशस्वी पिता वाले, जनमान्य पितामह वाले मन्त्रों की व्याख्या करने वाले ऋषियोंमें विख्यात जिसके निकट सम्पूर्ण सुवर्णदक्षिणा संचय की जाय ऐसे सर्वकुल-गुणसंपन्न ब्राह्मण को मैं प्राप्त करूँ। हे सम्पूर्ण दक्षिणा! तुम (अस्मद्दाताः देवत्रा गच्छत दातारं प्राविशत) हमारे द्वारा दी हुई देवताओंसे अधिष्ठित ऋत्विग्गणके समीप यथाभाग उपस्थित होओ और देवताओंको तृप्त कर इस यज्ञका फल देनेके लिये दाता यजमानमें प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमशीयायुर्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे।

रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे

बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमशीय त्वग्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे

यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमशीय इयो दात्र एधि वयो मह्यम्प्रतिगृहीते ४७

इस कं०में ४ मन्त्र हैं। सबका आङ्गिरस ऋ० है। छं० १ आर्ची त्रि० २ भुरिगार्ची त्रि० ३ निचृदार्षी ज०, ४ भुरिगार्ची त्रि० और देवता १ हिरण्य, २ गौ, ३ वस्त्र ४ अश्व है। मन्त्रार्थ-हे सुवर्ण! (वरुणः अग्नये मह्यं त्वा ददातु) वरुणदेवता अग्निरूपको प्राप्त हुए मेरे निमित्त तुमको प्रदान करें, इस प्रकारसे ग्रहण कियेहुए सुवर्णसे (सः अमृतत्वं अशीय दात्रे आयुः एधि प्रतिगृहीत्रे मह्यं मयः) वह मैं आरोग्यता प्राप्त करूँ, हे सुवर्ण तुम दाताको परमायु की वृद्धि करो, प्रतिग्रह करने वाले मुझको सुखकी प्राप्ति हो हे गौः! (वरुणः रुद्राय मह्यं त्वा ददातु सः अमृतत्वं अशीय दात्रे प्राणः एधि मह्यं प्रतिगृहीत्रे मयः) वरुण देवता रुद्ररूप मुझे तुमको प्रदान करता है वह मैं आरोग्यताको प्राप्त हूँ तुम दाताके बल प्राणकी वृद्धि करो मुझ प्रतिगृहीताके अन्नपशुकी वृद्धि करने वाले हो, हे वस्त्र (वरुणः बृहस्पतये मह्यं त्वा ददातु सः अमृतत्वम् अशीय दात्रे त्वक् एधि प्रतिगृहीत्रे मयः) वरुण देवता बृहस्पतिरूप मेरे निमित्त तुमको देता है, वह मैं तुमको प्राप्त करके अमृतत्वको प्राप्त करूँ, तुम दाताकी त्वगिन्द्रियशक्तिकी वृद्धि करो, प्रतिगृहीता मेरे सुखकी वृद्धि करो। हे अश्व

(वरुणः यमाय मह्यं त्वा ददातु सः अमृतत्वं आशीय दात्रे हयः एधि प्रतिगृहीत्रे मह्यं वयः) वरुण देवता यमरूप धर्मरूप मेरे निमित्त तुझको देता है वह मैं तुमको प्राप्त कर आरोग्यताको प्राप्त करूँ दाताके यहाँ घोड़ोंको वृद्धि करो प्रतिग्रह करनेवाले मेरी पशु सम्पत्ति की वृद्धि करो ॥ ४७ ॥

कोदात्कस्मा अदात्कामोदात्कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते ४८

इसका आङ्गिरस ऋषि प्राजापत्या त्रिष्टुप् छं० कामो देवता । मन्त्रार्थ-(कः अदात् कस्मै अदात् कामाय अदात् कामः दाता कामः प्रतिगृहीता काम एतत् ते) कौन महात्माने दान किया किसके निमित्त प्रदान किया । यह फल कामना ही के निमित्त दान किया, कामना ही देने वाली है, अभिलाषा ही प्रतिग्रह करने वाली है हे अभिलाषा करने योग्य यह समस्त वस्तु तुम्हारी ही है ॥ ४८ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद सप्तम अध्याय समाप्त

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

जिसमें उपांशुग्रह आदि प्रधान हैं ऐसे सप्तम अध्यायमें दक्षिणादान तक मन्त्र कहे। अब आठवें अध्यायमें तीसरे सवनके आदित्य ग्रह आदि सम्बन्धी मन्त्र कहे जायँगे।

उपयामगृहीतोस्यादित्येभ्यस्त्वा। विष्णऽ उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् १

इस कं० में ३ मंत्र हैं सबका आङ्गिरस ऋ० है। छं० १ याजुष्यनु० २ दैवीपं० ३ साम्नोबृ० और देवता १,२ सोमः ३ विष्णु है। मंत्रार्थ- हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः असि) उपयामपात्रमें गृहीत हो। हे सोम (आदित्येभ्यः त्वा) आदित्यगणोंकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (विष्णो उरुगाय एषः सोम रक्षस्व मा दभन्) हे बहुस्तुत यज्ञपुरुष हे बड़ी स्तुतिको प्राप्त होनेवाले यह सोम तुम्हारे निमित्त अर्पित है उस सोमको रक्षा करो, रक्षा करनेमें तुम को असुरदल पीड़ा न देय ॥ १ ॥

कदा वन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपे मघवन्नु भूय इन्नु ते दानन्देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं,सबका आङ्गिरस ऋ० है। छं० १ आर्षी बृ० २ दैवीपं० और देवता १ आदित्य २ ग्रह है मंत्रार्थ-(इन्द्र कदाचन स्तरीः न असि दाशुषे उत नु उप सञ्चसि) हे इन्द्रदेव ! तुम कभी भी हिंसक नहीं हो और हवि देने वाले यजमानकी हविको यजमानके अत्यन्त समीप में सेवन करते हो (मघवन् इन्नुभूयः देवस्य ते दानं उपपृच्यते) हे धनवन्! इन्द्र फिर भी [यजमानके हविके परिवर्त्तन में] देवता आपका हविरूप दान तुम्हारे द्वारा सम्बन्धित होता है हे ग्रह ! (आदित्येभ्यः त्वा) इस प्रकार आदित्य देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥२॥

कदाचन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी । तुरीयादित्य सवनन्त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका आङ्गिरस ऋ० । छं० १ निचृदार्षी बृ० २ दैवी प० और देवता १ आदित्य २ ग्रह है। मंत्रार्थ (आदित्य कदाचन प्रयुच्छसि उभे जन्मनी निपासि) हे आदित्य! तुम कभी भी नहीं प्रमाद करते देव मनुष्य सम्बन्धी दोनों जन्ममें अतिरक्षा करते हो (ते तुरीय अमृतं सवनं इन्द्रियं दिवि आतस्थौ) तुम्हारा चौथा मायासे परे अविनश्वर शुद्ध जगत्प्रावर्त्तक विज्ञानानन्दस्वभाव जो इन्द्रियरूप पराक्रम है सो द्युलोक मण्डलान्तरमें अभिमुख्यतासे स्थित है। हे ग्रह (आदित्येभ्यः त्वा) आदित्यदेवोंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानाम्प्रत्येति सुम्नादित्या सो भवता मृडयन्तः । आ वोर्वाचीसु मतिर्ववृत्याद्ंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरा सदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका कुत्स ऋ० । छन्द १ विराडार्षी त्रि० २ दैवी पं० और देव० १ आदित्य २ ग्रह। मन्त्रार्थ- (यज्ञः देवानां सुम्नम् प्रत्येति आदित्यासः आमृडयन्तः भवत) यज्ञ आदित्य देवतोंके सुखके निमित्त आगमन करता है। इस कारण हे आदित्यगणों! तुम हमको अवश्य ही सुखकारी हो (वः सुमतिः अर्वाची आववृत्यात् अंहः चित् या वरिवोवित्तरा असत्) तुम्हारी जो स्वभावसिद्ध अनुग्रहबुद्धि है वह हमारे अभिमुखी प्रवृत्त हो पापकारीकी भी जो सुमति धनके उपार्जन करने वाली है, वह हमारे सन्मुख हो। हे सोम (आदित्येभ्यः त्वा) आदित्य ग्रहकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ४

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन्मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥५॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका कुत्स ऋ० है। छं० १ प्राजा० नु० २ निचृ० ज० और देवता १ आदित्य, २ आशी हैं। मंत्रार्थ- (विवस्वन् आदित्य एषः ते सोमपीथः तस्मिन् मत्स्व हे अन्धकारके दूर करनेवाले आदित्य ! यह पात्रमें स्थित तुम्हारे पीने योग्य सोम है इसके पान करनेमें प्रसन्न होओ। (नरः आशीर्दाः अस्मै वचसे श्रद्दधातन यत् दम्पती वामं अश्नुत) हे यज्ञीय कर्मचारीगण ! आशीस देनेवाले तुम इस आशीर्वचनमें श्रद्धा करो जिस कारण यह यजमान और उसकी पत्नी वरण करने योग्य क्रियमाण यज्ञके फलको लाभ करें और इस फलसे इस यजमानके (पुमान् पुत्रः जायते वसु विन्दते अथ विश्वाहा अरपः गृहे आ एधते) पुंस्त्वधर्मसम्पन्न पुत्र हो और यह पुत्र धन सम्पत्ति को प्राप्त करे अनन्तर सम्पूर्ण दिन पापरहित ऋणादि हीन होकर घरमें सब प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

वाममद्यसवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳसावीः । वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे रया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका भरद्वाज ऋ०। छन्द १ निचृदार्षी त्रि० २ विराड् ब्राह्म्यनु० और दवता सबका सविता है। मन्त्रार्थ (सवितः अद्य अस्मभ्यम् वामं सावीः श्वः उ वामम् उ) हे जगत्के उत्पन्न करने वाले ! आज हमारे निमित्त वरणीय यज्ञफलको प्रेरणा करो, अगले दिन भी यज्ञफलको दीजिये (दिवे दिवे वामम् वामस्य भूरे क्षयस्य हि देव रया धिया वामभाजः स्याम) प्रतिदिन यज्ञफलको दीजिये संभजनीय विस्तीर्ण स्वर्गलोक निवासकी सिद्धि के निमित्त जिससे हे देव हम इस श्रद्धायुक्त बुद्धिसे यज्ञफलके भोगने वाले होवें ॥ ६ ॥

उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि। जिन्व यज्ञञ्जिन्व यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० विराड् ब्राह्मयनुष्टुप्छंद सविता देवता है । मन्त्रार्थ—हे सोम ! तुम (उपयामगृहीत. असि सावित्रः असि चनोधाः चनोधाः चनः मयि धेहि) उपयाम पात्रमें गृहीत हो हे सोमग्रह तुम सविता देवता संबन्धी हो, अन्नके धारण करने वाले हो इस कारण अन्न मुझको दो (यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं जिन्व भगाय सविते देवाय त्वा) यज्ञको प्रीति करो यजमान को प्रीति करो ऐश्वर्यादि गुणयुक्त सबके उत्पादक सविता देवताके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

इस कं०में २ मंत्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । छं० १ निचृद् प्राजाप० ज०, २ याजु० ज० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह है । मन्त्रार्थ—हे महावैश्वदेव ग्रह ! (उपयामगृहीतः असि सुशर्म सुप्रतिष्ठानः नमः असि) उपयामपात्रमें गृहीत हो श्रेष्ठ कल्याणकी खान भले प्रकार पात्रमें स्थित यह अन्न है (विश्वेभ्यः देवेभ्यः त्वा विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको उपयामपात्रमें ग्रहण करता हूँ । हे महावैश्वदेव ग्रह ! (एषः ते योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (विश्वेभ्यः देवेभ्यः त्वा विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥८॥

उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवता ग्रहा ऋद्ध्यासम् । अहम्परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षन्तदु मे पिता भूत् अहꣳपूर्यमुभयता ददर्श इन्देवानाम्परमं गुह्य यत् ॥ ९ ॥

इस कं०में ३ मंत्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । छं० १ ब्राह्मी गा० २, ३, आर्च्युष्णिक् और देवता १ सोम २, ३ का प्रजापति रूपात्मा है । मन्त्रार्थ-(देवसोम उपयामगृहीतः असि बृहस्पतिसुतस्य ते इन्दोः इन्द्रियावतः पत्नीवतः ग्रहान् आऋध्यासम्) हे दीप्यमान देव सोम तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो, इस कारण यज्ञ करने वाले यजमानसे अभिषुत तुम्हारे सम्बन्धी रसयुक्त वीर्यवान्, पत्नीसंयुक्त तुम्हारे अनुग्रहसे अन्यान्य उपांशु प्रभृति ग्रहोंको पूर्ण करता हूँ । (अहं परस्तात् अहं अवस्तात् यत् अन्तरिक्षं तत् उ मे पिता अहं उभयतः सूर्यं ददर्श) मैं ही नीचे भूलोक

कादिमें स्थित हूँ, जो मध्यवर्ती लोक है वह ही मुझ देहधारीका पितृवत् पालक होता है, मैं परमरूप हुआ ऊपर नीचे स्थित होकर सूर्यको देखता हूँ (देवानां यत् परमं गुहा अहं) देवताओंका जो अत्यन्त गोप्य हृदय है सो मैं हूँ ॥ ९ ॥

अग्ना३ इ पत्नीवत्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमम्पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ भुरिगार्ची गा० २ आर्ची त्रि० और देवता १ अग्नि २ प्रजापति है। मन्त्रार्थ-(पत्नीवत् अग्ना ३ इ त्वष्टा देवेन सजूः सोमम् पिब स्वाहा) हे पत्नीवत् अग्नि त्वष्टा देवताके सहित सोमको पान कर यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो हे उद्गातः (प्रजापतिः वृषा रेतोधाः असि रेतः मयि धेहि वृष्णः रेतोधसः प्रजापतेः ते रेतोधाम् अशीय) प्रजाओंके पालक सिंचनमें समर्थ वीर्यके धारण करने वाले प्रजापति आपके अनुग्रहसे प्रजोत्पादनमें समर्थ वीर्यवान् पुत्रको मैं प्राप्त करूँ ॥१०॥

उपयामगृहीतोसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यान्त्वा । हर्य्योर्द्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥ ११ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका भरद्वाज ऋ० छं० १ आर्च्युष्णिक् २ याजुषी ज० और देवता १ ऋक्साम २ धाना मंत्रार्थ- हे पंचमग्रह ! (उपयामगृहीतः असि हारियोजनः हरिः असि हरिभ्यां त्वा) तुम उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो, हारियोजन नाम वाले हरितवर्णरश्मि हो, ऋक् और सामवेदकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (सहसोमाः धानाः इन्द्राय हर्योः स्थ) सोमके सहित हे धान्यसमूह ! तुम इन्द्र देवताके दोनों हरित अश्वोंकी प्रीतिके निमित्त इस हारियोजन नामक ग्रह सोमसे मिश्रित होते हो ॥ ११ ॥

यस्ते अश्वसनिर्भक्षो योगोसनिस्तस्य त इष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, आर्षी पं० छंद भक्ष्य द्रव्य देवता है। मंत्रार्थ-हे सोमसिक्त धान्यरूप उत्कृष्ट खाद्य ! (इष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य उपहूतस्य ते यः भक्षः अश्वसनिः) यजुर्मन्त्रोंसे इष्ट उद्गातृ द्वारा ऋक् मन्त्रोंसे स्तुत होताओं द्वारा सोमके उक्थ मन्त्रोंसे शस्त इस सम उपहूत तुम्हारा जो भक्षण फल घोड़ोंको देनेवाला है (यः गोसानः तस्य ते उपहूत भक्षयामि) जो भक्ष्य गौओंका दाता उस तुम्हारे भक्ष्य फलको अनुज्ञाको प्राप्त करके मैं भक्षण करता हूँ ॥ १२ ॥

देवकृतस्यैनसोवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोवयजनमस्यैनसऽएनसोवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोवयजनमसि ॥ १३ ॥

इस कं० में ६ मन्त्र हैं। सबका भरद्वाज ऋ० छं० १, ३, ४ आसुर्यनुष्टुप्, २ आसुर्युष्णिक् ५ आसुरी० ६ आर्चीबृ० और देवता सबका अग्नि है। मन्त्रार्थ-हे सकल अग्निमें आहूयमान तुम देवताओंके विषय किये हुए यजन अभावादि लक्षण वाले (एनसः अवयजनं असि) पापके दूर करने वाले हो, हे काष्ठखण्ड ! तुम (मनुष्यकृतस्य एनसः अवयजनमसि) मनुष्योंके किये हुए द्रोह निंदादि पापके निवारण करने वाले हो, हे काष्ठखण्ड ! तुम (पितृकृतस्य एनसः अवयजनं असि) पितरोंमें किये श्राद्ध आदि न करने वाले पापके विनाश करने वाले हो, हे काष्ठखण्ड ! तुम (आत्मकृतस्य एनसः अवयजनं असि) अपनी आत्मामें किये निन्दादि पापके नाशक हो। हे काष्ठखण्ड तुम (एनसः एनसः अवयजनं असि) संपूर्ण संसर्गसे उत्पन्न पापोंके नाशक हो। हे हूयमान काष्ठखण्ड (च विद्वान् यत् एनः अहं चकार च अविद्वान् यत् तस्य सर्वस्य एनसः अवयजनं असि) और जान बूझकर जो पाप मैंने किया है, और विना जाने जो पाप किया है, उस सम्पूर्ण पापके नष्ट करने वाले हो हमारे सब पाप विनष्ट करो ॥ १३ ॥

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो नु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०। विराडार्षी त्रि० छं०तुष्टा देवता है। इसकी व्याख्या २ अ० २४ कं० में होगई ॥ १४ ॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳसूरिभिर्मघवन्त्सꣳस्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सन्देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥ १५ ॥

इसका अत्रि ऋ०। भुरिगार्षी त्रि०छंद विश्वेदेवा देवता है मन्त्रार्थ-(मघवन् इन्द्र मनसा नः सन्नेषि गोभिः सम् सूरिभिः सम् स्वस्त्या ब्रह्मणा सम् देवकृतं यत् अस्ति, यज्ञियानां, देवानां, सुमतौ सम्, स्वाहा) हे धनवन् इन्द्रदेव ! मनके अनुग्रहसे हमको संयुक्त करो, वाणी प्राप्त कराओ, पण्डितोंसे संयुक्त करो, उत्कृष्ट कल्याण प्राप्त कराओ, परब्रह्मसे संयुक्त करो, देवताओंके निमित्त किया हुआ कर्म जो है, वह यज्ञसम्बन्धी देवताओंकी अनुग्रहबुद्धिसे संयुक्त करता है, इस प्रकार आपके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ १५ ॥

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो नु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

इसका प्रजापति ऋ०। विराडार्षी त्रि० छं० और तुष्टा देवता है। इसकी व्याख्या पूर्व होगई है ॥ १६ ॥

धाता रातिः सवितेदन्जुषन्ताम्प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणन्दधात स्वाहा ॥ १७ ॥

इसका अत्रिऋ०, स्वराडार्षीत्रि० छं०, धातृसवितृप्रजापत्यग्नित्वष्टृविष्णुदेवा देवता हैं। मंत्रार्थ (रातिः, धाता, सविता निधिपाः, प्रजापतिः, देवः, अग्निः, त्वष्टा, विष्णुः, इदं, जुषन्ताम्) दानशील धाता देवता, सविता देवता पद्ममहाशंखादि निधियोंके पालन करने वाले प्रजापति, दीप्यमान अग्निदेवता त्वष्टृदेवता भगवान् विष्णु इस हमारी सकल यजुर्लक्षण हविको सेवन करें और यह देवता (प्रजया, संरराण, यजमानाय, द्रविणं दधात स्वाहा) यजमानसंबन्धी सन्ततिके साथ भली प्रकार रमण करते हुए, यजमानके निमित्त धनपुष्टिको प्रदान करें यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो १७

सुगावो देवाः सदना अकर्म्म य आजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः भरमाणा वहमाना हवी-
ꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥ १८ ॥

इसका अत्रि ऋ० आर्षीत्रि० छं० देवा देवता है। मंत्रार्थ (देवाः ये इदं सवनं जुषाणाः आजग्म वः सदनाः सुगाः अकर्म) हे देवताओं! जो तुम इस यज्ञको सेवन करते हुए इस स्थानमें आये हो तुम्हारे स्थान हमने सुखसे प्राप्त होने योग्य कर दिये हैं (वसवः हवींषि भरमाणाः वहमानाः अस्मै वसूनि धत्त स्वाहा) हे सर्वत्र निवास करने वाले देवताओं! यज्ञसमाप्ति में हवियोंको भरण करने वाले जो रथमें बैठने वाले हैं वे रथोंमें धारण करें जिनके पास रथ नहीं हैं वे स्वयं वहन करते हुए हममें धनोंको धारण करो, यह आहुति सम्यक् प्रकार से आहुत हो ॥ १८ ॥

या ꣳ आवह उशतो देव देवांस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे। जक्षिवा ꣳ सः पपिवा ꣳसः विश्वेभुङ् घर्म्म ꣳस्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥ १९ ॥

इसका अत्रि ऋ० भुरिगार्षी त्रि० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ (अग्ने देव यान् उशतः देवान् आवहः तान् देवान् स्वे सधस्थे प्रेरय) हे अग्ने देदीप्यमान देवता! जिन हविकी कामना करने वाले देवताओं को तुम बुलाकर आए हो, उन देवताओं को अपने २ स्थानोंमें भेजो (विश्वे जक्षिवांसः पपिवांसः च असुं घर्मं स्वः अन्वातिष्ठत स्वाहा) सब तुम सवनीय पुरोडाशादिको भक्षण करते सोमपान करते हुए भी इस समय यज्ञसमाप्तिमें हिरण्यगर्भ प्राणलक्षणवाले वायुमण्डल में आदित्य मण्डलको वा द्युलोकको आश्रय करो इस प्रकार निवेदन कर उनको उनके निज निज स्थानमें प्रेरण करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १९ ॥

वय ꣳ हित्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह। ऋधग्गया ऋधगुताशमिष्ट
प्रजानन्यज्ञमुपयाहि विद्वाँत्स्वाहा ॥ २० ॥

इसका अत्रि ऋ० स्वराडार्षी त्रि० छं० अग्नि दे०। मन्त्रार्थ (अग्ने हि इह अस्मिन् यज्ञे प्रयति होतारं त्वा वयम् अवृणीमहि) हे अग्निदेव! जिस कारण से कि इस हि में इस यज्ञ के प्रवृत्त होने में देवताओं आवाहन करने वाले तुझको हमने व

किया था इसी कारण (ऋधक् अयाः उत ऋधक् अशमिष्ठाः विद्वान् यज्ञं प्रजानन् उपयाहि स्वाहा) समृद्धिपूर्वक तुमने यज्ञ कराया और यज्ञकी वृद्धि देते हुए यज्ञके प्रायश्चित्तको शान्त किया ज्ञानवान् तुम यज्ञको पूर्ण हुआ जान कर अपने स्थानको गमन करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २० ॥

देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित । मनसस्पत इमन्देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः२१

इसका अत्रिऋ० स्वराडार्ष्युष्णिक छं० वनस्पति देवता है। इस मन्त्रकी व्याख्या अ० २ कं० २१ में होगई है ॥ २१ ॥

यज्ञ यज्ञङ्गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिङ्गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकस्सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥ २२ ॥

इसका अत्रि ऋषि भुरिग् साम्न्युष्णिक् छं० यज्ञ दे० मन्त्रार्थ (यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिम् गच्छ स्वाहा) हे यज्ञ! अपनी प्रतिष्ठाके निमित्त विष्णु भगवान्के प्रति गमनको यजमान को फलदानसे प्राप्त करो, अपनी कारणभूत वायुकी क्रियाशक्ति को प्राप्त करो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (यज्ञपतेः) एषः यज्ञः ते सहसूक्तवाकः सर्ववीरः तत् जुषस्व स्वाहा) हे यजमान यह अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ तेरा है जो कि यह यज्ञ ऋग्वेदके सूक्त और सामवेदीय वाक्योंसे युक्त है सोम सवन चरु पुरोडाशादि से पूर्णाङ्ग है उस यज्ञको फल भोगनेके द्वारा सेवन करो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २२ ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुः उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ । अपदे पादा प्रतिधातवे करुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् । नमो वरुणायाधिष्ठितो वरुणस्य पाशः

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। ऋ० १ अत्रि २, ३ का शुनःशेप। छं०१ दैवीज० २ निचृदार्षी त्रि० ३ आसुरी गा० देवता १ रज्जु २, ३ वरुण है। मन्त्रार्थ-हे मेखलारज्जु तुम जलमें पतित होकर (अहिः मा भूः पृदाकुः मा) सर्पाकार मत होना हे कृष्णविषाण तुम अजगररूप मत होना, (वरुण राजा सूर्याय अन्वेतवा उ हि अपदे उरुम् पन्थाम् चकार) वरुण राजाने सूर्यके प्रतिदिन गमन करनेके निमित्त और जिस कारणसे अन्तरिक्ष में विस्तीर्ण मार्ग को किया है इस कारण हमको भी अन्तरिक्ष

में (पादा प्रतिधातवे अकः उत् हृदयाविधः चित् अपवक्ता) चरणनिक्षेप करनेको मार्ग करो, और जो वरुण हृदय के पीड़ा देनेवाले तथा निन्दक के भी तिरस्कार करने वाले हैं (वरुणस्य पाशः अधिष्ठितः वरुणाय नमः) वरुण देवता के पाश अर्थात् बन्धन न करेंगे वरुण देवता के निमित्त नमस्कार हो ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमप आविवेशापन्नपात्प्रतिरक्षन्नसुर्यम् । दमे दमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत्स्वाहा ॥ २४ ॥

इसका अत्रि ऋ०आर्षी त्रि० छं० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने अपान्नपात् अनीकं अपः आविवेश) हे अग्निदेव अंगनशील तुम्हारा अपान्नपात् संज्ञक मुख है उसको जलोंमें प्रवेश करो (दमे दमे असुर्यं प्रतिरक्षन् समिधं यक्षि) उस २ यज्ञ स्थानमें असुरकृत यज्ञविघ्नसे रक्षा करते हुए समिधाके साधन घृतसे संगति करो (अग्ने ते जिह्वा घृतं प्रति उच्चरण्यत् स्वाहा) हे अग्ने तुम्हारी ज्वाला घृतके प्रति उद्यत हो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो २४

समद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सन्त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत्स्वाहा ॥ २५ ॥

इसका अत्रि ऋ० भुरिगार्षी प० छं० सोम देवता है । मन्त्रार्थ—हे सोम ! (यत् ते हृदयम् समुद्रे अप्सु अन्तः त्वा ओषधीः उत आपः संविशन्तु) जो तेरा हृदय समुद्र के जलोंमें भीतर स्थित है, वहाँ तुमको प्रेषित करता हूँ, वहाँ स्थित तुमको औषधियें और जल प्रवेश करें (यज्ञपते यज्ञस्य सूक्तोक्तौ नमोवाके त्वा विधेम स्वाहा) हे यज्ञके पालक सोम ! यज्ञके शोभन वचनोच्चारणमें नमस्कार वचनमें तुमको स्थापन करते हैं यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २५ ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतम्बिभृत । देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छ्रद्धां वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका अत्रि ऋ० है। छं०१ भुरिग् साम्नी बृ०२ निचृद् साम्नी पं० और देवता १ आप २ सोम हैं मन्त्रार्थ—(देवीः आपः वः एषः गर्भः

सुप्रीतं सुभृतं बिभृत) हे दिव्यगुणयुक्त जलो ! तुम्हारा यह सोमकुंभ गर्भस्थानीय है, इस प्रकार इसको प्रीतिपूर्वक पुष्टिपूर्वक धारण करो (देवसोम ते एषः लोकः च तस्मिन् शं वदव परिवदव च) हे देव सोम तुम्हारा यह जल लक्षण वाला स्थान है और इसमें अवस्थित होकर सुखको धारण करो, अर्थात् सुख दो और हमारे सब दुःख दूर कर रक्षा करो ॥ २६ ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुंपुणः । अवदेवैर्देवकृतमेनोयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि देवानाꣳ समिदसि ॥ २७ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका अत्रि ऋ० । छं०१ ब्राह्म्यनुष्टुप् २ याजुष्युष्णिक् और देवता १ यज्ञ २ अग्नि है। मन्त्रार्थ-(अवभृथ निचुम्पुण निचेरुः असि) हे अवभृथ यज्ञविशेष तुम अतिमंद गतिसे गमन करो यद्यपि तुम अत्यन्त गमनशील हो तो भी (निचुम्पुणः देवैः देवकृतं एनः अवयासिषम् मर्त्यैः मर्त्यकृतम् अव देव पुरुराव्णः रिषः पाहि) अति मन्दगतिसे गमन करो प्रकाशवान् हमारी इंद्रियोंसे हविके स्वामी देवताओंमें किया हुआ जो पाप है सो जल में त्यक्त किया, हमारे सहायभूत ऋत्विजों ने यज्ञदर्शनको आए हुए मनुष्योंकी अवज्ञा रूप जो पाप किया है वह भी जलमें त्याग किया। हे अवभृथाख्य यज्ञ बहुत फल देने वाले वचसे हमारी रक्षा करो तुम्हारे प्रसाद से कोई दोष हमको न लगे (देवानां समित् असि) देवताओंकी सम्बन्धवाली समिधा दीप्तिमान् होती है ॥ २७ ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥

इसका अत्रि ऋ० त्र्यवसानामहापंक्ति छ० गर्भ देवता है। मन्त्रार्थ-(दशमास्यः गर्भः जरायुणा सह एजत् यथा अयं वायुः एजति यथा समुद्रः एजति) दश महीनेका पूरा गर्भ गर्भवेष्टन जरायुके साथ चलायमान हो जिस प्रकार यह पवन कंपित होता है जैसे समुद्र अपनी लहरोंसे कंपित होता है (एवं अयं दशमास्यः जरायुणा सह अस्रत्। इसी प्रकार यह दश महीनेका पूर्ण गर्भ जरायुके साथ उदरसे बाहर हो।

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अंगान्यह्रुता यस्य तम्मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका अत्रि ऋ० भुरिगार्ष्यनु० छ० वशादे० है। मंत्रार्थ-(यस्यै ते गर्भः यज्ञियः यस्यै ते योनिः हिरण्ययी यस्य अङ्गानि अहुता तं मात्रा समजीगमम् स्वाहा) जिस श्रेष्ठ लक्षण वाली तेरा गर्भ यज्ञसम्बन्धी है जिस तेरा जन्मस्थान सुवर्ण सदृश शुद्ध है, जिस गर्भके अंग अकुटिल अखंडित और सरल हैं उस गर्भको मातासे भली प्रकार मन्त्र द्वारा सम्मिलित करता हूँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २९ ॥

पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानञ्च धीरः । एकपदीन्द्विपदीन्त्रिपदींश्चतुष्पदीमष्टा-पदीम्भुवनानु प्रथन्ताᳬ स्वाहा ॥ ३० ॥

इसका अत्रि ऋ० आर्षी ज० छ० गर्भ देवता है। मन्त्रार्थ—(पुरुदस्मः विषुरूपः अन्तः धीरः इन्दुः महिमानम् आनञ्च) बहुत दानसे युक्त बहुत रूप वाला उदरमें स्थित बुद्धिशाली सोमसदृश क्लेदनरूप गर्भ तुम गर्भकी महिमाको (भुवना एकपदीम् द्विपदीम् त्रिपदीम् चतुष्पदीम् अष्टापदीम् अनुप्रथन्ताम् स्वाहा) भुवन-समूह एक ब्रह्मवाचक अक्षरवाली, दो पद मनुष्यता-युक्त कर्म उपासनासे प्राप्त होने वाली तीनों वेदसे प्राप्त होने वाली, चारों आश्रम से प्राप्त होने वाली चार वर्ण चार आश्रमसे वा अष्टाङ्गयोग रूप ८ पदसे युक्त विख्यात करो उसको पानेके निमित्त श्रेष्ठ होम हो॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥

इसका गोतम ऋ० आर्षीगा०छ०मरुत् देवता है। मंत्रार्थ-(दिवः विमहसः मरुतः यस्य क्षये पाथा हि सः सुगोपातमः) द्युलोक सम्बन्धी विशिष्ट तेजसे युक्त मरुत् देवता तुमने जिस यजमानके यज्ञस्थानमें सोम-पान किया निश्चय करके वह यजमान बहुत काल तक तुम्हारे द्वारा रक्षित हो ॥ ३१ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञम्मिमिक्षताम् । पिपृतान्नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

इसका मेधातिथि ऋ०। आर्षी गायत्री छं० द्यावापृथिवी देवता है। मन्त्रार्थ (मही द्यौः पृथिवी नः इमम् यज्ञं मिमिक्षताम् भरीमभिः नः पिपृताम्) बड़ा द्युलोक भूलोक हमारे इस यज्ञका अपने २ भागोंसे पूर्ण करे कृपाजल वर्षण करे, हिरण्य धन धान्य पशु प्रजा आदि अनेक वस्तुओं द्वारा जो प्रयोजनीय हों उन २ अपने भागों से हमारा घर पूर्ण करे ॥ ३२ ॥

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सुते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं । सबका मधुश्च्छ० ऋ० है । छं० १ विराडार्ष्यनु०, २ आसुरीगा० ३ आसुर्यनु० और देवता १ इन्द्र २ सोम ३ ग्रह हैं। मन्त्रार्थ (वृत्रहन् ते हरी ब्रह्मणा युक्ता रथं आतिष्ठ ग्रावा ते मनः वग्नुना अर्वाचीनं सुकृणोतु) हे वृत्रघाती इन्द्र ! तुम्हारे हरितवर्ण दोनों अश्व तीन वेद लक्षणवाले 'इन्द्रागच्छ' इत्यादि मन्त्रों से रथमें युक्त हुए हैं इस कारण तुम रथमें आरोहण करो सोमाभिषवमें व्यवहारको प्राप्त हुआ यह पाषाण तुम्हारे मनको सोमाभिषवकी वाणी द्वारा यज्ञके सन्मुख भली प्रकार करो । हे नवमग्रह सोम ! (उपयामगृहीतः असि षोडशिने इन्द्राय त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो सोलह स्तोत्रवाले षोडशीयागमें आहूत इन्द्र देवताके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः षोडशिने इन्द्राय त्वा) हे ग्रह ! वह तुम्हारा स्थान है षोडशीयाग में आहूत इन्द्र देवता के निमित्त तुम को ग्रहण करता हूँ ॥ ३३ ॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिश्चर । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं । सबका मधुश्च्छन्दा ऋ० । छं० १ विराडार्ष्यनु० २ आसुरीगा० ३ आसुर्यनु० और देवता १ इन्द्र २ सोम ३ ग्रह हैं। मन्त्रार्थ (इन्द्र केशिना वृषणा कक्ष्यप्रा हरी हि आयुक्ष्व) हे इन्द्र ! बहुत लम्बी केशर वाले तरुण सेचनमें समर्थ स्थूल अवयव वाले कक्ष्याबन्धन [अश्वोंकी मध्यबन्धन रज्जु] में सुबद्ध दोनों अश्वोंको दृढतापूर्वक निश्चय ही रथमें युक्त करो (अथ सोमपा नः गिराम् उपश्रुतिम् आचर) तदनन्तर सोमपान करते हुए हमारी ऋगादि वेदवाणी को कर्णगोचर करो उपयामेति पूर्ववत् व्याख्या जानो ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणाञ्च स्तुतीरुप यज्ञञ्च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका गोतम ऋ० है। छं०१ विराडार्ष्यनुष्टुप् २ आसुरी गा० ३ आसुर्यनु० और देवता १ इन्द्र २ सोम, ३ ग्रह हैं। मन्त्रार्थ (हरी अप्रतिधृष्टशवसम इन्द्रं इत् ऋषीणाम् स्तुतीः उप वहत च मानुषाणाम् यज्ञम् उप च) हरितवर्णके दोनों अश्व अप्रतिहत बलवाले इन्द्र देवताको ही ऋषियों की स्तुति श्रवण करानेको समीप प्राप्त करते हैं और मनुष्य यजमानोंके यज्ञके समीपमें भी प्राप्त करते हैं (उपयामगृहीतः) पूर्ववत् व्याख्या जाननी ॥ ३५ ॥

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापति प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते च षोडशी ॥ ३६ ॥

इसका विवस्वान् ऋ० भुरिगार्षी त्रि० छ० और इन्द्र देवता है। मंत्रार्थ (यस्मात् अन्यः न जातः अस्ति यः विश्वा भुवनानि आविवेश सः षोडशी प्रजापतिः प्रजया संरराणः त्रीणि ज्योतींषि सचते) जिस पुरुष से दूसरा कोई उत्कृष्ट नहीं प्रादुर्भूत हुआ है जो सम्पूर्ण विश्वलोकोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट है वह सोलह कलात्मक लिंग शरीर से उपहित, जगत् का स्वामी प्रजा रूपसे सम्यक् रमण करता हुआ प्रजा पालनके निमित्त तीन अग्नि वायु सूर्य लक्षण वाले तेजोंको अपने तेजसे उज्जीवित करता है ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षञ्चक्रतुरग्र एतम्। तयोरहमनु भक्षम्भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका विवस्वान् ऋषि है। छ० १ साम्नी त्रि० २ विराडार्ची त्रि० और देवता १ इन्द्र वरुण २ यजमान हैं। मन्त्रार्थ—हे षोडशिग्रह! (सम्राट् इन्द्रः च राजा वरुणः तौ च ते एतम् अग्रे भक्षम् चक्रतुः तयोः भक्षम् अनु अहं भक्षयामि) सम्यक् प्रकार दीप्तिमान् इन्द्र और वरुण राजा इन दोनोंने हे तुम्हारा यह सोम प्रथम भोजन किया था उन इन्द्र और वरुण संबन्धी भक्षको पश्चात् मैं भक्षण करता हूँ (जुषाणा वाग्देवी प्राणेन सोमस्य तृप्यतु स्वाहा) मेरे सेवनसे सरस्वती प्राणदेव के साथ सोम द्वारा तृप्त हो श्रेष्ठ होम हो ॥ ३७ ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिम्मयि पोषम्। उपयामगृहीतोऽस्य

ग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वांस्त्वन्देवेष्वसि वर्चस्वानहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

इस कं०में ४ मंत्र हैं। सबका वैखानस ऋ० है । छं० १ विराट् त्रिपाद् गा०, २ आसुर्युष्णिक् ३ याजु० ज० ४ भुरिगार्षी गा०, देवता १ अग्नि २-३ सोम ४ अग्नि है मन्त्रार्थ (अग्ने स्वपाः मयि रयिम् पोषम् दधत अस्मे सुवीर्यम् वर्चः पवस्व) हे अग्निदेव अच्छे कर्म करने वाले तुम मुझ यजमानमें धन पुष्टि को धारण करो हम ऋत्विगादिको सुन्दर सामर्थ्यसे युक्त ब्रह्मतेज दो । हे प्रथम अतिग्राह्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि वर्चसे अग्नये त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो कान्तिप्रद अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ। हे प्रथम अतिग्राह्यग्रह (एषः ते योनिः वर्चस्विने अग्नये त्वा) यह तुम्हारा स्थान है तेजःप्रद अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ (वर्चस्विन् अग्ने त्वं देवेषु वर्चस्वान् असि अहं मनुष्येषु वर्चस्वान् भूयासम्) हे विशिष्टतेजोयुक्त अग्निदेव ! तुम देवताओंमें अतिदीप्तिमान् हो इस कारण तुम्हारे प्रसादसे मैं मनुष्योंमें कान्तियुक्त अतितेजस्वी होजाऊँ ॥ ३८ ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमूसुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वन्देवेष्वस्योजिष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । सबका कुरुस्तुति ऋ० है छं० १ आर्षी गा० २ आसुर्यनुष्टु० ३ याजुषीत्रि० ४ आर्च्युष्णिक् और देवता १ इन्द्र २, ३ सोम ४ इन्द्र है मंत्रार्थ (इन्द्र ओजसा सह उत्तिष्ठन् चमूसुतम् सोमं पीत्वी शिप्रे अवेपयः) हे इन्द्र ! तुम अपने बलके साथ उठते हुए अधिषवणमें अभिषुत हुए सोमको पान करके अपनी ठोढी और नासिकाको कंपित करो हे द्वितीय अतिग्राह्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि ओजसे इन्द्राय त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो बलवान् इन्द्रदेवकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे द्वितीय अतिग्राह्य ग्रह ! (एषः ते योनिः ओजसे इन्द्राय त्वा) यह तुम्हारा स्थान है बलवान् इन्द्रदेवताकी प्रीतिके निमित्त तुम

को आसादन करता हूँ (ओजिष्ठ इन्द्र त्वं देवेषु ओजिष्ठः असि मनुष्येषु अहं ओजिष्ठः भूयासम्) हे बलवत्तम ! हे इन्द्रदेव ! तुम सब देवताओंमें बलवान् हो, तुम्हारे प्रसाद से मनुष्योंमें मैं अति बलवान् होऊँ ॥३९॥

अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जनाँ२अनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वन्देवेष्वहं भ्राजिष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । सबका प्रस्कण्व ऋ० । छ० १ आर्षी गा० २ आसुरी गा० ३ साम्नीगा०४ आर्षीगा०और देवता १सूर्य २,३ सोम ४ ग्रह है (अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु वि अदृशम् यथा भ्राजन्तः अग्नयः) इस सूर्यकी प्रभाके हेतु सम्पूर्ण पदार्थका ज्ञान करानेवाली सम्पूर्ण किरणें प्राणियोंके अनुगत विशेषकर दीखती हैं जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि सर्वत्र भासती है । हे तृतीय अतिग्राह्यग्रह (उपयामगृहीतः असि भ्राजाय सूर्याय त्वा) उपयामपात्रमें गृहीत हो दीप्तिमान् सूर्यकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ । हे तृतीय अति ग्राह्यग्रह (एषः ते योनिः भ्राजाय सूर्या त्वा, यह तुम्हारा स्थान है दीप्तिमान सूर्य देवकी तुष्टिके निमित्त तुमको इस स्थानमें आसादन करता हूँ (भ्राजिष्ठ सूर्य त्वं देवेषु भ्राजिष्ठः असि मनुष्येषु अहम् भ्राजिष्ठः भूयासम्) हे प्रदीप्त सूर्य तुम सब देवताओं में अतिदीप्तिमान् हो तुम्हारे प्रसादसे मनुष्योंमें मैं अतिशय दीप्तिमान् होऊँ ॥४०॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् । उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥४१॥

इस कं०में ३ मन्त्र हैं, सबका प्रस्कण्व ऋ० । छं० १ निचृदार्षी गा० २ आसुरी गा० ३ साम्नी गा० और देवता १ सूर्य २, ३ सोम हैं । मन्त्रार्थ—(केतवः त्यं जातवेदसं यं देव सूर्यम् विश्वाय दृशा उद्वहंति) प्रभाको हेतु किरणें उस सबके देखने वाले जिस देव सूर्यको समस्त जगत्की दृष्टिके निमित्त उद्वहन करती हैं (उपयामगृहीतः) पूर्ववत् व्याख्या जाननी ॥ ४१ ॥

आजिघ्र कलशम्मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्वोरु धारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ ४२ ॥

इसका कुसुरुबिन्दु ऋ० है। स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् छ०। गौ देवता है। मन्त्रार्थ (महि कलशं आजिघ्र इन्दवः त्वा आविशन्तु सा ऊर्जा पुनः निवर्त्तस्व नः सहस्रं धुक्ष्व) हे पूजनीय गौ! तुम इस द्रोण-कलशको सूँघो यह सोमके सार तुम्हारी नासारन्ध्रमें प्रवेश करें, वह तुम श्रेष्ठ रस दुग्धके साथ फिर हमारे प्रति निवृत्त हो, इस प्रकारसे स्तुतिको प्राप्त हुई तुम हमको सहस्र संख्याके धनसे पूर्ण करो (उरुधारा पयस्वती रयिः पुनः मा आविशतात्) बहुत दूधकी धारावाली दुधारी गायें तथा धन सम्पत्ति फिर हमारे घरको प्राप्त हो ।४२।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेदिते सरस्वति महि विश्रुति। एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम्ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

इसका कुरुबिन्दु ऋ०। आर्षी पं छं० और गौ देवता है। मन्त्रार्थ (इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते अदिते सरस्वति महि विश्रुति अघ्न्ये ते एता नामानि देवेभ्यः सुकृतम् मा ब्रूतात् हे सबसे स्तुति को पाने वाली सबका दृष्टिमें रमणीय यज्ञ में सब मनुष्य जिसका आह्वान करते हैं। देव मनुष्य जिसको कामना करते हैं। जिसको देख आल्हाद होता है, प्रकाशमान पूर्ण अवयव वाली अदीन दुग्धवती महामान्य अनेक प्रकारकी स्तुतिवाली अवध्य मारनेके अयोग्य हे धेनु! तुम्हारे यह अतिशय गुणयुक्त नाम हैं इन नामोंसे आह्वान की हुई तुम देवताओंके निमित्त इस हमारे सुंदर कर्मको और इस कर्म करने वाले मुझको देवताओंसे कथन करो देवता हमारे इस कार्यको जानें ॥ ४३ ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्माँ अभिदासत्यधरङ्गमया तमः उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

इस कं०में ३ मन्त्र हैं, सबका भरद्वाज शास ऋ०। छं० १ भुरिगनु० २ आसुर्युष्णिक् ३ याजुषीज० और देवता १ इन्द्र २, ३ ग्रह है। मन्त्रार्थ—(इन्द्र नः मृधः

विजहि पृतन्यतः नीचा यच्छ यः अभिदासति अधरं तमः आगमय) हे इन्द्र ! हमारे संग्राममें शत्रुओंको विशेषकर जोतो संग्राम की इच्छा कर सेना संग्रह करने वाले शत्रुओंको नीचोंकी समान निग्रह करो जो हमको क्लेश देता है उसको निकृष्ट अंधकाररूप नरकको प्राप्त करो । हे महाव्रतीय इन्द्र ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि विमृधे इन्द्राय त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवता की सन्तुष्टिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे महाव्रतीय इन्द्र ग्रह ! (एषः ते योनिः विमृधे इन्द्राय त्वा यह तुम्हारा स्थान है विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको आसादन करता हूँ ॥४४॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्याहुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४५॥

इस कण्डि० में ३ मन्त्र हैं सबका शास ऋ० छ० १ का भुरि० त्रि० २ का सा० उ० ३ का सा० गा० देवता १ का इन्द्र, २ का ग्रह ३ का लिङ्गोक्त है । मन्त्रार्थ—(अद्या वाजे वाचस्पतिम् मनोजुवं विश्वकर्माणं ऊतये, हुवेम सः विश्वशम्भूः साधुकर्मा नः विश्वानि हवनानि अवसे जोषत्) आज हम महाव्रतीय अन्नके विषयमें वाणियोंके पालक मनकी समान वेग वाले सृष्टिकर्त्ताको रक्षा के निमित्त पुकारते हैं,वह संसारका कल्याण कर्त्ता,सुन्दर कर्म करनेवाला हमारे सकल हवनोंको रक्षाके निमित्त सेवन करे (उपयामगृहीतः असि विश्वकर्मणे इन्द्राय त्वा हे इन्द्रग्रह तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो विश्वकर्मा इन्द्रकी तुष्टिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः विश्वकर्मणे इंद्राय त्वा) यह तुम्हारा स्थान है,विश्वकर्मा इंद्रके निमित्त तुमको आसादन करता हूँ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

इस कं०में ३ मं० हैं। सबका शास ऋ० छं० १ भुरिगा०। त्रि० २ साम्न्युष्णिक् ३ साम्नी गा० और देवता १ इन्द्र २, ३ ग्रह है। मन्त्रार्थ (विश्वकर्मन् वर्धनेन हविषा इन्द्रम् त्रातारं अवध्यम् अकृणोः तस्मै पूर्वीः विशः समनमन्त यथा अयं उग्रः विहव्यः असत्) हे विश्वकर्मन् परमात्मन्! वर्धमान हविष्प्रदान द्वारा वर्द्धनके वाक्योंसे प्रीति करने वाले तुमने इन्द्रको जगत् का रक्षक जिसको कोई न मारसके ऐसा किया इस प्रकार इन्द्रके निमित्त पूर्वकालको प्रजा महर्षि आदि प्रणाम करते हुए, जिस प्रकार से यह इन्द्र वज्र उठा कर अनेक कार्योंमें आह्वानयोग्य हुआ है इसकारण सब प्रणाम करते हैं हे परमात्मन् आपके हविसामर्थ्य से इन्द्रका यह प्रभाव है (उपयामगृहीतः) हे ग्रह! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप् तेभिगरः ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं। सबका देवा ऋ० छं० १ स्वराडार्ची गा०२ सा० गा० ३ आ० गा० ४ दैवी० जग० और सबका अदाभ्य देवता है। मंत्रार्थ हे प्रथम अदाभ्य ग्रह सोम (उपयामगृहीतः असि गायत्रच्छन्दसं त्वा अग्नये गृह्णामि) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो गायत्री छन्दके वरणीय तुमको अग्नि देवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ (त्रिष्टुप्छन्दसं त्वा इन्द्राय गृह्णामि) उपयाम पात्रमें गृहीत त्रिष्टुप्छन्दसे वरणीय तुमको इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ, हे तृतीय अदाभ्य ग्रह! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो (जगच्छन्दसं त्वा विश्वेभ्यः देवेभ्यः गृह्णामि) जगतीछन्दसे वरणीय तुमको सम्पूर्ण विश्वेदेवा देवताओं की प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे अदाभ्य नामसे गृहीत सोम! (अनुष्टुप् ते अभिगरः) अनुष्टुप्छन्द तुम्हारी स्तुति के निमित्त है ॥ ४७ ॥

त्रेशीनान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि कुकुननानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि चन्दनानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि मदिन्तमानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि मधुन्तमानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि शुक्रन्त्वा शुक्र आधूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

इस कं० में ६ मन्त्र हैं । सबका देवा ऋ० छ० १ याजुषीपं० २ याजुषीजं० ३ याजु० त्रि० ४,५ याजु० ज० ६ भुरिग्साम्नी वृ० है । मन्त्रार्थ-हे सोम ! (व्रेशीनां पत्मन् त्वा आधूनोमि कुक्कुतनानाम् पत्मन् त्वा, आधूनोमि भन्दनानां पत्मन् त्वा आधूनोमि इधर उधर धावमान मेघोंके उदरमें वर्त्तमान जो जलके समूह हैं उन सबके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ—हे सोम ! शब्द करते हुए जगत्के कल्याणकारी मेघोंके उदरमें जो जल है उसके वर्षण के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ, हे सोम ! हमको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाले जो मेघोंके उदरमें जल हैं उनके वर्षनेके निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ, हे सोम ! (मदिन्तमानां पत्मन् त्वा,धूनोमि) अत्यन्त तृप्तिकारी जो मेघोंके उदरमें जल हैं उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ (मधुन्तमानां पत्मन् त्वा आधूनोमि) अमृतस्वरूप जो मेघोदक हैं तिनके भूमिपर वर्षने के निमित्त तुझको कंपित करता हूँ-हे सोम (शुक्रं त्वा शुक्रे आधूनोमि अन्हः रूपे सूर्यस्य रश्मिषु) अक्लिष्टकर्मा शुद्ध तुझको शुद्ध अक्लिष्ट कर्मवाले निग्राह्य लक्षणवाले जल में कम्पित करता हूँ दिनके रूप सूर्य की किरणोंसे कम्पित करता हूँ ॥ ४८ ॥

ककुभश्छं रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका देवा ऋ० । छ० १ निचृदार्षी ज० २ याजुषी पं० है और देवता सबका सोम है । मन्त्रार्थ-हे सोम ! वृषभस्य ककुभं रूपं रोचते बृहत् शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः) श्रेष्ठ वर्षणकारी तुम्हारा ककुद् महत् आदित्य लक्षण, रूप प्रदीप्त होता है, महान् शुद्ध आदित्य शुद्ध सोमका पुरोगामी है, सोम ही सोमका पुरोगामी है (ते अदाभ्यं जागृवि यत् नाम तस्मै त्वा गृह्णामि) तुम्हारा अनुपहिंसित जागरणशील जो नाम है उस तुमको ग्रहण करता हूँ (सोम तस्मै ते सोमाय स्वाहा) हे सोम! उस आप सोमरूपके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ४९ ॥

उशिक्त्वन्देव सोमाग्नेः प्रियम्पाथोपीहि वशी त्वन्देव सोमेन्द्रस्य प्रियम्पाथोपीहि सखा त्वन्देव सोम विश्वेषान्देवानाम्प्रियम्पाथोपीहि ॥ ५० ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका देवा ऋषि है । छं० १ आसुर्युष्णिक् २ आसुरी गा० ३ आर्च्युष्णिक् और देवता सबका सोम है । मन्त्रार्थ (देव सोम उशिक् त्वं आग्नेः

प्रियम् पाथः अपीहि) हे सोम देवता ! तुमको पानेकी सब कामना करते है इस कारण तुम अग्निके प्रियखाद्य भावको प्राप्त होओ (देव सोम वशी त्वं इन्द्रस्य प्रियं पाथः अपीहि) देदीप्यमान सोम ! कांतिमान तुम इंद्रके प्रिय अन्नको प्राप्त होओ (देव सोम अस्मत् सखा त्वं विश्वेषां देवानां प्रियं पाथः अपीहि) हे देव सोम हमारे बन्धु तुम सम्पूर्ण विश्वे देवताओंके प्रिय अन्नका प्राप्त होओ ॥ ५० ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन् धरुणम्मात्रे धरुणो मातरन्धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत्स्वाहा ॥ ५१ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका देवा- ऋषि है । छं० १ प्राजापत्या बृ०, २ भुरिगार्च्युष्णिक् और देवता १ पशु, २ अग्नि है । मन्त्रार्थ-हे गोविन्द तुम्हारी (रतिः इह रमध्वम् इह धृतिः स्वधृतिः स्वाहा) रति इस यजमानमें हो, इस यजमानमें तुम रमण करो इस यजमानमें तुम्हारा संतोष हो इसीके स्थानमें स्वकीयोंका संतोष हो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (धरुणः मात्रे धरुणं उपसृजन् मातरं धयन् अस्मासु रायः पोषं दीधरत् स्वाहा) धारण करने वाला अग्नि पृथ्वीके धारण करने वाले अग्निका समीपमें प्राप्त करता हुआ पृथ्वी को पीता हुआ हमको धन पशु पुत्र सुवर्णादिकी पुष्टि प्रदान करे यह आहुति भली प्रकार स्वीकृत हो ॥ ५१ ॥

सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम । दिवं पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

इसका देवा ऋषि, भुरिगार्षी बृ० छं० सोम देवता है । मन्त्रार्थ-उत्तर हविर्द्धान ! तुम (सत्रस्य ऋद्धिः असि ज्योतिः अगन्म अमृता अभूम पृथिव्याः दिवम् अध्यारुहाम देवान् अविदाम ज्योतिः स्वः) यज्ञकी समृद्धिरूप हो तुम्हारे प्रसादसे ही हम यजमान आदित्य लक्षण वाली ज्योतिको प्राप्त होकर मरणधर्मसे रहित होनेकी आशा करते हैं, पृथ्वीसे द्युलोकको आरूढ़ हुए देवगण इन्द्रादि जानें, ज्योतिरूप स्वर्गके देखने जाननेकी आशा करते हैं ॥ ५२ ॥

युवन्तमिद्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपतन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे

चत्तायच्छत्सद्गहनं यदिनक्षत् अस्माकꣳ शत्रून्परिशूर विश्वतो दर्म्मा दर्षीष्ट विश्वतः। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

इस कं०में ३ मंत्र हैं। सबका परुच्छेप ऋ०। छं० १ आर्ष्यनु० २ विराडार्षी बृ०, ३ विरा०प्रा०पं०और देवता १ इन्द्र पर्वत, २ इन्द्र, ३ विराड् पु०। मन्त्रार्थ-(पुरायुधा इन्द्रापर्वता युवं तं तम् इत अपहतं वज्रेण ततम् इत् हतं यः नः पृतन्यात् शूर यत् गहनं दूरे चत्ताय छुत्सत् इनत्तत्) आगे युद्ध करने वाले, शत्रुओंके सन्मुख युद्ध करने वाले इन्द्र और पर्वत तुम दोनों उस उस शत्रुको और विशेषकर हो उस शत्रुका विनाश करो, वज्र नामक अपने तीक्ष्ण आयुधसे उसी शत्रुका विशेष करके विनाश करो, जो शत्रु हमसे सेना द्वारा युद्ध करे, हे शूर हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, जब अत्यंत गम्भीर वनमें दूर वर्त्तमान दूर गये शत्रुके निमित्त कामना करे जब उस दूर गए हुए को प्राप्त कर ले (दर्मा अस्माकं विश्वतः शत्रून् परिदर्षीष्ट) विदारण करने वाला वज्र हमारे सब ओर स्थित सम्पूर्ण शत्रुओं को सब ओरसे विदीर्ण करो (भूर्भुवः स्वः प्रजाभिः सुप्रजा वीरैः सुवीरा पोषैः सुपोषाः स्याम) हे अग्नि वायु सूर्यादि आपके प्रसादसे हम प्रजाओं द्वारा अच्छी प्रजा वाले वीर पुत्रोंसे सुपुत्रवान् उत्कृष्टसम्पत्ति लाभ करके तुम्हारे प्रसादसे सुसम्पत्तिवान् विख्यात हों ॥ ५३ ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः सविता सन्यां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ ५४ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं। सबका वशिष्ठ ऋ०हैं। छं०१,५,६, दैवी जगती २ याजुषी पं०, ३, ४ दैवी पं० हैं। देवता सबका लिङ्गोक्त हैं। मन्त्रार्थ-जिस समय यजमान सोमयाग करनेको प्रवृत्त हो मन मनमें (अभिधीतः परमेष्ठी वाचि व्याहृतायां प्रजापतिः अच्छः इतः अन्धः) सोम चिता किया हुआ, परमेष्ठी होता है, वाणीके उच्चारण करनेमें सोम प्रजापति नामक होता है। जिस कालमें यजमानके अभिमुख प्राप्त हुआ तब अन्ध नाम वाला होता है। सोमके (सन्यां सविता दीक्षायां विश्वकर्मा सोमक्रयण्याम् पूषा) यथाभाग रक्षित होने पर सविता नाम होता है, दीक्षामें सोमका विश्वकर्मा नाम होता है, सोमक्रयणी गौको लानेमें सोम पूषा नामवाला होता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितो सुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः प्रोह्यमाणः ॥ ५५ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं। सबका वशिष्ठ ऋ० है। छं० १ आसुर्यनु०, २ दैवीज०, ३ दैवी बृ०, ४ याजुषी त्रिष्टुप् ५ याजुषी पं० है और सबका देवता लिंगोक्त है। मंत्रार्थ-(क्रयाय उपोत्थितः इन्द्रः च मरुतः च) सोमके क्रयार्थ उपस्थित होनेमें सोम इन्द्र और मरुत् नाम वाला भी होता है (पण्यमानः असुरः क्रीतः मित्रः ऊरौ आसन्नः शिपिविष्टः विष्णुः प्रोह्यमाणः नरन्धिषः विष्णुः) क्रय करनेके समय सोम असुरसंज्ञक है, मोल लिया हुआ सोम मित्रसंज्ञक होता है, यजमानकी गोदीमें स्थित सोम प्राणियोंमें प्रविष्ट विष्णु नाम वाला होता है, शकटमें वहन करते समय सोम, जगत्संहर्त्ता वा जगत्पालक, विष्णु नाम वाला होता है ॥ ५५ ॥

प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुण आसन्द्यामासन्नोग्निराग्नीध्रऽ इन्द्रो हविर्धानेथर्वोपावह्रियमाणो विश्वेदेवाः ॥ ५६ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं। सबका वसिष्ठ ऋ० है। छं० १ दै० पं० २ या०बृ०, ३ दै० पं०, ४ दै० त्रि०, ५ या० बृ० और देवता सबका लिंगोक्त है। मंत्रार्थ-(आगतः सोमः आसन्द्यां आसन्नः वरुणः आग्नीध्रे अग्निः) शकट पर आरूढ सोम, सोम होता है, सोम रखनेके मञ्चमें रक्षित सोम वरुणसंज्ञक होता है, आग्नीध्रमें विद्यमान सोम अग्निसंज्ञक है (हविर्धाने इन्द्रः उपावह्रियमाणः अथर्वः) हविर्धानमें विद्यमान सोम इन्द्रसंज्ञक है, कूटनेको लाया हुआ सोम अथर्व नाम वाला होता है ॥ ५६ ॥

विश्वेदेवा अथंशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपा आप्यायमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थीसक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥

इस कं० में ८ मन्त्र हैं। सबका वशिष्ठ ऋ० है। छं० १ याजुषी बृ० २ आसुरी पं० ३ दैवी त्रि० ४ दैवी ज० ५ दैवी त्रि० ६ दैवी बृ० ७, ८ दैवी पं० है और सबका देवता लिङ्गोक्त है। मन्त्रार्थ-(अंशुषु न्युप्तः विश्वेदेवाः आप्यायमानः आप्रीतपाः विष्णुः सूयमानः यमः सम्भ्रियमाणः विष्णुः) सोमके खण्डोंमें कण्डन करके आरोपित किया

सोम विश्वेदेवा-संज्ञक है, वृद्धिको प्राप्त हुआ सोम सब प्रकार अपने भक्तोंकी रक्षा करने वाला विष्णुसंज्ञक होता है, सोमका अभिषवके समय यज्ञ नाम है, पूयमाण अभिषुत सोम विष्णुरूप है, (पूयमानः वायुः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीः शुक्रः सक्तु मन्थी) पवित्र द्वारा छाना हुआ सोम का नाम है, पवित्र हुआ सोम शुक्र होता है, सोम दुग्ध मिलानेके समय शुक्र होता सक्तुसे मिश्रित सोम मन्थी नामक होता

विश्वेदेवाश्चमसेषून्नीतोसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशंसाः सन्नः सिन्धुः ॥ ५८ ॥

इस कं० में ७ मन्त्र हैं। सबका वसिष्ठ ऋषि है। छं० १ याजु० पं० २ याजुष्यु० ३ या० गा० ४ दैवी पं० ५ दैवी ज० ६ दैवी त्रि० ७ या० बृ० और सबका लिङ्गोक्त देवता है। मन्त्रार्थ—(चमसेषु उन्नतिः विश्वेदेवाः होमाय उद्यतः असुः हूयमानः रुद्रः अभ्यावृतः वातः) ग्रहपात्रोंमें ग्रहण किया सोम विश्वेदेवासंज्ञक है, होम करने को उद्यत हुआ सोम, असुसंज्ञक है, हवन करते समय रुद्रसंज्ञक है, हुतशेष भक्षणार्थ सदोमण्डपमें लाया हुआ वातसंज्ञक है (प्रतिख्यातः नृचक्षाः भक्ष्यमाणः भक्षः सन्नः नाराशंसाः पितरः) हे ब्रह्मन् हुतशेष पान करो इस प्रकार बूझा हुआ सोम मनुष्योंका शुभाशुभ देखने वाला नृचक्ष है, भक्षण करते हुए सोम भक्षसंज्ञक है, भक्षण करनेके अनन्तर खरीपर रक्खा सोम नाराशंस गुणविशिष्ट वा यज्ञहितकारी पितरसंज्ञक होता है ॥ ५८ ॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिते रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा। या पत्येत अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुण पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं, सबका वसिष्ठ ऋ० है। छं० १-२ या० बृ० ३ याजु० गा० ४ निचृदार्षी त्रि० और देवता १-२-३ लिङ्गोक्त ४ विष्णुवरुण है, मन्त्रार्थ-(अवभृथाय उद्यतः सिन्धुः अभ्यवह्रियमाणः समुद्रः प्रप्लुतः सलिलः) अवभृथके निमित्त उद्यत हुआ सोम सिन्धु है, जलके उपर उस ऋजीषकुम्भमें उपस्थित करते समय जलके अभिमुख लेजाया हुआ सोम समुद्र है (ययोः ओजसा रजांसि स्कभिताः यौ वीर्येभिः वीरतमाः शविष्ठाः सहोभिः अप्रतीताः पत्येते पूर्वहूतौ विष्णुवरुणा अगन्

जिन विष्णु और वरुणके प्रभावसे लोक ठहरे हैं, जो विष्णुवरुण अपने बलोंसे अत्यन्त वीर, अत्यन्त बलवान् हैं जो अपने बलोंसे अप्रतिम हैं, लोकत्रयका आधिपत्य करते हैं, उन यज्ञमें प्रथम ही आह्वान किए विष्णु और वरुणके प्रति यह सोम गया ॥५९॥

देवान्दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यङ्कञ्च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ६०

इसका वसिष्ठ ऋषि अत्यष्टि छं० और यज्ञ देवता है। मन्त्रार्थ—(यज्ञः दिवम् देवान् अगन् ततः द्रविणं मा अष्टु) यह यज्ञ द्युलोकमें देवताओंको पहुँचा उस स्वर्गमें स्थित यज्ञसे विशिष्ट भोगका साधन धनरूप यज्ञका फल मुझको प्राप्त हो (यज्ञः मनुष्यान् अन्तरिक्षं अगन् ततः द्रविणं मा अष्टु) स्वर्गसे उतरते समय यह यज्ञ मनुष्यलोकमें आता हुआ वृष्टिरूपसे अन्तरिक्ष लोकमें प्राप्त हुआ तहाँ स्थित यज्ञके फलसे अनेक प्रकारके धनकी प्राप्ति मुझको हो (यज्ञः पितॄन् पृथ्वीं अगन् ततः द्रविणं मा अष्टु) यह यज्ञ धूमादि मार्गसे पितरोंको प्राप्त होकर भूलोकको प्राप्त हो आया उस स्थानमें स्थित यज्ञके फलसे धनादि मुझको प्राप्त हो (यज्ञः यं कं च लोकं अगन् ततः मे भद्रं अभूत्) यह यज्ञ जिस किसी भी लोकको गया हो इसके फलसे मेरा कल्याण हो

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳ स्वधया ददन्ते। तेषाञ्छिन्नꣳ सम्वेतदधामि स्वाहा घर्म्मो अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि ब्रा० उष्णिक् छंद और धर्म देवता है। मंत्रार्थ-(ये चतुस्त्रिंशत् तन्तवः इमं यज्ञं वितत्निरे ये स्वधया ददंते तेषां छिन्नं उ एतत् संदधामि स्वाहा) जो चौंतीस यज्ञका विस्तार करने वाले प्रजापति आदि देवता इस यज्ञको विस्तार देते हैं जो अन्नादि द्वारा पुष्ट करते हैं उन यज्ञके विस्तार करने वाले देवताओंका जो अंश छिन्न हुआ है, उसको इस धर्मपात्रमें संग्रह करता हूँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो, इस घृतसे महावीर संहित हो (घर्मः देवान् अप्येतु) महावीर देवताओंको प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रासो अष्टधा दिवमन्वाततान। स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि स्वराडार्षी त्रि० छ० और यज्ञ देवता है। मन्त्रार्थ-(यज्ञस्य वाहः सः पुरुत्रः विततः अष्टधा दिवं अन्वातान) यज्ञका जो आहुति परिणाम हुआ वह बहुत प्रकारसे विस्तारको प्राप्त होता हुआ आठों दिशाओंमें फैलता हुआ द्युलोक में व्याप्त हुआ है (सः यज्ञः मे प्रजायां मयि धुक्ष्व रायः पोषं विश्वं आयुः अशीय स्वाहा) वह यज्ञ,मुझको सन्ततिमें,महिमाका प्रदान करे, धनकी पुष्टि, सम्पूर्ण अवस्था-रूप आयुको पाऊँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६२ ॥

आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् वाजङ्गोमन्तमाभर स्वाहा ॥ ६३ ॥

इसका कश्यप ऋषि, स्वराडार्षी गा० छ० और सोम देवता है। मन्त्रार्थ (सोम आपवस्व हिरण्यवत् अश्ववत् वीरवत् गोमन्तम् वाजं आभर स्वाहा) हे सोम ! तुम आकर इस यूपस्तम्भको पवित्र करो,सुवर्ण युक्त वीरयुक्त होकर धेनुयुक्त अन्न हमको सब प्रकारसे प्रदान करो, यह आहुति भली प्रकारसे गृहीत हो ॥ ६३ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद अष्टम अध्याय समाप्त।

❀ अथ नवमोऽध्यायः ❀

जिसमें अग्निष्टोम और प्रासंगिक मंत्र हैं ऐसे अष्टम अध्यायमें आदित्यग्रहादि सम्बन्धी मन्त्र कहे। अब नवम अध्यायमें चौंतीसवीं कण्डिका तक वाजपेय यज्ञके मन्त्र कहते हैं।

॥ हरिः ॐ ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञम्प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजन्नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

इसका बृहस्पति ऋ० स्वराडार्षी त्रि० छ० और सविता देवता है। मंत्रार्थ-(देव सवितः यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय प्रसुव) हे दीप्यमान सबके प्रेरक परमात्मन्! वाजपेय यज्ञको प्रवृत्त करो, यजमानको अनुष्ठानरूप ऐश्वर्यके निमित्त, प्रेरणा करो, दिव्यः केतपूः गन्धर्वः नः केतं पुनातु) दीप्यमान अन्नके पवित्र करने वाले, रश्मियोंके धारण करने वाले सूर्यमण्डलमें वर्त्तमान नारायण हमारे अन्नको पवित्र करें (वाचस्पतिः नः वाजं स्वदतु स्वाहा) वाक्यके अधिपति प्रजापति हमारे हविरूप अन्नको आस्वादन करें यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ १ ॥

ध्रुवसदन्त्वा नृषदम्मनःसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदन्त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिवीसदन्त्वान्तरिक्षसदन्दिविसदन्देवसदन्नाकसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

इस कं० में ९ मन्त्र हैं । सबका बृहस्पति ऋ० । छ० १ याजुषी २, ५, ८, सामन्यनु० ३,४,६,९ आसुर्यनु० ७ निचृ० गा० और देवता सबका इंद्र है,मन्त्रार्थ-हे प्रथम ग्रह ! तुम इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त (उपयामगृहीतः असि ध्रुवसदं नृषदं मनःसदं त्वा इन्द्राय जुष्टं त्वा गृह्णामि एषः ते योनिः इन्द्राय जुष्टतमम् त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो. स्थिर इस लोक में स्थित मनुष्योंमें स्थित मनमें स्थित, तुमको इन्द्र देवताके प्रिय तुमको ग्रहण करता हूँ यह तुम्हारा स्थान है इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ हे द्वितीयग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि अप्सुषदम् घृतसदम् व्योमसदम् त्वा इन्द्राय जुष्टं त्वा गृह्णामि एषः ते योनिः इन्द्राय जुष्टतमम् त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो जलमें स्थित, घृतमें स्थित आकाशमें स्थित तुमको इन्द्र देवताके प्रिय तुमको ग्रहण करता हूँ,यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ । हे तृतीय ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः असि पृथिवीसदम् अंतरिक्षसदम् दिविसदं देवसदम् नाकसदम् इन्द्राय जुष्टं त्वा गृह्णामि एषः ते योनिः इन्द्राय जुष्टतमं त्वा) उपयामपात्रमें गृहीत हो पृथिवीमें स्थित अन्तरिक्षमें स्थित द्युलोकमें स्थित देवताओंमें स्थित दुःखरहित देवस्थानमें स्थित तुम हो इन्द्रके प्रिय तुमको ग्रहण करता हूँ. यह तुम्हारा स्थान है इन्द्रके अत्यंत प्रिय तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ २ ॥

अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् । अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥३॥

इसका बृहस्पति ऋ० निचृदा० अ० छ० और रस देवता है । हे चतुर्थ ग्रह ! (सूर्ये समाहिते सन्तं उद्वयसं रसं अपां रसस्य यः रसः तं उत्तमं वः गृह्णामि) सूर्य

में स्थापित विद्यमान समस्त अन्नके उत्पादक जलोंके सारका जो सार है हे देव ताओं ! उस श्रेष्ठ उत्कृष्ट प्रजापतिको ग्रहण करता हूँ शेष पूर्व मन्त्रके समान है ॥३॥

ग्रहा ऊर्ज्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्ज्जꣳ समग्रभमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् सम्पृचौ स्थः सम्माभद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो विमा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥ ४ ॥

इस कं० ५ मन्त्र हैं । सबका बृहस्पति ऋ० है । छ० १ निचृदार्ष्यनु० २,३,आसु० अनु० ४, ५, विराडासुर्यनु० और देवता १, २, ४, ५ का ग्रह ३ इन्द्र है । मन्त्रार्थ- (ग्रहाः ऊर्जाहुतयः, विप्राय मतिं व्यन्तः तेषां विशिप्रियाणां वः इषम् ऊर्ज्जं अहं समग्रभम् गृह्णामि) हे सम्पूर्ण ग्रहों ! अन्नरसका आह्वान करने वाले तुम बुद्धिमान् यजमानके निमित्त विशिष्ट बुद्धिको प्राप्त कराने वाले हो, उन यजमानों के प्रिय, तुम्हारे सम्बन्धी अन्न, रसको, मैं सम्यक् प्रकारसे ग्रहण करता हूँ । हे पञ्चम ग्रह ! (उपयामगृहीतः असि इन्द्राय जुष्टं त्वा एषः ते योनिः इन्द्राय जुष्टतमं त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, इन्द्र देवताके प्रिय तुमको ग्रहण करता हूँ -हे पञ्चम ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है इन्द्र देवताके अतिप्रिय जानकर तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ । हे सोम सुराग्रह जो कि तुम दोनों (संपृचौ, स्थः मा भद्रेण, संपृक्तम्) मिले हुए हो सो तुम दोनों मुझको कल्याणसे संयुक्त करो, हे सोम सुराग्रह ! तुम दोनों (विपृचौ स्थः) वियुक्त हो (मा पाप्मा विपृङ्क्तम्) मुझको पापाचरणसे पृथक् करो ॥ ४ ॥

इन्द्रस्य वज्रोसि वाजसास्त्वयायं वाजꣳ सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरम्महीमदितिन्नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वम्भुवनमाविवेश तस्यान्नो देवः सविता धर्म सावीषत् ॥ ५ ॥

इस कंडिकामें २ मंत्र हैं, सबका बृहस्पति ऋ०, छ० १ आसु० गा०, २ विराडति ज० और देवता १ का रथ २ पृथिवी सविता हैं मन्त्रार्थ- हे रथ ! तुम (वाजसाः इन्द्रस्य वज्रः असि अयं त्वया वाजं सेत्) अन्न देनेवाले हो इन्द्रके वज्र हो यह यजमान तुम्हारी वज्रतुल्य सहायतासे अन्नको प्राप्त हो । (वाजस्य प्रसवे नु मातरं

अदिति महीं नाम वचसा करामहे) अन्न के अनुज्ञामें वर्त्तमान हम जिस माता जगत् को निर्माण करने वाली अदीन पूजनीय प्रसिद्ध भूमिको वेदवाक्यों द्वारा अनुकूल करते हैं (यस्यां इदं विश्वं भुवनं आविवेश देवः सविता तस्यां न धर्मं साविषत्) जिसमें यह संपूर्ण संसार प्रविष्ट है प्रकाशात्मक सबके प्रेरक परमात्मा तिस भूमि में हमारी दृढ़ धारणाकी प्रेरणा करें ॥ ५ ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः। देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान्वावाजसास्तेनायं वाजꣳसेत् ॥ ६ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं। सबका बृहस्पति ऋ०छ० १ विराडार्ष्यु० २ निचृ० प्रा० प० है और देवता १ अश्व २ आप है मन्त्रार्थ-(अप्सु अन्तः अमृतं उत् अप्सु भेषजं अश्वा वाजिनः भवत अपां प्रशस्तिषु) जलोंके मध्यमें अमृत स्थित है और जलोंके मध्यमें आरोग्य और पुष्टिकारक औषधि स्थित है, हे अश्वों इस प्रकारसे अमृत भेषज युक्त जलोंमें वेगवान् होओ तथा जलोंके प्रशस्त भागोंमें स्नान के निमित्त प्रवेश करो। (देवीः आपः वः यः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान् वाजसाः ऊर्मिः तेन अयम् वाजम् सेत्) हे दीप्यमान जलों ! तुम्हारी जो शीघ्र चलने वाली ककुद् के समान ऊँची अन्नको देने वाली तरंगे हैं, उनसे सिक्त हुआ यह अश्व यजमानके इच्छितानुरूप अन्नको देनेमें समर्थ हो ६

वातो वामनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः। ते अग्नेश्वयुञ्जꣳस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ७

इसका बृहस्पति ऋ० भुरिगार्ष्यु०छ० अश्व देवता है। मन्त्रार्थ-(वातः वा मनः वा सप्तविंशतिः गन्धर्वाः ते अग्ने अश्व अयुञ्जन् ते अस्मिन् जवं आदधुः) वायु या मन या सत्ताईस गन्धर्व भूमिके धारण करने वाले नक्षत्र वे सब वातादि के प्रथम अश्वको रथमें युक्त करते हुए वे हो इस अश्व में अपने २ वेगके अंशको धारण करते हुए

वातरꣳहा भव वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि। युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवन्दधातु ॥ ८ ॥

इसका बृहस्पति ऋ० भुरिगार्षी त्रि० छ० अश्व देवता है। मन्त्रार्थ- वाजिन् युज्यमानः वातरंहाः भव दक्षिणः इन्द्रस्य इव श्रिया एधि विश्ववेदसः मरुतः त्वा

युञ्जन्तु त्वष्टा ते पत्सु जवं आदधातु) हे वेगवान् अश्व ! जुते हुए तुम वायुके समान वेगवान् हूजिये दक्षिण भाग में स्थित हुए इन्द्रके अश्वकी समान शोभासे युक्त होओ, सर्वज्ञ मरुत् देवता तुम रथमें नियुक्त करें त्वष्टा देवता तुम चरणोंमें वेगको स्थापन करें ॥ ८ ॥

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते । तेन नो वाजि बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाज॰मरि ष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं सबका बृ० ऋ० है । छ० १ आ० ज० २ आर्षी गायत्री और सबका देवता अश्व है । मन्त्रार्थ- (वाजिन् यः ते जवः गुहानिहितः यः श्येने परीतः च वाते अचरत् वाजिन् तेन बलेन बलवान् नः वाजजित् च समने पारयिष्णुः) हे अश्व ! जो तेरा वेग हृदयमें स्थापित है, जो श्येन पक्षीमें तुम्हारा दिया वेग है और वातमें जो वेग स्थित है । हे अश्व ! उस बल करके बलवान् होते हुए हमारे निमित्त अन्नके जीतने वाले होओ और संग्राममें शत्रुके सेनानिवेशका पार भव करके हमारे निमित्त प्रचुर अन्न जीतो (वाजजित् वाजं सरिष्यन्तः वाजिनः बृहस्पतेः भागं अवजिघ्रत) अन्नके जीतने वाले अन्नके प्रति जातेहुए हे अश्वो ! बृहस्पतिके भाग चरुको सूँघो ॥ ९ ॥

देवस्याह॰सवितुः सवेसत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमन्नाक॰रुहेयम् । देवस्याह॰ सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाक॰ रुहेयम् । देवस्याह॰ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमन्नाकमरुहम् । देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकमरुहम् ॥ १०

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं । सबका बृह० ऋ० छ० १ निचृ० बृ० २ साम्नीज० ३ आर्ची बृ० ४ भुरिग्ब्रा०ज० और सबका लिङ्गोक्त देवता है । मन्त्रार्थ-(सत्यसवसः सवितुः देवस्य सवे अहं बृहस्पतेः उत्तमम् नाकं रुहेयम्) सत्यप्रेरक सविता देव की अनुज्ञामें वर्त्तमान मैं बृहस्पति-संबंधी श्रेष्ठ स्वर्गमें आरोहण करूँ (सत्यसवसः सवितुः देवस्य इन्द्रस्य उत्तमं नाकं रुहेयम्) अनुल्लंघनीय प्रेरणा वाले सविता

देवकी अनुज्ञामें वर्त्तमान मैं इन्द्रसम्बन्धी उत्कृष्ट स्वर्गकामनासे चक्र पर आरोहण करता हूँ। (सत्यसवसः सवितुः देवस्य सवे अयं बृहस्पतेः उत्तमं नाकं अरुहम्) अनुल्लंघनीय प्रेरणा वाले सवितादेवकी प्रेरणावश मैं बृहस्पतिके उत्कृष्ट स्वर्गकी कामनासे इस रथचक्र पर आरूढ हुआ (सत्यसवसः सवितुः देवस्य सवे अहं इन्द्रस्य उत्तमं नाकं अरुहम्) अनुल्लंघनीय सवितादेवताकी आज्ञामें वर्त्तमान मैं इन्द्रके उत्कृष्ट स्वर्ग लाभकी कामनासे इस चक्रमें चढा हूँ ॥ १० ॥

बृहस्पते वाजञ्जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजञ्जापयत । इन्द्र वा जञ्जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजञ्जापयत ॥ ११ ॥

इस कं०में २ मंत्र हैं। सबका बृहस्पति ऋ० छं०१ प्राजा० त्रि० २ प्राजा० बृ० और देवता बृह०, २ इन्द्र है। मन्त्रार्थ-हे दुन्दुभियों ! तुम (बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतिं वाजम् जापयत) बृहस्पतिके निमित्त इस प्रकार वचनको कहो हे बृहस्पते ! तुम अन्नको जय करो हे दुंदुभियों ! तुम बृहस्पतिको अन्न जय कराओ हे दुन्दुभियों तुम (इन्द्राय वाचं वदत इन्द्रं वाजं जय इन्द्रं वाजं जापयत) इंद्रके निमित्त इस प्रकार वाणीको कहो हे इन्द्र अन्नको जीतो तुम भी इन्द्रको अन्न जय कराओ॥

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यद्ध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यद्ध्वम् ॥ १२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका बृह० ऋ० छं० १ ब्राह्मयु०२ ब्राह्मो० गायत्री और देवता सबका दुंदुभि है। मन्त्रार्थ-हे दुंदुभियों (वः एषा सा वाक् सत्या समभूत् ययां बृहस्पतिं वाजं अजीजपत बृहस्पतिं वाजं अजीजपत वनस्पतयः विमुच्यद्ध्वं) तुम्हारी यह वह वाणी सत्य हुई, जिससे बृहस्पतिको अन्न जय कराया, हे वनस्पति काष्ठनिर्मित दुन्दुभियों, अब कृतकृत्य होकर अनुमति दो, बृहस्पतिका रथ धावमान हो हे दुन्दुभियों ! (वः एषा सा वाक् सत्या समभूत्) तुम्हारा दिया हुआ वह आशीर्वादरूप वचन सत्य हुआ (यया इन्द्रं वाजं अजीजपत) जिससे इन्द्रको अन्न जय कराया (इन्द्रं वाजम् अजीजपत वनस्पतयः विमुच्यद्ध्वम्) इन्द्रको अन्नजय कराया हे काष्ठनिर्मित वनस्पतियो, अब कृतकृत्य होकर अनुमति दो यजमानका रथ धावमान हो

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजञ्जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वनस्कभ्नुवन्तो योजना मिमानः काष्ठाङ्गच्छत ॥ १३ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका बृह० ऋ० है । छं० १ आर्षी बृ० २ साम्नी जग० और देवता १ लिङ्गोक्त २ अश्व है । मंत्रार्थ (सत्यसवसः सवितुः देवस्य सवे अहं वाजजितः बृहस्पतेः वाजं जेषम्) सत्य आज्ञा वाले सबके प्रेरक सवितादेवके अनुज्ञामें वर्त्तमान मैं, अन्न जीतने वाले बृहस्पति सम्बन्धी अन्नको जय करूँ (वाजिनः वाजजितः अध्वनः स्कभ्नुवंतः योजनाः मिमानाः काष्ठाम् गच्छत) हे घोड़ो ! अन्नके जीतने वाले तुम मार्गोंको क्षुभित करते योजनोंको अति शीघ्रतासे गमन करते हुए अठारह निमेषमें प्राप्त होते हो ॥ १३ ॥

एष स्य वाजी क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपि कक्ष आसनि । क्रतुन्दधिक्रा अनु सꣳ सनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत्स्वाहा ॥ १४ ॥

इसका दधिक्रावा ऋ० है आर्षीज० छं० अश्व देवता है । मन्त्रार्थ-(एषः वाजी यः ग्रीवायां कक्षे आसनि अपि बद्धः सः दधिक्राः क्रतुं अनु संसनिष्यदत) यह घोड़ा जो ग्रीवामें कक्षमें मुखमें बँधा हुआ है, वह यह अश्ववार को लेकर मार्ग अवरोधक पाषाण गर्त कण्टकादि का भी आक्रमण करने वाला रथीके अभिप्रायको जान कर उसके अनुसार सम्यक् अनुसन्धान करता हुआ (पथां अङ्कांसि अन्वापनीफणत् क्षिपणिम् तुरण्यति स्वाहा) मार्गोंके ऊँचे नीचे चिह्नोंका, अति शीघ्रगतिसे सम करता, चाबुकके आघातकी अपेक्षा न करके भी किंचित् इंगितसे, शीघ्र धावमान होता है, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥१४॥

उतस्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णन्न वेरनु वाति प्रगर्द्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसंपरि दधिक्राव्णः सहोर्ज्जातरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

इसका दधिक्राव्ण ऋ० आर्षीज० छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ (अस्य दधिक्राव्णः द्रवतः तुरण्यतः प्रगर्द्धिनः श्येनस्य इव ध्रजतः ऊर्जा सह तरित्रतः उतस्म अंकसं परि अनुवाति नः वेः पर्णम्) इस अद्रिपाषाणगर्त कण्टकादि का अतिक्रमण करे

हुए गमन करने वाले शीघ्रतासे अवधिको प्राप्त होने वाले श्येन पक्षीकी समान वेगसे गमन करते बलके साथ, अतिशय मार्गको लाँघते भी, इस अश्वके शृङ्गार चिह्न वस्त्र चामरादि संपूर्ण देहमें वर्त्तमान होते, जाते हुएमें लक्षित होते हैं, जिस प्रकार पक्षीके पंख दिखाई देते हैं ॥ १५ ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० भुरिगार्षी पं० छं० अश्व देवता है मन्त्रार्थ-(देवताता हवेषु मितद्रवः स्वर्काः अहिं वृकं रक्षांसि जंभयंतः वाजिनः नः शं भवंतु अस्मत्सनेमि अमीवाः युयुवन्) देवताओंके कार्यके निमित्त यज्ञ में आह्वान करनेपर परिमित धावमान होने वाले श्रेष्ठ प्रकाशवाले सर्प भेड़िये राक्षसों को नाश करते हुए घोड़े हमारे कल्याणको करनेवाले हों, हमसे सब प्रकार की दीर्घकालको व्याधियोंको पृथक् करें ॥ १६ ॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥ १७ ॥

इसका नाभा नेदिष्ट ऋ० आर्षी ज०, छ० अश्व देवता है । मन्त्रार्थ—ते विश्वे मितद्रवः हवनश्रुतः अर्वन्तः सहस्रसाः मेधसाता सनिष्यवः वाजिनः नः हवम् शृण्वंतु ये समिथेषु महः धनं जभ्रिरे) वे सम्पूर्ण यजमानके चित्तके अनुसार मितगामी, हमारे आह्वानको सुनने वाले, कुटिल गति वाले, अनेक जनोंको तृप्त करने वाले यज्ञशालाके पूरक घोड़े हमारे आह्वानोंको श्रवण करें, जो संग्रामोंमें बड़े धनको ले आते हैं १७

वाजे वाजे वत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः अस्य मद्ध्वः पिबत मादयद्ध्वन्तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० निचृदार्षी त्रि० छ० अश्व देवता है । मन्त्रार्थ (वाजिनः विप्राः अमृताः ऋतज्ञाः वाजे वाजे धनेषु नः अवत अस्य मध्वः पिबत मादयध्वम् देवयानैः पथिभिः यात) हे अश्वो ! तुम बुद्धिमान् दीर्घजीवी, सत्य सम्पूर्ण अन्न और धनों में हमारी पालना करो, इस धावमान होने से पहिले नौवार सूँघेहुए मधुर लक्षण हवि को पान करके, तृप्त होजाओ तृप्त होकर, देवयानमें अधिष्ठित मार्गोंसे गमन करो १८

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावा पृथिवी विश्वरूपे । आ मागन्ताम्पितरा मातरा चामा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सस्रुवाꣳसो बृहस्पतेर्भाग-मवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

इस क० में २ मन्त्र हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छ० १ निचृदार्षी त्रि० २ प्राजापत्या त्रि०और देवता-१ प्रजापति २ अश्व है । मन्त्रार्थ -(वाजस्य प्रसवः मा आजगम्यात् इमे विश्वरूपे द्यावा पृथिव्यौ आ पितरामातरा मा आगन्ताम् च सोमः अमृतत्वेन मा आगम्यात्) अन्न की उत्पत्ति हमारे घरमें आगमन करे, यह सर्वरूपात्मक स्वर्ग और पृथ्वी सब प्रकार, हमारे माता पितारूप हमारे रक्षण और प्रतिपालन को आवें और सोम अमृतभाव से हमारे प्रति प्राप्त हो ।(वाजिनः वाजजितः वाजं ससृवाꣳसः निमृजानः बृहस्पतेः भागं अवजिघ्रत) हे अश्वो ! अन्नके जीतने वाले अन्नके जीतनेको प्रतिक्षण गमन करनेवाले इस चरु वा यजमानको शोधन करते हुए बृहस्पतिसंबंधी हमारे भागको सूँघो ।१९।

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं में १२ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छ० १, २, ४, ५ दैवीपं० ३ या० गा० ६,७,१२ याजुष्युष्णिक् ८ याजुषी पं० ९ याजुषी त्रि० १०, ११ याजुषी बृहती है और सबका प्रजापति देवता है । मन्त्रार्थ (आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा अपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहा अहर्पतये स्वाहा मुग्धाय अह्ने स्वाहा वैनꣳशिनाय मुग्धाय स्वाहा) व्यापक सम्वत्सर कालात्मक आदित्य प्रजापति देवताके प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है यह भली प्रकार गृहीत हो सर्वव्यापी प्रजापतिके निमित्त, आहुति पुनः पुनः प्रकट होने वाले के निमित्त आहु० संकल्प भोगादि विषय निमित्त आहु० जगत्के स्थिति कारण के निमित्त आहु० दिवस के निमित्त आहु० विनाशशील मुग्धनामकके निमित्त श्रेष्ठ होम० (आन्त्यायनाय विनꣳशिने स्वाहा भौव-

नाय अन्त्याय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा अधिपतये स्वाहा) सीमावान् विनाशशील नामकके निमित्त श्रेष्ठ हो० त्रिभुवनको सीमावान्के निमित्त, आहुति सम्पूर्ण भुवन के पतिके निमित्त आहुति, समस्त प्राणिवर्ग की उत्पत्ति स्थित विनाशमें समर्थके निमित्त यह आहुति भली प्रकार दीजाती है सम्यक् स्वीकार हो ॥ २० ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्प्राणो यज्ञेन कल्पताञ्चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम

इस कं० में ९ मन्त्र हैं। सबका वशिष्ठ ऋ० है। छ० १ से ९ का प्राजा० गा०, ७ याजु० बृ० ८ दैवी त्रि० ९ या० गा० और देवता १—६ का प्रजापति ७ यजमान ८ यज० ९ यज्ञ है । मन्त्रार्थ-(यज्ञेन आयुः कल्पताम् यज्ञेन प्राणः कल्पताम् यज्ञेन चक्षुः कल्पताम् यज्ञेनं श्रोत्रं कल्पताम् यज्ञेन पृष्ठं कल्पतां यज्ञेन यज्ञं कल्पताम्) इस वाजपेय यज्ञके फलसे हमारी आयु वृद्धिको प्राप्त हो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे पाँचों प्राण वृद्धिबलको प्राप्त हों, इस यज्ञके फल से चक्षुरिंद्रिय सामर्थ्यको प्राप्त हो इस यज्ञ के फलसे श्रोत्र इन्द्रियका बल वृद्धिको प्राप्त हो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे हमारा पृष्ठ बल वृद्धिको प्राप्त हो इस वाजपेय यज्ञके फलसे यज्ञके अधिष्ठात्री देवता विष्णु तथा यज्ञ करनेकी क्षमता, वृद्धिको प्राप्त हो हम (प्रजापतेः प्रजा अभू०) प्रजापतिकी संतति हुए। हे ऋत्विग्गण (स्वः अगन्म अमृता अभूम) हमने स्वर्गलाभ, प्राप्त किया है हम दीर्घायु अमर चिरकीर्त्ति वाले हुए ॥२१॥

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयन्ते राड्यन्तासि यम नो ध्रुवोसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका वसिष्ठ ऋ० है। छ० १ निचृदार्षी गा० २ सामन्युष्णिक ३ दैवी बृहती ४ निचृदार्षी बृ० है और देवता-१ दिशा २ पृथिवी ३ आसंदी ४ यजमान हैं। मन्त्रार्थ-हे दिक चतुष्टय (वः इन्द्रियं अस्मे अस्तु नृम्णं अस्मे उत वः क्रतुः वर्चांसि अस्मे सन्तु) तुम्हारे सम्बन्धी, वीर्य हमारे विषयमें हों तुम्हारा संबंधी धन हमको प्राप्त हो और तुम संबंधी यज्ञ कर्म तथा तुम्हारे सम्बन्धी तेज हमारे

विषय हों अर्थात् इस जगतमें हम सबसे अग्रगण्य हों। (मात्रे पृथिव्यै नमः नमो मात्रे) मातारूप पृथिवीके निमित्त नमस्कार है, पृथिवीको नमस्कार है। हे आसन्दी! (इयं ते राट्) यह तुम्हारा राज्य है। हे यजमान! तुम (यन्ता असि यमनः ध्रुवः धरुणः असि कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा) सबके नियमन करने वाले हो, स्वयं संयमन करता स्थिर धारक हो कृषिकार्यकी उन्नतिके निमित्त तुमको राज्यकी शान्ति पूर्णताके निमित्त तुमको धन सम्पत्तिके वर्धनार्थ तुमको प्रजापालन के निमित्त तुमको इस स्थानमें उपवेशन कराते हैं ॥ २२ ॥

वाजस्येमम्प्रसवः सुषुवेग्रे सोमꣳराजानमोषधीष्वप्सु। ताऽअस्मभ्यम्मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० सुराडार्षी त्रि० छं० प्रजापति देवता है। मन्त्रार्थ—(वाजस्य प्रसवः, अग्ने, ओषधीषु, अप्सु, इमं, सोमं राजानं सुषुवे) अन्नके उत्पन्न करनेवाले प्रजापतिने सबसे प्रथम आदिसृष्टिमें ओषधी और जलोंके मध्यमें इस सोमवल्ली रूप दीप्तिमान् पदार्थको उत्पन्न किया है (ताः अस्मभ्यं मधुमतीः भवन्तु पुरोहिताः वयं राष्ट्रे जागृयाम) वे सोम उत्पादक ओषधी जल हमारे निमित्त, रसवाली माधुर्यसे युक्त हों याग अनुष्ठानादिमें प्रधान हम उनसे अभिषिक्त होकर, अपने राज्यमें सर्वसाधारणके हितकारी होकर अप्रमत्त होकर कालयापन करें ॥ २३ ॥

वाजस्येमाम्प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्। अदित्सन्तन्दापयति प्रजानत्स नो रयिꣳ सर्व्ववीरन्नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० आर्षीजगती छं० प्रजापति देवता है। मन्त्रार्थ-(वाजस्य प्रसवः इमां दिवं इमा विश्वा भुवनानि शिश्रिये) इस समस्त अन्नके उत्पन्न करने वाले परमात्माने इस द्युलोकको इन संपूर्ण भुवनोंको सृजन किया है (सः सम्राट् अदित्सन्तम् प्रजानन् दापयति नः सर्ववीरम् रयिं नियच्छतु स्वाहा) वह सबका अधिपति हवि देनेकी अनिच्छा वाले मुझको जानता हुआ मेरी बुद्धिमें प्रेरणा कर मुझसे आहुति दिलवाता है हमारे निमित्त सब पुत्रभृत्यादिसे युक्त धनको हमें प्रदान करे, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥

वाजस्य नु प्रसव आबभूवे मा च विश्वाभुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति विद्वान्प्रजाम्पुष्टिं वर्द्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० सुराडार्षी त्रि० छ० और प्रजापति देवता है । मन्त्रार्थ- (नु वाजस्य प्रसवः इमा विश्वाभुवनानि सर्वतः आबभूव च सनेमि विद्वान् राजा अस्मे प्रजां पुष्टिं वर्धयमानः स्वाहा) कैसे विस्मयकी बात है अन्नके सृजनेवाले प्रजापतिने इन सम्पूर्ण भुवनोंको सब ओर से ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त उत्पन्न किया है और पुरातन सब कुछ जानने वाला दीप्तिमान् हमारे निमित्त सन्तति धन पुष्टिको वृद्धि को प्राप्त होता हुआ है, उसके निमित्त यह आहुति दी जाती है ॥ २५ ॥

सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिं स्वाहा ॥ २६ ॥

इसका तापस० ऋ० आर्ष्यनु० छ० सोमादय देवता है । मन्त्रार्थ-जो सम्पूर्ण अन्नके उत्पादक हैं जिन प्रजापतिने हमारे (अवसे राजानं सोमं अग्निं आदित्यान् सूर्यं बृहस्पतिं च अन्वारभामहे स्वाहा) प्रतिपालनार्थ राजा सोमको वैश्वानर अग्नि का बारह आदित्योंको ब्रह्माको बृहस्पति को भी नियुक्त किया है, आह्वान करते हैं, उसके उद्देश्यसे दी हुई आहुति सम्यक् गृहीत हो ॥ २६ ॥

अर्य्यमणम्बृहस्पतिमिन्द्रन्दानाय चोदय । वाचं विष्णुꣳसरस्वतीꣳ सवितारञ्च वाजिनꣳ स्वाहा ॥ २७ ॥

इसका तापस ऋ० । स्वराडार्ष्यनु० छ० अर्यमाद्या देवता है । मन्त्रार्थ-हे परमात्मन् ! तुम (अर्यमणं बृहस्पतिं इन्द्रं वाचं सरस्वतीं विष्णुं वाजिनम् दानाय चोदय स्वाहा) अर्यमा देवताको बृहस्पति को इन्द्रको वाणीकी अधिष्ठात्री सरस्वती को सबके प्रसवकर्त्ता सूर्यको जो कि-यह सब देवता अन्नके देने वाले तुमने सृजे हैं इनको धनप्रदानके निमित्त प्रेरणा करा, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो जो तुम्हारी प्रीतिके उद्देश्यसे देते हैं ॥ २७ ॥

अग्ने अच्छावदेह नः प्रति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदा असि स्वाहा ॥ २८ ॥

इसका तापस ऋ० भुरिगार्ष्यनु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने! (इह नः अच्छावद नः सुमनाः भव सहस्रजित् हि त्वं धनदाः असि नः प्रयच्छ स्वाहा) हे अग्निमें अधिष्ठित देव! इस यज्ञमें हमारे हितको सन्मुख आकर कहो हमारे प्रति करुणार्द्रचित्त हो, हे सबके जीतने वाले! जिस कारणसे तुम स्वभावसे धनके देने वाले हो, इस कारण हमको धन दीजिये तुम्हीं एकमात्र प्रार्थना पूर्ण करनेमें समर्थ हो, इस कारण इस आहुतिसे हमारी प्रार्थना स्वीकार करो, यह आहुति भली-प्रकार गृहीत हो ॥ २८ ॥

प्र नो यच्छत्वर्यमाप्यपूषाप्यबृहस्पतिः । प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका तापस ऋ० भुरिगार्षी गा० छ० वागादय देवता है। मन्त्रार्थ-हे परमात्मन् आपके प्रसादसे (अर्यमा नः प्रयच्छतु पूषा प्र बृहस्पतिः प्र देवी वाक् नः ददातु अर्यमा देवता हमारे निमित्त अभीष्ट प्रदान करे, पूषा देवता अभीष्ट प्रदान करे, बृहस्पति अभीष्ट प्रदान करे, सरस्वती वाणीकी अधिष्ठात्री हमारे निमित्त अभीष्ट दान करे

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ठा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

इसका तापस ऋ० आर्षी जग० छ० सम्राट् देवता है । मन्त्रार्थ—(सवितुः देवस्य प्रसवे त्वा अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां बृहस्पतेः साम्राज्येन अभिषिञ्चामि) सविता देवताकी प्रेरणावश होकर तुझको अश्विनीद्वयकी भुज-युगल पूषा देवताके हाथोंसे बृहस्पतिके साम्राज्यभाव से अभिषेक करता हूँ. हे यजमान! (त्वा सरस्वत्यै यन्त्रिये दधामि वाचः यन्तु असौ) तुमको सरस्वती के ऐश्वर्य में स्थापन करता हूँ, तुमको वाणी वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती नियमन करे, अमुक नाम यजमानको अभिषेक करता हूँ यहाँ यजमानका उच्चारण करे ॥ ३० ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतान्ता-

नुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥ ३१ ॥

इस कण्डिकामें ४ मन्त्र हैं। सबका तापस ऋ० है। छं० १, ३ निचृदार्षी गा० वा साम्नी बृ० २, ४ साम्नी त्रि० और सब का दे० लिङ्गोक्ता है। मन्त्रार्थ-(अग्निः एकाक्षरेण प्राणं उदजयत् तं उज्जेषं अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदः मनुष्यान् उदजयताम् तान् उज्जेषं) अग्निदेवताने एकाक्षरके प्रभावसे उत्कृष्टरूप प्राणको जय किया है मैं भी उस प्राणको एकाक्षरके प्रभावसे जय करूँ अश्विनीकुमारने दो अक्षर वाले छंदके प्रभावसे दो पद वाले मनुष्योंको उत्कृष्टरूपसे जय किया है, मैं भी दो अक्षरके प्रभावसे उन मनुष्योंको जय कर सकूँ। (विष्णुः त्र्यक्षरेण त्रीन् लोकान् उदजयत् तान् उज्जेषम् सोमः चतुरक्षेण चतुष्पदः पशून् उदजयत् तान् उज्जेषम्) विष्णुदेवने तीन अक्षरके छंदसे तीन लोकोंको जय किया मैं भी उनके प्रभावसे उन तीन लोकोंको जय करूँ, सोम देवताने चतुरक्षर मन्त्रके प्रभावसे पादचतुष्टयात्मक पशुओंको जय किया है, मैं भी उसके प्रभावसे उनको जय करूँ ॥ ३१ ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्तानुज्जेषम्मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान्पशूनुदजयꣳस्तानुज्जेषम्बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं। सबका तापस ऋ० है। छं० १, २ निचृत्साम्नी। पं०, ३ साम्नी त्रि० ४ साम्नी पं० और दे० सबका लिंगोक्ता है। मन्त्रार्थ-(पूषा, पंचाक्षरेण, पञ्च दिशः उदजयत् ताः उज्जेषं) पूषा देवताने पचाक्षर छंदके प्रभावसे पाँच दिशा (एक ऊपर की) उत्कृष्टरूपसे जय कीं उसी के प्रभावसे मैं, उन दिशाओंको जय करूँ (सविता षडक्षरेण, षट् ऋतून् उदजयत् तान् उज्जेषं) सविता देवताने षडक्षर छंद के प्रभाव से, छः ऋतुओंको उत्कृष्टरूपसे जय किया, उसीके प्रभावसे उन ६ ऋतुओंको मैं जय करूँ (मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान् पशून् उदजयन् तान् उज्जेषम् बृहस्पतिः अष्टाक्षरेण गायत्रीं उदजयत् तां उज्जेषम्) मरुत् देवताने सप्ताक्षर मन्त्रके प्रभावसे, सात ग्राम्य गवादि पशुओंको जय किया,

मैं भी उनको जीतूँ। बृहस्पतिने अष्टाक्षर मन्त्रके प्रभावसे,गायत्री छन्दके अभिमानी देवताको वशीभूत किया मैं भी उसके प्रभाव से, उसको वशीभूत करसकूँ ॥ ३२ ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत॑ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं॑ वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयंस्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका तापस ऋ० है। छ०-१ प्रा० वृ० २ निचृ० सा० बृ०, ३ सा० पं० ४ आर्ष्युं० और सबका देवता लिंगोक्ता है। मन्त्रार्थ-(मित्रः नवाक्षरेण,त्रिवृतं उदजयत् तम् उज्जेषम् वरुणः दशाक्षरेण विराजं उदजयत् तम् उज्जेषम्) मित्र देवताने नवाक्षर छन्दसे त्रिवृत् स्तोम को जय किया, इसी प्रकार मैं भी उसको जय करूँ वरुणदेवने दशाक्षर छंदसे दशाक्षरा विराटके अभिमानी देवताको जय किया मैं भी इसी प्रकार उसको जय करूँ (इन्द्रः एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभम् उदजयत् तां उज्जेषम्) इन्द्रने एकादश अक्षरसे एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्दके अभिमानी देवताका जय किया उसको मैं जय करूँ(विश्वेदेवाः द्वादशाक्षरेण जगतीम् उदजयन् तां उज्जेषम्) विश्वेदेवाओंने बारह अक्षरसे जगती छन्दके अभिमानी देवताको जय किया है मैं भी उसको वशीभूत कर सकूँ॥ ३३ ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदश॑ स्तोममुदजयंस्तमुज्जेष॑ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दश॑ स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पंचदश॑ स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषम् प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदश॑ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं॥ सबका तापस ऋषि है। छ०-१, ३, आर्च्यनु० २ भूरि० त्रि०, ४ साम्नी त्रि० ५, भुरिगार्षी गा० और देवता सबका लिंगोक्ता है। मन्त्रार्थ (वसवः त्रयोदशाक्षरेण, त्रयोदशम् स्तोमं उदजयन् तं उज्जेषम्) वसुओंने तेरह अक्षर वाले छन्दसे त्रयोदशस्तोमको उत्कृष्टरूपसे वशीभूत किया उसीको मैं जय करूँ (रुद्राः चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोमं उदजयन् तं उज्जेषम्) रुद्रोंने चौदह अक्षर छंदसे चौदहवें स्तोमको उत्कृष्ट रूपसे जय किया उसको मैं जय करूँ (आदित्याः पंचदशाक्षरेण

पंचदशं स्तोमं उदजयन् तं उज्जेषम्) आदित्योंने पंचदश अक्षरके छंदसे पंद्रहवें स्तोम को उत्कृष्ट रूपसे जय किया उसको मैं सम्यक् प्रकारसे जयकरूँ (प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोमं उदजयत् तं उज्जेषम्) प्रजापतिने सप्तदशाक्षर छन्दसे सप्तदशाख्य स्तोमको जय किया उसको मैं वशीभूत करूँ ॥ ३४ ॥

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १, २, साम्न्युष्णिक् ३ आ० गा० ४ साम्न्यनु० ५ भुरिगा० गा० ६ भुरिक् सा० बृ० और सबका देवता वरुण है। मन्त्रार्थ-(निर्ऋते एषः ते भागः तं जुषस्व स्वाहा) हे पृथिवी! यह तुम्हारा भाग है इसको प्रीतिपूर्वक सेवन करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (अग्निनेत्रेभ्यः पुरःसद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) जिनका अग्नि नेता है, पूर्वदिशामें बसने वाले देवताओं की प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, भली प्रकार गृहीत हो। (यमनेत्रेभ्यः दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा) यम जिनका नेता है, उन दक्षिणदिशावासी देवताओंको प्रीति के निमित्त यह आहुति देते हैं, भली प्रकार गृहीत हो (विश्वदेवनेत्रेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) विश्वेदेवा जिनके नेता हैं उन पश्चिम दिशामें निवास करने वाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है भली प्रकार गृहीत हो (वा मित्रावरुणनेत्रेभ्यः वा मरुन्नेत्रेभ्यः उत्तरासद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) या जिनके नेता मित्रावरुण हैं या जिनके नेता मरुत् देवता हैं उत्तर दिशामें निवास करने वाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (सोमनेत्रेभ्यः दुवस्वद्भ्यः उपरिसद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) जिनका नेता सोम है ऐसे परिचर्या वाले ऊपरभाग अंतरिक्ष, देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है सम्यक् गृहीत हो ३५

ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा

वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राः उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥३६॥

इस कण्डिकामें ५ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० आसुरी गायत्री प्राजापत्यानु० भुरिग्प्राजापत्यानु० आर्च्यनु० प्राजापत्या बृ० छ० है। सबका देवा दे० है। मन्त्रार्थ (ये देवाः अग्निनेत्राः पुरःसदः तेभ्यः स्वाहा) जो देवता अग्निनेता—संयुक्त हैं, पूर्वमें निवास करते हैं, उन देवताओंके निमित्त यह आहुति दीजाती है (ये देवाः यमनेत्राः दक्षिणासदः तेभ्यः स्वाहा) यम जिनका नेता वे देवता दक्षिण दिशानिवासी हैं। उनके निमित्त यह आहुति० (ये देवाः विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदः तेभ्यः स्वाहा) जो देवता विश्वदेवा नेता वाले पश्चिमनिवासी हैं, उनके निमित्त यह आहुति दी जाती है (ये देवाः मित्रावरुणनेत्राः वा मरुन्नेत्राः वा उत्तरासदः तेभ्यः स्वाहा) जो देवता मित्रावरुण नेता वाले अथवा मरुत् नेतावाले और उत्तर दिशा निवासी हैं, उनके निमित्त आहुति दीजाती है (ये देवाः सोमनेत्राः दुवस्वन्तः उपरिसदः तेभ्यः स्वाहा) जो देवता सोमके नेता वाले हविके स्वीकार करने वाले द्युलोकवासी हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ आहुति प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चोधा यज्ञवाहसि ॥३७॥

इसका देवश्रवा देववात ऋ० भुरिगार्ष्यनु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने पृतनाः सहस्व अभिमातीः अपास्य दुष्टरः अरातीः तरन् यज्ञवाहसि वर्चः धेहि) हे अग्निदेव! तुम शत्रुसेनाओंको पराभव करो, शत्रुओंको विदारित करो, हे दुर्निवार तुम शत्रुओंको तिरस्कार करते हुए यज्ञनिर्वाहकारी इस यजमानको अन्न प्रदान करो ॥ ३७ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपांशो वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा रक्षसान्त्वा वधायावधिष्म रक्षोवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

इस कण्डिकामें ३ मन्त्र हैं। सबका देववात ऋ० है। छ० १ निचृ० गा० २ याजुष्युष्णिक् ३ साम्न्युष्णिक् और देवता सबका रक्षोघ्न है। मन्त्रार्थ—जिस देवताने इस समस्त जगत्को निज २ कर्म करनेमें प्रेरित किया है। उस (सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां त्वा उपांशोः वीर्येण जुहोमि रक्षः हतं स्वाहा) सवितादेवकी आज्ञामें वर्त्तमान अश्विनीकुमारके बाहुयुगलसे पूषा-देवता

के दोनों हाथोंसे तुझको उपांशुनाम प्रथम ग्रहके पराक्रमसे आहुति प्रदान करता हूँ, राक्षसकुल इस आहुतिके प्रभावसे निहत हुआ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो, हे ध्रुवः (रक्षसां वधाय त्वा) राक्षसोंके वध के निमित्त तुमको प्रक्षेप करता हूँ (रक्षः अवधिष्म अमुं अवधिष्म असौ हतः) राक्षस-कुलको विनष्ट किया अमुक शत्रुको [इस स्थलमें जो प्रधान शत्रु है उसका नाम लेय] मारा यह शत्रु मारा गया ३८

सविता त्वा सवानाᳬसुवतामग्निर्गृहपतीनाᳬ सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

इसका देववात ऋ० । अतिजगती छ० यजमान देवता है । मन्त्रार्थ हे यजमान ! (सविता सवानां त्वा सुवताम् अग्निः गृहपतीनाम् सोमः वनस्पतीनाम् बृहस्पतिः वाचे इन्द्रः ज्येष्ठाय रुद्रः पशुभ्यः मित्रः सत्यः वरुणः धर्मपतीनाम्) जगत् का नियन्ता परमात्मा आज्ञाओंके आधिपत्य तुझको प्रेरण करे । अग्निदेवता गृहस्थगणके उपास्यदेव गृहस्थोंके आधिपत्यमें तुमको प्रेरणा करे । वनस्पतिप्रधान सोम देवता तुमको वनस्पति विषयके आधिपत्य प्रदान करे । वाक्यप्रकाशक बृहस्पति देवता वाग्विषयक आधिपत्यमें इन्द्रदेवता ज्येष्ठ आधिपत्यमें पशुगणके जीवोंके रक्षक रुद्र देवता पशुदलके आधिपत्यमें सत्यस्वरूप मित्रदेवता सत्यव्यवहारके आधिपत्य में धर्मरक्षक वरुणदेवता तुमको धर्मके आधिपत्यमें प्रेरणा करे ॥ ३९ ॥

इमन्देवा असपत्नᳬ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोमी राजा सोमोस्माकम्ब्राह्मणानाᳬ राजा ॥ ४० ॥

इसका देववात ऋ० है । अत्यष्टि छ० है और यजमान देवता है, मन्त्रार्थ-(देवाः अमुष्य पुत्रं अमुष्यै पुत्रं इमं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्याय इंद्रस्य वीर्याय असपत्नम् सुवध्वम् इमम् अस्यै विशे अमी वः एषः राजा सोमः) हे सुहविर्देवगण ! तुम अमुक महाशयके पुत्र [यहाँ यजमानके पिताका नाम लेना] अमुकी देवीके पुत्र [यहाँ यजमानकी माताका नाम लेना] इस यजमानको महत् क्षत्रधर्मके निमित्त महत् ज्येष्ठताके निमित्त महान् जनोंके आधिपत्यमें आत्माके ज्ञानमें

सामर्थ्यके निमित्त शत्रुशून्य करके प्रेरण करो अपने प्रसादसे इस यजमानको इस अमुक जातिका राजा करो, हे अमुकजाति प्रजागण ! तुम्हारा यह अमुकनाम राजा हो और हम ब्राह्मणों का राजा सोम चन्द्रमा हो ॥ ४० ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद नवम अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

जिसमें वाजपेय यज्ञ और राजसूयसम्बन्धी कर्म प्रधान है ऐसे नवम अध्यायमें राजसूयान्त मन्त्र कहे। अब दशम अध्यायमें अभिषेकार्थ जलदानादि राजसूयके शेष कर्म और चरक सौत्रामणि यज्ञ मन्त्र कहे जायँगे—

हरिः ॐ ॥ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ १ ॥

इसका वरुण ऋ० निच० त्रि० छ० है, आप देवता है। मन्त्रार्थ--(देवाः मधुमतीः ऊर्ज्जस्वतीः राजस्वः चितानाः अपः अगृभ्णन् याभिः मित्रावरुणौ अभ्यषिञ्चन् याभिः अरातीः अति इन्द्रम् अनयन्) इन्द्रादि देवताओंने मधुरस्वाद से युक्त विशिष्ट अन्नरसयुक्त राज्याभिषेक करने वाले चेतयमान ज्ञानके सम्पादन करनेवाले जलोंको ग्रहण किया जिन जलोंसे मित्रावरुण देवताओंने शत्रुओंको तिरस्कार कर इन्द्रको राज्याभिषेक किया उन जलोंको ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्म्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि । वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ०-१, २ प्राजापत्यानु० ३, ४, और देवता सबका लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ हे कल्लोल ! तुम (वृष्णः ऊर्मिः असि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा) सेचन करने वाले मनुष्यसम्बन्धी तरंग हो स्वभावसे ही राष्ट्र देनेवाली हो राज्यको मेरे निमित्त दो तुम्हारी प्रीयमाण यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो। हे कल्लोल! तुम (वृष्णः रा० ऊर्मिः असि अमुष्मै रा० देहि) सेचन

सम्बन्धी नर, स्वभावसे रा० दाता तरङ्ग हो अमुक यजमानको [इस स्थलमें यजमान का नाम ले] राज्य प्रदान करो, हे वृषसेन! तुम (वृषसेनः रा० दाः असि राष्ट्रं मे देहि स्वाहा) सेचनसमर्थ जलराशि० रा०दाता हो मुझे रा० प्रदान करो, यह आहुति गृहीत हो (वृषसेनः रा० दाः असि राष्ट्रं अमुष्मै देहि) हे वृषसेन! तुम रा० दाता हो, रा० अमुक यजमानको प्रदान करो ॥ २ ॥

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापां गर्भो राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

इस कं० में १० मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १, २ साम्न्युष्णिक् ३, ४, ६ आ० गा० ५, ६, १० साम्नी बृ०, ७, ८ साम्न्यनुष्टुप् और देवता सबका लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ-(अर्थेतः रा० दाः स्थ राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा) नदी आदिके प्रवाहमें स्थित जलों! तुम स्वभावसे ही रा० के देनेवाले हो, रा० को मुझ यजमानके निमित्त प्रदान करो। तुम्हारे प्रीतिके निमित्त दी हुई यह आहुति भली प्रकार स्वीकार हो, (अर्थेतः रा० दाः स्थ अमुष्मै राष्ट्रं दत्त) हे जलों! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले हो मुझे रा० प्रदान करो (ओजस्वतीः रा० दाः स्थ मे राष्ट्रं दत्त स्वाहा) हे बलयुक्त जलों तुम! तुम स्वभावसे रा० देने वाले हो, रा० का इस यजमानके निमित्त प्रदान करो। (परिवाहिणीः आपः रा० दाः स्थ मे राष्ट्रं दत्त स्वाहा) हे परिवाही जलों! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० को इस यजमानके निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (परिवाहिणीः आपः रा० दाः स्थ रा० अमुष्मै दत्त) हे परिवाही जलों! तुम स्वभावसे जल देनेवाले हो रा० अमुक यजमानको प्रदान करो (अपां पतिः रा० दाः असि रा० मे दत्त स्वाहा) हे सागरके जलों! तुम रा० दाता हो रा० को मेरे निमित्त प्रदान करो। यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (अपांपतिः रा० दाः असि राष्ट्रं अमुष्मै दत्त) अपांपति तुम स्वभावसे राज्यदाता हो, रा० अमुक यजमानके

निमित्त प्रदान करो (अपांगर्भः. रा० दाः असि मे राष्ट्रं देहि स्वाहा) भँवरके जलो ! तुम स्वभावसे रा० के देने वाले हो मुझे रा०दो, यह आहुति तुम्हारी प्रीतिके निमित्त दीजाती है (अपांगर्भः रा० दाः असि रा० अमुष्मै देहि) हे अपांगर्भ जलो ! स्वभाव से रा० देनेवाले हो रा० अमुक यजमान के निमित्त प्रदान करो ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्महि क्षत्रङ्क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रङ् क्षत्रियाय दधतीः ।४।

इस कं० में २१ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है छ० १, २, ३, ४ साम्न्यनु० ५, ६, ९, १० आसुर्यनु० ७, ८, १५, १६, १७, १८ आसु० गा० ११, १२ आसुर्युष्णिक १३ १४, १९, २० निचृदा० २१ साम्नी त्रि० और सबका लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ- (सूर्यत्वचसः स्थ रा० दाः रा० मे दत्त स्वाहा) हे जलो ! तुम सूर्यत्वच हो स्वभाव से ही रा० देने वाले हो रा० मेरे निमित्त प्रदान करो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (सूर्यत्वचसः स्थ रा० दाः अमुष्मै राष्ट्रं दत्त (हे सूर्यत्वकरूप जलो ! स्वभावसे ही

रा० देनेवाले तुम अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो। हे जलो! (सूर्यवर्चसः स्थ रा० दाः मे रा० दत्त स्वाहा) सूर्यकी कान्तिमें स्थित हो, स्वभावसे रा० देने वाले हो मुझे रा० प्रदान करो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (सूर्यवर्चसः स्थ रा० दाः अमुष्मै राष्ट्रं दत्त) हे सूर्यवर्चस जलो! तुम सूर्यकी वर्चसमें स्थित हो स्वभावसे रा० देने वाले हो अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो। हे मन्दजलो तुम (रा० दाः रा० मे दत्त स्वाहा) स्वभावसे ही रा० देनेवाले हो रा० मेरे निमित्त प्रदान करो। यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (मन्दाः स्थ रा० दाः रा० अमुष्मै दत्त) हे मन्द! तुम स्वभावसे ही राज्यप्रद हो, रा० अमुक यजमानके निमित्त दो हे जलो तुम (व्रजक्षितः स्थ रा० दाः मे रा० दत्त स्वाहा) तुम व्रजक्षित कूपस्थित हो, स्वभावसे ही रा० देनेवाले हमारे यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो। हे जलो तुम (व्रजक्षितः स्थ रा० अमुष्मै रा० दत्त) व्रजक्षित हो, स्वभावसे राज्य देनेवाले, इस यजमानके निमित्त राज्य दो। हे जलो तुम (वाशाः स्थ रा० अमुष्मै रा० दत्त) वाशा में स्थित जलो स्वभावसे राज्य देने वाले इस यजमानको रा० दो। हे जलो (शविष्ठाः स्थ रा० मे राष्ट्रं दत्त स्वाहा) मधुर रूप तुम त्रिदोषशमन कारणसे बल देनेवाले स्वभावसे रा० देनेवाले मुझे रा० प्रदान करो। यह आहुति भली प्रकार प्राप्त हो (शविष्ठाः स्थ रा० दाः अमुष्मै रा० दत्त) हे शविष्ठ! तुम स्वभावसे ही राज्य देने वाले अमुक यजमानको रा० दो। हे जलो तुम (शक्वरीः स्थ रा० दाः मे रा० दत्त स्वाहा) वाह दोहादिसे जगत्का उद्धार करनेवाली गौसंबन्धी हो स्वभावसे राज्यदाता हो मुझे राज्य दो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (शक्वरीः स्थ रा० दाः अमुष्मै राष्ट्रम् दत्त) शक्वरी जलो तुम रा० देनेवाले इस यजमानके निमित्त रा० दो। हे जलो तुम (जनभृतः स्थ राष्ट्रम् दाः राष्ट्रम् मे दत्त स्वाहा) बालभाव में मनुष्योंको पुष्ट करने वाले हो स्वभावसे ही राज्यके देने वाले हो, राज्य मेरे निमित्त दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो। (जनभृतः स्थ रा० दाः अमुष्मै रा० दत्त) हे जनभृत् जल! तुम स्वभावसे ही रा० देनेवाले हो इस अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो, हे जलो तुम (विश्वभृतः स्थ रा० दाः मे राष्ट्रम् दत्त स्वाहा) मनुष्योंसे देवताओं पर्यन्त घृत द्वारा जगत्को धारण करने वाले हो स्वभावसे राज्य देनेवाले ही मेरे निमित्त रा० प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, हे घृतरूप जलो (विश्वभृतः स्थ अमुष्मै राष्ट्रम् दत्त) तुम विश्वभृत अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो। (आपः स्वराजः स्थ रा० दाः रा० अमुष्मै दत्त) हे मरीचिरूप जलो! तुम अपने प्रकाशमें

२४।६।३८

अनन्याश्रित हो, स्वभावसे राज्यके देनेवाले हो राज्य अमुक यजमानको दो, (मधुमतीः मधुमतीभिः महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाः पृच्यन्ताम्) हे मधुररसयुक्त सम्पूर्ण जलो उस सब मधुररस जलोंके सहित बड़े बलवाले को राजा यजमानके निमित्त संपादन करते हुए अपने रसोंसे सींचो, संपर्क करो। हे जलो! तुम (अनाधृष्टाः महोजसः महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः सीदत) असुरों से अनाधृष्ट पराभव न पाने वाले, बलके सहित बड़े बलका इस क्षत्रिय राजामें स्थापन करते हुए इस स्थानमें अवस्थान करो।

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्। अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाꣳशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

इस क० में १३ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है छ० १ आसु० गा० २, ३, ४, ८, ९, १०, ११, १२, १३ दैवी पं० ५ दैवी त्रि० ६ दैवी बृ० ७ दै० ज० और देवता १ चर्म अन्य सबका लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ-हे चर्म तुम (सोमस्य त्विषिः असि तव त्विषिः मे भूयात्) सोमदेवकी कान्तिरूप हो आप की कान्ति मुझमें होजाय (अग्नये स्वाहा सवित्रे स्वाहा, सरस्वत्यै, स्वाहा, पूष्णे स्वाहा, बृहस्पतये स्वाहा) अग्नि देवताकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, भली प्रकार गृहीत हो, प्रेरक सोमदेवता के निमित्त आहुति० सविता देवताके निमित्त श्रेष्ठ आहुति० प्रवाहरूप सरस्वती के निमित्त आहुति० पोषक पूषादेवताके निमित्त यह आहुति० बृहस्पतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है स्वीकार हो (इन्द्राय स्वाहा, घोषाय स्वाहा, श्लोकाय स्वाहा, अंशाय स्वाहा, भगाय स्वाहा, अर्यम्णे स्वाहा) इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति० शब्द करने वाले देवताके निमित्त यह आहुति० जनोंसे कीर्त्तित परस्पर आंदोलन रूपके निमित्त यह आहुति० पुण्य पापके विभाग करने वालेके निमित्त यह आहुति० ऐश्वर्यके निमित्त यह आहु० विश्वको व्याप्त करनेवाले अर्यमा देवताके निमित्त यह आहुति दीजाती है ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १ दैवी जा० २ प्राजा० पं० ३ भुरिगाजापन्या पं० और देवता १ पवित्रे २ आप ३ आप हैं। मन्त्रार्थ—(पवित्र, वैष्णव्यौ स्थः) हे पवित्र कुशद्वय तुम यज्ञकार्यमें नियुक्त हो, (सवितुः प्रसवे अच्छिद्रेण पवित्रेण, सूर्यस्य रश्मिभिः वः उत्पुनामि) जगत्के एकमात्र नियंता इस परम देवताके नियोगसे नियुक्त होकर छिद्रशून्य पवित्रद्वारा सूर्यकी किरणोंसे तुमको उत्पवन सिंचन करता हूँ, हे जलो! तुम (अनिभृष्टम् वाचः बन्धुः) राक्षसोंसे अपराभूत वाक्यके प्रकृतबन्धु हो (तपोजाः, सोमस्य दात्रम् असि स्वाहा राजस्वः) तेजसे समुत्पन्न सोमके उत्पादक हो, तथा स्वाहाकारसे पवित्र हुए इस यजमानको राजश्री सम्पादन करो ॥ ६ ॥

मधुमतीरापः एता अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः। पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ ७ ॥

इसका वरुण ऋ०, विरा० त्रि० छ० और वरुण देवता है। मन्त्रार्थ-(एताः मधुमतीः अनाधृष्टाः अपस्यः वसानाः आपः पस्त्यासु मातृतमासु अन्तः अपां शिशुः वरुणः सधस्थं चक्रे) जो यह एकत्र चार पात्रमें स्थित, प्रसन्न होनेवाले वीर्यवान् अपराभूत पात्रोंका आच्छादन करनेवाले यह जल इस समय अभिषेक कार्यमें नियुक्त हुए हैं, इस प्रकार सबके धारण करनेमें गृहरूप जगन्निर्माता मातृरूप इन जलदेवियोंके भीतर जलोंके शिशु वरुण यजमानने सादर स्थिति की है ॥७॥

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृंहासि रुजासि क्षुमासि पातेनमाश्चम्पातेनमप्त्यश्चम्पातेनन्तिर्यश्चन्दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

इस कण्डिकामें ११ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १ याजुषी गा० २,३,४ याजुष्युष्णिक् ५ प्रा० गा० ६ दैवी बृ० ७ दैवी पं० ८, ९, १० दैव्यनु० ११ आर्ष्युष्णिक और देवता १ तार्प्य २,३,४ पांड्वादय ५ धनु ६ धनुःको० ७ वामको० ८, ९ १० इषु ११ इषव देवता है। मन्त्रार्थ-हे तार्प्य वस्त्र तुम! (क्षत्रस्य उल्बम् असि) क्षत्रधर्मावलम्बी इस यजमानको गर्भाधारभूत जलरूप हो। हे पाण्डरक्त कम्बल!

तुम (क्षत्रस्य जरायुः) क्षत्रिय यजमान का गर्भवेष्टन चर्मरूप हो। हे अधिवास ! तुम (क्षत्रस्य योनिः असि) क्षत्र धर्मावलम्बी यजमानकी योनिरूप हो हे उष्णीष ! तुम (क्षत्रस्य नाभिः असि) क्षत्रधर्मावलम्बी यजमानकी गर्भबन्धनस्थान हो। हे धनुष ! तुम (इन्द्रस्य वार्त्रघ्नं असि) इस इन्द्ररूप यजमानके वृत्रनाशक धनुःसंबंधी हो। हे दक्षिणकोटि ! तू (मित्रस्य असि वरुणस्य असि) मित्र सम्बन्धिनी है। हे वामकोटि ! तू वरुण सम्बन्धिनी है। हे धनुष ! (अयं त्वया वृत्रं वधेत्) यह यजमान तुम्हारे द्वारा सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश करे। हे बाणों ! तुम (दृढा असि) शत्रुओंके विदीर्ण करने वाले हो। हे बाणों तुम (रुजा असि) शत्रुओंके भंग करने वाले हो। हे बाणों तुम (क्षमा असि) शत्रुओंके कम्पित करने वाले हो। हे बाणों तुम (एनम् प्राञ्चम् पात) इस यजमान को पूर्व दिशाकी ओरसे रक्षा करो। हे बाणों ! तुम (एनं प्रत्यञ्चं पात) इस यजमानको पश्चिम ओरसे रक्षा करो। हे बाणों तुम (एनं तिर्यञ्चं पात दिग्भ्यः पात) इस यजमानको उत्तर दक्षिणकी ओरसे रक्षा करो, बहुत क्या सम्पूर्ण दिशाओंसे रक्षा करो ॥ ८ ॥

आविर्मर्य्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्तो द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा ९

इस कण्डिका में ७ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १ दै० बृ० २।३।५।७ या० बृ० ४ आसु० बृ० ६ आसु० और देवता १ प्रजा० २ ३। ।७ लिङ्गोक्त ४। ६ लिङ्गोक्त है। मन्त्रार्थ-(मर्य्याः आविः गृहपतिः अग्निः आवित्तः धृतव्रतौ मित्रावरुणौ आवित्तौ विश्ववेदाः पूषा आवित्तः) भूमण्डलवासी मनुष्यमण्डली इस यजमानको जाने गृहपालक अग्नि इस यजमानको जाने विख्यातकीर्त्ति इन्द्र इस यजमानको जाने नियममें तत्पर मित्रावरुण सूर्यचन्द्र इसको जानें, सब कुछ जानने वाले पूषा देवता इसको जाने। (विश्वशम्भुवा द्यावापृथिवी आवित्ते उरुशर्मा अदितिः आवित्ता) संसारके कल्याणको विधात्री पृथ्वी और द्युलोकके अभिमानी देवता जानें बड़े सुविस्तीर्ण सुखके आश्रय रूप देवमाता काल इसको जाने ॥ ९ ॥

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १ दै० ज० २ निचृदा० पं० और देवता १ मृ० ना० २ यजमान है, मन्त्रार्थ-(दन्दशूकाः अवेष्टाः) कांटेके स्वभाववाले मृत्यु के कारण सर्पादि विनष्ट हुए। हे यजमान! तुम (प्राचीम् आरोह) पूर्व दिशाको आरोहण करो (गायत्री त्वा अवतु) गायत्री छन्द तुमको रक्षा करे। सामोंके मध्यमें (रथंतर ँ साम त्रिवृत्स्तोमः वसन्त ऋतुः ब्रह्म द्रविणम्) रथंतर साम स्तोमके मध्यमें त्रिवृत्स्तोम ऋतुओंमें वसंत ऋतु परमात्माका ऐश्वर्य तुम्हारा रक्षा करे

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रन्द्रविणम् ११

इसका वरुण ऋ० आ० पं० छ० यजमान देवता है। मन्त्रार्थ हे यजमान तुम (दक्षिणां आरोह,) दक्षिण दिशाको आक्रमण करो (त्रिष्टुप् बृहत्साम पञ्चदशस्तोम ग्रीष्मऋतुः क्षत्रं द्रविणं त्वा अवतु) त्रिष्टुप् बृहत्साम पंचदशस्तोम ग्रीष्मऋतु क्षत्रिय जाति संबंधी ऐश्वर्य तुमको रक्षा करे ११

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूप ँ साम सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् १२

इसका वरुण ऋ० निचृदा० छ० यजमान देवता है। मन्त्रार्थ-हे यजमान तुम (प्रतीचीं आरोह जगती वैरूपं साम सप्तदशस्तोमः वर्षाऋतुः विट् द्रविणं त्वा अवतु) पश्चिमदिशाको आक्रमण करो। जगती छन्द वैरूपसाम वर्षाऋतु वैश्य सम्बन्धी ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे ॥१२॥

उदीचीमारोहानुष्टुप्त्वावतु वैराज ँ साम एकविँ शस्तोमः शरदृतुः फलन्द्रविणम् ।१३।

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १ निचृ० २ प्रा० गा० और देवता १ यजमान २ असुर है मंत्रार्थ हे यजमान तुम (उदीचीम् आरोह अनु० वैराज ँ साम एकविंशस्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणं त्वा अवतु) उत्तर दिशाको आक्रमण करो, अनु० छन्द उत्पन्न वैराजसाम एकविंश स्तोम शरदृतु यज्ञफलरूप ऐश्वर्य तुमको रक्षा करे ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वामारोह पंक्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिँ शौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणम्प्रत्यस्तन्नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥

इसका वरुण ऋ० है। भुरिग् जगती छ० और यजमान देवता है। मन्त्रार्थ हे यजमान तुम (ऊर्ध्वाम् आरोह पंक्तिः शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरौ ऋतू वचः द्रविणं त्वा अवतु) ऊपर भागको आक्रमण करो पंक्तिछन्द शाक्वरसाम और रैवत साम त्रिनव और त्रयस्त्रिंश स्तोम हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतु तेजोभिमानी देवता ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे (नमुचेः शिरः प्रत्यस्तम्) नमुचि असुरका शिर दूर फेंका गया ॥ १४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोसि सहोस्यमृतमसि १५

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छ० १ आसु० गा० २ दैवी बृ० ३ याजुषी और देवता १ चर्म २। ३ रुक्म हैं। मन्त्रार्थ—हे व्याघ्रचर्म तुम (सोमस्य त्विषिः असि तव त्विषिः मे एव भूयात्) सोम की कान्ति हो, तुम्हारी कान्ति मुझमें भी हो। हे सुवर्ण (मृत्योः पाहि) मृत्युसे मेरी रक्षा कर, हे सुवर्णमण्डल तुम (ओजः असि सहः असि अमृतं असि) इसको जय करूँगा इस प्रकारके साहसरूप हो धनका साहस प्रत्यक्ष है मनकी वृत्तिरूप हो शारीरिक बलरूप हो विनाशरहित चिरस्थायी हो ॥

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च। आरोहतं वरुण मित्र गर्तन्तत्रक्षाथामदितिन्दितिञ्च मित्रोसि वरुणोसि ॥ १६ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं। सबका वरुण ऋ० छ० १ निचृ० त्रि० २ दैवी जगती और दे० १ मित्र वरुण २ बाहु है, मन्त्रार्थ-(वरुण मित्र गर्तं आरोहतं) हे शत्रुविनाशक दक्षिण-बाहु! हे सखावत् पालक वाम-बाहु! तुम दोनों पुरुष में आरोहण करो (हिरण्यरूपौ इन्द्रा उभौ उषसः विरोके उदिथः सूर्यः च ततः अदितिं दितिं च त्रक्षाथाम्) सुवर्णके अलंकारादिसे युक्त सुवर्णचन्द्रासमान सामर्थ्य से युक्त दोनों तुम रात्रिके समाप्तिकालमें जागृत होओ। सूर्य भी उस समय तुम्हारा कार्य सम्पादन करनेको उदित होता है, तदनन्तर अखण्डित अपनी सेना और खंडिता परसेनाको क्रमपूर्वक अनुग्रह और निग्रह दृष्टिसे देखो। (मित्रः असि वरुणः असि) तुम मित्रावरुणकी समान रक्षा करने वाले और शत्रुनिवारक हो ॥ १६ ॥

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां

क्षत्रपतिरेद्धयति दिद्युन्पाहि ॥ १७ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । सबका वरुण ऋ० छं० १ भु० प्रा० पं० २ निचृत्सा० पं० ३ ४, साम्नी पं० और सबका यजमान देवता है । मन्त्रार्थ-हे यजमान (सोमस्य द्युम्नेन त्वा अभिषिञ्चामि क्षत्राणां क्षत्रपतिः एध दिद्युन् अति पाहि) चन्द्रमाके यशसे तुमको अभिषेक करता हूँ और अभिषेकका प्राप्त हुए तुम क्षत्रियोंके राजाधिराज होकर वृद्धिको प्राप्त हो और शत्रुओंके प्रेरित बाणों का अतिक्रमण करके प्रजाका पालन करो ॥

इमन्देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ १८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(देवाः- अमुष्य पुत्रं अमुष्यै पुत्रं इमं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्याय इन्द्रस्य इन्द्रियाय अस्मै विशे असपत्नं सुवध्वम्) हे सुदेवि देवगण ! इस अमुकके पुत्र अमुक देवीके पुत्र अमुकनाम इस यजमान का महान् क्षत्रधर्म और महान् ज्येष्ठत्वकी प्राप्ति के निमित्त बड़े जानराज्यके निमित्त इन्द्र के ऐश्वर्यके निमित्त, इस अमुकजाति की प्रजाके पालनके निमित्त स्थित हुए हो, शत्रुरहित करके प्रेरणा करो । (अयं एषः वः राजा अस्माकं ब्राह्मणानां राजा सोमः) हे देशवाले जनो ! यह तुम्हारा राजा है, हम ब्राह्मणोंका राजा सोम है ॥ १८ ॥

प्रपर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः ता आववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिमवुध्न्यमनुरीयमाणाः । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि १९

इस कं० में ४ मंत्र हैं, सबका देववात ऋ० छं० १ निचृ० त्रि० २ प्राजा० गा० ३ याजुष्यु० ४ याजु० गा० है । और सबका यजमान देवता है । मन्त्रार्थ-(स्वसिचः इयानाः नावः वृषभस्य पर्वतस्य पृष्ठात् प्रचरन्ति ताः उदक्ताः बुध्न्यम् अहिं अनुरीयमाणाः, अधराक् आववृत्रन्) स्वयं ही विश्वको सींचने वाले गमनशील, स्तुतियोंको प्राप्त होनेवाले वर्षा करने वाले पर्वतके पृष्ठ से आदित्यमण्डल की ओर गमन करते हैं । वे आहुतिके परिणामभूत जल ऊपर प्राप्त हुए अंतरिक्षमें होनेवाले मेघोंको अनुसरण करते हुए नीचे भूमिको प्राप्त होते हैं ।१९।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा। रुद्र यत्ते क्रिवि परन्नाम तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका देववात ऋ० है। छ० १ निचृ० २ आर्षी गा० ३ साम्नी त्रि० है और देवता १ प्रजापति २ आशीः ३ रुद्र है। मन्त्रार्थ—हे प्रजापते! (त्वत् अन्यः एतानि विश्वा, रूपाणि न परिता बभूव) हे परमात्मन् आपसे और कोई भी इन सम्पूर्ण प्रजापालनादि कार्य तथा नाना जातीय वर्त्तमान भूत भविष्यत् कालमेंके प्राणियोंके सृजन पालन संहारमें नहीं समर्थ है इस कारण तुम्हीं हमारी प्रार्थना पूर्ण करनेमें समर्थ हो। (यत्कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु अयं अमुष्य पिता असौ अस्य वयं रयीणां पतयः स्याम स्वाहा) जिस कामनासे आपके निमित्त हवन करते हैं, वह कामना हमारी पूर्ण हो. यह अमुक का पिता है, यह इसका पिता चिरस्थायी रहे. हम अपरिमित ऐश्वर्यके स्वामी हों, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (रुद्र यत् ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतं असि, अमेष्टं असि स्वाहा) हे रुद्रदेव! जो तुम्हारा प्रलयकारी दुष्टनाशक उत्कृष्ट नाम है, हे हवि उस रुद्रनाममें तुम हुत होओ, तुम हमारे घरमें आहुत होती हो इस कारण सब प्रकार हमारी उपकारी होओ, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २० ॥

इन्द्रस्य वज्रोसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वा रिष्टो अर्जुनो मरुताम्प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं। सबका देववात ऋ० छ० १ दैवी त्रि० २ साम्न्य० ३ साम्न्युष्णिक् ४ या० बृ० ५ दै० त्रि० और देवता १, २, ३, रथ, ४ धुर्य, ५ यजमान है मन्त्रार्थ-हे रथ! तुम (इन्द्रस्य वज्रः असि) इन्द्रके वज्रकी समान अतिदुश्छेद्य काष्ठसे निर्मित हो। (प्रशास्त्रोः मित्रावरुणयोः, प्रशिषा त्वा युनज्मि) शासनकारी मित्रावरुण देवताके प्रशासनसे तुमको इस रथ में युक्त करता हूँ। (अरिष्टः अर्जुनः अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वा) अनुपहिंसित अर्जुनतुल्य इन्द्र, देशका भय दूर करनेके निमित्त अचलताके निमित्त, तुझमें तथा देशमें सुभिक्ष सम्पादन करनेके निमित्त तुम पर

आरोहण करता हूँ। हे रथधुरवाहके अश्व! (मरुतां प्रसवेन जय) मरुद्गणोंकी आज्ञा से वेगवान् होकर शत्रुओंको जीतो हमने जो कार्य आरम्भ किया है उसको (मनसा अपाम्) मनके अनुसार सम्पन्न किया। हम (इन्द्रियेण सम्) वीर्यसे संगत हुए॥

मा त इन्द्र ते वयन्तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मताविदसाम। तिष्ठारथमधि यं वज्रहस्ता-रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान्॥ २२॥

इसका संवरण ऋ० निचृ० त्रि० छ० और इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(तुराषाट् वज्रहस्त इन्द्र देव यं रथं अधितिष्ठ स्वश्वान् रश्मीन् आयमसे ते वयं ते अयुक्ताः मा विदसाम अब्रह्मता) शीघ्र शत्रुओंका तिरस्कार करनेमें लघुहस्त हाथमें वज्र धारण करने वाले हे ऐश्वर्ययुक्त हे दीप्यमान! तुम जिस रथमें स्थित होकर अच्छे सुशिक्षित घोड़ोंकी लगामोंको थामते हो हम तुम्हारे तिस रथसे भिन्न हुए हानिको प्राप्त न करें, ब्रह्म नहीं है इस प्रकार ब्रह्मभावसे अन्य वस्तु न जानें॥ २२॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा पृथिवि मातर्म्मामाहिꣳसीर्मो अहन्त्वाम्॥ २३॥

इस कं० में ५ मं० हैं। सबका संवरण ऋ०। छ० १, २, याजुषी पं० ३, ४, याजुष्य० ५ आसु० और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मन्त्रार्थ-(गृहपतये अग्नये स्वाहा वनस्पतये सोमाय स्वाहा मरुतां ओजसे स्वाहा इन्द्रस्य इन्द्रियाय स्वाहा) गृहपालक अग्निदेवताके निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो, वनस्पतिरूपी सोमकी प्रीतिके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, मरुद्गणोंके बलके निमित्त हवि देते हैं, इन्द्रके वीर्यके निमित्त हवि देते हैं (मातः पृथिवि मां मा हिंसी अहं त्वा माउ) हे जगत्की निर्माता पृथ्वी! तुम मुझको मत हिंसा करो मैं तुमको क्लेश न दूँ।२३।

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत्॥ २४॥

इसका वामदेव ऋ०। अति ज० छ० और सूर्य देवता है। मन्त्रार्थ (शुचिषत् हंसः अन्तरिक्षसत् वसु वेदिसत् होता दुरोणसत् अतिथिः नृषत् वरसत् ऋतसत्

व्योमसत् उअब्जा गोजाः ऋतजाः अद्रिजाः ऋतम् बृहत्) पवित्रस्थान दीप्तिमें आदित्य रूपसे स्थित अहंकारका दूर करने वाला आत्मा वायुरूपसे अंतरिक्षमें स्थित मनुष्यों का प्रवर्त्तक अग्निरूपसे वेदीमें स्थित होकर देवताओंका आह्वान करने वाला आहवनीय रूपसे यज्ञमें स्थित सबका पूजनीय मनुष्योंमें प्राणभावसे स्थित, उत्कृष्ट स्थानों क्षेत्रोंमें स्थित आकाशमें मंडलरूपसे स्थित इस प्रकार सर्व स्थिति से प्रार्थना करके सबके उत्पत्ति द्वारसे प्रार्थना करते हैं और जो मत्स्यादिरूपसे जलोंमें होता चतुर्विध भूतग्राम रूपसे भूमिमें होने वाला, सत्यमें होने वाले पाषाण अग्निरूपसे होने वाले, मेघमें जलरूपसे होनेवाले, सर्वगत अपर्यन्त परब्रह्मरूप परमात्माका स्मरण कर रथसे उतरता हूँ ॥ २४ ॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जमयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका वामदेव ऋ० छ० १ साम्नी ज० २ प्राजा० गा० ३ नि० प्रा० नु० और देवता १ हिरण्य, २ शाखा ३ बाहु है। मन्त्रार्थ-हे शतमान! तुम (इयत् असि आयुः असि मयि आयुः धेहि) सौ रत्तीके इतने परिमाणवाले हो। जीवन हो, सुवर्णदानसे दीर्घायु होती है मुझमें जीव धारण करो। हे शतमान! तुम (युङ् असि वर्चः असि मे वर्चः धेहि) रथमें बद्ध और दक्षिणायुक्त हो, दानसे पहरनेसे तेजकी वृद्धिके कारण हो, मेरे निमित्त तेज प्रभाव धारण कराओ। हे उदम्बरि ! तुम (ऊर्ग् असि ऊर्जं मयि धेहि वीर्यकृतः इन्द्रस्य बाहू वां अभ्युपावहरामि) अन्नवृद्धिके कारण हो, शब्दमें होकर अन्न आता है अन्नको मुझमें स्थापन करो वीर्यके करने वाली परमऐश्वर्यवान् यजमानकी हे दानों भुजाओं! मैं, तुम दोनोंको मित्रावारुणी पयस्याके प्रति नीची करता हूँ ॥ २५ ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं। सबका वामदेव ऋ० है, छ० १, २ दैवीज० ३ भुरिगार्ची गा० और देवता १, २ आसन्दि-वस्त्रे, ३ यजमान है। मन्त्रार्थ-हे द्यूतासन्दि! तुम (स्योना असि सुषदा असि) सुखरूप हो तथा सुखसे बैठने योग्य हो।

हे अधोवास ! तुम (क्षत्रस्य योनिः असि) क्षत्रधर्माश्रित इस यजमानके आधारके उपयुक्त स्थान हो। हे यजमान ! (स्योनां आसीद सुखदां आसीद क्षत्रस्य योनिं आसीद) सुखकी करनेवाली आसन्दीमें आरोहण कर सुखसे उपवेशनके योग्यमें बैठो, यह अधिवास और आसंदी तुम्हारी समान राजपुरुषके उपवेशन योग्य आधार है, इस पर बैठो ॥२६॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

इसका शुनःशेप ऋ० है। वर्द्धमाना गा० छ० वरुण देवता है। मन्त्रार्थ-(धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः साम्राज्याय पस्त्यासु आनिषसाद) यज्ञलक्षण व्रतके धारण करने वाले श्रेष्ठ संकल्प अनिष्टके निवारण करने वाले इस यजमानने सम्राड्भावके निमित्त प्रजाओंमें आधिपत्यरूपसे स्थिति की २७

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मंस्त्वम्ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यौजा इन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्करभूयस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥

इस कं० में ८ मन्त्र हैं। सबका शुनःशेप ऋषि है। छ० १ साम्न्युष्णिक् २ याजुषी गा० ३ या० बृ० ४ याजुष्युष्णिक् ५, ६ या० गा० ७ याजु० ज० ८ याजु० त्रि० और देवता १ अक्षा यज० २, ४, ५, ६ ब्रह्म दे० ७ लिङ्गो० ८ स्फ्य है। मन्त्रार्थ हे यजमान ! तुम (अभिभूः असि एताः पञ्चदिशः ते कल्पन्ताम्) इन पाँचके द्वारा सकल जगत्के पराभव करनेवाले हो, यह पाँच पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण और ऊर्ध्व दिशा इसके द्वारा तुम्हारे हस्तगत प्राप्त हों। (ब्रह्मन् ब्रह्मा असि ब्रह्मा सत्यप्रसवः सविता असि) हे ब्रह्मन् ! तुम ब्रह्माकी महिमावाले हो, हे यजमान ! तुम (महा महिमा वाले अनुल्लंघ्य उपदेश देनेमें समर्थ प्रजावर्गके नियन्ता होनेसे सविता हो, (ब्रह्मा त्वं ब्रह्मा असि सत्यौजः वरुणः असि) हे यजमान ! महामहिमा वाले तुम अमोघवीर्य प्रजावर्ग के अनिष्ट निवारण करनेसे वरुण हो, (ब्रह्मन् विशौजाः इन्द्रः असि ब्रह्मन् सुशेवः रुद्रः असि ब्रह्मन् ब्रह्मा असि) हे महिमा वाले यजमान ! तुम ऐश्वर्यवान् देशकी शान्ति की रक्षा करनेसे इन्द्र हो, हे महामहिमा वाले यजमान ! तुम आश्रित जनों के सुख देने वाले पुनः देवनीय तथा शत्रुगणोंकी स्त्रियोंके रुलाने वाले रुद्र हो हे

यजमान ! तुम ब्रह्मा अर्थात् महामहिमा वाले हो, इस कारण ब्रह्मा हो। (बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर) हे सम्पूर्ण कार्यमें निपुण प्रत्येक श्रेष्ठकार्यप्रवर्त्तक बहुत कार्य-कारी इस स्थानमें आगमन करो हे स्फ्य ! तुम (इन्द्रस्य वज्रः असि तेन मे रध्य) इन्द्रका वज्र हो, इस कारण मेरे यजमान के वशवर्त्ती होकर कार्य साधन करो २८

अग्निः पृथुर्द्धर्म्मणस्पतिर्ज्जुषाणो अग्निः पृथुर्द्धर्म्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृताः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्य्यतद्ध्वꣳसजातानाम्मद्ध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं। सबका शुनःशेप ऋ० । छ० १ प्रा० त्रि० २ साम्नी त्रि० और दे०-१ अग्नि २ अन्न है। मन्त्रार्थ (अग्निः पृथुः धर्मणः पतिः जुषाणः पृथुः धर्मणः पतिः अग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा) महान् अग्निदेवता देवताओंमें प्रथम होनेसे विशाल जगत्के धारण करने वाले धर्मका स्वामी प्रीयमाण हविका सेवन करनेवाला जो देखते २ अति प्रवृद्ध होता है जो गृहस्थियोंके गृहधर्मका प्रधान साक्षी है वह अति विपुल धर्मस्वरूप अग्निदेवता हमारी दी हुई घृतकी हवि प्रीतिपूर्वक भक्षण करे, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो। हे अन्नगण ! (स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिः सजातानां मध्यमेष्ठ्याय यतध्वम्) आहुति प्रदानपूर्वक गृहीत तुम अतिप्रचण्ड सूर्य की किरणोंसे सम्मिलित हुए स्पर्धा करो, समानजन्म क्षत्रिय भाइयोंके मध्यमें सबसे श्रेष्ठ करनेको यत्न करो ॥ २९ ॥

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्प्पामि ॥ ३० ॥

इसका शुनःशेप ऋ० निचृदत्यष्टि छ० सविताद्या देवता है,मन्त्रार्थ- (प्रसवित्रा सवित्रा वाचा सरस्वत्या रूपैः त्वष्ट्रा पशुभिः पूष्णा अस्मे इन्द्रेण ब्रह्मणा बृहस्पतिना ओजसा वरुणेन तेजसा अग्निना राज्ञा चन्द्रेण दशम्या देवतया विष्णुना प्रसूतः प्रसर्पामि) समस्त जीवोंके प्रेरणा करने वाले सविता सूर्य वाक्रूपा सरस्वती रूप के अधिष्ठात्री त्वष्टा देवता पशुओंसे उपलक्षित पूषा देवता स्वयं इन्द्र देवयागमें ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए बृहस्पति बड़े तेजसे युक्त वरुण तेजसे युक्त अग्नि औषधि ब्राह्मणों

के अधिप दीप्यमान चन्द्रमा दश संख्याके पूर्ण करने वाले यज्ञके अधिष्ठात्री देव परमात्मा नारायणके द्वारा अनुज्ञा किया हुआ मैं प्रसर्पण करता हूँ ॥ ३० ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं । ऋ० १ अश्विना वृ० २।३।४ शुनःशेप ऋ० है, छ० १ या० गा० २ याजुष्यु० ३ या० बृ० ४ निचृदा गा० छ० देवता १।२।३ लिङ्गोक्त ४ सोम है । मन्त्रार्थ हे सुरोंके योग्य व्रीहि ! (अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्व सुत्राम्णे इन्द्राय पच्यस्व) अश्विनीकुमार देवताओंको प्रीतिके निमित्त रसरूप से परिणत हो, सरस्वती देवीकी प्रीतिके निमित्त रसरूपसे परिणत हो, सरस्वती देवीकी प्रीतिके निमित्त पचकर रूपान्तर को परिणत हो, भली प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त पाक को प्राप्त हो । (इन्द्रस्य युज्यः सखा पवित्रेण पूतः वायुः सोमः प्रत्यङ् अतिस्रुतः) इन्द्रका योग मित्रभूत पवित्रद्वारा शुद्ध किया तथा वायु द्वारा पवित्र हुआ सोम इस पवित्रद्वारा अधोमुख क्षरित होता हुआ अतिक्रमण करगया ॥ ३१ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषाङ्कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

इसका काक्षीवत सुकीर्त्ति ऋ० निचृद्ब्राह्मी त्रि० छ० सोमदेवता है । मन्त्रार्थ हे सोम (यथा इह यवमन्तं कुवित् यवं चित् अनुपूर्वम् वियूय अङ्ग दान्ति) जिस प्रकार इस लोकमें बहुत यवसे सम्पन्न एकमात्र किसान बहुतसे यवसे पूर्ण शस्य को विचार करके क्रमसे पृथक् करके शीघ्र कर्त्तन करते हैं, इसी प्रकार अति अल्पमात्र तुम देवगणोंके प्रिय हो (एषां भोजनानि इह कृणुहि ये बर्हिषि नमः उक्तिं यजन्ति) इन यजमानोंके सम्बन्धी विविध प्रकारके भोजन इस यजमानमें सम्पादन करो, जो कुशासन पर बैठेहुए ऋत्विग्गण हविर्लक्षण वाले अन्नको लेकर याज्यका नाम लेकर याग करते हैं । हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः असि) उपयामपात्रमें

गृहीत हो (अश्विभ्यां त्वा) अश्विनीकुमार की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हेसोम ! तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो । (सरस्वत्यै त्वा) सरस्वती देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, हे सोम तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो (सुत्राम्णे इन्द्राय त्वा) पालक इन्द्रदेवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ३२ ॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रङ्कर्मस्वावतम् ३३

इसका काक्षीवत सुकीर्त्ति ऋ० निचृ० छ० अश्वि सरस्वतीन्द्रा देवता है, मंत्रार्थ (अश्विना नमुचौ आसुरे सुराममम् सचा विपिपाना शुभः पती युवम् कर्मसु इन्द्रं आवतम्) हे सर्वजनहितकारी अश्विनी-कुमार ! नमुचिसंज्ञक दैत्यमें स्थित अधिक रमणीय सोमको साथ विविध प्रकारसे पीतेहुए शुभकर्मके पालक तुमने उन कार्यों में इन्द्रका पालन किया ॥ ३३ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः । यत्सुराम व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

इसका काक्षीवत सुकीर्त्ति ऋ० भुरिगार्ची प० छ० अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता है । मन्त्रार्थ-(इन्द्र उमा अश्विना काव्यैः दंसनाभिः त्वा आवथुः इव पितरौ पुत्रं यत् मघवन् शचीभिः सुराममम् व्यपिबः सरस्वती अभिष्णक्) हे इन्द्र ! दोनों हितकारी अश्विनीकुमार मन्त्र देखनेवाले महर्षियोंके काव्य और कर्मोंसे प्रयोगोंसे असुर सहवाससे अशुद्ध सोमरस पानकर विपत्तिको प्राप्त हुए तुमको रक्षा करते हुए जैसे माता पिता पुत्रकी रक्षा करते हैं । जिस प्रकार हे इन्द्र ! तुमने नमुचिवधादि कर्म करके पान करते ही प्रसन्न करने वाले रमणीय सोमको विशेषकर पानकिया सरस्वती वाणी तुम्हारी अनुगत है, सेवा करती है ॥ ३४ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद दशम अध्याय समाप्त ॥

● अथ एकादशोऽध्यायः ❀

जिसमें अभिषेकके लिये जल लाना आदि राजसूय यज्ञ प्रधान है ऐसे दशम अध्यायमें अभिषेकसे लेकर राजसूय पर्यन्त मन्त्र कहे । अब ग्यारहसे लेकर अठारहवें अध्याय तक अग्निचयनके मन्त्र कहे जायेंगे ।

युञ्जानः प्रथमम्मनस्तत्वाय सविता धियम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्या-भरत् ॥ १ ॥

प्रजापति ऋ० विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द और सविता देवता है । मन्त्रार्थ-(सविता मनः प्रथमं युञ्जानः अग्निः ज्योतिः धियम् तत्वाय निचाय्य पृथिव्यै अध्याभरत) सब के प्रेरण करने वाले प्रजापति अग्निके आरम्भमें मनको पहले एकाग्र कर अग्नि के तेजको, बुद्धिपूर्वक इष्टिकादि ज्ञान को पंच पशुओंमें प्रविष्ट जानकर मानसभूमिके लिये धारण किया ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयन्देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

प्रजापति ऋ० शंकुमती गा० छ० और सविता देवता है। मन्त्रार्थ-सवितुः देवस्य सवे, वयं युक्तेन मनसा स्वर्ग्याय शक्त्या) संसारको अपने २ कर्ममें प्रेरणा करने वाले सविता देवकी आज्ञामें वर्त्तमान हम एकाग्र मनसे स्वर्गके साधन करने वाले कर्म में, अपनी सामर्थ्यसे प्रयत्न करते हैं।॥ २ ॥

युक्ताय सविता देवान्त्स्वर्यतोधिदिवम् । बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविताप्रसुवाति तान्

इसका प्रजापति ऋ० निचृदा० छ० सविता दे०मन्त्रार्थ-जिस कारणसे जगत्-प्रेरक देवता (सविता तान् धिया दिवः स्वः यतः बृहत् ज्योतिः करिष्यतः देवान् युक्ताय आ प्रसुवति) सब देवताओं को स्वर्गमें प्रेरणा करने वाला तथा इन्द्रिय गणोंको दमन करने वाला है, उन बुद्धि-पूर्वक कर्मानुष्ठानसे प्रकाशमान स्वर्ग को जानेवाले, महान् आदित्य नामक आत्म-ज्योतिको संस्कार करने वाले, प्रसिद्ध देवताओंको अग्नि कर्ममें संयुक्त कर प्रेरणा करता है ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुना विदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

इस का प्रजापति ऋ०, जगतीछन्द, सविता देवता है। मन्त्रार्थ-(बृहतः विपश्चितः विप्रस्य होत्राः विप्राः मनः युञ्जते उत धियः युंजते एकः इत् वयुनावित् विदधे सवितुः देवस्य परिष्टुतिः मही) अति-महान् महापण्डित ब्राह्मण यजमानका,

होतृकार्य करने वाले अध्वर्यु आदि, इस अग्निचयन कार्यमें मन नियुक्त करते हैं, एक अद्वितीय ही प्रज्ञा तथा ऋत्विक् यजमानके अभिप्रायके ज्ञाताने, यह सब जगत् निर्माण किया है, सबके प्रेरक सवितादेव की, सब वेदोंमें सुनी हुई स्तुति महान् है॥

युजे वाम्ब्रह्म पूर्व्यन्नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥ ५॥

इसका प्रजापति ऋ० विराडार्षी त्रि० छ० सविता दे० है। मन्त्रार्थ-(वाम् नमोभिः पूर्व्यं ब्रह्म युजे ब्रह्म सूरेः श्लोकः व्येतु इव पथ्या अमृतस्य पुत्राः विश्वे शृण्वन्तु ये दिव्यानि धामानि आतस्थुः) हे पत्नी और यजमान! तुम्हारे निमित्त, नम उक्ति सहित पुरातन महर्षियों से अनुष्ठित अग्निचयनाख्य आत्मज्योतिवर्द्धक कर्म सम्पादन करता हूँ, ब्राह्मणजातिको अन्नोंसे तृप्त करता हूँ. पण्डित यजमान की कीर्त्ति लोकद्वयमें प्राप्त हो, जैसे यज्ञभागमें प्रवृत्त हुई आहुति लोकद्वय को प्राप्त होती है, मरणधर्मरहित प्रजापतिके पुत्र सम्पूर्ण देवता यजमानकी कीर्त्तिको सुनें, जो दिव्य स्वर्गके स्थानोंमें स्थित हैं॥ ५॥

यस्य प्रयाणमन्वन्व इद्ययुर्देवादेवस्य महिमानमोजसा। यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजाꣳसि देवः सविता महित्वना॥ ६॥

सबका प्रजापति ऋ० निचृदार्षी ज० छ० सविता देवता है। मन्त्रार्थ-(अन्ये देवाः यस्य देवस्य प्रयाणं महिमानं इत् ओजसा अनुययुः यः सविता रजांसि विममे सः देवः महित्वना एतशः) और देवता जिस सविता देवताकी प्रवृत्तिको महिमा को अवश्य तपोबलसे वर्तते हैं, जिस परमात्माने सम्पूर्ण लोक निर्माण किए हैं वह परमात्मा अपनी महाभाग्य महिमाके प्रभाव से इस स्थावर जंगम लोकमें प्राण-रूपसे प्रविष्ट हुआ व्याप्त है॥ ६॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञम्प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्व्वाचन्नः स्वदतु॥ ७॥

इसका प्रजापति ऋ०, आर्षी त्रि० छ० सविता देवता है। मन्त्रार्थ (देव सवितः यज्ञम् प्रसुव यज्ञपतिं भगाय प्रसुव दिव्यः केतपूः गन्धर्वः नः केतम् पुनातु वाचस्पतिः नः वाचं स्वदतु) हे सबके प्रेरक देव ! यज्ञको प्रेरणा करो, यजमानको सौभाग्य के निमित्त प्रेरणा करो, स्वर्गमें स्थित, दूसरेके चित्तमें वर्त्तमान ज्ञानका शोधन करने वाला, वाणीका धारण करने वाला सविता हमारे चित्तवर्त्ती ज्ञानको ब्रह्मज्ञान से पवित्र करे, वाणीका पति सविता देव हमारी वाणीको मधुरतायुक्त करे हमारी वाणी उसे भली लगे ॥ ७ ॥

इमन्नो देव सवितर्यज्ञमवणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितन्धनजितꣳ स्वर्ज्जितम् । ऋचा स्तोमꣳ समर्द्धय गायत्रेण रथन्तरम्बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, शक्वरी छन्द, सविता देवता है। मन्त्रार्थ-(देवसवितः, नः इमम् देवाव्यम् सखिविदं सत्राजितम् धनजितम् स्वर्ज्जितं यज्ञं प्रणय स्तोमम् समर्द्धय गायत्रेण रथन्तरं गायत्रवर्त्तनि बृहत् स्वाहा) हे सविता देव हमारे इस देवताओंके तृप्त करनेवाले, सखित्व निष्पादक यजमानको जाननेवाले सम्पूर्ण अन्य यज्ञकार्यको वशमें करने वाले द्वादशाहादिकको वशमें करनेवाले, गवादि फलरूप से धनको जीतने वाले, यज्ञके फलसे स्वर्ग को जीतनेवाले, यज्ञको सम्पन्न करो। हे देव ! स्तोत्रकी कारण समाधार ऋचासे त्रिवृतादिको समृद्ध करो, गायत्री छन्दसे रथन्तर सामको, गायत्र साम ही है मार्ग जिसका तिससे बृहत्सामको सम्पन्न करो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ८ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यामूषणो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेनच्छन्दसा गिरस्वत् ॥ ९ ॥

इसका प्रजापति ऋ० भुरिगति शक्वरी छ० सवित्रग्नी देवता है। मन्त्रार्थ-हे अग्नि (सवितुः देवस्य प्रसवे गायत्रेण छन्दसा अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां त्वा अङ्गिरस्वत् आददे अङ्गिरस्वत् त्रैष्टुभेन छन्दसा पृथिव्याः सधस्थात् पुरीष्यम् अग्निं अङ्गिरस्वत् आभर) सबके प्रेरक सवितादेवको प्रेरणासे गायत्री छन्दके प्रभावसे, अश्विनीकुमारकी भुजासे, पूषा देवताके हाथोंसे तुझको अंगिरावंशी ऋषियों के समान ग्रहण करता हूँ अङ्गिरावंशियों की समान त्रिष्टुप् छन्दके प्रभावसे पृथिवी के उत्सङ्ग भीतरसे पशुओंकी हितकारिणी अग्निको अङ्गिराकी समान आहरण कर ९

अभ्रिरसि नार्य्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ। जागतेनच्छन्द-सांगिरस्वत् ॥ १० ॥

इसका प्रजापति ऋ० भुरिगनुष्टुप् छ० अभ्रि दे० है। मन्त्रार्थ हे वैष्णवी तुम (अभ्रिः असि नारी असि त्वया वयं अंगिरस्वत् जागतेन छन्दसा सधस्थे अग्निं खनितुं शकेम) उखा निर्माण करनेको मृत्खनन का कारण काष्ठविशेष अभ्रि नामवाली हो स्त्रीरूपा हो, तुम्हारे द्वारा हम अंगिरा को समान जगती छन्दके प्रभावसे पृथ्वी के उत्संगमें वर्त्तमान अग्निका खनन करने को समर्थ हों ॥ १० ॥

हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अद्भ्या-भरदानुष्टुभेनच्छन्दसांगिरस्वत् ॥ ११ ॥

इसका प्रजापति ऋ० भुरिगार्षी पं० छ० सविता देवता है। मन्त्रार्थ-(सविता हस्ते अंगिरस्वत् हिरण्ययीम् अभ्रिम् आधाय बिभ्रत् अग्नेः ज्योतिः निचाय्य पृथिव्याः अधि आनुष्टुभेन छन्दसा आभरत्) प्रेरक सविता देवताने, हाथमें अंगिराकी समान सुवर्णकी अभ्रिको लेकर उसको धारण करते हुए अग्निको ज्योतिको निश्चय करके भूमिके सकाशसे अनुष्टुप्छन्दके प्रभाव से आहरण किया ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम्। दिवि ते जन्म परमपन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० आस्तारपं० छ० वाजी देवता है। मन्त्रार्थ-(वाजिन् वरिष्ठां सम्वतम् अनु प्रतूर्त्तम् आद्रव, ते दिवि परमं जन्म अन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यां अधि तव योनिः इत्) हे अश्व! हे शीघ्रगामी! श्रेष्ठ यज्ञभूमिको, लक्ष्य करके फिर शीघ्र आओ, तेरा द्युलोकमें आदित्यरूपसे उत्कृष्ट जन्म है, अन्तरिक्षमें तेरी नाभि है. पृथिवीके ऊपर तुम्हारा स्थान है, अर्थात् भूमिमें तुम्हारा निवास-स्थान प्रत्यक्ष दीखता है विराट्रूपसे अश्वकी स्तुति की जाती है ॥ १२ ॥

युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन्यामे वृषण्वसू। अग्निस्भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

इसका कुत्रि ऋषि है, गायत्री छ०, रासभ देवता है । मन्त्रार्थ—(वृषणवसू युवम् अस्मिन् यामे अस्मयुम् अग्निम्भरन्तं रासभम्) हे अध्वर्यु और यजमान ! तुम दोनों इस अग्निकर्ममें अपने हितकारी अग्नि रूप मृत्तिकाको वहन करने वाले, रासभ को नियुक्त करो ॥ १३ ॥

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, गायत्री छ० अज देवता है । मन्त्रार्थ-(सखायः योगे योगे तवस्तरम् इन्द्रम् ऊतये वाजे वाजे हवामहे) परस्पर मित्रताको प्राप्त हुए, हम ऋत्विज् यजमान सब प्रत्येक कर्ममें उत्साहवान् बलवान् अजको रक्षाके निमित्त देवता और पितरोंके तृप्त होने योग्य अन्नप्राप्तिके कर्ममें आह्वान करते हैं ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यम्मयो भूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्ति गव्यूतिरभयानि कृण्वन्पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका शुनःशेप ऋ० छ० १ निचृ० गा० २ भुरिगा० गा० और देवता १ अश्व, २ रासभ है । मंत्रार्थ प्रतूर्वन् अशस्तीः अवक्रामन् एहि मयोभूः रुद्रस्य गाणपत्यम् एहि) हे अश्व ! तुम शत्रुगणका वध करते शत्रुओंकी की हुई निन्दाका निवारण करते हमारे निकट आओ हमारे सुखके कारण होते हुए रुद्र देवता के गणपतित्व को प्राप्त हो, हे रासभ ! (स्वस्ति गव्यूतिः अभयानि कृण्वन् सयुजा पूष्णा उरु अन्तरिक्षं वीहि) भयरहित गमनवाले तुम हमको अभय करते ऋत्विज् यजमानादिका रोग दूर करते समानयोगी पृथ्वीके साथ विस्तीर्ण अन्तरिक्षको विशेष कर प्राप्त हो ॥ १५ ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निम्पुरीष्यमंगिरस्वदच्छेमोग्निम्पुरीष्यमंगिरस्वद्वरिष्यामः ॥ १६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका शुनःशेप ऋ० छ० १ आ० गा० २ सा० गा० ३ आसु० नु० और देवता १ अग्नि २ अश्वाद्या ३ अग्नि है । मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! (पृथिव्याः सधस्थात् पुरीष्यम् अग्निं अङ्गिरस्वत् आभर) भूमिके स्थानसे पशु सम्बन्धी अग्नि को अङ्गिराकी समान आहरण कर (पुरीष्यम् अग्निं अंगिरस्वत् अच्छ इमः) पशु

सम्बन्धी अग्निको अङ्गिराकी समान प्राप्त होनेको अभिमुख प्राप्त होते हैं (पुरोष्यं अग्निं अंगिरस्वत् भरिष्यामः) पशु संबंधी अग्निको अंगिरा की समान संपादन करेंगे

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥ १७ ॥

इसका पुरोधा ऋ०, निचृदार्षी त्रि० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्निः उषसां अग्रम् अन्वख्यत् जातवेदाः प्रथमः अहानि अनु सूर्यस्य रश्मीन् पुरुत्रा अनु च द्यावापृथिवी अनु आततन्थ) जो अग्नि उषाकालसे पहले अग्निरूपसे अनुक्रमसे प्रकाशित रहा, सबका जानने वाला यह अग्नि मुख्य रूपसे दिनोंको प्रकाश करता हुआ सूर्यको किरणोंको बहुत प्रकारसे प्रकाश करता हुआ और स्वर्ग पृथ्वीको क्रमसे सब प्रकार प्रकाशित करता हुआ, उस सर्वप्रकाशक लोकस्रष्टा अग्निको हम देखते हैं ॥ १७ ॥

आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते । अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ १८ ॥

इसका मयोभू ऋषि है, निचृदनु० छ० अश्व देवता है । मन्त्रार्थ-(वाजी अध्वानं आगत्य सर्वाः मृधः विधूनुते महति सधस्थे चक्षुषा अग्निं निचिकीषते) यह वेगवान् अश्व मार्गको आकर सब संग्रामोंको कंपित करता है उत्कृष्ट पृथ्वीके स्थानमें वर्त्तमान स्थिर चक्षुसे अग्निको देखता है ॥ १८ ॥

आक्रम्य वाजिन्पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् । भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

इसका मयोभू ऋ० निचृदनु० छ० अश्व देवता है मन्त्रार्थ-(वाजिन् त्वं पृथिवीम् आक्रम्य रुचा अग्निं इच्छ भूम्याः वृत्वाय नः ब्रूहि यतः वयं तम् खनेम) हे अश्व ! तू भूमिको आक्रमण करके दीप्ति आदिके द्वारा अग्निको अन्वेषण कर भूमिके प्रदेश को छूकर हमसे यह कहो कि यह देश अग्नि हेतुके मृत्तिकाके योग्य है इस प्रकार कथन करो कि जिस देशसे हम उस अग्निको खनन करें ॥ १९ ॥

द्यौस्ते पृष्ठम्पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वामभितिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥

इसका मयोभू ऋषि, निचृदार्षी बृ० छ० अश्व देवता है । मन्त्रार्थ–हे अश्व ! (द्यौः ते पृष्ठम् पृथिवी सधस्थम् अन्तरिक्षं आत्मा समुद्रं योनिः त्वं चक्षुषा विख्याय पृतन्यतः अभितिष्ठ) स्वर्ग तुम्हारा पृष्ठ है, भूमि पात्र है अन्तरिक्ष जीवात्मा है समुद्रका जल तुम्हारी उत्पत्तिका कारण है तुम नेत्रोंसे उखाके योग्य मृत्तिकाको देखकर संग्राम करनेकी इच्छा करने वाले शत्रु राक्षसादिको मृत्तिकामें गूढ़ स्थित जानकर, चरणों से आक्रमण कर नष्ट करो ॥ २० ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निङ्खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

इसका मयोभू ऋ० विराडार्षी प० छ० अश्वदे० है । मन्त्रार्थ (वाजिन् द्रविणोदाः महते सौभगाय अस्मात् आस्थानात् उत्क्राम अस्याः पृथिव्याः उपस्थे अग्निं खनन्तः वयं सुमतौ स्याम) हे अश्व ! धन के देनेवाले तुम बड़े महाभाग्यकी वृद्धिके निमित्त, इस स्थानसे उत्क्रमण करो इस पृथ्वीके ऊपरीभागमें अग्निको खनन करने का उद्योग करते हुए हम सानुग्रह श्रेष्ठ बुद्धिमें स्थित होवें ॥ २१ ॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतम्पृथिव्याम् । ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

इसका मयोभूः ऋषि निचृदार्षी त्रि० छ० अश्व दे० है । मन्त्रार्थ—(अर्वा, द्रविणोदाः वाजी पृथिव्यां उदक्रमीत् सुलोकं सुकृतं अकः ततः नाकम् उत्तमम् स्वः अधिरुहाणाः सुप्रतीकम् अग्निं खनेम) चञ्चल धनप्रद अश्व पृथिवीमें मृत्पिण्डसे उतर आया सुन्दरलोकको पुण्यवान् किया उस देशसे दुःखरहित श्रेष्ठ आरोहण करनेकी इच्छा करने वाले हम सुन्दर सुख देनेवाले पुराण्य अग्निको मृत्पिण्डसे खनन करनेका उद्योग करते हैं ॥ २२ ॥

आ त्वा जिघर्म्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तम्भुवनानि विश्वा । पृथुन्तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमग्ने रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

इसका गृत्समद ऋषि, आर्षी त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—हे अग्ने ! (विश्वानि भुवनानि प्रतिक्षियन्तं तिरश्चा पृथुम् वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठं अन्नैः रभसम् दृशानं त्वा मनसा घृतेन आजिघर्मि) सम्पूर्ण भुवनोंमें निवास करते हुए तिर्यक् प्रमाण, ज्योतिसे विस्तीर्ण, धूमसे महान् अवकाशवान् विविध अन्नों करके परिपूर्ण उत्साहसम्पन्न प्रत्यक्ष गोचर तुमको श्रद्धायुक्त चित्तसे घृतद्वारा प्रदीप्त करता हूँ २३

आ विश्वतः प्रत्यञ्चञ्जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत मर्य्यश्री स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्त्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, आर्षी पं० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! (विश्वतः प्रत्यञ्चम् आजिघर्मि अरक्षसा मनसा तत् जुषेत मर्य्यश्रीः स्पृहयद्वर्णः तन्वा जर्भुराणः अग्निः अभिमृशे न) सब ओर प्रत्यगात्मा रूपसे व्याप्त हो घृत द्वारा निष्कपट मनसे सिंचन करता हूँ, क्रोधरहित चित्तसे उस घृतको सेवन करो मनुष्योंसे सेवन करने योग्य दर्शनीय कान्तिमान् स्वरूप वाले शरीरसे इधर उधर गमन करने वाली अग्नि अभिमर्शनके योग्य नहीं है ॥ २४ ॥

परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

इसका सोमक ऋ०, निचृ० गा० छ०, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(वाजपतिः कविः अग्निः दाशुषे रत्नानि दधत् हव्यानि पर्यक्रमीत्) अन्नका पति, क्रान्तदर्शी अग्नि हवि देने वाले यजमानके निमित्त, मनोहर विविध रत्न प्रदानपूर्वक हवियोंको स्वीकार करता हुआ ॥ २५ ॥

परित्वाग्ने पुरं वयं विप्रथं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णन्दिवे दिवे हन्तारम्भङ्गुरावताम् ॥

इसका पायु ऋषि है, अनुष्टुप् छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (सहस्य अग्ने पुरुं विप्रं धृषद्वर्णं दिवे दिवे भङ्गुरावताम् हन्तारं त्वा वयं परिधीमहि) बलसे मथन कर उत्पन्न होनेवाले हे अग्नि ! पुरु रूपसे सबके शरीरमें स्थित पालन करने वाले

बुद्धिसम्पन्न असह्यरूप प्रतिदिन राक्षस दलको मारने वाले तुमको हम सब ओरसे ध्यान करते हैं ॥ २६ ॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि । त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वन्नृणान्नृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

इसका गृत्समद ऋ० पंक्ति छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(नृपते अग्ने शुचिः आशुशुक्षणिः त्वं द्युभिः जायसे त्वम् अद्भ्यः त्वं अश्मनः परि त्वम् वनेभ्यः त्वम् ओषधीभ्यः त्वम् नृणाम्) मनुष्योंके पालक अग्नि परमपवित्र आर्द्र भूमिको कान्तिसे शोषकर कान्तिसे अन्धकारके दूर करने वाले हो । तुम प्रतिदिन मथन करनेसे उत्पन्न होते हो । तुम जलोंसे बिजलीरूप करके उत्पन्न होते हो, तुम पाषाणसे दूसरा पाषाण लगनेसे उत्पन्न होते हो तुम वनों में अरणि काष्ठसे तुम ओषधियोंसे वंशादि से तुम अग्निहोत्र करने वाले मनुष्योंके घर में होते हो ॥ २७ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि । ज्योतिष्मन्तन्त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्ध्यतम् । शिवम्प्रजाभ्यो हिꣳसन्तम्पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामः ॥२८॥

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं । सबका गृत्समद ऋ० छ० १ प्राजापत्य बृ० २ आर्ची गा० ३ सुराडा० त्रि० है । और दे० १ अग्नि २।३ अग्नि है । मन्त्रार्थ-हे अग्नि (सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां पुरीष्यं अग्निम् पृथिव्याः सधस्थात् अङ्गिरस्वत् खनामि) सबके प्रेरक सविता-देवकी आज्ञामें वर्त्तमान अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे पूषा देवताके हाथोंसे पशु-सम्बन्धी अग्निको भूमिके ऊपर प्रदेशसे अंगिराकी समान खनन करता हूँ, (अग्ने ज्योतिष्मन्त सुप्रतीकं अजस्रेण भानुना दीद्ध्यतम् प्रजाभ्यः शिवम् अहिꣳसन्तं त्वा पुरीष्यं अग्निं पृथिव्याः सधस्थात् अंगिरस्वत् खनामः) हे अग्ने! ज्वालायुक्त सुमुख निरन्तर वर्त्तमान रश्मियोंसे दीप्तिमान् प्रजाके उपकार के निमित्त शान्तरूप हिंसा न करने वाले तुझ पुरीष्य अग्निको भूमिके गर्भसे अंगिरा की समान खनन करते हैं ॥ २८ ॥

अपाम्पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्द्धमानो महाᳬ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं। सबका गृत्समद ऋ० है छ० १ भुरिगा० प० २, आ० प० और देवता पुष्करपर्ण है मंत्रार्थ हे पत्र! तुम (अपां पृष्ठं अग्नेः योनिः असि पिन्वमानं समुद्र अभितः वर्द्धमानः महान् पुष्करे आ) जलोंके ऊपर रहनेसे पृष्ठरूप हो अग्निके निमित्त पिण्डके कारण हो। सींचते हुए जल-समुद्रको सब ओरसे वृद्धिको प्राप्त बड़े जलमें सब प्रकार स्थित हो। हे पत्र (दिवः मात्रया वरिम्णा प्रथस्व) द्युलोकके परिमाणकी दीर्घतासे विस्तार को प्राप्त हो ॥ २९ ॥

शर्म्म च स्थो वर्म च स्थोच्छिद्रे बहुले उभे। व्यचस्वती संवसाथाम्भृतमग्निम्पुरीष्यम् ॥

इसका गृत्समद ऋ० विराडार्ष्यनु० छ० कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवता है मंत्रार्थ हे कृष्णाजिन ! हे पुष्करपर्ण (अच्छिद्रे बहुले व्यचस्वती उभे शं स्थः च वर्म स्थः पुरीष्यं अग्नि संवसाथां च भृतम्) छिद्र-शून्य बहुलविस्तार वाले अवकाश वाले तुम दोनों अग्निके सुखकारी हो और कवचकी समान रक्षा करनेवाले हो पुरीष्य अग्निको आच्छादन करो और धारण करो ॥ ३० ॥

संवसाथाᳬ स्वर्विदा समीची उरसात्मना। अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥

इसका गृत्समद ऋ० निचृदनु० छ० कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवता है। मन्त्रार्थ- हे कृष्णाजिन! हे पुष्करपर्ण (स्वर्विदा समीची अजस्रमित् ज्योतिष्मन्तम् अग्नि अन्तः उदरे भरिष्यन्ती उरसात्मना अग्नि सम्वसाथाम्) स्वर्गलाभके साधन एक-चित्त मिले हुए निरन्तर तेजवान अग्नि को भीतर उदरमें धारण करते हुए हृदय रूप अपने शरीरसे अग्निको चिरकाल धारण करते आच्छादित रक्खो ॥ ३१ ॥

पुरीष्योसि विश्वभरा अथर्व्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्द्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं। सबका भर० ऋ० है। छ० आर्च्युष्णिक् २ निचृ० गा० और सबका अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (अग्ने पुरीष्यः विश्वभरा असि प्रथमा

अथर्वा त्वा निरमन्थत्) हे अग्ने ! तुम पशुओंके हितकारी समस्त चराचरके पालन करने वाले हो, सबसे प्रथम प्राणने तुझको प्रकाशित किया था। हे अग्नि ! (अथर्वा पुष्करात् अधि त्वां निरमन्थत् विश्वस्य वाघतः मूर्ध्नः) प्राणने जलके सकाशसे तुमको मथित किया सम्पूर्ण संसारके सम्बन्धी ऋत्विजोंने आदरसे तुमको मथित किया ॥ ३२ ॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणम्पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० निचृद् गा० छ० अग्नि देवता है मन्त्रार्थ-(अथर्वणः पुत्रः दध्यङ् तमु वृत्रहणम् पुरन्दरम् त्वा ईधे) अथर्वके पुत्र दध्यङ् नामक ऋषिने उस पापनाशक रुद्ररूपसे पुर-सम्बन्धी तीन आवरणोंके भेदक तुमको प्रज्वलित किया

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयꣳ रणे रणे ॥ ३४ ॥

भरद्वाज ऋ० निचृ० गा० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(पाथ्यः वृषा तम् दस्युहन्तमम् रणे रणे धनञ्जयं त्वा ईधे) सन्मार्गमें वर्त्तमान मनके सिञ्चन करनेवाले हे अग्ने ! उस अतिशय शत्रुओंका नाश करनेवाले उन उन संग्रामोंमें धनके जीतने वाले तुमको सन्दीप्त करता हूँ ॥ ३४ ॥

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्ह-विषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥

इसका देवश्रव और देववात ऋ०नि० त्रि० छ० और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(होतः अग्ने चिकित्वान् स्वे उ लोके सीद सुकृतस्य योनौ यज्ञं आसादय अग्ने देवावीः हविषा देवान् आयजसि यजमाने बृहत् वयः धाः) आह्वानकार्यमें नियुक्त हे अग्ने ! चेतनवान् अपने अधिकारको जानने वाले अपने स्थान कृष्णाजिन पर स्थापित किए पुष्करपर्ण पर स्थित हो श्रेष्ठ कर्मके स्थान वाले यज्ञको स्थापन कर हे अग्ने ! देवताओंके प्रसन्न करने वाले तुम हविद्वारा देवताओंको पूजन कर तृप्त करते हो इस कारण यजमानमें बड़ी आयु धारण कर इसमें बड़ा यश स्थापित करो ॥ ३५ ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाꣳ असदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३६ ॥

इसका गृत्समद ऋ० है। त्रिष्टुप् छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(होता विदानः त्वेषः दीदिवान् सुदक्षः अदब्धव्रतप्रमतिः वशिष्ठः सहस्रम्भरः शुक्रजिह्वः अग्निः होतृषदने न्यषीदत्) देवताओंका आह्वान करने वाले अपने अधिकारको जाननेवाले दीप्तिमान् गमनवान् कुशल सिद्धकर्मा और अतिउत्कृष्ट बुद्धि वाले पृथ्वीके प्रधान निवासी सहस्राके पोषण करने वाले अति पवित्र जिह्वा वाले अग्नि होमनिष्पादक उत्तर वेदीरूप यज्ञस्थानमें भली प्रकार उपविष्ट हुए ॥ ३६ ॥

स॒ꣳसीद॒स्व महाꣳ असि॒ शोच॑स्व देव॒वीत॑मः । वि धू॒मम॑ग्ने अरु॒षम्मि॑येधृ॒ य सृ॒ज प्रश॑स्त दर्श॒तम् ॥ ३७ ॥

इसका प्रस्कण्व ऋ० निचृदा० बृ०छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(मियेध्य प्रशस्त अग्ने देववीतमः महान् असि संसीदस्व शोचस्व दर्शतम् अरुषम् धूमं विसृज) यज्ञ के उपयोगी श्रेष्ठ हे अग्ने ! तुम देवगणके प्रियतम बड़े हो इस कृष्णाजिन पर पातित पुष्करपर्ण पर स्थित हो होतृधिष्ण्यादिसे उपस्थापित होकर प्रदीप्त हो आहुतिप्राप्ति से दर्शनीय सघन धूमको छोड़ो ॥ ३७ ॥

अपो॒ दे॒वीरुप॑सृज॒ मधु॑मतीरय॒क्ष्माय॑ प्र॒जाभ्यः॑ । तासा॑मा॒स्थाना॑दुज्जिहतामो॒षध॑यः सु॒पिप्प॑लाः ॥ ३८ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० न्यंकुसारिणी बृ०छ० आप देवता है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! (प्रजाभ्यः अयक्ष्माय देवीः मधुमतीः अपः उपसृज तासां स्थानात् सुपिप्पलाः ओषधयः आउज्जिहताम्) प्रजाओंके आरोग्य के निमित्त देवनशील तेजोमय अमृतरूपी जल इस खनन प्रदेशमें सिंचन करो, उन सींचे जलोंके स्थानसे सुन्दर फल वाली औषधी सब प्रकार प्राप्त करो ॥ ३८ ॥

सन्ते॑ वा॒युर्मा॑तरिश्वा दधातूत्ता॒नाया॑ हृ॒दयं॒ यद्विक॑स्तम् । यो दे॒वानां॒ चर॑सि प्रा॒णथे॑न॒ कस्मै॑ दे॒व व॑षडस्तु॒ तुभ्य॑म् ॥ ३९ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं। सबका सिंधुद्वीप ऋ० निचृ० त्रि० छ० है और दे० १ पृथिवी २ वायु है। मन्त्रार्थ-हे भूमि ! (उत्तानायाः ते यत् हृदयं विकस्तं मात-

रिश्वा सन्दधातु) ऊर्ध्वमुखसे अवस्थित तेरा जो हृदयपिण्ड विराट्रूपसे विकसित है, उस स्थानको वायु, जलप्रक्षेप तृणादि पूरणसे सम्यक् करे। (देव यः देवानां प्राणथेन चरसि तुभ्यं कस्मै वषट् अस्तु) हे देव! जो तुम सम्पूर्ण देवता अग्नि आदि के प्राणभावसे विचरण करते हो तुम्हारे निमित्त प्रजापतिरूप से यह पृथिवी वषट्-कार वाली हो ॥ ३९ ॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म्म वरूथमासदत्स्वः। वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ॥ ४० ॥

इसका सिंधुद्वीप ऋ० भुरिगनु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(सुजातः ज्योतिषा सह शर्म स्वः वरूथम् आसदत्) भली प्रकारसे प्रकट यह अग्नि अपनी ज्योति के सहित सुखरूप स्वर्गको समान वरण-योग्य ग्रह व कृष्णाजिनपर स्थित हो (विभावसो अग्ने विश्वरूपं वासः संव्ययस्व) हे दीप्ति धनवाले! हे अग्ने! यह विचित्र वर्ण कृष्णाजिनरूप वस्त्र परिधान करो ॥ ४० ॥

उदुत्तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया। दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिरग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ४१ ॥

इसका विश्वमनाः ऋ० पथ्याबृहती वा भुरिगनु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(स्वध्वर अग्ने उत्तिष्ठ देव्या धिया नः उ आ अव च सुशुक्वनिः बृहता भासा दृशे सुशस्तिभिः) हे सुन्दर यज्ञके निर्वाहक अग्निदेव! उठो दिव्यगुण क्रीड़ाके स्वभाव वाली बुद्धिसे हमको सब प्रकारसे पालन करो और श्रेष्ठ किरणोंके फैलाने वाले बड़े तेजसे सब प्राणियोंको देखनेके निमित्त सुंदर कीर्त्ति करके आगमन करो ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्व ऊषु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता, यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥

इसका कण्व ऋ० उपरिष्टाद्बृहती छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ हे अग्ने! (नः ऊतये सविता देवः न ऊर्ध्वः ऊषु आतिष्ठ ऊर्ध्वः वाजस्य सविता यत् अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे) हमारी रक्षाके निमित्त सबके प्रेरक सूर्य देवताकी समान ऊँचे होते ऊर्ध्व

स्थित हो ऊँचे होते तुम अन्नके देने वाले हो जिसकारण कि-मन्त्रके उच्चारण करने वाले हव्यवाहक ऋत्विजों द्वारा आह्वान करते हैं ॥ ४२ ॥

सजातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु। चित्रः शिशुः परि तमाꣳस्यक्तून् प्रमातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ ४३ ॥

इसका त्रित ऋ० विराट् त्रि० छन्द अश्व देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने सः चारु ओषधीषु विभृतः चित्रः शिशुः रोदस्योः जातः गर्भः असि अक्तून् तमांसि परि मातृभ्यः अधि कनिक्रदत् प्रगाः हे अग्ने! वह तुम शोभन पूजनीय पुरोडाशादि लक्षण वाली ओषधियोंमें पुष्ट करनेको स्थित अनेक वर्णकी ज्वालाओंसे विचित्ररूप इस समय उत्पन्न होनेके कारण शिशुरूप द्यावापृथ्वी के मध्यमें उत्पन्न हुए गर्भरूप रात्रि लक्षण वाले अंधकारोंको दूर करते हुए औषधि वनस्पतियोंके प्रकाशसे अत्यन्त शब्द करते हुए शीघ्रतासे चलो ॥ ४३ ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुखदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ४४

इसका त्रित ऋ० विराडनु० छ० रासभ देव० है। मन्त्रार्थ-(अर्वन् स्थिरः वीड्वङ्गः भव आशुः वाजी भव पुरीषवाहणः त्वं पृथुः अग्नेः सुखदः भव) हे गमनमें कुशल रासभ! स्थिर होकर स्थिर काया वाले हो, वेगवान् होकर अन्नके हेतु हो, पुरीष्य अग्नि तुम पृष्ठको विस्तीर्ण करते अग्नि देह रूप मृत्तिकाके सुखसे स्थितिके योग्य हो ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः। मा द्यावापृथिवी अभिशोचीर्मान्तरिक्षम्मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

इसका त्रित ऋ० विराट् पथ्या बृ० छन्द अज देवता है। मन्त्रार्थ (अङ्गिरः त्वं मानुषीभ्यः प्रजाभ्यः शिवः भव द्यावापृथिवी मा अभिशोचीः अन्तरिक्षं मा वनस्पतीन् मा) हे अग्निरूप अग्निके प्रियशिशु अज! तुम मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओंके निमित्त कल्याणकारी शान्त हो, द्यावापृथिवीको मत सन्तप्त करो अन्तरिक्षको मत सन्तापित करो वनस्पतियोंको मत सन्तापित करो ॥ ४५ ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा। भरन्नग्निम्पुरीष्यम्मा पाह्य युषः पुरा। वृषाणि

वृषणम्भरन्नपाङ्गर्भꣳ समुद्रियम्। अग्न आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं। सबका त्रित ऋ० छ० १ पंक्ति २ साम्न्यनु० ३ एकपदा गा० और देवता १ अश्व २ रासभ ३ अग्नि है। मन्त्रार्थ-(वाजी कनिक्रदत् प्रेतु पत्वा रासभः नानदत् पुरीष्यं अग्निं भरन् आयुषः पुरा मा पाहि) वेगवान् अश्व अति—हर्षित शब्द करता हुआ वेगसे गमन करो, पतनशील गर्दभ दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ, यवस वाहनके निमित्त पीछे चले यह अश्व पशु सम्बन्धी अग्निको धारण करता हुआ कर्म से पहले मन विनाशको प्राप्त हो कर्म-समाप्ति पर्यन्त जीवनको प्राप्त हो (वृषा वृषणम् अपां गर्भं समुद्रियम् अग्निं भरन्) सिंचनमें समर्थ रासभ आहुतिपरिणामसे फलदानमें समर्थ जलोंके मध्य मेघोंमें विद्युतरूपसे होने वाले सागरमें बड़वारूप से होनेवाले अग्निको धारण करता आगमन कर (अग्ने वीतये आयाहि) हे अग्निदेव ! हवि भक्षणके निमित्त आगमन करो

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः। ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायंतमभ्यत्र युष्माः। व्यस्यन्विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नोअपदुर्म्मतिञ्जहि ४७

इस कण्डिकामें चार मन्त्र हैं। सबका त्रित ऋ०छ० १ प्राजाप० गा० २ सा०गा० ३ निचृ० नु० ४ नि० सा० त्रि० और दे० १।२।४ अग्नि ३ ओषधी है मन्त्रार्थ-(ऋतम् सत्यम् सत्यम् ऋतम्) आदित्यरूप अग्निरूप व्यष्टि-समिष्टरूप अग्नि है, ऐसी ऋत और सत्यरूप अग्निको आज्ञा पर रक्षित करते हैं (पुरीष्यं अग्निं अंगिरस्वत् भरामः) पशु-सम्बन्धी अग्निको अंगिराकी समान संग्रह करते हैं (ओषधयः एतम् शिवं अत्र युष्मा अभि आयन्तं अग्निं प्रति मोदध्वम् निषीदन् नः विश्वाः अनिराः अमीवाः व्यस्यन् दुर्मतिं अपजहि) हे सम्पूर्ण औषधियों ! तुम इस शान्त कल्याण-कारक और इस स्थलमें तुम्हारे सम्मुख आते हुए अग्निके सन्मुख प्रत्युत्थानादिसे आमोदित करो। हे अग्ने तुम यहाँ स्थित होते हमारे सम्पूर्ण दुर्भिक्षपीड़ा ईति व्याधियोंको दूर करते हुए हमारी हवनदानसे पराङ्मुख दुर्मतिका नाश करो ॥ ४७ ॥

ओषधयः प्रतिगृह्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

इसका त्रित ऋ० भुरिगा० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(ओषधयः पुष्पवतीः सुपिप्पलाः प्रतिगृभ्णीत वः गर्भः ऋत्वियः अयं प्रत्नं सधस्थं आसदत्) हे सम्पूर्ण औषधियों ! तुम फूलों वाली अच्छे फल वाली तुम इस अग्निको स्वीकार करो। तुम्हारे गर्भरूप ऋतुकालको प्राप्त यह अग्नि पुरातन स्थानको स्थित हुआ ॥ ४८ ॥

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः। सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्ने रक्षसं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

इसका उत्कील ऋ० त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(पृथुना पाजसा शोशुचानः द्विषः रक्षसः अमीवाः विबाधस्व सुशर्मणः बृहतः सुहवस्य अग्नेः प्रणीतौ अहं शर्मणि स्याम्) बड़े विस्तार वाले बलसे दीप्तिमान् हे अग्नि ! तुम शत्रुओंको राक्षसोंको समस्त व्याधियोंको विशेष दूर करो अच्छे सुखके कारण प्रौढ़ महान् सुख से बुलानेको शक्य अग्निके प्रसन्न करनेके कार्यमें नियुक्त मैं सुखमें प्राप्त हूँ ॥ ४९ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋषि गा० छ० आप देवता है। मन्त्रार्थ—(आपः मयोभुवः स्थ नः महे रणाय चक्षसे हि ऊर्ज्जे आदधातन) हे जलसमूह ! तुम सुखके करने वाले सुख को भावना करने वाले स्नान पानादिसे सुख के उत्पादक हो, हमारे बड़े रमणीय दर्शन के निमित्त और निश्चय ही रसानुभवके निमित्त स्थापन करो ॥ ५० ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋषि गा० छ० आप देवता है। मन्त्रार्थ हे जलो ! (वः यः शिवतमः रसः इह नः तस्य भाजयत उशतीः मातरः इव) तुम्हारा जो शान्तरूप सुखका एक ही कारण रस इस कर्ममें है, हमको उस रसका भागी करो प्रीतियुक्त माता जैसे कि अपने स्तनको बालकोंको पिलाती हैं ॥

तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋषि गा० छ० आप देवता है। मन्त्रार्थ-(आपः वः तस्मै अरं गमाम यस्य क्षयाय जिन्वथ च नः जनयथ) हे जलो ! तुम्हारे सम्बन्धी उस रसके निमित्त शीघ्र चलें जिसके निवास जगत्के आधारभूत तृप्त करते हो और उसके भोग से हमको उत्पन्न करते हो ॥ ५२ ॥

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीम्भूमिञ्च ज्योतिषा सह। सुजातञ्जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋषि उपरिष्टाद् बृ० छन्द मित्र देवता है मन्त्रार्थ-(मित्रः पृथिवीं च भूमिं ज्योतिषा सह सꣳसृज्य सुजातं जातवेदसं त्वा प्रजाभ्यः अयक्ष्माय सꣳसृजामि) मित्र देवता आदित्य द्युलोक और इस पिण्डरूप भूमिको ज्योतिरूप अजलोम के साथ एकत्र करके मुझ अध्वर्युको देता है और मैं भी सुन्दर जन्म वाले प्रज्ञासंयुक्त अजलोम नामक तुझ अग्निको प्रजाओंके रोगनिवृत्तिके निमित्त पिंडसे युक्त करता हूँ

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे। तेषाम्भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋषि अनुष्टुप्छन्द रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ-(रुद्राः पृथिवीं संसृज्य बृहज्ज्योतिः समीधिरे तेषां शुक्रः भानुः देवेषु अजस्रः इत् रोचते) जिन रुद्रों ने पार्थिव-पिण्डको वालु लोहकिट्ट और पाषाणचूर्णसे संयुक्त करके प्रौढ़ अग्निको प्रदीप्त किया उन रुद्रोंकी शुद्ध प्रदीप्त ज्योति देवताओंके मध्यमें परिपूर्ण भली प्रकार प्रकाशित होती है ॥ ५४ ॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्याम्मृदम्। हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥ ५५ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋषि विराडनुष्टुप् छन्द सिनीवाली देवता है,मन्त्रार्थ (सिनीवाली धीरैः वसुभिः रुद्रैः संसृष्टाम् मृदम् हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा तां कर्मण्यां कृणोतु) चन्द्रकलायुक्त अमावस्याभिमानी देवता बुद्धिमान् वसुगण रुद्रगणों द्वारा शर्करादि से संयोजित मृत्तिकाको हाथोंसे कोमल करके उसको ऊखाकर्मके योग्य करें ॥५५॥

सिनिवाली सुकपर्दा सुकरीरा स्वौपशा। सा तुभ्यमदिते मह्योखान्दधातु हस्तयोः ५६

इसका सिंधुद्वीप ऋषि, विराडनुष्टुप् छन्द, अदिति देवता है। मन्त्रार्थ-(अदिते महि सा सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा सिनीवाली तुभ्यं अस्तयोः उखां स्थापयतु) हे दीनतारहित देवमाता! हे पूजित,वह सुंदर केश और धनवाली,सुंदर मस्तकके चंद्रिका वाली,विलासमें चतुर अवयव वाली,चंद्रकला-युक्त अमावास्याभिमानिनी देवी ! तुम्हारे हाथोंमें पाकपात्र उखाको स्थापित करो ॥ ५६ ॥

उखाङ्कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ । मखस्य शिरोसि ॥ ५७ ॥

इस कंडिकामें २ मन्त्र हैं, सबका सिंधुद्वीप ऋषि, छन्द १ निच्चृ०नु०, २ याजुषी गा० और देवता १ अदिति, २ मृत्पिंड है मन्त्रार्थ-(अदितिः शक्त्या धिया बाहुभ्यां उखां कृणोतु सा गर्भे आ अग्निं बिभर्तु यथा माता उपस्थे पुत्रम्) अदिति देवता अपनी सामर्थ्यसे बुद्धिद्वारा हाथोंसे उत्कर्ष विधान पूर्वक पाकपात्र करे, वह उखा अपने मध्य में सब प्रकारसे अग्निको धारण करे, जैसे जननी गोदीमें पुत्रको धारण करती है ५७

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानायादित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसांगिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेनच्छन्दसांगिरस्वद्ध्रुवासि दिशोसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

इस कंडिकामें ४ मन्त्र हैं, सबका सिंधुद्वीप ऋषि, छ० १ ब्राह्म्यनु०, २ आर्ष्यनु० ३ ब्राह्म्यनु०, ४ ब्राह्मी बृहती और सबका उखा देवता है । मन्त्रार्थ-हे उखे! (वसवः गायत्रेण छन्दसा अङ्गिरस्वत् त्वा कृण्वन्तु ध्रुवा असि पृथिवी असि मयि यजमानाय प्रजां रायः पोषं गौपत्यं सुवीर्यम् सजातान् आधारय) वसुगण गायत्रीछन्दके प्रभावसे अङ्गिराकी समान तुझको करें, उनकी की हुई तुम दृढ़ हो पृथ्वीरूप हो, मुझ यजमान के निमित्त, सन्तान धन पुष्टि गोपतित्व सुन्दर पराक्रम सहोदरगणके सहित हम को यथोचित सौहार्द धारण कराओ । हे उखे ! (रुद्राः त्रैष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत्

त्वा कृण्वन्तु ध्रुवा असि अन्तरिक्षं असि) रुद्रगण त्रिष्टुभ् छन्दके प्रभावसे अङ्गिराकी समान तुझको निर्माण करें, तुम दृढ़ हो, कारण कि अन्तरिक्षरूपा हो, शेष पूर्ववत्। हे उखे! (आदित्याः जागतेन छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा कृण्वन्तु ध्रुवा असि द्यौः असि) बारह आदित्य जगती छन्दकी सामर्थ्यसे अङ्गिराकी समान तुझको निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि द्युलोकरूप हो, शेष पूर्ववत्। (वैश्वानराः विश्वेदेवाः आनुष्टुभेन छंदसा त्वा अंगिरस्वत् कृण्वंतु ध्रुवा असि दिशः असि) सब मनुष्योंसे प्राप्त होने योग्य विश्वेदेवा देवता अनुष्टुभ् छन्दके प्रभाव से हे उखे! तुझको अंगिराकी समान निर्माण करें तुम दृढ़ हो कारण कि दिशास्वरूप हो, शेष पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे विलङ्गृभ्णातु कृत्वा य सा महीमुखाम्मृन्मयीं योनिमग्नये। पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं। सबका सिन्धुद्वीप ऋ० छ० १ या०गा० २ या०यू० ३ उष्णगनु० और दे० १ रास्ना २ उखा ३ अदिति है। मन्त्रार्थ-हे मृत्तिकानिर्मित रेखा! तुम (अदित्यै रास्नाअसि) अदितिरूप उखाकी कांचीगुणके स्थान वाली हो। हे उखे! (अदितिः ते विलं गृभ्णातु) देवमाता तुम्हारे मध्यको ग्रहण करे (सा अदितिः महीं मृण्मयीं अग्नये योनि उखा कृत्वाय श्रपयान पुत्रेभ्यः प्रायच्छत् इति) देवमाता अदिति यह बड़ी मृत्तिकाकी अग्निकी स्थानभूत उखा निर्माण कर पाक कार्य सम्पादनके निमित्त इस प्रकार कह कर कि हे पुत्रो तुम इसको पाक करो प्रदान करती हुई ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेणच्छन्दसांगिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेनच्छन्दसांगिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेनच्छन्दसांगिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

इस कंडिकामें सात मन्त्र हैं। सबका सिन्धुद्वीप ऋ० छ० १ आर्ची गा० २ निचृदार्षी गा० ३ आर्ची गा० ४ नि० गा० ५।७ याजु० ६ प्राजापत्या गा० है और सबका उखा दे० है। मन्त्रार्थ-हे उखे! (वसवः गायत्रेण छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा धूपयंतु) वसु गायत्री छन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुझको धूपित करें (रुद्राः त्रैष्टुभेन

छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा धूपयन्तु) रुद्र त्रिष्टुभ छन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुमको धूपित करें (आदित्याः जागतेन छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा धूपयन्तु) आदित्य जगतीछन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुमको धूपित करें (वैश्वानराः विश्वदेवाः आनुष्टुभेन छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा०) सब के हितकारक विश्वेदेवा देवता अनुष्टुप् छन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुझको धूपित करें। (इन्द्रः त्वा धूपयतु वरुणः त्वा धूपयतु विष्णुः त्वा धूपयतु) इन्द्र तुझको धूप दे, वरुणदेव तुझको धूप दे, विष्णु देवता तुझको धूप दे ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत्खनत्वघट देवानान्त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वद्दधतूखे धिषणास्त्वादेवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वदभीन्धतामुखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वच्छ्रयन्तूखे ग्नात्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत्पचन्तूखेजनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत्पचन्तूखे

इस कंडिका में ६ मन्त्र हैं। सबका सिन्धुद्वीप ऋ० छ० १।२।३ प्र० त्रि० ४ आर्षी बृ०५ साम्नी ज०।६ आर्षी प० देवता १ अवट और सबका उखा है। मन्त्रार्थ- (अवट विश्वेदेव्यावती देवी अदितिः पृथिव्याः सधस्थे त्वा अंगिरस्वत् खनतु) हे गर्त्त ! विश्वेदेव्यावती समस्त देवताओं की अधिष्ठात्री समस्त दिव्यगुणसम्पन्न देवमाता पृथिवीके ऊपर भागमें तुझको अंगिराकी समान खनन करें। (उखे देवानां पत्नीः विश्वदेव्यावती देवीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत् त्वा अभीन्धताम्) हे उखे ! देवताओंकी स्त्री औषधियें समस्त देवगणोंके सहित दीप्यमान पृथिवी के ऊपर अंगिराकी समान तुझको स्थापन करें (उखे विश्वदेव्यावतीः धिषणाः देवीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत् त्वा अभीन्धताम्) हे उखे ! समस्त देवतोंकी अधिष्ठात्री वाणीकी अधिष्ठात्री देवी पृथ्वीके ऊपर अंगिराके समान तुझको दीप्त करे। (उखे विश्वदेव्यावतीः वरूत्रयः देवीः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत् त्वा श्रयंतु) हे उखे सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त अहोरात्र के अभिमानी देवता पृथिवीके ऊपर अंगिराकी समान तुझे पकावें (उखे विश्वदेव्यावतीः ग्नाः देवीः पृथिव्याः सधस्थे

अंगिरस्वत् त्वा पचन्तु) हे उखे ! समस्त देवोंकी अधिष्ठात्री वैदिक छन्दोंकी अधिष्ठात्री देवता पृथिवीके ऊपर अंगिराकी समान तुझको पक्व करे आशय यह कि-जब तक पके निरन्तर वेदपाठ होता रहै । (उखे अच्छिन्नपत्राः जनयः देवोः विश्वदेव्यावतोः पृथिव्याः सधस्थे अंगिरस्वत् त्वा पचन्तु) हे उखे ! निरन्तर गमनशील नक्षत्राभिमानी देवियें सब देवताओं के सहित पृथिवीके ऊपर अंगिराके समान तुझको पाक करें ॥ ६१ ॥

मित्रस्य चर्षणी धृतोर्वो देवस्य सानसि । द्युम्नश्चित्र श्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० निचृ० गा० छ० मित्र देवता है । मन्त्रार्थ-(देवस्य चर्षणीधृतः मित्रस्य अवः सानसिः द्युम्नं चित्रं श्रवस्तमम्) दीप्तिमान् मनुष्योंके पोषण करने वाले मित्रदेवताका रक्षण जो कि-सनातन यशोरूपसे प्रसिद्ध विचित्र तथा अत्यन्त श्रवणके योग्य है उसकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ६२ ॥

देवस्त्वा सवितोद्वयतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या । अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण ॥ ६३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० भुरिगा० बृ० छ० उखा देवता है । मन्त्रार्थ—हे उखे । (सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुः देवः सविता शक्त्या उत् त्वा उद्वयतु) सुन्दर हाथ सुन्दर अँगुली सुंदर भुजा वाले दिव्य गुणयुक्त सबके प्रेरक देवता अपनी शक्ति से बुद्धिसे तुझको भस्मसे प्रकाशित करें । हे उखे ! (अव्यथमाना पृथिव्यां आशाः दिशः आपृण) व्यथाको न प्राप्त होनेवाली अचल पृथ्वीमें स्थित हुई तुम पूर्व आदि दिशा और आग्नेयी आदि दिशाओंको आहुतिके रससे पूर्ण करो ॥ ६३ ॥

उत्थाय बृहती भवोदुतिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मित्रैतान्त उखाम्परि ददाम्यभित्या एषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० आर्ष्यनु०छ० उखामित्रौ देवता है । मन्त्रार्थ—हे उखे ! (त्वम् उत्थाय बृहती भव उतऊ ध्रुवा उत्तिष्ठ) तुम इस पाकपात्रसे बाहर निकल कर बड़े सत्कारयोग्य हो और स्थिर होकर अपने कर्ममें प्रवृत्त हो (मित्र एताम् उखां अभित्यै ते परिददामि एषा मा भेदि) हे मित्र देवता ! प्राणियोंके हित करने वाले

इस उखाको खण्डित न होनेके लिये आपके निमित्त देता हूँ, यह तुम्हें सौंपी हुई उखा किसी प्रकार विदीर्ण न हो, यथावत् रहे ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वा छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वदुद्रास्त्वा छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

इस कंडिकामें चार मन्त्र हैं। सबका विश्वामित्र ऋ० छ० १। ३ भुरिगार्ची २ प्राजा० नु० ४ नि० सा० ज० और सबका उखा देवता है। मन्त्रार्थ-हे उखे! (वसवः गायत्रेण छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा आछृन्दन्तु) वसु गायत्री छन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुझको अजादुग्धसे सिंचित करें। हे उखे! (रुद्राः त्रैष्टुभेन छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा आछृन्दन्तु) रुद्रगण त्रिष्टुभ् छन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुझको सिंचन करें। हे उखे! (आदित्याः जागतेन छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा आछृन्दन्तु) आदित्यगण जगती छन्दकी सामर्थ्यसे अंगिराकी समान तुझको सिंचन करें। हे उखे! (वैश्वानराः विश्वेदेवाः आनुष्टुभेन छन्दसा अंगिरस्वत् त्वा आछृन्दन्तु) विश्वके हितकारी विश्वेदेवा अनुष्टुप छन्दके प्रभावसे अंगिराकी समान तुझको सिञ्चन करें ॥ ६५ ॥

आकूतिमग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा

इस कंडिका में ६ मन्त्र हैं। सबका विश्वामित्र ऋ० है। छ० १ या० प० २।३ ४ या० त्रि० ५ या० प० ६ आ० त्रि० और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मन्त्रार्थ—(आकूतिं अग्निं प्रयुजं स्वाहा) यज्ञ संकल्पके प्रेरक अग्निको इस यज्ञकर्ममें प्रयुक्त किया उसके निमित्त यह आहुति प्रदान की जाती है। (मनः मेधां प्रयुजम् अग्निं स्वाहा) मन और मेधा मन्त्रधारण शक्तिको प्रेरणा करने वाले अग्निको आहुति देते हैं। (चित्तं विज्ञातं प्रयुजम् अग्निं स्वाहा) चित्त अविज्ञात अनुष्ठानके ज्ञानसाधन विज्ञानके प्रेरक अग्निको आहुति देते हैं। (वाचः विधृतिं प्रयुजम् अग्निं स्वाहा) मन्त्रपाठरूप वाणी और विशेष धारणाके प्रेरक अग्निको आहुति देते हैं। (मनवे

प्रजापतये स्वाहा वैश्वानराय अग्नये स्वाहा) मन्वन्तरको प्रवृत्त करने वाले प्रजापतिके निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो विश्वके हितकारी अग्नि देवताके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥६६॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ६७ ॥

इसका स्वस्त्यात्रेय ऋ० आर्ष्यनुष्टुप् छ० सविता देवता है । मन्त्रार्थ-(विश्वः मर्तः नेतुः देवस्य सख्यं वुरीत पुष्यसे द्युम्नं वृणीत राये विश्वः इषुध्यति स्वाहा) सम्पूर्ण मनुष्य फलको प्राप्त कराने वाले परमात्माके सख्यभावको प्रार्थना करें । कर्म उपासना ज्ञानकी पुष्टिके निमित्त यश वा अन्नकी इच्छा करें धन प्राप्तिके निमित्त सब मनुष्य उनसे प्रार्थना करते हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ६७ ॥

मा सु भित्था मा सु रिषोम्ब धृष्णु वीरयस्व सु अग्निश्चेदङ्करिष्यथः ॥ ६८ ॥

इसका आत्रेय ऋ०आर्षी गा०छ०उखाग्नी दे० हैं. मन्त्रार्थ-(अम्ब सु मा भित्थाः सु मा रिषः धृष्णुः सु वीरयस्व अग्निः च इदम् करिष्यथः) हे माता उखे ! तुम अवश्य ही मत विदीर्ण हो, अवश्य ही मत विनाशको प्राप्त हो, किन्तु प्रगल्भतापूर्वक भलीप्रकार वीरकर्म करो अग्नि और तुम समाप्ति पर्यन्त इस हमारे कार्यको करोगे ॥ ६८ ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टन्देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥

इसका आत्रेय ऋ० त्रिष्टुप् छन्द उखा देवता है । मन्त्रार्थ-(देवि पृथिवि स्वस्तये दृꣳहस्व स्वधया आसुरी माया कृता असि इदं हव्यं देवेभ्यः जुष्टं अस्तु त्वं अरिष्टा अस्मिन् यज्ञे उदिहि) हे देवी ! पृथिवि उखे ! यजमानके कल्याणके निमित्त दृढ़ हो अन्नके निमित्त प्राणसम्बन्धिनी प्रज्ञा की गई हो यह हवियोग्य अन्न देवताओं के निमित्त प्रिय हो, कार्य शेष पर्यन्त तुम अभग्नरूपसे इस यज्ञमें अवस्थिति करो ॥

द्रवन्नः सर्प्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥

इसका सोमाहुति ऋ० विराड् गा० छ० अग्नि० देवता है । मन्त्रार्थ-(द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नः होता वरेण्यः सहसः पुत्रः अद्भुतः) जिसका प्रधानभक्ष्य घृताश-

काष्ठ है जिसका प्रधान पानी घृत है, जो पुरातन देवगणोंका आह्वान करने वाला वरणीय बलसे मथन करने पर उत्पन्न होने वाला आश्चर्यरूप है वह अग्निदेवता कार्मुकी समिद्को भक्षण करें ॥ ७० ॥

परस्या अधि संवतो वरा५् अभ्यातर । यत्राहमस्मि ता५् अव ॥ ७१ ॥

इसका विरूप ऋ० विराड् गा० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(परस्याः सम्वतः अवरान् अभ्यातर यत्र अहं अधि अस्मि तां अव) शत्रुसम्बन्धी संग्रामसे हमारे जनों को दुःखसे तारनेको सन्मुख आओ और जिस स्थानमें मैं सम्यक् स्थित हूँ उस स्थानकी रक्षा करो ॥ ७१ ॥

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इदागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोग्ने त्वन्तरा मृधः ॥७२॥

इसका वारुणि ऋषि है, भुरिगनुष्टुप् छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने रोहिदश्वः पुरीष्यः पुरुप्रियः त्वं परमस्याः परावतः इह आगहि मृधः आतर) हे अग्नि-देव! रोहित नाम अश्व रखने वाले पशुओं के हितकारी बहुजन-प्रिय तुम अत्यंत दूर देशसे इस यज्ञकर्ममें आगमन करो संग्राममें शत्रुओंका विनाश कर उत्तीर्ण होओ ॥७२॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वन्तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥

इसका जमदग्नि ऋ० निचृद० छन्द अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(यविष्ठ्य अग्ने यत् कानिचित् दारूणि ते ते आदध्मसि तत् सर्वं ते घृतं अस्तु तत् जुषस्व) हे युवश्रेष्ठ अग्नि! जो कोई भी काष्ठ तुम्हारे निमित्त अर्पण करें वह सब तुमको घृतकी समान प्रिय हो, उसको प्रीति सहित सेवन करो ॥ ७३ ॥

यदत्युपजिह्विका यद्वम्रो अति सर्पति । सर्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुषस्व यविष्ठ्य ।७४।

इसका जमदग्नि ऋ० विराडनुष्टुप् छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ हे अग्ने! (उपजिह्विका यत् अत्ति वम्रः यत् अतिसर्पति यविष्ठ्य तत् ते घृतं अस्तु तत् जुषस्व) दीपकगण जो काष्ठ भक्षण करते हैं वल्मीक जिस काष्ठके पार हो निकलती है हे तरुण अग्ने! वह समित् तुमको घृतवत् प्रिय हो उसको प्रीतिसे सेवन करो ॥

अहरहरप्रयावम्भरन्तोश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै। रायस्पोषेण समिषा मदन्तोग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋषि विराट् त्रिष्टुप् छ० अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ- अग्ने ते प्रतिवेशा अहरहः अप्रयावम् अस्मै घासं भरन्तः तिष्ठते अश्वाय इव रायः पोषेण इषा सम्मदन्तः मा रिषाम) हे अग्ने! तुम्हारे आश्रय वाले हम निरन्तर अप्रमत्त को समान इस अग्निदेवके निमित्त जैसा वाजिशालामें स्थित घोड़ेको प्रतिदिन घास दी जाती है तैसे समिधारूप धनकी पुष्टि और अन्नसे हर्षको सम्पादन करते नाश का प्राप्त न हों ॥ ७५ ॥

नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे। इरम्मदबृहदुक्थं यजत्रञ्जेतारमग्निम्पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द है, अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ- (पृथिव्याः नाभा समिधाने अग्नौ इरम्मदम् बृहदुक्थम् यजत्रम् पृतनासु जेतारं सासहिं अग्निं बृहते रायस्पोषाय हवामहे) पृथ्वी के नाभिस्वरूप उखाके मध्यमें दीप्यमान आहवनीय नाम अग्निके प्रज्वलित होनेपर अन्नसे तृप्त होने वाले बड़े शस्त्रस्तोत्र वाले यजन पूजनके योग्य संग्रामोंमें जीतने वाले शत्रुओंका निरादर करने वाले अग्निके अधिष्ठात्री देवताको बहुतसे धनकी पुष्टिके निमित्त आह्वान करते हैं ॥ ७६ ॥

याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत। ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते अग्ने पिदधम्यास्ये ॥ ७७ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० भुरिगनुष्टुप् छ० अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ-(याः सेनाः अभीत्वरीः उत आव्याधिनीः उगणः ये स्तेनाः च ये तस्कराः अग्ने तान् ते आस्ये अपिदधामि) जो शत्रुकी सेना हमारे सन्मुख आने वाली है और जो सेना हमारी सब प्रकारसे ताड़न करने वाली है और जो शस्त्रधारी हैं, जो डाकू हैं, अग्ने! उनको तुम्हारे प्रज्वलित मुखमें आहुति करता हूँ ॥ ७७ ॥

दंष्ट्राभ्याम्मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्करा२ उत। हनुभ्या२ स्तेनान् भगवस्तास्त्वं खाद मुखादितान् ॥ ७८ ॥

इसका नाभा नेदिष्ट ऋ० भुरिगार्ष्युष्णिक् छ० अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ—(भगवः त्वं मलिम्लून् दंष्ट्राभ्यां तस्करान् जम्भयै ऽत् स्तेनान् हनुभ्यां तान् सुखादितान् खाद) हे परमऐश्वर्य सम्पन्न परात्पर परमेश्वर हे अग्निस्वरूप! जो गाँवमें प्रकटभावसे चोरी करते हैं। उनको केवल डाढ़ोंसे तस्करोंको जो निर्जन स्थानमें दस्युवृत्ति करते हैं उनको आगेके दाँतोंसे और चोरोंको ठोढ़ोसे पीड़ित करो उन अच्छे प्रकार नष्ट करने योग्योंको जीवित रहित करके भक्षण करो ॥ ७८ ॥

ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासस्तस्करा वने। ये कक्षेष्वघायवस्तांस्ते दधामि जम्भयोः ॥

इसका नाभा नेदिष्ट ऋ० निचृद् छ० अग्निदेवता है। मन्त्रार्थ-(ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासः वने तस्कराः ये कक्षेषु अघायवः तान् ते जम्भयोः दधामि) जो ग्रामवर्ती मनुष्योंके स्थानमें पूर्वोक्त मलिम्लुच और स्तेन नामसे प्रसिद्ध गुप्त चोर हैं, जो वनमें निर्जन प्रदेशमें गमन करते हैं तस्कर नामसे प्रसिद्ध चोर हैं, जो नदी पर्वत गहन स्थानोंमें पापाभिलाषी लोभसे मनुष्योंके प्राण हरने वाले हैं, हे अग्ने उन सबको तुम्हारी डाढ़ोंके अन्तरमें खानेको स्थापन करता हूँ ॥ ७९ ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः। निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वन्तमस्मसा कुरु ॥ ८० ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० अनुष्टुप्छन्द अग्निदेवता। मन्त्रार्थ-(यः जनः अस्मभ्यं अरातीयात् च यः नः द्वेषते यः निन्दात् च अस्मान् धिप्सात् तं सर्वम् भस्मसा कुरु) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करे जो हमारे देयधनको हमें न दे और जो हमसे द्वेष कर हमारे कार्यको नष्ट करे जो हमारी निन्दा करे गुणमें दोष करे और जो हमारे प्राणवधका यत्न करे उन चार प्रकारके अराती द्वेषी निन्दक जिघांसु सबको भस्म करो ॥

सꣳशितम्मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम्। सꣳशितङ् क्षत्रञ्जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः

इसका नाभा नेदिष्ट ऋ० निचृ०प०छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने वा हे परमात्मन्! आपके प्रसादसे (मे ब्रह्म संशितम् वीर्यं बलं संशितं यस्य अहं पुरोहितः अस्मि क्षत्रं जिष्णुः संशितम्) मेरा ब्रह्मतेज तीक्ष्ण हुआ इन्द्रिय शक्ति शरीर शक्ति स्वकार्यमें समर्थ हुई जिसका मैं पुरोहित हूँ। उसके क्षत्रतेज जयशीलको तीक्ष्ण किया ॥ ८१ ॥

उदेषाम्बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणा मित्रानुन्नयामि स्वाꣳ अहम्

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० विराडनु० छ० अग्नि दे० है। (एषाम् बाहू उदितरम् वर्चः बलम् अहम् ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणोमि स्वान् उन्नयामि) मंत्रार्थ-इन परमात्मा अग्नि के प्रसादसे इन अपने ब्राह्मण राजाओंके बीचमें अपनी भुजा ऊँची की यह लोकोक्ति भी है, कि जब कोई औरोंसे उत्कृष्ट होता है तब लोक कहते हैं इसने अपना हाथ ऊपर किया तेजने सबकी कान्तिको अतिक्रमण किया बलने शरीर शक्तिने सबके वयको अभिभूत किया मैं मन्त्रकी सामर्थ्य से अमित्र शत्रुओंको नष्ट करता हूँ, अपने पुत्र पौत्रादिका उत्कृष्टताको प्राप्त करता हूँ इस प्रकार तेरह समिधाके मन्त्र कहे ८२

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्रप्रदातारन्तारिष ऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० उपरिष्टा० बृ० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अन्नपते नः अनमीवस्य शुष्मिणः अन्नस्य देहि प्रदातारं प्रतारिषः नः द्विपदे चतुष्पदे ऊर्ज्जं धेहि) हे अन्नके पालक अग्ने ! हमारे व्याधिरहित बलदायक अन्नको प्रदान करो अन्नके देने वाले हमारी अतिवृद्धि करो और हमारे मनुष्य पुत्रादि गौ आदिकोंमें अन्नको धारण करो ॥ ८३ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

—०—

❀ द्वादशोऽध्यायः ❀

जिसमें अग्निचयन प्रधान है ऐसे ग्यारहवें अध्याय में उखासम्भरणादि समिदाधानान्तके मन्त्र कहे। अब बारहवें अध्यायमें उखाधारणके मन्त्र कहे जायँगे ॥

दृशानो रुक्म ऽउर्व्या व्यद्यौद् दुर्म्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनन्द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० भुरिग् पंक्ति छ० रुक्म देवता है। मन्त्रार्थ-(दृशानः श्रिये रुचानः दुर्मर्षम् आयुः रुक्मः उर्व्या व्यद्यौत् अग्निः वयोभिः अमृतः अभवत् यत् सुरेताः द्यौः एनं अजनयत्) प्रत्यक्ष प्राप्त मनुष्यों को लक्ष्मी प्रदान करनेके निमित्त अभिल-

सहित अखण्डित आयुवाला सुवर्णाभरण बड़ी दीप्तिसे प्रकाशित होता है, सो यह अग्नि अन्नादिके पुरोडाशादिसे चिरस्थायी हुआ क्योंकि सुंदर अग्निरूप द्युलोक-वासी देवगणोंने इस अग्निको प्रकट किया है १

नक्तोषा सा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, सबका कुत्स ऋ० छ० १ साम्नी त्रि० २।२ याजुषी त्रि० और देवता सबका अग्नि है मन्त्रार्थ-हे उखे (समनसा विरूपे समीची नक्तोषा एकं शिशुं धापयेते) समान मनवाले कृष्ण शुक्ल भेदसे विलक्षण रूप परस्पर मिले हुए रात्रिदिन एक बालकरूप अग्निको सायं प्रातः अग्निहोत्रादि कर्मसे तृप्त करते हैं। (द्यावाक्षामा अन्तः रुक्मः विभाति) ऊपर द्युलोक और नीचे भूलोकके मध्यमें जो रोचमान अग्नि विशेष शोभित होती है। उसको उठाता हूँ। (द्रविणोदाः देवाः अग्निं) यज्ञद्वारा धनरूप फलके दाता देवगणोंने अग्निको धारण किया ॥ २ ॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे । वि नाकमख्यत्सविता वरेण्यो अनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ३ ॥

इसका श्यावाश्व ऋ० विराड् जगती छ० सविता दे० है ।।मन्त्रार्थ—(वरेण्यः कविः सविता विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते द्विपदे चतुष्पदे भद्रं प्रासावीत् नाकं व्यख्यत् उषसः प्रयाणम् अनु विराजति) श्रेष्ठ विद्वान् जगत्के प्रेरक सविताके प्रभाव से सम्पूर्ण जगत्की वस्तुएँ विविध प्रकारके रूपोंको धारण करती हैं, द्विपाये मनुष्यादि चौपाये गौ आदि सब प्रकारके प्राणियों को स्वस्वव्यवहार प्रकाशनरूप श्रेयको प्रेरणा करता है (नाकं व्यख्यत् उषसः प्रयाणं अनु विराजति) स्वर्गको प्रकाश करता है और जो उषाकालके गमनके पीछे विराजमान होता है ॥ ३ ॥

सुपर्णोसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रञ्चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियम्पुच्छन्धिष्ण्याः शफाः सुपर्णोसि गरुत्मान्दिवङ्गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

इसका श्यावाश्व ऋ० भुरिग्धृति छ० सुपर्ण दे० है। मन्त्रार्थ हे उखाग्ने ! जिस कारण कि तुम ऊर्ध्वगामी होनेमें समर्थ हो और महान् हो इस कारण तुम (सुपर्णः गरुत्मान् असि त्रिवृत् ते शिरः गायत्रम् ते चक्षुः बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोमः आत्मा छन्दांसि अङ्गानि यजूंषि नाम वामदेव्यं साम ते तनूः यज्ञायज्ञियं पुच्छम् विष्णयाः शफाः गरुत्मान् सुपर्णः असि दिवं गच्छ स्वः पत) सुन्दर पंख वाले वेगगामी गरुड़की समान हो, त्रिवृत् स्तोम तुम्हारा शिर है, गायत्री तुम्हारे नेत्र हैं, बृहत् और रथन्तर साम तुम्हारे दोनों पंख हैं, पञ्चदशस्तोम तुम्हारा अन्तःकरण है, गायत्री आदि इक्कीस छन्द तुम्हारे हृदयादि अङ्ग हैं, इषेत्वा आदि यजुः तुम्हारे नाम हैं, वामदेव्य नामक साम तुम्हारा शरीर है, यज्ञायज्ञिय नामक साम तुम्हारी पुच्छ है, होतृ आदि धिष्ण्यमें स्थित अग्नि तुम्हारे खुरोंके नख हैं, इस प्रकार हे अग्ने तुम वेगवान् गरुड़की समान पक्षिरूप हो इस कारण आकाशको गमन करो स्वर्ग लोकको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गायत्रच्छन्द आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यभिमातिहा त्रैष्टुभच्छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यरातीयतो हन्ता जागतच्छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमोसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभच्छन्द आरोह दिशोनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

इस कंडिकामें चार मन्त्र हैं। सबका श्यावाश्व ऋ० छ० १।२।४ निचृदार्षी बृ०३ आर्ची बृ० और देवता सबका उखाग्नि है, मन्त्रार्थ—हे प्रथम पादविन्यास ! तुम (विष्णोः सपत्नहा क्रमः असि गायत्रः छन्दः आरोह पृथिवीम् अनु विक्रमस्व) यज्ञाग्निके शत्रुघाती क्रम हो इस कारण गायत्री छन्दको अनुग्रह कर स्वीकार करो फिर भूदेवता रूप इस भूमिके प्रदेशको विशेष कर प्राप्त करो। हे द्वितीय पादविन्यास ! तुम (विष्णोः अभिमातिहा क्रमः असि त्रैष्टुभम् छन्दः आरोह अन्तरिक्षम् अनु विक्रमस्व) उखाग्निके पापनाशक क्रम हो त्रिष्टुभ् छन्दको अनुग्रह कर स्वीकार करो, पश्चात् अन्तरिक्ष स्थानको प्राप्त करो, हे तृतीय पादविन्यास ! तुम (विष्णोः क्रमः अरातीयतः हन्ता असि जागतं छन्दः आरोह दिवं अनु विक्रमस्व) उखाग्निके क्रम धन लेकर न देनेवालोंके नाशक हो। जगती छन्दको आरोहण करो द्युलोक को

गमनके पीछे स्थानको प्राप्त करो। हे चतुर्थ पादविन्यास ! (विष्णोः क्रमः शत्रूयतः हन्ता असि आनुष्टुभम् छन्दः आरोह) तुम उत्क्रमके क्रम शत्रुता करने वालेके नाशक हो, अनुष्टुभ् छन्दको आरोहण करो हे अग्ने ! तुम (दिशः अनुविक्रमस्व) सब दिशा विदिशाओंमें परिव्याप्त होओ ॥५॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामां रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृ० त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(द्यौः इव स्तनयन् क्षामां रेरिहत् वीरुधः समञ्जन् अग्निः अक्रन्दन् हि जज्ञानः सद्यः इद्धः इम् व्यख्यत् रोदसी अन्तः भानुना आभाति) स्वर्गकी समान अर्थात् मेघकी समान गर्जना करते पृथ्वीको आस्वादन करो, वृक्षोंको अंकुरित करता हुआ अग्नि प्रदीप्त होता है, जिस कारणसे कि प्रकट होता हुआ शीघ्र ही दीप्त हो,इस सबको विख्यात अर्थात् प्रकाश करता है, द्यावापृथिवीके मध्यमें रश्मिद्वारा प्रकाशित होता है ॥६॥

अग्नेभ्यावर्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण

इसका वत्सप्री ऋ० भुरिगार्ष्यनु०छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अभ्यावर्तिन् अग्ने आयुषा वर्चसा प्रजया सन्या मेधया रय्या पोषेण मा अभि निवर्त्तस्व) हमारे सन्मुख आनेके स्वभाव वाले गमनागमन में समर्थ हे अग्निदेव परमात्मन् ! आयु तेज कान्ति सन्तान इष्टलाभ धारणावती बुद्धि सुवर्णादि अलङ्कार आयु आदिकी पुष्टिके साथ मेरे सन्मुख प्राप्त हूजिये ॥७॥

अग्ने अङ्गिरः शतन्ते सन्त्वावृतः सहस्रन्त उपावृतः । अधा पोषस्य पोषेण पुनर्न्नो नष्टमाकृधि पुनर्न्नो रयिमाकृधि ॥ ८ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० आर्षी त्रि० छ० अग्नि दे०। मन्त्रार्थ— (अङ्गिरः अग्ने ते आवृतः शतम् ते उपावृतः सहस्रं सन्तु अध पोषस्य पोषेण नः नष्टं पुनः आकृधि पुनः नः रयिम् आकृधि) हे श्रेष्ठ अंगवाले हे अग्निदेवता ! आपकी गमनागमन शक्ति सैंकड़ों हैं, आपकी निवृत्ति शक्ति सहस्रों हैं इस कारण प्रार्थना करते हैं, कि शतसंख्यक आवृत्ति शक्तियोंकी समृद्धिकी लक्षसंख्यादि वृद्धि द्वारा हमारे व्यय हुए

धनको फिर सब प्रकार सम्पादन करो, फिर भी हमारे पूर्वसम्पादित धनका सब प्रकार सम्पादन करो अर्थात् आवृत्ति शक्तिके प्रभावसे हमको असंख्य धनका अधिकारी करो और उपावृत्ति शक्तिके प्रभावसे नष्टधन पुनः प्राप्त कराओ ॥८॥

पुनरूर्ज्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ९ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृदार्षी गा० छ० अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ— अग्ने ऊर्जा पुनः निवर्त्तस्व इषा आयुषा पुनः पुनः अꣳहसः पाहि) हे अग्निदेवता ! तुम क्षीरादि रसके सहित फिर आगमन करो अन्न जीवनके साथ फिर आगमन कर आये हुए तुम हमको फिर पापोंसे रक्षा करो ॥ ९ ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृदार्षी गा० छ० अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने रय्या सह निवर्त्तस्व विश्वप्स्न्या धारया विश्वतः परि पिन्वस्व) हे अग्निदेव ! धूमके सहित लौटो सब संसारके उपभोग योग्य वृष्टि रूप जलधारासे सम्पूर्ण जगत्के तृण धान्य लता वृक्षोंके ऊपर सिंचन करो ॥१०॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छंतु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्

इसका ध्रुव ऋषि आर्ष्यनु० छंद अग्नि देवता है मन्त्रार्थ—हे अग्नि ! (त्वा आहार्षं अविचाचलिः ध्रुवः अन्तरभूः तिष्ठ सर्वाः विशः त्वा वाञ्छन्तु) तुमको मैंने आहरण किया है, अत्यन्त अचल होकर तुम स्थिरतायुक्त उखाके मध्यमें स्थित हो, हमारी सम्पूर्ण प्रजा तुम्हारी इच्छा करे (राष्ट्रं त्वत् मा अधिभ्रशत्) हमारा राज्य तुमसे शून्य नहीं हो ॥ ११ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १२ ॥

इसका शुनःशेप ऋषि विराडार्षी छन्द वरुण देवता है मन्त्रार्थ (वरुण उत्तमं पाशं अस्मत् उत् आश्रथाय अधमम् अव मध्यमं अथ आदित्य अनागसः तव व्रते वयम् अदितये स्याम) हे सकलपाशतापनिवारक देव ! हमारे उत्तम अङ्ग शिरमें स्थापित अपनी पाशको हमसे निकाल कर दूर करो तथा अधम अंग पादप्रदेशमें स्थित अपनी

पाशको सब प्रकार खैंचकर दूर करो मध्यम प्रदेशमें स्थित अपनी पाशको विच्छेद करो तीनों पाशके विनाशके अनन्तर हे अदिति-पुत्र ! अखण्डित शक्तिमान् वरुण ! अपराध रहित तुम्हारे कर्ममें वर्त्तमान हम दीनता-रहित अखण्डित तत्त्वके योग्य हों ॥१२॥

अग्ने बृहन्नुषसामूर्द्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् । अग्निर्भानुनारुशता स्वंग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १३ ॥

इसका त्रित ऋषि भुरिगा०प० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(बृहत् अग्निः उषसाम् अग्रे ऊर्द्ध्वः अस्थात् तमसः निर्जगन्वान् ज्योतिषा आ अगात् रुषता भानुना स्वङ्गः जातः विश्वा सद्मानि आ अप्राः) प्रभावसे महान् अग्नि उषःकालके आगे ऊँचा स्थित हुआ रात्रि-रूप अंधकारसे निकले दिनरूप ज्योतिके सङ्ग यहाँ प्राप्त हुआ अंधकारको दूर करताहुआ किरणजालसे शोभन शरीर वाला हुआ उत्पन्नमात्र ही सम्पूर्ण स्थान अर्थात् सब लोकोंको सब प्रकार अपने तेजसे पूर्ण करता हुआ ॥ १३ ॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ १४ ॥

इस कंडिकामें २ मन्त्र हैं, सबका त्रित ऋ० छ० १ निचृत् ज० २ दैव्युष्णिक् और और देवता सबका अग्नि है। दशवें अध्याय के २४वें मन्त्रमें इसकी व्याख्या होगई १४

सीद त्वमस्मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् । मैनान्तपसा मार्चिषाभिशोचीरन्तस्याꣳ शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥ १५ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराट् त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अग्ने विश्वानि वयुनानि विद्वान् त्वं अस्याः मातुः उपस्थे सीद एनाम् तपसा मा अभि शोचीः अर्चिषा मा अस्यां अन्तः शुक्रज्योतिः विभाहि) हे अग्निदेवता ! सम्पूर्ण ज्ञानके उपायोंको जानने वाले तुम इस माताकी समान उखा की गोदमें स्थित हो इसको सन्तापसे मत सन्तापित करना ज्वालासे मत दीप्त करना इस उखाके मध्यमें निर्मल प्रकाशसे विशेष प्रदीप्तिमान् हो ॥ १५ ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने सीद । तस्यास्त्वꣳहरसा तप्तजातवेदः शिवो भव ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराडनु० छन्द अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अग्ने त्वं रुचा उखायाः अन्तः स्वे सदने जातवेदः त्वं हरसा तपन् तस्याः शिवः भव) हे अग्ने! तुम अपनी दीप्तिसे इस उखाके मध्यमें अपने घरमें दीप्त होकर स्थित हो, हे सब के जानने वाले तुम ज्योतिसे तपते हुए उस उखाके कल्याणकारी हूजिये ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्व्वाः स्वयोनिमिहासदः

इसके त्रित ऋ० विराडनु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने त्वं मह्यं शिवः भूत्वा अथो शिवः सीद सर्वाः दिशः शिवाः इह योनिं आसद) हे अग्निदेवता! तुम मेरे निमित्त कल्याणकारी होकर और इसके अनन्तर सर्वात्मासे शान्तरूप होकर स्थित होओ संपूर्ण दिशाओंको कल्याणरूप करके इस उखारूप अपने स्थानमें स्थित हूजिये।

दिवस्परि प्रथमञ्जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयम्परि जातवेदाः। तृतीयमप्सु नृम्णा अजस्रमिन्धान एनञ्जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृ० त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(जातवेदाः अग्निः प्रथमम् दिवः परिजज्ञे द्वितीयं अस्मत्परि) सबके ज्ञाता अग्नि प्रथम द्युलोकमें सूर्यरूप से प्रकट हुए दूसरा जातवेदा अग्नि हम ब्राह्मणोंके सकाशसे प्रादुर्भूत हुआ (नृम्णा तृतीयं अजस्रं अप्सु) प्रजापतिने तीसरी वार निरन्तर जलोंके भीतर स्थित अग्नि को सृजन किया (स्वाधीः एनं इन्धानः जरते) सुन्दर बुद्धि वाला यजमान इस अग्निको प्रदीप्त करता हुआ प्रकट करता है ॥ १८ ॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ १९ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृ० त्रि०छ० अग्नि दे० है.मन्त्रार्थ-(अग्ने त्रेधा त्रयाणि ते आविद्म पुरुत्र विभृता ते धाम आविद्म यत् ते परमं गुहा नाम आविद्म तं उत्सम् आविद्म यतः आजगन्थ) हे अग्निदेव! जो पूर्व मन्त्रमें कहे तीन स्वरूप आदित्य अग्नि वडवानल रूप हैं, तीनों उन तुम्हारे रूपों को हम जानते हैं और आपके सम्बन्धी गार्हपत्य आहवनीय अन्वाहार्य पचन अग्नीध्रीयादि स्थानोंमें तुम धारण करने वालेके स्थानोंको भी हम जानते हैं और जो तुम्हारा अत्यन्त गुप्त मन्त्रमें परि-

गणित प्रसिद्ध नाम है उसको भी जानते हैं और उस उत्स्यन्दन जलरूप स्थानको भी जानते हैं, जिस जलरूप स्थानसे विद्युत् रूपसे तुमसे प्राप्त हुए हों ॥ १९ ॥

समुद्रे त्वा नृम्णा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्। तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाꣳ समपामुपस्थे महिषा अवर्द्धन् ॥ २० ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृ० त्रि० छन्द अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ—(अग्ने नृम्णाः समुद्रे ईधे नृचक्षाः अप्सु अन्तः दिवः ऊधन् तृतीये रजसि तस्थिवांसं त्वा महिषा अपां उपस्थे अवर्धन्) हे अग्ने ! मनुष्यों के हितकारी प्रजापतिने समुद्रमें बडवानल रूपसे वर्त्तमान तुमको प्रदीप्त किया पढ़ते हुए पुरुषोंमें स्पष्ट मन्त्रके कहने वाले प्रजापतिने वृष्टिरूप जलोंके भीतर विद्युत्रूप से प्रकाशित किया द्युलोकके उत्कृष्ट तीसरे रञ्जन करने वाले तेजोमण्डल आदित्यरूपसे स्थित होते हुए तुमको प्रजापतिने दीप्त किया महान् प्राणोंने जलोंके उत्सङ्गमें स्थित तुमको प्रदीप्त किया ॥ २० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामारेरिहद्वीरुधः समञ्जन्। सद्यो जजानो विहीमिद्धो अख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

इसकी व्याख्या छठे अध्यायमें होचुकी है। भावार्थ-अग्नि देवता मेघकी समान गर्जन करते पृथ्वीको आस्वादन करते औषधि वृक्षादिको अंकुरित करते शीघ्र प्रकट होकर द्यावापृथ्वीमें परिव्याप्त होकर प्रभावसहित देदीप्यमान होते हैं ॥ २१ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् मनीषाणाम्पार्प्पणः सोमगोपाः। वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ॥ २२ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृदा० त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(श्रीणां उदारः रयीणाम् धरुणः मनीषाणाम् प्रार्पणः सोमगोपाः वसुः सहसः सूनुः अप्सु राजा उषसाम् अग्रे इधानः विभाति) गौ घोड़े आदि सम्पत्तिका अतिशय देनेवाला धनका धारण करने वाला मनके अभिलाषों का प्राप्त करनेवाला यजमानके किये सोमयागका रक्षक सबका निवासहेतु मन्थनके वेगरूप बलसे प्रकट होनेसे पुत्ररूप जलमें स्थित वरुणरूपसे राजा प्रभातके प्रथम आदित्यरूपसे दीप्यमान अग्नि विशेष कर प्रकाशित होता है कारण कि-प्रभातकालमें अग्नि होमादिसे प्रकट होता है ॥ २२ ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आरोदसी अपृणाज्जायमानः। वीडुश्चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० आर्ची त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-यह अग्नि (विश्वस्य केतुः भुवनस्य जायमानः रोदसी आ अपृणात्) सम्पूर्ण जगत्का विज्ञानस्वरूप आत्माग्नि सब प्राणिमात्रोंके अन्तरमें वायु आत्मासे प्रकट होने वाला द्यावापृथिवीको सब प्रकार तेजसे पूर्ण करता है-(परायन् वीडुम् चित् अद्रिं अभिनत्) चन्द्ररूपसे सब ओर गमन करता अतिदृढ़ भी मेघको विदीर्ण करता है अर्थात् जो प्रतिदिन उदित होकर अतिसुदृढ़ पर्वतका भी रन्ध्र-भेद कर भूलोकसे द्युलोक पर्यन्तको अपनी ज्योतिसे पूर्ण करता है (पञ्चजनाः अग्निं आ अजयन्त) मनुष्यगण उस अग्निका सब प्रकार यजन करते हैं ॥ २३ ॥

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि। इयर्त्ति धूममरुषम्भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृ० त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(उशिक् पावकः अरतिः सुमेधाः अमृतः अग्निः मर्त्येषु निधायि अरुषम् धूमम् उदियर्त्ति भरिभ्रत् शुक्रेण शोचिषा द्याम् इनक्षन्) लोकोंका काम्य कान्तिमान् शोधक दुष्टोंसे प्रीति रहित श्रेष्ठ बुद्धिमान् मरणधर्म रहित अग्नि मरणधर्मा मनुष्योंमें देवताओं द्वारा स्थापन किया गया, उपद्रव रहित धूमको वृष्टिके निमित्त आकाशमें प्राप्त करता है, जगत्को धारण करता हुआ निर्मल प्रभावयुक्त कान्तिसे द्युलोकको व्याप्त किया ॥ २४ ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौ दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनन्द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १२ के मन्त्र १ में होचुकी है ॥ २५ ॥

यस्ते अद्य कृणवद्भद्र शोचेऽपूपन्देव घृतवन्तमग्ने। प्र तन्नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नन्देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० विराडा०त्रि०छ० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(भद्रशोचे देव अग्ने अद्य यः ते घृतवन्तं अपूपं कृण्वत् यविष्ठ तं प्रतरम् वस्यः प्रणय देवभक्तम् सुम्नं अभि) हे कल्याणदीप्ति ! हे दिव्य-गुण संयुक्त अग्ने ! इस समय आज प्रति-पदामें जो यजमान तुम्हारे निमित्त घृत-सिक्त पुरोडाशको करता है, हे अतियुवा ! उस यजमानको अतिश्रेष्ठ स्थान दो देव-ताओंके भोगयोग्य सुख सब प्रकारसे प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥

आ तम्भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्थ आभज शस्यमाने। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनदुज्जनित्वैः ॥ २७ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० विराडा०त्रि०छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने तम् सौश्र-वसेषु आभज उक्थे उक्थे शस्यमाने आभज सूर्ये प्रियः अग्ना प्रियः भवाति जातेन उद्भिनदत् जनित्वैः उत्) हे अग्ने ! उस यजमानको कीर्त्ति बढ़ाने वाले यज्ञ कर्ममें सब प्रकार सेवन करो, प्रति उक्थकाण्डमें स्तोत्र शस्त्रादि द्वारा सम्पन्न कर तुम उसको अपना प्रीतिपात्र करो और सूर्यका प्रियपात्र करो. अग्निका प्रिय हो उत्पन्न हुए पुत्रसे वृद्धिको प्राप्त हो ॥ २७ ॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजङ्गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ २८ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० विराडार्षी त्रि० छ० अग्नि देवता है। भावार्थ-(अग्ने यज-मानः त्वां अनुद्यून् वार्य्याणि विश्वा वसु दधिरे त्वया सह द्रविणं इच्छमानाः उशिजः गोमन्तं व्रजं विवव्रुः) हे अग्नि देवता ! यजमान तुम्हारी सेवामें वर्त्तमान हुए दिन में वरणीय सम्पूर्ण धनधान्य गोहिरण्यादि ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, तुम्हारे साथ यज्ञ-फलको तुम्हारी सेवा करनेसे इच्छा करते हुए बुद्धिमान् ज्ञानकर्म समुच्चयकारी जनोंने रविमण्डलके मध्यमें देवयान मार्ग को सेवन किया ॥ २८ ॥

अस्ताव्यग्निर्नराशंसुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः। अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मै सुवीरम् ॥ २९ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० विराडा० त्रि० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(नराणां सुशेवः वैश्वानरः सोमगोपाः अग्निः ऋषिभिः अस्तावि अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवाः अस्मे सुवीरम् रयिम् धत्त) मनुष्योंको सुन्दर सुख देनेवाला जठराग्नि रूपसे सबका हितकारी सोमरक्षक अग्नि देवता ऋषियों द्वारा स्तुति किया गया । द्वेषरहित भूमि और द्युलोकके अधिष्ठात्री देवताको आह्वान करते हैं । हे देवताओं ! हमारे निमित्त वीरपुत्र सुन्दर ऐश्वर्यको स्थापन करो ॥ २९ ॥

समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । अस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

इसकी व्याख्या ३ अध्याय १ क० में होगई है ॥ ३० ॥

उदु त्वा विश्वेदेवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः

इसका तापस ऋ० विराडनु० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने विश्वे देवाः उ चित्तिभिः उद्भरन्तु सः सुप्रतीकः विभावसुः त्वं नः शिवः भव) हे अग्ने ! सम्पूर्ण प्राणरूप देवता हो उद्यममें प्रवीण बुद्धिकी वृत्तियोंके द्वारा तुमको ऊँची धारण करें वह ऊर्ध्व हुए सुन्दर मुखवाले दीप्ति रूप धनवाले तुम हमारे कल्याणकारक होओ

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवेभिरर्च्चिभिष्ट्वम् बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः

इसका तापस ऋ० विराडनु० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने शिवेभिः अर्चिभिः इत् ज्योतिष्मान् त्वं प्रयाहि बृहद्भिः भानुभिः भासन् तन्वा प्रजाः मा हिंसीः) हे अग्ने ! मङ्गलयुक्त ज्वालाओं करके ही प्रकाशवान् तुम गमन करो बड़ी किरणोंसे प्रकाशवान् शरीरसे प्रजा पुत्रादि को किसी प्रकार पीड़ा मत दो ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

इस मन्त्रकी व्याख्या इसी अध्यायके ६ मन्त्रमें होगई ॥ ३३ ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः । अभि यः पूरुम्पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० है, आर्षी त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयं अग्निः भरतस्य प्रश्रृण्वे सूर्यः नः बृहद्भाः प्ररोचते यः पृतनासु पूरुम् अभितस्थौ दैव्यः अतिथिः नः शिवः दीदाय) यह अग्नि हवि धारण करने वाले यजमानके आह्वानको सुनता है सूर्यकी समान बड़ा दीप्तिमान् होता हुआ अत्यन्त प्रकाशवान् होता है, जो संग्रामोंमें राक्षसके सन्मुख स्थित होता है, देह-सम्बन्धी अतिथि हमारा मङ्गलरूप अग्नि दीप्तिमान् होता है ॥ ३४ ॥

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुद्ध्वꣳ सुरभा उ लोके तस्मै नमन्ताञ्जनयः सुपत्नीर्म्मातेव पुत्रम्बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० आर्षी त्रि० छन्द आप देवता है। मन्त्रार्थ-हे (देवीः आपः भस्म प्रतिगृभ्णीत स्योने सुरभौ लोके उ एतत् कृणुध्वम् सुपत्नीः जनयः तस्मै नमन्ताम् एनत् अप्सु बिभृत माता पुत्रं इव) दीप्यमान जलों ! तुम भस्मको ग्रहण करो सुखकारक पुष्प धूपादिसे सुन्दर गन्धयुक्त स्थानमें ही इसको धारण करो जिनके सुन्दर पति वरुण हैं, वह वृक्षादि को उत्पन्न कर अग्निकी प्रकट करने वाली हैं, उस भस्मरूप अग्निके निमित्त नवो। हे जलों ! इस भस्मको जलोंमें धारण करो। जैसे कि मैया पुत्रको धारण करती है ३५

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुद्ध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ३६ ॥

इसका विरूप ऋ० निचृ० गा० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने अप्सु तव सधिः सः ओषधीः अनुरुध्यसे गर्भे सन् पुनः जायसे) हे भस्मी भूत अग्ने ! जलोंमें तुम्हारा स्थान है, वही भस्म जल से प्रकट होकर यवादि रूपको प्राप्त होते हो अरणीके मध्यमें होते हुए फिर प्रकट होते हो ॥ ३६ ॥

गर्भो अस्योषधीनाङ्गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥

इसका विरूप ऋ० भुरिगार्ष्यु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने ओषधीनाम् गर्भः असि वनस्पतीनाम् गर्भः विश्वस्य भूतस्य गर्भः अपां गर्भः असि) हे अग्ने ! तुम ओषधियोंके गर्भ हो वनस्पतियोंके गर्भ हो, सम्पूर्ण प्राणियोंके गर्भ हो सम्पूर्ण जलोंके गर्भ हो ॥ ३७ ॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने। स॒ꣳ सृज्य मातृभिष्ट्वञ्ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥

इसका विरूप ऋ० निचृदार्ष्य० छ० अग्नि देवता है मन्त्रार्थ-(अग्ने त्वं भस्मना योनिम् पृथिवीं च अपः प्रसद्य मातृभिः संसृज्य ज्योतिष्मान् पुनः आसदः) हे अग्ने तुम भस्म द्वारा कारणभूत पृथ्वीको और जलोंको प्राप्त होकर मातारूप जलों से सम्मिलत हो तेजस्वी होकर फिर उखामें स्थित हु जये ॥ ३८ ॥

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने। शेषे मातुर्य्ययोपस्थेन्तरस्याꣳ शिवतमः ॥३९॥

इसका विरूप ऋ० निचृदनु० छन्द अग्नि देवता है, मन्त्रार्थ-(अग्ने शिवतमः अपः च पृथ्वीम् सदनं आसद्य पुनः अस्यां अन्तः शेषे यथा मातुः उपस्थे) हे अग्ने! अति कल्याणरूप तुम जल और पृथिवीके स्थानको प्राप्त होकर फिर इस उखाके मध्यमें शयन करते हो जैसे कि माताकी गोदीमें बालक सोता है ॥ ३९ ॥

पुनरूर्ज्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्न्नः पाह्यꣳहसः ॥ ४० ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥

इन (४० । ४१) दोनोंकी व्याख्या होचुकी है ॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः। पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥

इसका दीर्घतमा ऋषि है, विराडार्षी त्रि०छ० अग्नि दे० है, मन्त्रार्थ-(स्वधावः यविष्ठ अग्ने मे अस्य मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य वचसः बोधः त्वः पीयति त्वः अनुगृणाति वन्दारुः ते तन्वम् वन्दे) हे धनवान्! श्रेष्ठ युवारूप अग्ने मेरे इस महान बारम्बार कथन करनेसे श्रवणपथको प्राप्त हुए वचन के अभिप्रायको जाना कोई तुम्हारी निंदा करे कोई एक पुरुष तुम्हारी स्तुति करे। यह मनुष्योंका स्वभाव है, परन्तु स्तुति करनेके स्वभाव वाला मैं तुम्हारे शरीरको प्रणाम करता हूँ ॥ ४२ ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोद्ध्यस्मद् द्वेषाꣳसि विश्वकर्म्मणे स्वाहा ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं, सबका सोमाहुति ऋ० है। छ० १ निचृदार्षी गा०

२ याजुष्युष्णिक् और देवता सबका अग्नि है। मन्त्रार्थ—(वसुपते वसुदावन् सः सूरिः मघवा बोधि द्वेषांसि अस्मत्तः युयोधि विश्वकर्मणे स्वाहा) हे धनपते! धनके दाता अग्ने! वह तुम सबके ज्ञाता धनयुक्त हो हमारे अभिप्रायको जानो आप सन्तुष्ट होकर दुर्भागोंको हमसे पृथक् करो जगत् की सृष्टि स्थिति आदि कर्म करने वाले तुम्हारे निमित्त अग्निमें आहुत यह हवि भली प्रकार गृहीत हो ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धताम्पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वन्तन्वं वर्द्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—हे अग्ने (वसुनीथ आदित्याः रुद्राः वसवः त्वा पुनः समिन्धताम् ब्रह्माणः यज्ञैः पुनः त्वं घृतेन तन्वं वर्धयस्व यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु) धनके निमित्त स्तुति वाले हे देव! आदित्यगण रुद्रगण वसुगण तुम को फिर प्रदीप्त करें, हे धननेता! ऋत्विग्यजमान यज्ञ करके फिर तुमको करें तुम घृतके द्वारा शरीर को बढ़ाओ तुम्हारे वृद्धिको प्राप्त होनेमें यजमानके मनोरथ सफल हों ॥ ४४ ॥

अपेत वीत वि च सर्पता येत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः। अदाद्यमो वसानम्पृथिव्या अक्रन्निमम्पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० निचृदार्षी त्रि० छ० लिङ्गोक्त देवता है। मन्त्रार्थ—हे यमभृत्यगण! (ये पुराणाः च ये नूतनाः अत्र स्थ अतः अपेत वीत च विसर्पत यमः पृथिव्याः अवसानं अदात् पितरः इमं लोकं अस्मै अक्रन्) जो पुराने और जो नये तुम इस स्थानमें हो, वह तुम यहाँसे दूर चले जाओ अति दूर ही संघात त्यागकर अनेक स्थानोंमें चले जाओ, यमने पृथिवीका अवकाश इस यजमानके निमित्त दिया है, पितरोंने इस लोकको इस यजमान के निमित्त कल्पित किया है ॥ ४५ ॥

संज्ञानमसि कामधरणम्मयि ते कामधरणं भूयात्। अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चितस्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥

इस कण्डिकामें तीन मन्त्र हैं, सबका सोमाहुति ऋ० है। छ० १ सा० प० २ आ० प० ३ आसु० त्रि० और देवता १ उख २ सिकता ३ परिश्रित् हैं। मन्त्रार्थ- हे उषा-

स्वरूप ! तुम (संज्ञानम् असि कामधरणं ते कामधरणं मयि भूयात्) पशुओंके सम्यक् ज्ञानके साधन हो, तथा यज्ञद्वारा मनोरथ सम्पादन करने वाले हो, इसकारण तुमसे प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारी मनोरथ सम्पादनकी सामर्थ्य मुझ यजमानमें हो. हे सिकता ! तुम (अग्नेः भस्म असि अग्नेः पुरीषम्) अग्निकी भस्म हो, अग्निके पूरण करने वाले हो । हे (शर्कराः चितः परिचितः स्थ श्रयध्वम्) परिश्रित गण तुम भूमिपर डाले हुए सब ओर स्थापित हो, उर्ध्वमें स्थापित तुम इस गार्हपत्य स्थान को सेवन करो ॥ ४६ ॥

अयꣳसो अग्निर्य्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतन्दधे जठरे वावशानः । सहस्रियं वाजमत्यन्न सप्तिꣳ ससवान्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० है, आर्षी त्रि० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(सः अयं अग्निः यस्मिन् वावशानः इन्द्रः सुतम् सहस्रियम् वाजं अत्यम् न सप्तिं सोमं जठरे धत्ते जातवेदः ससवान् सन् स्तूयसे) वह यह अग्नि है, जिस अग्निचयनमें इच्छा करने वाले इन्द्रने अभिषव किए सहस्रोंके योग्य अन्नकी समान भक्षण करतेमें मद न करने वाले हर्षकारक तृप्तिकारक सोम को उदरमें धारण किया, हे अग्ने ! तुम भी हवियोंको भक्षण करते हुए ऋत्विग् यजमानोंसे स्तुतिको प्राप्त होते हो ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्च्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वायजत्र । येनान्तरिक्षमुर्व्वीततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० भुरिगार्षी प० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(आयजत्र अग्ने ते यत् दिवि वर्चः यत् पृथिव्यां ओषधीषु अप्सु येन उरु अन्तरिक्षं आततन्थ सः त्वेषः अर्णवः नृचक्षाः भानुः) मर्यादासे यजनयोग्य हे अग्निदेव ! तुम्हारी जो द्युलोकमें सूर्यरूप ज्योति है जो भूमिमें अग्निरूप औषधियोंमें भास्कररूप जलोंमें प्रभारूप ज्योति है, जिसने विद्युत्रूपसे बड़े अन्तरिक्ष लोकको व्याप्त किया है, वह विश्वप्रकाशक सब ओर गमनशील मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मका द्रष्टा सूर्यरूप दीप्ति है, ऐसे तुम महानारायणस्वरूप हो ॥ ४८ ॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाꣳ ऊचिषे धिष्ण्या ये । या रोचने परस्ता-

त्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋषि है, भुरिगार्षी प० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने दिवः अर्णम् अच्छ जिगासि) हे अग्नि देवता ! द्युलोक सम्बन्धी जलको अभिमुखसे प्राप्त करते हो (ये धिष्ण्याः ऊचिषे देवान् अच्छ आ रोचने सूर्यस्य परस्तात् याः आपः च अवस्तात् याः उपतिष्ठन्ते) जो बुद्धि इन्द्रियोंके प्रेरक प्राण कहाते हैं, उन प्राणरूप देवताओं के प्रति सन्मुख गमन करते हो, दीप्तिरूप मण्डलमें वर्त्तमान सूर्यके ऊपर जो जल हैं और नीचे जो जल हैं उन सबके मध्यमें तुम विराजमान हो आशय यह कि तुमही इन रूपोंका धारण करते हो ॥ ४९ ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुषन्तां यज्ञमद्रुहोनमीवा इषो महीः ५०

इसका विश्वामित्र ऋ० आर्षी प०छ० है, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—पुरीष्यासः प्रावणेभिः सजोषसः अद्रुहः अग्नयः यज्ञम् अनमीवाः महीः इषः जुषन्ताम्) पशुओंके हितकारी मनोंसे प्रीतियुक्त हिंसा न करने वाले अग्नि इस इष्टकारूप यज्ञको क्षुधा तृष्णा निवर्त्तक बहुत अन्नयुक्तको सेवन करो ॥ ५० ॥

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिङ्गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० भुरिगार्षी प० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने पुरुदंसम् इडाम् शश्वत्तमं गोः सनिम् हवमानाय साध नः विजावा तनयः सूनुः स्यात् अग्ने सा ते सुमतिः अस्मे भूतु) हे अग्ने ! बहुत कर्मोंके साधनरूप अन्नका निरन्तर विद्यमान धेनुसम्बन्धी दानको अर्थात् दूध दही घृतादिको हवन करने वाले यजमान के निमित्त सम्पादन करो अर्थात् दो हमारे प्रजावान् औरस पुत्र हों, हे अग्ने ! वह तुम्हारी अन्न गौ पुत्रदान के विषयकी सुन्दर बुद्धि हममें हो ॥ ५१ ॥

अयन्ते योनि ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तज्जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥ ५२ ॥

इस मन्त्र की व्याख्या अ० ३ क० १४ में होगई ॥ ५२ ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद । परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० है स्वराडनुष्टुप् छ० है, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ ! हे इष्टके ! तुम (चित् असि तया देवतया अंगिरस्वत् ध्रुवा सीद) स्थापित की हुई हो उस प्रसिद्ध वाक्रूप देवता द्वारा स्थापित होकर अंगिरा की समान दृढ़ता पूर्वक इस स्थानमें स्थित होओ हे इष्टके ! (परिचित् असि तया देवतया अंगिरस्वत् ध्रुवा सीद) सब ओरसे भोगोंको चयन करने वाली हो उस प्रसिद्ध वाक्रूप देवता द्वारा संपादित हुई, अंगिराकी समान दीर्घ काल तक निश्चल इस स्थान में स्थित होओ ५३

लोकम्पृणच्छिद्रम्पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० विराडनु० छ० अग्नि देवता है। हे इष्टके ! (त्वम् लोकम् पृण छिद्रं पृण अथो ध्रुवा सीद) तुम गार्हपत्य चयन स्थानमें पूर्व इष्टिकाओंसे अनाक्रान्त होकर स्थानको पूर्ण करो और दृढ़ होकर स्थित होओ (इन्द्राग्नी बृहस्पतिः अस्मिन् योनौ त्वा असीषदन्) इन्द्रदेवता अग्नि देवता और बृहस्पति देवताने इस स्थानमें तुमको स्थापन किया है ॥ ५४ ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ५५

इसका प्रियमेधा ऋषि विराडनु० छंद आप देवता है। मन्त्रार्थ—(दिवः पृश्नयः सूददोहसः ताः देवानां जन्मन त्रिषु आरोचने अस्य विशः सोमं आश्रीणन्ति) द्युलोक सम्बन्धी अनेक प्रकारके जल और अन्नसे संयुक्त वे प्रसिद्ध जल देवताओंके जन्म वाले सम्वत्सरमें तीन सवनोंके मध्यमें इस यज्ञसम्बन्धी सोमको सम्यक् प्रकारसे परिपक्व करते हैं ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसङ्गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिम्पतिम् ५६

इसका सुतजेतृ मधुच्छन्दा ऋ० नि०नु० छन्द इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ—(विश्वाः गिरः समुद्रव्यचसं रथीनां रथीतमं वाजिनाम् पतिं सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन) सम्पूर्ण ऋक् यजुः सामरूप स्तुति समुद्रवत् व्यापक सब रथियोंके मध्यमें अत्यन्त रथी अन्नोंके पति निजधर्ममें रहने वालोंके पालक इन्द्रको वर्धित करती हैं ॥ ५६ ॥

समितꣳ संकल्पेथाꣳ सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्ज्जमभिसंवसानौ ।५७।

इसका मधुच्छंदा ऋ० भुरिगुष्णिक् छंद अग्नि देवता है, मन्त्रार्थ-(संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ इषं ऊर्ज्जम् अभिसंवसानौ समितम् संकल्पेथाम्) समान प्रीति वाले कान्तिमान् परस्पर श्रेष्ठ चित्त वाले हे उखा और चित्तके अन्य देवताओं ! अन्य घृतादि रसको भोग करते हुए अर्थात् हमारे दिये हुए अन्न और रसको स्वीकार करते हुए एकमन होकर मिलो एकसङ्कल्प होओ ॥ ५७ ॥

सं वाम्मनाꣳसि संव्रता समुचित्तान्याकरम् । अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वन्न इषमूर्ज्जं यजमानाय धेहि ॥ ५८ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि भुरिगुपरिष्टा बृहती छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—हे दोनों अग्नियों ! (वाम् मनांसि समाकरम् व्रता सम् चित्तानि सम् उ पुरीष्य अग्ने त्वं नः अधिपाः भव इषं ऊर्ज्जम् यजमानाय धेहि) तुम्हारे मन सब प्रकार संगत करता हूँ, व्रत संगत करता हूँ, मनोगत संस्कारों को संगत करता हूँ। और हे पशुसम्बन्धी गृहस्थकार्य-साधक अग्निदेव ! तुम हमारे अधिपति हो अन्न बल यजमानके निमित्त प्रदान करो ॥ ५८ ॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिमाꣳ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि भुरिगुष्णिक् छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने त्वं पुरीष्यः रयिमान् पुष्टिमान् असि सर्वाः दिशः शिवाः कृत्वा इह स्वं योनिं आसदः) हे अग्निदेवता ! तुम पशुसम्बन्धी पशुहितकारक धनवान् पुष्टियुक्त हो, तुम्हारे प्रसाद से हम पुष्टि और ऐश्वर्य—लाभ करें, सब दिशाएँ कल्याणकारक करके अपने स्थान में स्थित हो ॥ ५९ ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसा वरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्ट मा यज्ञपतिञ्जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि आर्षीपंक्ति छ० अग्नि देवता है इस मन्त्र की व्याख्या पाँच अध्यायके तीसरे मन्त्रमें होचुकी है ॥६०॥

मातेव पुत्रम्पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा । तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥ ६१ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि आर्षी त्रि० छ० उखा देवता है । मन्त्रार्थ—(पृथिवी उखा पुरीष्यम् अग्निं स्वे योनौ अभाः माता पुत्रं इव विश्वैः देवैः ऋतुभिः संविदानः विश्वकर्मा प्रजापतिः ताम् विमुञ्चतु) भूमिरूप मृत्तिका-निर्मित उखा पशुओंके हितकारी अग्निको अपने गर्भस्थानमें धारण करती हुई मैया पुत्रको जैसे धारण करती है, संपूर्ण देवताओं और ऋतुओंद्वारा एकमतको प्राप्त हुए । अहो ! उखाने महत् कर्म किया इस प्रकार संवाद करते हुए सृष्टिनिर्माता प्रजापति उस उखाको शिक्यपाशसे विमुक्त करो

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्यानमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि नि०त्रि० निर्ऋति देवता है । मन्त्रार्थ—हे निर्ऋते ! [अलक्ष्मी] (असुन्वतम् यजमानम् इच्छ स्तेनस्य तस्करस्य इत्याम् अन्विहि अस्मत् अन्यम् इच्छ सा ते इत्या देवि तुभ्यम् नमः अस्तु) सोमयाग न करने वाले हवि आदि से किसी प्रकार वैदिक कर्म न करने वाले पुरुषोंको संगतिकी इच्छाकर चोरकी प्रकट चोरकी गतिको प्राप्त हो हमसे अन्य पुरुष की इच्छाकर वही दुष्ट शिक्षा तेरी गति है हे देवि ! तेरे निमित्त नमस्कार हो ॥६२॥

नमः सुते निर्ऋते तिग्मतेजोयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोहयैनम् ॥ ६३ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि भुरि० प० छ० निर्ऋति देवता है । मन्त्रार्थ-(तिग्मतेजः निर्ऋते ते सु नमः अयस्मयम् एतम् बन्धनम् आविचृत यमेन यम्या संविदाना एनं उत्तमे नाके अधिरोहय) हे तीक्ष्ण तेज वाले ! घोर क्रूररूप निर्ऋते ! तुम्हारे निमित्त निरन्तर नमस्कार है, लोहपाशकी समान दृढ़, इस जन्ममरण-रूप अज्ञानको छेदन करो और अग्नि पृथ्वीके साथ एकमतको प्राप्त होकर इस यजमानको उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें स्थापन करो ॥ ६३ ॥

यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोम्येषामबन्धानामवसर्ज्जनाय। यान्त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिन्त्वाहम्परिवेद विश्वतः ॥ ६४ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋषि आर्षी त्रि०छ० निर्ऋति देवता है। मन्त्रार्थ-(घोरे एषाम् बन्धानाम् अवसर्जनाय यस्याः ते आसन् जुहोमि जनः यां त्वा भूमिः इति प्रमन्दते अहं त्वा विश्वतः निर्ऋतिम् परिवेद) हे विषमशील क्रूररूपा निर्ऋति देवी! इन यजमानोंके स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक पापों को नाशके अर्थ उस तुम्हारे मुखमें आहुति की समान इष्टिकाको धारण करता हूँ, मनुष्य-मात्र जिस तुझको भूमि है, इस प्रकार शास्त्राभिज्ञ होनेसे स्तुति करते हैं, मैं ता शास्त्रज्ञानसे तुझको सब प्रकारसे निर्ऋतिदेवी ही जानता हूँ ॥ ६४ ॥

यन्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्। तन्ते विष्याम्यायुषो न मद्ध्यादथैतमितुपद्धि प्रसूतः। नमो भूत्यै येदश्चकार ॥ ६५ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं सबका मधुच्छन्दा ऋषि छन्द १ निचृ० प० २ एकप० वि० और देवता १ यजमान २ भूति है। मन्त्रार्थ-हे यजमान! (निर्ऋतिः देवी ते ग्रीवासु यम् अविचृत्यम् पाशं आबबन्ध तं ते आयुषः मध्यात् न विष्यामि) निर्ऋति देवीने तुम्हारी ग्रीवामें जो दृढ छेदनके अयोग्य पाशको बाँधा था उसको तुम्हारी अग्निके मध्य इसी समय दूर करता हूँ। (अथ प्रसूतः एतम् पितुम् अद्धि) पाशविमोचनके अनन्तर निर्ऋतिकी अनुज्ञाको प्राप्त हो, इस रक्षा करने वाले अन्नको हे यजमान! भक्षण करो (या इदं चकार भूत्यै नमः) जिस देवीके प्रसादसे यह समस्त क्रिया सम्पन्न हुई उस ऐश्वर्यरूप देवीके निमित्त नमस्कार है ॥ ६५ ॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः। देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

इसका विश्वावसु ऋषि वि०त्रि० छंद अग्नि देवता है, मन्त्रार्थ -(निवेशनः वसूनां सङ्गमनः सत्यधर्माः शचीभिः विश्वा रूपा अभिचष्टे सविता देवः इव पथीनाम् समरे तस्थौ इन्द्रो न) स्वगृहमें यजमानका स्थापक धनोंका प्रापक अवश्य होने वाले फल

से युक्त अग्निहोत्रादि लक्षणसे युक्त अग्नि अपने २ कर्मोंसे संयुक्त सम्पूर्ण आहवनीय अतिप्रणीता आग्नीध्र विष्णयादि रूपोंको प्रकाश करता है सविता देवताकी समान प्रकाशक होकर शत्रुओंके साथ युद्धमें स्थित हुआ जिस प्रकार इंद्र युद्धमें स्थित होता है।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

इसका सोमपुत्र बुध ऋषि गायत्री छंद सीर देवता है। मन्त्रार्थ (धीराः कवयः देवेषु सुम्नया सीराः युञ्जन्ति युगाः पृथक् वितन्वते) बुद्धिमान् अग्नि-विद्यामें कुशल कृषिकर्मके मर्मको जानने वाले विद्वान् देवलोकमें सुख प्राप्त करनेको हलोंका बैलोंसे योग करते हैं, युगोंको भिन्न २ विस्तार करते हैं ॥ ६७ ॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

इसका सोमपुत्र बुध ऋषि विराडार्षी त्रि० छंद सीर देवता है। मन्त्रार्थ-हे कर्षकगणों ! (सीराः युनक्त युगा वितनुध्वम् कृते इह योनौ गिरा च बीजम् वपत श्रुष्टिः सभरा असत् पक्वं इत् सृण्यः नः नेदीयः इयात्) हलोंको जोड़ो, हलके जुए शम्या और योक्त्र आदिसे विस्तार करो, कर्षणसे संस्कार करनेपर इस स्थानमें 'या औषधीः पूर्वा १५ कंडिका' यह मन्त्रपाठ करके और चमस द्वारा संस्कृत व्रीहि आदि फलादि बीजको बोओ, अन्नसमूह व्रीहि आदि फल आदि सहित वर्त्तमान होकर पुष्ट हो, पके हुए धान्यको अल्पकालमें ही दराँतीसे काट कर हमारे अति समीप घरमें प्राप्त करो ६८

शुनꣳ सुफाला विकृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मे ॥६९॥

इसका कुमार हारीत ऋषि त्रिष्टुप् छंद सीता देवता है। मन्त्रार्थ-(सुफालाः भूमिं शुनं विकृषन्तु कीनाशाः वाहैः शुनम् अभियन्तु शुनासीरा हविषा तोषमानाः अस्मे ओषधीः सुपिप्पलाः कर्त्तन) हे सुन्दर फल वाले हलो ! तुम पृथ्वीको सुखपूर्वक जोतो हल वाले मनुष्य वृषभादिके संग सुखपूर्वक गमन करें, हे वायु आदित्य दोनों देवताओं ! जलसे भूमिको सींचते हुए हमारी औषधियों को सुन्दर फल वाली कर्त्तन करो ॥६९॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्ज्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥ ७० ॥

इसका कुमार हारीत ऋषि आर्षी त्रि० छन्द सीता देवता है। मन्त्रार्थ—(विश्वैः देवैः मरुद्भिः अनुमता सीता मधुना घृतेन समज्यताम् सीते पयसा पिन्वानाः पयसा अस्मान् अभ्याववृत्स्व) सम्पूर्ण देवतागण मरुद्गणोंसे अङ्गीकार की हुई हल की फाल मधुर घृत अर्थात् अमृतमय जलसे सिंचित हो 'परोक्षसे कहकर प्रत्यक्ष कहते हैं'। हे फाल ! ऊर्ज्जस्वती अन्नवान् तुम पय घृत आदिसे दिशाओंको पूर्ण करती हुई दुग्ध आदिसे हमको सब प्रकार अनुकूल हो और क्षेत्रमें उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण औषधी अमृतजलसे परिपुष्ट होकर सतेज हो, इस कारण तुम अमृतजल संग्रह-पूर्वक हमारी ओर अनुकूल हो ॥ ७० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरुः । तदुद्वपति गामविम्प्रफर्व्यञ्च पीवरीम्प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥ ७१ ॥

इसका कुमार हारीत ऋषि विराट् प० छन्द सीता देवता है। मन्त्रार्थ (तत् पवीरवत् सुशेवं सोमपित्सरुः लाङ्गलं प्रफर्व्यम् अविं पीवरीम् गां च प्रस्थावत् रथवाहनम् उद्वपति) वह पूर्वोक्त फाल संयुक्त सुखकारक यजमानके निमित्त भूमि का खोदने वाला हल अति वेगवान् छाग स्थूल पुष्ट अङ्ग वाली गौ और गमनमें समर्थ रथवाहक अश्व आदि को प्राप्त कराता है ७१

कामङ्कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ७२

इसका कुमार हारीत ऋषि विराडनु० छन्द सीता देवता है। मन्त्रार्थ-(कामदुघे मित्राय वरुणाय इन्द्राय अश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्यः च ओषधीभ्यः कामम् धुक्ष्व) हे मनोरथपूरक सीते ! मित्र वरुण इन्द्र दोनों अश्विनीकुमार पूषा प्रजाओंके भोगार्थ और औषधियोंके निमित्त अपेक्षित भोगको संपादन करो ॥ ७२ ॥

विमुच्यद्ध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तममस्पारमस्य ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० भुरिगा० गा० छन्द वृषभ देवता है। मन्त्रार्थ-(देवयानाः अध्वा विमुच्यध्वम् अस्य तमसः पारं अगन्म ज्योतिः आपाम) हे देवताओं के निमित्त कर्म करने वाले मारनेके अयोग्य गोबलीवर्द आदि! जगत्की स्थितिके हेतु कृषिको सम्पादन करो, युगसे पृथक् हो तुम्हारी कृपासे हम इस क्षुधा-पिपासासे उत्पन्न हुए दुःखके पारको प्राप्त हुए परमात्मारूपको प्राप्त हुए ॥ ७३ ॥

सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः। सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० ब्राह्मयनु० छन्द लिङ्गोक्त देवता है। मन्त्रार्थ-(अब्दः अयवोभिः सजूः उषा अरुणीभिः सजूः अश्विनौ दंसोभिः सजोषसौ सूरः एतशेन सजूः वैश्वानरः इडया घृतेन सजूः स्वाहा) सम्वत्सर जलोंका दाता अवयव मास अर्धमासके सहित प्रीतियुक्त, प्रातःकालके अधिष्ठात्री देवता उषा अरुण वर्ण वाली गौओंसे प्रीतियुक्त, अश्विनीकुमार चिकित्सादि कर्मोंसे प्रीतियुक्त, सूर्य घोड़ेसे प्रीतियुक्त, वैश्वानर अग्नि पृथ्वीसे घृतसे प्रीतियुक्त हैं, इन देवताओंके निमित्त श्रेष्ठ होम हो

या ओषधीः पूर्व्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा। मनैनु बभ्रूणामहꣳ शतन्धामानि सप्त च ७५

इसका भिषगृषि अनुष्टुप् छ० ओषधि देवता है, मन्त्रार्थ-(पुरा याः पूर्वाः ओषधीः देवेभ्यः त्रियुगम् जाताः बभ्रूणाम् शतं च सप्त धामानि अहं मनैनु) सृष्टि की आदिमें जो पहले ओषधि ऋतुओंके द्वारा वसन्त वर्षा और शरद् ऋतुमें उत्पन्न हुई हैं जगत्की उत्पत्ति पालनमें समर्थ और पाकसे पीली हुई ओषधियोंके विशेषकर सौ सौ और प्राधान्यतः व्रीहि गोधूमादि सात नाम मैं जानता हूँ ॥ ७५ ॥

शतम्वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ।७६।

इसका भिषगृषि अनुष्टुप् छंद ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ-(अम्ब आवः धामानि शतं उत वः रुहः सहस्रं शतक्रत्वो यूयम् मे इमं अगदं कृत) हे माताकी समान ओषधियों! सब प्रकारके तुम्हारे नाम सैंकड़ों हैं और तुम्हारे अंकुर असंख्यात हैं, तुम्हारे सत्त्वसे सब जगत्के कार्य होते हैं, इसलिये हे अनन्त कर्मसाधक ओषधियों! तुम मेरे यजमानको क्षुत्पिपासादि षड्ऊर्मि रोगोंसे रहित करो अर्थात् यजमान किसी प्रकारके रोगसे पीड़ित न हो ॥ ७६ ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ७७

इसका भिषगृषि निचृदनु० छंद ओषधि देवता है । मन्त्रार्थ—(ओषधीः पुष्पवतीः प्रसूवरीः अश्वाः इव सजित्वरीः वीरुधः पारयिष्णवः प्रतिमोदध्वम्) हे ओषधीगण! पुष्पोंसे युक्त फल उत्पन्न करने वाली, घोड़ोंकी समान वेगसे गमन वाली, अनेक प्रकारकी व्याधि निवारण करनेवाली फलपाकान्त के सिवाय बहुत काल तक कर्मपरायण,प्रसन्न होओ, अश्वकी समान वेगसे शीघ्र ही पुष्पवान् फलवान् होओ ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे । सनेयमश्वङ्गां वास आत्मानन्तव पूरुष ॥७८॥

इसका भिषगृषि निच्यृ० छ० ओषधि देवता है । मन्त्रार्थ-(मातरः देवीः ओषधीः वः इति तत् उपब्रुवे पूरुष तव अश्वं गाम् वासः आत्मानम् सनेयम्) हे जगत्की निर्माण करने वाली, हे दिव्य गुणोंसे युक्त ओषधी ! तुमसे इस आगे कही विधिके द्वारा वह जो हम प्रार्थना करते हैं,हे यज्ञपुरुष! आपके प्रसादसे घोड़े गौ वस्त्र रोगरहित शरीरको भोगूँ यज्ञपुरुषसे जो मेरी प्रार्थना है उसे औषधी माने ॥ ७८ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ७९

इसका भिषगृषि अनुष्टुप् छ० ओषधि देवता है । मन्त्रार्थ—हे औषधियों ! (वः अश्वत्थे निषदनम् वः पर्णे वसतिः कृता किल गोभाजः इत् असथ यत् पुरुषं सनवथ) तुम्हारा पीपलकाष्ठनिर्मित उपभृत् और स्रुचपात्रमें स्थान है,तुमने पलाशपत्र से बनी हुई जुहूमें स्थान किया है, पात्रमें हवि स्थापन करते हैं, होमके निमित्त हवि जुहूमें रखते हैं, हे हविर्भूत ओषधियों ! निश्चय करके तुम आदित्यको भेजने वाली ही हो, कारण कि अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यको प्राप्त होती है, इस कारण तुम यजमानको अन्न आदिसे पुष्ट करो ॥७९॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ८०

इसका भिषगृषि अनुष्टुप् छंद ओषधि देवता है । मन्त्रार्थ—(ओषधीः यत्र समग्मत इव राजानः समितौ सः रक्षोहा अमीवचातनः विप्रः भिषग् उच्यते) हे ओषधियों ! तुम जिस औषधि करने वाले वैद्य के पास जाती हो,जैसे राजा संग्राममें शत्रुजयको जाते हैं, वह तुम्हारे आश्रित वैद्य पुरोडाश क्वाथ आदिसे राक्षसरूप रोगों का नाशक होता है । औषधि देकर रोगका नाश करने वाला ब्राह्मण वैद्य कहाता है ८०

अश्वावतीꣳ सोमावतीमूर्ज्जयन्तीमुदोजसम्। आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥८१

इसका भिषग् ऋ०, अनुष्टुप् छ० वैद्य देवता है। मन्त्रार्थ-(अस्मै अरिष्टतातये अश्वावतीम् सोमावतीम् ऊर्ज्जयन्तीं उदोजसम् सर्वाः ओषधीः आ अवित्सि) इस यजमानको अरिष्ट नाशके निमित्त अश्वादि पशुगणके उपयोगी सोमयागकी उपयोगी बल प्राणकी सम्पादन करने वाली तेजः-सम्पादक संपूर्ण औषधियोंको सब प्रकार से जानता हूँ ॥ ८१ ॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते। धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥८२॥

इसका भिषग् ऋषि विराडनु० छन्द ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ-(पूरुष तव आत्मानं धनम् सनिष्यन्तीनाम् ओषधीनाम् शुष्माः उदीरते इव गावः गोष्ठात्) हे यज्ञपुरुष! तुम्हारे शरीरके प्रति धन-रूप हवि देनेकी इच्छा करनेवाली औषधियोंकी सामर्थ्य प्रकट होती है जैसे गौ गोठसे निर्गत होती हैं ॥ ८२ ॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयꣳ स्थ निष्कृतीः। सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

इसका भिषग् ऋ० निचृ०छ० औषधि देवता है। मन्त्रार्थ—हे औषधियों! (निष्कृतिः नाम वः माता अथो यूयम् निष्कृतीः स्थ सीराः पतत्रिणीः स्थन आमयति निष्कृथ) निष्कृति नामवाली तुम्हारी माता है और तुम भी व्याधिकी दूर करने वाली हो और अन्नके सहित वर्त्तमान गमनयुक्त प्रसरणशील हो, इस कारण मनुष्योंमें स्थित रोगका विनाश करो ८३

अतिविश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः। ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किञ्च तन्वो रयः॥

इसका भिषग् ऋ० विराडनु० छ० ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ—(परिष्ठाः विश्वा ओषधीः अत्यक्रमुः इव स्तेनः व्रजम् तन्वां यत् किं च रयः प्राचुच्यवुः) सब ओर से रोगको दबाकर बैठने वाली रोगनाशक सम्पूर्ण औषधियाँ जब भक्षित होकर देह को व्याप्त करती हैं,जैसे दस्यु गोष्ठको व्याप्त करता है, उस समय शरीरमें जो कुछ भी शिरकी व्यथा गुल्म अतिसारादिरूप पाप का फल है उस सबको नाश करती हैं ८४

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे। आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥

इसका भिषगृषि अनुष्टु० छ० औषधि दे० है। मन्त्रार्थ (यत् अहम् इमाः ओषधीः वाजयन् हस्ते आदधे यक्ष्मस्य आत्मा पुरा नश्यति यथा जीवगृभः) जिस समय इन ओषधियों का पूजन करता हुआ हाथ में धारण करता हूँ, उस समय यक्ष्मा रोगका स्वरूप भक्षणसे पहले ही नाशको प्राप्त होता है जैसे वधके निमित्त लेजाया हुआ प्राणी वधसे पहले ही अपनेको हत मानता है ॥ ८५ ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमंगं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ।८६।

इसका भिषग् ऋषि निचृद० छन्द ओषधि दे० है। मन्त्रार्थ-(ओषधीः यस्य अङ्गं अङ्गं परुः परुः प्रसर्पथ यक्ष्मं विबाधध्वे इव मध्यमशीः उग्रः।) हे औषधियों ! तुम जिसके अंग २ में ग्रन्थी २ में फैलती हो और यक्ष्मा रोगको बाधा देती हो जिस प्रकार देहके मध्यमें मर्म भागको पीड़ा देनेवाला उग्र रुद्र युगांतमें त्रिशूलके मध्यभागसे जगत्को पीड़ा देता है ॥८६॥

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया॥

इसका भिषग् ऋ०वि०नु० छ० यक्ष्मा दे० है मन्त्रार्थ—(यक्ष्म किकिदीविना चाषेण साकं प्रपत वातस्य ध्राज्या साकं निहाकया साकं नश्य) हे व्याधियों ! तुम कफसे रुके कंठसे उठे शब्दके द्वारा क्रीड़ा करने वाले श्लेष्म रोग और पित्तरोगके साथ गमन करो वात रोगके साथ नष्ट होओ सर्वाङ्ग वेदनासे जो रोगीका हाहाकार है उस दुःखके सहित नष्ट होओ ८७

अन्न्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत । ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ८८

इसका भिषग् ऋ० विराडनुष्टुप् छ० औषधि दे० है, मन्त्रार्थ-हे औषधियों (वः अन्या अन्याम् अवतु अन्या अन्यस्याः उपावत ताः सर्वाः संविदानाः मे इदं वचः प्रावत) तुम्हारे मध्यमें कोई एक औषधी दूसरीकी रक्षा करे रक्षित हुई कोई दूसरी की रक्षा करनेको समीप आवे अर्थात् योगज पदार्थोंसे तुम्हारी शक्ति अधिक हो तुम सब परस्पर एकमति होकर मेरे इस प्रार्थना रूप वचनकी रक्षा करो ॥ ८८ ॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः

इसका भिषग् ऋ० विराडनु० छ० औषधि दे० है। मन्त्रार्थ—(याः फलिनीः याः अफलाः अपुष्पाः च याः पुष्पिणीः ताः बृहस्पतिप्रसूताः नः अꣳहसः मुञ्चन्तु)

जो औषधि फलवाली हैं, जो औषधि फल-रहित हैं जो फूलरहित हैं और जो औषधी फूल वाली हैं वे सब औषधी प्रजापालक परमात्माकी प्रेरणासे हमको पापसे छुड़ावें

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्बिषात्

इसका बन्धु ऋ० भुरिगुष्णिक् छ० ओषधि देवता है । मन्त्रार्थ-औषधियें (शपथ्यात् किल्बिषात् अथो वरुण्यात् उत यमस्य पड्वीशात् अथो सर्वस्मात् एव मा मुञ्चन्तु) शपथके कारण होनेवाले पापसे जलक्रीडादिजन्य जलरोगसे यम सम्बन्धी बन्धके कारणरूप पापसे सब प्रकारके पापसे देवापराधके कारण होने वाले पापसे मुझको छुड़ाओ ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न सरिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥

इसका बन्धु ऋ० अनु० छ० ओषधि दे० है । मन्त्रार्थ (दिवः परि अवपतन्तीः ओषधयः अवदन् यम् जीवम् अश्नवामहै सः पूरुषः न रिष्यति) द्युलोकसे भूमि पर प्राप्त होती हुई औषधियोंने कहा जिस प्राणीको हम व्याप्त करती हैं वह पुरुष नहीं नष्ट होता ॥ ९१ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳहृदे ॥

इसका बन्धु ऋ० विराडार्ष्य० छन्द ओषधि देवता है । मन्त्रार्थ—(याः सोमराज्ञीः बह्वीः शतविचक्षणाः ओषधीः तासाम् त्वं उत्तमा असि कामाय अरं हृदे शम्) जो सोमपत्नी हैं, अनन्त असंख्यात शुभगुणोंसे युक्त औषधी हैं, उनके मध्यमें हे ओषधी ! तुम उत्तम हो, इच्छितके निमित्त समर्थ तुम हृदयके निमित्त सुख-कारिणी हूजिये ॥ ९२ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूता अस्यै संदत्त वीर्य्यम् ९३

इसका बन्धु ऋषि, विराडा० छन्द, ओषधि दे० है । मन्त्रार्थ-(याः सोमराज्ञीः ओषधयः पृथिवीम् अनु विष्ठिताः बृहस्पतिप्रसूताः अस्यै वीर्यम् सन्दत्त) जो सोमपत्नी औषधियें पृथिवी पर नाना प्रकारसे स्थित हैं बृहस्पति द्वारा प्रेरणा की हुई वे औषधी इस हमारी लाई हुई औषधीके निमित्त पराक्रमको दें अर्थात् वीर्यसम्पन्न करें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्य्यम्।२४।

इसका बन्धु ऋ० विराडनु० छन्द ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ-(या उप च याः दूरं परागताः च इदं शृण्वन्ति वीरुधः सर्वाः सङ्गत्य अस्यै वीर्यम् सन्दत्त) जो औषधी समीप स्थित हैं और जो औषधी हमसे दूर स्थित हैं और इस हमारे वचन को सुनती हैं, वे तरुजात सम्पूर्ण ओषधी मिलकर हमारी ग्रहण की हुई इस ओषधी में बलको धारण करें ॥ ९४ ॥

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम्

इसका बन्धु ऋ० विराडनु० छन्द ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ-हे ओषधियों! रोगकी चिकित्साके निमित्त तुम्हारी मूल की आवश्यकता है। इस निमित्त (यः खनिता मा रिषत् यस्मै वः अहं खनामि च अस्माकम् द्विपात् चतुष्पात् सर्वं अनातुरम्) जो कोई तुमको खनन करता है वह खनन करनेके अपराधसे हानिको न प्राप्त हो जिस रोगीकी चिकित्साके निमित्त तुमको मैं खनन करता हूँ वह भी हानि को प्राप्त न हो हमारे सम्बन्धी स्त्री पुत्रादि द्विपाये और चौपाये सब ही रोगरहित हों

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥

इसका बन्धु ऋ० निच्यृ०छ० ओषधी देवता है। मन्त्रार्थ—(राज्ञा सोमेन सह ओषधयः समवदन्त ब्राह्मणः यस्मै कृणोति राजन् तं पारयामसि) अपने स्वामी सोम के सहित ओषधियें कहती हुई ब्राह्मण जिस रोगीके निमित्त हमारे मूल, फल, पत्रसे चिकित्सा करता है हे स्वामिन् सोम! उस रोगी मनुष्यको हम रोगरहित करती हैं ९६

नाशयित्री वलासस्यार्शस उपचितामसि अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥

इसका बन्धु ऋ० अनुष्टुप् छ० ओषधी देवता है। मन्त्रार्थ—हे ओषधी! (वलासस्य अर्शसः उपचिताम् नाशयित्री असि अथो शतस्य यक्ष्माणाम् पाकारोः नाशनी असि) क्षय अर्श मेदरोग और अनेकों श्वयथु "सूजन" श्लीपद आदि रोगोंकी नाश करने वाली हो और क्षतादि सैंकड़ों रोगोंकी तथा मुखपाकादि रोगोंकी नाश करने वाली हो ॥ ९७ ॥

त्वाङ्गन्धर्वा अखनंस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्

यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

इसका बन्धु ऋ० निच्यृदनुष्टुप्छन्द ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ—(ओषधे गन्धर्वाः त्वाम् अखनन् इन्द्रः त्वां बृहस्पतिः त्वां सोमः राजा विद्वान् त्वां यक्ष्मात् अमुच्यत) हे ओषधि ! गन्धर्वोंने तुमको खोदा इन्द्रने तुमको खोदा बृहस्पतिने तुमको खोदा सोम राजाने तुम्हारी सामर्थ्य जान कर तुमको सेवनकर यक्ष्मारोगसे निष्कृति लाभ की तुम्हारे गुणज्ञाता तुमको पाकर अनेकों रोगोंसे मुक्त हुए ॥ ९८ ॥

सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः। सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सह मानास्योषधे ।९९।

इसका बन्धु ऋषि है, विराडनु० छ० ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ-(ओषधे सहमाना असि मे अरातीः सहस्व पृतनायतः सहस्व सर्वं पाप्मानम् सहस्व) हे ओषधि तुम शत्रुओंका तिरस्कार करने वाली हो मेरे अदानशील शत्रुकी सेनाको तिरस्कार करो संग्राम चाहने वाले शत्रुओंको जीतो सब अशुभको तिरस्कार करो ॥ ९९ ॥

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्। अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ॥ १०० ॥

इसका बन्धु ऋ० विराट् बृह० छन्द ओषधी देवता है। मन्त्रार्थ—(ओषधे ते, खनिता दीर्घायुः यस्मै अहं त्वाम् खनामि च अथो त्वं दीर्घायुः भूत्वा शतवल्शा विरोहतात्) हे ओषधी ! तुम्हारा करने वाला दीर्घायु हो, जिस रोगीके निमित्त मैं तुम को खनन करूँ वह भी दीर्घायु हो और तुम भी दीर्घायु होकर सैकड़ों अंकुरवाली होकर वृद्धिको प्राप्त होओ ॥१००॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः। उपस्तिरस्तु सोऽस्मकं यो अस्माँ २ अभिदासति॥

इसका बन्धु ऋ० निचृ० छ० ओषधि देवता है। मन्त्रार्थ-(ओषधे त्वं उत्तमा असि वृक्षाः तव उपस्तयः यः अस्मान् अभिदासति सः अस्माकं उपस्तिः अस्तु) हे ओषधी ! तुम श्रेष्ठ हो तुम्हारे निकटके शाल ताल तमालादि वृक्ष तुम्हारे समीप में स्थित होकर उपद्रव निवारण कर छायादि द्वारा उपकार करते हैं, जो हमसे चिरकाल तक द्वेष कर रहा है वह हमारे अनुगत हो ॥ १०१ ॥

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान। यश्चापश्चन्द्राः

प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०२ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० नि० त्रि० छ० प्रजापति देवता है। मन्त्रार्थ-(यः पृथिव्याः जनिता यः सत्यधर्मा दिवं व्यानट् च यः प्रथमः आपश्चन्द्राः जजान प्रथमः मा मा हिंसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम) जो प्रजापति पृथिवीका उत्पन्न करनेवाला है, जो सत्यको धारण करने वाला द्युलोकको सृजन कर चुका है और जो आदिपुरुष जगत्के आल्हादक और तृप्तिसाधक जल को उत्पन्न करता हुआ जो पहिला शरीर है वह प्रजापति मुझे मत मारो, उस प्रजापति के निमित्त हवि देते हैं वह हमारी रक्षा करे ॥ १०२ ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह वपान्ते अग्निरिषितो अरोहत ॥ १०३ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० नि० दु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(पृथिवि यज्ञेन पयसा सह अभ्यावर्तस्व इषितः अग्निः ते वपाम् अरोहत) हे पृथिवि ! यज्ञ और उसके फल वृष्टिके साथ सन्मुख आओ, परितृप्त हो प्रजापतिके प्रेरित अग्नि तुम्हारे पृष्ठदेशमें आरोहण करे ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यश्चन्द्रं यत्पूतं । यच्च यज्ञियम् तद् देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० भु० गा० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अग्ने ते यत् शुक्रं यत् चन्द्रम् यत् पूतं च यत् यज्ञियम् तत् देवेभ्यः भरामसि) अग्निदेव तुम्हारा जो अंग शुक्लवर्ण दीप्तिमान् है, जो अंगज्योति चन्द्रमाकी समान आल्हाद करनेवाली है, जो ज्योति पवित्र है गृहकार्यके योग्य है और जो यज्ञकार्य के योग्य है उस सब प्रकार श्लाघनीय ज्योतिको देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त सम्पादन करते हैं १०४

इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् । आ मा गोषु विशत्वातनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

इस क०में २ म०हैं सबका हिरण्यगर्भ ऋ० है छ० १ वि० त्रि० २ या०त्रि०, दे० १ आशीः २ यजमान है, मन्त्रार्थ (ऋतस्य योनिं इषम् ऊर्ज्जम् महिषस्य धारां इतः अहं आदम्) सत्यकी उत्पत्तिके कारण अन्न उसके उपसेचन दही दूध घृतादिकी महत् इच्छा वाले अग्निकी आहुतिको इस प्रदेश उदीची दिशासे मैं भक्षण करता हूँ

(आविशतु तनूषु गोषु आ) मुझमें प्रवेश करे, मेरे पुत्रादि शरीरोंमें मेरे धेनु आदि पशुओंमें प्रवेश करे (अनिराम् अमीवाम् सेदिं जहामि) अन्नरहित क्लेशदायक होनेकी व्याधिको त्यागन करता हूँ ।१०५।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ० विष्टार प० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(विभावसो बृहद्भानो कवे अग्ने तव श्रवः महि वयः अर्चयः भ्राजन्ते दाशुषे शवसा उक्थ्यम् वाजम् दधासि) हे कान्तिरूप धन वाले बड़े प्रकाशवान् यजमानके अभिप्रायको जाननेवाले अग्निदेवता! तुम्हारी यज्ञप्रवृत्ति देवताओंको सुनाने वाला बड़ा धूम और दीप्ति प्रकाशित होती हैं, तुम हविर्दाता यजमानके निमित्त बलसहित शस्त्रादिसे युक्त यज्ञके योग्य अन्नको देते हो ॥१०६॥

पावकवर्चा शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ १०७ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ० है वि० प० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ—हे अग्ने ! (पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः भानुना उदियर्षि विचरन् उपावसि पुत्रः मातरा उभे रोदसी पृणक्षि शोधक दीप्ति वाले निर्मल कान्ति वाले पूर्ण शक्ति वाले तुम अपनी दीप्तिसे उत्कृष्टताको प्राप्त हो तथा सब ओरसे विचरते हुए देवता मनुष्यों सहित जगत्की रक्षा करते हो, जैसे पुत्र वृद्ध हुए माता पिताकी रक्षा करता है इसी प्रकार तुम माता पितारूप दोनों द्यावा पृथिवी का धूमपुंज द्वारा अर्थात् हवि से द्युलोकका जलसे भूमिका पालन करते हो ॥ १०७ ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः। त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

इसका पा०ऋ० सतोबृ० छ० अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(ऊर्जो नपात् जातवेदः धीतिभिः हितः सुशस्तिभिः मन्दस्व भूरिवर्पसः चित्रोतयः वामजाताः त्वे इषः सन्दधुः)

हे जलोंके पोते ! [जलसे वृक्ष और वृक्षोंके मथनसे अग्नि होनेके कारण जलोंका पोता कहा] हे प्रज्ञावान् ! यज्ञकर्मोंके निमित्त स्थापन किए तुम श्रेष्ठ स्तुतियोंसे हृष्टपुष्ट हो, अनेक रूपवाले बहुत प्रकारकी रक्षा वाले तुमसे तर्पित श्रेष्ठ जाति कुलमें उत्पन्न हुए यजमानोंने तुममें अपने हविरूप अन्न को होमा ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य सदर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसि क्रतुम् ॥ १०९ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ० सतो बृ० छ० अग्नि दे० है, मन्त्रार्थ-(अमर्त्य अग्ने जन्तुभिः इरज्यन् रायः अस्मै प्रथयस्व सः दर्शतस्य वपुषः विराजसि सानसिम् क्रतुम् पृणक्षि) हे मरण धर्मरहित अग्नि देवता ! हवि देने वाले प्राणियों द्वारा प्रदीप्त होते हुए तुम, अनेक प्रकार के धनोंको हमारे निकट विस्तार करो, वह तुम दर्शनीय चित्याग्नि रूप शरीरके मध्यमें विशेष प्रदीप्त होते हो चिरन्तन संकल्पको पूर्ण करते हो ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षपन्तꣳ राधसा महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥

इसका पाव० ऋ० सतोबृ० छ० अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(अध्वरस्य इष्कर्तारं प्रचेतसम् क्षपन्तम् वामस्य महः राधसः रातिम् सुभगाम् महीम् इषम् सानसिम् रयिम् दधासि) यज्ञके रचनेवाले श्रेष्ठ चित्तवाले हे अग्ने ! यज्ञस्थानमें निवास करने वाले यजमानके निमित्त श्रेष्ठ बड़े धनके दानको और श्रेष्ठ ऐश्वर्य युक्त बड़े अन्नको चिरन्तन धनको धारण करते हो ॥ ११० ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

इसका पा० ऋ० उ० ज्यो० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! (मानुषाः जनाः युगा गिरा त्वा ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतम् श्रुत्कर्णम् सप्रथस्तमम् दैव्यम् अग्निं सुम्नाय पुरः दधिरे) बुद्धिमान् मनुष्योंने पौर्णमास अमावास्या आदि पर्वोंमें वेदवाणी द्वारा तुम सत्यरूप महान् संसार के दर्शनीय कर्णोंसे प्रार्थना सुननेवाले अति कीर्त्तिमान देवताओंके हितकारी अग्निको यज्ञके निमित्त पूर्वभागमें स्थापन किया ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥ ११२ ॥

इसका गो० ऋ० नि० गा० छ० सोम देवता है । मन्त्रार्थ-(सोम, विश्वतः वृष्ण्यम् ते समेतु आप्यायस्व वाजस्य संगथे आभव) हे सोम ! सब ओरसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाला तेज तुमको प्राप्त हो, अपने वीर्यसे सब प्रकार परिवर्द्धित हो यज्ञादि सत्कार्यके उपयोगी अन्न की प्राप्तिके निमित्त हमारे निकट आओ ॥

सन्ते पयाꣳसि समुयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

इसका गो० ऋ० भु० प० छ० सोम दे० है । मन्त्रार्थ-(सोम पयांसि ते अभिमातिषाहः संयन्तु वाजाः सम् वृष्ण्यानि सम् आप्यायमानः उ अमृताय) हे सोम ! पीने योग्य रस तुमसे पापनाशकको प्राप्त हों अन्न संगतिको प्राप्त हों वीर्य तुमको प्राप्त हों दुग्ध अन्न और वीर्यसे वृद्धिको प्राप्त होते हुए तुम ही अमरण धर्मके निमित्त हो और (दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) द्युलोकमें श्रेष्ठ आहुति परिणाम वाले अन्नों को धारण करो ॥ ११३ ॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

इसका गो० ऋ० प्र० त्रि० छ० सोम दे० है । मन्त्रार्थ—(मदिन्तम सोम सप्रथस्तमः विश्वेभिः अꣳशुभिः आप्यायस्व वृधे सखा आभव) अतिशय तृप्त अन्तःकरणवाले हे सोम, अत्यन्त विख्यातकीर्ति वाले तुम सम्पूर्ण सूक्ष्मांशोंके द्वारा वृद्धिको पाओ, और हमारी वृद्धिके निमित्त सहायक हूजिये ॥ ११४ ॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् अग्ने त्वां कामया गिरा ॥ ११५ ॥

इसका वत्सार ऋ० है, नि० गा० छ० है अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने ते वत्सः त्वां कामया गिरा परमात् सधस्थात् चित् मनः आयमत्) हे अग्ने ! तुम्हारा वत्सस्वरूप यजमान तुमको स्तुति करने की इच्छावाली वेदवाणीके द्वारा उत्कृष्ट द्युलोकसे भी तुम्हारे मनको हटाता है ॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

इसका विरूप ऋ०, गाय० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अंगिरस्तम अग्ने पृथक् विश्वाः ताः सुक्षितयः कामाय तुभ्यं येमिरे) हे अति-हविर्भक्षक अग्निदेवता! अनेक प्रकारकी सम्पूर्ण वह प्रसिद्ध स्वर्गादि सुन्दर स्थानकी देने वाली स्तुतियें, अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तुम्हारे निमित्त की गईं हैं ॥ ११६ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

इसका प्रजापति ऋ० गायत्री छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(भूतस्य भव्यस्य कामः सम्राट् अग्निः प्रियेषु धामसु एकः विराजति) उत्पन्न उत्पद्यमान यजमानों की कामनाओंको पूर्ण करने वाले सम्यक् प्रकारसे विराजमान अग्नि—देवता अपने प्रिय स्थानोंमें असहायभूत प्रधान—रूपसे विराजमान होते हैं ॥ ११७ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

—o—

॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

जिसमें उखा धारण, गार्हपत्यचयन, क्षेत्रकर्षण और औषधिवपन प्रधान हैं। ऐसे बारहवें अध्यायमें उखाधारणादिके मन्त्र कहे। अब तेरहवें अध्यायमें पुष्करपर्ण आदिके उपाधानके मन्त्र कहे जावेंगे।

मयि गृह्णाम्यग्ने अग्निꣳरायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। मामु देवताः सचन्ताम् १

इसका वत्सार ऋ० ककुप्छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-मैं यजमान (अग्ने रायः पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय अग्नि मयि गृह्णामि देवता माम् सचन्ताम्) प्रथम धनकी पुष्टिके निमित्त श्रेष्ठ पुत्रादिकी प्राप्ति के निमित्त उत्तम सामर्थ्यके निमित्त अग्नि को अपने आत्मामें धारण करता हूँ, देवता भी मुझको सेवन करें ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् वर्धमानो। महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

इस म० की व्याख्या ११ अध्यायके २९ मन्त्र में होगई है ॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। सबुध्न्या उपमा अस्य

विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ३ ॥

इसका वत्सा० ऋ० आ० त्रि० छ० आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ—(पुरस्तात् प्रथमं जज्ञानं ब्रह्म सीमतः सुरुचः विआवः सः वेनः उपमाः च अस्य विष्ठाः बुध्न्याः सतः च असतः योनिं विवः) पूर्व दिशामें सबसे प्रथम प्रकट हुए आदित्यरूप ब्रह्मने भूगोलके मध्यमें आरम्भ करके सुन्दर रुचि वाले इन लोकोंको अपने प्रकाशसे फैलाया और वह कामनीय मेधावी सूर्य अवकाश-युक्त और इस जगत्की वासस्थान अंतरिक्षमें होनेवाली दिशाओंको तथा विद्यमान मूर्त्त घट पटादि और अमूर्त्त वायु आदिके उत्पत्तिस्थान ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० आर्षी त्रि० छ० प्रजापति देवता है। मन्त्रार्थ—(हिरण्यगर्भः भूतस्य अग्रे समवर्त्तत जातः एकः पतिः आसीत् सः पृथिवीम् द्याम् उत इमाम् दाधार कस्मै देवाय हविषा विधेम) हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ प्राणिमात्रकी उत्पत्तिके प्रथम शरीरधारी हुआ, और वह उत्पन्न अर्थात् प्रकट होते ही एक ही इस उत्पन्न होनेवाले सब जगत् का ईश्वर हुआ, वही अंतरिक्ष द्युलोक और इस भूमि अर्थात् त्रिलोकीको निर्माण कर धारण करता है, उस प्रजापतिके निमित्त हविद्वारा विधान करते हैं ॥ ४ ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

इसका देवश्रवा ऋ० त्रि०छ० आदित्य दे० है। मन्त्रार्थ—(यः पूर्वः द्रप्सः पृथिवीं अनुचस्कन्द च द्याम् अनु च इमम् योनिं अनु समानं योनिं संचरन्तम् द्रप्सम् सप्तहोत्राः अनुजुहोमि) जो प्रथम मुख्य सब की आदि है जिसकी आदि नहीं जो कि द्रप्स नामसे प्रसिद्ध आदित्यरूपका कारण अंतरिक्षको मनुष्यादिके धारणके निमित्त सींचता है और द्युलोकको सींचता है और इस भूलोकको आहुतिके परिणामरूप रस से सींचता है, सम्पूर्णके तुल्य त्रिलोकीमें विचरण करते हुए आदित्यको सब दिशाओं में स्थापन करता हूँ ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।६।

इसका देवश्रवा ऋ० भु० प्रा० त्रि० छ० सर्प देवता है मन्त्रार्थ-(ये च पृथिवीं अनु सर्पेभ्यः नमः अस्तु ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यः नमः) जो भी पृथ्वीके अनुगत लोक नक्षत्र हैं उन लोक नक्षत्रोंके निमित्त नमस्कार हो, जो लोक अन्तरिक्षमें वर्त्तमान हैं, जो संपूर्ण लोक द्युलोकके आश्रित हैं, उन सर्पोंके निमित्त नमस्कार है ६

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँरनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ७

इसका देवश्रवा ऋ० अनुष्टु० छ० सर्प देवता है। मन्त्रार्थ-(यातुधानानां याः इषवः वा ये अवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यः नमः) राक्षसगणोंके जो सर्प बाणरूपसे वर्तते हैं, या जो सर्प, चन्दन वृक्षादि वनस्पतियोंके आश्रित हैं, या जो बिलोंमें शयन करते हैं उन सबके निमित्त नमस्कार है ७

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ८

इसका देवश्रवा ऋ० निचृ० छ० सर्प देवता है। मन्त्रार्थ-(ये वामी दिवः रोचने वा ये सूर्यस्य रश्मिषु येषाम् अप्सु सदः कृतम् तेभ्यः सर्पेभ्यः नमः) जो संपूर्ण लोक सर्प द्युलोकके दीप्तिस्थानमें है जो हमको नहीं दीखते अथवा जो लोक सूर्यकी किरणोंमें निवास करते हैं जिन सर्प लोकों का जलोंमें स्थान किया है उन सब सर्पोंके निमित्त नमस्कार है ॥ ८ ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवान् । इभेन तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्यरक्षसस्तापिष्ठैः ॥ ९ ॥

इस का वामदेव ऋ० भु० प० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! तुम (अस्ता असि याहि इव आमवान् राजा इभेन पृथिवीं प्रसितिं न पाजः कृणुष्व तृष्वीं प्रसितिं अनु द्रूणानः तपिष्ठैः रक्षसः विध्य) शत्रुओंके हटाने वाले हो, शत्रुओंके ऊपर जाओ, जैसे सहायवान् नृप हाथी-द्वारा शत्रुओं पर गमन करता है, ऐसे तुम गमन करो, विशाल पक्षिग्रहणके निमित्त फैलाये हुए जालकी समान बलको विस्तार करो, वेगवान् जालद्वारा सम्यक् शत्रुओंको मारने वाले तपानेवाले राक्षसोंको ताड़न करो ९

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः । तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान-सन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥

इसका वामदेव ऋ० भु० प० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! (तव आशुया भ्रमासः पतन्ति धृषताः शोशुचानः तपूंषि पतङ्गान् अनुस्पृश जुह्वा आसन्दितः विष्वक् उल्काः विसृज) अग्निदेवता ! तुम्हारी जो शीघ्रगामी ज्वालाएँ पवनसे इधर उधर चलायमान होती हैं,उस प्रगल्भ ज्वालासमूहसे प्रकाशमान तुम तपानेवाले राक्षसों और पतङ्गोंको ज्वालासमूहसे दग्ध करो, स्रुकसे हूयमान तुम अखण्डित होकर सर्वत्र तिरछी ऊँची नीची ज्वालाओंको राक्षसों के नाश करने को छोड़ो पतंगकी समान राक्षस तुममें प्रविष्ट हो नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धाः । यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

इसका वामदेव ऋ० निचृ० त्रि० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने नः दूरे यः अघशंसः यः अंति तूर्णितमः अदब्धः प्रतिस्पशः विसृज अस्याः विशः पायुः भव ते किः मा आदधर्षीत्) हे अग्ने ! हमारा दूर देशमें जो शत्रु है जो निकटमें वर्त्तमान शत्रु है,बड़े वेगवान् अनुपहिंसित तुम उस की ओर बन्धनको प्रेरण करो इस हमारी प्रजाके रक्षक हूजिये, तुमको कोई भी शत्रु मत धर्षण करो ॥ ११ ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्रान् ओषतात्तिग्महेते । योनो अरातिꣳ समिधानचक्रे नीचातं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

इसका वामदेव ऋ०भु० गा० प० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ—(अग्ने उत्तिष्ठ प्रत्यातनुष्व तिग्महेते अमित्रान् न्योषतात् समिधान नः यः अरातिं चक्रे तम् नीचा धक्षि न शुष्कम् अतसम्) हे अग्निदेवता ! तुम जागृत होओ ज्वाला विस्तार करो हे उत्साहरूप आयुधवाले, शत्रुओंको अत्यन्त भस्मीभूत करो, हे दीप्तिमान् ! हमारे जो शत्रु दानका प्रतिषेध करता है उसको निकृष्ट करके भस्म करो जिस प्रकार सूखे अतस (अलसीके) वृक्षको भस्म करते हो इस प्रकार शत्रुको नष्ट करो ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

इस क० में २ मन्त्र हैं, सबका वामदेव ऋ० है छ० १ भु० प० २ आ० त्रि० देवता सबका अग्नि है। मन्त्रार्थ—(अग्ने ऊर्ध्वः भव अस्मत् अधि शत्रून् प्रतिविध्य दैव्यानि आ वि कृणुष्व यातुजूनाम् स्थिरा अवतनुहि जामिम् अजामिम् शत्रून् प्रमृणीहि) हे अग्निदेव ! उद्योगी उद्धत हो हमारे ऊपर वर्त्तमान शत्रुओंको ताड़न करो, दैवसम्बन्धी कर्मोंको प्रकट करो, राक्षसोंके स्थिर धनुषोंको ज्यारहित करो ताड़ित अताड़ित शत्रुओंको विनाश करो हे स्रुक्! (अग्नेः तेजसा त्वा सादयामि) अग्निके तेजसे तुझको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

इस क० में २ मन्त्र हैं सबका वामदेव ऋ० छ० १ निचृ० गा० २ आ० त्रि० और देवता सबका अग्नि है, इसकी ३।१२ में व्याख्या की गई है ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ० निचृदार्षी त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने हव्यवाहम् जिह्वाम् चकृषे यज्ञस्य च रजसः नेता भुवः यत्र शिवाभिः नियुद्भिः सचसे दिवि स्वर्षाम् मूर्द्धानम् दधिषे) हे अग्निदेव ! तुम जब हवि धारण करने वाली जिह्वारूप ज्वाला को प्रगट करते हो तब द्रव्य देवता त्यागात्मारूप यज्ञके और यज्ञपरिणाम रूप जलके प्रवर्त्तक और प्रापक होते हो, यहाँ मङ्गलरूप अश्वोंके सहित तुम सम्बन्धको प्राप्त होते हो और द्युलोकमें स्वर्गके देनेवाले आदित्यको धारण करते हो

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्म्मणा मा त्वा समुद्र उदवधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥ १६ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ० ऊद्ध्वं० बृ० छ० स्वयमातृणा दे० है। मन्त्रार्थ-हे स्वयमातृणे! तुम (धरुणा विश्वकर्मणा आस्तृता ध्रुवा असि समुद्रः त्वा मा उद्वधीत् सुपर्णः मा अव्यथमाना पृथिवीं दृ ँ ह) भूमिरूप से विश्वकी धारण करने वाली प्रजापति द्वारा विस्तार की हुई दृढ़ हो, समुद्र अर्थात् रुक्म तुमको मत नष्ट करो, अचल होकर तुम भूभाग दृढ़ करनेमें समर्थ हो इस कारण पृथ्वीको दृढ़ करो ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्। व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि १७

इसका त्रिशिरा ऋषि है, अनुष्टु० छ० स्वयमातृणादि दे० है। मन्त्रार्थ-हे स्वयमातृणे! (प्रजापतिः त्वा व्यचस्वतीम् प्रथस्वतीम् अपां पृष्ठे समुद्रस्य एमन् सादयतु प्रथस्व पृथिवी असि) प्रजापतिने तुझ अवकाशवान् विस्तारयुक्तको जलोंके ऊपर और समुद्रके स्थानमें स्थापन किया और तुम प्रजापति से सादित होकर विस्तारको प्राप्त हो जिस कारण कि भूमि से प्रकट होनेसे तुम पृथ्वीरूप हो ॥१७॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृ ँ ह पृथिवीं मा हिँसीः ॥ १८ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ० है प्रस्तार प० छ० स्वयमातृणा दे० है मन्त्रार्थ-हे स्वयमातृणे तुम (भूः भूमिः असि विश्वधाया अदितिः असि विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री असि पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृ ँ ह पृथिवीं मा हिँसीः) सुखोंकी भावना करनेवाली भूमि नामसे प्रसिद्ध हो, विश्व पुष्ट करने वाली देवमाता हो सम्पूर्ण संसारकी धारण करने वाली हो पृथ्वीको कृपा दृष्टिसे अवलोकन करो भूभागको दृढ़करो पृथिवीको मत कष्ट दो

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय अग्निष्ट्वा मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥ १९ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ० भुरिग० ज० छ० स्वयमातृणा दे० है। मन्त्रार्थ-हे स्वयमातृणे (विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय उदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय अग्निः मह्या, स्वस्त्या शन्तमेन छर्दिषा त्वा अभिपातु तया देवतया ध्रुवा अङ्गिरस्वत् सीद) सम्पूर्ण प्राण अपान व्यान उदान नामक शरीर वायुकी उन्नतिकी कामनाके निमित्त तथा प्रतिष्ठा कीर्ति लाभके निमित्त शास्त्रीय आचरणके निमित्त अग्निदेवता बड़ी कल्याण

योगक्षेमकी सम्पत्ति और अत्यन्त सुख-कारी गृहके द्वारा तुमको रक्षा करे उस परम देवताके अनुग्रहसे दृढ़हुई अंगिराकी समान स्थित हो ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च २०

इसका अग्नि ऋ० अनुष्टुप् छ० दूर्वा-ष्टिका देव० है । मन्त्रार्थ-(दूर्वे काण्डात् काण्डात् परुषः परुषः परि प्ररोहन्ती एव सहस्रेण च शतेन नः आ प्रतनु) हे दूर्वा ! इष्टके ! तुम प्रत्येक काण्डसे और प्रत्येक पर्वसे सब ओरसे अंकुरित होती हो और निश्चय ही सहस्र और सैंकड़ों अर्थात् असंख्य ऐश्वर्य पुत्र-पौत्रादि से अंकुरवत् हमको सब प्रकार वृद्धिको प्राप्त करो ।२०

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् २१

इसका अग्नि ऋ० निचृदनुष्टुप् छन्द दूर्वेष्टिका देवता है । मन्त्रार्थ-(देवी इष्टके या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि वयं ते हविषा विधेम) हे दीप्यमान ! हे इष्टके ! जो तुम सैंकड़ों काण्डसे विस्तारको प्राप्त होती हो, सहस्र अंकुरोंसे अनेक प्रकारसे अंकुरित होती हो हम तुमको हवि विधान करते हैं ॥ २१ ॥

यास्ते अग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ० भुरिगनु० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने या ते रुचः सूर्ये रश्मिभिः दिवं आतन्वन्ति अद्य ताभिः सर्वाभिः नः रुचे नः जनाय कृधि) हे अग्ने ! जो तेरी दीप्ति सूर्यमण्डलमें वर्त्तमान किरणों द्वारा द्युलोकको प्रकाश करती हैं, इस समय उन सम्पूर्ण कान्तियोंसे आज हमारी शोभाके निमित्त करो तथा हमारे पुत्र पौत्रादिको जगत्प्रसिद्ध करो ॥ २२ ॥

या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुच नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ० अनुष्टुप् छ० बृहस्पत्यादि देवता हैं । मंत्रार्थ-(इन्द्राग्नी बृहस्पते देवाः वः याः रुचः सूर्ये याः रुचः गोषु अश्वेषु ताभिः सर्वाभिः नः रुचम् धत्त) हे इन्द्राग्नी हे बृहस्पते ! हे देव-समूह ! तुम्हारी जो दीप्ति सूर्य मण्डलमें

वर्त्तमान हैं जो दीप्तियें धेनुओंमें जो अश्वों में स्थित हैं उन संपूर्ण दीप्तियोंसे देदीप्यमान तुम हमारे निमित्त कान्ति नीरोगता को प्रतिपादन कीजिये ॥ २३ ॥

विराड् ज्योतिरधारयत्स्वराड् ज्योतिरधारयत् प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥ २४ ॥

इस क० में २ मन्त्र हैं। सबका इन्द्राग्नी ऋ० छ० १ प्रा० गा० २ भु० ब्रा० देवता १ रेतः सिचौ २ विश्वज्योति है। मन्त्रार्थ- (विराड् ज्योतिः अधारयत् स्वराड् ज्योतिः अधारयत्) विशेष शोभायमान विराटरूप इस लोकने अग्निरूप ज्योतिको धारण किया, स्वयं प्रकाशवान् द्युलोकने अग्निरूप ज्योतिको धारण किया। हे इष्टके (प्रजापतिः विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय ज्योतिष्मतीम् त्वा पृथिव्याः पृष्ठे सादयतु विश्वम् ज्योतिः यच्छ अग्निः ते अधिपतिः तया देवतया ध्रुवा अङ्गिरस्वत् सीद) प्रजाके पालक सम्पूर्ण प्राण अपान व्यानकी सम्पत्तिके निमित्त ज्योतिर्युक्त तुझको पृथ्वीके ऊपर स्थापित करे, संपूर्ण ज्योतिको निग्रह करो, अग्नि तुम्हारा अधिपति है, उस प्रसिद्ध देवताके सहित दृढ़ होकर अङ्गिराकी समान स्थित हो ॥२४॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पंतामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्येष्ठ्याय सव्रताः ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

इस कण्डिकामें २ मन्त्र हैं। सबका इन्द्राग्नी ऋ० छ० १ भु० ज० २ भु० ब्रा० बृ० सबका ऋतु देवता है। मन्त्रार्थ- (मधुः च माधवः च वासन्तिकौ ऋतू) चैत्रमास और वैशाखमास यह दोनों ही वसन्तसम्बन्धी ऋतु हैं, अथवा हे (ऋतू अग्ने अन्तः श्लेषः असि) ऋतुरूप दोनों इष्टकाओं ! तुम चीयमान अग्निके अन्तरमें स्थिर होकर श्लेष अर्थात् दृढताके निमित्त लगाये हुए हो (मम ज्येष्ठ्याय द्यावा-

पृथिवी कल्पेताम् आपः ओषधयः कल्पन्ताम् सव्रताः पृथक् अग्नयः कल्पन्ताम्) मुझ यजमानकी उत्कर्षताके निमित्त यह द्युलोक और भूलोक अपने योग्य उपकार की कल्पना करें, जल और ओषधी हमारा प्राधान्य सम्पादन करें, समान व्रत अनेक नामकी अग्नि स्वयमातृणा आदि इष्टका उत्कृष्टता सम्पादन करे (इमे द्यावापृथिवी अन्तरा समनसः ये अग्नयः वासन्तिकौ ऋतू अभिकल्पमानाः अभिसंविशन्तु देवाः इन्द्रम् इव) यह द्यावापृथिवीके मध्यमें वर्त्तमान एकमन वाली जो अग्नियें हैं। अर्थात् औरोंसे चयन की हुई वसन्त सम्बन्धी ऋतुको सम्पादन करते इस कर्म का आश्रय करो, जैसे देवता इन्द्रको परिचर्या कर सम्पादन करते हैं इसी प्रकार इष्टका प्राप्त हो, हे इष्टके ! (तया देवतया अंगिरस्वत् ध्रुवे सीदतम्) उस प्रसिद्ध देवता द्वारा अंगिरा की समान स्थिर होकर स्थित हो ॥ २५ ॥

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥

इसका सविता ऋ० निचृ०छ० इष्टका देवता है । मन्त्रार्थ-हे इष्टके ! तुम (सहमाना अषाढा असि अरातीः सहस्व पृतनायतः सहस्व सहस्रवीर्या असि मा जिन्व) स्वभावसे शत्रुओंको जय करने वाली तथा शत्रुओंको न सहने वाली हो, शत्रुओंको तिरस्कार करो, संग्रामकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंको तिरस्कार करो, तुम अनन्त बल वाली हो, मुझ पर सुप्रीता हो ॥ २६ ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

इसका गोतम ऋ० निचृ० गा० छ० विश्वेदेवा देवता है । मन्त्रार्थ-(ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति सिन्धवः मधु नः ओषधीः माध्वीः सन्तु) यज्ञकी इच्छा करने वाले यजमानके निमित्त वायु पुष्परसको वहन करती हैं, स्यन्दमान नदियें मधु समान जलको क्षरण करती हैं हमको संपूर्ण ओषधी मधुर रससे युक्त हों ।२७।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

इसका गोतम ऋ० गायत्री छ० विश्वेदेवा देवता है । मन्त्रार्थ-(नः पिता द्यौः मधु अस्तु पार्थिवम् रजः मधुमत् नक्तं उत उषसः मधु) हमको पितावत् पालन करने वाला द्युलोक अमृतमय हो, माता-रूप पृथिवी सम्बन्धी रज अमृतमय हो, रात्रि और दिन अमृतमय हो अर्थात् सबसे हम को मङ्गल हो ॥ २८ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ । अस्तु सूर्य्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

इसका गोतम ऋ० निचृ० बा० छ० विश्वेदेवा देवता है। मन्त्रार्थ-(वनस्पतिः नः मधुमान् सूर्यः मधुमान् अस्तु गावः नः माध्वीः भवन्तु) सम्पूर्ण वनस्पति हमको मधुर रससे युक्त हों सूर्य हमको मधुर रसयुक्त हों, गौ हमको मधुर रसयुक्त हों

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभितापसीन्माऽग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

इसका गोतम ऋ० स्वराट् प० छ० कूर्म देवता है। मन्त्रार्थ-कूर्मसे प्रजापति वा आदित्यका ग्रहण है, हे कूर्म! तुम (अपाम् गम्भम् सीद त्वा सूर्यः मा अभितापसीत् वैश्वानरः अग्निः मा अच्छिन्नपत्राः प्रजाः अनुवीक्षस्व दिव्या वृष्टिः त्वा अनुसचताम्) जलोंके गम्भीर स्थान आदित्यमण्डलमें स्थित हो, तुमको सूर्य वहाँ स्थित होनेसे मत सन्तप्त करो संपूर्ण मनुष्योंके हितकारी अग्नि तुमको मत सन्तापित करो, अखण्डित अवयव वाली इष्टका तुमको निरन्तर देखो और दिव्य वर्षा तुमको सेवन करो ॥ ३० ॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत्स्वर्गानपांपतिर्वृषभ इष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

इसका गौतम ऋ० त्रिष्टुप् छ० कूर्म देवता है। मन्त्रार्थ-(अपां पतिः इष्टकानाम् वृषभः त्रीन् स्वर्गान् समुद्रान् समसृपत् पुरीषं वसानः तत्र गच्छ यत्र सुकृतस्य लोके पूर्वे परेताः) जलोंके स्वामी इष्टिकाओंकी उपधानक्रियाका प्रधान अङ्ग हो तुमने तीन भोगके साधन लोकोंको भली प्रकार प्राप्त किया, पुरीष को आच्छादन करते उस स्थानमें गमन करो जहाँ पुण्यात्माओंके लोकमें पुरातन कूर्म अग्नियोंसे उपहित होकर गये हैं ॥ ३१ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

इसकी व्याख्या ८ अ० ३२ मं० में होगई ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

इसकी व्याख्या ६ अ० ४ मं० में होगई ॥ ३३ ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधिजातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

इसका गो० ऋ० भु० त्रि० छ० उखा देवता है । मन्त्रार्थ-हे उखे ! (धरुणा ध्रुवा असि जातवेदाः प्रथमम् इतः अधि जज्ञे) जगत् की धारण करने वाली तुम स्थिर हो अग्नि पहिले इस उखासे प्रकट हुआ है (एभ्यः योनिभ्यः स प्रजानन् गायत्र्या त्रिष्टुभा च अनुष्टुभा देवेभ्यः हव्यं वहतु) फिर इन अपने कारणोंसे प्रकट होता है वह अग्नि अपने अधिकारको भली प्रकार जानता हुआ गायत्री त्रिष्टुभ् और अनुष्टुभ् छन्दकी सामर्थ्यसे देवताओंके निमित्त हविको लेजाओ ॥ ३४ ॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जे अपत्याय सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥

इसका गो० ऋ० निचृ० बृ० छ० उखा दे० है । मन्त्रार्थ-उखे ! (इषे राये, सहसे द्युम्ने ऊर्जे अपत्याय रमस्व सम्राट् असि स्वराट् असि त्वा सारस्वतौ उत्सौ प्रावताम्) अन्न धन बल यश दुग्ध दधि घृतादि रस और पुत्र पौत्रादि देनेके निमित्त यहाँ दीर्घकालपर्यन्त स्थित हो तुम भूमिके भले प्रकार प्रकाशमान हो ;स्वर्गके स्वयं दीप्तिमान् राजा हो, तुमको सरस्वती-सम्बन्धी वाणी मन पालन करे ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० निचृ० गा० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(देव अग्ने ये ते साधवः अश्वासः अरं मन्यवे वहन्ति हि आयुक्ष्व) हे दीप्यमान अग्निदेवता ! जो तुम्हारे चतुरश्रेष्ठ घोड़े शीघ्र तुमको यज्ञके निमित्त प्राप्त करते हैं उनको ही रथमें जोतो

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ । अश्वाँ । अग्ने रथीरिव निहोता पूर्व्यः सदः ३७ ॥

इसका विरूप ऋ० निचृ० गा० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(अग्ने देवहूतमान् अश्वान् हि रथी इव आयुक्ष्व पूर्व्यः होता निषदः) हे अग्ने ! देवताओं के अतिशय बुलाने वाले घोड़ोंको अवश्य ही रथी की समान शीघ्र उत्साहपूर्वक रथमें योजना

करो कारण कि पुरातन आह्वान करनेवाले तुम आज इस यज्ञकार्यमें इस स्थलमें स्थान ग्रहण कर स्थित हो ॥ ३७ ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥ ३८ ॥

इसका विरूप ऋषि है, त्रिष्टुप् छ० लिंगोक्त देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्नेः मध्ये हिरण्ययः वेतसः अंतर्हृदा मनसा पूयमानाः धेनाः घृतस्य धारा सम्यक् स्रवन्ति न सरितः अभिचाकशीमि) चितिके मध्य में जो हिरण्यमय पुरुष स्थित है उसमें हृदय के अन्तर वर्त्तमान विषयोंकी व्याकुलतारहित श्रद्धावाले मनसे पवित्र किये हुए अन्न और घृतकी धारा भली प्रकार क्षरण करते हैं, जिस प्रकार नदियाँ समुद्रमें प्राप्त होती हैं इस प्रकार होमी हुई हवि उस पुरुषको प्राप्त होती हैं मैं उसको देखता हूँ

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा । अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥

इस क० में ५ म० हैं । सबका विरूप ऋषि है, छ० १, २, ३ दैव्यनुष्टुप् ४ दैवी बृहती, ५ साम्नी त्रि० और देवता सबका शकल है । मन्त्रार्थ-हे हिरण्यशकल (ऋचे त्वा) दीप्तिके निमित्त तुमको वामनासिका में प्रासन करता हूँ (रुचे त्वा) सम्यक् दीप्तिके निमित्त तुमको दक्षिण नासामें प्रासन करता हूँ (भासे त्वा) कान्ति के निमित्त तुमको वामचक्षुस्पर्श कराता हूँ ज्योतिषे त्वा) तेज प्राप्तिके निमित्त तुमको दक्षिण नेत्र में स्पर्श करता हूँ (इदं विश्वस्य भुवनस्य वैश्वानरस्य अग्नेः वाजिनम्) यह श्रोत्र सम्पूर्ण प्राणिसमूह तथा सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकारी अग्निके वचन को जाननेवाले हैं इनको प्रासन करता हूँ

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् । सहस्रदा असि सहस्राय त्वा ।

इस क० में २ म० हैं । सबका विरूप ऋ० छ० १ प्राजापत्यानु० २ आसुरी प० और दे० सबका शकल है । मन्त्रार्थ-(अग्निः ज्योतिषा, ज्योतिष्मान् रुक्मः वर्चसा वर्चस्वान्) यह अग्नि पशु श्रोत्र स्थित हिरण्य की कान्तिसे कान्तिमान् है रोचमान अग्नि सुवर्णकी कान्तिसे कान्तिमान् है, हे पुरुष ! तुम (सहस्रदाः असि सहस्राय त्वा) यज-

मानके सहस्रों अभीष्ट सिद्ध करनेवाले हो इस कारण सहस्रों अभीष्टलाभके निमित्त तुमको सिद्ध करता हूँ ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्ग्धि हरसामाभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ ४१ ॥

इसका विरूप ऋ० त्रि० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-चयन कार्यमें व्यवहारको प्राप्त हुए हे पुरुष ! (गर्भम् सहस्रस्य प्रतिमाम् विश्वरूपं आदित्यम् पयसा समंग्धि हरसा परिवृंग्धि मा अभिमंस्थाः चीयमानः शतायुषम् कृणुहि) देवताओंकी उत्पत्तिके स्थान सहस्रोंकी मूर्त्ति सर्वरूप ऐसे आदित्य चिति अग्निको दूधसे सिंचित और संपूर्ण वीर्यके हरनेवाले अग्निके तेजसे यजमानको वर्जित करो, यजमानको मत मारो और चयनको प्राप्त होते हुए यजमानको शतायु करो ॥ ४१ ॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ ४२ ॥

इसका विरूप ऋ० निचृ० त्रि० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने वातस्य जूतिः वरुणस्य नाभिम् सरिरस्य मध्ये जज्ञानम् नदीनाम् शिशुम् हरिम् परमे व्योमन्) हे अग्ने ! वायुकी समान वेग वाले तुम वरुण देवताके नाभिस्वरूप जल के मध्यमें उत्पन्न नदियोंके बालक हरितवर्ण इस लोकमें स्थित होने वाले (अद्रिबुध्नम् अश्वं मा हिꣳसीः) खुरसे पर्वत को खोदने वाले इस घोड़ेको मत मारो ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः सपर्यभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥

इसका विरूप ऋ० नि० त्रि० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अजस्रं इन्दुम् अरुषम् पूर्वचित्तिम् नमोभिः भुरण्युम् अग्निं ईडे सः पर्वभिः ऋतुशः कल्पमानः अदितिं विराजम् गां मा हिꣳसीः) क्षयरहित ऐश्वर्यसे युक्त रोषरहित पूर्व महर्षियोंसे चयनके योग्य अन्नोंसे सबके पोषण करने वाले अग्निको स्तुति करता हूँ, वह अग्नि अमावास्या आदि पर्व प्रति ऋतुमें कर्मोंको सम्पादन करता हुआ अखण्डित अदीन दुग्ध दानादिसे विराजमान गौको न मारे ॥ ४३ ॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् । महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

इसका विरूप ऋ० नि० त्रि० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने परमे व्योमन् त्वष्टुः वरूत्रीम् वरुणस्य नाभिं परस्मात् रजसः जज्ञानम् महीं साहस्रीम् असुरस्य अविं मा हिꣳसीः) हे अग्ने ! उत्कृष्ट रण—स्थानमें स्थापित रूपोंकी निर्माण करने वाली वरुणकी नाभितुल्य रक्षणीय दिव्यरूप लोकसे जायमान बड़ी सहस्र मूल्यके योग्य सहस्रों उपकार साधक प्राणियोंको प्रज्ञा देने वाली अवि को मत नष्ट करो ॥ ४४ ॥

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

इसका विरूप ऋ० त्रिष्टुप् छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(यः अग्निः अग्नेः शोकात् अध्यजायत उत दिवः पृथिव्याः परि) जो अग्निरूप अज प्रजापतिके शोक से उत्पन्न हुआ और द्युलोकके पृथिवीके शोकरूप अग्निसे उत्पन्न हुआ (विश्वकर्मा येन प्रजाः जजान अग्ने ते हेडः तम् परिवृणक्तु) प्रजापतिने जिस अज अर्थात् वायूपसे प्रजाको उत्पन्न किया है, हे चिति अग्निदेव ! तुम्हारा क्रोध उस अजको त्यागे

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ४६ ॥

इसका विरूप ऋ० विराट् ब्राह्मी प० छ० अग्नि देवता है। इसकी व्याख्या अ० ७ । ४२ में होगई ॥ ४६ ॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः । मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

इसका विरूप ऋ० वि० ब्रा० प० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने मेधाय

चीयमानः सहस्राक्षः इमं द्विपादं पशुं मा हिꣳसीः) हे अग्ने ! यज्ञके निमित्त चयन किये हुए सहस्रों नेत्रवाले सुवर्णखण्डरूप सहस्रनेत्र तुम इस पुरुषरूप पशुको मत पीड़ा देना और पीड़ाकी इच्छा हो तो (मेधम् मयुम् पशुम् जुषस्व) पवित्र तुरङ्गवदन किम्पुरुष पशुको सेवन करो (तेन तन्वः चिन्वानः निषीद ते शुक् मयुम् ऋच्छतु यं द्विष्मः ते शुक् तम् ऋच्छतु) उसके सेवनसे ज्वालारूप शरीर पुष्ट करते हुए तुम यहाँ स्थित हो तुम्हारा सन्ताप किम्पुरुषको प्राप्त हो, जिससे हम द्वेष करते हैं, तुम्हारा सन्ताप उसको प्राप्त हो ४७

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु । गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

इसका विरूप ऋ० नि० ग्रा० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ–हे अग्ने ! (इमम् कनिक्रदम् वाजिनेषु वाजिनम् एकशफम् पशुं मा हिꣳसीः) इस अत्यन्त हींसनेवाले वेगवालोंमें वेग वाले एक खुर वाले घोड़े पशुको मत पीड़ा देना (ते आरण्यम् गौरम् अनुदिशामि तेन तन्वः चिन्वानः निषीद ते शुक् गौरम् ऋच्छतु यं द्विष्मः तम् ते शुक् ऋच्छतु) तुम्हारे निमित्त वन के गौरवर्ण मृगको देता हूँ, उससे शरीर पुष्ट करते हुए तुम यहाँ स्थित हो तुम्हारा सन्ताप अश्वकी समान गौर मृगको प्राप्त हो और जिससे हम द्वेष करें उसको तुम्हारा सन्ताप प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

इमं साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् । गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद गवयन्ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९ ॥

इसका विरूप ऋ० कृतिश्छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने परमे व्योमन् इमम् साहस्रम् शतधारम् उत्सम् सरिरस्य मध्ये व्यच्यमानम् जनाय घृतम् दुहानां अदितिं माहिꣳसीः) आरण्यं गवयं ते अनुदिशामि) हे अग्निदेव ! उत्कृष्ट स्थान में स्थित इस सहस्र मूल्यके योग्य शतसंख्याके क्षीरधारासे युक्त कूपकी सदृश दूधके सोते वाली लोकोंके मध्यमें अनेक प्रकारसे व्यवहारको प्राप्त समस्त जनोंके हितके निमित्त घृतके कारण दूधको देने वाली अखण्डित गौको पीड़ा मत देना

यदि पीड़ा देनेकी इच्छा हो तो वनके गवय पशु गो सदृशको तुम्हारे निमित्त देता हूँ, (तन्वः तेन चिन्वानः निषीद ते शुक् गवयम् ऋच्छतु यं द्विष्मः तम् ते शुक् ऋच्छतु) अपना शरीर उसीसे पुष्ट करते हुए तुम यहाँ स्थित हो तुम्हारी ज्वाला गवयको प्राप्त हो, जिससे हम द्वेष करते हैं, उसको तुम्हारी ज्वाला प्राप्त हो ॥ ४९ ॥

इमम्मूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् । त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् । उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥

इसका विरूप ऋषि कृति छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने परमे व्योमन् इमं ऊर्णायुम् वरुणस्य नाभिं द्विपदाम् चतुष्पदाम् पशूनाम् त्वचम् त्वष्टुः प्रथमम् जनित्रम् मा हिꣳसीः) हे अग्ने ! उत्कृष्ट स्थानमें स्थित इस ऊनसे युक्त वरुणकी नाभि अर्थात् सन्तानकी समान प्रिय मनुष्य चौपाये दोनों प्रकारके पशुओंको कम्बलादि द्वारा आच्छादन करने से त्वचास्वरूप प्रजापतिकी प्रजामें पहिले उत्पन्न अविको मत पीड़ा दो (आरण्यम् उष्ट्रम् ते अनुदिशामि तन्वः तेन चिन्वानः निषीद ते शुक् उष्ट्रम् ऋच्छतु यम् द्विष्मः तं ते शुक् ऋच्छतु) वनके उष्ट्र तुमको देता हूँ, यहाँ स्थित हो तुम्हारी ज्वाला वनेले ऊँटको प्राप्त हो जिससे हम द्वेष करें उसको तुम्हारी ज्वाला प्राप्त हो ॥ ५० ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुपमेध्यासः । शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

इसका विरूप ऋ० भुरिक् कृति छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ–(हि अजः अग्नेः शोकात् अजनिष्ट सः अग्रे जनितारम् अपश्यत्) निश्चय अज प्रजापतिरूप अग्निके शोकसे उत्पन्न हुई है उसने आगे अपने उत्पन्न करने वालेको देखा (देवाः तेन अग्रम् देवताम् आयन् मेध्यासः रोहं तेन उपायन्) देवता उसके द्वारा पूर्वजन्ममें यज्ञादि कर्म करके देवत्वको प्राप्त हुए तथा यज्ञके योग्य यजमान स्वर्गको इसीके द्वारा

प्राप्त हुए हैं (आरण्यम् शरभम् ते अनुदिशामि) वनका शरभ नामक सिंहघाती आठ चरणका मृग तुमको देता हूँ (तन्वः तेन चिन्वानः निषीद ते शुक् शरभं ऋच्छतु यम् द्विष्मः तं ते शुक् ऋच्छतु) शरीर उसके द्वारा पुष्टिको प्राप्त करते हुए तुम यहाँ स्थित हो तुम्हारी ज्वाला शरभके प्रति प्राप्त हो जिससे हम द्वेष करते हैं उसको तुम्हारी ज्वाला प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ५२ ॥

इसका उशना ऋ० नि० गा० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(यविष्ठ त्वं गिरः शृणुधी दाशुषः नॄन् पाहि उत आत्मना तोकम् रक्ष) हे अतिशय तरुण अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियोंको श्रवण करो हवि देनेवाले यजमानके मनुष्योंकी रक्षा करो और अपने यजमानके अपत्यकी रक्षा करो ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपान्त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

इस कण्डिकामें २० मन्त्र हैं। सबका उशना ऋ० छ० १, २, याजुष्यनु० ३, ५, ६, १३ या० वृ० ४, १०, ११, १२, १४, १५ या० प० ६, ७, २०, या० त्रि० १६, १७, १८ या० जु० ११ आसुर्यनु० और सबका इष्टका देवता है। मन्त्रार्थ—हे अपस्या नामक इष्टका ! (अपां एमन् त्वा सादयामि) जलों के स्थानमें तुमको स्थापन करता हूँ। हे अपस्या ! (त्वा अपां ओद्मन् सादयामि) तुझको ओषधियोंसे स्थापन करता हूँ। हे

अपस्या (त्वा अपां भस्मन् सादयामि) तुमको अभ्रमें स्थापन करता हूँ, हे अपस्या (त्वा अपां ज्योतिषि सादयामि) तुमको विद्युत् ज्योतिमें स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा अपां अयने सादयामि) तुमको भूमिमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अर्णवे सदने सादयामि) तुमको प्राणके स्थानमें स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा समुद्रे सदने सादयामि) तुमको मनके स्थानमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा सरिरे सदने सादयामि) तुमको वाणीके स्थानमें स्थापन करता हूँ हे अपस्या (त्वा अपांक्षये सादयामि) तुमको चक्षुके निवासमें स्थापन करता हूँ हे अपस्या (त्वा अपां सधिषि सादयामि) तुमको श्रोत्रमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अपां सदने सादयामि) तुमको द्युलोकमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अपां सवस्थे सादयामि) तुमको अन्तरिक्षमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अपां योनौ सादयामि) तुमको समुद्रमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अपां पुरीषे सादयामि) तुमको सिकतामें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अपां पाथसि सादयामि) तुमको अन्नोंमें स्थापन करता हूँ। हे अपस्या। (त्वा गायत्रेण छन्दसा सादयामि) तुमको गायत्री छन्द के प्रभावसे सादन करता हूँ। हे अपस्या (त्रेष्टुभेन छन्दसा त्वा सादयामि) त्रिष्टुप् छन्दके प्रभावसे तुमको स्थापन करता हूँ, हे अपस्या (त्वा जागतेन छन्दसा सादयामि) तुमको जगती छन्दके प्रभावसे स्थापन करता हूँ। हे अपस्या (त्वा अनुष्टुभेन छन्दसा सादयामि) तुमको अनुष्टुप् छन्दके प्रभावसे स्थापन करता हूँ, हे अपस्या (त्वा पांक्तेन छन्दसा सादयामि) तुमको पंक्ति छन्द के प्रभावसे सादन करता हूँ ॥ ५३ ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ ५४ ॥

इन क० में १० म० हैं। सबका उशना ऋ० छन्द १ दैवी त्रि० २ याजु० नु० ३, ८, या० ष्णि० ४, ५, ६, या० गा० ९, ७, दै० प० १० आर्ची गा० है। और सबका प्राणभृदिष्टका दे०है, मंत्रार्थ-हे इष्टका! जो (अयं पुरः भवः प्राणः तस्य भौवायनः प्राणायनः वसन्तः वासन्ती गायत्री गायत्र्यै गायत्रं गायत्र्यात् उपांशुः उपांशोः त्रिवृत् त्रिवृतः रथन्तरं वसिष्ठः ऋषिः) यह प्रथम होने वाला अग्नि है तू इसके रूप वाली है

प्राण उस भुव नाम अग्नि की सन्तान है प्राणका पुत्र वसन्त ऋतु है वसंतकी संतान गायत्री है गायत्रीसे गायत्र साम उत्पन्न है गायत्र सामसे उत्पन्न उपांशुग्रह है उपांशुग्रहसे उत्पन्न त्रिवृत्स्तोम, त्रिवृत्स्तोमसे निर्मित रथन्तरसाम, सर्वजन्तुओंमें अधिष्ठित सर्वाधार वशिष्ठ रूप प्राणज्ञाता। हे इष्टके (प्रजापतिगृहीतया त्वया प्रजाभ्यः प्राणम् गृह्णामि) प्रजापतिके द्वारा ग्रहण की हुई तुम्हारी सहायतासे मैं प्रजाओंके निमित्त नीरोग प्राणलाभके निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्म्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाजऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

इस क० में १० म० हैं। सबका उशना ऋ० । छ० १-२।या० वृ० ३, ५ दै० प० ४ दै० बृ० ६, ८, ९ या० गा० ७ याजुष्यनु० १० आ० गा० है, देवता सबका मनोभूदिष्टका है। मन्त्रार्थ-यह इष्टका (विश्वकर्मा अयम् दक्षिणा) विश्वका निर्माता विश्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध यह दक्षिण दिशा में आर्यावर्त्तसे वहन करती है (मनः तस्य वैश्वकर्मणं) मन उस विश्वकर्माका अपत्य है (ग्रीष्मः मानसः) ग्रीष्मऋतु मनका अपत्य है (त्रिष्टुप् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारं) त्रिष्टुप्छन्द ग्रीष्मसे प्रकट है, त्रिष्टुप्छन्दसे स्वार साम प्रकट हुआ 'स्वारात् अन्तर्यामः) स्वार सामसे अन्तर्यामि ग्रह हुआ (अन्तर्यामात् पञ्चदशः) अन्तर्यामसे पञ्चदशस्तोम हुआ (पञ्चदशात् बृहत्) पञ्चदशस्तोमसे बृहत् साम हुआ (भरद्वाजः ऋषिः) अन्न का धारण करनेवाला मन सचेतन है, हे इष्टके (प्रजापतिगृहीतया त्वया प्रजाभ्यः मनः गृह्णामि) प्रजापति द्वारा सादर ग्रहण की हुई तुम्हारी सहायतासे प्रजाओंका मन ग्रहण करता हूँ ॥ ५५ ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्समम् ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

इस क० में १० मन्त्र हैं। सबका उशना ऋ० छ० १ या०जुष्यनु० २ या० वृ० ३,४,६

दै० प० ५, ७, ९, या० गा० ८ याजुष्यु० १० आ० गा० और देवता सबका चक्षुर्भृदिष्टका है। मन्त्रार्थ-(अयं पश्चात् विश्वव्यचाः चक्षुः तस्य वैश्वव्यचसम् वर्षा चाक्षुष्या जगती वार्षी जगत्यै ऋक्सामम् ऋक्सामात् शुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशात् वैरूपं जमदग्निऋषिः) यह पश्चिमगामी नेत्र उस रविसे उत्पन्न है, ऋतु चक्षु से प्रकट है, जगतीछन्द वर्षाऋतुसे प्रकट है, जगतीछन्दसे उत्पन्न ऋक्साम, ऋक्साम से शुक्र प्रकट है, शुक्र ग्रहसे सप्तदशस्तोम प्रकट हुआ सप्तदशस्तोमसे वैरूपपृष्ठ हुआ वैरूपसे प्रकट चक्षुरूप जमदग्नि ऋषि। हे इष्टके! प्रजापतिगृहीतया त्वया प्रजार्थं चक्षुः गृह्णामि) प्रजापतिद्वारा आदरसे गृहीत तुमको प्रजाके निमित्त चक्षु इन्द्रियरूप ग्रहण करता हूँ ॥ ५६ ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳसौवꣳशरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप्शारद्यनुष्टुप ऐडमैडान् मन्थी मन्थिन एकविꣳश एकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्रऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

इस क० में ९ म० हैं। सबका उशना ऋ० है छ० १, २, ४, ५, ९ या० गा० छ० ३, ६, दै० वृ० ७, ८ या० ष्णि० प्रजापति इत्यस्य आ०गा० और देवता सबका श्रोत्रभृदिष्टका है। मन्त्रार्थ-(इदम् उत्तरात् स्वः श्रोत्रम् तस्य सौरुवम्) यह उत्तर दिशामें स्वर्ग है श्रोत्र उस स्वर्ग के सम्बन्धी हैं (शरत् श्रौत्री अनुष्टुप् शारदी अनुष्टुभः ऐडम् ऐडात् मन्थी मन्थिनः एकविंशः) शरद्ऋतु श्रौत्रसे उत्पन्न है अनुष्टुप् छन्द शरद ऋतुसे प्रकट है अनुष्टुभ् छन्दसे ऐडसाम प्रकट है ऐडसामसे मन्थीग्रह हुआ, मन्थीग्रहसे एकविंशस्तोम हुआ (एकविंशात् वैराजम् विश्वामित्र ऋषिः) एकविंशस्तोमसे वैराज प्रकट हुआ श्रद्धापूर्वक दूसरेका वाक्य सुननेसे सबका मित्र और ज्ञाता श्रोत्र। हे इष्टके! (प्रजापतिगृहीतया त्वया प्रजाभ्यः श्रोत्रं गृह्णामि) प्रजापतिके द्वारा आदरसे ग्रहण की हुई तुम्हारी सहायतासे प्रजाओं के निमित्त श्रोत्र को ग्रहण करता हूँ ॥ ५७ ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् मात्या हेमन्तो वाच्यः पंक्तिर्हैमन्ती पंक्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयणः। आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्यांꣳशाक्वररैवते

विश्वकर्माऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

इस कण्डिकामें १३ मन्त्र हैं। सबका उशना ऋ० छ० १ या० ष्यु० २, ३, ४ दै० प० ५, ६ या० गा० ६ या० बृ० ७ या त्रि० ८ सा० १० आर्ची गा० और सबका वाग्भृदिष्टका देवता है। मन्त्रार्थ-(उपरि इयम् मतिः) सबके ऊपर विराजमान चन्द्र यह वाणी है (वाग् तस्यै मात्या) वाणी उस चन्द्ररूप मतिसे उत्पन्न है (हेमन्तः वाच्या पंक्तिः हैमन्ती) हेमन्त ऋतु वाणीसे प्रकट है, पंक्तिछन्द हेमन्त ऋतुसे प्रकट है। (निधनवत् पंक्त्यै निधनवतः आग्रयणः) निधनवत् साम पंक्ति छन्दसे प्रकट है। निधनवत्सामसे आग्रयण ग्रह प्रकट हुआ है (आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) आग्रयण ग्रहसे त्रिणव और त्रयस्त्रिंश दो साम के स्तोम हुए हैं, (त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम् शाक्वररैवते) त्रिणवत्रयस्त्रिंश नामक स्तोमोंसे शाक्वर रैवत दो पृष्ठ प्रकट हुए हैं (विश्वकर्मा ऋषिः सम्पूर्ण संसारको करने वाली वाणी है। हे इष्टके ! (प्रजापतिगृहीतया त्वया प्रजाभ्यः वाचं गृह्णामि) प्रजापतिके द्वारा ग्रहण की हुई तुम इष्टका की सहायतासे प्रजाओंके निमित्त नीरोगता प्राप्तिके निमित्त इन दश मन्त्रोंसे वाणीको ग्रहण करता हूँ ॥ ५८ ॥

लोकम्पृणच्छिद्रं पृणाथो सोद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन्

ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥

इन्द्र विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥

इन मन्त्रोंकी व्याख्या अ० १२ मन्त्र ५४, ५५, ५६ में होगई है ॥ ६१ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिताका सानुवाद तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

—o—

❀ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❀

जिसमें चितिप्रकरणका वर्णन है ऐसे त्रयोदश अध्यायमें इष्टका सम्भरणके मन्त्र कहे हैं, अब चौदहवें अध्यायमें दूसरी तीसरी और चौथी चितिके मन्त्र कहे जायँगे—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया । उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

इसका उशना ऋ० निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द अश्विनौ देवता है। मन्त्रार्थ हे इष्टके तुम (ध्रुवक्षितिः ध्रुवयोनिः उख्यस्य प्रथमम् केतुम् जुषाणा ध्रुवा असि ध्रुवम् साधुया योनिम् आसीद देवानां अध्वर्यू इह त्वा सादयताम्) स्थिर निवासवाली अचल कारण वाली उख्य अग्निके पहले प्रथम चितिरूप स्थानको सेवन करती हुई स्थिर होओ स्थिर रेतः सिग्वेला नामक श्रेष्ठ स्थान पर बैठो देवताओंके अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस रेतः सिग्वेला पर तुम को स्थापन करें ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

इसका उशना ऋ० नि० ब्रा० बृ० छ० अश्विनौ देवता है। मन्त्रार्थ—हे इष्टके ! (कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः पृथिव्याः स्योने सदने सीद रुद्राः वसवः त्वा अभिगृणन्तु इमाः ब्रह्म सौभगाय पीपिहि अश्विनौ अध्वर्यू इह त्वा सादयताम्) पक्षीके घोंसलेके आकारवाली होमे हुए घृत से युक्त नीचे स्थित प्रथमचिति इष्टकाओंको धारण करने वाली तुम पृथिवीके सुखदायक स्थानमें स्थित होओ ग्यारह रुद्र आठ वसु तुमको स्तुत करें, इन मन्त्रोंको ऐश्वर्यके निमित्त वृद्धि दो यजमानका भाग्योदय हो अश्विनीकुमार अध्वर्यू इस स्थलमें तुमको स्थापित करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाꣳ सुम्ने बृहते रणाय पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्व । अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

इसका उ० ऋ० त्रि० ब्रा० बृ० छ०, अश्विनौ देवता है । मन्त्रार्थ-हे इष्टके ! (दक्षपिता देवानाम् रणाय बृहते सुम्ने इह स्वैः दक्षैः सीद) बलकी रक्षा करने वाली तुम देवताओंके रमणीय बड़े सुखके निमित्त इस दूसरी चितिमें अपने बलों से स्थित होओ और (आ सुशेवा एधि इव पिता सूनवे स्वावेशा तन्वा संविशस्व) सदा सुख की देने वाली हो जिस प्रकार पिता पुत्रके निमित्त सुखदायक होता है, और

सुख प्रवेश वाले शरीरके साथ यहाँ अवस्थान करो (अध्वर्यू अश्विना इह त्वा सादयताम्) अध्वर्यू अश्विनीकुमार इस स्थानमें तुमको स्थापन करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सोनाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

इसका उशना ऋ० भुरिक् ब्रा० त्रि० छ० अश्विनौ देवता है। मन्त्रार्थ-(पृथिव्याः पुरीषम् अप्सोनां असि ताम् त्वा विश्वेदेवाः अभिगृणन्तु स्तोमपृष्ठाः घृतवती इह सीद प्रजावत् द्रविणा अस्मे आयजस्व अध्वर्यू अश्विना इह त्वा सादयताम्) हे इष्टके ! तुम पहली चितिकी पूरक अप्स कहिये जलके कारणीभूत रसरूप हो, उस तुझको सम्पूर्ण देवता सब ओरसे स्तुति करें, निवृत् आदि स्तोम रथन्तरादि पृष्ठ जिसमें पढ़े जाते हैं ऐसी हवन होने योग्य घृतसे युक्त तुम इस दूसरी चितिमें ठहरो पुत्र पौत्रादिसे युक्त धनको हमारे निमित्त सब ओर से दो अध्वर्यू अश्विनीकुमार इस स्थानमें तुमको स्थापन करें ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्। ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

इसका उशना ऋ० भुरिक्शक्वरी छ० अश्विनौ देवता है। मन्त्रार्थ-(अंतरिक्षस्य धर्त्रीं दिशाम् विष्टम्भनीम् भुवनानाम् अधिपत्नीम् त्वा अदित्याः पृष्ठे सादयामि) हे इष्टके ! भुवर्लोक की धारण करने वाली, पूर्वादि दिशाओंको स्तम्भन करनेवाली सब प्राणियोंकी स्वामिनी तुमको प्रथम चितिरूप पृथ्वीके ऊपर स्थापन करता हूँ। तुम (अपाम् द्रप्सः ऊर्मिः असि) जलोंको रस और तरङ्गरूप हो (विश्वकर्मा ते ऋषिः अध्वर्यू अश्विना त्वा इह सादयताम्) प्रजापति तुम्हारा द्रष्टा है अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुमको इस स्थानमें स्थापित करें

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोन्तरा

द्यावापृथिवी इमे ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतया-

ङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

इसका उशना ऋ०, निचृदुष्णिक् छ० ऋतु दे० है। मन्त्रार्थ-(शुक्रः च शुचिः च ग्रैष्मौ ऋतू अग्ने अन्तः श्लेषः असि मम ज्येष्ठ्याय द्यावा पृथिवी कल्पन्ताम्) ज्येष्ठ और आषाढ़ भी ग्रीष्म ऋतु सम्बन्धी हैं, हे ऋतुरूप दोनों इष्टकाओं! तुम अग्निके मध्यमें लग्न हो, मेरी उत्कर्षताके निमित्त द्युलोक और भूलोक समर्थ हों (आपः ओषधयः कल्पन्ताम् सव्रताः पृथक् अग्नयः कल्पन्ताम्) जल ओषधी समर्थ हों समान कर्म वाली अनेक स्वयमातृणादि इष्टका समर्थ हों (इमे द्यावा पृथिवी, अन्तरा समनसः ये अग्नयः ग्रीष्मौ ऋतू अभिकल्पमानाः अभिसंविशन्तु इव देवाः इन्द्रम् तया देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम्) यह द्युलोक और भूलोकके मध्यमें वर्त्तमान समान चित्त जो दूसरोंसे स्थापित इष्टका हैं ग्रीष्मऋतुको सम्पादन करतीं इस स्थान में स्थित हों जैसे देवता इन्द्रको प्राप्त होते हैं, हे ऋतव्य इष्टका! उस देवतासे स्थापित तुम अंगिराकी समान दृढ़ स्थित होओ ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ७ ॥

इस क० में ५ म० हैं सबका विश्वेदेवा ऋ० छ० १ आ० प० ३, ४ भु० ब्रा० २ १० । १२ । ३८

ग्रा० ष्णि०, ५ आ० त्रि० है और सबका विश्वेदेवा दे० है । मन्त्रार्थ—(ऋतुभिः सजूः विधाभिः सजूः वयोनाधैः देवैः सजूः त्वा वैश्वानराय अग्नये अध्वर्यू अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके ! तुम ऋतुओंके साथ प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान् हो, बाल्यादि अवस्था प्राप्त करानेवाले प्राणोंके साथ तथा इन्द्रादि देवतोंके साथ प्रेम करने वाली तुमको सबके हितकारी अग्निदेवताकी तृप्तिके निमित्त ग्रहण करता हूँ, अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करो (ऋतुभिः सजूः विधाभिः सजूः वसुभिः सजूः वयोनाधैः देवैः सजूः त्वा वैश्वानराय अग्नये अध्वर्यू अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओंके साथके प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान् वसुओंके साथ प्रीतिमान् तुमको विश्वके हितकारी अग्निदेवताकी तृप्तिके निमित्त स्थापन करता हूँ अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें (ऋतुभिः सजूः विधाभिः सजूः रुद्रैः सजूः वयोनाधैः देवैः सजूः त्वा वैश्वानराय अग्नये अध्वर्यू अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओंके साथ प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिवाले रुद्रोंके साथ प्रीतिवाले प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिवाले तुमको विश्वके हितकारी अग्निदेवता के निमित्त स्थापन करता हूँ अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें। (ऋतुभिः सजूः विधाभिः सजूः आदित्यैः सजूः वयोनाधैः देवैः सजूः त्वा वैश्वानराय अग्नये अध्वर्यू अश्विना त्वा इह सादयताम्) ऋतुओंके साथ प्रीतिवाले जलोंके साथ प्रीतिवाले आदित्यके साथ प्रीतिवाले प्राण देवताओं से प्रीति वाले तुमको सब विश्वके हितकारी अग्नि देवताकी प्रीतिके निमित्त स्थापन करता हूँ, अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुम को इस दूसरी चिति में स्थापन करें। (ऋतुभिः सजूः विधाभिः सजूः विश्वैः वैश्वदेवैः सजूः वयोनाधैः देवैः सजूः त्वा वैश्वानराय अग्नये अध्वर्यू अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके ऋतुओंसे सेवित प्राण देवताओंसे सेवित तुमको सब जगत्के हितकारी अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुम को इस दूसरी चितिमें स्थापन करें ॥७॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय ।
अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

इस क० में ४ म० हैं। सबका विश्वदेवा ऋ० ६, ८, दै० बृ० १, ३, ७, ९, दै० प० २, ५, दै० त्रि० १० दै० ज० ४ प्रा० गा० और देवता ६, ८ आप १, ३, ७, ९

वायुगाप २, ५ वायु १० आप ४ वायु है। मंत्रार्थ-हे इष्टके ! तुम (मे प्राणं पाहि मे अपानं पाहि मे व्यानं पाहि) मेरी नाभिसे ऊपर चलनेवाली प्राणवायुकी रक्षा करो मेरी नाभिसे नीचे चलनेवाले अपान वायु की रक्षा करो मेरे शरीरकी संधिगत वायु की रक्षा करो हे इष्टके ! तुम (मे चक्षुः उर्व्या विभाहि मे श्रोत्रं श्लोकय) मेरे नेत्रों का विस्तीर्ण दृष्टिसे देखनेमें समर्थ करो, मेरे कर्णेन्द्रिय को बहुत शब्दोंके श्रवणमें समर्थ करो। (अपः पिन्व ओषधीः जिन्व द्विपाद् अव चतुष्पात् पाहि दिवः वृष्टिम् परय) हे इष्टके ! तुम्हारे प्रसादसे यह पृथ्वी वृष्टिके जलसे सिंचित हो, औषधियों को तृप्त करो द्विपाये प्राणी मनुष्यों की रक्षा करो, चौपाये पशुओंकी रक्षा करो द्युलोक से वर्षाको सब ओर प्रेरणा करो ॥ ८ ॥

मूर्द्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो । व्याघ्रो वयोनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहतीछन्द उक्षा वयः ककुप्छन्द ऋषभो वयः सतो बृहती छन्दः ॥ ९ ॥

इस क० में १९ मन्त्र हैं सबका विश्वेदेवा ऋ० । छ० १, ३, १०, १७, याजुषी प० २, ५, ६, ७, ८, १३, १४, १६, १८, १९ या० बृ० ९, ११, १५ याजु० जु० ४, १२ या० ज० और सबका लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ—(प्रजापतिः छन्दः वयः मूर्द्धा) प्रजापतिने गायत्री छन्द होकर वयद्वारा प्रधान (ब्राह्मण) जातिकी रचना की है (क्षत्रं वयः मयन्दं छन्दः) दुःखसे रक्षा करनेवाली क्षत्रिय अवस्था प्रजापति हुए सुख देनेवाले अनिरुक्त छन्द प्रजापति हुए (अधिपतिः विष्टम्भः वयः छन्दः) अधिक पालन करनेवाले जगत्के स्तम्भनकर्त्ता प्रजापति संसाररूप पशु सम्बन्धी अवस्था वाले छन्द हुए (परमेष्ठी विश्वकर्मा वयः छंदः) परमपदमें स्थित होने वाले सबके स्रष्टा प्रजापति वय द्वारा छन्द हुए अर्थात् प्रजापतिने छन्दके प्रभावसे विविध कर्मचारी 'सेवावृत्तियुक्त' शूद्रजाति उत्पन्न की (वस्तः विवलम् छन्दः वयः) प्रजापति ने अजा बकरी जातिको एकपद नामक छन्दसे उसी अवस्थाके अनुसार उत्पन्न किया (विशालं छन्दः वृष्णिम् वयः) द्विपदा गायत्रीरूप छंद होकर सेचनमें समर्थ मेष पशुको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया (तन्द्रं छंदः पुरुषं वयः) पंक्ति छन्द होकर जाते हुए किन्नर

की अवस्थाको उत्पन्न किया (अनाधृष्टं छन्दः व्याघ्रं वयः) विराट् छन्द होकर जाते हुए व्याघ्र पशुको उस अवस्थासे प्रजापति ने उत्पन्न किया (छदिः छन्दः सिंहम् वयः) अति जगती आदि छन्द होकर जाते हुए सिंह को उस अवस्थासे उत्पन्न किया) (बृहती छन्दः पष्ठवाट् वयः) बृहती छंद होकर जाते हुए पाँच वर्षके पीठपर भार वहने वाले पशु को अवस्था द्वारा उत्पन्न किया (ककुप् छन्दः उक्षा वयः) आदि अंत में अष्ट अक्षरके दो चरण मध्यका बारह अक्षर का इस प्रकारके ककुप् छन्द होकर जाते हुए उक्षाको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया (सतोबृहती छन्दः ऋषभं वयः) बारह अक्षरके त्रिपाद वाले सतोबृहती छन्दरूपसे गमन करते, भल्लूकादिको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

अनड्वान्वयः पंक्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगतीछन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् । छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छंदः । पञ्चाविर्वयो गायत्रीछंदस्त्रिवत्सो वय उष्णिक् छंदस्तुर्यवाड्वयोनुष्टुप्छंदः॥

ऋष्यादि (१) ॐ अनड्वानिति विनियोगादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(पंक्तिः छन्दः अनड्वान् वयः) पंक्ति छन्द होकर जाते हुए बलीवर्द को उस अवस्था से उत्पन्न किया (जगती छन्दः धेनुः वयः) जगती छन्द होकर गमन करते हुए धेनुको वयसे प्राप्त किया (त्रिष्टुप् छन्दः त्र्यविः वयः) त्रिष्टुप्छन्द होकर गमन करते हुए अठारह मासके पशुको वयसे उत्पन्न किया (विराट् छंदः दित्यवाट् वयः) छन्दके रूपसे गमन करते धान्य वहन करने वालेको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया (गायत्री छंदः पंचाविः वयः) गायत्री छन्दसे गमन करते ढाई वर्षके पशुको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया (उष्णिक् छन्दः त्रिवत्सः वयः) उष्णिक् छंद होकर गमन करते ३ वर्षके पशुको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया (अनुष्टुप्छन्दः तुर्यवाट् वयः) अनुष्टुप्छंद होकर गमन करते ४ वर्ष के पशुको उसी अवस्थासे उत्पन्न किया ॥

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षञ्च विबाधसे । ११ ।

इसका विश्वेदेवा ऋ०भुरिगनुष्टुप्छंद, इन्द्राग्नी तथा स्वयमातृणा देवता है । मन्त्रार्थ—(इन्द्राग्नी युवम् अव्यथमानाम् इष्टकाम् दृंहत) हे इन्द्राग्नी दोनों देवताओं ! तुम दोनों अचल भङ्गतारहित स्वयमातृणा इष्टकाको दृढ़ करो । हे स्वयमातृणा इष्टके ! (पृष्ठेन द्यावापृथिवी च अंतरिक्षम् विबाधसे) तुम अपने ऊपरके भाग में पृथ्वी स्वर्ग और अंतरिक्ष को बाधित करनेमें समर्थ होओ ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳ हान्तरिक्षं मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥१२॥

इसका विश्वकर्म ऋषि विकृतिश्छन्द वायु दे० है । मन्त्रार्थ—हे स्वयमातृणे ! (विश्वकर्मा त्वा व्यचस्वतीम् प्रथस्व ीम् अंतरिक्षस्य पृष्ठे सादयतु) विश्वकर्मा प्रजापति तुम अवकाश युक्त विस्तारवाली को अन्तरिक्षके ऊपर स्थापन करे । हे इष्टके ! तुम (विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय उदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय अन्तरिक्षम् यच्छ अंतरिक्षं दृꣳह अंतरिक्षं मा हिꣳसीः, संपूर्ण प्राणियोंके प्राण अपान व्यान उदान की वृत्तिलाभ अर्थात् वायुबलकी दृढ़ताके निमित्त स्वगृहकी प्रतिष्ठा और शास्त्र आचरण करने के निमित्त तुम अन्तरिक्ष का गन्धर्वादि अप्सराओंके धारण योग्य करो अन्तरिक्षको दृढ़ करो, अन्तरिक्षको मत पोड़ा दो (वायुः त्वा मह्या स्वस्त्या शन्तमेन छर्दिषा अभिपातु तया देवतया अंगिरस्वत् ध्रुवा सीद) वायु देवता तुमको बड़ी योगक्षेमकी संपत्तिसे शुभकारी विशेष तेजसे सब ओरसे रक्षा करे तुम्हारा जो अधिष्ठात्री देवता है उस देवतासे अनुगृहीत हुई अङ्गिराकी समान निश्चल स्थित होओ

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधि पत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

इस क० में ५ मन्त्र हैं। सबका विश्वेदेव ऋ० छ० १ या० गा० २, ३, या० नु० ४ याजुष्यु० ५ या० बृ० है और दिग्देवता है । मन्त्रार्थ-हे दिश्या इष्टके ! तुम (राज्ञी प्राची दिक् असि) राजमान हाती पूर्व दिशा गायत्रीरूप हो (विर ट् दक्षिणा दिक् असि) नानाप्रकारसे विराजमान तुम दक्षिण दिशा त्रिष्टुप्रूप हो (सम्र ट् प्रतीची दिक् असि) भली प्रकार विराजमान तुम पश्चिमदिशा जगतीरूप हो । (स्वराट् उदीची दिक् असि) स्वयं विराजमान तुम उत्तरदिशा अनुष्टुप्रूप हो (अधिपत्नी बृहती दिक असि) स्वयं अधिक रक्षा करने वाली तुम पंक्तिरूप हो तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयन्त्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवासीद ॥ १४ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ० शक्वरी छ० वायु देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! (विश्वकर्मा ज्योतिष्मतीं त्वा अन्तरिक्षस्य पृष्ठे सादयतु विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिः यच्छ वायुः ते अधिपतिः तया देवतया अंगिरस्वत् ध्रुवा सीद) प्रजापति वायुरूप तुझको अन्तरिक्षके ऊपर स्थापन करे यजमानके सम्पूर्ण प्राण अपान व्यानके निमित्त संपूर्ण ज्योतिको दो, वायु देवता तेरा स्वामी है उस अधिष्ठात्री देवता के प्रभावसे समष्टि प्राणकी समान इस अग्निचयन कार्यमें निश्चल ठहरो ॥ १४ ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधय कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥

इसका विश्वेदेव ऋ० स्वराडतिकृति छ० ऋतु देवता है । मन्त्रार्थ—(नभः) श्रावण (नभस्यः) भादों 'शेषकी व्याख्या १३ । २५ में होगई है ॥ १५ ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ० भुरिगुत्कृति छन्द ऋतु देवता है । मन्त्रार्थ—(इषः) आश्विन (ऊर्जः) कार्त्तिक (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतुके दो अवयव । अ० १३ क० २५ में शेषकी व्याख्या होगई ॥ १६ ॥

आयुर्मे पाहि प्राणम्मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

इस क० में १० मन्त्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ० छ० ३-९ दैवी त्रि० १, २, ४ से १० तक दै० प० सबका लिंगोक्त दे० है। मन्त्रार्थ-(मे आयुः पाहि मे प्राणं पाहि मे अपानं पाहि मे व्यानं पाहि मे चक्षुः पाहि मे श्रोत्रं पाहि मे वाचं पिन्व मे मनः जिन्व मे आत्मानं पाहि मे ज्योतिः पाहि) हे इष्टके! मेरी आयुकी रक्षा करो, मेरे प्राणकी रक्षा करो मेरे अपान वायुकी रक्षा करो, मेरे व्यान वायुकी रक्षा करो, मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करो, मेरे दोनों कानोंकी रक्षा करो, मेरी वाणीको कामनाओंसे पूर्ण करो, मेरा मन प्रसन्न करो, मेरे शरीरकी प्रारब्ध समाप्ति पर्यन्त रक्षा करो, मेरे प्राणरूप तेज की रक्षा करो ॥ १७ ॥

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्रीवपश्छन्दः पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोनुष्टुप्छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप्छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

इस क० में १२ मन्त्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ० छ० १, १५, १८, २२ दैव्यनुष्टुप् २, ५, ६, ९, ११, १६, १९, २०, २३, २४ दै० बृ० ३, ७, ८, १०, १२, १३, २१, २५, २६, २७, ३०, ३५ दै० प० ४, १४, १७, २८, २९, ३१, ३२, ३६ दै० त्रि० और सब का लिंगोक्त दे० है। मन्त्रार्थ-(प्रमा छंदः) हे इष्टके ! अंतरिक्ष लोकको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ। (प्रतिमा छन्दः) प्रतीतिकारक द्युलोकके छादकरूप हो प्रतिमा छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ (अस्रीवयः छन्दः) पतनशील अन्न त्रिलोकीरूप छादक हो, अस्रीवय छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ (पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दः बृहतीछन्दः अनुष्टुप्छन्दः विराट् छन्दः गायत्री छन्दः त्रिष्टुप्छन्दः जगतीछन्दः) पंक्ति छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ. उष्णिक् छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, बृहती छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ अनुष्टुप्छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, विराट् छन्द को मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, गायत्री छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ त्रिष्टुप्छंदको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ जगती छन्दको मनन करते तुम को स्थापन करता हूँ तुम इन सबकी रूप हो ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्दोन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोजाछन्दोश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ (पृथिवी छन्दः अन्तरिक्षं छन्दः द्यौः छन्दः समाः छंदः नक्षत्राणि छन्दः वाक् छन्दः मनः छन्दः कृषिः छन्दः हिरण्यं छन्दः गौः छन्दः अजाः छन्दः अश्वः छंदः) पृथिवी देवता वाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, अंतरिक्ष देवता वाले छन्द को मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, द्युदेवतावाले छंदको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, वर्ष देवता वाले छन्द को मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, नक्षत्र देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ वाग्देवता वाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ मनदेवतावाले०कृषि देवतावाले० हिरण्य देवतावाले० गौ देवतावाले० अजा देवतावाले०अश्वदेवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ ॥१९॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

इसका विश्वदेव ऋ०भुरिग्ब्राह्मी त्रि० छ० अग्न्यादय दे० है । मन्त्रार्थ (अग्निः देवता वातः देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्राः देवता आदित्याः देवता मरुतो देवता विश्वेदेवाः देवता बृहस्पतिः देवता इन्द्रो देवता वरुणः देवता) अग्नि देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, वायु देवता० करते० सूर्य देवताको मनन करते यह० चन्द्रमा देवता को मनन करते यह० वसुदेवताओं को मनन करते यह० रुद्र देवताओं को मनन करते यह० आदित्य देवताओं को मनन करते० मरुत् देवताओंको मनन करते यह० विश्वदेवा देवताओंको मनन करते यह० बृहस्पति देवताओंको मनन करते यह० इन्द्र देवता को मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ ॥ २० ॥

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी । आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

इसका विश्वदेव ऋ० निचृ० नु० छ० और प्राण देवता है। मन्त्रार्थ—(राट् मूर्धा असि धरुणा ध्रुवा असि धर्त्री धरणी आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा) हे बालखिल्ये! तुम प्रकाशवान् मूर्धा की समान उत्तम हो, धारण हेतु और स्थिर हो, तुम ध्रुवरूपसे इस स्थलको धारण करो, धारण करने वाली भूमिरूप हो तुम धरणी स्वरूपसे इस स्थलको धारण करने में तत्पर होओ, आयुवृद्धिके निमित्त तुम को स्थापन करता हूँ, कान्तिके निमित्त तुमको स्थापन० अन्नकी वृद्धिके निमित्त तुमको० कल्याणकी वृद्धिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २१ ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री। इषे त्वोर्ज्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा लोकन्ता इन्द्रम् ॥ २२ ॥

इसका विश्वदेव ऋ० परोष्णिक् छ० प्राणदेवता है। मन्त्रार्थ-हे बालखिल्ये! तुम (यंत्री राट् यंत्री यमनी असि ध्रुवा धरित्री असि) नियमसे युक्त विराजमान हो, इस स्थानमें विराजमान हो, स्वयं भी नियम वाली सबको नियम कराने वाली हो स्थिर धरणी भूमिरूप हो, हे बालखिल्ये! (इषे त्वा ऊर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा) अन्नप्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ, बलप्राप्तिके निमित्त तुमको० धनप्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ धनपुष्टिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृत् भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशः गर्भाः पञ्चविꣳशः ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

इस क० में १८ मन्त्र हैं, ऋ० १ विश्वदेव और सबका विश्वकर्मा है, छ०-१ दै० वृ० २, ३, ६, १०, ११, १३, १८ दै० त्रि० ४, ५, ७, १४ दै० ज० ८, १२, १६ दै० प० ९, १७ याजुष्य० १५ या० प० सबका लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ—हे इष्टके! (त्रिवृत् आशुः) त्रिवृत् स्तोम तथा त्रिलोक में व्याप्त वायु देवताको मनन करते त्रिवृत् आशुरूप तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ (पञ्चदशः भान्तः) पन्द्रह दिनमें ह्रास

और वृद्धि पानेवाले पञ्चदश कलाके अधिपति चन्द्रज्योतिको मनन करते तुमको सादन करता हूँ (व्योमा सप्तदश) अनेक प्रकारसे रक्षा करने वाला प्रजापति सप्तदश स्तोमरूप है, (धरुणः एकविंशः) धारणकर्त्ता प्रतिष्ठारूप एकविंश स्तोम है (प्रतूर्त्तिः अष्टादश) सम्वत्सर १२ महीने ५ ऋतु एक संवत्सर इन १८ अवयव वाला है (तपः नवदश) तपरूप नवदशस्तोम है (अभीवर्तः सविंशः) समावृत्ति-रूप सविंशस्तोम है, (वर्चः द्वाविंशः) विशेष बल देने वाला द्वाविंशस्तोम है (सम्भरणः त्रयोविंशः) सम्यक् पुष्टिकारक त्रयोविंश स्तोम है (योनिः चतुर्विंशः) प्रजाका उत्पादक चतुर्विंशस्तोम है (गर्भाः पञ्चविंशः) सामगर्भ पञ्चविंशस्तोम है (ओजः त्रिवृणः) तेजस्वी त्रिवृणस्तोम है (क्रतुः एकत्रिꣳशः) यज्ञके उपयोगी एकत्रिंशस्तोम है (प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशः) स्थितिका हेतु त्रयस्त्रिंशस्तोम है (ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः) सूर्यका स्वाराज्य निवास स्थान भुवन देनेवाला चतुस्त्रिंशस्तोम है (नावः षट्त्रिꣳशः) स्वर्गका देने वाला षट्त्रिंशस्तोम है (विवर्त्तः अष्टचत्वारिꣳशः) सामके आवर्तनोंसे युक्त अष्ट चत्वारिंश स्तोम है (धर्त्रम् चतुष्टामः) धारक होने से त्रिवृत् पञ्चदश सप्तदश एकविंश इन चार स्तोमोंका समूहरूप है ॥ २३ ॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः इन्द्रस्य भागोसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳ स्पृतं पञ्चदशः स्तोमो नृचक्षसां भागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतं सप्तदशः स्तोमो । मित्रस्य भागोसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकत्रिꣳशः स्तोमः वसूनां भागः ॥ २४ ॥

इस क० में ४ म० हैं सबका विश्वदेव ऋ० छ०-१ साम्नी प० २ सा० त्रि० ३ साम्नी ज० ४ आर्ची बृ० और दे० सबका लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ—हे इष्टके ! जो तुम (अग्नेः भागः असि दीक्षायाः आधिपत्यम् त्रिवृत्स्तोमः ब्रह्म स्पृतम्) अग्निकी भाग हो जो तुम्हारे ऊपर दीक्षाका आधिपत्य है, इस कारण तुमसे त्रिवृत्स्तोमद्वारा ब्राह्मण जाति मृत्युसे रक्षित हुई है त्रिवृत्स्तोम को मनन करते तुमको सादन करता हूँ। (इन्द्रस्य भागः असि विष्णोः आधिपत्यं पञ्चदशस्तोमः क्षत्रं स्पृतम्) इन्द्रका भाग हो, तुम्हारे ऊपर विष्णुका आधिपत्य है, पञ्चदशस्तोमसे क्षत्र जातिकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है (नृचक्षसाम् भागः असि धातुः आधिपत्यम् सप्तदशस्तोमः जनित्रं स्पृतम्)

मनुष्योंके शुभाशुभ जानने वाले देवताओं के भाग हो तुम्हारे ऊपर धाताका आधिपत्य है तुमने सप्तदशस्तोमद्वारा वैश्यजाति को मृत्युमुखसे रक्षा किया है सप्तदशस्तोम को मनन करते तुमको सादन करता हूँ। (मित्रस्य भागः असि वरुणस्य आधिपत्यं एकविꣳशस्तोमः दिवः वृष्टिःवातः स्पृतः) प्राणोंका भाग हो तुम्हारे ऊपर वरुणका आधिपत्य है एकविंशस्तोमके द्वारा द्युलोक सम्बन्धिनी वर्षा पवन मृत्युमुखसे रक्षित है

वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं चतुर्विꣳशस्तोमः आदित्यानां भागोसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पञ्चविꣳशस्तोमः। अदित्यै भागोसि पूष्ण आधिपत्यमोजः स्पृतं त्रिणवस्तोमो देवस्य सवितुर्भागोसि बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिशः स्पृताश्चतुष्टोमः स्तोमो यवानां भागः ॥ २५ ॥

इस क० में ४ म० हैं सबका विश्वदेव ऋ० छ० १, २ सा० ज०, ३ आर्च्युष्णिक् ४ आर्ची प० है देवता सबका लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ–हे इष्टके तुम वसूनाम् भागः असि रुद्राणाम् आधिपत्यम् चतुर्विंशस्तोमः चतुष्पाद् स्पृतम्) वसु गणका भाग हो, तुम्हारे ऊपर रुद्रोंका आधिपत्य है, चतुर्विंशस्तोम के द्वारा तुमने चौपायोंकी मृत्युमुखसे रक्षा की है (आदित्यानां भागः असि मरुतां आधिपत्यं चतुर्विꣳशस्तोमः गर्भाः स्पृतम्) आदित्य गणोंका भाग हो तुम्हारे ऊपर मरुद्गणोंका आधिपत्य है पञ्चविंशस्तोमके द्वारा गर्भों की मृत्युमुखसे रक्षाकी है पञ्चविंशस्तोम देवताको मनन करते तुमको इस स्थानमें सादन करता हूँ (अदित्यै भागः असि पूष्णः आधिपत्यं त्रिणवस्तोमः ओजः स्पृतम्) अदितिके भाग हो तुम्हारे ऊपर पूषादेवताका अधिकार है त्रिणवस्तोम द्वारा प्रजाओंके ओज आठवीं धातुकी रक्षा की है त्रिणवस्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापना करता हूँ (सवितुः देवस्य भागः असि बृहस्पतेः आधिपत्यम् चतुष्टोमः समीचीः दिशः स्पृताः) सबके प्रेरक सविता देवका भाग हो तुम्हारे ऊपर बृहस्पति देवताका स्वामित्व है चतुष्टोम स्तोमके द्वारा संपूर्ण मनुष्योंके जाने योग्य दिशा मृत्युसे रक्षा की गईं चतुष्टोम स्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २५ ॥

यवानाम्भागोस्ययवानामाधिपत्यं प्रजाः स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳशस्तोमः ऋभूणाम्भागोसि

विश्वेषान्देवानामाधिपत्यम्भूतꣳ स्पृतन्त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमः सहश्च ॥ २६ ॥

इस क० में २ म० हैं। सबका विश्वदेवऋषि छ० १ भु० गा० २ स्वराड् गा० और लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ-हे इष्टके तुम (यवानाम् भागः असि अयवानाम् आधिपत्यं चत्वारिꣳशस्तोमः प्रजाःस्पृताः) पूर्वपक्षोंके भाग हो तुम्हारे ऊपर कृष्णपक्ष की तिथियोंका स्वामित्व है तुमने चत्वारिंशस्तोमके द्वारा प्रजाकी मृत्युमुखसे रक्षा की (ऋभूणां भागः असि विश्वेषाम् देवानां आधिपत्यं त्रयस्त्रिंशस्तोमः भूतं स्पृतम्) ऋभुनामक देवताओंका भाग हो तुम्हारे ऊपर संपूर्ण देवताओंका आधिपत्य है। त्रयस्त्रिंशस्तोमके द्वारा तुमने प्राणिमात्रकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है ॥ २६ ॥

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

इस क० में २ म० हैं। सबका विश्वदेव ऋ० छ०-१ भुरिगति ज० २ भु०ब्रा० बृ० और देवता सबका ऋतु है, मन्त्रार्थ-(सहः) मार्गशीर्ष (च) और (सहस्यः) पौष (हैमन्तिका ऋतू) हेमन्त ऋतुके अवयव हैं। शेषकी व्याख्या अ० १३ क० १५ में होगई है ॥ २७ ॥

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

इस क० में ४ मन्त्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ० छ० १ साम्नी त्रि०, २ नि० गा० ३ सा० ज० ४ सा० त्रि० है। मन्त्रार्थ— (एकया प्रजाः अधीयन्त प्रजापतिः अधिपतिः आसीत्) प्रजापतिने एक ही वाणी के साथ आत्माका स्तुति की, उससे सब

प्रजा उत्पन्न हुई प्रजापति उनके स्वामी हुए (तिसृभिः अस्तुवत ब्रह्म असृज्यत ब्रह्मणस्पतिः अधिपतिः आसीत्) प्राण उदान व्यानोंसे स्तुति की वेदकी रचना की वेदकर्त्ता स्वामी हुए (पञ्चभिः अस्तुवत भूतानि असृज्यन्त भूतानाम्पतिः अधिपतिः आसीत्) पाँच प्राणोंसे स्तुति की उससे पञ्चभूत सम्पूर्ण प्राणी प्रकट हुए भूतपति महादेव उनके स्वामी हुए (सप्तभिः अस्तुवत सप्त ऋषयः असृज्यन्त धाता अधिपतिः आसीत्) श्रोत्र २ नासिका २ चक्षु २ जिह्वा १ इन सातों की सहायतासे स्तुति की सप्तऋषि प्रकट हुए जगत्कर्त्ता देव उनके स्वामी हुए ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवत पितरोसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत् । एकादशभिरस्तुवत ऋतवोसृज्यन्तार्त्तवा अधिपतय आसँस्त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यंत सम्वत्सरोधिपतिरासीत्पंचदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोधिपतिरासीत्सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत ॥ २९ ॥

इस क० में ५ म० हैं सबका विश्वदेव ऋ० छ० साम्नी प० २, ३ सा० ज० ४ आर्च्यु० ५ आ० वृ० और सबका सृष्टीष्टिका दे० है । मन्त्रार्थ—(नवभिः अस्तुवत पितरः अदितिः अधिपत्नी आसीत्) सातशिरके प्राण और दो नीचे अर्थात् नव द्वार शरीरके प्राणोंकी सहायतासे प्रार्थना की उससे पितृगण अग्निष्वात्तादि उत्पन्न हुए अखण्डित प्रजापति शक्ति उनकी स्वामिनी हुई कारण कि पितर अपनी अखंड शक्तिसे ही सर्वत्र श्राद्ध करनेवालोंको प्राप्त होते हैं (एकादशभिः अस्तुवत ऋतवः असृज्यन्त आर्त्तवाः अधिपतयः आसन्) दशप्राण ग्यारहवाँ आत्मा इन ग्यारहसे, स्तुतिकी उससे वसन्तादि ऋतु प्रकट हुई उनके ऋतुपालक देवविशेष स्वामी होते हुए (त्रयोदशभिः अस्तुवत मासाः असृज्यन्त संवत्सरः अधिपतिः आसीत्) दश प्राण दो पाद [प्रतिष्ठा] एक आत्मा अभ्यन्तरीय संस्थानसे स्तुति की उनसे चैत्रादि अधिक मास सहित रचना की दो अयन मासका अभिमानी वर्ष उनका पालक हुआ (पञ्चदशभिः अस्तुवत क्षत्रम् असृज्यत इन्द्रः अधिपतिः आसीत्) दश हाथकी अंगुली दो हाथ दो भुजा एक नाभि का ऊर्ध्वभाग इनके द्वारा स्तुति की क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया, उनका इन्द्र स्वामी हुआ (सप्तदशभिः अस्तुवत ग्राम्याः पशवः असृज्यन्त बृहस्पतिः अधिपतिः आसीत्) दश पैरकी अंगुलि दो उरू दो जानु दो

पाद और नाभिका अधोभाग इनके देवताओं सहित स्तुतिकी उनसे ग्रामके गौ आदि पशुओंकी रचना की बृहस्पति देवता उनके स्वामी हुए ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्। एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोसृज्यन्त वरुणोधिपतिरासीत्। त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। पञ्चविꣳशत्यास्तुवतारण्याः पशवोसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्। सप्तविꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥

इस क० में ५ म० हैं। सबका विश्वदेव ऋ० छ० १ नि० दा० बृ० २ भु० सा० ज० ३ नि० सा० ज० ४ सा० ज० ५ आ० ज० और सबका सृष्टीष्टिका देवता है। मन्त्रार्थ—(नवदशभिः अस्तुवत शूद्रार्यौ असृज्येताम् अहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्) दश हाथकी अंगुलि ऊपर नीचेके छिद्ररूप नौ प्राणोंसे स्तुति की उससे शूद्र और वैश्य जाति उत्पन्न कीं, उनके दिनरात स्वामी हुए (एकविंशत्या अस्तुवत एकशफाः पशवः असृज्यन्त वरुणः अधिपतिः आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुली दो चरण एक आत्मा उनसे स्तुति की एक खुर वाले पशु उत्पन्न किये, वरुण उनका स्वामी हुआ (त्रयोविंशत्या अस्तुवत क्षुद्राः पशवः असृज्यन्त पूषा अधिपतिः आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुलि दो चरण एक आत्मा इनके साथ स्तुतिकी इससे क्षुद्र पशु अजा आदि उत्पन्न किये पूषा देवता उनका स्वामी हुआ (पञ्चविꣳशत्या अस्तुवत आरण्याः पशवः असृज्यन्त वायुः अधिपतिः आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुलि दो हाथ दो चरण एक आत्माके साथ स्तुति की उससे वनके कृष्णमृगादिक पशु उत्पन्न किये वायुदेवता उनका स्वामी हुआ (सप्तविꣳशत्या अस्तुवत द्यावापृथिवी व्यैताम् वसवः रुद्राः आदित्याः अनुव्यायन् ते एव अधिपतयः आसन्) बीस हाथ पैरकी अंगुली दो भुजा दो ऊरू दो प्रतिष्ठा एक आत्मा इनके साथ स्तुति की स्वर्गलोक भूलोक अंतरिक्षलोक प्रकट हुए वसुगण रुद्रगण आदित्यगण इनके अनुगत होनेसे क्रमसे येही इनके स्वामी हुए ॥ ३० ॥

नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोसृज्यन्त सोमो अधिपतिरासीत्। एकत्रिꣳशतास्तुवत।

प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन्। त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

इस क० में ३ म० हैं। सबका विश्वदेव ऋ० छ० १ नि० सा० ज० २, ३ नि० आ० बृ० सबका सृष्टीष्टिका दे० है मन्त्रार्थ (नवत्रिꣳशत्या अस्तुवत वनस्पतयः असृज्यन्त सोमः अधिपतिः आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुली नवप्राणके छिद्रोंके साथ स्तुति की इससे वनस्पति अश्वत्थ वट आदिकी रचनाकी उनका सोम स्वामी हुआ (एकत्रिꣳशता अस्तुवत प्रजाः असृज्यन्त यवाः च अयवाः च अधिपतयः आसन) २० हाथ पैरकी अंगुली १० इंद्रिय एक आत्माके साथ स्तुतिकी उनसे अन्यान्य सम्पूर्ण प्रजाकी रचनाकी पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष भी उनके स्वामी हुए (त्रयस्त्रिꣳशता अस्तुवत भूतानि अशाम्यन् परमेष्ठी प्रजापतिः अधिपतिः आसीत्) बीस अंगुली दश इन्द्रियें दो पार और आत्मा के सहित स्तुतिकी उससे उत्पन्न समस्त प्राणियोंने शान्तिलाभकी अर्थात् सुखी हुए सत्यलोकमें स्थित होनेवाले प्रजापालक ईश्वर उनके स्वामी हुए ॥ ३१ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद चौदहवाँ अध्याय समाप्त १४

॥ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

जिसमें चिति प्रधान है ऐसे चौदहवें अध्यायमें दूसरी तीसरी चौथी चितिके मन्त्र कहे। अब पन्द्रहवें अध्यायमें पाँचवीं चितिके मन्त्र कहे जायेंगे।

हरिः ॐ ॥ अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः। अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडँस्तव स्याम शर्मन्त्रिवरूथ उद्भौ ॥ १ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० त्रिष्टुप् छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ—(जातवेदः अग्ने नः जातान् सपत्नान् आ प्रणुद अजातान् प्रतिनुद सुमनाः अहेडन् नः अधिब्रूहि) हे सब के जाननेवाले अग्निदेव हमारे पूर्व उत्पन्न शत्रुओंको सब प्रकारसे अधिकतासे नष्ट करो, अनुत्पन्न शत्रुओंको विनष्ट करो अच्छे अन्तःकरणसे क्रोधरहित होकर हमको वर प्रदान करो हे अग्ने (तव शर्मन् उद्भौ त्रिवरूथे स्याम) आपके सम्बन्धी सुखके आश्रय मनुष्य पशु धन धान्य आदिके प्रभवस्थान सदामण्डप हविर्धान्य आग्नीध्र प्रदेश इन तीन स्थानोंमें सदा यज्ञ करें ॥ १ ॥

सहसाजातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥ २ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि त्रि० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(जातवेदः सहसा जातान् नः सपत्नान् आ प्रणुद अजातान् प्रतिनुदस्व सुमनस्यमानः नः अधि ब्रूहि वयं आ स्याम) हे जातप्रज्ञान अग्ने ! बलसे उत्पन्न हुए हमारे शत्रुओंका सब ओरसे नाश करो भविष्यत्में होनेवालोंकी उत्पत्ति को रोको सदन्तःकरणसे क्रोधरहित हो हमको शत्रुओंसे बली कहो, तुम्हारे प्रसाद से हम सबप्रकार अधिक हों (नः सपत्नान् प्रणुद) हमारे शत्रुओंका नाश करो ॥ २ ॥

षोडशी स्तोमः ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिꣳशः स्तोमो वर्चो द्रविणम्। अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व ॥ ३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० छ० १ आ० त्रि० २ आसुर्यनु० ३ निचृ० त्रि० और देवता सबका इष्टिका है । मन्त्रार्थ-हे इष्टके ! (षोडशीस्तोमः ओजः द्रविणं पंचदशकला और पक्षका स्वामी आदित्यरूप षोडशवृत्तिरूप स्तोमके प्रभावसे तुमको स्थापन करता हूँ इस स्थलमें तेज और धनकी प्राप्ति हो हे इष्टके ! (चत्वारिꣳशः वर्चः द्रविणम्) चौवालीस आवृत्तियुक्त चतुश्चत्वारिंशस्तोमरूप वज्र कांतिरूप धन पावे (अप्सः नाम अग्नेः पुरीषम् असि ताम् त्वा विश्वे देवाः अभिगृणन्तु स्तोमपृष्ठा घृतवती इह सीद अस्मे प्रजावत् द्रविणं आयजस्व) रक्षक नामसे युक्त पंचदश कलावाले चंद्ररूप अग्निके पूर्ण करनेवाले हो उस तुम को सम्पूर्ण देवता स्तुति करें सम्पूर्ण स्तोमपृष्ठ मन्त्रोंके प्रभावसे होमेहुए घृतसे संयुक्त होती तुम इस चौथी चितिके उपर ठहरो हमको इसके फलरूपसे पुत्रयुक्त धन दो ३

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दः आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरञ्छन्दः ककुप्छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं

छन्दो अङ्कुपं छन्दोक्षरपंक्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दो विष्टारपंक्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः ४

इस क० में ४० म० हैं । सबका परमेष्ठी ऋ० है । छ० १, ३, ५, ६, ७, ८, ११ १३, १९, २० २१, २२, २३, २७, २८, २९, ३१, ३३, ३७, ३९ दैवी बृ० २, ४, ९, १०, १२, १४, २५, २६, ३० ३२, ३४, ३५, ३६, ४० दै० प० १६, १८, २४, ३८ दै० त्रि० १५, १७ दै० ज० है और सबका इष्टका दे० है । मन्त्रार्थ–हे इष्टके (एवश्छन्दः वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दः आच्छंदः मनश्छन्दः व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरञ्छन्दः ककुप्छन्दः त्रिककुप्छन्दः काव्यंछन्दः अङ्कुपंछन्दः अक्षरपंक्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दः विष्टारपंक्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः) जिसमें सब प्राणी चलते हैं ऐसे भूलोकको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ प्रभामण्डलसे व्याप्त अन्तरिक्षलोक सुखदायक द्युलोकको मनन करते सब ओरसे व्याप्त होकर वर्तमानदिशाको मनन करते० अपने रससे शरीरको आच्छादन करनेवाले अन्नको० प्रजापतिरूप मनको० सब जगत्को व्याप्त करनेवाले आदित्यको० नाडियों द्वारा शरीरको व्याप्त करनेवाले प्राणवायुको० समुद्रके समान गंभीर विकल्पयुक्त मनको० मुखसे निकलने वाली वाणीको० शरीरको दीप्तकर धारण करनेवाले प्राणको० पिये हुए जलको तीन प्रकारका करनेवाले उदानको० त्रयी विद्या अर्थात् वेदत्रयको० कुटिलगति चलनेवाले जलको० नाशरहित स्वर्गलोकको० जिसमें चरण रखेजाते हैं उस भूलोकको० जहाँ सकल वस्तु विस्तारित हैं उस दिशा पातालको० तीव्रतासे आकाशको लिखने प्रकाशनेवाले विद्युत्पुञ्ज वा आदित्यको मनन करते हुए स्थापन करता हूँ ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सꣳस्तुप्छन्दोनुष्टुप्छन्दः एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाच्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रञ्छन्दो अंकाङ्कंछन्दः ॥ ५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् मन्त्रार्थ-(आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दः वियच्छंदः बृहच्छन्दः रथन्तरं छन्दः निकायश्छन्दः विवधश्छन्दः गिरश्छन्दः भ्रजश्छन्दः संस्तुप्छन्दः अनुष्टुप्छन्दः एवश्छन्दः वरिवश्छंदः वयश्छन्दः वयस्कृच्छन्दः विष्पर्द्धाश्छन्दः २० । १२ । ३८

विशालंछन्दः छदिश्छन्दः दूरोहणं छन्दः तन्द्रंछन्दः अंकाङ्कंछन्दः) शरीरका आच्छादक अन्न है उसको मनन करते० शरीर प्रच्छादक जलके व्यापारकी निवर्त्तक रात्रिको० विशेष व्यापार प्रवर्त्तक दिन का० जहाँ रथादि द्वारा गमन करते हैं उस भूलोकको० अत्यन्त शब्दकारक वायुको० जहाँ भूत प्रेत रूपसे विविधप्रकारके पाप भोगे जाते हैं उस अंतरिक्षको० भक्षणयोग्य अन्नको० प्रकाशवान् अग्निको० वैखरी वाणीको० मध्यमा वाणीको० पृथ्वी लोकको० प्रभामण्डलको० बाल्यादि अवस्थाके हेतु अन्नको० बाल्यादिकारक जाठराग्निको० विविध ऐश्वर्यकी प्राप्ति वाले स्वर्गको० स्पर्धामूलक अहंतत्त्वको० जहाँ मनुष्य अनेक प्रकारसे शोभित होते हैं उस भूतलको० सूर्यकी किरणोंसे आच्छादित होने वाले अंतरिक्षको० ज्ञानको० अज्ञानको० आस्तिकताके निदर्शन अथवा गर्त पाषाणादि युक्त जलको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ

रश्मिना सत्याय सत्यञ्जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्मञ्जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व संधिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयान्हाऽहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीञ्जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व तन्तुना रायः ॥ ६ ॥

इस क० में २९ म० हैं सबका परमेष्ठी ऋ० छ० १, २, ६, ९, १७ या० प० ३, ८, १८, २६, २९ या० वृ० ४, ५, १० या० ज० ७, २० याजुष्यु० ११ सा० उ० १३, १४, १५, १६ या० त्रि० १९, २१, २२, २३, २४, २५, २७, २८ याजुष्य० सबका इष्टका देवता है। मन्त्रार्थ-हे इष्टके तुम (रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व) अन्नके प्रभावसे सत्यके निमित्त सत्य वाणीको प्रीति करो (प्रेतिना धर्मणा धर्म्मं जिन्व) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभावसे, धर्मके निमित्त धर्मको प्रीति करो, (अन्वित्या दिवा दिवं जिन्व) देहमें गति वाले अन्नके प्रभावसे दिव्य लोकके निमित्त द्युलोकको प्रीतिकरो (सन्धिना अंतरिक्षेण अंतरिक्षं जिन्व) बलादिके आधार अन्नके प्रभावसे अन्तरिक्षके निमित्त अंतरिक्षको प्रीतिकरो (प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीम् जिन्व) प्रत्येक इन्द्रियके आधार अन्नके प्रभावसे अंतरिक्षके निमित्त पृथिवीको प्रीति करो (विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिम् जिन्व) देहादिके स्तम्भ करनेवाले अन्नके प्रभावसे वृष्टिके निमित्त वर्षाको प्रीतिकरो (प्रवया अन्हा अहः जिन्व) देहमें गमनागमनकारी अन्नके प्रभावसे दिनके निमित्त दिनको

प्रीतिकरो (अनुया राद्या रात्रीं जिन्व) देहान्तर्गत ७२ नाडियोंमें गमनागमनकारी अन्नके प्रभावसे रात्रिके निमित्त रात्रिको प्रीतिकरो (उशिजा वसुभ्यः वसून् जिन्व) समस्त प्राणियोंके आकांक्षणीय अन्नके प्रभावसे वसुओंके निमित्त वसुगणको प्रीति करो (प्रकेतेन आदित्येभ्यः आदित्यान् जिन्व) सुखानुभवके कारण अन्नके प्रभाव से आदित्योंके निमित्त आदित्योंको प्रीति करो ॥ ६ ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरौषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतञ्जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ७

ऋष्यादि ६ मन्त्रमें कह दिये मंत्रार्थ- (तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषम् जिन्व) शरीरके वर्द्धक-अन्नके प्रभावसे धनकी पुष्टिके निमित्त धनकी पुष्टिको प्रीति करो (सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्व) प्रति इंद्रिय में फैलने वाले अन्नके प्रभावसे शास्त्रके निमित्त शास्त्रको प्रीति करो (एडेन ओषधीभिः ओषधीः जिन्व) प्रसिद्ध अन्नके प्रभावसे औषधियोंके निमित्त औषधियों को प्रीतिकरो (उत्तमेन तनूभिः तनूः जिन्व) पृथ्वीके उत्कृष्ट पदार्थ अन्नके प्रभावसे तनुओंके निमित्त शरीरोंको प्रीतिकरो (वयोधसा अधीतेन अधीतम् जिन्व) शरीरके उपचयकारी अन्नके प्रभावसे अध्ययनके निमित्त अध्ययनको प्रीतिकरो (अभिजिता तेजसा तेजः जिन्व) बलकारी अन्नके प्रभाव से तेजके निमित्त तेजको प्रीति करो ॥७॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा त्रिवृदसि ॥ ८ ॥

ऋष्यादि ६ठे मन्त्रमें कह दिये मंत्रार्थ- हे इष्टके (प्रतिपत् असि प्रतिपदे त्वा) जिस से जीवनका अस्तित्व प्राप्त होता है ऐसे अन्नरूप हो, अन्नप्राप्तिके निमित्त तुमको उपधान करता हूँ तुम (अनुपत्, असि, अनुपदे, त्वा) इन्द्रियोंको स्वस्वकार्यमें समर्थ करनेवाले अन्नरूप हो अन्नके निमित्त तुमको उपधान करता हूँ तुम (सम्पत् असि सम्पदे त्वा) सम्पत्तिप्रतिपादक अन्नरूप हो अन्नसम्पत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (तेजः असि तेजसे त्वा) शरीरमें तेजोदायक अन्नरूप हो तेज के निमित्त तुमको सादन करता हूँ ॥ ८ ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाक्रमोस्या-

क्रमाय त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनो-

र्जोर्जञ्जिन्व ॥ ९ ॥

ऋष्यादि ६ठे मंत्रमें लिख चुके हैं। मन्त्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (त्रिवृत् असि त्रिवृते त्वा) कृषि वृष्टि और बीजसे उत्पन्न अन्नरूप हो अन्नके निमित्त तुमको सादन करता हूँ तुम (प्रवृत् असि प्रवृते त्वा) सब प्राणियोंको कार्यमें प्रवृत्तिकारी अन्नरूप हो कार्यप्रवृत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (विवृत् असि विवृते त्वा) प्रत्येक इन्द्रिय को उस कार्यमें प्रवर्तक अन्नरूप हो प्रवृत्ति के निमित्त तुमको सादन करता हूँ (सवृत् असि सवृते त्वा) जीवनके सहचारी अन्न रूप हो अन्नके निमित्त तुमको सादन करता हूँ। तुम (आक्रमः असि आक्रमाय त्वा) क्षुधाका तिरस्कार करने वाले अन्नरूप हो अन्नप्राप्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (संक्रमः असि संक्रमाय त्वा) संतान-उत्पत्तिका बीज अन्नरूप हो संतानप्राप्तिके निमित्त तुमको उपहित करता हूँ तुम (उत्क्रमः असि उत्क्रमाय त्वा) जन्मका निदानभूत अन्नरूप हो उत्क्रमके निमित्त तुमको सादन करता हूँ (उत्क्रान्तिः असि उत्क्रान्त्यै त्वा) उत्कृष्ट गमनवाले अन्नरूप हो उत्क्रांतिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः

पृथिव्याꣳ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋष-

यस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे

संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं सबका परमेष्ठी ऋ० १ त्रि० ब्रा० त्रि० छं० २ ब्रा० छं० लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (राज्ञी प्राची दिक् असि वसवः देवाः ते अधिपतयः अग्निः हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता त्रिवृत्स्तोमः त्वा पृथिव्यां श्रयतु आज्यं उक्थं अव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरं साम अन्तरिक्षे प्रतिष्ठित्यै प्रथमजाः ऋषयः देवेषु दिवः मात्रया वरिम्णा त्वा प्रथन्तु विधर्त्ता च अयं अधिपतिः च त्वा ते सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु) राजमान पूर्वदिशारूप हो आठवसु देवता

तुम्हारे पालक हैं, अग्नि देवता तुम्हारी सम्पूर्ण बाधाओंका निवारक है, त्रिवृत्स्तोम तुमको पृथ्वीमें स्थापन करे, आज्यनामक शस्त्र व्यथाहीनता अर्थात् दृढ़ताके निमित्त तुमको दृढ़ करें, रथन्तर साम अंतरिक्ष-लोकमें प्रतिष्ठाके निमित्त तुमको दृढ करें, प्रथमोत्पन्न प्राण देवता आकाशको परिमाणता उरुता विस्तारसे तेरा विस्तार करें इष्टका निष्पादन करनेवाला और यह इष्टकापालक भी तुमको विस्तारित करें। इस प्रकार वे सम्पूर्ण वसु आदि देवता एकमतिसे स्थित हुए सुखस्वरूप लोकके ऊपर स्वर्गलोकमें यजमानको अवश्य ही प्राप्त करें ॥ १० ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬ श्रयतु प उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रि० छ० लिंगोक्त देवता है (प्रथमजा इत्यस्य ब्रा० बृ० छन्दः) मन्त्रार्थ- हे इष्टके ! तुम (विराट् दक्षिणा दिक् असि रुद्राः देवाः ते अधिपतयः इन्द्रः हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता पञ्चदशः स्तोमः त्वा पृथिव्याम् श्रयतु प्रउङ्ग उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम अंतरिक्षे प्रतिष्ठित्यै०) विशेष विराजमान दक्षिण दिशा हो रुद्र देवता तुम्हारे पालक हैं, इन्द्र देवता व्याधियोंका निवर्त्तक है पञ्चदश स्तोम तुमको पृथिवीमें स्थापित करे, प्रउगनामक उक्थ दृढ़ताके निमित्त तुमको स्तंभित करे, बृहत्साम अंतरिक्षमें प्रतिष्ठाका कारण हो शेष पूर्वकी समान है ॥ ११ ॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳬ साम प्रतिष्ठित्या अंतरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि पूर्वस्य नि० ब्रा० ज० छ० वा पृथमजा इत्युत्तरस्य ब्रा० बृ० छ० लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ-हे इष्टके! तुम (सम्राट् प्रतीची दिक् असि आदित्याः देवाः ते अधिपतयः वरुणः हेतीनाम् प्रतिधर्ता सप्तदशः स्तोमः त्वा पृथिव्यां श्रयतु मरुत्वतीयम् उक्थं अव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपं साम प्रतिष्ठित्यै अंतरिक्षे०) विशेष दीप्तिमान् पश्चिम दिशा हो आदित्य देवता तुम्हारे पालक हैं, वरुण दुखों का निवर्त्तक है, सप्तदश स्तोम तुमको पृथिवीमें दृढ़करो मरुत्वतीय शस्त्र दृढ़ता के निमित्त तुमको स्थापन करे वैरूप साम प्रतिष्ठाके निमित्त अंतरिक्षमें तुमको दृढ करे शेष पूर्ववत् ॥ १२ ॥

स्वराडम्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या अंतरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० पूर्वस्य भुरिग्ब्रा० त्रि० छ० लिंगोक्त देवता है (प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्रा० बृ० छ०मन्त्रार्थ-हे इष्टके तुम (स्वराट् उदीची दिक् असि मरुतः देवाः ते अधिपतयः सोमः हेतीनां प्रतिधर्त्ता एकविंशः स्तोमः त्वा पृथिव्याम् श्रयतु निष्केवल्यम् उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्यै अंतरिक्षे०) स्वयं विराजमान होनेवाली उत्तर दिशा हो, मरुत् देवता तुम्हारे पालक हैं, सोम व्याधियोंका निवारक है, एकविंशस्तोम तुमको पृथ्वीमें स्थापन करो, निष्केवल्य नाम शस्त्र दृढ़ताके निमित्त तुमको स्थापन करो, वैराजसाम प्रतिष्ठाके निमित्त तुमको अन्तरिक्षमें दृढ़ करो। शेष पूर्ववत् ॥ १३ ॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया

वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० पूर्वस्य ब्रा० ज० छ० लिङ्गोक्त दे० । यस्त्वेत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रि० छ० । मन्त्रार्थ-हे इष्टके ! तुम (अधिपत्नी बृहती दिक् असि विश्वे देवाः ते अधिपतयः बृहस्पतिः हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ त्वा पृथिव्यां श्रयताम् वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताम् शाक्वररैवते साम्नी प्रतिष्ठित्यै अन्तरिक्षे०) अधिक पालन करने वाली बड़ी ऊर्ध्व दिशा हो, सम्पूर्ण देवता तुम्हारे पालक हैं, बृहस्पति देवता विघ्न-दुःखोंका निवारक है, त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोम तुमको पृथ्वीमें स्थापित करे वैश्वदेव अग्नि-मारुत उक्थ दृढताके निमित्त तुमको स्थापित करें शाक्वररैवत दोनों साम प्रतिष्ठा के निमित्त अन्तरिक्षमें तुमको स्थापित करें शेषं पूर्ववत् ॥ १४ ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला च प्रचरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते ना मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१५॥

इसका परमेष्ठी ऋ० कृतिश्छ० लिंगोक्त दे० है । मन्त्रार्थ-(अयं पुरः हरिकेशः सूर्यरश्मिः तस्य रथगृत्सः च रथौजाः सेनानीग्रामण्यौ च पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला अप्सरसौ च दंक्ष्णवः पशवः हेतिः पौरुषेयः वधः प्रहेतिः तेभ्यः नमः अस्तु ते नः मृडयंतु ते नः अवन्तु ते यं द्विष्मः च यः नः द्वेष्टि तं एषां जम्भे दध्मः, यह पूर्वदिशामें स्थापित इष्टकारूप अग्नि कनकवर्ण केश, सूर्यकी समान किरणवाला है, उस अग्निके रथविद्या में कुशल और रथयुद्धमें कुशल सेनानायक और ग्रामनायक दोनों वसन्त ऋतु हैं और रूपलावण्य सौभाग्यादि गुणकी भंडार संकल्प और रूपादिज्ञानकी आधारभूत अप्सरा दिशा और उपदिशारूप हैं और काटनेका स्वभाव धारण करनेवाले व्याघ्रादि पशु आयुध हैं, परस्पर हननरूप वध शस्त्र है, इस प्रकार अग्निके सम्पूर्ण परिचारकोंके निमित्त नमस्कार हो, वे सब हम को सुखदें वे सब हमारी रक्षा करें जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करने वाला है उसको इनकी डाढ़ोंमें डालते हैं ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथे चित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाꣳसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि प्रकृति छन्द, लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ-(अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनः च रथे चित्रः च मेनका सहजन्या अप्सरसौ च यातुधानाः हेतिः रक्षाꣳसि प्रहेतिः) यह दक्षिण दिशा में स्थापित इष्टका रूप सकल कर्मकर्त्ता वायु है रथमें स्थित हो शब्द करने वाला और रथके ऊपर चित्रकी समान स्थित हो नगरका शासन करने वाला और सेनापति और नगररक्षक ग्रीष्म ऋतुरूप है और सबके माननीय जो सर्वसाधारणके साथ स्थित हो यह दो अप्सरा हैं, राक्षसोंका अवान्तर जाति भेद शस्त्र है, अतिक्रूर राक्षस तीक्ष्ण शस्त्र है इत्यादि पूर्ववत् १६

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १७ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० विराट्कृतिश्छ० लिंगोक्त दे० है। मन्त्रार्थ—(अयं पश्चात् विश्वव्यचाः तस्य रथप्रोतः च असमरथः सेनानीग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती च अनुम्लोचन्ती अप्सरसौ च व्याघ्रः हेतिः सर्पाः प्रहेतिः) यह पश्चिम दिशामें स्थापित इष्टका रूप सब विश्वका प्रकाशक आदित्य है उसका रथयुद्धमें धैर्यवान् शूर और अनुपम रथी सेनापति और ग्रामपालक वर्षाऋतु हैं अपने वेशविन्यासादि द्वारा सर्वसाधारणका मन हरनेमें समर्थ और एकवार मुग्ध होकर क्लेश पानेवाले व्यक्तिको फिर मोह करनेवाली दोनों अप्सरा हैं और व्याघ्र जीव शस्त्र है सर्प तीक्ष्ण शस्त्र है, शेष पूर्ववत्।

अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

इसका परमे० ऋ० भु० ग० धृ० छ० लिंगोक्त देवता है। मन्त्रार्थ-(अयं उत्तरात् संयद्वसुः तस्य तार्क्ष्यः च अरिष्टनेमिः सेनानीग्रामण्यौ च विश्वाची च घृताची अप्सरसौ च आपः हेतिः वातः प्रहेतिः) यह उत्तर दिशामें स्थापित इष्टका धनसे प्राप्त होने वाला यज्ञ है, उसका अन्तरिक्षमें तीक्ष्ण पक्ष रूपी आयुधोंका विस्तार करने वाला और अरिष्टनाशक अप्रतिहत आयुध वाला सेनानी और ग्राम-पालक शरद् ऋतु है, संसारमें विदित और घृतका भोजन करने वाली दो अप्सरा हैं, जल शस्त्र है और पवन तीक्ष्ण शस्त्र है, शेष पूर्ववत् ॥ १८ ॥

अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसावस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० कृ० छं० त्रि० दे० है। मंत्रार्थ- (अयं उपरि अर्वाग्वसुः तस्य सेनजित् च सुषेणः सेनानीग्रामण्यौ च उर्वशी च पूर्वचित्तिः अप्सरसौ च अवस्फूर्जन् हेतिः विद्युत् प्रहेतिः) यह मध्यदिशा में वर्त्तमान इष्टकापर्जन्य है, उसके सेना जीतनेवाले और सुन्दर सैन्यवाले सेनापति और ग्राम-पालक हेमन्त-ऋतु हैं और विस्तीर्ण कामको वशमें करने वाली और अधिकरूप होनेसे पुरुषोंका मन हरने वाली उर्वशी पूर्वचित्ति नाम दो अप्सरा हैं और भयका हेतु वज्रका शब्द शस्त्र है, बिजली तीक्ष्ण शस्त्र है, इनको नमस्कार है, इत्यादि पूर्ववत् ॥ १९ ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥२०॥

मंत्रार्थ—इसकी व्याख्या ३ अ० १२ कं० में होगई ॥ २० ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० गा० छं० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अयं अग्निः सहस्रिणः शतिनः वाजस्य पतिः कविः रयीणाम् मूर्द्धा) यह अग्नि सहस्र संख्यावाले शत संख्यावाले अन्नका स्वामी कान्तदर्शी और सब धनोंमें प्रधान धनवाला है ॥ २१ ॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्ना विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

मन्त्रार्थ-इसकी व्याख्या ११ अ० ३१ कं० में होगई ॥ २२ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० नि० त्रि० छं० अग्नि देवता है। इसकी व्याख्या १३ अ० १५ कं० में होगई ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० नि० त्रि० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (जनानां समिधा अग्निः अबोधि इव आयतीम् धेनुम् उषासम् प्रति मानवाः नाकम् अच्छ प्रसिस्रते इव वयाः यह्वा प्रोज्जिहानाः) ज्ञान श्रद्धा द्विजतर्पण सत्यादिसे सम्पन्न अग्निहोत्रियोंकी समिधा से अग्नि प्रज्वलित होते हैं दीप्तिमान् उसकी किरणें स्वर्गके चारों ओरसे फैलती हैं, जिस प्रकार पक्षी बड़े पक्षोंसे वृक्षोंकी शाखाओंसे आकाशको उड़ते हैं ॥ २४ ॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे । गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यचसमश्रेत् ॥ २५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० नि० त्रि० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-उद्गाता कहते हैं, हम (कवये मेध्याय वृषभाय वृष्णे वंदारु वचः अवोचाम गविष्ठिरः नमसा स्तोमं अग्नौ अश्रत् इव दिवि रुक्मं उरुव्यञ्चम्) क्रान्तदर्शी यज्ञके योग्य श्रेष्ठ कामना पूर्ण करनेमें समर्थ अग्निके निमित्त स्तुति- वंदना करने वाले वचनको कथन करते हैं, वाणीमें स्थिर होता हुआ पुरुष अन्नसे युक्त स्तुतिको आहवनीय अग्निमें अर्पण करता है, जिस प्रकार स्वर्गमें रोचमान आदित्यको सन्ध्यावन्दन सूर्य उपस्थानादिमें प्रयुक्त की हुई बड़ी स्तुति अर्पित होती है ॥ २५ ॥

अयमिह प्रथमोधायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे ॥ २६ ॥

इसकी व्याख्या ३ अ० १५ कण्डिकामें होगई ॥ २६ ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे घृतप्रतीको बृहता दिवि-स्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० नि०दा०ज० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(जनस्य गोपाः जागृविः सुदक्षः घृतप्रतीकः शुचिः अग्निः नव्यसे सुविताय भरतेभ्यः अजनिष्ट दिवि-स्पृशा बृहता द्युमत् विभाति) यजमानोंका रक्षक कर्ममें सावधान अति उत्साहयुक्त घृतको मुखमें रखने वाला पवित्र अग्नि नवीन यज्ञके निमित्त ऋत्विजोंके द्वारा प्रकट हुआ वह अग्नि स्वर्गको स्पर्श करने वाली बड़ी कान्तियोंसे प्रकाशवान् होता है।

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वने वने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०विराडार्षी ज०छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अंगिरः अग्ने अंगिरसः त्वाम् गुहाहितम् वने वने शिश्रियाणं अन्वविन्दन् सः महत्सहः मथ्यमानः जायसे त्वाम् सहसा पुत्रं आहुः) अनेक रूपसे यज्ञमें विचरने वाले हे अग्निदेव! अंगिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषियों ने तुमको निगूढ देशमें स्थित अनेक वनस्पतियोंमें निवास करने वालेको ढूँढ कर प्राप्त किया, वह तुम अब बड़े बलसे मथ्यमान होनेके कारण अरणीसे उत्पन्न होते हो तुमको इसी कारण मुनि बलका पुत्र ब्रह्मज्योति कहते हैं ॥ २८ ॥

सखायः संवः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते २९

इसका परमेष्ठी ऋ० वि० ज० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-यजमानने कहा हे ऋत्विजो! (सखायः वः क्षितीनां वर्षिष्ठाय ऊर्जः नप्त्रे सहस्वते अग्नये सम्यञ्चं इषं च स्तोमं समम्) मित्ररूप तुम मनुष्योंके श्रेष्ठतम जलके पौत्ररूप बड़े बलवाले अग्नि देवताके निमित्त समीचीन नवीन हविरूप अन्न स्तोत्रको सम्पादन करो २९

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ३०

इसका परमेष्ठी ऋ० विराडनु० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(वृषन् अग्ने

अर्य्यः विश्वानि सम् आ संयुवसे इडस्पदे समिध्यसे सः इत् नः वसूनि आभर) हे सेचन करने वाले अग्निदेव ! स्वामी तुम सम्पूर्ण यज्ञफलोंको सब ओरसे यजमान को प्राप्त कराते हो, पृथ्वीके स्थान उत्तर-वेदीमें कर्मके निमित्त प्रदीप्त होते हो, वह तुम ही हमारे निमित्त धनोंको सब प्रकार लाकर प्रदान करो ॥ ३० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तमहवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ।३१।

इसका परमेष्ठी ऋ० वि० नु० छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(चित्रश्रवः पुरुप्रियः अग्ने विक्षु जन्तवः तं त्वां हव्याय वोढवे हवन्ते) कीर्त्ति और ऐश्वर्यसे अति-विचित्र यजमानोंके प्रिय हे अग्ने ! प्रजाओं में ऋत्विग्यजमान उस तुमको हवि वहन करनेके निमित्त बुलाते हैं ॥ ३१ ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो न पातमाहुवे । प्रियञ्चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्

इसका परमे० ऋ० वि० बृ० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-हे ऋत्विग्यजमानों ! (वः एनः नमसा ऊर्जः न पातम् प्रियम् चेतिष्ठम् अरतिम् स्वध्वरम् विश्वस्य दूतम् अमृतम् अग्निम् आहुवे) तुम्हारे इस अन्नद्वारा जलोंके पीते यजमानकी प्रीतिके कारण अति शय चैतन्यकर्ता ज्ञानदाता सदा उद्यमी श्रेष्ठ यज्ञवाले सम्पूर्णके गृहपाकादि कार्य करने से दूतरूप मरणरहित अग्निको स्तुतिपूर्वक आह्वान करते हैं ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्-स्वाहुतः ॥ ३३ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० दु० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(अमृतं विश्वस्य दूतं अमृतं विश्वस्य दूतं सः अरुषा विश्वभोजसा योजते स्वाहुतः सः दुद्रवत्) मरणधर्मरहित सबके दूतवत् कार्यकर्ता मरणधर्मरहित संपूर्णके दूत जिस अग्निको हम बुलाते हैं वह अग्नि क्रोध-रहित श्रेष्ठ सब यज्ञके भाग भोगनेवाले दो अश्वोंको अपने रथमें योजना करता है रथा रूढ होकर भली प्रकारसे आहुतिका प्राप्त हुआ वह अग्नि शीघ्र प्राप्त होता है ॥३३॥

स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳराधो जनानाम्॥

इसका परमे० ऋ० बृ० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ—(सुब्रह्मा सुशमी यज्ञः स स्वाहुतः दुद्रवत् स्वाहुतः सः जनानाम् देवं राधः वसूनाम् दुद्रवत्) श्रेष्ठऋत्विजोंसे

युक्त शुभकर्मवाला यज्ञ है उसमें वह अग्नि शुभप्रकारसे आह्वान किया हुआ वह जहाँ यजमानोंका दीप्यमान धन है वहाँ वसु रुद्र आदि देवगणोंके तीन सवनके यज्ञमें जाता है

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

इसका परमे० ऋ० उष्णिक् छ० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(सहसः यहो जातवेदः अग्ने गोमतः वाजस्य ईशानः अस्मे महि श्रवः धेहि) बलके पुत्र ज्ञानसम्पन्न हे अग्ने धेनु-युक्त अन्नके अधिपति तुम हमारे निमित्त बड़े धनको दो ॥ ३५ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० दु० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(पुर्वणीकः सः इधानः वसुः कविः गिरा ईडेन्यः अग्निः अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि) हे बहुत मुखवाले वह दीप्यमान सबके विकासके हेतु क्रांतदर्शी तीन वेदोंकी वाणीसे स्तुतियोग्य प्रथम यज्ञप्रवर्त्तक अग्नि हमारे निमित्त धनके समान दीप्त हो ।३६।

क्षपो राजन्नुतत्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० दु० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ- (राजन् तिग्मजम्भ अग्ने सः त्मनः उत क्षपः वस्तो उत उषसः रक्षसः प्रतिदह) हे दीप्यमान ! वज्रवत् कराल-वदन डाढवाले हे अग्ने वह ! तुम आत्मा अर्थात् स्वभावसे ही राक्षसोंको नष्ट करने वाले हो इससे दिनके और रात्रिके राक्षसों को भस्म करो ॥ ३७ ॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रारातिः सुभग भद्रो अध्वरः भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

इसका परमे० ऋ० ककुप् छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-यजमानकी अग्निके प्रति प्रार्थना (सुभग आहुतः अग्निः नः भद्रः रातिः अध्वरः भद्रः प्रशस्यः उत भद्राः) हे श्रेष्ठ ऐश्वर्यसे संपन्न ऋत्विजोंसे बुलाये हुए अग्नि देवता हमको कल्याणरूपी हो तुम्हारा दान कल्याणकारी हो कीर्तियें भी सुखकारी हों ॥ ३८ ॥

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

इसका परमे० ऋ० ककुप छ० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-हे अग्ने ! (येन समत्सु सासहः मनः वृत्रतूर्ये भद्रं कृणुष्व प्रशस्तयः उत भद्राः) जिस मनसे संग्रामोंमें तुम शत्रुओं

को मर्दन करते हो उस मनको पापनाशके निमित्त कल्याणकारी करो तुम्हारी कीर्तियें भी कल्याणरूप हों ॥ ३९ ॥

येन समत्सु सासहोव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥४०॥

इसका परमे० ऋ०,कक्कुप् छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-हे अग्ने ! (येन समत्सु सासहः भूरि शर्धतां स्थिरा अवतनुहि ते अभिष्टिभिः आ-वनेम) जिससे संग्रामोंमें शत्रुओंको तिरस्कार करते हो इस कारण बहुत बल करनेवाले शत्रुके स्थिर धनुषोंको ज्यारहित करो आपके दिये हुए भागोंसे हम सब ओर विभाग करें ॥ ४० ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त आशवोस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४१ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० प० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(यः वसुः तम् अग्निं मन्ये धेनवः यम् अस्तं यन्ति आशवः नित्यासः वाजिनः अर्वन्तः तं अस्तं) जो ताप पाक प्रकाश करके उपकार करनेवाला धनरूप है उस अग्निको जानता हूँ, धेनुएँ जिस अग्निको प्रज्वलित जानकर अपने २ घरोंको आगमन करती हैं, शीघ्रगामी नित्य बलवान् घोड़े उस अग्निको प्रज्वलित देखकर अश्वशालाको गमन करते हैं । हे अग्ने ! (स्तोतृभ्यः इषम् आभर) स्तुति करनेवाले यजमानोंके निमित्त अन्नका सब ओरसे लाकर दो ॥ ४१ ॥

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे संयमा यन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४२ ॥

इसका परमे० ऋ० आर्षी प० छन्द, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(यः वसुः सः अग्निः गृणे यम् धेनवः समायन्ति रघुद्रुवः अर्वन्तः सम् सुजातासः सूरयः सम् स्तोतृभ्यः इषम् आभर) जो सम्पत्ति है वह अग्नि ही है, उसीकी स्तुति करता हूँ जिस अग्निको धेनुएँ प्राप्त करती हैं, शीघ्रगामी घोड़े प्राप्त करते हैं अच्छे संस्कारवाले विद्वान् अग्निकी उपासना करते हैं हे अग्ने ! स्तुति करनेवालोंके निमित्त अन्नको सब ओरसे लाकर दो ॥ ४२ ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि । उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४३ ॥

इसका परमे० ऋ० नि० प० छ० अग्नि दे० । मन्त्रार्थ—(सुश्चन्द्र आसनि सर्पिषः उभे दर्वी श्रीणीषे उतो शवसः पते उक्थेषु नः पुपूर्याः स्तोतृभ्यः इषम् आभर) चंद्रमा की समान आल्हाद करनेवाले अग्ने ! तुम अपने मुखमें घृतपान करनेके निमित्त दोनों दर्वीके आकारवाले हाथोंको ग्रहण करते हो और हे बलके अधिपति ! शस्त्रनाम स्तुति वाले यज्ञोंमें हमको धनोंसे पूर्ण करो स्तुति करनेवालोंको अन्न दो ॥ ४३ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०पदपंक्ति छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ–(अग्ने अद्य ते तम् क्रतुं ओहैः स्तोमैः आ ऋध्याम न अश्वम् न हृदिस्पृशम् भद्रम्) हे अग्ने ! आज तुम्हारे उस यज्ञको तुम्हारे नामरूप कर्मके प्रतिपादन करनेवाले फलप्रापक साम मन्त्रोंसे सब प्रकार समृद्ध करते हैं, जैसे अनेक स्तुतियोंसे अश्वमेधके घोड़ोंको ब्राह्मण समृद्ध करते हैं जिस प्रकार अतिप्रिय चिरकालसे मनमें स्थित कल्याणरूपी यज्ञके संकल्पको समृद्ध करते हैं ॥ ४४ ॥

अधाह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधो । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० भु० प०छ० अग्नि दे० । मन्त्रार्थ–(अग्ने अथ हि दक्षस्य साधोः भद्रस्य ऋतस्य बृहतः क्रतोः रथी बभूथ) हे अग्ने ! इसके अनन्तर अवश्य समृद्ध सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान किए कल्याणरूप अमोघ फलवाले बड़े हमारे यज्ञके, सारथी जिस प्रकार रथका निर्वाह करता है तिस प्रकार निर्वाहक हूजिये ॥ ४५ ॥

एभिर्नो अर्कैर्भवानो अर्वाङ् स्वर्णज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥४६॥

इसका परमेष्ठी ऋषि, पदपंक्ति छन्द, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने नः एभिः अर्कैः सुमनाः विश्वेभिः अनीकैः नः अर्वाङ् आ भव न स्वर्ज्योतिः) हे अग्ने ! हमारे इन पढे हुए मंत्रोंसे प्रसन्न—मन होकर अपने अपने सम्पूर्ण मुखोंसे सब प्रकार हमारे सन्मुख हूजिये, जैसे सूर्य आकाशमें उदित होकर सम्पूर्ण जगत्के सन्मुख होता है ४६

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रन्न जातवेदसम् । य

ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः॥

इसका परमे० ऋ० अतिच्छन्द छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(यः देवः स्वध्वरः ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा शोचिषा आजुह्वानस्य सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिम् अनुवष्टि अग्निम् होतारं दास्वन्तम् वसुम् सहसः सूनुम् जातवेदसं जातवेदसं विप्रं न मन्ये) जो दानादि गुणयुक्त शुभयज्ञवाला अग्नि ऊँची देवताओंके समीप जानेवाली समर्थ ज्वालासे सब ओर होमे हुए अङ्ग अङ्गमें फैलने वाले घृतके निरन्तर पानको इच्छा करता है, उस अग्निको देवताओंका बुलाने वाला दानशील वास देनेवाला ब्रह्मज्योति का पुत्र सब प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न सर्वशास्त्रके ज्ञानवाले ब्राह्मणकी समान जानताहूँ

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षिद्युमत्तमꣳ रयिन्दाः। तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः। सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥ ४८॥

मन्त्रार्थ इसकी व्याख्या [३ अ० २५-२६] कण्डिकामें होगई॥ ४८॥

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निꣳ स्वराभरन्तः। तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निꣳ यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम्॥ ४९॥

इसका परमे० ऋ० आर्षी त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (अग्निं इन्धानाः स्वः आभरन्तः ऋषयः येन तपसा सत्रम् आयन् तस्मिन् नाके अग्निं अहं निदधे मनवः स्तीर्णबर्हिषम् आहुः) अग्निको प्रदीप्त करते स्वर्गको स्वीकार करते ऋषि जिस चित्तकी एकाग्रतारूप तपसे यज्ञ करनेको उद्यत हुए उस तपके होनेपर स्वर्गलोकमें प्राप्त करानेवाले अग्निको मैं स्थापन करता हूँ, मनन करनेमें प्रधान विद्वान् जिस अग्नि का यज्ञ साधन सहित कहते हैं॥ ४९॥

तम्पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः। नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधिरोचने दिवः॥ ५०॥

इसका परमेष्ठी ऋ० भु० गा० त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(देवाः तृतीये दिवः पृष्ठे सुकृतस्य रोचने लोके नाकं अधिगृभ्णानाः पत्नीभिः पुत्रैः वा भ्रातृभिः उत

हिरण्यैः तम् अनुगच्छेम) हे विद्वान् ऋत्विजों ! भूमिसे तीसरे द्युलोकके ऊपर शुभकर्मके फलरूप दीप्यमान आदित्यमंडल में दुःखहीन स्थानको स्वीकार करते हुए हम स्त्री, पुत्र, भाई और सुवर्णादि द्रव्योंके साथ उस अग्निका सेवन करें इससे हम को तीसरे लोककी प्राप्ति होगी ॥ ५० ॥

आ वाचो मध्यमारुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

इसका परमे० ऋ० स्वराडार्षी त्रि० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(अयं भुरण्युः सत्पतिः चेकितानः पृथिव्याः पृष्ठे निहितः दविद्युतत् अग्निः वाचः मध्यं आरुहत ये पृतन्यवः अधस्पदम् कृणुताम्) यह जगत् का कर्त्ता सत्पुरुषोंका पालक ज्ञानी पृथिवी के ऊपर स्थापित अत्यन्त प्रकाशवान् अग्नि चयनके मध्यस्थानमें स्थित हुआ, जो युद्ध की इच्छा वाले पापी हैं तिनको चरणों के अधोभागमें करे ॥ ५१ ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योतताम्प्रयुच्छन्। विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उपप्रयाहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

इसका परमे० ऋ० निचृदार्षी त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अयम् वीरतमः वयोधाः सहस्रियः अग्निः अप्रयुच्छन् द्योतताम् सरिरस्य मध्ये विभ्राजमानः दिव्या धामानि उपप्रयातु) यह बड़ा वीर हवि ग्रहण करने वाला सहस्र इष्टकाओं के तुल्य अग्नि देवता कर्मोंमें प्रमाद न करता हुआ प्रज्वलित हो त्रिलोकीके मध्यमें दीप्यमान दिव्य स्थानोंको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

सम्प्रच्यवध्वमुपसंप्रयाताग्ने पथो देवयानानकृणुध्वम्। पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताᳬसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० भु० गा० प० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-हे ऋषियों ! तुम (प्रच्यवध्वम् उप सम्प्रयान् अग्ने देवयानान् पथः कृणुध्वम् पुनः पितरा युवाना कृण्वानाः एतम् तन्तुं त्वयि अतन्वाताᳬ सीत्) इस अग्निके समीप आओ समीप आकर भले प्रकार प्राप्त करो हे अग्ने! देवयान मार्गको सिद्ध करो, फिर वाणी और मनको तरुण करते हुए ऋषियोंने इस यज्ञको तुझमें क्रमपूर्वक विस्तार दिया है ॥ ५३ ॥

२७। १२। ३८

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

सबका परमे० ऋ० आ० त्रि० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(अग्ने त्वं उद्बुध्यस्व प्रतिजागृहि इष्टापूर्त्ते संसृजेथाम् अयम् च विश्वेदेवाः यजमानः च सधस्थे अस्मिन् उत्तरस्मिन् अधि सीदत) हे अग्ने ! तुम सावधान होओ श्रौतस्मार्त्त कर्ममें यजमान से संसर्ग करो तुम्हारे प्रसादसे यह इष्टापूर्त्तसे निष्पाप यजमान भी देवताओंके साथ स्थितियोग्य इस सबसे उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें चिरकाल तक निवास करे ॥ ५४ ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥५५॥

इसका परमे० ऋ० नि० अ० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ -(अग्ने येन सहस्रं वहसि येन सर्ववेदसं तेन नः इमम् यज्ञम् देवेषु गन्तवे स्वः नय) हे अग्ने जिस सामर्थ्य से सहस्र दक्षिणावाले यज्ञको प्राप्त कराते हो जिस सामर्थ्यसे सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञको प्राप्त कराते हो उस सामर्थ्यसे हमारे इस छोटे यज्ञको देवताओंके प्रति गमन करनेको स्वर्गमें प्राप्त करो यज्ञके स्वर्गमें गमन होनेसे हमारा भी वहाँ गमन होगा।

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तज्जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम्

इस मन्त्रकी व्याख्या ३-१४ अ० के १२। ५२ मन्त्रमें होगई ॥ ५६ ॥

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

इसका परमे० ऋ० स्वराडुत्कृति छ० ऋतु दे० है। मन्त्रार्थ -(तपः) माघमास (तपस्यः) फाल्गुनमास (शैशिरावृतू) शिशर ऋतुके अवयव हैं। शेषकी व्याख्या १३। २५ में होगई ॥ ५७ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वञ्ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५८॥

इसका परमेष्ठी ऋ० शक्वरी छ० सूर्य देवता है । मन्त्रार्थ-हे इष्टके (परमेष्ठी ज्योतिष्मतीम् त्वा दिवः पृष्ठे सादयतु सूर्यः तेऽधिपतिः) विश्वकर्मा वायुरूप ज्योतिष्मती तुझको द्युलोकके ऊपर स्थापन करे सूर्य तुम्हारा स्वामी है ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिम्पतिम् ६१

इन तीन मन्त्रोंकी व्या० [१२ अ० ५४, ५५, ५६ क० में होगई ॥ ५९—६१ ॥

प्रोथदश्वो न यवसेविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् । आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनङ्कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० विराट् त्रि० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(यदामहः संवरणात् व्यस्थात् प्रोथत् न अश्वः अविष्यन् यवसे आत् शोचिः वातः अस्य अनुवाति अधः ते व्रजनं कृष्णम् अस्तिस्म) जिस समय बड़े अरणीकाष्ठसे अग्नि प्रकाशित होती है, तबाशब्द करती है जिस प्रकार घोड़ा भोजनकी इच्छा करता हुआ घास के निमित्त शब्द करता है अग्निके प्रज्वलित शब्दके उपरान्त प्रज्वलित करनेवाला वायु अग्निकी ज्वालाको देखकर वहन करता है, इसके उपरान्त हे अग्ने ! उस समय तुम्हारा यह गमन कृष्णवर्ण होता ही है ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाꣳ समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीम्भास्वतीमायाद्याम्भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० ब्राह्म्युष्णिक छ० स्वयमातृणा देवता है । मंत्रार्थ-हे स्वयमा-

तृणे ! (अवतः समुद्रस्य आयोः छायायाम् हृदये सदने रश्मिवतीम् भास्वतीम् त्वा, सादयामि) जगत्के पालन करने वाले वर्षासे जगत्को आर्द्र करने वाले आयु नामसे प्रसिद्ध आदित्य देवताके आश्रय-रूप प्रधान हृदयरूप स्थानमें बहुत किरणों से युक्त प्रकाशवान् तुमको स्थापन करता हूँ (त्वं द्याम् आभासि पृथिवीम् ऊरु अंतरिक्षं आ) तुम द्युलोकको प्रकाश करती हो, भूलोकको प्रकाश करती हो, विस्तीर्ण अंतरिक्षको प्रकाशवान् करती हो ॥६३॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीम्प्रथस्वतीन्दिवं यच्छ दिवन्दृꣳह दिवम्मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्याच्छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

इसकी व्या० १४ अ० के १२ म० १५ से अ० ५८ मन्त्रमें होगई ॥ ६४ ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोसि सहस्राय त्वा ॥६५॥

इसका मधुश्छन्दा ऋ० दैवी जगती याजुष्यनुष्टुप् दै० बृ० दैवी प० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-हे अग्ने ! तुम (सहस्रस्य प्रमा असि सहस्रस्य प्रतिमा असि सहस्रस्य उन्मानं असि साहस्रः असि सहस्राय त्वा) सहस्र इष्टकाओंकी प्रमाण हो तुम सहस्र इष्टकाओं की प्रतिनिधि हो, तुम सहस्र इष्टाकाओंकी तुला हो, तुम सहस्र इष्टाकाओंके उपयुक्त हो, अनन्त फलप्राप्ति के निमित्त तुमको प्रोक्षण करता हूँ ॥६५॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

(रुद्राध्याय)

जिसमें पञ्चम चिति प्रधान है ऐसे पञ्चदश अध्याय में चयनके मन्त्र समाप्त करके सोलहवें अध्यायमें शतरुद्रिय होमके मन्त्र वर्णन करते हैं—

हरिः ॐ ॥ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० गायत्री छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(रुद्र ते मन्यवे नमः उतो ते इषवे नमः उत ते बाहुभ्याम् नमः) हे दुःखके दूर करने वाले अथवा ज्ञानके देने वाले अथवा पापीजनोंको उनका कर्म फल देकर रुलाने वाले रुद्रदेव! आपके क्रोधको नमस्कार है और तुम्हारे बाणोंको नमस्कार है अर्थात् हे रुद्रदेव! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओं पर पड़ें हमको शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० आर्षी स्वराडनु० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(गिरिशन्त रुद्र या ते शिवा अघोरा अपापकाशिनी तनूः तया शन्तमया तन्वा नः अभिचाकशीहि) कैलास पर्वत पर वा वेदवाणीमें स्थित होकर प्राणियोंके सुखको बढानेवाले, मेघमें स्थित होकर वर्षासे सुख देनेवाले हे रुद्र, जो तुम्हारी शांत मङ्गलरूप सौम्य पुण्य फलको देनेवाली पराशक्ति है, उस परमानन्दरूप शरीराकार शक्तिसे हमको देखिये

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवाङ्गिरित्र ताङ्कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥३॥

इसका परमेष्ठी ऋ० वि० अ० छन्द रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(गिरिशन्त गिरित्र याम् इषुम् अस्तवे हस्ते बिभर्षि ताम् शिवाम् कुरु पुरुषम् जगत् मा हिꣳसीः) हे देववाणी में स्थित होकर जगत् का कल्याण करने वाले, कैलास वा वेदवाणीमें स्थित होकर प्राणियोंकी रक्षा करने वाले तुम जिस बाणको शत्रुओंके नाश करनेको हाथमें धारण करते हो, हे रक्षक! उस बाण को कल्याणकारी करो, पुत्र पौत्रादि और जगत्के गवाश्वादिको मत मारो अथवा जीवात्मा और इन्द्रियोंके समूहको संसार बन्धनसे नष्ट न करो, किन्तु सदुपदेश देकर मोक्ष प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ४

इसका परमेष्ठी ऋ० नि० अ० छ० रुद्र देवता है। मंत्रार्थ-(गिरिश शिवेन वचसा त्वा अच्छ वदामसि नः सर्वं इत् जगत् यथा अयक्ष्मं सुमनाः असत्) हे वेदवचन में शयन करने वाले परमात्मन् हम मङ्गलकारी वेदरूप स्तुति वचनसे तुमको प्राप्त होनेके निमित्त प्रार्थना करते हैं. हमारे सब ही जंगम मनुष्य पशु आदि वा इन्द्रियें जिस प्रकार नीरोग वा संसाररोगसे मुक्त शुभ मन वाले हों सो करो ॥ ४ ॥

अद्ध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योध-

राचीः परासुव ॥ ५ ॥

इसका प्रजापति ऋ०भु० गा० वृ०छ० रुद्र देवता है। मंत्रार्थ-(अधिवक्ता प्रथमः दैव्यः भिषक् अध्यवोचत् च सर्वान् अहीन् जम्भयन् सर्वाः अधराचीः यातुधान्यः च परासुव) तारकमन्त्रका उपदेश करनेवाले सब देवताओंमें मुख्य पूजनीय देवताओंके हितकारी संसार रोगके नाशक रुद्र हमको सबसे अधिक दें वा महामन्त्रका उपदेश दें और सब सर्पादिकी समान डसने वाले कामादिका विनाश करते हुए सम्पूर्ण अधोगमनशील कामकलारूप राक्षसीको भी हम से दूर करें ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रितास्सहस्रशो वैषाꣳ हेड ईमहे ॥ ६ ॥

इसका प्रजापति ऋ० निचृ० प० छ० रुद्र देवता है। मंत्रार्थ-(च यः असौ ताम्रः अरुणः उत बभ्रुः सुमङ्गलः च ये सहस्रशः रुद्राः एनम् अभितः दिक्षु श्रिताः एषाम् हेडः ईमहे) और जो यह प्रत्यक्षरुद्र सूर्यरूप उदय समयमें अत्यन्त लालवर्ण अस्त समय रक्तवर्ण और मध्याह्न समयमें पिङ्गल वर्ण मंगलरूप कर्मोंका विस्तार करने वाले हैं और जो सहस्रों रुद्रांशरूप देवता इनके सब ओर दिशाओंमें स्थित हैं, इनका क्रोध जोकि-हमारे अपराधसे प्रकट हुआ है उसको हम भक्तिद्वारा निवारण करते है ॥ ६ ॥

असौ योवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

इसका प्रजापति ऋ० विराडार्षी पंक्ति छ० रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(यः असौ नीलग्रीवः उत विलोहितः अवसर्पति एनं गोपाः अदृश्रन् उदहार्यः अदृश्रन् सः दृष्टः नः मृडयाति) जो यह विषधारणसे अस्तसमय नीलग्रीव और विशेष रक्तवर्ण आदित्यरूप से उदय अस्त करते निरन्तर गमन करते हैं, इनको वेदोक्त संस्कारहीन गोपाल तक देखते हैं, जल लेजाने वाली नारी पर्यन्त भी देखती हैं वह रुद्र दर्शनपथमें प्राप्त होते ही हमको सुखी करें, अथवा गोप कहिये इन्द्रिय—गोलकोंकी रक्षक इन्द्रियशक्तियाँ देखती हैं, और उदहारी कहिये अमृतको प्राप्त कराने वाली प्रज्ञाशक्तियें देखती हैं, वह रुद्र दर्शन देते हुए हमको मोक्षसुख दें ॥७॥

नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वानोऽहन्तेभ्योकरन्नमः ॥८॥

इसका प्रजापति ऋ० वि० प० छन्द रुद्र दे० है । मंत्रार्थ-(नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे नमः अस्तु अथो अस्य ये सत्वानः तेभ्यः अहम् नमः अकरम्) नीलकण्ठ सहस्रनेत्रसे सब जगत्को देखनेवाले इन्द्ररूप वा विराट्रूप सेचनमें समर्थ पर्जन्यरूप वा वरुणरूप रुद्रके निमित्त नमस्कार हो और इस रुद्र देवताके जो अनुचर देवता हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥९॥

इसका प्रजापति ऋ० वि० प० छ० रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ—(भगवः धन्वनः उभयोः आर्त्न्योः ज्याम् त्वम् प्रमुञ्च च याः ते इषवः ताः परावप) हे षडैश्वर्य संपन्न भगवन् ! आप धनुषकी दोनों कोटियोंमें स्थित ज्याका दूरकरो उतार लो और जो आपके हाथमें बाण हैं उनका दूर त्यागदो हमारे निमित्त सौम्यमूर्त्ति होजाओ ॥ ९ ॥

विज्यन्धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवान् उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः

इसका प्रजापति ऋ० भु० गा० छ० रुद्र दे०है । मन्त्रार्थ-(कपर्दिनः धनुः विज्यं उत बाणवान् विशल्यः अस्य याः इषवः अनेशन् अस्य निषङ्गधिः आभुः) जटाजूटधारी रुद्रका धनुष ज्यारहित और तरकस भालावाले बाणोंसे रीता हो इन ईश्वरके जो बाण हैं वे अदर्शनको प्राप्त हों इनका खड्ग रखनेका कोश खड्गसे रीता हो, क्योंकि-योगसे जीवन्मुक्त मैं वधके योग्य नहीं हूँ ॥ १० ॥

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥११॥

इसका प्रजापति ऋ० निचृ छ० रुद्र दे० मन्त्रार्थ-(मीढुष्टम ते या हेतिः ते हस्ते धनुः बभूव तया अयक्ष्मया त्वम् विश्वतः अस्मान् परिभुज) हे ज्ञानामृतसे सींचने वाले तुम्हारे जो ज्ञानरूप आयुध हैं आप के हाथमें जो प्राणरूप धनुष है उस संसार रोगरूपी उपद्रवसे रहित धनुषसे आप सब ओरसे हमका पालन करो अर्थात् हम भक्तों की संसारबन्धनसे रक्षा करो ॥ ११ ॥

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्निधेहि तम् ।१२।

इसका प्रजापति ऋ० निचृ० छ० रुद्र दे० है । मन्त्रार्थ-हे रुद्र (ते धन्वनः हेतिः

विश्वतः अस्मान् परिवृणक्तु अथो यः तव इषुधिः तम् अस्मत् आरे निधेहि) हे रुद्र ! तुम्हारे धनुषसम्बन्धी आयुध सब ओरसे हमको त्यागें और जो तुम्हारा तरकस है उसको हमसे दूर स्थापन करो ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव १३

इसका प्रजापति ऋ० नि० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ—(सहस्राक्ष शतेषुधे त्वम् धनुः अवतत्य शल्यानां मुखाः निशार्य नः शिवः सुमनाः भव) हे विराट्रूप होनेसे सहस्रनेत्र हे सहस्रों तरकसवाले तुम धनुष को ज्यारहित करके बाणोंके मुख भाला-रहित करके हमारे निमित्त शान्त और शो-भनचित्त हूजिये क्योंकि मैं सायुज्यके योग्यहूँ

नमस्त आयुधायानाततायधृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्वने ॥१४॥

इसका प्रजापति ऋ० भु० गा० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-हे रुद्र ! (ते अनाततायआयुधाय नमः ते उभाभ्याम् बाहुभ्याम् उत तव धृष्णवे धन्वने नमः) आप के धनुषपर न चढ़ाये हुए बाणके निमित्त नमस्कार है आपके दोनों बाहुओंके निमित्त और आपके शत्रुओंको मारनेमें प्रगल्भ धनुषके निमित्त प्रणाम है ॥ १४ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥

इसका कुत्स ऋ० नि० जगती छ० रुद्र देवता है मन्त्रार्थ-हे रुद्र ! (नः महान्तं मा वधीः उत नः अर्भकं मा नः उक्षन्तम् मा उत नः उक्षितम् मा नः पितरं मा उत नः मातरं मा नः प्रियाः तन्वः मा रीरिषः) हमारे वृद्ध गुरु पितृव्यादिकोंको संसार-बन्धनसे मत मारो और हमारे बालकको मत मारो, हमारे तरुणको मत मारो और हमारे गर्भस्थ बालकको हमारे पिताको मत मारो और हमारी माताको मत मारो हमारे प्यारे शरीर पुत्र पौत्रादिको मत मारो ॥ १५ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ १६ ॥

इसका कुत्स ऋ० निचृ० ज० छ० रुद्र देव० है। मन्त्रार्थ-(रुद्र नः तनये तोके मा

रीरिषः नः आयुषि मा नः गोषु मा नः अश्वेषु मा नः भामिनः वीरान् मा वधीः हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे) हे रुद्र हमारे पौत्र पुत्रको मत मारो हमारी आयु को मत नष्ट करो हमारी गौओंमें मत प्रहार करो हमारे घोड़ोंमें मत प्रहार करो हमारे क्रोधयुक्त वीरपुरुषोंको मत मारो क्योंकि हम हवियुक्त हुए निरन्तर आपको यज्ञके निमित्त आह्वान करते हैं ॥ १६ ॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनाम्पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमः ॥ १७ ॥

इसका कुत्स ऋ० नि० धृ० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(हिरण्यबाहवे सेनान्ये नमः दिशां पतये च नमः हरिकेशभ्यः वृक्षेभ्यः नमः पशूनां पतये नमः त्विषीमते शष्पिञ्जराय नमः पथीनां पतये नमः उपवीतिने हरिकेशाय नमः पुष्टानाम्पतये नमः) भुजाओंमें सुवर्ण धारण करनेवाले महाबाहु सेनापालक वा ज्योतिरूप भुजा वाले और अभक्तोंके लिये काम आदि सेनाके तथा भक्तोंके लिये शमदमादि सेनाके नायक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, दिशाओंके अधिपतिके निमित्त भी नम० है त्रिदेवरूप शरीरधारी रुद्रोंके निमित्त नम० है जीवों के पालन करनेवाले रुद्रोंके निमित्त नम० है कान्तिमान् बालतृणवत् पीतवर्णवाले वा देहाभिमानियोंको जरायुक्त करनेवाले रुद्रके निमित्त नम० है, देव पितर ब्रह्मसम्बन्धी मार्गोंके पालक रुद्रके निमित्त नम० है उपवीत धारण करनेवाले त्रिदेव रूप रुद्रके निमित्त नम० है, धर्मभावसे पुष्ट मनुष्योंके स्वामी रुद्रके निमित्त नम० है १७

नमो बभ्लुशाय व्याधिनेन्नानाम्पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगताम्पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानाम्पतये नमः ॥ १८ ॥

इसका कुत्स ऋ० नि० छ० रुद्र दे० है मंत्रार्थ-(बभ्लुशाय नमः व्याधिने नमः अन्नानाम् पतये नमः भवस्य हेत्यै नमः जगतां पतये नमः आततायिने रुद्राय नमः क्षेत्राणां पतये नमः अहन्त्रे सूताय नमः वनानां पतये नमः) कपिलवर्ण वा पञ्चदेवस्वरूपको प्रणाम है, व्याधिरूप रुद्रको न० है शत्रुओंको वेधन करने वाले अन्नोंके पालकके निमित्त

नम० है संसारके आयुध अर्थात् संसार-बन्धन निवर्त्तकको नम० है संसारके पालक को नम० उद्यत आयुध वालेको नम० है देहोंके पालकको नम० है नहीं मारने वाले पापसे रक्षा करनेवाले शरीररूपी रथको अन्तर्यामी रूपसे चलाने वालेको नम० है, वानप्रस्थ आदि आश्रमोंके पालकको न० है।

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणाम्पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनाम्पतये नमः ॥ १९ ॥

इसका कुत्स ऋ० विराजधृति छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(रोहिताय स्थपतये नमः वृक्षाणां पतये नमः भुवन्तये वारिवस्कृताय, नमः ओषधीनां पतये नमः मंत्रिणे वाणिजाय नमः कक्षाणाम् पतये नमः आक्रन्दयते उच्चैःघोषाय नमः पत्तीनां पतये नमः) लोहितवर्ण वा मत्स्यावताररूप विश्वकर्माकी समान ब्रह्मांडभवनको बनाने वालेको नम० है ब्रह्माण्डरूप वृक्षोंके पालक को नम० है, भूमण्डलका विस्तार करने वाले जलवासी-असुरके संहारकर्त्ता वराहावतारधारीको नम० है संसार रोगकी औषधियोंके पालकको नम० है आलोचना में कुशल दानप्रतिग्रहरूप व्यापारकर्त्ता वामनरूपमें स्थितको नम० है, वनकी लता-पत्रादि पर्यन्तके पालकको नम० है, शत्रुओं को रुलानेवाले युद्धमें बड़ा उग्र शब्द करने वाले नृसिंहरूपधारीको नम० है एक रथ एक हाथी तीन घोड़े पाँच पैदलका नाम पत्ति है इस प्रकारकी सेनाओंके पालक स्कन्दरूपको नम० है ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनाम्पतये नमो नमस्सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनाम्पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानाम्पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥ २० ॥

इसका कुत्स ऋ० अति धृ० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(कृत्स्नायतया धावते नमः सत्वनाम् पतये नमः सहमानाय निव्याधिन नमः आव्याधिनीनाम् पतये नमः निषङ्गिणे ककुभाय नमः स्तेनानां पतये नमः निचेरवे परिचराय नमः आरण्यानां

पतये नमः) जो हमारी रक्षाके निमित्त कर्णपर्यन्त धनुष खैंच कर धावमान होते हैं उन रामको नम० है शरणमें आए हुए प्राणियोंके पालकको नम० है असुरोंका तिरस्कार करनेवाले निरन्तर मारने वाले कृष्णरूपको नम० है, सब प्रकारसे प्रहार करनेवाली शूद्रसेनाओंके पालकको नम० है उपद्रवकारियों पर खड्ग चलाने वाले, महान् कल्किरूपको नम० है, सर्वरूप होने से गुप्तधनहारी जनोंके पालकको नम० है, अपहरणकी बुद्धिसे निरन्तर फिरने वाले तथा आपणस्थानमें हरणकी इच्छासे फिरने वाले गठकट्टोंके अन्तर्यामीको नम० है [जब भगवान् समस्त संसारमें नानारूपसे वर्त्तमान हैं तब तो वही चोरमें हैं वही गृहस्थमें हैं वही शासकमें हैं. अतः सकल ही वस्तुओं में भगवद्दर्शन श्रेष्ठज्ञान है, इस बातको सब ही मानते हैं] वनवासी मुनियोंके रक्षक भगवान्को प्रणाम है॥ २० ॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनाम्पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणाम्पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णताम्पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानाम्पतये नमः ॥ २१ ॥

इसका कुत्स ऋ० नि० धृ० छ० रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ-(वञ्चते परिवञ्चते नमः) ठगोंके अन्तर्यामीको, स्वामीको अपना विश्वास दिलाकर व्यवहारमें उनको वंचन करने वालोंके साक्षीको नम० है (स्तायूनां पतये नमः) गुप्तचोरोंके पालकको न० है, खड्गधारी, बाणधारी अर्थात् उपद्रव करनेवालोंको शान्त करने वालेको न० है (तस्कराणां पतये नमः) प्रकाशचोरोंके पालकको न० है, (सृकायिभ्यः जिघांसद्भ्यः नमः) वज्र लेकर चलनेवाले हत्याकारी जनोंके अन्तर्यामीको न० है, (मुष्णतां पतये नमः असिमद्भ्यः नक्तंचरद्भ्यः नमः विकृन्तानाम् पतये नमः) क्षेत्रादिसे धनादिको हरण करनेवालोंके पालकको न० है खड्गधारी रात्रिमें फिरने वाले दस्युगणोंके हृदयमें स्थितको न० है, छेदन करके पराया धन हरने वाले दिवाचारी दस्युगणके पालकको नम० है ॥२१॥

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानाम्पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योस्यद्भ्यश्च वो नमः

इसका कुत्स ऋ० निचृद्० छन्द रुद्र देव० है। मंत्रार्थ—(उष्णीषिणे गिरिचराय नमः कुलुञ्चानां पतये नमः इषुमद्भ्यः च धन्वायिभ्यः वः नमः आतन्वानेभ्यः नमः च प्रतिदधानेभ्यः वः नमः आयच्छद्भ्यः नमः च अस्यद्भ्यः वः नमो नमः) पगडी धारण करने वाले सभ्यगण नगरोंमें विचरने वाले शून्य मस्तक गिरिवनमें फिरने वाले दोनों प्रकारके दलोंके हृदयमें स्थित परमात्माको नम० है, छल बल कौशलसे दूसरोंकी गृह भूमि आदि हरने वालोंके पालकको नम० है, मनुष्यों के डरानेको वाण धारण करने वाले और धनुष साथ लेकर चलने वाले आपको नम० है, कुलुञ्चोंके दमनार्थ धनुष पर ज्या चढाने वालेको नम० है और धनुष पर वाण चढ़ानेवाले आपको नम० है और वाणको छोड़ने वाले आपको वारम्वार नमस्कार है ॥ २२ ॥

नमो विसृजद्भ्यो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥ २३ ॥

इसका कुत्स ऋ० निचृ० ज० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(विसृजद्भ्यः नमः च विध्यद्भ्यः वः नमः स्वपद्भ्यः नमः च जाग्रद्भ्यः वः नमः शयानेभ्यः नमः च आसीनेभ्यः वः नमः तिष्ठद्भ्यः नमः च धावद्भ्यः वः नमः) पापियोंके दमनार्थ वाण छोड़ने वालेको नम० और शत्रुओंके लक्ष्यको वेधने वाले आपको नम० है, सोने वालोंके अन्तरमें स्थितको नम० है और जाग्रत् अवस्थाके अनुभवी आपको नम० है, सुषुप्ति अवस्था वालोंके अन्तरमें स्थित आपको नम० है और बैठे हुओंके अन्तरमें स्थित आपको नम० है और वेगयुक्त गति वालोंके अन्तरमें स्थित आपको नम० है ॥

नमस्सभाभ्यस्सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्या विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमो नमः २४

इसका कुत्स ऋ० शक्वरी छ० रु०दे० है। मंत्रार्थ-(सभाभ्यः नमः च सभापतिभ्यः वः नमः अश्वेभ्यः नमः च अश्वपतिभ्यः वः नमः आव्याधिनीभ्यः नमः च विविध्यन्तीभ्यः वः नमः उगणाय नमः च तृꣳहतीभ्यः वः नमः) सभारूपको नमस्कार है [सभादिमें रुद्रदृष्टि करनी चाहिये] सभापतिरूप आपको नमस्कार प्रत्येक अश्वोंके अंतरमें स्थितको नम० अश्वोंके अधिपतिको नम० है, देवसेनाओंमें स्थितको नम० है, विशेषकर वेधने वाली देवसेनाओंमें स्थित आपको नम० है, उत्कृष्ट भृत्यसमूह

वाली ब्राह्मी आदि माताको नम० है, युद्ध में प्रहार करने वाले दुर्गादिमें स्थित आप को नमस्कार है॥ २४ ॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥

इसका कुत्स ऋ० भु० श० छन्द रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(गणेभ्यः नमः च गणपतिभ्यः वः नमः व्रातेभ्यः नमः च व्रातपतिभ्यः वः नमः गृत्सपतिभ्यश्च वः नमः विरूपेभ्यः नमः च विश्वरूपेभ्यः वः नमः) गणरूपको नम० है और गणोंके अधिपति आपको नम० है, समूहरूपको नम० है और व्रातोंके अधिपति आपको नमस्कार है, बुद्धिमानोंको नम० है और बुद्धिमानोंके रक्षक आपको नम० है, नग्न मुण्ड जटिलादि विकृतरूपको नम० है और सर्वरूप नानाविधरूप आपको नम० है ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यस्संगृहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

इसका कुत्स ऋ० भुरिग० ज० छन्द रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ—(सेनाभ्यः नमः च सेनानिभ्यः वः नमः रथिभ्यः नमः च अरथेभ्यः वः नमः क्षत्तृभ्यः नमः च संगृहीतृभ्यश्च वः नमः महद्भ्यः नमः च अर्भकेभ्यः वः नमः) सेनारूपको न० है और सेनापतिरूपको न० है, रथीरूपको न० है, अरथीको न० है, रथके अधिष्ठातृके अंतर में स्थितको न० है और सारथियोंके अंतर में स्थित आपको न० है, जाति विद्या ऐश्वर्यमें पूज्यको न० है और प्रमाणादि से अल्परूप आपको न० है ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्टेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥

इसका कुत्स ऋ० निचृच्छक्वरी छन्द रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(तक्षभ्यः नमः च रथकारेभ्यः वः नमः कुलालेभ्यः नमः च कर्मारेभ्यः वः नमः निषादेभ्यः नमः च पुञ्जिष्टेभ्यः वः नमः श्वनिभ्यः नमः च मृगयुभ्यः वः नमः) काष्ठकी शिल्पविद्याके जानने वालोंमें व्याप्तको न० है और विमान रथ निर्माणकारी उत्कृष्ट तक्षाके अंतरमें

स्थित आपको न० है, प्रशंसित मृत्तिकाके पात्र बनाने वालोंमें स्थितको न० है और लोहेके शस्त्र बनाने वालोंमें स्थितको न० है और गिरिचारी भीलादिमें स्थितको न० है और पक्षिघातक पुल्कसादिमें स्थित आप को न० है, कुत्तोंके गलेमें रस्सी बाँध कर धारण करने वालोंके अंतरकी जानने वाले को न० है और मृगोंकी कामनावाले व्याधों के अंतर स्थित आपको न० है ॥ २७ ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥

इसका कुत्स ऋ० आर्षीजं० छ० रुद्र देवता है। मंत्रार्थ--(श्वभ्यः नमः च श्वपतिभ्यः वः नमः च भवाय नमः च रुद्राय नमः च शर्वाय नमः च पशुपतये च नीलग्रीवाय नमः च शितिकण्ठाय) कुक्कुरोंके अंतरमें स्थितको न० है और कुक्कुरोंके अधिपति किरातोंके अंतरमें स्थित आपको न० है और जिनसे सब जगत् उत्पन्न होता है उनको न० है और दुःख दूर करने वाले देवको न० है और पापका नाश करनेवाले को न० है और प्राणियोंके अधिपतिको न० है और नीलवर्ण ग्रीवावालेको न० है और नीलकण्ठ वालेको नमस्कार है ॥ २८ ॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥ २९ ॥

इसका कुत्स ऋ० भु० ज० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(कपर्दिने च व्युप्तकेशाय नमः च सहस्राक्षाय, च शतधन्वने नमः च गिरिशाय शिपिविष्टाय नमः च मीढुष्टमाय च इषुमते नमः) जटाजूटधारीको भी नमस्कार है, मुण्डितकेशको नमस्कार है और सहस्रलोचन इन्द्ररूपको न० है और बहुत धनुष धारण करनेवालेको न० है और पर्वतपर शयन करनेवालेको० और सब प्राणियोंके अन्तरमें व्यापक विष्णुरूप को न० है और मेघरूपसे तृप्तिकर्ताको और बाणधारीको न० है ॥ २९ ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

इसका कुत्स ऋ० वि० त्रि० छ० रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(ह्रस्वाय च नमः च वामनाय च बृहते च वर्षीयसे नमः च वृद्धाय च सवृधे नमः च आम्याय च प्रथमाय नमः) अल्पशरीरको भी न० है और संकुचित अवयवमें व्याप्त वामनरूपको न० और बड़े शरीरवालेको० और अतिवृद्धको न० है और अधिक अवस्थावालेको० और विद्याविनयादि गुणयुक्त ज्ञानियोंके साथ वर्तने वाले युवाको न० है और जगत्में प्रथम प्रकट होनेवालेको० और सबमें प्रथम ब्रह्मरूपको न० है ॥ ३० ॥

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्रयाय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

इसका कुत्स ऋ० स्वराडार्षी प० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(आशवे च च अजिराय नमः च शीघ्रयाय च शीभयाय च नमः च ऊर्म्याय च अवस्वन्याय नमः च नादेयाय च द्वीप्याय नमः) जगद्व्यापकको और गतिशील गंगादि तीर्थरूपको न० है और वेग वाली वस्तुमें विद्यमान और जलप्रवाहमें विद्यमान आत्मश्लाघीको न० है और जलतरंगमें वर्त्तमान वा भूख प्यास आदि षड्ऊर्मिमें वर्त्तमान और स्थिर जलोंमें विद्यमानको० और नदीमें वर्त्तमानको० और द्वीपमें होनेवाले व्यासरूपको न० है ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

इसका कुत्स ऋ० स्व० त्रि० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(च ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय नमः च पूर्वजाय च अपरजाय नमः च मध्यमाय च अपगल्भाय नमः च जघन्याय च बुध्न्याय नमः) और ज्येष्ठरूपको और कनिष्ठरूपको न० है [अर्थात् सृष्टिके आरम्भमें प्रथम उत्पन्न होनेसे ज्येष्ठरूप तिसके भीतर भी विद्यमान और उसके पीछे जो कुछ उत्पन्न होरहा है उस सबके हृदयमें भी विद्यमान होनेसे कनिष्ठरूप है] और जगत्की आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे उत्पन्न और प्रलयकालमें कालाग्निरूपसे होने वालेको नमस्कार है और सृष्टिसंहारके अनन्तर देवतिर्यगादिरूपसे होने वालेको न० और अप्रगल्भ अव्युत्पन्न इन्द्रिय इन्द्रियादि प्रकाशरहित अण्डरूपको न० और गवादिके पीछे होनेवाले स्वेदज कृमि कीटादिमें वर्त्तमानको न० है और वृक्षादिकी मूलमें पोषकरूपसे वर्त्तमानको न० है

नमस्सोभ्याय च प्रतिसर्य्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चाव-सान्याय च नम उर्वर्य्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

इसका कुत्स ऋ० आ० त्रि० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(सोभ्याय च नमः प्रतिसर्य्याय नमः च याम्याय च क्षेम्याय नमः च श्लोक्याय च अवसान्याय नमः च उर्वर्य्याय च खल्याय नमः) गन्धर्वनगरमें होने वालेको भी न० है और विवाहादि कार्यमें हाथमें बँधे मंगलसूत्रमें विद्यमानको न० और पापियोंको दुःखदेनेवाले यममें वर्त्तमानको और क्षेममें होनेवालेको न० और इस संसारमें यशःप्रचारके कारणभूत और वेदोंमें स्थितको न० है और उपजाऊ भूमिमें उत्पन्न हुए धान्यादिमें भी विद्यमानको न० है और धान्य निकालनेके स्थानमें होनेवालेको न० है ॥ ३३ ॥

नमो धन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

इसका प्रजापति ऋ० स्वराडार्षी त्रि० छ० रुद्र दे० है मन्त्रार्थ-(धन्याय च नमः कक्ष्याय नमः च श्रवाय च प्रतिश्रवाय नमः च आशुषेणाय च आशुरथाय नमः च शूराय च अवभेदिने नमः) वनमें वृक्षादिस्वरूपको न० है और शब्दरूपको न० है और प्रतिध्वनिमें विद्यमानको न० है और शीघ्र चलने वाले रथोंकी श्रेणीमें विद्यमानको न० है और युद्धविशारदोंके हृदयमें विद्यमानको और शत्रुका हृदय वेधने वाले शस्त्रमें भी विद्यमानको न० है ॥ ३४ ॥

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्म्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ ३५ ॥

इसका कुत्स ऋ० स्वराडार्षी त्रि० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(च बिल्मिने नमः कवचिने नमः च वर्म्मिणे नमः च वरूथिने नमः च श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमः दुंदुभ्याय च आहनन्याय नमः) और शिरस्त्राणधारीको न० है और कवचधारीको न० और मन्त्रमय कवचधारीको न० है और चौदह भुवनवासीको न० है और प्रसिद्धको न० है और प्रसिद्ध सेनावालेको भी न० है और रणके बाजेमें विद्यमानको और बाजेके दण्डे आदिमें विद्यमानको नमस्कार है ३५ ॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

इसका कुत्स ऋ० स्व० त्रि० छ० इन्द्र देवता है, मंत्रार्थ-(च धृष्णवे च प्रमृशाय नमः च निषङ्गिणे नमः च इषुधिमते नमः च तीक्ष्णेषवे च आयुधिने नमः च स्वायुधाय च सुधन्वने) और प्रगल्भरूप अपने पक्षकी रक्षा करने वालेको नम० है और विचारशील पंडितरूपको न० है और खड्गधारीको नम० है और तरकस-धारीको० और तीक्ष्णबाणधारीको और अन्य आयुधधारीको न० है और शोभन आयुध त्रिशूल धारीको और पिनाक-धनुषधारीको नम० है ॥ ३६ ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

इसका कुत्स ऋ० नि० त्रि० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(च स्रुत्याय च पथ्याय नमः च काट्याय च नीप्याय नमः च कुल्याय च सरस्याय नमः च नादेयाय च वैशन्ताय नमः) और मुक्तिदाताको और मुक्तिमार्गमें दर्शन देनेवालेको नम० है और दुर्गम मार्गमें दर्शन देनेवालेको और संसारवृक्षस्वरूपको न० है और नहरके मार्गमें स्थितको० और सरोवरोंमें विद्यामानको न० है और नदीमें जलरूपसे स्थितको न० है ३७

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥

इसका कुत्स ऋ० भु० प० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(च कूप्याय च अवट्याय नमः च वीध्र्याय च आतप्याय नमः च मेघ्याय च विद्युत्याय नमः च वर्ष्याय च अवर्ष्याय नमः) और कूपमें आत्मरूपसे विराजमानको० और गर्तजलमें विराजमानको नमस्कार है और महाप्रकाशमें स्थितको० और धूपमें विद्यमानको न० है और मेघमें विद्यमानको न० है और विजलीमें विराजमानको न० है और वर्षाकी धारामें स्थितको० और वृष्टिके प्रतिबन्धमें स्थितको न० है ॥ ३८ ॥

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमो सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

इसका कुत्स ऋ० स्वराडार्षी प० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(च वात्याय च रेष्म्याय नमः च वास्तव्याय च वास्तुपाय नमः च सोमाय च रुद्राय नमः च ताम्राय च अरुणाय नमः) और वायुप्रवाह में विराजमानको० और प्रलयकी पवनमें रहने वालेको नम० है और वास्तुगृहमें विराजमानका० और गृहभूमिके देवताको न० है और चन्द्रमामें स्थितको और दुःखनाशकको न० है और सायंकालके सूर्यमें स्थितको न० है और प्रभातकालीन सूर्यमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

इसका परमेष्ठी वा०प्र० देवा ऋ० भु० श० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(शङ्गवे नमः च पशुपतये नमः च उग्राय च भीमाय नमः च अग्रेवधाय च दूरेवधाय नमः च हन्त्रे नमः हनीयसे नमः हरिकेशेभ्यः वृक्षेभ्यः नमः ताराय नमः) कल्याणरूप वेदवाणी वालेको नमस्कार है और प्राणियोंके पालकको न० है और शत्रुओंके मारनेको कठिन आयुध उठाये कठिन अन्तःकरण वालेको० और शत्रुभयोत्पादक भयानकको नम० है और सन्मुखके शत्रुका वध करने वालेको० और दूरके शत्रुका वध करनेवालेको न० है और मारने वालेके रूपमें स्थित स्थावर पदार्थके लयकारीको नम० है और अतिशय हन्ता सदाको मृत्युका अभाव करने वालेको न० है हरे पत्तेवाले कल्पतरुरूपको नम० है संसारके तारने वालेको नमस्कार है ॥ ४० ॥

नमः शंभवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

इसका परमेष्ठी प्र०वा० देवा ऋ०स्व० वृ० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(शम्भवाय नमः) इस लोकके कल्याणकारी जिनसे सुख होता है अथवा सुखरूप संसाररूप मुक्तिरूपको नम० है (च मयोभवाय च शङ्कराय नमः) और संसारके सुखदाता पारलौकिक कल्याणको न० है और लौकिक सुखदेने वालेको न० है (च मयस्कराय च शिवाय नमः) और मोक्षसुख देनेवालेको न० है और कल्याणरूप

निष्पापको न० है (च शिवतराय) और भक्तोंके अत्यन्त कल्याण—कारक तथा निष्पाप करनेवालेको नम० है ॥ ४१ ॥

नमः पार्य्याय चावार्य्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

इसका परमेष्ठी प्र० दे० ऋ० निचृ० त्रि० छ० रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ—(च पार्य्याय च अवार्य्याय नमः च प्रतरणाय च उत्तरणाय नमः च तीर्थ्याय च कूल्याय नमः च शष्प्याय च फेन्याय नमः) और समुद्रके पारमें भी विद्यमानको नम० है और सागरके इस पारमें भी विद्यमानको न० है जहाजमें विद्यमानको और डोंगेमें भी विद्यमानको न० है और सागरादिके गर्भमें विद्यमानको० और जलप्रणालीमें प्रकट होने वालेको न० है और गङ्गादिके तटमें उत्पन्न कुश अंकुरादिमें विद्यमानको न० है सागरादिके फेनमें होने वालेको नमस्कार है ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किँशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

इसका परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋ० जगती छ० रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—(च सिकत्याय च प्रवाह्याय नमः च किँशिलाय च क्षयणाय नमः च कपर्दिने च पुलस्तये च इरिण्याय च प्रपथ्याय नमः) और तीर्थरजरूपको और प्रवाहरूपको न० है और नदी आदिके भीतर वृक्षकंकरादिमें विद्यमानको और स्थिरजलमें विद्यमानको न० है और जटाजूटयुक्त व पूरजलमें विद्यमानको और तृणरहित ऊषरभूमिमें विद्यमानको और बहुत सेवितमार्गमें विद्यमानको नम० है ॥ ४३ ॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥ ४४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० आर्षी त्रि० छ० रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ—(च व्रज्याय च गोष्ठ्याय नमः च तल्प्याय च गेह्याय नमः च हृदय्याय च निवेष्याय नमः च काट्याय च गह्वरेष्ठाय) और गोचारणस्थानमें विद्यमान और व्रजमें विद्यमानको न० है और

शेषशय्यारूपको और घरमें देवतारूपसे विराजमानको न० है और हृदयमें [जीवरूपसे स्थितको और हिमसमूहमें विराजमानको न० है और दुर्गम मार्गमें विराजमानको और गिरिगुहामें विराजमानको नमस्कार है ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाᳬसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी प्रजापतिर्वा ऋ० निचृदा०त्रि० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(च शुष्क्याय च हरित्याय नमः च पाᳬसव्याय च रजस्याय नमः च लोप्याय च उलप्याय नमः च ऊर्व्याय च सूर्व्याय नमः) और सूखे काष्ठादिमें विराजमानको और हरेपत्ते आदिमें विराजमानको न० है और धूलिमें विराजमान को और रजोगुणमें विद्यमानको न० है और अगम्य देशमें विराजमानको और वल्वज आदि तृणमें विराजमानको न० है और उर्वरभूमिमें विराजमानको न० है और महाप्रलयकी अग्निमें विराजमानको न० है ॥ ४५ ॥

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० स्वराट् प्रकृति छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(च पर्णाय च नमः च उद्गुरमाणाय च अभिघ्नते नमः च आखिदते च प्रखिदते नमः इषुकृद्भ्यः च धनुष्कृद्भ्यः वः नमः) और पर्णमें विद्यमानको और पर्णपतित वर्णस्थित देशरूपमें विद्यमानको न० है और निरन्तर उद्यमीको और शत्रुओंके संहारकको न० है और अभक्तोंको सदा दुःखदाता त्रिविधतापके नाशकको और त्रिविधताप के उत्पन्नकर्त्ताको न० है वाणके उत्पन्न करनेवालेको और धनुषके रचने वाले आपको न० है (देवानां हृदयेभ्यः किरिकेभ्यः वः नमः विचिन्वत्केभ्यः नमः विक्षिणत्केभ्यः नमः आनिर्हतेभ्यः) जो देवताओं के हृदयस्वरूप प्रधान अग्नि वायु सूर्यके हृदयरूप वृष्ट्यादि द्वारा जगत्को सृजन करते हैं ऐसे आपको न० है जो देवताओं का हृदयस्वरूप है जो वृष्टि आदिसे जगत् का पालन करते हैं जो धर्मात्मा और

पापात्माओंको पृथक् करते हैं उन अग्नि वायु सूर्यके हृदयको न० है, विविध पापों को दूर करनेवाले अग्नि आदिको न० है अर्थात् जो देवताओंका हृदयस्वरूप विद्युत्क वृष्टि आदिसे जगत्का संहार करते हैं अग्नि वायु सूर्यके हृदयस्वरूप हैं उनको वारम्बार नमस्कार है सृष्टिकी आदिमें होनेवाले रुद्रावतारको नमस्कार है ।४६।

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्माभेर्मा रोङ् मो च नः किञ्चनाममत् ॥ ४७ ॥

इसका परमेष्ठी प्रजा० ऋ० भु० गा० बृ० छ० रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(द्रापे अंधसः पते दरिद्र नीललोहित नः आसाम् प्रजानां एषां पशूनां मा भेः रोक् च किञ्चन मा आममत्) हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले हे सोमके पालक अद्वितीय होनेसे सहायशून्य हे नील और लोहित शुक्लकृष्ण उभयात्मक शिव ! हमारे इन पुत्र पौत्रादिको इन पशुओंको मत भय दो तथा प्रजापशुओं का भंग मत करो और किसी प्रकार भी हमें तथा हमारी प्रजा पशुको मत रुग्ण करो सब प्रकार प्रजापशुमें मङ्गल करो ४७

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥

इसका कुत्स ऋ० आर्षी ज० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(यथा द्विपदे चतुष्पदे शं अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरम् असत् इमाः मतीः तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय रुद्राय प्रभरामहे) जिस प्रकार पुत्रादि में गवादि पशुओंमें सुखकी प्राप्ति हो तथा इस ग्राममें सम्पूर्ण प्राणिसमूह पुष्ट उपद्रवरहित हों उसी प्रकार हम इन अपनी बुद्धियों का महाबली जटिल शूरवीरोंके निवासभूत रुद्रदेवताके निमित्त समर्पण करते हैं।४८।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥

इसका परमेष्ठी प्रजा० ऋ० आर्ष्यनु० छ० रुद्र दे० मंत्रार्थ-(हे रुद्र या ते शिवा विश्वाहा शिवा भेषजी रुतस्य शिवा भेषजी तनूः तया नः जीवसे मृड) हे शंकर जो आपका शांत निरन्तर कल्याणकारी औषधि रूप संसारकी व्याधि निवृत्त करने वाला तथा शरीरव्याधिकी समीचीन औषधिरूप शरीर वा शक्ति है उस शक्तिसे हमको जीवनके लिये सुखी करो ॥ ४९ ॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः अवस्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥

इसका परमे० प्रजा० ऋ० आ० त्रि० छ० रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(रुद्रस्य हेतिः नः परिवृणक्तु त्वेषस्य अघायोः दुर्मतिः परि मीढ्वः मघवद्भ्यः स्थिरा अवतनुष्व तोकाय तनयाय मृड) रुद्रके सम्पूर्ण आयुध हमको परित्याग करें पापियों पर क्रोधित अर्थात् कोपनस्वभाव दण्ड देनेकी इच्छा वाली दुर्मति हमको सब प्रकार त्याग करे हे अभिलषित फलप्रद ! हविरूप धनसे युक्त यजमानोंके भय दूर करनेको दृढ धनुषों का ज्याहीन करो हमारे पुत्र पौत्रादिको सुख दो ॥ ५० ॥

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधन्निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकम्बिभ्रदागहि ॥ ५१ ॥

इसका परमे० प्र० ऋ० नि० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(मीढुष्टम शिवतम नः शिवः सुमनाः भव परमे वृक्षे आयुधं निधाय कृत्तिं वसानः आचर पिनाकं बिभ्रत् आगहि) हे अतिशय अभिलषित फलदाता अत्यन्त कल्याणकर्त्ता हमको शान्त सुन्दर मनवाले होओ दूर स्थित वा ऊँचे वृक्षपर अपना त्रिशूल रखकर मृगचर्म धारणकिये आगमन कीजिये पिनाक धनुषको धारण किये आगमन कीजिये ॥ ५१ ॥

विकिरिद विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्रꣳ हेतयोन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ५२

इसका पर० ऋ० आर्ष्यनु० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(विकिरिद विलोहित भगवः ते नमः अस्तु ते याः सहस्रं हेतयः ताः अस्मत् अन्यम् निवपन्तु) हे अनेक उपद्रव नष्ट करनेवाले हे शुद्धस्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार हो तुम्हारे जो सहस्रों शस्त्र हैं वह हमको छोड़कर और कहीं उपद्रवियों पर पड़ें ॥ ५२ ॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥५३॥

इसका पर०ऋ० निचृ० छ०रुद्र देवता है। मंत्रार्थ-(भगवः तव बाह्वोः सहस्राणि सहस्रशः हेतयः ईशानः तासाम् मुखा पराचीना कृधि) हे भगवन् ! षडैश्वर्यसम्पन्न आपके भुजाओंमें बहुत प्रकारके सहस्रों खड्गशूलादि आयुध हैं, जगत्के पति आप

उन संहारकारी आयुधोंके मुखोंको हमसे पराङ्मुख करो ॥ ५३ ॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ५४

इसका पर० ऋ० विराडा० छ० रुद्र दे० है मन्त्रार्थ-(ये असंख्याताः सहस्राणि रुद्राः भूम्याम् अधि तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) जो असंख्य सहस्रों रुद्र भूमिके ऊपर स्थित हैं उनके धनुष सहस्र योजनदूर फेंकते हैं ॥ ५४ ॥

अस्मिन्महत्यर्णवेन्तरिक्षे भवा अधि । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥५५॥

इसका पर० ऋ० भुरिगा० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(अस्मिन् अंतरिक्षे महति अर्णवे अधिभवाः तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) इस अंतरिक्षमें और बड़े सागर अर्थात् आकाश-गंगानामसे प्रसिद्ध नक्षत्रपुञ्जरूप धाराप्रवाहमें आश्रय करके जो रुद्र स्थित हैं उनके संपूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर ज्यारहित करके हम निर्भय होते हैं ॥ ५५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ५६

इसका पर० ऋ० निचृ० छ० रुद्र दे० है । मन्त्रार्थ— (नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः रुद्राः दिवं उपश्रिताः तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) नीलग्रीव श्वेतकण्ठ वाले विषभक्षणसे कितना एक कण्ठ श्वेत और कितना एक नील है ऐसे जो रुद्र द्युलोकमें आश्रय किये हुए हैं उनके सब धनुषोंको सहस्रयोजन दूर ज्यारहित कर हम निर्भय होते है ॥ ५६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ५७

इसका पर० ऋ० निचृ० छ० रुद्र दे० है । मन्त्रार्थ-(नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाः अधः क्षमाचराः तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) नीली गर्दनवाले श्वेतकण्ठवाले जो शर्वनामक रुद्र नीचे पाताल में वर्त्तमान हैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके हम निर्भय होते हैं ॥ ५७ ॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ५८

इसका पर० ऋ० निचृदा० छ० रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ-(ये शष्पिञ्जराः नीलग्रीवाः विलोहिताः वृक्षेषु तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) जो हरितवर्ण

नीलग्रीवावाले विशेष रक्तवर्ण वृक्षोंमें वर्त्तमान हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके अभय होते हैं ॥५८॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ५९

इसका पर० ऋ० निच० छ० रुद्र दे० है मन्त्रार्थ-(ये भूतानां अधिपतयः विशिखासः कपर्दिनः तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) जो देवविशेषोंके अधिपति हैं तथा शिखाहीन मुण्डितशिर हैं जो जटाजूटसे युक्त हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर ज्या-रहित करके निर्भय होते हैं ॥ ५९ ॥

ये पथाम्पथि रक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥६०॥

इसका पर० ऋ० आर्ष्यनु० छ० रुद्र दे० है । मन्त्रार्थ-(ये पथाम् पथिरक्षयः ऐलभृतः आयुर्युधः तेषाम् धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) जो लौकिक वैदिक मार्गोंके अधिपति मार्गोंके पालक राज्यशासनकारी जीवनपर्यन्त युद्ध करनेमें रत हैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके निर्भय होते हैं ॥ ६० ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ६१

इसका पर०ऋ० निचृ छ० रुद्र दे० है मन्त्रार्थ -(सृकाहस्ताः निषङ्गिणः तीर्थानि प्रचरन्ति तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) जो आयुधविशेष ढालको हाथमें लिये तथा खड्ग धारण किये काशी प्रयाग आदि तीर्थोंमें फिरते हैं उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके निर्भय होते हैं ॥ ६१ ॥

येन्नेषु विविद्ध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ।६२।

इसका पर० ऋ० विराडार्ष्यनु० छ० रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ-(ये अन्नेषु जनान् विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतः तेषाम् धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि) जो अन्नभोजन करनेमें प्राणियोंको विशेष करके ताड़न करते हैं अर्थात् धातुकी विषमता पर रोगों को उत्पन्न करते हैं पात्रोंमें जल दूध आदि पीते हुए जनोंको कुत्सित जल आदिसे रोगग्रसित करते हैं उनके सम्पूर्ण धनुषों को सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके अभय होते हैं ॥ ६२ ॥

य एतावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि६३

इसका पर० ऋ० निचृ० छ० रुद्र दे० मन्त्रार्थ-(च ये रुद्राः एतावन्तः च भूयाँसः दिशः वितस्थिरे तेषाम् धन्वानि सहस्र-योजने अवतन्मसि) और जो रुद्र इन दशों दिशाओंमें और इन कहे हुओंसे भी अधिक सम्पूर्ण दिशाओंमें आश्रित हैं उनके धनुषों को सहस्र योजनकी दूरी पर उतारहित करके अभय होते हैं ॥ ६३ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशादीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

इसका परमे० ऋ० निचृ छ० रुद्र दे० है । मन्त्रार्थ-(ये दिवि येषाम् वर्षम् इषवः तेभ्यः रुद्रेभ्यः नमः तेभ्यः दश प्राचीः दश दक्षिणाः दश प्रतीचीः दशादीचीः दशोर्ध्वाः नमः ते नः अवन्तु ते नः मृडयन्तु ते यम् द्विष्मः च यः नः द्वेष्टि तम् एषाम् जम्भे दध्मः) जो रुद्र द्युलोकमें विद्यमान हैं जिन रुद्रोंके वृष्टि ही बाण हैं उन रुद्रोंके पूर्व दिशामें दश अंगुली होकर अर्थात् हाथ जोड़ कर दक्षिण में दश अँगुली होकर पश्चिममें दश अँगुली होकर उत्तरमें दश अँगुली होकर ऊर्ध्वमें दश अँगुली अर्थात् करजोड़ प्रार्थना करता हूँ, उनको नमस्कार हो, वे रुद्र हमारी रक्षा करें, वे हमको सुखी करें वे रुद्र जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है उसको इन रुद्रोंके डाढमें स्थापन करते हैं ॥ ६४ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषां वात इषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ ६५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० धृतिश्छं० रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ-(रुद्रेभ्यः नमः अस्तु ये अन्तरिक्षे येषाम् इषवः वातः) उन रुद्रों को नमस्कार हो, जो अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं जिनके बाण पवन है अर्थात् पवनद्वारा जो सृजन पालन और आँधी आदि से संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेष पूर्ववत् ॥ ६५ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दशप्रती-

चीर्दशोदीचीर्दशोद्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० धृ० छ० रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(रुद्रेभ्यः नमः ये पृथिव्याम् येषाम् इषवः अन्नम्) उन रुद्रोंका नमस्कार है जो रुद्र पृथवीमें स्थित हैं जिनके वाण अन्न हैं जो अन्नद्वारा ही सृजन पालन और मिथ्याहार विहारसे राग उत्पन्न कर प्राणियोंका संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेष पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका षोडश अध्याय समाप्त ॥

❀ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❀

सोलहवें अध्यायमें शतरुद्रीका होम कहकर अब सत्रहवें अध्यायमें चित्यपरिषेक आदि मन्त्रोंको कहते हैं ।

हरिः ॐ ॥ अश्मन्नूर्जम्पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि संभृतम्पयः तान्न इषमूर्जन्धत्त मरुतः सꣳरराणाः अस्मꣳस्ते क्षुन्मयि त ऊर्ग्यन्द्विष्मस्तन्ते शुगृच्छतु १

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं। सबका मेधातिथि ऋ० छन्द १ आ० त्रि० २ दै० वृ० ३ या वृ० और दे० १ मरुत् २ अश्मा ३ शुक् है। मन्त्रार्थ-(मरुतः सꣳरराणाः अश्मन् पर्वते शिश्रियाणाम् ऊर्जम् अद्भ्यः ओषधीभ्यः वनस्पतिभ्यः अधि सम्भृतम् पयः ताम् इषम् ऊर्जम् नः धत्त) हे मरुद्गण! प्रासद्धिदाता तुम पाषाणमें विन्ध्याचल हिमालयादि पर्वतों में आश्रित सारभूत बलका हेतु जलोंसे ओषधियों से वनस्पति अश्वत्थादिसे अधिक सिद्ध तथा गौ द्वारा सम्पादित दूध अर्थात् मेघ-जनित जलरूप और गोसे उत्पन्न दुग्धरूप प्रसिद्ध अन्न और रसको हमारे निमित्त स्थापन कीजिये अर्थात् हमें दीजिये (अस्मिन् ते क्षुत्) हे प्रस्तररूप सर्वभक्षक अग्ने ! तुम को क्षुधा प्राप्त हो अर्थात् बहुत हवि भोगो (अश्मन् ते ऊर्क् मयि) हे प्रस्तर ! तुम्हारा सारभाग मेरे विषें स्थित हो, हे अग्ने ! (ते शुक् तं ऋच्छतु यं द्विष्मः) तुम्हारा क्रोध उस मनुष्यको प्राप्त हो जिसके साथ हम द्वेष करते हैं अर्थात् जो कोई हमारा शत्रु हो तुम्हारा दाह उसको प्राप्त हो ।१।

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतञ्च शतञ्च सहस्रञ्च सहस्रञ्चायुतञ्च युतञ्च नियुतञ्च नियुतञ्च प्रयुतञ्चार्बुदञ्च न्यर्बुदञ्च समुद्रञ्च मध्यञ्चान्तञ्च परार्द्धञ्चैता मे अग्न इष्टका धेनवस्सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ २ ॥

इसका मेधातिथि ऋ० नि० त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने इमाः इष्टकाः मे धेनवः सन्तु एका च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं च अयुतं च अयुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं च प्रयुतं च अर्बुदं च न्यर्बुदञ्च समुद्रः च मध्यञ्च अन्तः च परार्द्धः अग्ने एताः इष्टकाः अमुत्र च अमुष्मिन् लोके मे धेनवः सन्तु) हे अग्निदेवता! यह जो पाँच चितिमें स्थापित इष्टका हैं तुम्हारे प्रसादसे इसलोकमें मेरे निमित्त अभिमत फल देनेवाली गोरूप हों उनकी संख्या कहते हैं जो एक ही दश से गुणा करनेपर दशसंख्या और दशगुणा करने से सौ संख्या और सौ को दशगुणा करनेसे ही सहस्र होता है और सहस्रको दशगुणा करनेसे अयुत संख्या होती है। (१००००) और अयुतको दशगुणा करने से लाख १००००० संख्या और नियुतको दशगुणा करने से दशलाख १०००००० संख्या होती है और इसको दशगुणा करने से करोड़ १००००००० संख्या होती है। इसको दशगुणा करनेसे अर्बुद और इस का दशगुणा करनेसे न्यर्बुद (अब्ज) और इसका दशगुणा करनेसे खर्व और खर्वका दशगुणा करनेसे निखर्व इसका दशगुणा करनेसे महापद्म इसका दशगुणा शङ्कु इस का दशगुणा समुद्र और इसका दशगुणा मध्य और इसका दशगुणा करने पर अन्त और इसका दशगुणा करनेसे परार्द्ध संख्या होती है हे अग्ने! यह इष्टका दूसरे जन्ममें और दूसरे लोकमें मेरी कामदुघा गौएँ हों अर्थात् इष्टका परार्द्ध संख्या तक एकत्र-स्थायी होती हैं और कामदुघा हैं। इस कारण प्रार्थना है, कि-हमको इस लोक परलोक और परजन्म किसी कालमें भी कामनारूप दूधदानसे कातर न करे ॥ २ ॥

ऋतव स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः। घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥ ३ ॥

इसका मेधा० ऋ० विराडार्षी प०छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-हे इष्टके! तुम (ऋतावृधः ऋतवः स्थ ऋतावृधः ऋतुष्ठाः घृतश्च्युतः मधुश्च्युतः विराजः नाम काम-

दुघाः अक्षीयमाणाः स्थ) सत्य वा यज्ञकी बढ़ाने वाली वसन्तादिरूप हो, यज्ञकी वृद्धि करने वाली वसन्तादि ऋतुओंमें स्थित हो, तथा घृतकी क्षरण करने वाली मधुकी क्षरण करने वाली विराज नामसे प्रसिद्ध कामना पूर्ण करने वाली क्षयरहित हो, मुझे सब कामना दो ॥ ३ ॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥४॥

इसका मे० ऋ० भु० गा० छन्द अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने समुद्रस्य अवकया त्वा परिव्ययामसि अस्मभ्यम् पावकः शिवः भव) हे अग्ने! जलके शैवालद्वारा तुमको सब ओरसे वेष्टन करता हूँ हमारे निमित्त शोधक कल्याणकारी होओ ॥४॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥५॥

इसका मे० ऋ० भु० गा० छ० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने हिमस्य जरायुणा त्वा परिव्ययामसि अस्मभ्यम् पावकः शिवः भव) हे अग्निदेव ! हिमके जरायुवत् उत्पत्ति स्थान शैवाल से तुमको सब ओरसे वेष्टन करता हूँ, हमारे निमित्त शोधक कल्याणकारी हूजिये ॥ ५ ॥

उप ज्मन्नुप वेतसेवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमन्नो यज्ञम्पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥ ६ ॥

इसका मे० ऋ० आर्षी० त्रि० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने ज्मन् उपावतर वेतसे उप नदीषु आ अपाम् पित्तम् असि मण्डूकि ताभिः आगहि सा इमम् अस्माभिः यज्ञम् पावकवर्णम् शिवं कृधि) हे अग्ने ! पृथिवीके ऊपर आओ वेतस शाखाको अवलम्बन करो, सब नदियोंमें शिवारको अवलम्बन करो, हे अग्ने तुम जलोंके तेजःस्वरूप हो हे मण्डूकी तुमभी जलोंकी पित्तस्वरूप हो, इसकारण पूर्वोक्त जलोंके साथ आगमन करो अर्थात् जिनका अग्नि पित्त है जिससे तुम उत्पन्न हो, जो तुम अग्निकी शान्तिके निमित्त इधर उधर लेजाई जाती हो, सो तुम इस हमारे चयन लक्षण वाले यज्ञको अग्निकी समान तेजस्वी फलदायक करो ॥ ६ ॥

अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् । अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ७ ॥

इसका मेधा० ऋ० आर्षी० बृ० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(इदम् अपाम् न्ययनम् समुद्रस्य निवेशनम् ते हेतयः अस्मत् अन्यान् तपन्तु अस्मभ्यम् पावकः शिवः भव) यह चितिमें स्थित अग्निका स्थान जलोंकी प्राप्तिका साधन समुद्रका गृहरूप है हे अग्ने! आपकी ज्वाला हमारे विरोधियों को ताप दें, क्लेश दें, हमारे निमित्त शोधक और कल्याणकारक हों ७

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

इसका वसुयुर्ऋषि आ० गा० छन्द अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(पावक देव अग्ने रोचिषा मन्द्रया जिह्वया देवान् आवक्षि च यक्षि) हे शोधक! देव अग्ने तुम ज्वाला—समूह आहवनीयरूप और आनन्दस्वरूप होताकी वाणीरूपसे स्थित तुम देवताओंको आह्वान करो और यजन करो ॥ ८ ॥

स नः पावक दीदिवोग्ने देवाँ इहावह। उपयज्ञं हविश्च नः ॥ ९ ॥

इसका मेधा० ऋ० नि० गा० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(पावक दीदिवः अग्ने सः देवान् नः इह आवह च नः हविः यज्ञम् उप) हे शोधक! दीप्तिमान् अग्नि-देव! वह तुम देवताओंको हमारे इस यज्ञ में बुलाओ और हमारी हवि यज्ञके समीप देवताओंको प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना। तूर्वन्नयामन्नेतशस्य नू रणे आ यो घृणेन तृषाणो अजरः ॥ १० ॥

इसका भारद्वाज ऋ० निचृ० ज० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(यः पावकया चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे न उषसः भानुना यः ततृषाणः अजरः एतशस्य यामन् रणे तूर्वन् न घृणे नु आ) जो अग्नि पवित्र करने वाला दृढ़ चयन करने वाला सामर्थ्यसे पृथिवी पर शोभाको प्राप्त होता है, जैसे उषःकाल अपने प्रकाशसे शोभा देता है, जो पूर्णाहुति के पानकी इच्छा करने वाला जरा रहित अग्नि गमनमें कुशल घोड़े से कार्य लेने वाले युद्धमें शत्रुओंको मारते हुए की समान दीप्तिसे निश्चय ही सब प्रकार शोभा देता है उस अग्निको आकर्षण करते हैं ॥ १० ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे। अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं

शिवो भव ॥ ११ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ०, भु० वृ० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-हे अग्ने! (ते हरसे शोचिषे नमः, ते अर्चिषे नमः अस्तु ते हेतयः अस्मत् अन्यान् तपन्तु अस्मभ्यं पावकः शिवः भव) तुम्हारी सब रसोंका आकर्षण करनेवाली तेजःस्वरूप ज्वालाको नमस्कार है। तुम्हारे पदार्थप्रकाशक तेज का नमस्कार हो आप की ज्वाला हमसे दूसरोंको तपाओ, हमको शोधक कल्याणकारक हो ॥ ११ ॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड्बर्हिषदे वेड्वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥ १२ ॥

इस क० में ५ म० हैं सबका लोपा० ऋ० छ० १।५ दै० वृ० २, ३, ४, दै० प० और दे० सबका अग्नि है, मन्त्रार्थ-यह अग्नि (नृषदे वेट् अप्सुषदे वेट् बर्हिषदे वेट् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट्) मनुष्योंमें जठराग्नि रूप से स्थित प्राणरूप है उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, सो सम्यक रूपसे गृहीत हो, जो अग्नि समुद्रादि जलके मध्य में वड़वाग्निरूपसे स्थित है, उसको आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि यज्ञीय कुशादिके ऊपर निवास करते हैं, उनकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि वृक्षसमूहमें दावाग्नि रूपसे स्थित है, उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है भलीप्रकार गृहीत हो, अग्नि स्वर्लोकके प्रधान अभिज्ञ सूर्य नामसे प्रसिद्ध है उस की प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १२ ॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ सम्वत्सरीणमुपभागमासते। अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयम्पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १३ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ० नि० ज० छ० प्राण देवता है। मन्त्रार्थ-(ये देवाः अहुतादः अस्मिन् यज्ञे मधुनः घृतस्य हविषः स्वयं पिबन्तु यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः सम्वत्सरीणम् भागं उपासते) जो देवता विना स्वाहाकार किये अन्नको भक्षण करते हैं, वे प्राणरूप देवता इस चयनरूप यज्ञमें मधु घृत अर्थात् मधु घृत दधिरूप हविका भाग स्वयं ही स्वाहाकारके विना पान करें जो कि यजन करनेयोग्य देवताओंके मध्यमें यज्ञयोग्य दीप्तिमान् हैं वे सम्वत्सरमें होने वाले यज्ञके भागका सेवन करते हैं ॥ १३ ॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य । येभ्यो न ऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १४॥

इसका लोपामुद्रा ऋ० आ० ज० छ० प्राण दे० है, मन्त्रार्थ-(ये देवाः देवेषु अधिदेवत्वम् आयन् ये अस्य पुरः एतारः येभ्यः ऋते किंचन धाम न पवते ते न दिवः न पृथिव्याम् स्नुषु अधि) प्राणादि देवताओं ने इन्द्रादि देवताओंमें जो अधिष्ठातृत्व प्राप्त किया है अर्थात् देवगणोंमें प्रधान देवत्व पाया है जो प्राण इस जीवके आगे गमन करते हैं जिन प्राणोंके विना कोई भी शरीर चेष्टा नहीं करसकता वे प्राण न द्युलोकमें न पृथ्वीमें हैं किन्तु प्रत्येक इन्द्रियमें वर्त्तमान हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥ १५ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ० विरा० प० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-प्राणदाः अपानदाः व्यानदाः वर्चोदाः वरिवोदाः अस्माकं पावकः शिवः भव ते हेतयः अस्मत् अन्यान् तपन्तु) हे अग्ने ! तुम प्राण देनेवाले अपान देनेवाले सर्वशरीरवर्त्ती व्यानवायु देनेवाले बलदाता धनके देनेवाले होओ, हमको शोधक कल्याणकारी होओ ज्वालारूप आयुध हमसे दूसरोंको ताप देयँ ॥ १५ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वन्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥

इसका भर० ऋ० नि० गा० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(अग्निः तिग्मेन शोचिषा विश्वं अत्रिणं नियासत् अग्निः नः रयिम् वनते) अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सम्पूर्ण यज्ञविघ्नकारी राक्षसादिको दूर करे अग्नि हमको धन देय ॥१६।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरान् आविवेश ॥ १७ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्वकर्मा ऋ० नि० त्रि० छ० विश्वकर्मा दे० है । मन्त्रार्थ-(यः ऋषिः होता नः पिता इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत् न्यसीदत् सः प्रथमच्छत् आशिषा

द्रविणम् इच्छमानः अवरान् आविवेश) जो अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ संहाररूप होम का कर्त्ता हम सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन करने वाला है जो इन सम्पूर्ण लोकोंका संहार करता हुआ स्वयं स्थित हुआ वह परमेश्वर प्रथम एक अद्वितीय रूपको छादन करता मैं बहुतरूप होकर प्रकट होऊँ इस अभिलाषासे जगद्रूप धनको इच्छा करता हुआ अभिव्यक्त उपाधिवाले मायाके विकार युक्त जीवोंमें प्रवेश कर गया ॥ १७ ॥

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंकतमत्स्वित्कथासीत् । यतो भूमिञ्जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १८ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ० भु० प० छ० विश्वक० देवता है । मन्त्रार्थ—(स्वित् अधिष्ठानम् किम् आसीत् आरम्भणम् कथा कतमत् आसीत् यतः विश्वचक्षाः विश्वकर्मा भूमिम् द्याम् जनयन् महिना विऔर्णोत्) प्रश्न है कि द्यावाभूमिका निर्माण करतेमें इस परमात्माका रहनेका आश्रय क्या था ? घटको बनानेमें मृत्तिकाकी समान उपादानकारणरूप जगन्निर्माणकी सामग्री क्रिया बताने वाली वेदवाणी क्या थी ? जिससे अतीत अनागत वर्त्तमान कालको एकसाथ देखनेवाले विश्वकर्त्ता परमात्मा ने इस विस्तृत भूलोक और द्युलोकको सृजन करके अपनी बड़ी सामर्थ्यसे विशेष आच्छन्न किया है. आप सर्वदर्शी भावसे सर्वत्र विराजमान हैं ॥ १८ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १९ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० ऋषि भु० त्रि० छ० विश्वकर्मा देवता है । मन्त्रार्थ-(विश्वतश्चक्षुः उत विश्वतोमुखः विश्वतोबाहुः उत विश्वतस्पात् एकः देवः द्यावाभूमी जनयन् बाहुभ्याम् सन्धमति पतत्रैः सम्) सब ओर नेत्र वाला और सब ओर मुख वाला सब ओर भुजावाला और सब ओर चरणसे युक्त एक अद्वितीय परमात्मा द्युलोक और भूलोकको अधिष्ठानशून्य होकर प्रकट करता हुआ अपनी भुजाओंसे संयोग को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

किꣳस्विद्वनंक उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदुतद्यदध्यातिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ २० ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० ऋ० भु० त्रि० छ० विश्वक० दे० । मन्त्रार्थ प्रश्न (स्वित् वनम् किम् आस उ, सः वृक्षः कः आस यतः द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः मनीषिणः भुवनानि धारयन् यत् अध्येतिष्ठत् तत् मनसा इत् उ पृच्छत) कहो तो वह कारणरूप वन किस प्रकारका था और वह कार्यरूप वृक्ष कौन था जिस वनवृक्षसे विश्वकर्माने स्वर्ग और पृथ्वी अलंकृत की है हे विद्वानों ! मन का निग्रह करनेवालो ! सब भुवनोंको धारण करते हुए विश्वकर्माने जो स्थान अधिष्ठित किया उसको मनसे आलोचनाकर उस प्रसिद्धको पूछो ॥ २० ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्म्मन्नुतेमा । शिक्षासखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ २१ ॥

इसका भु० वि० ऋ० आर्षी त्रि० छ० विश्व०दे० । मन्त्रार्थ-(स्वधावः विश्वकर्मन् ते या परमाणि या अवमा उत या मध्यमा धामानि इमा धामानि सखिभ्यः आशिक्ष हविषि तन्वम् वृधानः स्वयम् यजस्व) स्वधावान् बहुत अन्नसे युक्त सब जगत् के कर्त्ता ईश्वर आपके जो उत्कृष्ट जो निकृष्ट और जो मध्य श्रेणीके स्थान हैं इन ऊपर नीचे और मध्यके लोकोंको भक्त यजमानों को सब प्रकारसे दीजिये तथा यजमानकी दीहुई हविके उपस्थित होनेमें अपने शरीर को वृद्धिको प्राप्त करते आप ही यजन कीजिये हम यजन करते हैं यह हम कैसे कह सकते हैं कौन मनुष्य तुमको यजन करनेको समर्थ है ? इससे मैं कहता हूँ स्वयं यजन करो ॥ २१ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् । मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकम्मघवा सूरिरस्तु ॥ २२ ॥

इसका भु० वि० ऋ० निचृदा० त्रि० छ० विश्वक० देवता है । मन्त्रार्थ-(विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः पृथिवीम् उत द्यां स्वयं यजस्व अभितः अन्ये सपत्नाः मुह्यंतु इह मघवा अस्माकं सूरिः अस्तु) हे परमात्मन् ! मेरे दिये हुए हविरूप अन्नसे प्रसन्न हुए आप मेरे यज्ञमें पृथिवीके आश्रित जीवोंको और द्युलोकके आश्रित जीवोंको मेरे ऊपर अनुग्रह कर स्वयं ही यजन करो और तुम्हारे प्रसादसे सब ओरसे दूसरे शत्रु वा कामादि मोहको प्राप्त हों इस यज्ञ में इन्द्र यज्ञद्रष्टा ब्रह्मा हमको आत्मज्ञानके उपदेशक हों ॥ २२ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥ २४ ॥

इन दोनोंको व्याख्या अ० ८ म० ४५, ४६ में होगई है ॥ २३ ॥ २४ ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने । यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २५ ॥

इसका भु० वि० ऋ० आ० त्रि० छ० वि० क० देवता है । मन्त्रार्थ-(यदा इत् पूर्वे अन्तः अददृहन्त आत् इत् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् चक्षुषः पिता मनसा धीरः हि एने नम्नमाने घृतम् अजनयत्) जिस समय पूर्वमहर्षियोंने द्यावा भूमिके अन्त- दिशाओंको दृढ़ किया, इसके अनन्तर ही द्यावापृथिवी विस्तारयुक्त हुई तब संपूर्ण ज्योतिको पालन करने वाला मनसे धीर होता ही इन नममान द्यावापृथिवीमें घृत जलको उत्पन्न करता हुआ ॥ २५ ॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः ॥ २६ ॥

इसका भु० वि० ऋ० आर्षी त्रि० छ० विश्वक० दे० मन्त्रार्थ--(यत्र सप्त ऋषीन् परे एकम् आहुः विश्वकर्मा विमनाः आत् विहायाः धाता विधाता उत परमः सन्दृक् तेषाम् इष्टानि इषा सम्मदन्ति) जिस लोकमें सप्त ऋषियोंको विश्वकर्माके साथ एक कहते हैं जिनका जगन्निर्माता श्रेष्ठमन संपूर्ण कर्मका ज्ञाता और आकाश में व्यापक, धारण पोषण स्थिति करने वाला सबका उत्पादक और सबसे उत्कृष्ट परमात्मा सम्यक् देखनेवाला है उस लोक में उन पुरुषोंके अभिलषित वस्तु आहुतिके रसभूत अन्नके संग आनन्दसे मोदयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानान्नामधा एक एव तꣳ सम्प्रश्नम्भुवना यन्त्यन्या ॥ २७ ॥

इसका भु० वि० ऋ० निचृदा० त्रि० छ० विश्वक० दे० मन्त्रार्थ-(यः नः पिता जनिता यः विधाता विश्वा धामानि भुवनानि वेद यः एकः देवानां नामधाः अन्या भुवना संप्रश्नं तं यन्ति) जो विश्वकर्मा परमेश्वर हमारा पालक उत्पादक है जो विशेषकर धारण करनेवाला है संपूर्ण स्थान और प्राणियोंको जानता है जो एक होकर भी देवताओंके अनेक नामोंको धारण करता है और भक्तजन प्रश्नोत्तर करते हुए उन परमात्मामें प्रवेश करते हैं ॥ २७ ॥

त आयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो नभूना । असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ २८ ॥

इसका भु० वि० ऋ० निचृदा० त्रि० छ० विश्वकर्मा दे० मन्त्रार्थ-(ते जरितारः पूर्वे ऋषयः अस्मै द्रविणं समायजन्त नभूना ये असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते इमानि भूतानि सम् अकृण्वन्) वे स्तुति करने वाले विश्वकर्माके रचे पूर्वकालीन ऋषि इस भूत-समूहको जलरूप धन सम्यक् प्रकारसे देते हुए अधिकतासे कामनाको देते हुए, जो ऋषि सत्रह अवयववाले लिंग-शरीरोंसे भली प्रकार प्रेरित अन्तरिक्ष लोक में स्थित हो इन प्राणियोंको रचते हुए २८

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति । कꣳ स्विद्गर्भम्प्रथमन्दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥ २९ ॥

इसका भुव० वि० ऋ० आर्षी त्रि० छ० विश्वकर्मा दे० है । मन्त्रार्थ—(यत् अस्ति दिवः परः एना पृथिव्या परः देवेभिः असुरैः परः स्वित् आपः प्रथमं कं गर्भम् दध्रे कस्वित् यत्र पूर्वे देवाः समपश्यन्त) जो ईश्वरका तत्व हृदयकमलमें विद्यमान है वह द्युलोकसे भी अर्थात् दुर्ज्ञेय है, इस पृथ्वीसे भी दूर है और जलोंने पहले किस के गर्भको धारण किया यह तो देखो कि उसने प्रथम जलको उत्पन्न किया जिस समय उसको प्रथम गर्भमें धारण किया वह गर्भ कैसा आश्चर्यरूप है जहाँ प्रथमके देवता तथा महर्षि जगत्को देखते हुए ॥ २९ ॥

तमिद्गर्भम्प्रथमन्दध्र आपो यत्र देवाःसमगच्छन्त विश्वे । अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ३० ॥

इसका भु०वि० ऋषि, आर्षी त्रि० छ० विश्वकर्मा देवता है। मन्त्रार्थ-(आपः प्रथमं तमित् गर्भं दधिरे यत्र विश्वे देवाः समगच्छन्त अजस्य नाभौ एकं अर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि अधितस्थुः) जलोंने पहले उसको ही गर्भमें धारण किया क्योंकि गर्भ में सम्पूर्ण देवता एकत्र होकर वर्तते हैं उस गर्भका आधार क्या है? जन्मरहित परमेश्वरकी नाभिस्थानीय मध्यमें एक अविभक्त अनन्यभूत किञ्चित् बीजगर्भरूप स्थापित किया जिसमें संपूर्ण भूतसमूह स्थित हुए अर्थात् वह सबका आश्रय है उसका कोई आश्रय नहीं है ॥ ३० ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरम्बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

इसका भु० वि० ऋषि, भु० प० छन्द विश्वकर्मा देवता है । मन्त्रार्थ-[उपदेश करते हैं] (यः इमा जनान् युष्माकं अन्तरम् अन्यत् बभूव तं न विदाथ नीहारेण च जल्प्याः प्रावृताः असुतृपः उक्थशासः चरन्ति) जिस परमात्माने इस सब जगत्को उत्पन्न किया है और जो अहङ्कारादिसे युक्त जीवोंके अन्तरमें, वास्तवमें अहङ्कार को छोड़ने पर जाननेयोग्य ईश्वरतत्त्व है उस को तुम नहीं जानते हो, कारण कि-कुहरसदृश अज्ञानसे और मैं देवता हूँ, मनुष्य हूँ, यह मेरा गृहक्षेत्र है इत्यादि असत् बातों से आच्छादित हुए किसी प्रकार से हो प्राणपोषणकी चिन्तामें लगे ईश्वरतत्त्वके न विचारने वाले परलोकके भोग पानेको सकाम यज्ञोंमें स्तुति करते वे प्राणी विचरते हैं

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः । तृतीयः पिता जनितौषधीनामपाङ्गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥ ३२ ॥

इसका भु० वि० ऋषि, ब्रा० उ० छन्द विश्वकर्मा देवता है । मन्त्रार्थ- ब्रह्माण्डके मध्यगतोंकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माण्डके बीच में प्रथम (विश्वकर्मा देवः अजनिष्ट आत् इत् द्वितीयः गन्धर्वः अभवत्) देव तिर्यक् आदि जगत्का भेद करनेवाला सत्यलोकवासी चतुर्मुख देव प्रादुर्भूत हुआ अर्थात् आदित्यके अन्तर पुरुष-रूपसे प्रकट हुआ

अनन्तर दूसरी सृष्टिमें गन्धर्व पृथ्वीको धारण करने वाला अग्नि अथवा गानविद्या में चतुर देवयोनि प्रकट हुआ (तृतीयः ओषधीनां जनिता पिता अपां गर्भम् पुरुत्रा व्यदधात्) तीसरा ओषधियोंका उत्पादक पालक पर्जन्यरूप हुआ वह पर्जन्य उत्पन्न होते ही आहुतिके परिणामभूत जलोंके गर्भ को बहुत प्रकारसे धारण करता हुआ ।३२।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनो निमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ ३३ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छन्द इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(आशुः शिशानः वृषभः न भीमः घनाघनः चर्षणीनां क्षोभणः संक्रन्दनः अनिमिषः एकवीरः इन्द्रः साकम् शतꣳसेनाः अजयत्) शीघ्रगामी वज्रतीक्ष्ण-कारी वर्षनेके स्वभावको उपमा वाला भय-कारी शत्रुओंका अतिशय घातक मनुष्योंके क्षोभका हेतु वारम्वार गर्जना करने वाला देवता होनेसे पलक न लगाने वाला, अत्यंत सावधान, अद्वितीय वीर इन्द्र एक साथ ही सौ २ शत्रुसेनाका जीतता हुआ ॥३३॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३४ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ०, विराड् ब्रा० छ० इंद्र देवता है, मन्त्रार्थ-(युधः नरः धृष्णुना संक्रन्दनेन युत्कारेण अनिमिषेण इषुहस्तेन जिष्णुना दुश्च्यवनेन वृष्णा इन्द्रेण तत् जयत तत् सहध्वम्) हे युद्ध करने वाले मनुष्यों! प्रगल्भ भयरहित शब्द करनेवाले बहुत युद्ध करने वाले, एकचित्त, हाथमें बाण धारण किये, जयशील, अजेय, काम-नाओंके वर्षाने वाले, इन्द्रके प्रभावसे उस शत्रुसेनाका जय करो और उस सेनाका वशमें करके विनष्ट करो ॥ ३४ ॥

स इषुहस्तैस्सनिषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा सयुध इन्द्रो गणेन। सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छन्द इन्द्र देवता है, मन्त्रार्थ-(सः वशी इषुहस्तैः निषङ्गिभिः संस्रष्टा सः गणेन युधः सः इंद्रः ससृष्टजित् सोमपाः बाहुशर्धी उग्रधन्वा

प्रतिहिताभिः अस्ता) वह जितेन्द्रिय बाण हाथमें लिये, धनुषधारियोंसे युद्धके निमित्त संसर्ग करने वाला वह शत्रु समूहोंसे युद्ध करने वाला है, वह इंद्र युद्धके निमित्त इकट्ठे हुए शत्रुओंका जीतने वाला, यजमानोंके यज्ञ में सोमपान करने वाला, बाहुओंके बलसे युक्त, उत्कृष्ट धनुष वाला, अपने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुओं पर चलता है, वह इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥ ३५ ॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्रान् अपबाधमानः । प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ३६ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छन्द बृह० दे० है। मन्त्रार्थ—(बृहस्पते रक्षोहा रथेन परिदीया अमित्रान् अपबाधमानः सेनाः प्रभञ्जन् युधा प्रमृणः जयन् अस्माकं रथानां अविता एधि) "वाग्वै बृहती" वाणी के पति व्याकरणकर्त्ता होनेसे इन्द्रका नाम बृहस्पति है अथवा उनके पुरोहित बृहस्पति का सम्बोधन है हे बृहस्पते ! तुम राक्षसों के नष्ट करने वाले हो, रथके द्वारा सब ओर गमन करते शत्रुओंको पीड़ा देते हुए शत्रुओंकी सेनाका अतिशय पीड़ा करते हुए युद्धसे हिंसा-कारियोंको जय करते हुए हमारे रक्षक हूजिये ॥ ३६ ॥

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरस्सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः । अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ३७ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छन्द इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(इन्द्र बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी उग्रः अभिवीरः अभिसत्वा सहोजाः गोवित् सहमानः जैत्रम् रथम् आतिष्ठ) हे इन्द्र ! तुम दूसरोंका बल जानने वाले, पुरातन, सबके अनुशासन करने वाले, अतिशय शूर, महाबलिष्ठ अन्नवान् युद्धमें क्रूर सब ओर वीरों से युक्त सब ओर परिचारकोंसे युक्त बलसे ही उत्पन्न स्तुतिका जानने वाले शत्रुओंके तिरस्कार-कर्ता हो अपने जयशील रथमें आरोहण करो ॥ ३७ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुञ्जयन्तमज्मप्रमृणन्तमोजसा इमꣳ सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनुसꣳरभध्वम् ॥ ३८ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ०, भु०गा०छ०,इन्द्र दे० है। मन्त्रार्थ-(सजाताः सखायः इमम् गात्रभिदं गोविदं वज्रबाहुम् अजम जयन्तम् आजसा प्रमृणन्तम् इन्द्रम् अनुवीरयध्वम् अनुसंरभध्वम्) हे समान जन्मवाले देवताओं! इस असुरकुलके नाशक वेदवाणी के ज्ञाता पण्डित हाथमें वज्र धारण करने वाले संग्रामके जीतनेवाले बलसे शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रका वीरकर्मका उत्साह दिलाओ और इस वेग करने वालेके उपरांत तुम वेग करो ॥ ३८ ॥

अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुद्ध्यो-स्माकꣳ सेना अवतु प्रयुत्सु ॥ ३९ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ० नि० त्रि० छ० इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(अदयः वीरः शतमन्युः दुश्च्यवनः पृतनाषाट् अयुध्यः इन्द्रः युत्सु गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः अस्माकम् सेनाः प्रावतु) शत्रुओं पर दयारहित विक्रांत अनेक प्रकारके क्रोधयुक्त जिसको कोई च्यावित न कर सके अजेय संग्राममें सेनाका सहकर तिरस्कार करनेवाला जिस के संग कोई युद्ध नहीं कर सकता सो इन्द्र युद्धमें असुरकुलोंको एकसाथ ही विलोड़ित करता हुआ हमारी सेनाकी रक्षा करे ३९

इन्द्र आसान्नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्ज-यन्तीनाम्मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ० ब्राह्मय० छ० इन्द्रादय दे० है। मंत्रार्थ-(बृहस्पतिः इन्द्रः आसाम् अभिभञ्जतीनाम् जयन्तीनाम् देवसेनानाम् नेता यज्ञः सोमः दक्षिणा पुरः एतु मरुतः अग्रं यन्तु) बृहस्पति इन्द्र इन शत्रुओं को मर्दन करनेवाली विजयशील देवसेनाओंके शिक्षक हैं यज्ञपुरुष विष्णु सोम दक्षिणा आगे गमन करें गणदेवता सेनाके अग्रभागमें गमन करें ॥ ४० ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्य-वानां घोषो देवानाञ्जयतामुदस्थात् ॥ ४१ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ० आ० त्रि० छ० इन्द्रादि देवता है। मन्त्रार्थ-(महामनसाम्

भुवनच्यवानां जयतां देवानां आदित्यानां मरुतां वृष्णः इन्द्रस्य राज्ञः वरुणस्य उग्रम् शर्धः घोषः उदस्थात्) महानुभाव लोक-नाशकसामर्थ्य वाले विजय पानेवाले देवता आदित्य मरुत् कामनाकी वर्षा करने वाले इन्द्र और राजा वरुणको उग्रसेनाका जय शब्द प्रकट हुआ ॥ ४१ ॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाꣳसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥

इसका अप्र० ऋ० ब्रा० उ० छ० इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ-(मघवन् आयुधानि उद्धर्षय) हे इन्द्र ! अपने शस्त्रोंको भली प्रकार हर्षित करो (मामकानां सत्वानां मनांसि उत्) मेरे वीरोंके मनोंको हर्षित करो । (वृत्रहन् वाजिनां वाजिनानि उत्) हे वृत्रनाशक ! घोड़ोंकी शीघ्र गतियोंको उत्तम करो (जयतां रथानां घोषाः उद्यन्तु) विजय-शील रथोंके जयघोष उच्चारण किये जायँ ॥ ४२ ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् उ देवा अवताहवेषु ॥ ४३ ॥

इसका अप्र० ऋ० नि० आ० त्रि०छ० इन्द्रादि दे० है । मन्त्रार्थ-(ध्वजेषु सम्भृतेषु इन्द्रः अस्माकम् अस्माकम् याः इषवः ताः जयन्तु) पताकाओं से पताकाओं के मिलने पर इन्द्र हमारी रक्षा करें और हमारे जो बाण हैं वह शत्रुओंको नष्ट करने में जय पावें (अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु) हमारे शूर शत्रुओंके वीरोंसे उत्तम हों (उ देवाः आहवेषु अस्मान् अवत) और देवता संग्रामों हमारी रक्षा करें ॥ ४३ ॥

अमीषाञ्चित्तम्प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि । अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥

इसका अप्र० ऋ० ब्रा०उ० छ० इन्द्रादय देवता है । मन्त्रार्थ-(अप्वे अमीषाम् चित्तं प्रतिलोभयन्ती अंगानि गृहाणा परेहि अभिप्रेहि) हे शत्रुओंके प्राणोंको कष्ट देने वाली व्याधि ! इन वैरियोंके चित्तको मोहित करती हुई और वैरियोंके शरीरोंको ग्रहण करती हुई दूर चली जा, सब ओरसे शत्रुओं को पकड़ कर चल (हृत्सु शोकैः

निर्दह) उनके हृदयोंको शोकोंसे दग्ध कर (अमित्राः अंधेन तमसा सचन्ताम्) हमारे वैरी गाढ अन्धकारसे व्याप्त हों ॥ ४४ ॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥

इसका अप्र० ऋ० आ० अ० छ० इषु देवता है। मन्त्रार्थ-(ब्रह्मशंसिते शरव्ये अवसृष्टा परापत) वेदमंत्रोंसे तीक्ष्ण किये हुए हे बाणरूप ब्रह्मास्त्र ! हमारे छोड़े हुए तुम वैरीसेना पर गिरो (अमित्रान् गच्छ प्रपद्यस्व) वैरियों पर पहुँचो और उनके शरीरोंमें प्रवेश करो (अमीषां कञ्चन मा उच्छिषः) इनमेंसे किसीको भी शेष न छोड़ो

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ४६

इसका अप्र० ऋ० त्रि० आ० अ० छ० योधा दे० है। मंत्रार्थ-(नरः प्रेत जयत) हे हमारे वीरपुरुषों वैरिसेनाके ऊपर शीघ्र जाओ और जय पाओ (इन्द्रः वः शर्म यच्छतु) इन्द्र तुमको विजयरूप सुख दें। (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारे भुजदंड शस्त्र उठानेमें समर्थ हों (यथा अनाधृष्याः असथ) जिस प्रकार कि—तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ ॥ ४६ ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यन्न जानन् ॥ ४७ ॥

इसका अप्र० ऋ० त्रि० आ० त्रि० छ० मरुत् देवता है। मन्त्रार्थ—(मरुतः या असौ परेषाम् सेना ओजसा स्पर्धमाना नः आ-अभ्यैति ताम् अपव्रतेन तमसा गूहत यथा अमी अन्योन्यम् न जानन्) हे मरुत् देवताओं ! जो यह वैरियोंकी सेना बलसे ईर्षा करती हुई हमारे सामनेको आरही है उसको अकर्मण्यभावके अन्धकारसे ढकदो कि-जिसमें वह वैरिसेनाके पुरुष एक दूसरे को न पहिचानें और परस्पर शस्त्र चला कर नष्ट होजायँ ॥ ४७ ॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव। तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥

इसका अप्र० ऋ० पंक्ति छ० बृहस्पति अदिति देवता है। मन्त्रार्थ-(यत्र बाणाः

विशिखाः कुमारा इव सम्पतन्ति) जिस युद्धमें वैरीके चलाये हुए वाण फैली हुई शिखा वाले बालकोंकी समान गिरते हैं। (तत् बृहस्पतिः अदितिः इन्द्रः नः शर्म यच्छतु) उस युद्धमें बृहस्पति अदिति और इन्द्र हमको विजय सुखदें (विश्वाहा शर्म यच्छतु) वह सकल वैरियोंका नाशक कल्याण दें ॥ ४८ ॥

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तन्त्वानु देवा मदन्तु ॥ ४९ ॥

इसका अप्र० ऋ० त्रि० छन्द सोम वरुण देवता हैं। मंत्रार्थ—(ते मर्माणि वर्मणा छादयामि) पुरोहित कहता है, कि-हे यजमान ! तेरे मर्मस्थानोंको कवचसे ढकता हूँ (राजा सोमः त्वा अमृतेन अनुवस्ताम्) ब्राह्मणोंका राजा सोम तुझको मृत्युको हटाने वाले कवचसे आच्छादन करे (वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु) वरुण तेरे कवचको बड़ेसे बड़ा करे (देवाः जयन्तम् त्वा अनुमदन्तु) अन्य देवता विजय पाते हुए तुझको उत्साहित करें ॥

उदेनमुत्तरान्नयाग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च बहुङ्कृधि ॥५०॥

इसका अप्र० ऋ० अनु० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(घृतेन आहुत अग्ने एनम् उत्तराम् नय) होम करता हुआ कहे कि-हे घृतसे तृप्त अग्ने ! इस यजमानको ऐश्वर्य वा मनकी उत्तमता पर पहुँचाओ (रायस्पोषेण संसृज) धनकी पुष्टिसे युक्त करो (च प्रजया बहुम् कृधि) और पुत्रपौत्र आदि सन्तानसे बहुत कुटुंबवाला करो ॥

इन्द्रेमम्प्रतरान्नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानाम्भागदा असत् ५१

इसका अप्र० ऋ० अनु० छन्द इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(इन्द्र इमम् प्रतराम् नय) हे इन्द्र ! इस यजमानका बड़े ऐश्वर्य पर पहुँचाओ (सजातानां वशी असत्) ज्ञातिवालोंको वशमें करनेवाला हो (एनम् वर्चसा संसृज) इसको तेजसे संयुक्त करो (देवानाम् भागदा असत्) देवताओंको भाग देनेवाला हो ॥ ५१ ॥

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम् । तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयञ्च ब्रह्मणस्पतिः ५२

इसका अप्र० ऋ० अनु० छ० लिङ्गोक्त देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने यस्य गृहे हविः कुर्मः तम् त्वम् वर्धय) हे अग्निदेव ! जिसके घरमें पुरोडाशका हवि करते हैं,

उस यजमानको तुम बढाओ (देवाः तस्मै अधिब्रुवन्) देवता उस यजमानको सब से अधिक कहें (अयं ब्रह्मणः पतिः च) यह यजमान वैदिक कर्मका स्वामी भी हो

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः। स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः॥

इसकी व्याख्या १२ वें अध्यायके ३१ वें मन्त्रमें होगई ॥ ५३॥

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिन्दुर्मतिम्बाधमानाः। रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥ ५४ ॥

इसका अप्र० ऋ० त्रि० छ० दिक् देवता है। मन्त्रार्थ—(दैवीः पञ्च देवीः दिशः अमतिम् दुर्मतिम् अपबाधमानाः रायस्पोषे यज्ञपतिम् आभजन्तीः यज्ञम् अवन्तु) इन्द्र यम वरुण सोम और ब्रह्मासे सम्बन्ध रखने वाली पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण और मध्य यह पाँच दिशाएँ हमारी बुद्धिकी मन्दता और पाप बुद्धिको नष्ट करती हुई और धनकी पुष्टिमें यजमानको भागी करती हुई हमारे यज्ञकी रक्षा करें। (यज्ञः रायः पोषे अधि अस्थात्) हमारा यज्ञ धनकी पुष्टिमें अधिक वृद्धि पावे ।५४।

समिद्धे अग्नावधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीत। तप्तं घर्मम्परिगृह्या यजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

इसका अप्र० ऋ० त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(देवाः यत् तप्तम् घर्मम् परिगृह्य यज्ञम् अयजन्त ऊर्जा अयजन्त ईड्यः उक्थपत्रः गृभीतः मामहानः अग्नौ समिद्धे अधि) ब्रह्मा आदि के स्थानमें वरण किये हुए अध्वर्यु आदि जब प्रज्वलित [३७ वें अध्यायमें वर्णित] प्रवर्ग्य को ग्रहण करके यज्ञ पुरुषका पूजन करते हैं और जब हविरूप अन्नसे यजन करते हैं तब स्तुतिके योग्य यज्ञ उक्थ शस्त्रवाला यज्ञ प्राप्त होता है, देवताओंका परमपूजक यजमान अग्निके प्रज्वलित होनेपर तेजस्वी होता है ॥ ५५ ॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः। परिगृह्य देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥ ५६ ॥

इसका अप्र० ऋ० बृह० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्र) हवि देनेके द्वारा देवताओंकी सेवा करने वाला यजमानमें मन रखनेवाला भक्तोंको धन देनेके निमित्त मन करनेवाला दूध आदि सैंकड़ों प्रकारकी सामग्री वाला यज्ञ देवताओंके हितकारी वर्षा आदिके द्वारा वा यज्ञके द्वारा जगत्का रक्षक हमारी दी हुई प्रीति पर हविको स्वीकार करने वाले अग्निके निमित्त होता है (देवाः परिगृह्य यज्ञम् आयन्) ऋत्विज् उस अग्निको पाकर यज्ञ को प्राप्त करते हैं (देवाः देवेभ्यः अध्वर्यन्तः अस्थुः) दीप्तिमान् ऋत्विज् देवताओंके निमित्त यज्ञ करनेकी इच्छासे स्थित होते हैं ॥ ५६ ॥

वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति। ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥

इसका अप्र० ऋ० बृह० छ० हविर्यज्ञ देवता है। मन्त्रार्थ—(तुरीयः यज्ञः यत्र हव्यम् वीतं शमिता यजध्यै शमितं हविः एति ततः आशिषः वाका नः जुषन्ताम्) चौथा यज्ञ जिसमें हवनयोग्य देवताओंके प्रिय और परमशान्तरूप अध्वर्यु के द्वारा हवन करनेके निमित्त संस्कार किया हुआ हवि प्राप्त होता है, उसमें यज्ञसे उठे हुए अभीष्ट अर्थके कहने वाले तीनों वेदोंके वचन हमको फलीभूत हों ॥ ५७ ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयान् अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ ५८ ॥

इसका अप्र० ऋ० त्रि० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(सूर्यरश्मिः हरिकेशः सविता ज्योतिः पुरस्तात् उदयान्) सूर्य जिसकी किरण हैं, कनकवर्ण ज्वालारूप केशवाला प्राणियोंको अपने २ व्यापारमें लगाने वाला ज्योतिरूप अग्नि पूर्व दिशासे प्रकट होता है (गोपाः विद्वान् पूषा तस्य प्रसवे विश्वा भुवनानि सम्पश्यन् अजस्रम् याति) धर्मरक्षक विद्वान् सूर्य उस ब्रह्मज्योतिकी आज्ञामें रहकर सकल भुवनोंको देखता हुआ निरन्तर चलता है ॥ ५८ ॥

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरञ्च केतुः ॥ ५९ ॥

इसका विश्वावसु ऋ० त्रि० छन्द आदित्य देवता है, मन्त्रार्थ-(एषः विमानः दिवः मध्ये आस्ते) यह जगत्को रचनेकी शक्तिवाला सूर्य स्वर्गके मध्यमें स्थित है। (रोदसी अन्तरिक्षं आपप्रिवान्सः विश्वाचीः घृताचीः अभिचष्टे) पृथिवी स्वर्ग और अंतरिक्षको सब ओर तेजसे परिपूर्ण करता हुआ वह सूर्यवेदी और स्रुवेको देखता है, (पूर्वं अपरं अन्तरा केतुं च) इस लोक और अन्य लोकोंमें स्थित मनुष्योंके चित्त को भी जानता है ॥ ५९ ॥

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश । मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ६० ॥

इसका अप्र० ऋ० त्रि० छ० आदित्य देवता है। मन्त्रार्थ-(उक्षा समुद्रः अश्मा सुपर्णः दिवः मध्ये निहितः पृश्निः अरुणः पूर्वस्य पितुः योनिं आविवेश विचक्रमे) वर्षासे सींचने वाले ओससे गीला करने वाले आकाश में व्याप्त श्रेष्ठ गति वाले द्युलोकमें स्थित विचित्रवर्ण अनेकों प्रकार की किरणोंसे व्याप्त उदयके समय अरुणवर्ण सूर्यने पूर्व दिशाके विषे स्वर्गस्थानमें प्रवेश किया और विचरण किया (रजसः अन्तौ पाति) वह ब्रह्माण्डकी सब ओरसे रक्षा करता है ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसङ्गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥

इसकी व्याख्या अ० १२ मन्त्र ५६ में होचुकी है ॥ ६१ ॥

देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाꣳ आ च वक्षत् ६२

इसका विधृति ऋ० अनु० छ० यज्ञ देवता है। मन्त्रार्थ-(देवहूः यज्ञः आवक्षत् च यक्षत्) देवताओंको बुलाने वाला यज्ञ देवताओं को बुलावे और यजन करे। (सुम्नहूः यज्ञः आवक्षत्) धन पुत्र आदि सकल सुखोंको प्रकट करने वाला यज्ञ देवताओंको बुलावे (च देवः अग्निः देवान् आवक्षत् च) और देवता अग्निदेवताओं को आह्वान करे और यजन करे ॥ ६२ ॥

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अथा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराꣳ अकः ॥

इसका विधृति ऋ० अनु० छ० इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(इन्द्रः वाजस्य प्रसवः उद्ग्राभेण मा उदग्रभीत्) इन्द्र अन्नकी उत्पत्ति और दानके द्वारा मुझको अनु-

गृहीत करे (अधा निग्राभेण मे सपत्नान् अधरान् अकः) और मेरे शत्रुओंको माँगने की इच्छासे नीचा करे ॥ ६३ ॥

उदग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवा अवीवृधन् । अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम्

इसका विधृति ऋ० अनु० छ०, इन्द्राग्नी, दे० हैं । मन्त्रार्थ-(देवाः उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म अवीवृधन) देवता हमको बड़ाई और हमारे शत्रुओंको निन्दा और यज्ञसाधक वेदोंको वृद्धि दें) अधा इन्द्राग्नी मे सपत्नान् विषूचीनान् व्यस्यतां) और इन्द्र तथा अग्निदेवता मेरे शत्रुओंको अनेक गतिवाला करके विनष्ट कर दें ॥ ४॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः । दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥

इसका विधृति ऋ० अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(उख्यं हस्तेषु बिभ्रतः अग्निना नाकं क्रमध्वम्) हे ऋत्विजो ! उखापात्रमें संस्कारकी हुई अग्निको हाथों पर धारण करते चित्य अग्निके साथ स्वर्गलोकको जाओ (दिवः पृष्ठम् स्वः गत्वा देवेभिः मिश्राः आध्वम्) स्वर्गके ऊपर ब्रह्मलोकमें जाकर देवताओंके साथ होकर स्थित होओ ॥ ६५ ॥

प्राचीमनुप्रदिशम्प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह । विश्वा आशा दीद्यानो विभाह्यूर्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

इसका विधृ० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(अग्ने विद्वान् प्राचीम् प्रदिशं अनु प्रेहि) हे उखापात्र में स्थित अग्ने ! अपने अधिकारको जानने वाले तुम श्रेष्ठ दिशाकी ओरको ध्यान देकर जाओ (इह अग्ने पुरः भव) यहाँ अग्नि के अग्रगामी बनो (विश्वाः आशाः दीद्यानः बिभाहि) सकल दिशाओंको प्रकाशित करते हुए विशेष प्रदीप्त होओ (नः द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि) हमारे पुत्रादि परिवार और गौ आदि पशुओंको अन्न दो ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्

इसका विधृ० ऋ०, पिपीलिकामध्या बृहती छ०, अग्नि दे० है, मन्त्रार्थ-(अहं पृथिव्याः अन्तरिक्षं आरुहम्) मैं यजमान पृथ्वी से ऊँचा होता हुआ अन्तरिक्ष पर चढ़ा हूँ (अन्तरिक्षात् दिवं आरुहम्) अन्तरिक्षसे उपर स्वर्गलोकमें चढ़ गया

हूँ (अहं दिवः नाकः पृष्ठात् स्वः ज्योति अध्यगाम्) मैं स्वर्गके दुःखरहित स्थान से ऊपर सूर्यमण्डलको प्राप्त हुआ हूँ ॥६७॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याथ्ं रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये विश्वतोधारथ्ं सुविद्वाꣳसो वितेनिरे ॥

इसका विधृ० ऋ०, अनु० छंद, अग्नि देवता है । —मन्त्रार्थ-(ये, सुविद्वांसः विश्वतोधारम् यज्ञम् वितेनिरे रोदसी द्याम् आरोहन्ति स्वर्यन्तः नः अपेक्षन्ते) जो भक्तिज्ञानसे सम्पन्न योगीजन सब जगत्का धारण करने वाले यज्ञको करते हैं, जरा मृत्यु शोक आदिको राकने वाले स्वर्ग पर चढ़ते हैं और स्वर्ग में गमन करते हुए कृतकृत्य होनेसे पुत्र पौत्रादि की अपेक्षा नहीं करते हैं ॥ ६८ ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयताञ्चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् । इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥

इसका विधृ० ऋ० त्रि० छं० अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(अग्ने देवयतां प्रथमः देवानां उत, मर्त्यानाम् चक्षुः प्रेहि (हे अग्ने ! तुम देवताओंके चाहने वाले यजमानोंमें मुख्य हो तथा देवता और मनुष्योंके चक्षुरूप हो इस कारण आओ) इयक्षमाणः भृगुभिः सजोषा यजमानाः स्वस्ति स्वः यंतु, यज्ञ करनेकी इच्छावाले और महात्मा ब्राह्मणोंके साथ प्रीति करने वाले यजमान कल्याणपूर्वक स्वर्गलोकको जायँ । ६९ ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकं समीची । द्यावा क्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारन्द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या १२ वें अ० के २ मन्त्रमें होगई ॥ ७० ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतन्ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥ ७१ ॥

इसका विधृ० ऋ०, वि० पंक्ति छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(सहस्राक्ष शतमूर्धन् अग्ने ते शतं प्राणाः सहस्रं, व्यानाः त्वं, सहस्रस्य रायः ईशिषे) हे अनन्तनेत्र और अनन्तमूर्धा वाले अग्ने ! आपके सैंकड़ों प्राण हैं सहस्रों व्यान हैं, तुम

अनन्त धनके स्वामी हो (तस्मै ते वाजाय विधेम स्वाहा) ऐसे यज्ञस्वरूप आपको हम हवि देते हैं श्रेष्ठ होम हो ॥ ७१ ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशमुद्दृꣳह ॥ ७२ ॥

इसका विधृ०ऋ०, पंक्ति छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(सुपर्णः गरुत्मान्, असि) हे अग्ने! तुम श्रेष्ठ परों वाले पक्षीरूप हो (पृथिव्या पृष्ठे सीद) पृथ्वी के ऊपर स्थित होओ (भासा अन्तरिक्षं आपृण) कान्ति से अन्तरिक्ष को पूर्ण करो (ज्योतिषा दिवं उत्तभान) अपनी ज्योति से द्युलोकको ऊँचा ठहराओ (तेजसा दिशः उद्दृꣳह) अपने तेज से दिशाओं को दृढ़ वा दीप्त करो ॥ ७२ ॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ७३ ॥

इसका विधृ० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अग्ने आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तात् स्वं साधुया योनिं आसीद) हे अग्ने ! आवाहन किये हुए तुम प्रसन्नमुख होकर पूर्व दिशामें अपने श्रेष्ठ स्थान पर स्थित हूजिये विश्वे देवाः यजमानः च अस्मिन् उत्तरस्मिन् सधस्थे अधिसीदत) हे विश्वेदेवाओं तुम और यजमान इस परमश्रेष्ठ अग्निके साथ उत्तम स्थानरूप यज्ञशालामें स्थित होओ ॥ ७३ ॥

ताꣳसवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाꣳ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥

इसका कण्व ऋ०, त्रि० छ०, सविता दे० है। मन्त्रार्थ-(वरेण्यस्य सवितुः तां चित्रां विश्वजन्यां सुमतिं, अहं आवृणे) प्रार्थनायोग्य प्रेरक ईश्वरकी उस अनेकों प्रकारके फल देनेमेंसमर्थ सर्वहितकारिणी श्रेष्ठ बुद्धिको मैं स्वीकार करता हूँ (कण्वः अस्य यां प्रपीनां सहस्रधारां पयसां महीं गां अदुहत्) ज्ञानीने इस प्रेरक परमात्मा की जिस अतिपुष्ट अनन्तधारावाली अमृत द्वारा सर्वसिद्धि देनेवाली बुद्धिको दुहा ७४

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे। यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तम्प त्वे हवीꣳषि जुहुरे समिद्धे ॥ ७५ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि०छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(अग्ने परमे जन्मन् ते विधेम) हे अग्ने ! परमोत्तम जन्म वाले स्वर्गमें तुम्हारे निमित्त हवि देते हैं (अवरे सधस्थे स्तोमैः विधेम) उससे नीचे अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे स्थितको स्तोत्र पढ़कर हवि देते हैं (यस्मात् योनेः उदारिथ तं यजे) क्योंकि तुम इष्टका चिति-रूप स्थानमें प्रकट हुए हो, उन आपको मैं पूजता हूँ (समिद्धे त्वे हवींषि जुहुरे) और इसी कारण भलीप्रकार प्रज्वलित तुम्हारे विषैं ऋत्विज् हवियोंको होमते हैं ॥ ७५ ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वाꣳ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, त्रि० अ० छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(यविष्ठ अग्ने अजस्रया सूर्म्या प्रेद्धः नः पुरः दीदिहि) हे अतितरुण अग्निदेव ! अखण्ड लाटों वाली ज्वालासे अत्यन्त प्रकाशवान् तुम, हमारे आगे प्रदीप्त होओ (शश्वन्तः वाजाः त्वाम् उपयन्ति) निरन्तर होने वाले अन्नरूप हवि तुमको अर्पित होते हैं ॥ ७६ ॥

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रꣳ हृदि स्पृशम् । ऋध्या मा त ओहैः ॥७७॥

इसकी व्याख्या १५ वें अध्यायके ४४ वें मंत्रमें होगई ॥ ७७ ॥

चित्तिञ्जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतहोत्रा ऋतावृधः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्म्मणे विश्वाहादाभ्यꣳ हविः ॥ ७८ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, अतिजगती छ०, विश्वकर्मा दे० है मंत्रार्थ-(मनसा घृतेन चित्तिं जुहोमि) मन लगाकर घृतके द्वारा इस चितिमें स्थित अग्निको आहुति देकर प्रसन्न करता हूँ (यथा इह, वीतहोत्राः ऋतावृधः देवाः आगमन्) जिस प्रकार इस यज्ञमें आहुतिकी अभिलाषा वाले सत्य वा यज्ञके वृद्धिकर्त्ता देवता प्रकट हों (विश्वाहाः भूमनः विश्वस्ये, पत्ये विश्वकर्मणे अदाभ्यम् हविः जुहोमि) सकल दिनोंमें महान् जगत्पति जगदुत्पादक के निमित्त स्वादयुक्त हवि देते हैं ७८

सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्त ऋषयस्सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्रास्सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥

इसका सप्तर्षि ऋ०, त्रि०, छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने सप्त समिधः) हे अग्ने! आपकी शमी आदि सात समिधा हैं (सप्त जिह्वाः) सात ज्वालारूप जिह्वा हैं (सप्त ऋषयः) सात ऋषि हैं (सप्त प्रियाणि, धाम) सात गायत्री आदि छन्द रूप प्रियधाम हैं (सप्त होत्रा त्वा सप्तधा यजन्ति) सात होता तुमको अग्निष्टोम आदि सात प्रकारके यज्ञोंसे पूजते हैं (सप्त योनीः घृतेन आपृणस्व स्वाहा) तुम सात चितियोंको घृतसे पूर्ण करो, श्रेष्ठ होम हो ॥ ७९ ॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यꣳहाः ८०

इसका सप्तर्षि ऋ०, उष्णिक् छं०, मरुत् देवता। मंत्रार्थ-(शुक्रज्योतिः च चित्रज्योतिः च सत्यज्योतिः च ज्योतिष्मान् च शुक्रः च ऋतपा च अत्यꣳहा) शुद्ध तेजस्वी, विचित्र ज्योतिवाले सत्यप्रकाशमय ज्योति वाले दीप्तिमान् सत्य वा यज्ञ की रक्षा करने वाले और पापोंसे रहित मरुत्गण हमारे यज्ञमें आवें ॥ ८० ॥

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च। मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥ ८१ ॥

इसका सप्तर्षि ऋ०, गाय० छं०, मरुत् दे० है। मन्त्रार्थ-(ईदृक्, च अन्यादृक् च सदृक् प्रतिसदृक् च मितः च संमितः च सभरा) इस पुरोडाशको देखनेवाले और दूसरे पुरोडाशको देखनेवाले समान दृष्टि और प्रत्येकको समान देखने वाले और मानको प्राप्त और सम्यक् एकीभाव से मानको प्राप्त और समान-भाव को धारण करने वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञ में आवें ॥ ८१ ॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च। धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि ऊपरके मंत्रकी समान हैं। मंत्रार्थ-(ऋतः च सत्यः च ध्रुवः च धरुणः च धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः) सत्यस्वरूप, सत्वस्तुमें प्रकट और स्थिर तथा धारणकर्त्ता, धर्त्ता और विशेष धारण करने वाले और विविधप्रकारसे धारण करनेवाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवें॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ।८३।

इसका सप्त० ऋ०, उष्णि० छ०, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ (ऋतजित् च सत्यजित् च सेनजित् च सुषेणः च अन्तिमित्रः च दूरेमित्रः च गणः) यज्ञको जीतनेवाले और सत्यको जीतनेवाले एवं शत्रुसेनाको जीतनेवाले और श्रेष्ठ सेना वाले मित्रोंके समीप रहने वाले और शत्रुओंसे दूर रहने वाले और सबको गिननेवाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवें ॥ ८३ ॥

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊषुणः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन । मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥

इसका सप्त ऋ०, जगती छं०, मरु० दे० है। मंत्रार्थ-(ईदृक्षासः उ एतादृक्षासः उ सदृक्षासः उ प्रतिसदृक्षासः न मितासः उ सम्मितासः उ सरभसः मरुतः अद्य नः अस्मिन् यज्ञे एतन) इस लक्षणको देखने वाले और इस प्रकारसे देखने वाले और समान देखने वाले और भलीप्रकार देखने वाले और प्रत्येकको देखने वाले और प्रमाणयुक्त और इकट्ठे होकर प्रमाण करने वाले आदर पाने वाले मरुत्देवता आज हमारे इस यज्ञमें आवें ॥ ८४ ॥

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥

इसका सप्तऋ०, स्वराडगा० छ०, मरु० दे० है। मंत्रार्थ--(स्वतवान् च प्रघासी च सान्तपनः च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी च उज्जेषी) स्वाधीनबलयुक्त और पुरोडाश भक्षण करने वाले और शत्रुओंको ताप देने वाले और गृहधर्मसे युक्त और सदा क्रीड़ा करने वाले और समर्थ और सदा जयशील मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवें ॥ ८५ ॥

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ।

यह विमुख नामक मन्त्र अध्याय ३९ का ७ वाँ मन्त्र है, प्रसङ्ग-वश इसकी व्याख्या भी यहाँकी जाती है। मंत्रार्थ- (उग्रः च भीमः च ध्वान्तः च धुनिः च सासह्वान् च अभियुग्वा स्वाहा) उत्कृष्ट और भयंकर और शत्रुओंको अन्धा करने वाले और शत्रुओंको कँपाने वाले और शत्रुओंको हराने वाले भक्तोंको सुख देने

वाले और शत्रुओंको हटाने वाले इन मरुत् गणोंको आहुति दीजाती है श्रेष्ठ होम हो।

इन्द्रन्दैवीर्विशो मरुतोनुवर्त्मानोभवन्यथेन्द्रन्दैवीर्विशो मरुतोनुवर्त्मानोभवन्। एवमिमं यजमानन्दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

इसका सप्त० ऋ० शक्वरी छ०, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ (दैवीः मरुतः विशः इन्द्रम् अनुवर्त्मानः अभवन्) देवसम्बन्धी मरुत्-रूप प्रजा इन्द्रकी अनुगामिनी हुई (यथा दैवीः मरुतः विशः इन्द्रं अनुवर्त्मानः अभवन् एवं दैवी च मानुषी च विशः इमं यजमानं अनुवर्त्मानः भवन्तु) जिसप्रकार देवसम्बन्धी मरुत्रूप प्रजा इन्द्रकी अनुगामिनी हुई इसीप्रकार देवलोक और मनुष्यलोककी प्रजा इस यजमानकी अनुगामिनी हों ॥ ८६ ॥

इमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तन्धयापाम्प्रपीनमग्ने सरिरस्य मद्ध्ये। उत्सञ्जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमाविशस्व ॥ ८७

इसका सप्त० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने सरिरस्य मध्ये इमं ऊर्जस्वन्तं अपाम् प्रपीनम् स्तनम् धय) हे अग्ने! भूलोकके मध्यमें वर्त्तमान तुम, इस श्रेष्ठ रस वाले घृतधाराओंसे पूर्ण स्रुक्रूप स्तनको पियो (अर्वन् मधुमन्तं उत्सं जुषस्व) हे सब ओर गमन करनेवाले अग्ने! मधु स्वादवाले घृतसे युक्त स्रुक्रूप कूपको सेवन करो (समुद्रियं सदनं आविशस्व) चयनयाग वाले घरमें प्रवेश करो॥

घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहा कृतं वृषभ विक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(घृतम् मिमिक्षे) मैं घृत को अग्निके मुखमें सींचना चाहता हूँ (घृतं अस्य योनिः) घृत इस अग्निका उत्पत्ति-स्थान है (घृते श्रितः) घृतमें आश्रित है (घृतं उ अस्य धाम)घृत ही इसको तेज करने वाला है (अनुष्वधं आवह मादयस्व) हे अध्वर्यु ! हविका संस्कार करनेके अनंतर अग्निका आवाहन करो तृप्त करो (वृषभ स्वाहाकृतं हविः वक्षि) और कहो, कि-हे कामनाओंको पूर्ण करनेवाले! स्वाहा कह कर होमा हुआ हवि देवताओंको पहुँचाओ

समुद्रादूर्म्मिर्मधुमान् उदारदुपाꣳशुना सममृतत्वमानट् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ ८९ ॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(मधुमान् ऊर्मिः समुद्रात् उदारत्) मधुररसवाली तरंग घृतरूप समुद्रसे उठी (अंशुना सम् अमृतत्वम् उपानट्) फिर प्राणभूत अग्निके साथ मिलकर अमृतत्वको प्राप्तहुई (यत् घृतस्य गुह्यं, नाम, देवानां, जिह्वा) जो उस घृत का गुप्तनाम श्रुतिमें पढ़ा है, वह देवताओंकी जिह्वा है (अमृतस्य नाभिः अस्ति) अमृतकी नाभि है अर्थात् जो घी खाता है वह दीर्घायु होता है ॥ ८९ ॥

वयन्नाम प्रब्रवामाघृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः । उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानञ्चतुःशृङ्गोवमीद्गौर एतत् ॥ ९० ॥

इसका वामदेव ऋ० त्रि० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(वयम् अस्मिन् यज्ञे घृतस्य नाम प्रब्रवाम) हम इस यज्ञमें घृत का नाम लेकर स्तुति करते हैं, क्योंकि-घृत देवताओंको प्यारा है (नमोभिः धारयामः) अन्नोंके द्वारा यज्ञको धारण करते हैं (ब्रह्मा शस्यमानं उपशृणवत्) ब्रह्मा नामधारी ऋत्विक् स्तुति किये जाते हुए घृतके नामको सुने (चतुःशृङ्गः गौरः एतत् अवमीत्) चार होता वाला गौरवर्ण यह घृत आहुतिके परिणामसे यज्ञफलको प्रकट करता है ॥ ९० ॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यान् आविवेश ॥ ९१ ॥

इसका वामदेव ऋ०, विराट् आर्षी त्रि० छ०, यज्ञपुरुष देवता है। मंत्रार्थ-(अस्य चत्वारि शृङ्गाणि) इस यज्ञ देवताके ब्रह्मा उद्गाता, होता, अध्वर्यु यह चार शृंग हैं (त्रयः पादाः) ऋक् यजुः सामवेद यह तीन चरण हैं (द्वे शीर्षे) हविर्धान और प्रवर्ग्य दो शिर हैं (अस्य सप्त हस्तासः) इस यज्ञपुरुषके सात छन्दरूप वा सात होतारूप हाथ हैं (त्रिधा बद्धः वृषभः रोरवीति) प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन और सायंसवन इन तीन स्थानोंमें बँधाहुआ और कामनाओंका वर्षानेवाला

मंत्र ब्राह्मण कल्पके द्वारा अति शब्द करता है (महः देवः मर्त्यान्, आविवेश) वह अतिपूजनीय देव मनुष्यलोकमें व्याप्त होकर स्थित है। यह अर्थ निरुक्त अ० १३ ख० ७ के अनुसार है। पतञ्जलिमुनिने महाभाष्य अध्याय १ पाद १ आह्निक १ में इस मंत्र की व्याख्या इस प्रकारकी है कि-नाम आख्यात, उपसर्ग, निपात यह चार जिसके सींग हैं, प्रथम मध्यम उत्तम पुरुषरूप वा भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालरूप तीन चरण हैं नित्य कार्य शब्दरूप दो शिर हैं. सात विभक्ति ही सात हाथ हैं एकवचन द्विवचन बहुवचनरूप तीन स्थानमें बँधा हुआ, अनेकों अर्थोंकी वर्षा करने वाला व्याकरणशास्त्र अन्य शास्त्रोंको दबाकर गरजता है यह बड़ा भारी दिव्यशास्त्र मनुष्योंमें फैला हुआ है। एक यह भी अर्थ होसकता है कि-इस वेदरूप यज्ञपुरुष के धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चार शृङ्ग हैं, कर्म, उपासना ज्ञानरूप तीन चरण हैं, व्यष्टि समष्टिरूप दो शिर हैं, स्वर वा छन्दस्वरूप सात हाथ हैं इसप्रकार चार पदार्थोंकी वर्षा करनेवाला वेद वार २ उपदेश कर रहा है कि मनुष्यों ! जागो परमात्माका भजन करनेके निमित्त ही शरीर है, इसमें परमात्माने जीवात्मारूप से प्रवेश किया है ॥ ९१ ॥

त्रिधा हितम्पणिभिर्गुह्यमानङ्गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्। इन्द्र एकꣳ सूर्य्य एकञ्जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ९२ ॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ०, घृत-देवता है। मंत्रार्थ-(त्रिधा हितं पणिभिः गुह्यमानं घृतं देवासः गवि अनु अविन्दन्) तीन प्रकार से लोकोंमें स्थापित असुरोंके छुपाये हुए घृतको देवताओंने क्रमसे गौओं में जाना (एकं इन्द्रः जजान) एक भाग को इन्द्रने प्रकट किया (एकं सूर्यः) एक भागको सूर्यने प्रकट किया (एकं वेनात् स्वधया निष्टतक्षुः) एक भाग यज्ञके साधन-भूत अग्निसे स्वधाके द्वारा ब्राह्मणोंने पाया

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे। घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ९३ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् है। मन्त्रार्थ-(हृद्यात् समुद्रात् शतव्रजाः एताः अर्षन्ति) हृदयरूपी समुद्रसे अर्थात् श्रद्धारूपी जल से अथवा देवताके यथावत् चिन्तनरूप समुद्रसे अथवा निरुक्त आदि छः अङ्गोंसे पवित्र हुए वेदरूपी सागरमेंसे अनेकों अर्थ

वाली यह वाणियें निकलती हैं (घृतस्य, धाराः रिपुणा न अवत्रन्ते) घृतकी धाराओं की समान अविच्छिन्न, शत्रूरूप कुतार्किकों से नहीं खण्डित होती हैं (आसां मध्ये हिरण्ययः वेतसः अभि चाकशीमि) इन वाणियोंके मध्यमें दीप्यमान अग्नियोंको सब ओरसे देखता हूँ ॥ ९३ ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्षन्त्यूर्म्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ९४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(अन्तः हृदा मनसा पूयमानाः धेनाः सरितः न सम्यक् स्रवन्ति) शरीरके भीतर पावन-स्थान मनके द्वारा पवित्र हुई शब्ददोषरहित वाणियें नदियोंकी समान अविच्छिन्न प्रवाहसे भलीप्रकार प्रकट होती हैं वह अग्निकी ही स्तुति करती हैं (एते घृतस्य ऊर्मयः अर्षन्ति) यह घृतकी तरंगे स्रुक् से निकल कर जाती हुई अग्निको तृप्त करती हैं (क्षिपणोः ईषमाणाः मृगा इव) जैसे कि व्याधेसे डरकर मृग भागते हैं ९४

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्म्मिभिः पिन्वमानः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(घृतस्य, यह्वाः धारा पतयन्ति) घृतकी बड़ी २ धाराएं स्रुवेसे गिरती हैं (सिन्धोः शूघनासः वातप्रमियः प्राध्वने इव) जैसे कि-नदकी शीघ्रगमनवाली पवनसे चलायमान तरङ्ग विषमस्थानमें पड़ती हैं (काष्ठाः भिन्दन् ऊर्मिभिः पिन्वमानः अरुषः वाजीः न) जैसे कि-संग्रामकी दिशाओंको विदीर्ण करता हुआ संग्रामभेदनके श्रमसे निकले हुए पसीनोंसे पृथ्वीको सींचता हुआ क्रोधरहित उत्तम घोड़ा गमन करता है९५

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् । घृतस्य धारास्समिधो नसन्त ता जुषाणा हर्य्यति जातवेदाः ॥ ९६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(घृतस्य धाराः समाना कल्याण्यः स्मयमानाः योषाः इव अग्निं अभिप्रवन्त) घृतकी धाराएँ, समान मन वालीं रूपयौवनसम्पन्न मुस-

कुराती हुई स्त्रियोंकी समान अग्निके प्रति गमन करती हैं (ताः समिधः नसन्त) वह धाराएँ अग्निको दीप्त करनेवालीं अग्निको व्याप्त करती हैं (जातवेदाः जुषाणः हर्यति) प्रज्ञावाला अग्नि प्रसन्न होकर उन धाराओं की इच्छा करता है ॥ ९६ ॥

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभितत्पवन्ते ॥ ९७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञः) जहाँ सोमका अभिषव होता है, जहाँ सौत्रामणि आदि यज्ञ होता है (तत् उ घृतस्य धाराः अभिचाकशीमि) तहाँ ही घृतकी धाराएँ जातीहुई देखता हूँ (इव अञ्जि अञ्जानाः कन्याः वहतुं एतवै पवन्ते) जैसे कि सुन्दर रूपवती वा ऋतुधर्मको प्रकट करती हुई कन्याएं पतिके समीप प्राप्त होनेको गमन करती हैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिङ्गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञन्नयत देवा नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

इसका वाम० ऋ० त्रि०छ० देवा दे० है। मंत्रार्थ-(सुष्टुतिं गव्यं आजिं अभ्यर्षत) हे देवताओं ! श्रेष्ठ स्तुति वाले घृतयुक्त यज्ञ में आगमन करो (घृतस्य धाराः मधुमत् पवन्ते) जहाँ घृतकी धाराएँ मधुरस्वाद वाली गिरती हैं (नः इमं यज्ञं देवता नयत) हमारे इस यज्ञको देवलोकमें पहुँचाओ (अस्मासु भद्राः द्रविणानि धत्त) हमारे यहाँ कल्याण और अनेकों प्रकारके धनोंको स्थापन करो ॥ ९८ ॥

धामन्ते विश्वम्भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तन्त ऊर्म्मिम् ॥ ९९ ॥

इसका वाम० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(समुद्रे हृदि अन्तरायुषि विश्वम् भुवनम् ते धामन् अधिश्रितम्) हे अग्ने ! जो समुद्रमें हृदयमें तथा आयुमें अर्थात् ब्रह्माके जीवन पर्यन्त जितने प्राणिसमूह हैं वहसब तुम्हारी विभूतिका आश्रय करके स्थित हैं (यः ऊर्मिः समिथे अपां अनीके आभृतः तं मधुमन्तं ते ऊर्मिम् अश्याम) जो घृतकी तरंग असुरोंसे युद्ध करके जलोंके भीतरसे लाई गई आपकी

कृपासे उस रसयुक्त तुम्हारी तरंगको भक्षण करूँ अर्थात्हमको देवभाव प्राप्त हो
इति यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका भाषानुवाद सहित सप्तदश अध्याय समाप्त.

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

सत्रहवें अध्यायमें त्रिति आरोहण आदिके मन्त्र कहे अठारहवें अध्यायमें वसोर्धारादि मन्त्र कहे जायँगे। यहाँसे २९ कण्डिकापर्यन्तके मन्त्रोंको पढ़ता हुआ बड़े स्रुवेमें घृत लेकर निरन्तर धारापातसे छोड़ता हुआ हवन करे, इसीको वसोर्धारा कहते हैं ॥

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मेधीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

इसका देवा ऋ०, शक्वरी छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (यज्ञेन मे वाजः कल्पन्ताम् च मे प्रसवः च मे प्रयतिः च मे प्रसितिः च) इस यज्ञके फलसे देवता मेरे निमित्त अन्नको सिद्ध करें अर्थात् दें और मुझको देने और भोजन करानेकी आज्ञा भी दें मुझको शुद्धि भी मुझको अन्न की उत्कण्ठा भी दें (च मे धीतिः च, मे क्रतुः च मे स्वरः च मे श्लोकः) मेरे निमित्त ध्यान और विचार और मुझको श्रेष्ठसंकल्प वा यज्ञ भी और मुझको सुन्दर शब्द और स्तुति भी दें (च मे श्रवः च मे श्रुतिः च मे ज्योतिः च मे स्वः) मुझको वेदमंत्रोंके श्रवणकी सामर्थ्य और मुझे ब्राह्मणभागके सुननेकी शक्ति और मुझे प्रकाश तथा मेरे निमित्त स्वर्ग भी दें अर्थात् मुझको यज्ञ के फलसे यह सब पदार्थ प्राप्त हों ॥ १ ॥

प्राणश्च मेपानश्च मे व्यानश्च मेसुश्च मे चित्तञ्च मे आधीतञ्च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रञ्च मे दक्षश्च मे बलञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अतिज० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ— (च मे प्राणः) और मेरे निमित्त प्राणवायु (च मे अपानः) और मेरे निमित्त अधोवायु च मे व्यानः) और मेरे निमित्त सब शरीरमें विचरनेवाला वायु (च मे असुः) और मुझको प्रवृत्ति वाला वायु (च मे चित्तम्) और मुझको मानस संकल्प (च मे अधीतम्) और मुझको बाहरी ज्ञान (च मे वाक्) और मुझको वाणीकी सामर्थ्य (च मे मनः) और मुझको मन (च मे चक्षुः) और मुझको दृष्टि (च मे श्रोत्रं) और मुझको

सुननेकी शक्ति (च मे दक्षः) और मेरे निमित्त ज्ञानकी स्फूर्ति (च मे बलम्) और मुझको बल (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञफलसे प्राप्त हो ॥ २ ॥

ओजश्च मे सहश्च मे आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म्म च मे वर्म्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूꣳषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० शक्व० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च मे ओजः च मे सहः) मुझे बलकी कारण शरीरकी आठवीं धातु ओज और देहबल (च मे आत्मा च मे तनूः) मुझे आत्मज्ञान और सुन्दर शरीर (च मे शर्म च मे वर्म) मुझे सुख और कवच (च मे अङ्गानि च मे अस्थीनि) मुझे पुष्ट अङ्ग और अस्थियोंकी दृढ़ता (च मे परूंषि च मे शरीराणि) मुझे अंगुलियोंके पोरुओंकी दृढ़ता और देहकी नीरोगता (च मे आयुः च मे जरा यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे सुखमय आयु और वृद्धावस्थापर्यन्त आयु यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ३ ॥

ज्यैष्ठ्यञ्च मे आधिपत्यञ्च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धञ्च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

इसका दे० ऋ०, नि० अत्यष्टि छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (च मे ज्यैष्ठ्यं च मे आधिपत्यम्) मुझे बड़ाई और प्रभुता (च मे मन्युः च मे भामः) मुझे दोषों पर कोप और अनुचित अपराध पर कोप (च मे अमः च मे अम्भः) मेरे अर्थ गंभीरता और श्रेष्ठ जल (च मे जेमा, च मे महिमा) मेरे निमित्त जीतनेकी शक्ति और प्रतिष्ठा (च मे वरिमा च मे प्रथिमा) मुझे सन्तानादिकी अधिकता तथा स्थान आदिका विस्तार (च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा) मुझे दीर्घजीवीपना और वंश-परम्पराकी प्राप्ति (च मे वृद्धं च मे वृद्धिः यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे निमित्त अधिक अन्नादि तथा विद्यादि गुणोंकी उन्नति यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ ४ ॥

सत्यञ्च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च मे विश्वञ्च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

इसका देवा ऋ०, वि० शक्करी छ०, अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(च मे सत्यं च मे श्रद्धा) मेरे अर्थ यथार्थ भाषण तथा परलोक पर विश्वास (च मे जगत् च मे धनम्) गौ आदि पशु तथा सुवर्ण आदि धन (च मे विश्वं च मे महः) मुझे स्थावर पदार्थ एवं प्रकाश (च मे क्रीडा च मे मोदः) मुझे क्रीड़ा एवं क्रीड़ाके देखनेका आनन्द (च मे जातं च मे, जनिष्यमाणं मुझे पुत्रसे उत्पन्न सन्तान और होनेवाली अपत्य सन्तान (च मे सूक्तं च मे सुकृतं यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे शुभ-दायक ऋचाओंका समूह और पाठ करनेसे शुभ अदृष्ट यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥५॥

ऋतश्च मेऽमृतञ्च मेऽयक्ष्मश्च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वञ्च मेऽनमित्रञ्च मेऽभयञ्च मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूषाश्च मे सुदिनञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

इसका देवा ऋ० भुरिगतिशक्व० छ०, अग्नि देवता है मन्त्रार्थ (च मे ऋतं च अमृतं) मुझे यज्ञादि कर्म तथा उसका स्वर्गादिफल (च मे अयक्ष्मं च मे अनामयत्) रोगका नाश, साधारण व्याधिका अभाव (च मे जीवातु च मे दीर्घायुत्वम्) आयु बढ़ानेवाली औषध तथा दीर्घायु (च मे अनमित्रम् च मे अभयम्) शत्रुओंका अभाव और निर्भयता (च मे सुखं च मे शयनम्) मुझे सुख तथा सेज (च मे सूषाः च मे सुदिनं यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे सन्ध्यावन्दन आदि युक्त सुप्रभात और यज्ञदानादियुक्त दिन यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ ६ ॥

यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वञ्च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रञ्च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरञ्च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

इसका देवा ऋ० नि० अतिजग० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे यन्ता च मे धर्त्ता) मुझे गुरु आदि नियन्ता एवं प्रजा पालनकी शक्ति (च मे क्षेमः च मे धृतिः) मेरे निमित्त वर्त्तमान धनकी रक्षा तथा आपत्तिमें चित्तकी स्थिरता (च मे विश्वं च मे महः) सबकी अनुकूलता और पूजा सत्कार (च मे संवित् च मे ज्ञात्रं) वेद शास्त्रादिका ज्ञान और विज्ञानकी शक्ति (च मे सूः च मे प्रसूः) आज्ञा देनेकी सामर्थ्य एवं पुत्रादिको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य (च मे सीरं च मे लयः यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे हल आदिके द्वारा अन्नकी प्राप्ति और खेतीके विघ्नोंका नाश इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ७ ॥

शञ्च मे मयश्च मे प्रियश्च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणञ्च मे भद्रञ्च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

इसका देवा ऋ० वि० शक्करी छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे शं च मे मयः) मुझे शारीरिक सुख तथा परलोकका सुख (च मे प्रियम् च मे अनुकामः) प्रीति उत्पादक वस्तु तथा सहजयत्न साध्यपदार्थ (च मे कामः च मे सौमनसः) विहित विषय भोगका सुख एवं मनको स्वस्थ करनेवाले बान्धव (च मे भगः च मे द्रविणं) सौभाग्य तथा धन (च मे भद्रं च मे श्रेयः) इस लोक का कल्याण तथा परलोकका कल्याण (च मे वसीयः च मे यशः यज्ञेन कल्पन्ताम्) निवासयोग्य धनसे पूर्ण घर तथा कीर्त्ति भी इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ८ ॥

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतञ्च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रञ्च म औद्भिद्यञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

इसका देवा ऋ० शक्वरी छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे ऊर्क् च मे सूनृता) मुझे अन्न तथा सच्ची और प्रियवाणी (च मे पयः च मे रसः) दूध तथा दूधका सार (च मे घृतं च मे मधु) घी तथा शहद (च मे सग्धिः च मे सपीतिः) बान्धवों के साथ खानपान (च मे कृषिः च मे वृष्टिः) धान्यकी सिद्धि एवं अन्न उत्पन्न होने के अनुकूल वर्षा (च मे जैत्रं च मे औद्भिद्यम् यज्ञेन कल्पन्ताम्) जयकी शक्ति तथा आम्रादि वृक्षोंकी उत्पत्ति भी मुझे यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ९ ॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टञ्च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णञ्च मे पूर्णतरञ्च मे कुयवञ्च मेक्षितञ्च मेऽन्नञ्च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

इसका देवा ऋ० नि० शक्वरी छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे रयिः च मे रायः) मुझको सुवर्ण तथा मौक्तिक आदि मणि (च मे पुष्टं च मे पुष्टिः) धनकी पुष्टि तथा शरीरकी पुष्टि (च मे विभु च मे प्रभु) व्यापकताकी शक्ति एवं ऐश्वर्य (च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं) धन पुत्रादिकी अधिकता तथा हाथी घोड़ों आदिकी अधिकता (च मे कुयवं च मे अक्षितं) यवों से रहित धान्य तथा अक्षय अन्न (च मे

अन्नं च मे क्षुत् यज्ञेन कल्पन्ताम्) भात आदि सिद्धान्न तथा भोजन पचानेकी शक्ति भी यज्ञके फलसे देवता दें ॥ १० ॥

वित्तञ्च मे वेद्यञ्च मे भूतञ्च मे भविष्यच्च मे सुगञ्च मे सुपथ्यञ्च म ऋद्धञ्च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तञ्च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

इसका देवा ऋ० भुरिक् शक्वरी छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे वित्तं च मे वेद्यम्) और मुझको पूर्वप्राप्त धन तथा आगे प्राप्तव्य धन भी (च मे भूतं च मे भविष्यत्) पूर्वप्राप्त क्षेत्रादि एवं भविष्यत् में प्राप्त होनेवाले क्षेत्रादि भी (च मे सुगं च मे सुपथ्यम्) सुखगम्य देश एवं परम-पथ्य पदार्थ (च मे ऋद्धं च मे ऋद्धिः) बड़े भारी यज्ञका फल, यज्ञ आदिकी समृद्धि (च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिः) कार्यसाधक अपरिमित धन तथा कार्यसाधनकी शक्ति (च मे मतिः च मे सुमतिः यज्ञेन कल्पन्ताम्) पदार्थमात्रका निश्चय तथा दुर्घट कार्यका निश्चय यज्ञके फलसे देवता दें ११

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

इसका देवा ऋ० भु० अतिशक्व० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (च मे व्रीहयः च मे यवाः) मुझे चावलोंके धान तथा जौ (च मे माषाः च मे तिलाः) उड़द तथा तिल (च मे मुद्गाः च मे खल्वाः) मूँग तथा चने (च मे प्रियङ्गवः च मे अणवः) कंगनी चैना (च मे श्यामाकाः च मे नीवाराः) समा कोदो तथा वनके मुन्यन्न नीवारादि (च मे गोधूमाः च मे मसूराः यज्ञेन, कल्पन्ताम्) गेहूँ और मसूर इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ १२ ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् १३

इसका देवा ऋ० भुरि० अतिश० छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (च मे अश्मा, च मे मृत्तिका) मुझे सुन्दर पाषाण तथा श्रेष्ठ मृत्तिका (च मे गिरयः च मे पर्वताः) गोवर्द्धनादि छोटे पर्वत तथा हिमालयादि पहाड़ (च मे सिकताः च मे वनस्पतयः)

सुन्दर रेती तथा बिना फूल आए फल-दायक वृक्ष (च मे हिरण्यं च मे अयः) सुवर्ण तथा लोहा (च मे श्यामं च मे लोहम्) ताँबा काँसा आदि तथा फौलाद (च मे सीसं च मे त्रपु यज्ञेन कल्पन्ताम्) सीसा धातु तथा राँगा इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ १३ ॥

अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अष्टि छ० अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(च मे अग्निः च मे आपः) मुझे पृथिवीके अग्निकी अनुकूलता तथा अन्तरिक्षके जलकी अनुकूलता (च मे वीरुधः च मे ओषधयः) झड़े तृण आदि तथा पकते ही सूखनेवाली औषधें (च मे कृष्टपच्याः च मे अकृष्टपच्याः) हल चलाकर उत्पन्न होनेवाले तथा बिना हल जोते उत्पन्न होनेवाले अन्न (च मे ग्राम्याः च मे पशवः) गौ भैंस आदि ग्राम्यपशु तथा हाथी आदि वनके पशु (च मे वित्तं च मे वित्ति) पूर्वलब्ध धन तथा होनहार धनकी कामना (च मे भूतं च मे भूतिः यज्ञेन कल्पन्ताम्) विद्यमान पुत्रादि तथा अपना उपार्जन किया हुआ धन इस यज्ञके फलसे हमको देवता दें १४

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

इसका देवा ऋ०, विरा० बृ०छ०, अग्नि दे० है, मंत्रार्थ-(च मे वसुः च मे वसतिः) मुझे गौ आदि धन तथा निवासस्थान (च मे कर्म च मे शक्तिः) अग्निहोत्रादि कर्म तथा उसके अनुष्ठानकी शक्ति (च मे अर्थः च मे एमः) इच्छित पदार्थ तथा प्राप्तियोग्य पदार्थ (च मे इत्या च मे गतिः) इष्ट प्राप्तिका उपाय एवं इष्टप्राप्ति (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥१५॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

इसका देवा ऋ० नि० ब्रा० प० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(च मे अग्निः च मे इन्द्रः) मुझे अग्नि और इन्द्र (च मे सोमः च मे इन्द्रः) सोम तथा इन्द्र (च मे सविता च मे इन्द्रः) सविता और इन्द्र (च मे सरस्वती च मे इन्द्रः) सरस्वती तथा इन्द्र (च मे पूषा च मे इन्द्रः) पूषा तथा इन्द्र (च मे बृहस्पतिः च मे इन्द्रः) बृहस्पति तथा इन्द्र (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ १६ ॥

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

इसका देवा ऋ० वि० शक्व० छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(च मे मित्रः च मे इन्द्रः) मुझे मित्र एवं इन्द्र देवता (च मे वरुणः च मे इन्द्रः) वरुण तथा इन्द्र (च मे धाता च मे इन्द्रः) धाता तथा इन्द्र (च मे त्वष्टा च मे इन्द्रः त्वष्टा तथा इन्द्र च मे मरुतः च मे इन्द्रः) मरुत् तथा इन्द्र (च मे विश्वेदेवा च मे इन्द्रः यज्ञेन कल्पन्ताम्) विश्वेदेवा तथा इन्द्र इस यज्ञके फलसे अनुकूल भावसे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० शक्व० छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे पृथिवी च मे इन्द्रः) मुझे पृथ्वी तथा इन्द्र (च, मे अन्तरिक्षम् च मे इन्द्रः) अन्तरिक्ष तथा इन्द्र (च मे द्यौः च मे इन्द्रः) स्वर्ग तथा इन्द्र (च मे समाः च मे इन्द्रः) वर्षका अधिष्ठात्री देवता तथा इन्द्र (च मे नक्षत्राणि च मे इन्द्रः) नक्षत्र तथा इन्द्र (च मे दिशः च मे इन्द्रः यज्ञेन कल्पन्ताम्) दिशा और इन्द्र यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों

अंशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपांशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

इसका देवा ऋ० नि० अत्य० छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(च मे अंशुः च मे

रश्मिः) मुझे अंशु तथा रश्मि नामक ग्रह (च मे अदाभ्यः च मे अधिपतिः) अदाभ्य तथा निग्राह्य ग्रह (च मे उपांशुः च मे अन्तर्यामः) उपांशु तथा अन्तर्याम ग्रह (च मे ऐन्द्रवायवः च मे मैत्रावरुणः) ऐन्द्रवायव तथा मैत्रावरुण ग्रह (च मे आश्विनः च मे प्रतिप्रस्थानः) आश्विन तथा प्रतिप्रस्थान ग्रह (च मे शुक्रः च मे मन्थी यज्ञेन कल्पन्ताम्) शुक्र और मन्थी ग्रह यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ १९ ॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

इसका देवा ऋ० स्वराट अतिधृति छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(च मे आग्रयणः च मे वैश्वदेवः) मुझे आग्रयण और वैश्वदेव (च मे ध्रुवः च मे वैश्वानरः) ध्रुव तथा वैश्वानर (च मे ऐन्द्राग्नः च मे महावैश्वदेवः) ऐन्द्राग्नि तथा महावैश्वदेव (च मे मरुत्वतीयाः च मे निष्केवल्यः) मरुत्वतीय तथा निष्केवल्य (च मे सावित्रः च मे सारस्वतः) सावित्र तथा सारस्वत (च मे पात्नीवतः च मे हारियोजनः) पात्नीवत एवं हारियोजनग्रह (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ २० ॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

इसका देवा ऋ० विराट्धृति छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (च मे स्रुवः च मे चमसाः) मेरे अर्थ जुहू तथा चमस (च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशः) वायव्यपात्र एवं द्रोणकलश (च मे ग्रावाणः च मे अधिषवणे) ग्रावा एवं काष्ठफलक (च मे पूतभृत् च मे आधवनीयः) सोमपात्र पूतभृत् तथा आधवनीय (च मे वेदिः च मे बर्हिः) वेदी एवं कुशा (च मे अवभृथः च मे स्वगाकारः यज्ञेन कल्पन्ताम्) अवभृथस्नान तथा शम्युवाक पात्र यज्ञके द्वारा प्राप्त हों ॥ २१ ॥

अग्निश्च मे घर्म्मश्च मेर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेश्वमेधश्च मे पृथिवी च मे दितिश्च मेदितिश्च मे द्यौश्च मेङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

इसका देवा ऋ० भुरि० शक्व० छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (च मे अग्निः च मे घर्मः) मुझे अग्निष्टोम और प्रवर्ग्य (च मे अर्कः च मे सूर्यः) मुझे पुरोड़ाशका यज्ञ और सूर्यका चरु (च मे प्राणः च मे मेधः) मुझे प्राण और अश्वमेध यज्ञ (च मे पृथिवी च मे दितिः च मे अदितिः) मुझे पृथिवी दिति और अदिति देवता (च मे द्यौः च मे अंगुलयः) मुझे द्युलोक और विराट्पुरुषके अवयव (च मे शक्वरयः च मे दिशः यज्ञेन कल्पंतां) मुझे शक्तियें और पूर्वादि दिशाओं की अनुकूलता इस यज्ञके फलसे प्राप्त हो।

व्रतश्च म ऋतवश्च मे तपश्च मे सम्वत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

इसका देवा ऋषि, पंक्ति छं०, अग्नि देव० है। मन्त्रार्थ-(च मे व्रतं च मे ऋतवः) मुझे नियम तथा ऋतुएँ (च मे तपः च मे सम्वत्सरः च मे अहोरात्रे) मुझे तप, सम्वत्सर तथा दिन रात (च मे ऊर्वष्ठीवे य मे बृहद्रथन्तरे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे जानु तथा बृहद्रथन्तर साम इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ २३ ॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म एकविꣳशतिश्च म एकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च म एकत्रिꣳशच्च म एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

इसका देवा ऋ०, पूर्वार्द्ध का संकृति तथा उत्तरार्द्धका विराट् संकृति छंद अग्नि देवता है, यहाँसे अयुग्मस्तोम होमके मन्त्र हैं, जो कि-सब कामनाओंके दाता हैं। मन्त्रार्थ-(च मे एका च मे तिस्रः) मुझे एक और तीन (च मे तिस्रः च मे पंच) मुझे तीन तथा पाँच (च मे पंच च मे सप्त) पाँच तथा सात (च मे सप्त च मे नव) सात तथा नौ (च मे नव च मे एकादश) मुझे नौ और ग्यारह (च मे एकादश च मे त्रयोदश) ग्यारह और तेरह (च मे त्रयोदश च मे पंचदश) तेरह और पन्द्रह (च मे पञ्चदश च मे सप्तदश) पंद्रह और सत्रह (च मे सप्तदश च मे नवदश) सत्रह तथा उन्नीस (च मे नवदश च मे एकविंशतिः) उन्नीस तथा इक्कीस (च मे एकविंशतिः च मे त्रयोविंशतिः) इक्कीस तथा तेईस (च मे त्रयोविंशतिः च मे पञ्चविंशतिः) तेईस यथा पच्चीस (च मे पञ्चविंशतिः च मे सप्तविंशतिः) पच्चीस तथा सत्ताईस (च मे सप्तविंशतिः च मे नवविंशतिः सत्ताईस तथा उन्तीस (च मे नवविंशतिः च मे एकएकत्रिंशत्) उन्तीस तथा इकतीस (च मे एकत्रिंशत् च मे त्रयस्त्रिंशत् च मे त्रयस्त्रिंशत् यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे इकतीस, तैंतीस तथा फिर तैंतीस इन संख्याओंसे कहे जाने वाले संसारके सकल उत्तम पदार्थ मुझे इस यज्ञ के फलसे देवता प्राप्त करावें ॥ २४ ॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

इसका देवा ऋ०, उत्कृति छ०, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(च मे चतस्रः च मे अष्टौ) मुझे चार तथा आठ (च मे अष्टौ च मे द्वादश) आठ तथा बारह (च मे द्वादश च मे षोडश) बारह तथा सोलह (च मे षोडश च मे विंशतिः) सोलह तथा बीस (च मे विंशतिः च मे चतुर्विंशतिः) बीस तथा चौबीस (च मे चतुर्विंशतिः च मे अष्टाविंशतिः) चौबीस तथा अट्ठाईस(च मे अष्टाविंशतिः च मे द्वात्रिंशत्)

अट्ठाईस तथा बत्तीस (च मे द्वात्रिंशत् च मे षट्त्रिंशत्) बत्तीस तथा छत्तीस (च मे षट्त्रिंशत् च मे चत्वारिंशत्) छत्तीस तथा चालीस (च मे चत्वारिंशत् च मे चतुश्चत्वारिंशत्) चालीस तथा चौवालीस (च मे चतुश्चत्वारिंशत् च मे अष्टचत्वारिंशत् च मे अष्टचत्वारिंशत् यज्ञेन कल्पन्ताम्) चौवालीस, अड़तालीस तथा फिर अड़तालीस इन सब संख्याओंसे कहेजाने वाले पदार्थ यज्ञके द्वारा देवता मुझे दें २५

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्य्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

इसका देवा ऋ०, ब्राह्मी बृहती छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(च मे त्र्यविः च मे त्र्यवी) मुझे डेढ़ वर्षका बछड़ा तथा डेढ़ वर्षकी बछिया (च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही) दो वर्षका बछड़ा तथा दो वर्षकी बछिया (च मे पंचाविः च मे पञ्चावी) ढाई वर्षका वृष तथा ढाई वर्षकी गौ (च मे त्रिवत्सः च मे त्रिवत्सा) तीन वर्षका वृष तथा तीन वर्षकी गौ (च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही यज्ञेन कल्पन्ताम्) साढ़ेतीन वर्षका वृष तथा साढ़ेतीन वर्षकी गौ यज्ञके फलसे देवता दें ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० ब्रा० उ० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च मे पष्ठवाट् च मे पष्ठौही) चार वर्षका वृष तथा चार वर्षकी गौ (च मे उक्षा च मे वशा) सेचनमें समर्थ वृष तथा वन्ध्या गौ (च मे ऋषभः च मे वेहत्) तरुण वृष तथा गर्भघातिनी गौ (च मे अनड्वान् च मे धेनुः यज्ञेन कल्पन्ताम्) बोझा उठानेमें समर्थ वृष तथा नई ब्याही हुई गौ यज्ञके फलसे देवता मुझे दें अर्थात् मैं सब प्रकारके बैल तथा गौओं को पालनेवाला होऊँ ॥ २७ ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहार्हपतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहाविनꣳशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा

इयन्ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानान्त्वाधिपत्याय ॥ २८ ॥

इसका देवा ऋ० आर्चीबृह० छ०, अग्नि दे० है। अब सकल कामनाप्रद नामग्रह होम कहते हैं। मंत्रार्थ (वाजाय स्वाहा) अधिक अन्नउत्पादक चैत्रमासके निमित्त श्रेष्ठ होम हो (प्रसवाय स्वाहा) वैशाखके निमित्त श्रेष्ठ होम हो (अपिजाय स्वाहा) जलक्रीड़ामें रतिदायक ज्येष्ठके अर्थ श्रेष्ठ आहुति हो (क्रतवे स्वाहा) यागरूप आषाढ़के निमित्त० (वसवे स्वाहा) चातुर्मास्यकी यात्राके निषेधक श्रावणके नि० (अहर्पतये स्वाहा) तपाकारक भाद्रमासके निमित्त० (मुग्धाय अह्ने स्वाहा) तुषारसे मोहकारक आश्विनके नि० (अमुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा) थोड़ा घटनेसे विनाशी कार्त्तिकके निमित्त० (अविनंशिने आंत्यायनाय स्वाहा) विनाशरहित अन्तमें स्थित विष्णुरूप मार्गशीर्षके० (अन्त्याय,भौवनाय स्वाहा स्वरूपमें होनेवाले लोकोंके पोषक पौषमासके नि० (भुवनस्य पतये स्वाहा) सम्पूर्ण प्राणियोंके पालक माघमासके नि० (अधिपतये स्वाहा) वर्षातके कारण अधिक पालक फाल्गुनके नि० (प्रजापतये स्वाहा) बारहों मासके अधिष्ठात्री देवता प्रजापतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, हे प्रजापति अग्ने ! (इयम् ते राट् यमनः मित्राय यन्ता असि) यह यज्ञस्थान तुम्हारा राज्य है अग्निष्टोमादि कर्मोंमें सबके नियन्ता तुम सखारूप इस यजमानके प्रेरक हो (ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानाम् आधिपत्याय त्वा) अधिक अन्नके निमित्त तुमको अभिषिक्त करता हूँ, वर्षाके निमित्त तुमको अभिषिक्त करता हूँ और प्रजाओं पर प्रभुता पानेके निमित्त तुमको अभिषिक्त करता हूँ ॥ २८ ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्प्राणो यज्ञेन कल्पताञ्चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग् यज्ञेन कल्पताम्मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम्ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताञ्ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका देवा ऋ०, विराट् विकृति छ०, अग्नि दे० है। म०-कल्पहोम (यज्ञेन आयुः कल्पताम्) यज्ञके फलसे आयु बढ़े (यज्ञेन प्राणः कल्पताम्) यज्ञफलसे प्राण बलिष्ठ हो

(यज्ञेन चक्षुः कल्पताम्) यज्ञसे नेत्रोंकी ज्योति बढ़े (यज्ञेन श्रोत्रं कल्पताम्) यज्ञ फलसे श्रवणशक्ति उत्तम हो (यज्ञेन वाक् कल्पताम्) यज्ञफलसे वाणी उत्तम हो (यज्ञेन मनः कल्पताम्) यज्ञफलसे मन स्वच्छ हो (यज्ञेन आत्मा कल्प०) यज्ञफल से आत्मा बली हो (यज्ञेन ब्रह्म कल्प०) यज्ञफलसे वेद प्रसन्न हो (यज्ञेन, ज्योतिः कल्प०) यज्ञफलसे परमात्मज्योति प्राप्त हो (यज्ञेन स्वः कल्पताम्) यज्ञफलसे स्वर्ग प्राप्त हो यज्ञेन पृष्ठं कल्पतां) यज्ञके प्रभाव से सर्वोपरि सुख प्राप्त हो (यज्ञेन यज्ञः कल्पताम्) यज्ञके प्रभावसे महायज्ञ करने की सामर्थ्य प्राप्त हो (स्तोमः यजुः ऋक् च साम च बृहत् च रथन्तरम् च देवाः स्वः अगन्म) बृहत् पञ्चदश आदि स्तोम, यजुर्मंत्र, ऋचा और गीतिमन्त्र और बृहत्साम और रथन्तर साम भी यज्ञके फलसे प्रसन्न हों, हम इस यज्ञके फलसे देवभाव पाकर स्वर्गको प्राप्तहुए (अमृताः अभूम) अमरहुए (प्रजापतेः प्रजाः अभूम) हिरण्यगर्भकी प्यारी सन्तानहुए (वेट् स्वाहा) इन सब देवताओंको यह आहुति दीगई, भलीप्रकार गृहीत हो यहाँ तक वसोर्धारा मन्त्र हुए ॥ २९ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरम्महीमदितिन्नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वम्भुवनमाविवेश तस्यान्नो देवस्सविता धर्मसाविषत् ॥ ३० ॥

अब वाजपेय सम्बन्धी सात मन्त्र कहते हैं, इस मन्त्रकी व्याख्या अध्याय ९ मं० ५ में होगई ॥ ३० ॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ३१ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ० त्रि०छ० विश्वेदेवा देवता है। मंत्रार्थ- अद्य विश्वे मरुतः आगमन्तु) आज इस यज्ञमें संपूर्ण मरुत् देवता आवें (विश्वे ऊती विश्वदेवाः नः अवसा विश्वे अग्नयः समिद्धाः भवन्तु) सम्पूर्ण रुद्र आदित्य आदि गण देवता इस निमित्तसे आवें सम्पूर्ण देवता हमारे हवि को ग्रहण करनेके निमित्त आवें, गार्हपत्य आदि सब अग्नि प्रदीप्त हों (विश्वं द्रविणं वाजः अस्तु) गौ, भूमि, सुवर्ण आदि सम्पूर्ण धन और अन्न हमको प्राप्त हों ३१

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ३२

इसका लुशोधानाक ऋ० अनु० छ० अन्न देवता है। मंत्रार्थ (वाजः सप्त प्रदिशः वा परावतः चतस्रः इह धनसातौ, वाजः नः विश्वैः देवैः अवतु) हमारा अन्न सात दिशा अर्थात् भू आदि तीन लोक और पूर्वादि चार दिशा तथा दूर स्थित महः आदि चार लोकोंको पूर्ण करे, इस लोकमें धनविभागका समय आनेपर अन्न हमारी सम्पूर्ण देवताओं सहित रक्षा करे ॥ ३२ ॥

वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवान् ऋतुभिः कल्पयाति वाजो हि मा सर्ववीरञ्जजान विश्वा आशा वाजपतिर्ज्जयेयम् ॥ ३३ ॥

इसका लुशो० ऋ० त्रि० छ० अन्न दे० है। मन्त्रार्थ (अद्य, वाजः नः दानं प्रसुवाति) आज अन्नका अधिष्ठात्री देवता हमको दानके निमित्त प्रेरणा करे (वाजः ऋतुभिः देवान् कल्पयाति) अन्न ऋतुओं के साथ देवताओंको यथास्थानपर कल्पना करे (वाजः हि मा सर्ववीरम् जजान) अन्न ही मुझको पुत्र पौत्रादियुक्त करे (वाजपतिः सर्वाः आशाः जयेयम्) अन्न का स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको वशीभूत करनेमें समर्थ होऊँ ॥ ३३ ॥

वाजः पुरस्तादुत मद्ध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति वाजो हि मा सर्ववीरश्चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

इसका लुशो० त्रि० छ०, अन्न दे० है। मन्त्रार्थ-(वाजः नः पुरस्तात् उत मध्यतः) अन्न हमारे आगे और मध्यमें स्थित हो (वाजः हविषा देवान् वर्द्धयाति) अन्न हविसे देवताओंको तृप्त करता है (वाजः हि मा सर्ववीरं चकार) अन्नने ही मुझको पुत्र पौत्रादिसे युक्त किया (वाजपतिः विश्वाः आशाः भवेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको जीतनेमें समर्थ होऊँ ३४

सम्मा सृजामि पयसा पृथिव्यास्सम्मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने

इसका लुशो० ऋ० त्रि० छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (अग्ने पृथिव्याः पयसा मा संसृजामि) हे अग्ने ! पृथिवीके रससे अपनेको संयुक्त करता हूँ (अद्भिः औष-

धीभिः मा, सम्) जलों और औषधियों से अपनेको संयुक्त करता हूँ (सः अहं वाजं सनेयम्) वह मैं अन्नकी उपासना करता हूँ अथवा हे अग्ने! जो मैं औषधि जलसे हवनद्वारा तुमको संयुक्त करता हूँ वह मैं अन्नका उपासक हूँ ॥ ३५ ॥

पयः पृथिव्याम्पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशस्सन्तु मह्यम्

इसका लुशो० ऋ० विराट् छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (पृथिव्यां पयः धाः) हे अग्ने! पृथ्वी पर हमारे देनेके अर्थ रस को धारण करो (ओषधीषु पयः) ओषधियोंमें रस डालो (दिवि पयः) द्युलोकमें रसको स्थापन करो (मह्यं प्रदिशः पयस्वतीः सन्तु) आहुति देनेसे मेरे अर्थ दिशा विदिशाएँ रसयुक्त हों ॥ ३६ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्। पूष्णो हस्ताभ्यां सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

इसका लुशो० ऋ० आर्षीपंक्ति छ० लिंगोक्त देवता है। यजमानके अभिषेकका मन्त्र मंत्रार्थ—(सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां सरस्वत्यै वाचः यन्तुः यन्त्रेण अग्नेः साम्राज्येन त्वा अभिषिञ्चामि) सवितादेवकी आज्ञामें वर्त्तमान मैं अश्विनीकुमारकी बाहु और पूषा देवताके हाथोंसे तथा सरस्वती की वाणीसे प्रजापतिके नियमवश अग्निके चक्रवर्त्तीपनेसे हे यजमान तुम्हारा अभिषेक करता हूँ ॥ ३७ ॥

ऋतापाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३८ ॥

इसमें २ मन्त्र है। दोनोंका लुशो० ऋ० विराट् उ० छ० देवता १मका गन्धर्व और २यका अप्सरस् है। होमके मन्त्र मंत्रार्थ—(ऋतापाट् ऋतधामा गन्धर्वः अग्निः सः नः इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु) सत्यवक्ता अविनाशी धाम वाला पृथिवी का धारक गन्धर्व नामक अग्नि हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजातिकी रक्षा करें (तस्मै स्वाहा वाट्) उसको यह आहुति देते हैं। भली प्रकार गृहीत हो (मुदः नाम ओषधयः तस्य अप्सरसः ताभ्यः स्वाहा) प्राणियों को प्रसन्न करने वालीं मुद नामक औषधियें गन्धर्वनामा अग्निकी अप्सरा अर्थात् भोगने योग्य हैं वह भी हमारी रक्षा करें, उन ओषधियोंको यह आहुति देता हूँ, भली प्रकार गृहीत हो ॥ ३८ ॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्य्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

इसमें २ मं० हैं। ऋ० दोनोंका लुशो० छ० १ का आर्ची बृहती २य का साम्नी बृ० देवता १मका गन्धर्व २यका अप्सरस है। मन्त्रार्थ-(संहितः विश्वसामा सूर्यः गंधर्वः) दिन रातको मिलाने वाला और जिसकी सब साममंत्र स्तुति करते हैं ऐसा सूर्यरूप गन्धर्व है (सः नः ब्रह्म क्षत्रं पातु) वह हमारी ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजातिकी रक्षा करें, (तस्मै स्वाहावाट्) उसको आहुति देते हैं भली प्रकार ग्रहण कीजाय (आयुवः नाम मरीचयः तस्य अप्सरसः ताभ्यः स्वाहा) परस्पर मिलनेके स्वभाव वालीं आयुव नामक किरणें उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षाकरें उनको आहुति देते हैं

सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

इसमें २ मं० हैं। ऋ० दोनोंका लुशो० छ० १ मका प्राजापत्या त्रि० २यका आर्ची गा० दे० क्रमसे गन्धर्व और अप्सरस है। मन्त्रार्थ-(सुषुम्णः सूर्यरश्मिः चन्द्रमाः गन्धर्वः) यज्ञके द्वारा सुख देनेवाली सूर्य की किरणों वाला चन्द्रमा नामक भूमिका धारक होनेसे गन्धर्व है (सः नः इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रिय जातिकी रक्षा करें। (तस्मै स्वाहा वाट्) उसको आहुति दीजाती है। (भेकुरयः नाम नक्षत्राणि तस्य अप्सरसः ताभ्यः स्वाहा) कान्ति करनेसे भेकुरि नामक नक्षत्र उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें उनकी प्रीतिके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४० ॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्ज्जो नाम। स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसमें २ मं० हैं। ऋ० दोनोंका लुशो० छ० क्रमसे आर्ची बृह० आर्षी गा० है, दे० क्रमसे गन्धर्व तथा अप्सरस है। मं० (इषिरः विश्वव्यचाः वायु गन्धर्वः) शीघ्रगामी सर्वव्याप्त भूमिको धारण करनेसे गन्धर्व नामक वायु है (सः नः इदं ब्रह्म

क्षत्रं पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजातिकी रक्षा करे (तस्मै स्वाहा वाट्) उसको आहुति दीजाती है (ऊर्जः नाम आपः तस्य अप्सरसः ताभ्यः स्वाहा) प्राणियोंको जीवन देनेवाले रस नामक जल उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें, उनके निमित्त आहुति देते हैं ४१

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसमें २ मंत्र हैं। दोनोंका लुशो०, छ० क्रमसे आर्षी गा० साम्नी अनु०, देवता पूर्ववत् है। मंत्रार्थ—(भुज्युः सुपर्णः यज्ञः गन्धर्वः) प्राणियोंका पालक स्वर्गमें गमन करनेवाला पृथ्वीको धारण करनेसे गन्धर्व नामक यज्ञ है (सः नः इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति तथा क्षत्रिय जातिकी रक्षा करे (तस्मै स्वाहा वाट्) उसको आहुति दीजाती है (स्तावा, दक्षिणाः तस्य अप्सरसः) यज्ञ और यजमानकी स्तुति करनेवालीं स्तावा नामक दक्षिणा उस यज्ञकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें(ताभ्यः स्वाहा, उनको आहुति देते हैं४२

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक् सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

इसमें २ मं० हैं। ऋ० दोनोंका लुशो०, छन्द क्रमसे साम्नी जग० आर्षी गाय० है, देवता पूर्ववत्! मंत्रार्थ—(प्रजापतिः विश्वकर्मा मनः गन्धर्वः) प्रजापालक सब कुछ करनेवाला मनरूप गन्धर्व है (सः नः इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु)वह हमारी इस ब्राह्मण जाति और क्षत्रियजाति की रक्षा करे (तस्मै स्वाहा वाट्) उसको आहुति देते हैं (एष्टयः नाम ऋक्सामानि तस्य अप्सरसः) अभीष्ट देनेसे एष्टि नामवालीं ऋचा और साम उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करें, उनको आहुति देते हैं ॥ ४३ ॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

इसका लुशो० ऋ० प्रस्तारपंक्ति छ०, प्रजापति देवता है। मन्त्रार्थ—(भुवनस्य पते प्रजापते यस्य ते उपरि गृहाः वा यस्य इह सः नः अस्मै ब्रह्मणे अस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा) हे संसारका पालन करने वाले प्रजापते! जिन आपके स्वर्गलोकमें घर हैं अथवा जिन आपके इस लोकमें घर हैं ऐसे आप हमारी इस ब्राह्मणजाति और इस क्षत्रियजातिके निमित्त महान् सुखको दीजिये, इस दीहुई आहुतिको स्वीकार कीजिये ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतांगणः शम्भूर्मय भूरभि मावाहि स्वाहाऽवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ४५

इसमें ३ मन्त्र हैं। ऋ० सबका लुशो०, छ० प्रथम का नि० गाय० २। ३ का आर्षी उ० दे० सबका वायु है मन्त्रार्थ- (समुद्रः नभस्वान् आदानुः शम्भूः मयोभूः आस) हे वायो तुम अगाधजलसे आर्द्र आकाशचारी वर्षासे पृथ्वीको गीला करने वाले इस लोकका सुख देनेवाले तथा परलोकका सुख देनेवाले हो (मा अभि वाहि) मेरे सन्मुख होकर चलो वा मेरे अनुकूल रहो (मारुतः मरुतां गणः असि) हे वायो! तुम अन्तरिक्षचारी और शुक्रज्योति आदि मरुद्गण हो (शंभूः मायाभूः मा अभि वाहि स्वाहा) तुम इस लोक और परलोक में का सुख देते हो मेरे सन्मुख अपना वहनरूप प्रकाश करो इस आहुतिको स्वीकार करो (अवस्यूः असि) हे वायो जब तक रक्षक हो (दुवस्वान् शम्भूः मयोभूः मा अभि वाहि स्वाहा) अन्नके उत्पादक इस लोक तथा परलोकका सुख देनेवाले हो मेरे सन्मुख अपना वहनरूप प्रकाश करो इस आहुतिको स्वीकार करो ॥ ४५ ॥

यास्तेऽअग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः। ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ ४६ ॥

इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २२ में ❀ होगई ॥ ४६ ॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः। इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचन्नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १३ मं० २३ में ❀ होगई ॥ ४७ ॥

रुचन्नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि। रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

इसका लुशो० ऋ०, अनु०, छ०, अग्नि दे० है। घीकी आहुति देय मन्त्रार्थ-(नः ब्राह्मणेषु रुचं धेहि) हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों में कान्तिको स्थापन करो (नः राजसु रुचं कृधि) हमारे क्षत्रियोंमें कान्ति करो (विश्वेषु शूद्रेषु रुचम्) वैश्य और शूद्रोंमें कान्तिको स्थापन करो (मयि रुचा रुचं धेहि) मुझमें कान्तिके साथ अविच्छिन्न कान्तिको स्थापन करो ॥ ४८ ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोद्ध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ ४९ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, त्रि०, छ० वरुण दे० है मन्त्रार्थ (वरुण, यजमानः हविर्भिः तत् आशास्ते) हे स्तुति किये हुए वरुण ! यजमान हवियोंके द्वारा जो कुछ याचना करता है (तत् ब्रह्मणा वन्दमानः त्वा यामि) वह वेदके द्वारा स्तुति करता हुआ आपकी शरण जाकर याचना करता हूँ (उरुशंस इह अहेडमानः बोधि) हे परम आराध्यदेव ! यहाँ क्रोध न करते हुए तुम मेरी प्रार्थनाको जानो (नः आयुः मा प्रमोषीः) मेरी आयुको मत नष्ट होने दो ॥ ४९ ॥

स्वर्ण घर्म्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥ ५० ॥

इसमें ५ मं० हैं। ऋषि सबका शुनःशेप, छन्द १।३।४।५ का दै० त्रि०, २ का दै० पंक्ति, देवता सबका अग्नि है। मंत्रार्थ (स्वः न घर्मः स्वाहा) दिनकी समान आदित्य देवताकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः न अर्कः स्वाहा) सूर्यकी समान अग्निको आदित्यमें स्थापन करता हूँ, उसकी प्रीतिके निमित्त दीहुई आहुति गृहीत हो (स्वः न शुक्रः स्वाहा) दिनको समान शुक्लवर्ण आदित्यके निमित्त दीहुई आहुति भली प्रकार गृहीत हो (स्वः न ज्योतिः स्वाहा) स्वर्गदाता अग्निको अग्निमें स्थापन करता हूँ उसकी प्रीतिके अर्थ दीहुई आहुति भली प्रकार गृहीत हो (स्वः न सूर्यः स्वाहा) सम्पूर्ण देवताओंके रूपकी समान सूर्यको उत्तम करता हूँ अर्थात् भ्रान्तिसे अनेकत्व की प्रतीति होती है वास्तवमें एक सूर्य ही नानारूप है ॥ ५० ॥

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् । तेन वयङ्गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाण अधि नाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

इसका शुनःशेप ऋ० त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (दिव्यं सुपर्णं वयसा बृहन्तं अग्निं शवसा घृतेन तेन ब्रध्नस्य विष्टपं, वयं, गमेम) स्वर्गमें सुन्दर गतिवाले धुएँसे बढे हुए अग्निको बल और घृतसे संयुक्त करता हूँ, इससे हम आदित्यके लोकको जायँ (अधि स्वः रुहाणाः उत्तमे नाकम्) उसके ऊपर स्वर्गमें जाते हुए उत्तम दुःखरहित लोकमें गमन करें ॥५१॥

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षꣳ स्यपहꣳस्यग्ने । ताभ्यामपतेम सुकृतां लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५२ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, विराट् ब्रा० अ० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(अग्ने ते इमौ पक्षौ अजरौ पतत्रिणौ) हे अग्ने ! तुम्हारे यह दोनों दाहिने बाएँ पर जरारहित उड़ने वाले हैं (याभ्यां रक्षांसि अपहंसि) जिनसे तुम राक्षसोंको नष्ट करते हो (ताभ्यां उ सुकृतां लोकं पतेम)उनसे हम पुण्यात्माओं के लोकको गमन करें(यत्र प्रथमजाः पुराणाः ऋषयः जग्मुः) जहाँ प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५२ ॥

इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्त्सधस्थे ध्रुव आनिषत्तो नमस्ते अस्तु मा हिꣳसीः ॥ ५३ ॥

इसका शु० ऋ० आर्षीप० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (इन्दुः दक्षः श्येनः ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनः भुरण्युः महान् ध्रुवः सधस्थे आनिषत्तः ते नमः अस्तु मा माहिंसीः)हे अग्ने ! तुम चन्द्रमाको समान आनन्दके दाता,उत्साहयुक्त आकाशमें बाज की समान वेगसे गमन करनेवाले, सत्य-सम्पन्न सुवर्णमय पक्षवाले पक्षीकी समान फैले पक्षवाले जाठराग्निरूपसे पोषक बड़े प्रभाव वाले स्थिर ब्रह्माके स्थानमें स्थित, आपको बारंबार नमस्कार हो,मुझे किसी प्रकारकी पीड़ा न देकर मेरी रक्षा करना

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म्म सप्रथा नमस्पथे ५४

इसका शुनः० ऋ० परोष्णिक् छ० अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (दिवः मूर्धा पृथिव्याः नाभिः अपां ओषधीनां ऊर्क् विश्वायुः शर्म सप्रथाः असि) हे अग्ने तुम स्वर्गके मस्तकरूप हो पृथिवीके नाभिरूप हो अर्थात् सब तुमसे ही जीवित रहते हैं तुम जल तथा औषधियोंके सार हो, विश्वभरके जीवन हो, सबके शरणदाता तथा सब मार्गोंमें वर्तमान हो (पथे नमः) स्वर्गके मार्ग रूप आपको प्रणाम है ॥ ५४ ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिम्भिन्त दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्यावः ॥ ५५ ॥

इसका शुनः० ऋ०, महापंक्ति जगती छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(श्रितः विश्वस्य मूर्धन्, अधितिष्ठसि) हे सूर्यरूप अग्ने तुम सुषुम्नामें व्याप्त हुए सबके शिरमें स्थित हो (ते, हृदयं समुद्रे) तुम्हारा हृदय समुद्रमें है (आयुः अप्सु) जीवन जलोंमें है क्योंकि जलसे वृक्ष पुष्ट होकर उनसे अग्नि प्रकट होती है (दिवः पर्जन्यात् अन्तरिक्षात् पृथिव्याः ततः वृष्ट्या, नः अव) द्युलोकसे, मेघसे, अन्तरिक्षसे, भूमिसे जहाँ जल हो तहाँसे लाकर वर्षाके द्वारा हमारी रक्षा करो (उदधिं भिन्त) मेघको विदीर्ण करो (अपः दत्त) जलोंको दो ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः । तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥ ५६ ॥

इसका गालव ऋ०, उष्णिक् छ०, यज्ञ देवता है मन्त्रार्थ—(द्रविण नः इष्टस्य प्रीतस्य तस्य इह आगमेः) हे धन हमारे मित्र और प्रेमी इस यजमानके यहाँ आओ (आशीर्दाः यज्ञः भृगुभिः वसुभिः इष्टः) इच्छित वस्तु देनेवाला यज्ञ ब्राह्मण और देवताओंके द्वारा पूर्ण किया गया ॥ ५६ ॥

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्त्तु न इष्टꣳ हविः । स्वगेदन्देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥

इसका गालव ऋ० गायत्री छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (इष्टः अग्निः हविः आहुतः नः इष्टं पिपर्तु) यज्ञके द्वारा पूजित अग्नि हविके द्वारा तृप्त किया हुआ हमारे मनोरथको पूर्ण करे (इदं नमः देवेभ्यः स्वगाः) यह हवि सब देवताओंके निमित्त हो, स्वयं पहुँचनेवाला है ॥ ५७ ॥

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतश्चक्षुषो वा । तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५८ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ० जगती छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (तत् अनु सुकृतां लोकं उ प्रेत) हे ऋत्विजो ! तुम उस प्रजापतिके किये हुए कर्मको सम्पादन करके पुण्यात्माओंके लोकको अवश्य प्राप्त होओ (यत् संभृतं आकूतात् या हृदः वा मनसः वा चक्षुषः समस्रोत्) जो कर्म पूर्ण सामग्री से युक्त है, तथा जो प्रजापतिके अभिप्राय वा हृदय वा मनसे, अथवा चक्षु आदि इन्द्रियोंसे ब्रह्माने रचा है, उसके करनेसे पवित्र लोकको गमन करो (यत्र प्रथमजाः पुराणाः ऋषयः जग्मुः) जिस लोकमें प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५८ ॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिञ्जातवेदाः । अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०त्रि० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (सधस्थं जातवेदाः यं शेवधिं आवहात्) हे देवताओंके स्थानभूतस्वर्ग ! सर्वज्ञ अग्निने सुखके खजानेरूप यज्ञके फलको जिसे सौंपा है (एतं ते परिददामि) इस यजमानको तुम्हारे अर्पण करता हूँ (यज्ञपतिः वः अन्वागन्ता) हे देवताओं ! यज्ञके समाप्त होनेपर यह यजमान तुम्हारे पास आवेगा (अत्र परमे व्योमन् तं जानीत स्म) इस उत्तम परम विस्तार वाले स्वर्गमें प्राप्त हुए उस यजमानको तुम जानो अर्थात् स्वर्गमें पहुँचनेपर सत्कार करो

एतज्जानाथ परमे व्योमन्देवाः सधस्था विदरूपमस्य । यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृण्वाथाविरस्मै ॥ ६० ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ० त्रि० छ०, अग्नि देवता है मन्त्रार्थ—(परमे व्योमन् सधस्थाः देवाः एतं जानाथ) उत्तम स्थान स्वर्गमें रहनेवाले हे देवताओं ! इस यजमानको जानो (अस्य रूपं विद) इसके रूपको जानो (यदा, देवयानैः पथिभिः आगच्छात्) जब देवयान मार्गोंसे आगमन करे (इष्टापूर्त्ते अस्मै आविः कृण्वाथ) तब श्रौत स्मार्त्त कर्मके फल इस यजमानके निमित्त प्रकाशित करो ॥ ६० ॥

उद्बुद्ध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० १५ कण्डिका ५४ ❀ में होगई ॥ ६१ ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञन्नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १। कण्डिका ❀ ५५ में होगई ॥ ६२ ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञन्नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६३॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, अनु० छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(नः प्रस्तरेण परिधिना, स्रुचा वेद्या बर्हिषा ऋचा इमं यज्ञं गन्तवे स्वः नय) हे अग्ने हमारे स्रुक्का आधार दर्भका मुट्ठा बाहुमात्रके तीन काठ, जुहू आदिवेदी कुशा ऋचा आदिसे संपन्न इस यज्ञको देवताओंमें प्राप्त करनेके निमित्त स्वर्गको लेजाओ ॥ ६३ ॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ६४

इसका विश्व० ऋ०, नि० अनु० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(वैश्वकर्मणः अग्निः नः तत् स्वः देवेषु दधत्) विश्वकर्माका अग्नि हमारे उस दानको स्वर्गलोक में देवताओंमें स्थापन करे (यत् दत्तं यत् परादानं यत पूर्तं च या दक्षिणाः) जो किजामाता आदिको दिया है जो परोपकारके निमित्त दुःखितोंको दिया है, जो स्मृतिके अनुसार कूपोत्सर्जन आदि किया है और जो यज्ञकी दक्षिणा हैं ॥ ६४ ॥

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ।६५।

इसका वि० ऋ० नि० अनु० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(वैश्वकर्मणः अग्निः तत् स्वः देवेषु नः दधत्) विश्वकर्मासम्बन्धी अग्नि तहाँ स्वर्गमें हमको स्थापन करे (यत्र, मधोः घृतस्य च याः धाराः अनपेताः) जहाँ शहदकी घृतकी और दूध दही आदि की धाराएँ क्षीण न होती हुई स्थित हैं ६५

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृतम्मऽआसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्म्मो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥

इसका देवश्रवा देववात ऋ०त्रि० छ० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ (जातवेदाः अर्कः त्रिधातुः रजसः विमानः अजस्रः अग्निः अजन्मा अस्मि) सब सृष्टिका स्वामी अर्चनीय यज्ञ त्रिवेदस्वरूप जलका निर्माता अविनाशी अग्नि उत्पत्तिसे हो मैंहूँ (मे चक्षुः घृतं) मेरी आँखें घृत हैं घृत होमने वालेको देखता हूँ (मे आस्यं अमृतम्) मेरे मुखमें हविरूप अमृत है (घर्मः नाम हविः अस्मि) मेघरूप और नामसे पुरोड़शादिक भी मैंहूँ

ऋचो नामास्मि यजूꣳषि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये ऽअग्नयः पाञ्चजन्या अस्याम्पृथिव्यमधि तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ ६७ ॥

इसमें २ मन्त्र हैं दोनोंका देवश्रवा देववात ऋषि छन्द क्रमसे आर्षी जगती और अनुष्टुप् है देवता क्रमसे आत्मा और अग्नि है मन्त्रार्थ-(ऋचः नाम अस्मि) ऋग्वेद नामवाला हूँ (यजूंषि नाम) यजुर्वेदनामक अग्नि हूँ (सामानि नाम अस्मि) सामवेद नामक मैं हूँ (अस्यां पृथिव्यां अधि ये पांचजन्याः अग्नयः तेषां त्वं उत्तमः असि) इस पृथिवीपर जो मनुष्योंके हितकारी अग्नि हैं हे यज्ञाग्ने तुम उनमें श्रेष्ठ हो (नः जीवातवे प्रसुव) हमारे चिरजीवनके निमित्त आज्ञा दो ॥ ६७ ॥

वर्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्त्तयामसि ॥ ६८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०गा०छ०इन्द्रदे०है इसका पाठ करे मन्त्रार्थ-(इन्द्र वार्त्रहत्याय च पृतनाषाह्याय शवसे त्वा आवर्तयामसि) हे इन्द्र ! वृत्रासुरके मारनेवाले शत्रुसेनाका तिरस्कार करनेमेंसमर्थ बलदर्शनके निमित्त तुम्हारा वारम्वार आवाहन करते हैं ६८

सहदानुम्पुरुहूतक्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक्कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्द्धमानम्पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋषि आर्षी त्रि० छ० इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(पुरुहूत इंद्र क्षियन्तं कुणारुं सहदानुं अहस्तं सम्पिणक् अनेकों वार भक्तोंसे आवाहन किए हुए हे इन्द्र निकट बसनेवाले दुर्वचन कहनेवाले शत्रुको हाथोंसे रहित करके चूर्ण करो (इन्द्र वर्धमाने पियारुं वृत्रं अपादं अभिजघन्थ) हे इन्द्र ! वृद्धिका प्राप्त होते देवताओंको मारनेवाले वृत्रासुर वा पापको गतिहीन करके मारो ॥ ६९ ॥

विन इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्मान् अभिदासत्यधरङ्गमया तमः ७०

इसकी व्याख्या अध्याय ८ मन्त्र ४४ में होगई ॥ ७० ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः। सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं विशत्रून्ताड्ढि विमृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

इसका जय ऋ०, त्रि० छं० इन्द्र देवता है मंत्रार्थ-('इन्द्र, भीमः कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न परस्याः परावतः आजगन्थ) हे इन्द्र ! भयानक दीखनेवाले डरावनी चालवाले पर्वतकी गुफामें सोनेवाले सिंह की समान अतिदूर स्थानोंसे आओ सृकं तिग्मं पविं संशाय शत्रून् विताड्ढि) शत्रुके शरीरमें प्रवेश करनेवाले तीक्ष्ण उत्साह भरे वज्रको पैना करके शत्रुओंको विशेषरूपसे ताड़ना करो (मृधः नुदस्व) संग्रामोंको विशेष प्रेरणा करो वा दूर करो ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥

इसका जय ऋ० गायत्री छ०, वैश्वानर देवता है। मंत्रार्थ-(वैश्वानरः अग्निः नः सुष्टुतीः उप नः ऊतये परावतः प्रयातु) सब प्राणियोंका हितकारी अग्नि देवता हमारी सुन्दर स्तुतियोंको सुननेके निमित्त और हमारी रक्षा करनेको दूर देशसे आवे

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश। वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निस्स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, त्रि०छ०, वैश्वानर देवता है। मंत्रार्थ-(वैश्वानरः अग्निः दिवि पृष्टः) सब प्राणियोंका हितकारी अग्नि देवता द्युलोकमें आदित्यरूपसे पूछा गया अर्थात् यह आदित्यरूप क्या है, इसप्रकार मुमुक्षुओंने प्रश्न करके विचार किया (पृथिव्यां पृष्टः) अन्तरिक्षमें जलके अभिलाषियोंने बूझा कि जो बिजलीरूपसे प्रकाश करता है यह कौन है ? (विश्वाः औषधीः आविवेश) जो सकल औषधोंमें प्रवेश करगया (सः पृष्टः) वह बूझा गया कि-जीवनके कारणरूप ताप पाक प्रकाश आदिसे प्रजाओंका उपकार करने वाला यह कौन है (सहसा पृष्टः) जो बलपूर्वक अध्वर्युसे मथा हुआ मनुष्योंसे बूझा गया कि यह कौन है जो अरणी काठमेंसे निकाला

जाता है (सः दिवा नक्तम् न रिषः पातु) वह अग्नि दिन रात वध वा कष्टसे हमारी रक्षा करे अथवा सर्वत्र अग्नि सूर्य विद्युत्-रूप परमात्मा है वह सदा हमारी रक्षा करे

अश्याम तङ्कामम्मग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवस्सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरन्ते ॥ ७४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, त्रि० छ० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ (अग्ने तव ऊती तं कामं अश्याम) हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षासे हम उस अभिलाषाको प्राप्त हों (रयिवः सुवीरं रयिं अश्याम) हे धनवन् ! आपकी कृपासे हम सुन्दर पुत्र और श्रेष्ठधनको पावें (वाजयन्तः वाजं अभि अश्याम) अग्निका पूजन करते हुए तुम्हारी कृपासे हम अन्नको सब ओरसे पावें (अजर ते अजरं द्युम्नं अश्याम) हे जरारहित ! तुम्हारे जीर्ण न होने वाले यशको पावें अर्थात् सदा यशस्वी हों ॥ ७४ ॥

वयन्ते अद्य ररिमा हि कामम्मुत्तानहस्ता नमसोपसद्य । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवान-स्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ७५ ॥

इसका उत्कील ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है मं०-(अग्ने, उत्तानहस्ताः वयं नमसा उपसद्य अद्य यजिष्ठेन अस्रेधता मन्मना मनसा कामं हविः ते रिरिम) हे अग्ने ! दानके निमित्त खुले हुए हैं हाथ जिनके ऐसे हमने नमस्कारपूर्वक निकट जाकर आज यज्ञ करनेमें तत्पर अनन्यगति एकाग्र देवताओंकी महिमा और आत्माके स्वरूपको जाननेवाले सावधान मनसे इच्छित हविको आपके अर्थ दिया (विप्रः देवान् यक्षि) हे अग्ने ! बुद्धिमान् तुम देवताओंको तृप्त करो ॥ ७५ ॥

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञम्प्रावन्तु नः शुभे ॥

इसका उत्कील ऋ० अनु०छ०, विश्वे-देवा दे० है। मन्त्रार्थ (धामच्छत् सः देवः अग्निः इन्द्रः ब्रह्मा बृहस्पतिः सचेतसः विश्वेदेवाः नः यज्ञं शुभे प्रावन्तु) लोकों की न्यूनताको पूर्ण करने वाले रीतोंको भरने वाले वा परमधाममें विराजमान, दिव्य-गुणधारी, अग्नि, देवराज इन्द्र, चतुर्मुख ब्रह्मा, देवगुरु बृहस्पति तथा परम बुद्धिमान् विश्वेदेवा वा सम्पूर्ण देवता हमारे यज्ञको इष्टस्थान स्वर्गमें स्थापन करें ॥ ७६ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुतत्मना ॥ ७७ ॥

इस मन्त्रकी व्याख्या अ० १३ मं० ५२ में होगई है, तिसका सरल भाव यह है कि–हे नित्यतरुण अग्निदेव ! तुम हमारी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंको सुनो यजमान के वंश और सम्बन्धियोंकी विना याचना के ही रक्षा करो ॥ ७७ ॥

इति श्री यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका भाषानुवाद सहित अष्टादश अध्याय समाप्त.

—०—

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

हरिः ॐ ॥ स्वाद्वीन्त्वा स्वादुना तीव्रान्तीव्रेणामृताममृतेन मधुमतीम्मधुमता सृजामि सꣳ सोमेन । सोमोस्यश्विभ्याम्पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व १

अब तीन अध्यायोंमें सौत्रामणि यज्ञके मन्त्र कहे जायँगे, इस यज्ञको धनसमृद्धि, पशुवृद्धि और छिने हुए राज्यको फिर चाहनेवाले करते हैं, सोमरस बनानेके मंत्र। मन्त्रार्थ-(स्वाद्वीं तीव्रां अमृतां मधुमतीं त्वा स्वादुना तीव्रेण अमृतेन मधुमता सोमेन संसृजामि) हे अन्नरस ! अतिस्वादु तीव्र अमृतकी समान मधुर और गुणकारी मीठे रससे भरे हुए तुझको, स्वादु तीव्र अमृत समान मधुररस भरे सोमके साथ मिलाता हूँ (सोमः असि) हे सोम मिले अन्नरस ! तुम सोम हो (अश्विभ्यां पच्यस्व) दोनों अश्विनीकुमारोंके निमित्त पको (सरस्वत्यै पच्यस्व) सरस्वतीके निमित्त पाचित होओ (सुत्राम्णे इन्द्राय पच्यस्व) रक्षा करनेवाले इन्द्रके निमित्त पाचित होओ १

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः । दधन्वायो नर्य्यो अप्स्वन्तरासुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० बृहती छ०, सोम दे० है । मन्त्रार्थ–(यः सोमः हविः वा यः नर्यः दधन्) हे ऋत्विजों ! जो सोम श्रेष्ठ हवि है और जो सोम मनुष्योंका हितकारी होता हुआ यजमानको धारण करता है (अप्सु अन्तः सोमं अद्रिभिः आसुषाव) जलोंमें वर्त्तमान जिस सोमको पत्थरोंसे अध्वर्युने अभिषुत किया है (सुतं इतः

परिषिञ्चत) उस अभिषुत सोमको इस गौके दूधसे सींचो अर्थात् देवताओंकी श्रेष्ठ हविमें गौका दूध मिलाओ ॥ २ ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यस्सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

इसमें २ मं० हैं। दोनोंका आभूति ऋ०, गायत्री छ०, सोम दे० है मन्त्रार्थ-(प्रत्यङ्, अतिद्रुतः सोमः वायोः पवित्रेण पूतः) अधोमुख शीघ्रतासे निकला हुआ सोम वायु देवताके पवित्रेसे शुद्ध हुआ (इन्द्रस्य युज्यः सखा) इन्द्रका योग्य सखा है अर्थात् हे सोम! तुम शीघ्र इस पात्रमें प्रवेश कर सकते हो वायु देवताके अनुग्रहसे तुम पवित्रेके द्वारा पवित्र होते हो, इन्द्रके योग्य प्यारे सखा हो (प्राङ् अतिद्रुतः सोमः वायोः पवित्रेण, पूतः सोमः इन्द्रस्य युज्यः सखा) पूर्वमुख निकला हुआ सोम वायुके पवित्रासे पवित्र हुआ जो कि-इन्द्रका योग्य सखा है अर्थात् हे सोम! तुम शीघ्र ही इस पात्रमेंसे निकल सकते हो, वायुदेवताके अनुग्रहसे तुम पवित्रेके द्वारा पवित्र होते हो ॥ ३ ॥

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्य्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥

इसका आभूति ऋ०, गायत्री छ० सोम देवता है । मंत्रार्थ-(सूर्यस्य दुहिता ते परिस्रुतं सोमं शश्वता तना पुनाति) हे यजमान! सूर्यकी पुत्री श्रद्धा तुम्हारे अभिषुत सोमको अनादि धनसे पवित्र करती है ॥ ४ ॥

ब्रह्म क्षत्रम्पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥

इसका आभूति ऋ०, त्रि० छ०, सोम दे० है। मन्त्रार्थ-(देव शुक्रेण देवताः पिपृग्धि) हे देवसोम! शुद्धवीर्यद्वारा अग्नि आदि देवताओंको प्रसन्न करो (रसेन अन्नं यजमानाय धेहि) घृतादि रस रहित अन्नको यजमानके अर्थ दो (सोमः सुतः ब्रह्म क्षत्रं तेजः इन्द्रियं पवते) सोम अभिषुत हुआ ब्राह्मणजाति, क्षत्रियजाति, कांति और इन्द्रियोंकी शक्तिको प्रकट करता है (सुरया आसुतः मदाय) पूर्वोक्त रससे तीव्र किया हुआ मदके निमित्त होता है ॥ ५ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेवैषाङ् कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णा एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्य्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

इसका काक्षीवत सुकीर्त्ति ऋ० विराट् पंक्ति छं०, सुरा सोम देवता है। मन्त्रार्थ- (यथा इह यवमन्तः कुवित् यवं चित् अनुपूर्वं वियूय अङ्ग दान्ति) हे सोम! जैसे इस लोकमें बहुत जौ वाले किसान बहुतसे जौको अर्थात् सकल यवमय सस्य को विचारकर क्रमसे पृथक् करके शीघ्र काटते हैं अर्थात् जैसे किसान अकेला होकर भी अपनी जोती हुई भूमिमें अति अधिक उत्पन्न हुए धान्यको क्रमसे काटता है ऐसे ही थोड़े भी तुम देवताओंको परम प्रिय हो (इह एषां भोजनानि कृणुहि) यहाँ इन यजमानोंके भोज्य पदार्थोंको सम्पादन करो (ये बर्हिषः नमः उक्तिं यजन्ति) जो कुशासन पर बैठे हुए हविरूप अन्नको लेकर मंत्रोच्चारण करते हुए होमते हैं (उपयामगृहीतः असि) हे सोम! तुम उपायामपात्रमें गृहीत हो (अश्विभ्यां त्वा) अश्विनीकुमारोंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (तेजसे त्वा) तेजके निमित्त तुमको यहाँ सम्पादन करता हूँ (सरस्वत्यै त्वा) हे पयोग्रह! तुमको सरस्वती देवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ (वीर्याय त्वा) हे दूसरे पयोग्रह! वीरता पानेके निमित्त तुमको यहाँ स्थापन करता हूँ (सुत्राम्णे इन्द्राय त्वा) हे तृतीय पयोग्रह! रक्षक इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (बलाय त्वा) यह तुम्हारा स्थान है बल के निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥६॥

नाना हि वान्देवहितꣳ सदस्कृतम्मा सꣳसृक्षाथाम्परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमा विशन्ती ॥ ७ ॥

इसका आभूति ऋ० जगती छ०, सुरासोम दे० है। अभिमंत्रण करे। मन्त्रार्थ- (हि वां देवहितं नाना सदः कृतं) हे सुरासोम! क्योंकि तुम दोनोंके, देवताओंके हितकारी पृथक्स्थान किये गए हैं (परमे व्योमन् मा संसृक्षाथाम्) इस कारण आकाशकी समान विशाल हवनस्थानमें संयोग मत करो, क्योंकि आहवनीयमें

दूध और दक्षिणाग्निमें सुरा होमी जाती है अतः अलग रहो (त्वं शुष्मिणी सुरा असि) हे सुरारस ! तुम बलवान् देवताओं के स्वीकार करने योग्य रसयुक्त हो (एषः सोमः स्वां योनिं प्रविशंती सोमं मा हिंसीः) यह सोम शान्त है इस कारण अपने स्थान दक्षिणाग्निमें प्रवेश करते हुए सोमको पीड़ा मत दो ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनन्तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रम् बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

इसका आभूति ऋ०, वि० आ० प० छ०, सोमदे० है । मन्त्रार्थ-(उपयामगृहीतः असि) उपयामपात्रमें गृहीत हो (तेजः आश्विनम्) तेजःस्वरूप तुमको अश्विनी-कुमारकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) हे प्रथम सुराग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है (मोदाय त्वा) आनन्द के निमित्त तुमको यहाँ स्थापन करता हूँ (वीर्यं सारस्वतं) हे द्वितीय सुराग्रह ! वीर्य-स्वरूप तुमको सरस्वती देवताकी प्रीति के निमित्त उपायामपात्रमें ग्रहण करता हूँ (आनन्दाय त्वा) हे द्वितीय सुराग्रह ! आनन्दकी प्राप्तिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ (बलं ऐन्द्रम्) हे तृतीय सुराग्रह ! बलकी प्राप्तिके निमित्त इन्द्रदेवताकी प्रसन्नताके अर्थ उपयाम-पात्रमें तुमको ग्रहण करता हूँ (महसे त्वा) हे तृतीय सुराग्रह ! महत्त्वको पानेकी कामना से तुमको यहाँ स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलम्मयि धेह्योजोस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

इसमें ६ मंत्र हैं । सबका आभूति ऋ०, है छन्द १ । ६ का आसुरी जगती २ । ३ । ५ का आसुरी त्रि०, ४ का प्राजा०अनु० और देवता १।२।३।५।६ का सुरासोम तथा ४ का सुरा है । मन्त्रार्थ-(तेजः असि तेजः मयि धेहि) हे दूध ! तेजको बढ़ाने वाले हो, मुझमें तेजको धारण करो (वीर्यं असि वीर्यं मयि धेहि) तुम वीरता हो मुझमें वीरताको स्थापन करो (बलं असि बलं मयि धेहि) तुम बल हो मुझमें बलको धारण करो (ओजः असि मयि ओजः धेहि) हे सुरारस ! तुम कान्ति हो मुझमें कान्तिको स्थापन करो (मन्युः असि मन्युं मयि धेहि) तुम अहंकार हो मुझमें सद्भावके अहंकार को धारण करो (सहः असि सहः मयि धेहि) तुम बल हो मुझमें बल स्थापन करो

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकञ्च रक्षति श्येनम्पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳसेमम्पात्वꣳहसः १०

इसका हेमवर्चि ऋ०, अनु० छं० विषूचिका दे० है। नाभिसे ऊपर नीचे इसको पढ़कर अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता यजमानको श्येनपिच्छसे पवित्र करे। मन्त्रार्थ-(या विषूचिका व्याघ्रं च वृकं उभौ रक्षति) जो सर्वत्र फैलनेवाला उदर रोग व्याघ्र और भेड़ियोंके समूहकी रक्षा करता है (श्येनं पतत्रिणं सिंहम्) श्येन पक्षी और सिंहकी रक्षा करता है (सा इमं अंहसा पातु) वह इस यजमानकी पापरूप व्याधिसे रक्षा करे अर्थात् सिंह भेड़िये आदिको विषूचिका रोग नहीं होता है तैसे ही हमारे इस यजमानको भी न हो ॥ १० ॥

यदापिपेष मातरम्पुत्रः प्रमुदितो धयन्। एतत्तदग्नेऽनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया।

सम्पृच स्थ सम्मा भद्रेण पंक्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥ ११ ॥

इसमें ३ मं० हैं। सबका हैमवर्चि ऋ० १ का बृहती २। ३ का त्रि० छ० है। दे० १ का अग्नि २ का पयोग्रह ३ का सुराग्रह है, १ से अध्वर्यु यजमानको अग्नि दिखावे मन्त्रार्थ-(प्रमुदितः धयन् अहं यत् मातरं आपिपेष अग्ने तत् एतत् अनृणः भवामि) अति प्रसन्नतासे स्तन पीते हुए पुत्ररूप मैंने जो माताको चरणोंसे ताड़ित किया हे अग्ने! वह मैं यह तुम्हारी साक्षीमें तीनों ऋणों से मुक्त होता हूँ। (मया पितरौ अहतौ) मुझसे माता पिता पीड़ित नहीं हुए अर्थात् जो पुत्र प्रत्युपकार नहीं कर सकता वही मा बापका हन्ता है। पयोग्रह को स्पर्श करे (सम्पृचः स्थ मा भद्रेण सम्पृक्तम्) हे पयोग्रह! संयोजक हो इस कारण मुझको कल्याणसे संयुक्त करो। सुराग्रहको स्पर्श करे। (विपृचः स्थ मा पाप्मना विपृङ्क्त) हे सुराग्रह! तुम वियोजक हो इस कारण मुझको पापसे अलग करो ॥ ११ ॥

देवा यज्ञमतन्वत भेषजन्भिषजाश्विना। वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः

यहाँ से २० कण्डिका ब्राह्मणरूप हैं। संस्कार-रहित रसको पीनेसे इन्द्रके बल वीर्य प्रधानताको असुरोंने हर लिया तब जो रात दिन त्याज्य मद्यको सुरा कह कर पीते हैं, उनके पतित होनेमें तो कुछ भी सन्देह नहीं है अतएव श्रुति कहती है। (देवाः भेषजं यज्ञं अतन्वत) देवताओंने इन्द्रके औषधरूप सौत्रामणि यज्ञको विस्तृत किया (भिषजा अश्विना सरस्वती वाचा वीर्याणि दधतः) वैद्य अश्विनीकुमार और

त्रयीरूप सरस्वती वाणीके द्वारा इन्द्रमें सामर्थ्य धारण की गई ॥ १२ ॥

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि । क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

(शष्पाणि दीक्षायै तोक्मानि प्रायणीयस्य रूपं लाजाः क्रयस्य सोमस्य रूपं मधु सोमांशवः) नए उत्पन्न हुए व्रीहि इस यज्ञ की दीक्षा के निमित्त आवश्यक होते हैं। नवीन प्ररूढ जौ प्रायणीय इष्टकारूप जानने खीलें मोल लिये सोमका रूप है, मीठी खीलें सोमके खण्ड हैं ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपम्मासरम्महावीरस्य नग्नहुः । रूपमुप सदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता १४

(मासरं आतिथ्यरूपम्) आतिथ्यके निमित्त व्रीहि श्यामाक लाजा आदि मिला हुआ चूर्ण है (नग्नहुः महावीरस्य) २६ वस्तुओंको मिला कर बना हुआ नग्नहु पदार्थ महावीरस्थानी है (तिस्रः रात्रीः आसुता सुरा उपसदां रूपम्) तीन रात अभिषवण किया हुआ सुरारस उपसद नामक इष्टि का रूप है ॥ १४ ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत् परिषिच्यते । अश्विभ्यान्दुग्धम्भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥ १५ ॥

(इन्द्राय ऐन्द्रं भेषजं सरस्वत्या अश्विभ्यां दुग्धं परिस्रुत् परिषिच्यते) इन्द्र के निमित्त इन्द्रसम्बन्धी औषध सरस्वती और अश्विनीकुमारोंके लिये दुहा हुआ दूध अभिषुत महौषधि रस सुराके संग तीन दिन सींचाजाता है वह (क्रीतस्य सोमस्य रूपम्) क्रय किये हुए सोमका रूप है अर्थात् सोमके साथ परिषेक करनेको अश्विनीकुमार सरस्वती और इंद्रके निमित्त भिन्न भिन्न प्रकारके दूधकी आवश्यकता है १५

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी । अन्तर उत्तरवेद्या रूपङ्कारोतरो भिषक् ॥ १६ ॥

(आसन्दी राजासन्द्यै) यजमानके अभिषेककी चौकी सोमकी मञ्चिकाका रूप है (सुराधानी कुम्भी वेद्यै) सुरा रखनेकी कलशी सोमकी वेदीका रूप है (अन्तरः

उत्तरवेद्याः रूपम्) दोनों वेदियोंका मध्य-भाग उत्तरवेदीका रूप है (कारोतरः भिषक्) सुरापावनकी चलनी इन्द्रकी औषधि है ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूप आप्यत प्रणीतो अग्निरग्निना १७

(वेद्या वेदिः समाप्यते) वर्त्तमान वेदी के द्वारा सोमकी वेदी भलेप्रकार प्राप्त होती है (बर्हिषा बर्हिः इन्द्रियम्) वर्त्तमान कुशा से सोमसम्बन्धी कुशा प्राप्त होती है तथा बल प्राप्त होता है (यूपेन यूपः आप्यते) वर्त्तमान यूपसे सोम-सम्बन्धी यूप प्राप्त होता है (अग्निना प्रणीतः अग्निः) वर्त्तमान अग्निसे प्रणीत नामक अग्नि प्राप्त होता है ।

हविर्द्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतम्पत्नीशालङ्गार्हपत्यः १८

(यत् अश्विना हविर्धानं) जो अश्विनी-कुमार हैं वह हविर्धान है (यत् सरस्वती आग्नीध्रम्) जो सरस्वती है वह आग्नीध्र है (इन्द्राय ऐन्द्रं सदः पत्नीशालं कृतं गार्हपत्यः) इन्द्रके निमित्त जो इन्द्रकी देवता वाला स्थान पत्नीशाल नामक रचा गया वह गार्हपत्य है ॥ १८ ॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥१९॥

(प्रैषेभिः प्रैषान् आप्नोति) भेजनेरूप प्रैष-नामक यज्ञ-कर्मोंसे प्रैषोंको पाता है (आप्रीभिः यज्ञस्य आप्रीः) प्रयाज याज्यों से यज्ञकी प्रसन्न करनेवाली क्रियारूप प्रयाजोंको पाता है (प्रयाजेभिः अनुयाजान्) प्रयाजोंसे उत्तम यज्ञकर्मरूप प्रयाजों को, अनुयाजोंसे अनुकूल यज्ञ पदार्थरूप अनुयाजोंको पाता है (वषट्कारेभिः आहुतीः) वषट्कारोंसे वषट्कारोंको और आहुतियोंसे आहुतियोंको पाता है ॥ १९ ॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींष्या । छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् २०

(पशुभिः पशून् आप्नोति) पशुओंसे पशुओंको पाता है (पुरोडाशैः हवींषि आप्नोति) पुरोडाश नामक हवियोंसे हवियोंको प्राप्त होता है (छन्दोभिः सामधेनीः) छन्दोंसे छन्दोंको, सामधेनियोंसे सामधेनियोंको प्राप्त होता है (याज्याभिः वषट्कारान्) याज्योंसे याज्योंको वषट्-कारोंसे वषट्कारोंको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धाना करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि । सोमस्य रूपꣳ हविष आमिक्षा वाजिनम्मधु

(धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयः दधि सोमस्य रूपम्) भुने हुए धान्य खीलें, उदमन्थ सत्तू, हविषपंक्ति, दूध, दही सोमका रूप है (आमिक्षा मधु वाजिनं हविषः) गरम दूधमें दही डालने पर होने वाला गाढ़ा भागरूप आमिक्षा, शहत और अन्न हविका रूप है। अर्थात् सोमकी सामग्री है ॥ २१ ॥

धानानाᳬं रूपं कुवलम्परीवापस्य गोधूमाः। सक्तूनाᳬं रूपम्बदरमुपवाकाः करम्भस्य २२

(कुवलं धानानां रूपं) इस यज्ञमें कोमल बेरके फल पूर्वोक्त धानकी खीलोंका रूप हैं (गोधूमाः परीवापस्य) गेहूँ हविष्पंक्ति का रूप हैं (बदरं सक्तूनां रूपं) बदरीफल सत्तुओंका रूप हैं (उपवाकाः करम्भस्य) जौ करम्भेका रूप है ॥ २२ ॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य रूपं वाजिनᳬं सौम्यस्य रूपमामिक्षा॥

(यत् यवाः पयसः रूपं) जो यव हैं वह दूधका रूप हैं (कर्कन्धूनि दध्नः रूपं) बड़े बदरीफल दहीका रूप हैं (वाजिनं सोमस्य रूपं) अन्न सोमका रूप है आमिक्षा सौम्यस्य) दधि मिला गरम दूध सोममें पके हुए चरुका रूप हैं ॥ २३ ॥

आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः। यजेति धाय्यारूपम्प्रगाथा ये यजामहाः २४

शास्त्रसम्पत्ति कहते हैं-(आश्रावय इति स्तोत्रियाः) सुनाओ यह शब्द स्तोता हैं (प्रत्याश्रावः अनुरूपः) पीछे सुनाया जाता है यह उत्तर तीन ऋचा वाले अनुवाकका रूप है (यज इति धाय्यारूपं) यजन करो यह शब्द धाय्याका रूप है (ये यजामहाः प्रगाथाः) ये यजामहे यह शब्द प्रगाथाका रूप है ॥ २४ ॥

अर्द्धर्चैरुक्थानाᳬं रूपम्पदैराप्नोति निविदः। प्रणवैः शस्त्राणाᳬं रूपम्पयसा सोम आप्यते

(अर्धर्चैः उक्थानां रूपं प्राप्यते) अर्द्ध ऋचाओंसे उक्थोंका रूप पाया जाता है (पदैः निविदः आप्नोति) प्रत्येक पदों से न्यूङ्खोंको पाता है (प्रणवैः शस्त्राणां रूपं) प्रणवोंसे शस्त्रोंका रूप पाया जाता है (पयसः सोमः) दूधसे सोम प्राप्त होता है २५

अश्विभ्याम्प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रम्माध्यन्दिनम्। वैश्वदेवᳬं सरस्वत्या तृतीयमाप्तᳬंसवनम्

सवनसम्पत्तिको कहते हैं-(अश्विभ्यां प्रातःसवनं) अश्विनीकुमारोंके द्वारा प्रातःसवन मिलता है (इन्द्रेण ऐन्द्रं माध्यन्दिनम्) इन्द्रके द्वारा इन्द्रदेवता वाला माध्यन्दिन सवन प्राप्त होता है (सरस्वत्या वैश्वदेवं तृतीयं आप्तम्) सरस्वतीके द्वारा

विश्वेदेवाका तीसरा सवन प्राप्त हुआ अर्थात् तीनों कालमें इन देवताओंकी आराधना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् । कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥ २७ ॥

(वायव्यैः वायव्यानि आप्नोति) वायव्य सोमपात्रोंके द्वारा वायव्य पात्रों को पाता है (सतेन द्रोणकलशम्) कलश को चलानेके वेतके पात्रसे द्रोणभरके कलश को पाता है (कुम्भीभ्यां अम्भृणौ सुते) दो छिद्रवाली झारी और दक्षिणाग्निपरके सुराधानी पात्रसे पूतभृत् और आधवनीय को सोमाभिषव होने पर पाता है (स्थालीभिः स्थालीः आप्नोति) स्थालियोंके द्वारा स्थालियोंका प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः। छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते

(यजुर्भिः ग्रहाः आप्यन्ते) यजुर्मंत्रोंके द्वारा ग्रह प्राप्त होते हैं (ग्रहैः स्तोमाः विष्टुतीः च) ग्रहोंके द्वारा स्तोम और अनेकों प्रकारकी स्तुति सम्पन्न होती हैं (छन्दोभिः उक्थाः शस्त्राणि) छन्दोंसे उक्थ और कथन करने योग्य स्तुतियें सम्पन्न होती हैं (साम्ना अवभृथः आप्यते) साम से अवभृथ प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् २९

(इडाभिः भक्षान् आप्नोति) अन्नोंसे भक्ष्य पदार्थोंको पाता है (सूक्तवाकेन आशिषः) सूक्तवाक्योंके द्वारा आशीर्वादों को पाता है (शंयुना पत्नीसंयाजान्) शंयुहोमसे शंयुको और पत्नीसंयाजसे पत्नीसंयाजोंको पाता है (समिष्टयजुषा संस्थाम्) यजुःसमूहसे संस्थाको पाता है ॥ २९ ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते

(व्रतेन दीक्षां आप्नोति) हुतशेष भक्षण रूप चार रात्रिके व्रतसे दीक्षाको पाता है (दीक्षया दक्षिणां आप्नोति) दीक्षासे दक्षिणा को पाता है (दक्षिणा श्रद्धां) दक्षिणासे आस्तिक्यबुद्धिको (श्रद्धया सत्यं आप्यते) और आस्तिक्यबुद्धि-रूप श्रद्धाके द्वारा सत्यस्वरूप परमात्माको पाता है ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥३१॥

(यत् देवैः ब्रह्मणा कृतम्) जो देवताओंने और ब्रह्मा प्रजापतिने किया है (यज्ञस्य एतावत् रूपम्) उस यज्ञका इतना ही रूप है (सौत्रामणी सुते यज्ञे तत् एतत् सर्वं आप्नोति सौत्रामणि यज्ञमें सुरासोमका अभिषवण होनेपर वह यह याग संपूर्ण प्राप्त होता है अर्थात् जो मद्यपान करते हैं वह भ्रष्ट होजाते हैं उनका तेज बल बुद्धि नष्ट होजाता है, जैसे कि-स्वर्गके अधिपति इन्द्रका जाता रहा, तब वह सौत्रामणिके द्वारा चिकित्सासे ठीक हुआ, इस कारण पुरुषको चाहिये कि-मद्यपानादि नीच कर्मों से बचे यही इस प्रकरणका औषधरूप उपदेश है ॥ ३१ ॥

सुरावन्तम्बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः । दधानाः सोमन्दिवि देवता सुमदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि सरस्वती इन्द्र दे० हैं। अध्वर्यु होम करे। मन्त्रार्थ—(नमोभिः दिवि देवतासु सोमं दधानाः महिषाः बर्हिषदं सुरावन्तं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति) नमस्कार वा अन्नोंके द्वारा स्वर्गमें स्थित देवताओंमें सोमको धारण करते हुए महान् ऋत्विज कुशासन पर बैठे हुए देवताओंसे युक्त सुरारसवाले और जिसमें श्रेष्ठ ऋत्विज हैं ऐसे सौत्रामणि यज्ञको प्राप्त कराते हैं, इस यज्ञमें (स्वर्काः इन्द्रं यजमानाः महेम) शुभ मंत्र वाले इन्द्रको यजन करते हुए हम हर्षको प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य। तेन जिन्व यजमानम्मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, आर्षी त्रि० छ०, सुरा दे० है। पलाश उलूखलसुराग्रहहोम-मन्त्रार्थ—(ओषधीषु यः ते रसः सम्भृतः सुरया सुतस्य सोमस्य शुष्मः) हे सुरारस ! ओषधियोंमें जो तुम्हारा रस इकट्ठा किया है, सुराके साथ अभिषुत सोमका बल है (तेन मदेन यजमानं सरस्वतीं अश्विनौ अग्निं जिन्व) उस आनन्दप्रद रस से यजमान सरस्वती,दोनों अश्विनीकुमार और अग्निको तृप्त करो ॥ ३३ ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय । इमन्तꣳ शुक्रम्मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

इसका हैम० ऋ० आर्षीत्रि० छ० अश्वि- सरस्वती दे० है । पयोग्रह भक्षण । मन्त्रार्थ—(आश्विना आसुरात् नमुचेः अधि यम् सरस्वती इन्द्रियाय असुनोत्) दोनों अश्विनीकुमारोंने असुरके पुत्र नमुचि के सकाशसे जिस सोमको आहरण किया, सरस्वतीने जिसको इन्द्रके बल वीर्य वा भैषज्यके लिये संस्कृत किया (तं शुक्रं मधुमन्तं इन्दुं राजानं इमं सोमं इह भक्षयामि) उस स्वच्छ मधुररसयुक्त परमऐश्वर्यवान् सरस्वतीसे संस्कृत राजा इस सोमको इस यज्ञमें भक्षण करता हूँ ॥ ३४ ॥

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः । अहन्तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

इसका हैम० ऋ०, ब्रा० उष्णि० छ०, यजमान दे० है, ग्रहपान। मन्त्रार्थ-(रसिनः सुतस्य यत् अत्र रिप्तं) रसवान् तथा भली प्रकार संस्कार किये हुए सोमका जो भाग इस रसमें लिप्त है (यत् शचीभिः इन्द्रः अपिबत्) जिसको कर्मों के द्वारा शुद्ध करके इन्द्रने पिया (तत् राजानं सोमं मनसा इह अहं भक्षयामि) उस दीप्तिमान् सुररससे निकले हुए सोमको शुद्ध मनसे इस यज्ञमें मैं पान करता हूँ ॥ ३५ ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः अक्षन्पितरोमीमदन्त पितरोतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥

इस कंडिकामें ७ मं० है । सबका हैम० ऋ० छ० १।७ का याजु० गा० २ का आसु० अनु० ३ का साम्नी अनु०, ४ का दैवी पंक्ति, ५ । ६ का याजु० अनु० है । देवता सबका पितर है । आश्विनग्रह होम । मंत्रार्थ-(स्वधायिभ्यः पितृभ्यः स्वधा नमः) स्वधाके प्रेमी पितरोंके अर्थ स्वधा नाम अन्नकी आहुति और प्रणाम प्राप्त हो सारस्वत सुरग्रह होम(स्वधायिभ्यः पितामहेभ्यः स्वधा नमः)स्वधाके प्रेमी पितामहोंके अर्थ स्वधारूप अन्नकी आहुति और प्रणाम प्राप्त हो । ऐन्द्र सुराग्रह होम (स्वधायिभ्यः प्रपितामहेभ्यः स्वधा नमः) स्वधाके प्रेमी प्रपितामहोंके अर्थ स्वधानाम अन्न

और प्रणाम प्राप्त हो। सुराग्रहप्रक्षालनजल का आहवनीय अंगारके उत्तरमें छिड़के (पितरः अक्षन्) पितरोंने अपने आहार को भक्षण किया (पितरः अमीमदन्त) पितर तृप्त हो आनन्दित हुए (पितरः अतीतृपन्त) पितर अत्यन्त तृप्त हुए। इसको पढ़े (पितरः शुन्धध्वम्) हे पितरों ! आचमन द्वारा शुद्ध होओ ॥ ३६ ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ३७

इसका हैम० ऋ०, अनु० छ०, पितर देवता है। इसको पढ़े। मंत्रार्थ-(सोम्यासः पितरः शतायुषा पवित्रेण मा पुनन्तु) सौम्यमूर्त्ति पितर पूर्ण आयु देने वाले पवित्रसे मुझको पवित्र करें (पितामहाः मा पुनन्तु) पितामह मुझको पवित्र करें प्रपितामहाः पुनन्तु) प्रपितामह पवित्र करें (पितामहाः शतायुषा पवित्रेण मा पुनन्तु) पिताके पिता शतायु देनेवाले पवित्रसे मुझे पवित्र करें (प्रपितामहाः पुनन्तु) प्रपितामह मुझको अति पवित्र आनन्दयुक्त सौ वर्षकी आयुसे पवित्र करें (विश्वं आयुः व्यश्नवै) इसप्रकार मैं संपूर्ण आयुको पाऊँ ॥ ३७ ॥

अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है मन्त्रार्थ—(अग्ने आयूंषि पवसे) हे अग्ने ! तुम आपही आयु प्राप्त करानेवाले कर्मोंको करते हो (नः इषं ऊर्जं आसुव) हमको धान आदि अन्न और दही आदि रस दीजिये (आ दुच्छुनां बाधस्व) दूर स्थित दुष्ट कुत्तोंकी समान दुर्जनोंको बाधा दो, जिससे हम उनके आक्रमणसे बचें ॥ ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥

इसका वैखानस ऋ० अनु० छ० देवजनधीविश्वभूतजातवेदस दे० हैं। मंत्रार्थ- (देवजनाः मा पुनन्तु) देवानुगामी भक्तजन मुझको पवित्र करें (मनसा धियः पुनन्तु) मनसहित बुद्धि वा मनको पवित्र करें (विश्वा भूतानि पुनन्तु) सकल प्राणी मुझको पवित्र करें (जातवेदः मा पुनीहि) हे अग्ने ! तुम भी मुझको पवित्र करो ३९

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु ॥ ४० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(देव अग्ने दीद्यत् शुक्रेण, पवित्रेण मा पुनीहि) हे देव अग्ने! दीप्तिमान् तुम शुद्ध पवित्रेसे अर्थात् शुद्ध ज्योतिके द्वारा मुझको पवित्र करो (क्रतून् अनु क्रत्वा) हमारे यज्ञको देख कर अपने ज्वलनादि कर्मोंसे पवित्र करो ॥४०॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

इसका प्रजापति ऋ० गायत्री छन्द ब्रह्माग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(अग्ने ते अर्चिषि अन्तरा यत् ब्रह्म पवित्रं विततं तेन मा पुनातु) हे अग्ने! तुम्हारी ज्वाला के मध्यमें जो त्रयीरूप शुद्ध ब्रह्म विस्तृत है उसके प्रभावसे मुझको पवित्र करो ४१

पवमानस्तो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

इसका प्रजा० ऋ० गाय० छ० वायु देवता है। मंत्रार्थ—(यः विचर्षणिः पवमानः नः पोता) जो देव किये न किये को जानने वाला स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करने वाला है (सः अद्य पवित्रेण मा पुनातु) वह आज पवित्रसे मुझे पवित्र करे

उभाभ्यान्देव सवितः पवित्रेण सवेन च। माम्पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

इसका प्रजापति० ऋ० गाय० छन्द सूर्य देवता है। मन्त्रार्थ—(देव सवितः उभाभ्यां पवित्रेण च सवेन मां विश्वतः पुनीहि) हे देव सबके प्रेरक! तुम दोनोंसे अर्थात् शुद्ध करनेवाले पवित्रेके द्वारा और आज्ञाके द्वारा मुझको सब ओरसे पवित्र करो क्योंकि-तुम्हारी आज्ञासे यज्ञसिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्वयस्तन्वोवीतपृष्ठाः। तया मदन्तस्सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

इसका प्रजापति० ऋ० त्रि० छ० वैश्वदेवी देवता है। मन्त्रार्थ-(देवी पुनती वैश्वदेवी आगता) नाना प्रकारके अवतारोंसे क्रीड़ा करने वाले महानारायणकी शक्ति पवित्र करती हुई विश्वभरको प्रकाशित करने वाली परानामक प्राप्त हुई। (यस्यां इमाः बह्वयः तन्वः वीतपृष्ठाः) जिसमें दीखते हुए यह बहुतसे शरीरधारी स्तुति करने वाले हैं (तया सदमाधेषु मदन्तः वयं रयीणां पतयः स्याम) उस परा शक्तिसे यज्ञस्थानोंमें आनन्द पाते हुए हम धनोंके स्वामी हों। ४३ ॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ४५

इसका प्रजा० ऋ० अनु० छ० पितर देवता है । अपसव्य दक्षिणमुख होकर यजमान एकवार लिये हुए घृतको जुहूसे अग्निमें होमे । मन्त्रार्थ-(ये समानाः समनसः पितरः यमराज्ये) जो जाति मर्यादा आदिसे समान सपिण्डपितर यमलोकमें वर्त्तमान हैं (तेषां लोकः स्वधा नमः यज्ञः देवेषु कल्पताम्) उन पितरोंके लोकमें स्वधा नामक अन्न दृष्टिगोचर हो अथवा स्वधा अन्न और नमस्कार प्राप्त हो पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओं को तृप्त करनेमें समर्थ हो ॥ ४५ ॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳसमाः

इसका प्रजा० ऋ० अनु० छ० श्री दे० है । यजमान उपवीती होकर उत्तरवेदीमें आहुति देय । मंत्रार्थ-(ये जीवेषु समानाः समनसः मामकाः जीवाः) जो प्राणियोंमें समदर्शी मनस्वी हमारे सपिण्ड पितर हैं (तेषां श्रीः अस्मिन् लोके शतं समाः मयि कल्पताम्) उनकी लक्ष्मी इस भूलोकमें सौ वर्ष पर्यन्त मुझमें रहे ॥ ४६ ॥

द्वे सृती ऽअश्रृणवम्पितॄणामहन्देवानामुत मर्त्यानाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरम्मातरञ्च ॥ ४७ ॥

इसका प्रजा० ऋ० त्रि० छ० देवयान पितृयान मार्ग देवता है । दूधका होम करे मन्त्रार्थ-(अहं मर्त्यानां देवानां उत पितॄणां द्वे सृती अश्रृणवम्) मैंने मरणधर्मी प्राणियों के देवताओंके और पितरोंके गमन करने योग्य दो मार्गोंको सुना है (यत् पितरं च मातरं अन्तरा इदं एजत् विश्वं ताभ्यां समेति) जो द्युलोक और भूलोकके मध्यमें वर्त्तमान है यह क्रियावान् जगत् उन दोनों मार्गोंसे प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

इदꣳ हविः प्रजननम्मे अस्तु दश वीरꣳ सर्व्वगणꣳस्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि अग्निः प्रजाम्बहुलाम्मे करोत्वन्नम्पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥

इसका प्रजा० ऋ०, त्र्यवसानाष्टि छ०, यजमानाशीः दे० है । दूध पिये । मन्त्रार्थ-(इदं प्रजननं दशवीरम्) यह प्रजाको उत्पन्न करनेवाला तथा दशप्राण और दश इन्द्रियोंको उन्नति देने वाला है (सर्वगणं) सब अङ्गोंको पुष्टिदाता (आत्मसनि) आत्मा

को प्रसन्नकर्त्ता (प्रजासनि) प्रजाको उन्नतिदाता (पशुसनि) पशुवृद्धिकारी (लोकसनि) लोकमें प्रतिष्ठदायक (अभयसनि) बल देकर अभय करने वाला (हविः मे स्वस्तये अस्तु) वह हवि मुझे कल्याणदायक हो (अग्निः मे प्रजां बहुलां करोतु) अग्निदेवता मेरी प्रजाको बहुत करे। (अस्मासु अन्नं पयः रेतः धत्त) हमारे विषें अन्न, दूध और वीर्यको धारण करे ॥ ४८ ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मद्ध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

इसका शंख ऋ०, त्रि० छ०, पितर दे० है पितरोंका उपस्थान करे। मंत्रार्थ-(अवरे उत् परासः उत् मध्यमाः सोम्यासः उदीरताम्) इस लोकमें स्थित पितर और परलोकमें स्थित पितर और मध्यलोकमें स्थित सोमभागी पितर क्रमसे ऊपरके लोकको प्राप्त हों (ये असुं ईयुः ते अवृकाः ऋतज्ञाः पितरः हवेषु नः अवन्तु) जो पितर प्राणरूपको प्राप्त हैं वह शत्रुरहित होनेसे निरपेक्ष सत्यके ज्ञाता, स्वाध्यायनिष्ठ पितर आह्वानोंमें हमारी रक्षा करें ॥ ४९ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

इसका शंख ऋ० त्रि० छ० पितर दे० है। मंत्रार्थ-(नवग्वा सोम्यासः अंगिरसः अथर्वाणः भृगवः नः पितरः) स्तुतिके योग्य वा नवीन गतिवाले, सोमसम्पादक, अङ्गिरावंशी अथर्ववंशी, भृगुवंशी हमारे पितर अर्थात् जो इस समय पितृलोक धामको प्राप्त हुए हैं (तेषां यज्ञियानां सुमतौ भद्रे सौमनसे अपि वयं स्याम) उन यज्ञमें पूजनीय पितरोंकी सुन्दर बुद्धिमें तथा कल्याणकारक सुन्दर मनमें भी हम हों अर्थात् इनकी बुद्धि और मन हमारा कल्याण करनेमें लगे ॥ ५० ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० ब्रा० उ० छ०, पितर दे० है। मंत्रार्थ-(ये सोम्यासः

वसिष्ठाः नः पूर्वे पितरः सोमपीथं अनूहिरे) जिन सोमसम्पादक वसिष्ठवंशी हमारे पूर्व पितरोंने सोमपानके निमित्त देवताओंका आवाहन किया था, वह ही इस समय सोमपानके निमित्त आमंत्रित हुए हैं (उशन् यमः तेभिः उशद्भिः संरराणं प्रतिकामं हवींषि अत्तु) सोमकी इच्छावाला पितृपति उन सब पितरोंके सहित प्रसन्न होता हुआ हमारी दीहुई हवियोंको यथेष्ट भक्षण करे ॥ ५१ ॥

त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् । तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ५२ ॥

इसका शंख ऋ०,ब्राह्मी उ० छ० पितर दे० है। मंत्रार्थ (सोम त्वं प्रचिकितः) हे सोम ! तुम कान्तियुक्त वा चेतनतायुक्त हो (त्वं मनीषा रजिष्ठं पन्थां अनुनेषि) तुम अपनी बुद्धिके द्वारा अतिसरल देवयानमार्गको प्राप्त कराते हो (इन्दो नः धीराः पितरः तव प्रणीती देवेषु रत्नम् अभजन्त) हे सोम ! हमारे धैर्यवान् पितरों ने तुम्हारे आश्रयसे देवताओंमें श्रेष्ठ यज्ञफलको पाया है ॥ ५२ ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्म्माणि चक्रुः पवमान धीराः । वन्वन्नवातः परिधीꣳरपोर्णुहि वीरेभिरश्वैर्म्मघवा भवानः ॥ ५३ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी त्रि० छ०, सोम दे० है मन्त्रार्थ-(पवमान सोम नः धीराः पितरः त्वया कर्माणि चक्रुः) हे शुद्ध करनेवाले सोम ! हमारे धीर पितरों ने तुम्हारे द्वारा यज्ञादि कर्मोंको किया इस कारण प्रार्थना करते हैं कि (वन्वन् अवातः परिधीन् अपोर्णुहि) इस कर्ममें लगे हुए वात आदिके उपद्रवोंसे रहित तुम उपद्रवकारियोंको दूर करो (वीरेभिः अश्वैः नः मघवा आभव) वीर अश्वोंके द्वारा हमको सब ओरसे धन देनेवाले हूजिये ५३

त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आततन्थ । तस्मै ते इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ५४ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रा० उ० छ०, पितर दे० है। मन्त्रार्थ (सोम पितृभिः संविदानः त्वं द्यावापृथिवी अन्वाततन्थ) हे सोम ! पितरोंके साथ सम्वाद करते हुए

तुमने स्वर्ग और पृथिवीको विस्तारित किया है (इन्दो तस्मै ते हविषा विधेम) हे सोम ! उन तुम्हारे अर्थ हविके द्वारा विधान करते हैं (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम धनोंके स्वामी हों ॥ ५४ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमावो हव्या चकृमाजुषध्वम् । त आगतावसा शन्तमेनाथा शंयोररपो दधात ॥ ५५ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् है । बर्हिषद् पितरोंका उपस्थान । मन्त्रार्थ (बर्हिषदः पितरः ते ऊत्या अर्वाक् आगत) हे कुशासन पर विराजमान होनेवाले पितरों ! वह तुम रक्षाके निमित्त कल्याणबुद्धिसे समीप आइये (वः इमा हव्या चकृम) तुम्हारे यह हवि हमने संस्कृत किये (आजुषध्वम्) तुम इनको सेवन करो (अथ शन्तमेन अवसा नः शंयो अरपः दधात) और परम सुखदायक अन्नसे तृप्त होकर हमको सुख अभय और पापका अभाव धारण करो५५

आहम्पित्दन्त्सुविदत्रान् अवित्सि नपातञ्च विक्रमणञ्च विष्णोः बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ५६ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी त्रि० छ०, पितर दे० है। मन्त्रार्थ-(अहं, सुविदत्रान् पित्दन् आअवित्सि) मैं कल्याण देने वाले पितरोंको अभिमुख जानता हूँ (विष्णोः नपातं च विक्रमणं च ये बर्हिषदः पितरः स्वधया सुतस्य पित्वः भजन्ते ते आगमिष्ठाः) व्यापक और अच्युत देवयान मार्गको और अनेक प्रकारके गमनवाले कि-जहाँसे लौटकर आना पड़ता है उस पितृयान मार्गको मैं जानता हूँ जो कुशासन पर बैठनेवाले पितर स्वधा अन्नके साथ अभिषुत सोमपानको सेवन करते हैं वह यहाँ आगमन करें ॥ ५६ ॥

उपहूताः पितरस्सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

इसका शंख ऋ० भुरिगार्षी पंक्ति छ०, पितर दे० है मन्त्रार्थ (पितरः इह आगमन्तु) हे पितरों इस यज्ञमें आगमन करो (प्रियेषु, बर्हिष्येषु निधिषु उपहूताः

सोम्यासः ते श्रुवन्तु) प्रिय कुशाओं पर स्थित निधिकी समान स्थापित हवियोंके निमित्त बुलाये हुए जो सोमके योग्य पितर हैं, वह हमारे आवाहनको सुनें (ते, अधिब्रुवन्तु ते अवन्तु) वह पिताओं को पुत्रोंसे जो कहना चाहिये सो कहें वह हमारी रक्षा करें ॥ ५७ ॥

आयन्तुनः पितरस्सोम्यासोग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तो-धिब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

इसका शंख ऋ०, स्व० ब्राह्मो गाय० छ०, पितर दे० है। अग्निष्वात्त पितरोंका उपस्थान करे। मन्त्रार्थ-(सोम्यासः अग्निष्वात्ताः नः पितरः देवयानैः पथिभिः आयन्तु) सोमके योग्य अग्नि करके स्वादित हमारे पितर देवयान मार्गोंसे आवें (अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तः अधिब्रुवन्तु) ते अस्मान् अवन्तु) इस यज्ञमें स्वधानाम अन्नसे प्रसन्न होते हुए मानसिक उपदेश दें और हमारी रक्षा करें ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदत सुप्रणीतयः । अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्या रयिꣳ सर्ववीरन्दधातन ॥ ५९ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० ब्रा० अनु० छ०, पितर दे० है मन्त्रार्थ (अग्निष्वात्ताः पितरः इह आगच्छत) हे अग्निष्वात्त पितरो हमारे इस यज्ञमें आओ (सुप्रणीतयः सदः सदः सदत) सुन्दर नीतिवाले तुम प्रत्येक सभास्थानमें विराजो (बर्हिषि, प्रयतानि हवींषि आ अत्त) कुशाओं पर नियमसे स्थापित हवियोंको सब प्रकारसे भक्षण करो (अथ सर्ववीरं रयिं आदधातन) और सकल वीर पुत्रादि तथा धनको सब ओरसे लाकर स्थापन करो ॥ ५९ ॥

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वङ्कल्पयाति ॥ ६० ॥

इसका शंख ऋ० ब्रा० उ० छ०, पितर दे० है मन्त्रार्थ-(ये अग्निष्वात्ताः ये अनग्निष्वात्ताः दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते) जिन पितरोंका विधिपूर्वक अग्निदाह करके और्ध्वदैहिक कर्म हुआ और जिनका अग्निसे दाह नहीं हुआ है और द्युलोकमें अपने उपा-

र्जित कर्मके भागसे प्रसन्न रहते हैं (स्वराट् तेभ्यः यथावकाशं एतान् असुनीतिं तन्वं कल्पयाति) स्वर्गपति धर्मराज उन पितरों को इच्छानुसार इस मनुष्य सम्बन्धवाले प्राणयुक्त शरीरको देता है, अर्थात् यमकी आज्ञासे उनको स्वकर्मानुसार पवनाश्रित शरीर मिलता है और वह अपने पुत्रादिके शास्त्रोक्त आवाहनमें जाते हैं, उनके निमित्त दिया हुआ अन्न विश्वेदेवाओंके द्वारा सूक्ष्मभावसे प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य आशुः । ते नो विप्रासः सुहवा भवंतु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६१ ॥

इसका शंख ऋ० आर्षी त्रि०, छं०, पितर दे०है, मन्त्रार्थ-(ऋतुमतः अग्निष्वात्तान् हवामहे) ऋतुमान् अग्निष्वात्त नामक पितरोंको हम बुलाते हैं (ये नाराशंसे सोमपीथं आशुः) जो पितर चमसपात्रमें सोमपानको भोजन करते हैं (ते विप्रासः नः सुहवा भवन्तु) वह वेदाध्ययन सम्पन्न पितर हमारे सुख से बुलाने योग्य हों (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम धनोंके स्वामी हों ॥ ६१ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे । मा हिꣳसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

इसका शंख ऋ० नि० त्रि० छं०, पितर देवता है । मन्त्रार्थ-(पितरः विश्वे जानुः आआच्य दक्षिणतः निषद्य इमं यज्ञं अभिगृणीत) हे पितरों! तुम सब वामजंघाको सबप्रकार झुका कर दक्षिणमुख बैठकर इस यज्ञकी प्रशंसा करो (केनचित् नः मा हिंसिष्ट) चित्तकी चंचलतावश किसी प्रकारका अपराध होनेसे हमारे ऊपर क्रोध मत करो (यत् पुरुषता वः आगः वयं कराम) क्योंकि-मनुष्यस्वभाववश तुम्हारा अपराध हमसे भूलसे बन जाता है, उसको क्षमा करना ॥ ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिन्धत्त दाशुषे मर्त्याय । पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जन्दधात ॥ ६३ ॥

इसका शंख ऋ०, ब्रा० उ० छ० पितर दे० है । मन्त्रार्थ (पितरः अरुणीनां उपस्थे आसीनासः दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त) हे पितरों! लालऊनके आसनों पर वा

अरुणवर्ण सूर्यकी किरणोंमें स्थित सूर्य लोककी गोदमें बैठे हुए हवि देनेवाले यजमानको धन दो (पुत्रेभ्यः तस्य वसुनः प्रयच्छत) इसके पुत्रोंको इसका धन दो (ते इह ऊर्जं दधात) वह इस यजमानके यज्ञमें आनन्दरस दें ॥ ६३ ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वञ्चिन्मन्यसे रयिम् । तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यन्देवत्रापनया युजम् ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी अनु० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(कव्यवाहन अग्ने त्वं चित् यं रयिं मन्यसे) हे पितरोंको अन्न पहुँचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिस हविरूप धनको उत्तम जानते हो (नः तं गीर्भिः श्रवाय्यं युजं देवत्रा आपनय) हमारे उस वषट्कार आदि वाणियोंसे सुननेयोग्य उचित हविको देवताओंके पास सब ओरसे पहुँचाओ ॥ ६४ ॥

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः । प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥

इसका ऋ० आदि पूर्ववत् है । मंत्रार्थ-(यः कव्यवाहनः अग्निः ऋतावृधः पितॄन् यक्षत्) जो कव्य पहुँचाने वाला अग्नि सत्य वा यज्ञको बढ़ानेवाले पितरोंका यजन करता हुआ (उ इत् देवेभ्यः च पितृभ्यः हव्यानि आ प्रवोचति) वही अग्नि देवताओंके और पितरोंके अर्थ हवियों को सब ओरसे जतलाता है ॥ ६५ ॥

त्वमग्न ईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वन्देव प्रयता हवीꣳषि ॥ ६६ ॥

इसका शङ्ख ऋ० नि० त्रि० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(कव्यवाहन अग्ने ईडितः त्वं हव्यानि सुरभीणि कृत्वी अवाट्) हे कव्य पहुँचाने वाले अग्निदेव ! ऋत्विजोंसे स्तुति किये हुए तुम हवियोंको मनोहर गन्धयुक्त करके पहुँचाते हो (स्वधया पितृभ्यः प्रादाः) पितृमन्त्रोंसे पितरोंको दो (ते अक्षन्) उन पितरोंने भक्षण किया । (देव त्वं प्रयता हवींषि अद्धि) हे देव तुम शुद्ध हवियोंको भक्षण करो ॥ ६६ ॥

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यान् उ च न प्रविद्म । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्य्यज्ञꣳ सुकृतञ्जुषस्व ॥ ६७ ॥

इसका शङ्ख ऋ० आ० उ० छ० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(ये पितरः इह च इह

न) जो पितर इस लोकमें हैं जो पितर इस लोकमें नहीं हैं, अर्थात् स्वर्गमें हैं (च यान् विद्मः च यान् न प्रविद्मः) और जिन पितरों को हम जानते हैं और जिनको स्मरण न होनेसे नहीं जानते हैं। (जातवेदः ते यति त्वम् उ वेत्थ) हे अग्ने! वह पितर जितने हैं। तुम ही जानते हो (स्वधाभिः सुकृतं जुषस्व) पितरोंके यज्ञद्वारा श्रेष्ठ अन्नको सेवन करो ॥ ६७ ॥

इदम्पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥ ६८ ॥

इसका शंख ऋ०, ब्रा० उ० छ० पितर दे० है। मन्त्रार्थ-(अद्य इदं नमः पितृभ्यः अस्तु) आज यह अन्न पितरोंके निमित्त हो (ये पूर्वासः ये उ परासः ईयुः) जो पहिले स्वर्गमें जा चुके हैं जो कृतकृत्य होकर परब्रह्मको प्राप्त हुए हैं (ये पार्थिवे रजः निषत्ताः) जो पृथिवीपर होनेवाली अग्निरूप ज्योतिमें स्थित हैं वा स्वर्गमें स्थित हैं (वा ये नूनं सुवृजनासु विक्षु) अथवा जो पितर अवश्य ही धर्मरूप बलयुक्त प्रजाओं में देह धारण किये वर्त्तमान हैं, उन पितरों के निमित्त हम अन्न देते हैं। अथवा। जो (पूर्वासः) यजमानसे पूर्व उत्पन्न ज्येष्ठ भ्रातृपितामहादि (ईयुः) पितृलोकको प्राप्तहुए हों, जो (उपरासः) यजमानका जन्म होनेके उपरांत उत्पन्न हुए छोटे भ्राता पुत्र आदि पितृलोकको प्राप्त हुए हैं (पार्थिवे रजसि आनिषत्ताः) रजोगुणकार्यमें हवि स्वीकार करनेको आकर बैठे हैं उनको आहुति देते हैं ॥ ६८ ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमा शुषाणाः। शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ६९ ॥

इसका शंख ऋ०, आ० त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(अग्ने नः परासः प्रत्नासः ऋतं आशुषाणाः पितरः यथा अधा, शुचि दीधितिं इत् अयन्) हे अग्ने! हमारे उत्तम पुरातन यज्ञको पाने वाले पितर जैसे देहयात्राके अनन्तर निर्मल कान्तिवाले सूर्यमण्डलरूप देवयानमार्गको ही प्राप्तहुए (उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तः अरुणीः अपव्रन्) यज्ञोंमें शस्त्रनामक स्तोत्रोंको पढ़नेवाले और पृथ्वीको वेदीके निमित्त खोदते हुए अर्थात् सब सामग्रीसे यज्ञ करते हुए हम भी सूर्यसम्बन्धी ज्योतिमार्गको पावें ॥ ६९ ॥

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ७०

इसका शंख ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (उशन्तः त्वा निधीमहि) हे अग्ने ! तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उशन्तः समिधीमहि) यज्ञकी इच्छासे तुमको प्रज्वलित करते हैं (उशन् उशतः पितॄन् हविषे, अत्तवे आवह) चाहते हुए तुम हवि चाहनेवाले पितरोंको हवि भक्षण करनेके निमित्त बुलाओ ॥ ७० ॥

अपाम्फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ ७१ ॥

इसका शंख ऋ०, गाय० छ० इन्द्र दे० है। मन्त्रार्थ (इन्द्र यत् विश्वाः स्पृधः अजयः) हे इन्द्र जब तुमने संपूर्ण संग्राम जीते (अपां फेनेन नमुचेः शिरः उद्वर्त्तयः) तब जलोंके झागसे नमुचि दैत्यका शिर काटा अर्थात् पापरूप नमुचिको मार कर बल धारण किया ॥ ७१ ॥

सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ऋतेन सत्यमिन्द्रियꣳ विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७२ ॥

इसके अश्वि-सरस्वती-इन्द्र ऋ०, महाबृहती छ०, सोम दे० है। यहाँसे पयोग्रहका उपस्थान करे । मन्त्रार्थ-(सुतः राजा सोमः अमृतम्) अभिषुत वनस्पतियोंका राजा सोम अमृतरूप होता है (ऋजीषेण, मृत्युं अजहात्) नीरस स्थूल सोमलताके चूर्णसे स्थूलभागको त्यागा अर्थात् स्थूलभागको अलग करने पर यह रसभाग अमृतरूप है (ऋतेन, सत्यं) इस सत्य वा यज्ञके द्वारा सत्यरूप परमात्माको जाना (इन्द्रस्य इदं अन्धसः शुक्रं इन्द्रियं विपानं इन्द्रियं अमृतं मधु पयः) इन्द्रका यह अन्न वा सोम-सम्बन्धी शुद्ध वीर्यदायक पान बलकारक अजर अमरता देनेवाला मीठा दूध है ॥ ७२ ॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्कुङ्ङाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७३ ॥

इसका ऋषि छन्द पूर्ववत् और ग्रह दे० है। मन्त्रार्थ-(आङ्गिरसः कुङ् धियः

अद्भ्यः क्षीरं अपिबत्) अङ्गोंके रसको प्राण ऐसे पीता है, जैसे हंस बुद्धिके द्वारा जलोंमेंसे दूधको पीता है ॥(ऋतेन सत्यं शेषं पूर्ववत्) इस सत्यसे सत्य जाना जाता है शेष पूर्व मन्त्रकी समान जानना।

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७४ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(शुचिषत् हंसः अद्भ्यः छन्दसा सोमं व्यपिबत्) निर्मल आकाशमें विचरनेवाले आदित्यने जल मिले सोमको जलोंमेंसे वेदके द्वारा वा किरणोंके द्वारा अलग करके पिया । शेष पूर्ववत् ॥ ७४ ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसम्ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७५ ॥

इसका ऋषि अश्वि-सरस्वती-इन्द्र, अतिजगती छन्द, ग्रह देवता है मंत्रार्थ-(प्रजापतिः परिस्रुतः अन्नात् रसं सोमम् पयः विविच्य व्यपिबत्) प्रजापतिने परिस्रुत अन्नसे रसरूप सोमरूप दूधको गायत्री लक्षणसे विचारकर पिया (क्षत्रं) क्षत्रिय को वशमें किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिम्प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत उल्वञ्जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७६ ॥

इसका अतिशक्वरी छ० है, ऋषि आदि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(इन्द्रियं योनिं प्रविशत् रेतः मूत्रम् विजहाति) इन्द्रिय योनिमें प्रवेश करताहुआ वीर्यको छोड़ता है तथा अन्यत्र मूत्रको त्यागता है अर्थात् एक ही मार्गसे कार्य-वश भिन्न २ वस्तु निकलती हैं इस वीर्यसे गर्भस्थिति होती है (जरायुणा आवृतः गर्भः जन्मना उल्वं जहाति) झिल्लीसे ढका हुआ वह गर्भ जन्म लेकर उस झिल्लीको त्याग देता है, तब भूमिपर आता है । शेष पूर्ववत् ॥७६॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७७ ॥

ऋषि आदि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(प्रजापतिः रूपे सत्यानृते दृष्ट्वा व्याकरोत्) प्रजापतिने मूर्त्तिमान् सत् और असत्को देख कर विचारपूर्वक दोनोंको पृथक् २ स्थापन किया । (प्रजापतिः अनृते अश्रद्धां अदधात्) उस परमात्माने अनृत मिथ्याभाषण में नास्तिकतारूप अश्रद्धाको स्थापन किया (सत्ये श्रद्धां अदधात्) सत्यमें आस्तिक्य बुद्धि-रूप श्रद्धाको स्थापन किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७८ ॥

इसका महाबृहती छ० ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(प्रजापतिः सुतासुते, रूपे वेदेन व्यपिबत्) प्रजापति प्रेरित अप्रेरित धर्माधर्मके रूपोंको ज्ञानके द्वारा अथवा वेद के द्वारा विचारकर पीते हुए अथवा प्रजापतिने सुत असुत दोनों प्रकारके पदार्थोंको अपना भक्ष्य जान कर भक्षण किया शेष पूर्ववत् ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमम्प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७९ ॥

इसका अतिजगती छ०, ऋ०, दे० पूर्ववत् । मंत्रार्थ (प्रजापतिः परिस्रुतः रसं दृष्ट्वा शुक्रेण पयः सोमं शुक्रं व्यपिबत्) प्रजापतिने परिस्रुतके रसको देखकर शुद्ध मंत्रसे दुग्ध और सोमको पवित्र करके पिया अथवा प्रजापतिरूप सूर्यमें परिस्रुत का रस दुग्ध और सोम देखकर ही उसकी किरणोंसे स्वच्छ करके पिया । शेष पूर्ववत् । इन मंत्रोंमें सोमकी शुद्धि कही सब ही सोम पीते हैं, क्योंकि—यद्यपि सोम एक लताका नाम है परन्तु अन्न दुध आदि में उसका सार रहता है, उसको ग्रहण करनेकी रीति कही ॥ ७९ ॥

सीसेन तन्त्रम्मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, जगती छं० देवता पूर्ववत् । अब एक २ मन्त्रसे दो २ आहुति देय । मन्त्रार्थ-(अश्विना सविता सरस्वती वरुणः मनीषिणः कवयः इन्द्रस्य रूपं भिषज्यन् मनसा यज्ञं वयन्ति) अश्विनीकुमार नियन्तादेव सरस्वती वरुण बुद्धिमान् बीते हुएको देखनेवाले इन्द्र के रूपको रोगरहित करते हुए मनसे विचार कर सौत्रामणि यज्ञको सम्पन्न करते हैं (सीसेन ऊर्णासूत्रेण तन्त्रम्) सीसे धातुसे अंगदको और ऊनके सूतसे पटको बुनते हैं ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः संरराणाः । लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मांसमभवन्न लाजाः ॥ ८१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(तिस्रः देवताः संरराणाः अस्य तत् अमृतं रूपं शचीभिः सन्दधुः) दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती तीनों देवताओंने सम्यक् प्रकार क्रीड़ा करते हुए इस इन्द्रके उस मरण धर्मरहित रूपको कर्मके द्वारा संधान किया वा एक वाक्य होकर यज्ञका स्वरूप निर्माण किया (अस्य लोमानि शष्पैः न त्वक् तोक्मभिः बहुधा न लाजाः मांसं सम्भवन्) इस इन्द्रके रोमोंको जमे हुए धानोंसे सम्पन्न किया और त्वचाको जमे हुए यवोंसे अनेक प्रकारसे प्रकट किया तथा खीलें मांसरूप हुईं अर्थात् मांसको पुष्ट किया [इस अध्यायमें समाप्तिपर्यन्त नकार चकारका अर्थ देता है ॥ ८१ ॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्त्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् । अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवान्त्वचि ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(गवां त्वचि दधतुः) पृथ्वीकी त्वचा कहिये मट्टीके पके हुए पात्रमें सोमको स्थापन करते हुए (रुद्रवर्त्तिनी) रुद्रकी समान मार्ग वाले (भिषजा अश्विनी) वैद्य अश्विनीकुमार (सरस्वती) वाग्देवी (अन्तरं पेशः वयति) शरीरान्तःवर्त्ती इन्द्र के रूप कोपरि पूर्ण करते हैं (मासरैः अस्थि न कारोतरेण मज्जानाम्) शष्पादि चूर्णमय चरुके टपकावसे हड्डियोंको और गलनवस्त्रसे मज्जा को पूर्ण करते हैं ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसुना सत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः । रसम्परिस्रुता न रोहि-

तन्नग्नहुर्द्धीरस्तसरन्न वेम ॥ ८३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(नासत्याभ्यां सरस्वती मनसा पेशलं वसु दर्शतं वपुः वयति) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वती मनसे विचारकर इन्द्रके सुवर्ण और रजतरूप धनको तथा दर्शनीय रूपको उत्पन्न करते हैं (न परिश्रुता लोहितं) और परिस्रुत सुरारससे रुधिरको इन्द्रके शरीर रञ्जनके निमित्त पूर्ण किया अतएव इन्द्रको वेदमें रोहित नामसे कहा है (धीरः नग्नहुः रसं न तरसं वेम) बुद्धिको प्रेरणा करने वाले सर्जकी छालसे रसको पूर्ण किया और तसरका साधन बुननेका दण्ड हुआ

पयसा शुक्रममृतञ्जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः । अपामतिन्दुर्म्मतिम्बाधमाना ऊवद्ध्यं वातꣳ सव्वन्तदारात् ॥ ८४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(पयसा, शुक्रं अमृतं जनित्रं रेतः जनयन्त) तीनों देवताओंने निर्मल दूधके भागसे निर्मल अमृत रूप जननशील वीर्यको उत्पन्न किया (आरात् अमतिं दुर्मतिं बाधमानाः तत् ऊवध्यं वातं सव्वं सुरया अपमूत्रात्) समीपमें स्थित होकर अज्ञान और दुर्मति को बाधा देते हुए उसआमाशयमें अन्नको नाड़ीमें प्राप्त अन्न और पक्वाशयमेंके अन्न को सुरारससे कल्पित कर मूत्रसे मूत्रको कल्पित करते हुए ॥ ८४ ॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेण सत्यम् पुरोडाशेन सविता जजान। यकृत्क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सुत्रामा इन्द्रः हृदयेन) भलीप्रकार रक्षक पुरोडाश का अधिष्ठात्री देवता इन्द्र हृदयसे हृदयको प्रकट करता है (सविता पुरोडाशेन सत्यम् जजान) सविताने पुरोडाशसे इन्द्रके सत्य को उत्पन्न किया (वरुणः भिषज्यन् यकृत् क्लोमानम्) वरुणने चिकित्सा करते हुए हृदयके बाईं ओर स्थित मांसपिंडरूप तिल्लीको और गलेकी नाड़ीको प्रगट किया (वायव्यैः मतस्ने न पित्तं मिनाति) सोमसम्बन्धी ऊर्ध्व पात्रोंसे हृदयकी दोनों ओर की हड्डियों और पित्तको कल्पित किया

आन्त्राणि स्थालीर्म्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रन्न

प्लीहा शचीभिरासन्दीनाभिरुदरन्न माता ॥ ८६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(मधुः पिन्वानाः स्थालीः आन्त्राणि सुदुघा धेनुः न पात्राणि गुदाः) मधुसिक्त सकल स्थाली आँतोंके स्थानमें हुईं भले प्रकार दूध देने वालीं आदित्य इष्टि और पात्र गुदास्थाना- पन्न हुए (न श्येनस्य पत्रं प्लीहा) श्येन का पंख हृदयका वामभाग हुआ (न माता आसन्दी शचीभिः नाभिः उदरम्) और माता का स्थान आसन्दी "चौकी" कर्मोंके द्वारा नाभिस्थान और उदररूप हुई ॥८६॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्याङ्गर्भो अन्तः । प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहेन कुम्भी स्वधाम्पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(जनिता कुम्भः शचीभिः वनिष्ठः जनिता) रसका साधन घडे कर्मों करके स्थूल आँतको उत्पन्न करता है (यस्मिन् योन्याम् अन्तः अग्रे गर्भः शतधारः उत्सः व्यक्तः प्लाशिः न कुम्भीः पितृभ्यः स्वधां दुहे) जिस कुंभ-रूप योनिके भीतर प्रथम सोमरूप गर्भ स्थित हुआ कूपतुल्य घट स्पष्ट जननेन्द्रिय हुआ और सुराधानीपात्रने पितरोंके निमित्त स्वधा अन्नको प्रकट किया ॥८७॥

मुखं सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन्त्सरस्वती । चप्यन्न पायुर्भिषगस्य बालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सत् अस्य मुखं सतेन इत् शिरः) सत् नामक पात्र इस इन्द्रका मुख हुआ उस ही पात्रसे शिरकी चिकित्सा हुई (पवित्रं जिह्वा) पवित्र जिह्वा सम्पादक हुआ (अश्विना सरस्वती आसन्) अश्विनीकुमार और सरस्वती मुखमें स्थित हुए (न चप्यं पायुः) और चप्य पायु इन्द्रिय हुई (बालः अस्य भिषक्) रसको छाननेका वस्त्र इस की चिकित्सा हुई (वस्तिः न हरसा तरस्वी शपः) गुदा तथा वेगसे वीर्यवान् पुरुषकी जननेन्द्रिय हुई ॥ ८८ ॥

अश्विभ्याञ्चक्षुरमृतङ्ग्रहाभ्याञ्छागेन तेजो हविषा घृतेन । पक्ष्माणि गोधूमैः कुबलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(अश्विभ्यां ग्रहाभ्यां अमृतं चक्षुः) अश्विनीकुमार देवतावाले ग्रहोंके द्वारा अविनाशी नेत्र कल्पित हुआ (छागेन, घृतेन हविषा तेजः) बकरीके दूधमें पके हुए हविके द्वारा चक्षु का तेज कल्पित हुआ (गोधूमैः पक्ष्माणि) गेहुओंसे नेत्रोंके नीचेके लोम (कुवलैः उतानि) बेरोंसे नेत्रोंके ऊपरके लोम कल्पित हुए (शुक्लं न असितं पेशः वसाते) जो श्वेत और कृष्णरूपको अर्थात् नेत्रोंमेंकी सफेदी और कालिमाको ढकते हैं ॥ ८९ ॥

अविर्न मेषो नसि वीर्य्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम्। सरस्वत्युपवाकैर्व्यानमस्यानि बर्हिर्बदरैर्ज्जजान ॥ ९० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(अविः न मेषः नसि वीर्याय) भेड़ और मेढा नासिकामें बलका कारण हुए (ग्रहाभ्यां प्राणस्य पन्थाः अमृतः) सरस्वती संबंधी ग्रहोंके द्वारा प्राणवायुका मार्ग अविनाशी हुआ (सरस्वती उपवाकैः व्यानं जजान) सरस्वती देवीने जौके अंकुरोंसे व्यानवायु को प्रकट किया (बदरैः बर्हिः नस्यानि) बेरों के द्वारा कुशा नासिकाके लोम हुई अर्थात् इनकी उपयोगी क्रियाओंसे बल प्रकट किया गया, जिससे इन्द्र तेजस्वी हुआ ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतङ्ग्रहाभ्याम्। यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धुजज्ञे मधु सारघम्मुखात् ॥ ९१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। (बलाय इन्द्रस्य रूपं ऋषभः) बलके निमित्त इन्द्रका रूप श्रेष्ठ किया (कर्णाभ्यां ग्रहाभ्यां श्रोत्रं) श्रोत्रसम्बन्धी ग्रहोंके द्वारा त्रिकालके शब्द को सम्पन्न करनेवाली श्रोत्रइन्द्रिय संपादित हुई (यवाः न बर्हिः भ्रुवि केसराणि) जो और कुशा भौंके बालों को सम्पन्न करने वाले हुए (मुखात् कर्कन्धु सारघं मधु जज्ञे) मुखसे बेरकी समान मधुमक्षिकासम्बन्धी शहदकी समान लारश्लेष्मा आदि प्रकट हुआ

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(आत्मन् उपस्थे न लोम वृकस्य) अपने शरीरमें

उपस्थ और अधोभागके रोम वृकलोमसे कल्पित हुए (न मुखे श्मश्रूणि व्याघ्रलोम) और मुखपर जो डाढ़ीमूछोंके बाल हैं वह व्याघ्रलोमसे कल्पित हुए (न शीर्षम्, यशसे केशाः श्रियै) और शिरमें यशके निमित्त जो बाल हैं शोभाके निमित्त हैं (शिखा त्विषिः) शिखा कान्ति है (इन्द्रियाणि सिंहस्य लोम) जो इन्द्रियें हैं सो सब सिंहके रोम हैं

अङ्गान्यात्मन्भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात्सरस्वती। इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतन्दधानाः ॥ ९३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-इन्द्रस्य रूपं शतमानं आयुः चन्द्रेण ज्योतिः अमृतं दधानः) इन्द्रके रूपको और सैकड़ों पुरुषों से पूजनीय वा सौ वर्ष वा पूर्ण आयुको प्रसन्नतादायक चन्द्र—सम्बंधी ज्योतिके द्वारा अविनाशी संपादन करतेहुए (भिषजा अश्विना आत्मन् अङ्गानि) चिकित्सक अश्विनीकुमारोंने शरीरमें अङ्गोंको संयुक्त किया (सरस्वती तत् आत्मानं अङ्गैः समधात्) और सरस्वतीने उस शरीरको अवयवों द्वारा सन्धान किया अर्थात् अश्विनीकुमार और सरस्वतीने पूर्वोक्त विधिसे अङ्गोंके द्वारा इस यज्ञशरीरको सम्पादन किया, इसके द्वारा इन्द्र [यजमान] को सुख—मय जीवन और अमृतत्व प्राप्त होता है ॥ ९३ ॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति। अपां रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ (सरस्वती अश्विभ्यां पत्नी गर्भं सुकृतं योन्यां अन्तः बिभर्ति) सरस्वती देवी अश्विनीकुमारके पत्नीत्वको स्वीकार करती हुई इन्द्ररूप गर्भको सम्यक्प्रकारसे योनिके भीतर धारण करती है (न अप्सु राजा वरुणः अपां रसेन साम्ना श्रियै इन्द्रं जनयन्) और जलोंका देवता राजा वरुण जलोंके सारभूत रसके द्वारा सामके प्रभावसे जगत्की शोभारूप वा ऐश्वर्यके निमित्त इन्द्रको जननकी समान पोषण करता है अथवा पत्नी सरस्वती इसको धारण करती है अश्विनीकुमारोंके द्वारा वरुण इस इन्द्रका पोषण करते हैं [यहाँ इन्द्रपदसे ऐश्वर्यवान् यज्ञका वर्णन है] वाणी ही सरस्वती है, जिस वेदवाणीमें यह यज्ञ स्थापित होता है द्युलोक और भूमिके अधिष्ठात्री देवता इसको स्थापन करते हैं अथवा अहोरात्र स्थापक हैं ॥ ९४ ॥

तेजः पशूनाꣳ हविरिन्द्रियावत्परिस्रुता पयसा सारघम्मधु । अश्विभ्यान्दुग्धम्भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्यामसृतः सोम इन्दुः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(भिषजा अश्विभ्यां सरस्वत्या इन्द्रियावत् पशूनां सारघं मधु हविः परिस्रुता पयसः तेजः दुग्धम्) चिकित्सा करनेवाले अश्विनीकुमार और सरस्वतीने वीर्यवान् पशुसम्बन्धी दुग्ध घृत और मधुमक्षिकाओंके बनाए शहदरूप हविको लेकर परिस्रुत किये दूधसे इन्द्रके निमित्त तेजको दुहा (सुतासुताभ्यां असृतः इन्द्रः सोमः) सुत असुत दुग्धसे अमृतरूप ऐश्वर्य-दायक सोमको निकाला इस प्रकार अश्विनीकुमार और सरस्वती आदिने अनेक द्रव्योंसे रस ले कर इन्द्रका उपकार किया ॥ ९५ ॥

इति श्रीयजुर्वेदान्तर्गत माध्यदिनीय शाखाका भाषानुवाद सहित
एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥

—०—

अथ विंशोऽध्यायः ।

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वा हिंसीन्मा मा हिꣳसीः ॥ १ ॥

इसमें २ मन्त्र हैं । दोनोंका प्रजापति ऋ० १ का द्विपदा विराड् गा० २ का प्रा० गा० छ० १ का आसन्दी २ का कृष्णाजिन दे० है इसको पढता हुआ चौकीके दो पाये दक्षिणवेदी पर और दो उत्तरवेदी पर रखे मंत्रार्थ-(क्षत्रस्य योनिः असि) हे आसंदी ! तुम क्षत्रिय जातिकी राजपदवीकी उत्पत्ति स्थान हो (क्षत्रस्य नाभिः असि) तुम क्षत्रिय जातिकी नाभि अर्थात् एकताके बन्धनकी निदान हो । फिर चौकीपर मृगचर्म बिछावे (त्वा मा हिंसीः) हे कृष्णाजिन ! आसन्दी तुमको पीड़ा न दे (मा मा हिंसीः) तुम मुझको पीड़ा मत दो ॥ १ ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्त्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्यो पाहि विद्योत्पाहि २

इसमें ३ मन्त्र हैं । तीनोंका प्रजापति देवता आर्ची उष्णिक् छ० यजमान देवता है । यजमान बैठे । १ मन्त्रकी व्याख्या अ० १० मन्त्र २७ में होगई भावार्थ यह है कि-हे यजमान ! तुम इसपर बैठनेके फलसे दंड पुरस्कारके द्वारा देशके अनिष्टको दूर करने

वाले न्यायपरायण और राजकार्यमें चतुर होकर प्रजाओंपर सम्राट्पदको पानेमें समर्थ हूजिये। फिर यजमान वामचरणके नीचे चाँदीका मण्डलाकार रुक्मभूषण रखे मृत्योः पाहि) हे रुक्म अकालमृत्युसे मेरी रक्षा करो। फिर दाहिने चरणके नीचे सुवर्णका रुक्म रखे (विद्योत् पाहि) हे रुक्म ! बिजलीके उत्पातसे मेरी रक्षा करो

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्यैन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ॥ ३ ॥

इसमें ३ मं० हैं। तीनोंका अश्विनौ ऋ० १ का प्राजापत्या वृ० २। ३ का आर्चीगाय० छ०, सबका लि० दे० है। अध्वर्यु यजमानका अभिषेक करावे। मन्त्रार्थ-(सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां अश्विनोः भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाय त्वा अभिषिञ्चामि)। हे यजमान ! सविता देवताकी आज्ञा होने पर अश्विनीकुमारकी भुजा और पूषादेवता के हाथोंसे तथा अश्विनीकुमारकी चिकित्सा के द्वारा कान्ति और ब्रह्मतेजके निमित्त तुम्हें अभिषेक कराता हूँ। (सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्याय अन्नाद्याय अभिषिंचामि) सरस्वती करके संपादन की हुई औषधिसे पराक्रम और अन्नभक्षणकी सामर्थ्यके निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ। (इन्द्रस्य ऐन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसे अभिषिंचामि) इन्द्रकी इन्द्रियवृद्धिकी सामर्थ्यसे बल समृद्धि और यशकी प्राप्ति के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ॥३॥

कोसि कतमोसि कस्मै त्वा काय त्वा। सुश्लोक सुमंगल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

इसमें २ मन्त्र हैं दोनोंका प्रजा० ऋ०, १ का प्राजा० गा० २ का उष्णिग्गर्भा प्राजा० गा० छ०, दे० दोनोंका यजमान है। अध्वर्यु यजमानको स्पर्श करे। मन्त्रार्थ- (कः असि) हे यजमान ! तुम कौन प्रजापति हो (कतमः असि) बहुतोंमें कौनसे हो (कस्मै त्वा) प्रजापतिपदकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ (काय त्वा) प्रजापतिकी प्रीतिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ अर्थात् तुम कौन प्रधान पुरुष हो, तुमने किस देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है, किस देवताकी प्रसन्नतार्थ किया है। फिर यजमान नामस्मरण करे। (सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन्) हे सुन्दर कीर्त्तिवाले, हे श्रेष्ठमङ्गलमय, हे सत्यराजके प्रभो आइये

३। ३। ३६

शिरो मे श्रीर्य्यशो मुखन्त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि । राजा मे प्राणो अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट्श्रोत्रम् ॥ ५ ॥

इसका प्रजा ऋ०, अनु० छ० इन्द्र शरीरावयव दे० है। यहाँसे ५ मन्त्र पढ़कर यजमान अपने शरीरको स्पर्श करे। मन्त्रार्थ (शिरः श्रीः) मेरा शिर ब्रह्मतेजसे शोभायुक्त हो (मुखं यशः) मुख वेदपाठ से यशःस्वरूप हो (केशाः च श्मश्रूणि त्विषिः) शिरके बाल डाढ़ी मूछें हृदयमें ब्रह्माग्निके प्रकाशसे कान्तिरूप हों (राजा मे प्राणः अमृतम्) तेजस्वी मेरा प्राण समाधि लाभसे अमृत हो (चक्षुः सम्राट्) चक्षु इन्द्रिय दिव्य दृष्टि पानेसे सुशोभित हो (श्रोत्रं विराट्) दूरश्रवणकी शक्तिसे श्रोत्रेन्द्रिय विशेष विराजमान हो ॥ ५ ॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः । मोदाः प्रमोदा अंगुलीरंगानि मित्रम्मे सहः ॥ ६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(मे जिह्वा भद्रम्) मेरी जीभ कल्याणरूप हो (वाक् महः) वाणी वैदिक सिद्धान्तको कहनेसे पूजित हो (मनः मन्युः) मन अहं ब्रह्मास्मि के उच्चारणसे अहं भावयुक्त हो (भामः स्वराट्) क्रोध अपनी मर्यादामें विराजमान हो (अङ्गुलयः मोदाः) अङ्गुलियें करन्यास से आनन्दरूप हों, (अङ्गानि प्रमोदाः) अङ्ग अङ्गन्याससे परमानन्दरूप हों (मे मित्रं सहः) मेरे मित्र शत्रुनाशक हों ॥६॥

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म्म वीर्य्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, गाय० छं० देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(मे बाहू इन्द्रियं बलम्) मेरी दोनों भुजा इन्द्रिय बलिष्ठ हों (हस्तौ कर्म वीर्यम्) मेरे दोनों हाथ देवार्चनादि करनेमें समर्थ हों (मम आत्मा उरः क्षत्रम्) मेरा अन्तरात्मा हृदय भी संसारसे रक्षा करनेवाला हो ॥ ७ ॥

पृष्ठीर्म्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी । ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ८

इसका प्रजा ऋ०, नि० अनु० छ०, देवता पूर्ववत् है। मन्त्रार्थ (मे पृष्ठीः राष्ट्रम्) मेरा पृष्ठदेश सबको धारण करने वाले राष्ट्रकी समान हो (उदरं अंसौ ग्रीवा

ऊरू अरत्नी श्रोणी जानुनी च सर्वतः अङ्गानि मे विशः) पेट कंधे गरदन दोनों ऊरू हाथ दोनों ओरका कटिभाग दो जंघा और सब अङ्ग मेरे प्रजासमान पोषणीय हों अर्थात् राष्ट्ररूप शरीरमें यह सब अङ्ग निरुपद्रव हों ॥ ८ ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानम्पायुर्म्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यम्पसः । जंघाभ्याम्पद्भ्यान्धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० जगती छ०, पूर्ववत् दे० है मन्त्रार्थ-(मे नाभिः चित्तं) मेरी नाभि भगवान्के ध्यानसे ज्ञानमय हो (मे पायुः विज्ञानं मेरी पायु इन्द्रिय ज्ञानजनित संस्कारका आधार हो (भसत् अपचितिः) मेरी स्त्रीकी योनि संतानको उत्पन्न करनेमें समर्थ हो (मे अण्डौ आनन्दनन्दौ) मेरे अण्डकोश आनन्दसे समृद्ध हों (पसः भगः सौभाग्यम्) मेरी जननेन्द्रिय योगैश्वर्य और योगसम्पत्तिसम्पन्न हो (जंघाभ्यां पद्भ्यां धर्मः अस्मि) जंघा और चरणों से धर्मरूप होऊँ नकि-विषयासक्त (विशि प्रतिष्ठितः राजा) प्रजाओंमें प्रतिष्ठित राजा हूँ ॥ ९ ॥

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन्प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अतिशक्करी छ०, विश्वेदेवा दे० है । चौकीसे नीचे बिछे मृगछाला पर उतरे मन्त्रार्थ-(क्षत्रे प्रति तिष्ठामि) मैं क्षत्रियजातिमें प्रतिष्ठित होता हूँ (राष्ट्रे प्रति) राष्ट्रमें प्रतिष्ठित होता हूँ (अश्वेषु प्रति) घोड़ोंमें आधिपत्य पाता हूँ (गोषु प्रति) गौओंके विषयमें आधिपत्य पाता हूँ (अङ्गेषु प्रति) शरीरके अवयवोंमें प्रतिष्ठा पाता हूँ (आत्मन् प्रति) आरोग्यता से चित्तमें प्रतिष्ठित होता हूँ (प्राणेषु प्रति) प्राणोंमें प्र० को पाता हूँ (पुष्टे प्रति) धनसम्पत्तिमें प्र० को पाता हूँ (द्यावापृथिव्योः प्रतिष्ठामि) स्वर्ग और भूलोककी प्रति० को पाता हूँ (यज्ञे प्रतिष्ठामि) यज्ञके विषयमें प्रतिष्ठित होता हूँ ॥ १० ॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे देवा देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, त्र्यवसानापंक्ति छ०, विश्वेदेवा दे० है। ग्रहहोम करे। मन्त्रार्थ-(सुराधसः बृहस्पतिपुरोहिताः त्रया एकादश देवाः त्रयस्त्रिंशाः देवाः सवितुः देवस्य सवे देवैः मा अवन्तु) सुन्दर धन वाले, बृहस्पति है पुरोहित जिनका ऐसे ब्रह्मा विष्णु शिव तीनों देवता ग्यारह देवता, तैंतीस देवता अथवा ग्यारह के तिगुने तैंतीस देवता सबके प्रेरक देवताकी आज्ञामें वर्त्तमान देवताओंके साथ वा ब्रह्मादि के साथ मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि साम-भिस्सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्व-षट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्द्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, प्रकृति छ०, विश्वे-देवा दे० है, म०-(प्रथमाः द्वितीयैः) पहिले कहे हुए वसु देवता दूसरे रुद्र देवताओंसे मिलकर मेरी रक्षा करें (द्वितीयाः तृतीयैः) दूसरे तीसरोंके साथ (तृतीयाः सत्येन) तीसरे आदित्य देवता सत्यरूप ब्रह्मके साथ (सत्यं यज्ञेन) ब्रह्म यज्ञके साथ (यज्ञः यजुर्भिः) यज्ञ यजुर्वेदके मंत्रोंके साथ (यजूंषि सामभिः) यजु साममंत्रोंके साथ (सामानि ऋग्भिः) साम ऋचाओंके साथ (ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः) ऋचाएँ पुरो-ऽनुवाक्य मन्त्रोंके साथ (पुरोऽनुवाक्याः याज्याभिः) पुरोनुवाक्य याज्यमंत्रोंके साथ (याज्याः वषट्कारैः) याज्य हविः समर्पण मन्त्रोंके साथ (वषट्काराः आहु-तिभिः) वषट्कार आहुतियोंके साथ (आहुतयः मे कामान् समर्द्धयन्तु) आहु-तियें मेरी कामनाओंको पूर्ण करें (भूः स्वाहा) भुवनको भलेप्रकार दीहुई आहुति स्वीकृत हो ॥ १२ ॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् न आनतिरागतिः। मांसम्म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः

इसका प्रजा० ऋ० अनु०छ०, लिङ्गोक्त दे० है। यजमान ग्रहशेषको भक्षण करे। मन्त्रार्थ-(मम लोमानि प्रयतिः) मेरे संपूर्ण रोम विशाल हों (मे त्वक् आनतिः आगतिः) मेरी त्वचा ऐसी हों कि-जिसको झुककर प्रणाम करें और सब समीप आवें (मे मांसं उपनति) मेरा मांस प्राणियोंको नमस्कार करानेवाला हो (अस्थि वसु) मेरी हड्डियें धनरूप हों (मे मज्जा आनतिः) मेरी मज्जा हड्डीके भीतरका भाग जगत्को नमन कराने वाला हो, अर्थात् मेरे शरीरमेंकी सातों धातु जगत्को वशमें कर सकें ॥ १३ ॥

यद्देवा देवहेडनन्देवासश्चकृमा वयम्। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः १४

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। मासरकुम्भको जलमें तैरावे। मंत्रार्थ-(देवाः देवासः वयं यत् देवहेडनं आचकृम तस्मात् एनसः विश्वात् अंहसः अग्निः मा मुञ्चतु) हे प्रकाशवान् देवताओ! हमसे जो देवताओंका अपराध हुआ हो उस पापसे और सकल विघ्नरूप पापोंसे अग्नि देवता मुझे मुक्त करे ॥ १४ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम्। वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १५ ॥

इसका प्रजा० ऋ० अनु० छ० वायु दे० है। मंत्रार्थ-(वयं यदि दिवा यदि नक्तं एनांसि आचकृम वायुः तस्मान् एनसः विश्वात् अंहसः मा मुञ्चतु) हमने यदि दिनमें और यदि रातमें जो पाप किये हों वायु देवता उस पापसे तथा सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा करे ॥ १५ ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाꣳसि चकृमा वयम्। सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १६ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, सूर्य देवता है। मंत्रार्थ-(वयं यदि जाग्रत् यदि स्वप्ने एनांसि आचकृम सूर्यः तस्मात् एनसः विश्वात् अंहसः मा मुञ्चतु) हमने यदि जागतेमें यदि सोतेमें कुछ पाप किये हैं सूर्य देवता उस सब पापसे और सकल पापोंसे मुझको मुक्त करे ॥ १६ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधिधर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० अनु० छ०, लिङ्गोक्त दे० है मन्त्रार्थ (यत् ग्रामे यत् अरण्ये यत् सभायां यत् इन्द्रिये यत् शूद्रे यत् अर्ये यत् एनः वयं चकृम) जो ग्राम में जो वनमें वृक्षच्छेदनरूप, जो सभामें असत्यभाषण आदि, जो सकल इन्द्रियोंसे परदोषकथन परनारीदर्शनादि वा जो देवताओंमें जो दासवर्गमें, जो वैश्योंमें

को उद्यत होय (समित् असि तेजः असि मयि तेजः धेहि) हे समिधा ! तुम पूर्ण प्रकाश करनेवाली हो, तुम तेजःस्वरूप हो मुझमें तेजको धारण करो। समिधामें घी लगावे (पृथिवी समावर्त्ति) पृथिवी प्रति क्षण परिवर्तनशील है (उषाः सम्) प्रभातकाल आते जाते रहते हैं (सूर्यः उ सम्) सूर्य भी वार २ उदित और अस्त होते हैं (इदं विश्वम् जगत् उ सम्) यह सब संसार भी आवागमन-शील है कुछ भी स्थिर नहीं है। उस समिधाको अग्निमें होमे-(वैश्वानरज्योतिः भूयासम्) सकल कामनाओंको पानेके निमित्त मैं सकल प्राणियोंके हितकारी परमात्माकी ज्योति को प्राप्त हूँ। (विभून् कामान् व्यश्नवै) बहुतसे मनोरथोंको पाऊँ (भूः स्वाहा) सत्स्वरूप ब्रह्मको दी हुई यह आहुति भले प्रकार गृहीत हो ॥ २३ ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतञ्च श्रद्धाञ्चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् २४

इसका अश्वतराश्वी ऋ० नि० अनु० छ० अग्नि देवता है। अग्न्याधान और ब्रह्मवरणके अनन्तर यजमान आहवनीयाग्निमें तीन समिधा छोड़े। मन्त्रार्थ-(व्रतपते अग्ने समिधं त्वयि अभ्यादधामि) हे कर्मके पालक अग्ने! यह समिधा तुममें स्थापन करता हूँ (दीक्षितः अहं व्रतं च श्रद्धां उपैमि) यज्ञमें दीक्षित हुआ मैं कर्म और श्रद्धाको प्राप्त होता हूँ (त्वा इन्धे च) और तुमको प्रदीप्त भी करता हूँ ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सहतँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

इसका अश्वतराश्वी ऋ० अनु० छंद अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सह सम्यञ्चौ चरतः) जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियजाति भी साथ एकमन होकर विचरते हैं (यत्र देवाः अग्निना सह) जहाँ देवता अग्निके साथ निवास करते हैं (तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषम्) उस पवित्र स्वर्गलोकको मैं पाऊँ ॥ २५ ॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह। तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न्न विद्यते २६

इसका ऋष्यादि २३ वें मन्त्रकी समान है। मंत्रार्थ-(यत्र इन्द्रः च वायुः च सह सम्यञ्चौ चरतः) जहाँ इन्द्र और वायु भी साथ एकमन होकर विचरते हैं (यत्र सेदिः नः विद्यते) जहाँ अन्न पानेके निमित्त दुःख नहीं है (तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषम्) उस पवित्र लोकको मैं प्राप्त होऊँ ॥ २६ ॥

अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यताम्परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः २७

इसका प्रजा० ऋ० अनु० छ० सुरा देवता है। इस मन्त्रसे रसको मिलावे। मन्त्रार्थ-(ते अंशुः अंशुना) हे महौषधि-रस ! तुम्हारा भाग सोमके भागसे मिले। (परुः परुषा पृच्यताम्) तुम्हारा पर्व सोम के पर्वसे मिले। (तव गन्धः अच्युतः) तुम्हारा गन्ध अविनाशी हो (रसः मदाय) रस हर्षप्राप्तिके निमित्त हो (सोमं अवतु) सोमसे आलिंगन करो ॥ २७ ॥

सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। पवित्र किये रसको ग्रहण करे। मन्त्रार्थ-(बभ्र्वै सुरायै मदे किन्त्वः किन्त्वः वदति) बलकी धारक कपिलवर्ण महौषधियोंके रसपानसे प्रसन्नतामें स्थित हुआ इन्द्र तुम किसके तुम किसके हो ऐसा कहता है (सिञ्चन्ति) इस कारण उसको पात्रमें ऋत्विज सींचते हैं। (परिषिञ्चन्ति) दूधसे सींचते हैं (उत्सिञ्चन्ति) ग्रहोंसे सींचते हैं। (च पुनन्ति) पावन सुवर्ण आदिसे पवित्र करते हैं।२८।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ २९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है। खीलोंका होम करे (इन्द्रः प्रातः नः धानावन्तं करम्भिणं अपूपवन्तं उक्थिनं जुषस्व) हे इन्द्र ! प्रातःकाल हमारी खीलोंसे युक्त दही, सत्तू और मालपुर आदिसे युक्त स्तुतिके साथ पुरोडाश को सेवन करो ॥ २९ ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजयन्नृतावृधो देवन्देवाय जागृवि ३०

इसका नृमेध पुरुषमेध ऋ० बृह० छ०, इन्द्र दे० है ब्रह्मा इस मंत्रसे सामगान करे मन्त्रार्थ-(मरुतः इन्द्राय वृत्रहन्तमं बृहत्साम गायत) हे ऋत्विजों ! इन्द्रके निमित्त अति पापनाशक वा वृत्रासुरनाशक बृहत्सामको गाओ (ऋतावृधः येन देवाय देवं जागृवि ज्योतिः अजनयन्) यज्ञकी वृद्धि करने वाले देवता वा ऋत्विजोंने जिस सामगानसे इन्द्रके निमित्त दीप्तिमान जागते हुए अविनाशी तेजको प्राप्त कराया अर्थात् सामगानसे इन्द्र तेजस्वी होता है ॥ ३० ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोममपवित्र आनय। पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, गाय० छ० इन्द्र दे० है। दुग्धको अभिमंत्रित करे मंत्रार्थ- (अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्रे आनय) हे अध्वर्यु तुम पत्थरोंसे अभिषुत सोमको

पवित्रेमें लाओ (इन्द्रस्य पातवे पुनाहि) इन्द्रके पीनेके लिये पवित्र करो ॥ ३१ ॥

यो भूतानामधिपतिर्य्यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः । य ईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि त्वा महम्मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

इसका कौरिडन्य ऋ०, पंक्ति छ०, ग्रह दे० है ग्रहको ग्रहण करे । मंत्रार्थ—(यः भूतानां अधिपतिः) जो प्राणियोंका पालन करनेवाला है (यस्मिन् लोकाः अधिश्रिताः) भू आदि लोक जिस परमात्माके आश्रयसे ठहरे हुए हैं (यः महान् महतः ईशे) जो सबसे बड़ा और बड़ोंका भी नियन्ता है (अहं तेन त्वा गृह्णामि) हे ग्रह ! उसी परमात्माकी आज्ञानुसार मैं उस परमात्मा के अनुग्रहसे तुझको ग्रहण करता हूँ (अहं त्वा मयि गृह्णामि) मैं तुझको परमात्म-भावको प्राप्त हुए अपनेमें ग्रहण करता हूँ

उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णा एष ते योनिरश्विभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३३ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १० मन्त्र २ में होगई ॥ ३३ ॥

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे । वाचो मे विश्वभेषजो मनसोसि विलायकः ३४

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, ग्रह दे० है । हुतशेषको सूँघे वा भक्षण करे । मन्त्रार्थ-(मे प्राणपाः अपानपाः चक्षुष्पाः च मे श्रोत्रपाः मे वाचः विश्वभेषजः च मनसः विलायकः असि) हे ग्रह वा हे परमात्मन् ! तुम मेरे प्राणोंके रक्षक अपान वायुके रक्षक, नेत्रोंके रक्षक, श्रोत्रोंके रक्षक, मेरी वाणीरूप सकल औषधोंमें प्रधान तथा मेरे मनको विषयोंसे हटाकर आत्मस्वरूप में स्थापन करने वाले हो ॥ ३४ ॥

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥

इसका प्रजा० ऋ०, उपरिष्टात् बृहती छ०, ग्रह दे० है । मंत्रार्थ-(उपहूतः अश्विनकृतस्य सरस्वतिकृतस्य सुत्राम्णा इन्द्रेण कृतस्य उपहूतस्य ते भक्षयामि) हे ग्रह ! आज्ञा पायाहुआ मैं अश्विनीकुमार से संस्कार किये हुए, सरस्वतीके प्रस्तुत कियेहुए रक्षा करने वाले इन्द्रसे संस्कार किये वा देखे हुए और ऋत्विजोंसे आवाहन किये हुए तुझको भक्षण करता हूँ ।३५।

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः । त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥

इसका आङ्गिरस ऋ०, त्रि० छ० इन्द्र दे० है । ग्यारह मंत्रोंसे ऐन्द्रनामक आप्रिय प्रियाजयाज्य करे । मन्त्रार्थ—(समिद्धः उषसां अनीके पुरोरुचा पूर्वकृत् त्रिभिः त्रिंशता देवैः वावृधानः वज्रबाहुः इंद्रः वृत्रं जघान) भलेप्रकारसे दीप्त उषःकालके मुख अर्थात् प्रातःकालके समय आगे चलनेवाले प्रकाशसे सूर्यरूपसे पूर्वदिशाको प्रकाशित करने वाले तीन और तीस अर्थात् तैंतीस देवताओंके साथ वृद्धि पाने वाले वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुर वा मेघको ताड़न किया (दुरः विववार) मेघोंके स्रोतों वा दैत्यपुरीके द्वारको सूना किया वा खोला३६

नराशंसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम । गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

इसका आंगिरस ऋ०, त्रि० छ० तनूनपात् दे० है। मंत्रार्थ-(नराशंसः शूरः यज्ञस्य धाम प्रतिममानः तनूनपात् गोभिः वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैः चन्द्री प्रचेताः प्रतियजति) ऋत्विजोंसे स्तुति किया हुआ यज्ञरूप शूरतादि गुणयुक्त यज्ञके स्थानको जानता हुआ जाठराग्निरूपसे शरीरका रक्षक वा सृष्टिको बढ़ाने वाले मरीचिका पौत्र अथवा भोग्यपदार्थोंको बढ़ानेवाली गौका पौत्र घृतरूप वृषभोंके द्वारा सुन्दर कृपिवाला अतिस्वादु मधु समान घृतसे प्रकट होते हुए हविको भक्षण करनेवाला सुवर्णादिकोंसे परमधनी और विशेष ज्ञानी कर्मका ज्ञाता यजमान प्रतिदिन इन्द्रका पूजन करता है ॥ ३७ ॥

ईडितो देवैर्हरिवाँ२ ॥ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः । पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

इसका आङ्गिरस ऋ० त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (देवैः ईडितः हरिवान् अभिष्टिः हविषा आजुह्वानः शर्धमानः पुरन्दरः गोत्रभिद् वज्रबाहुः नः यज्ञं उपजुषाणः आयातु) देवताओं करके स्तुति किया हुआ हरिनामक घोड़ोंवाला,

सब यज्ञोंमें स्तुति पानेवाला, हविके द्वारा आवाहन कियाहुआ अतिबलवान् शत्रुओं के नगरको विदीर्ण करनेवाला असुरकुल-नाशक वज्रधारी देवता हमारे यज्ञको सेवन करता हुआ आगमन करे ॥ ३८ ॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न इन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः । उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥

इसका आङ्गि० ऋ०, नि० त्रि० छ०, इन्द्र दे० है । मन्त्रार्थ-(हरिवान् उरुप्रथाः सजोषाः इन्द्रः पृथिव्याः प्रदिशा आदित्यैः वसुभिः अक्तं प्रथमानं स्योनं बर्हिः जुषाणः नः प्राचीनं सीदतु) अश्वोंसे युक्त महाकीर्त्तिमान् प्रीतिवाला इन्द्र देवता देवयजनभूमिकी प्रदिशामें बनी हुई प्राचीन बर्हिशालाकी ओरको लक्ष्य करके बारह आदित्य और आठ वसुओंसे युक्त हो विशाल सुखदायक कुशासनको सेवन करते हुए हमारे यज्ञस्थानमें बैठें ॥ ३९ ॥

इन्द्रन्दुरःकवष्या धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः । द्वारो देवीरभितो विश्रयन्तां सुवीरा वीरम्प्रथमाना महोभिः ॥ ४० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्-मन्त्रार्थ-(कवष्याः दुरः वृषाणं वीरं इन्द्रं यन्तु) जिनमें वायुके आनेजानेको अवकाश है और जहाँ मनुष्य का शब्द होता है ऐसे यज्ञके द्वार मनोरथों की वर्षा करने वाले इन्द्रको प्राप्त हों (धावमानाः सुपत्नीः जनयः सुवीराः महोभिः प्रथमानाः द्वारः देवीः अभितः विश्रयन्तां) दौड़ती हुई साध्वी यजमानकी स्त्रियें तथा सुन्दर वीर ऋत्विजोंसे युक्त तेज एवं उत्सवोंसे विस्तारको प्राप्त द्वार दिव्य गुणों से युक्त सब ओरसे विस्तारवान् हों ॥४०॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तम्पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् । तन्तुन्ततम्पेशसा संवयन्ती देवानान्देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

इसका आङ्गिरस ऋ०, त्रि० छ०, उषसा नक्त दे० है । मन्त्रार्थ-(बृहती पयस्वती सुदुघे ततं तन्तुं पेशसा सम्वयन्ती उषासानक्ता बृहन्तं शूरं देवानां देवं इन्द्रं सुरुक्मे यजतः) बड़ी जलयुक्त सुन्दर दोहनवाली और विस्तारवान् सूत्रकी

समान विचित्ररूपसे इन्द्रको युक्त करने वाली सूर्यकी प्रभा और रात्रि, इस महान् पराक्रमी, देवताओंके देवता इन्द्रको सुंदर दोप्तिमें युक्त करती हैं ॥ ४१ ॥

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होतारा विन्द्रम्प्रथमा सुवाचा। मूर्द्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनज्ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ४२ ॥

इसका आङ्गि० ऋ०, त्रि० छ०, होता दे० है। मन्त्रार्थ—पुरुत्रा मिमानाः मनुषः प्रथमा सुवाचा यज्ञस्य मूर्धन् इन्द्रं दधाना दैव्या होतारौ प्राचीनं ज्योतिः मधुना हविषा वृधातः) बहुतप्रकारसे यज्ञ रचना करने वाले मनुष्य होताके पहिले सुन्दर वचन वाले और यज्ञके प्रधान अंग शिरोभागमें इन्द्रको स्थापन करते हुए दैवहोता वायु और अग्नि पूर्वदिशामें वर्त्तमान आहवनीय अग्निको मधुर हविसे बढाते हैं

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना इन्द्रञ्जुषाणा जनयो न पत्नीः। अच्छिन्नन्तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ॥ ४३ ॥

इसका आङ्गि०, ऋ०, त्रि० छ०, देव्यः दे० है। मन्त्रार्थ—(देवीः विश्वतूर्त्तिः सरस्वती भारती इड़ा तिस्रः वर्धमानाः पत्नी जनयः न इन्द्रं जुषाणाः देवीः पयसा हविषा तन्तुं अच्छिन्नम्) दीप्यमान सर्यगामिनी वाणीकी अधिष्ठात्री भारती शुभगुणोंके कारण स्तुतिके योग्य तीनों पुष्टियुक्त साध्वी स्त्रियोंकी समान इन्द्र वा यजमानको सेवन करती हुई देवियें दूध और हविसे यज्ञको विघ्नरहित करें ॥४३॥

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेपाकोचिष्टुर्य्यशसे पुरूणि। वृषा यजन्वृषणम्भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ४४ ॥

इसका ऋषि छन्द पूर्ववत् त्वष्टा दे० है। मन्त्रार्थ-(अपाकः अचिष्टुः वृषा भूरिरेताः त्वष्टा यशसे वृष्णे इन्द्राय पुरूणि शुष्मं दधत् वृषणं यजन् यज्ञस्य मूर्धन् देवान् समनक्तु) अति प्रशंसनीय अर्चनशील सब ओरसे गमन करने वाला मनोरथोंका वृष्टिकर्त्ता परमवीर्यवान् सबका उत्पादक त्वष्टा देवता यशके निमित्त सेचन करने वाले इन्द्रके निमित्त बहुत बलको धारण करते धर्मसम्पन्न इन्द्रका पूजन करते हुए यज्ञके शिरोभाग आहवनीयमें देवताओंको तृप्त करो ॥ ४४ ॥

वनस्पतिरवसृष्टोन पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः । इन्द्रस्य हव्यैर्जठरम्पृणानः स्वदाति यज्ञम्मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥

ऋ०, छ० पूर्ववत् वनस्पति दे० है। मन्त्रार्थ—(वनस्पतिः देवः शमिता न अवसृष्टः न पाशैः त्मन्या समञ्जन्) यूप देवता यज्ञके समान आज्ञा दिये हुयेके समान पाशोंसे आत्मामें युक्त करते (हव्यैः इन्द्रस्य जठरं पृणानः) हवियोंके द्वारा इन्द्रके उदरको पूर्ण करते (मधुना घृतेन यज्ञं स्वदाति) मधुर रस और घृतके द्वारा यज्ञका आस्वादन करता है ॥ ४५ ॥

स्तोकानामिन्दुम्मति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् । घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ४६ ॥

ऋ०,छ० पूर्ववत्, स्वाहाकृतयः दे० है। मंत्रार्थ— (शूरः वृषायमाणः वृषभः तुराषाट् इन्द्रः स्वाहा घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः अमृताः देवाः स्तोकानां इन्दुं मादयन्ताम्) वीरता युक्त शत्रुओं के ऊपर गरजनेवाला, वर्षाकर्त्ता शत्रुजयी इन्द्र तथा स्वाहाकार घृतके बिन्दुसे भी मनमें प्रसन्न होते मरणधर्म रहित देवता घृतबिन्दुयुक्त सोमसे तृप्त हों ॥ ४६ ॥

आयात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः । वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्नक्षत्रमभि भूति पुष्यात् ॥ ४७ ॥

इसका वामदेव ऋ० भुरिक्पंक्ति छ० इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ-(यस्य पूर्वीः तविषीः द्यौः न अभिभूतिः क्षत्रं पुष्यात्) जिस इन्द्र के पूर्वकालमें कियेहुए कर्म वा वृत्रवधादि पराक्रम स्वर्गकी समान कहे जाते हैं और जो तिरस्कृत न होनेवाले हमारे क्षात्रतेज को पुष्ट करता है (शूरः स्तुतः वावृधानः इन्द्रः नः अवसे उप आयातु) वह शूर स्तुति करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ इन्द्र हमारी रक्षा करनेके निमित्त समीप आवे (इह समधात् अस्तु) इस यज्ञमें देवताओंके साथ भोजन करनेवाला हो ॥ ४७ ॥

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः । ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे

समत्सु तुर्वणिः प्रतन्यून् ॥ ४८ ॥

इसका वामदेव ऋ०, नि० त्रि० छ० इन्द्र दे० है । मन्त्रार्थ-(अभिष्टिकृत् उग्रः ओजिष्ठेभिः नृपतिः वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु पृतन्यून् तुर्वणिः इन्द्रः नः अवसे दूरात् अयासत्) मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला उत्कृष्ट अतितेजस्वी बलोंसे युक्त मनुष्योंका पालनकर्ता वज्रधारी एक संग्राममें तथा बडे २ संग्रामोंमें शत्रुओंको मारनेवाला इंद्र हमारी रक्षा करनेको दूर स्वर्गसे आओ (नः आसात् आ) हमारे निकटस्थानसे भी आओ ॥ ४८ ॥

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोवसे राधसे च । तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ ४९ ॥

इसका पंक्ति छं०, ऋ० दे० पूर्ववत् म० (मघवा विरप्शी वज्री इन्द्रः नः अवसे च राधसे अर्वाचीनः हरिभिः अच्छ आयातु) परिपूर्ण धनवान् महान् वज्रधारी इन्द्र हमारी रक्षाके निमित्त और धन देनेके निमित्त सन्मुख होता हुआ हरिनामक अश्वोंके द्वारा अच्छेप्रकार सन्मुख आओ (नः इमं यज्ञं अनुवाजसातौ तिष्ठाति) हमारे इस यज्ञको अन्नके सम्भोगके निमित्त स्थित हो अर्थात् हमको धन देकर रक्षाकरे

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रम्पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ५० ॥

इसका गर्ग ऋ०, विराट् त्रि० छ०, इन्द्र दे० है । मन्त्रार्थ-(त्रातारं इन्द्रं ह्वयामि) रक्षक इन्द्रका आह्वान करता हूँ (अवितारं इन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरं इन्द्रं) रक्षक इन्द्रको और प्रत्येक यज्ञमें सुखसे बुलाने योग्य शूर इन्द्रको आह्वान करता हूँ (शक्रं पुरुहूतं इन्द्रं) समर्थ बहुतोंसे आहुति के द्वारा पूजित इन्द्रको आह्वान करता हूँ (मघवा इन्द्रः नः स्वस्ति दधातु) धनवान् इन्द्र हमारा कल्याण करे ॥ ५० ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ ॥ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतान्द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

इसका गर्ग ऋ०, भुरिक् पंक्ति छं० इंद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(सुदामा स्ववान् विश्वचेताः इन्द्रः अवोभिः सुमृडीकः भवतु) सुरक्षक धनवान् सर्वज्ञ इन्द्र अन्नोंके द्वारा सुखकारी हो (द्वेषः बाधतां) हमारे दुर्भाग्य को दूर करे (अभयं कृणोतु) हमको अभय देय (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) हम श्रेष्ठ धनके स्वामी हों अथवा सुपुत्रवान् हों ५१

तस्य वयꣳ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम। स सुत्रामा स्ववाँ२ ॥ इन्द्रोऽअस्मेऽआरा च्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ५२ ॥

इसका गर्ग ऋ०, पंक्ति छ०, इंद्र दे० है। मन्त्रार्थ-(वयं तस्य यज्ञियस्य सुमतौ स्याम) हम उस यज्ञ का सम्पादन करने वाले इन्द्रकी सुमतिमें प्राप्त हों (भद्रे सौमनसे अपि) कल्याण रूप श्रेष्ठ मनमें भी स्थित हों अर्थात् इन्द्र हमारे मनको सुमति और कल्याणसे युक्त करे (सः सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः अस्मे आरात् चित् द्वेषः सनुतः युयोतु) वह सुरक्षक, धनवान् इन्द्र हमसे दूर स्थित भी जो कुछ दुर्भाग्य हो उसको अन्तर्हित करके दूर करे ॥ ५२ ॥

आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा केचिन्नियमन्विन्न पाशिनोऽतिधन्वेव तान् इहि ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, बृहती छ० इन्द्र देवता है। मंत्रार्थ-इन्द्र मन्द्रैः मयूररोमभिः हरिभिः आयाहि) हे इन्द्र! गंभीर हिनहिनाहट और मोरकी समान रोमवाले अपने घोड़ोंके द्वारा यहाँ आइये (केचित् त्वा मा नियमन्) कोई भी आते हुए तुमको बाधा नहीं देसकता (न पाशिनः विम्) जैसे पाशधारी व्याधे पक्षीको पकड़ते हैं (ताम् धन्व इव अतीहि) उनको मरुभूमि को समान लाँघकर आओ ॥ ५३ ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्च्चन्त्यर्कैः स नस्तुतो वीरवद्धातु गोमद्युम्पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५४ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, त्रि० छं०, इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(वसिष्ठासः एव इत् अर्कैः वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभ्यर्चन्ति) परम ब्रह्मविचारपरायण महर्षि इसप्रकार ही मन्त्रोंके द्वारा मनोरथ पूर्ण करने वाले वज्रधारी इन्द्रको अर्चना करते हैं (सः

स्तुतः वीरवत् गोमत् नः धातु) वह स्तुति को प्राप्तहुआ पुत्रयुक्त गोधन युक्त हममें स्थापन करे (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) हे ऋत्विजो ! तुम अनेकों कल्याणोंके द्वारा निरन्तर हमारी रक्षा करो ॥ ५४ ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः। दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम्।

इसका विदर्भ ऋ० अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मन्त्रार्थ-इन आप्रिय मन्त्रोंको पढे-(अश्विना अग्निः समिद्धः) हे अश्विनीकुमारो अग्नि प्रदीप्त हुआ (घर्मः तप्तः) प्रवर्ग्य तप्त हुआ (विराट् सुतः) विराजमान सोम अभिषुत कियागया (धेनुः सरस्वती इह शुक्रं इन्द्रियं सोमं दुहे) तृप्त करने वाली धेनुरूपा सरस्वती देवीने इस यज्ञमें शुद्ध इन्द्रियोंके निमित्त बलदायक सोमको दुहा ॥ ५५ ॥

तनूपा भिषजा सुतोऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ५६

इसका विदर्भि ऋ०, विराट् अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मन्त्रार्थ-(तनूपा भिषजा उभा अश्विना सरस्वती मध्वा रजांसि सुते पथिभिः इन्द्राय इन्द्रियं वहान्) शरीरके रक्षक वैद्य दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती देवी मधुसे लोकों को पूर्ण करती है सोमका अभिषव होने पर उसको मार्गोंमें इन्द्रकी इन्द्रियोंकी वृद्धिके निमित्त वहन करते हैं ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्। अधातामश्विना मधु भेषजम्भिषजा सुते ५७

इसका विदर्भि ऋ० अनु०छ० अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मन्त्रार्थ-(सरस्वती नराशंसेन इन्द्राय इन्दुं नग्नहुं भिषजा अश्विना सुते मधु भेषजं अधाताम्) सरस्वती यज्ञके साथ इन्द्रके निमित्त सोम नामक महौषधोंके कन्दको धारण किया और वैद्य अश्विनीकुमारोंने अभिषुत होने पर इस मधुर औषधिको धारण किया ५७

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्य्यम्। इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳरयिन्दधुः

इसका विदर्भि ऋ०, नि० अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है, मंत्रार्थ-(आजुह्वाना सरस्वती अश्विनौ इन्द्राय इन्द्रियाणि वीर्यम् सन्दधुः) इन्द्रको बुलाती हुई सरस्वती और अश्विनीकुमारोंने इन्द्र के निमित्त चक्षु आदि इन्द्रियें और सामर्थ्य को स्थापन किया (इडाभिः इषं ऊर्जं रयिं सम्) गौ आदि पशुओंसहित अन्न, दही आदि रस और धनको स्थापन किया ५८

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रम्परिस्रुता। सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ५९

इसका विदर्भि ऋ०, अनु० छ० अश्वि० दे० है मन्त्रार्थ (अश्विनौ परिस्रुता सुतं शुक्रं सोमं नमुचेः सरस्वती) अश्विनीकुमारोंके द्वारा महौषधोंके रसोंके साथ अभिषुत पवित्र सोमको नमुचि असुर वा पापसे सरस्वतीने हरण किया (तं इन्द्राय पातवे बर्हिषा आभरत्) उसको इन्द्रकी रक्षाके निमित्त कुशाओंपर धारण किया।

कविष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यान्न दुरो दिशः। इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ६०

इसका विद० ऋ०, अनु० छ० अश्वि० दे० है। मन्त्रार्थ-(अश्विभ्यां सरस्वती न इन्द्रः उभे रोदसी न कविष्यः व्यचस्वतीः दुरः न दिशः कामान् दुहे) अश्विनीकुमारों के साथ सरस्वतीने और इन्द्रने दोनों द्यावापृथिवी और छिद्र-युक्त तथा अवकाशयुक्त यज्ञीय द्वार और सब दिशाओं से कामनाओंको दुहा ॥ ६० ॥

उषासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः। सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या॥

इसका विद० ऋ० अनु० छ०, अश्वि० दे० है मन्त्रार्थ (सरस्वत्या अश्विना सञ्जानाने, सुपेशसा, उषासा नक्तं दिवा सायं इन्द्रं इन्द्रियैः समञ्जते) सरस्वतीके साथ अश्विनीकुमार एकमत होकर सुन्दर रूप वाले उषःकाल, रात्रि, दिन और सायंकालके समय इन्द्रको सामर्थ्योंसे संयुक्त करते हैं ॥ ६१ ॥

पातन्नो अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति। दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते॥ ६२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ- अश्विना दिवा नः पातम्) हे अश्विनीकुमारों दिन में हमारी रक्षा करो (सरस्वति नक्तं पाहि) हे सरस्वती ! तुम रात्रिमें रक्षा करो (दैव्या होतारा भिषजा सुते सचा इन्द्रं पातम्) हे देवसम्बन्धी होताओं, वैद्य अश्विनीकुमारों ! सोमके अभिषुत होने पर इकट्ठे होकर इन्द्रकी रक्षा करो ॥६२॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा। तीव्रम्परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्म्मदम् ।६३।

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ-(त्रेधा सरस्वती इडा तिस्रः अश्विना परिस्रुता तीव्रं मदं इन्द्रं सोमाय सुषुवुः) तीन प्रकारसे स्थित अर्थात् मध्य

स्थानोंमें सरस्वती द्युलोकमें भारती और पृथ्वी पर इडा इन तीनों अश्विनीकुमारके द्वारा महौषधोंके रससंयुक्त अधिक हर्षित करनेवाले सोमका अभिषवण किया गया।

अश्विना भेषजम्मधु भेषजन्नस्सरस्वती। इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपं रूपमधुः सुते ।

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(सुते नः इन्द्रे अश्विना भेषजं सरस्वती मधु भेषजं तुष्टा यशः श्रियं रूपं रूपं अधुः) सोमका अभिषव होने पर हमारे इन्द्रमें अश्विनी-कुमारने महौषधि, सरस्वतीने मधु-रूप औषध, त्वष्टा देवताने कीर्त्ति, लक्ष्मी और अनेक प्रकारके रूप स्थापन किये ॥६४॥

ऋतथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता। कीलालमश्विभ्याम्मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(वनस्पतिः इन्द्रः शशमानः ऋतुथा परिस्रुता कीलालं इन्द्रः अश्विभ्यां सरस्वती धेनुः मधु दुहे) प्रयाजदेवता इन्द्र स्तुतिको प्राप्त होताहुआ प्रत्येक ऋतुमें महौषधोंके रसके साथ अन्न के रसको इन्द्रके निमित्त देता हुआ तथा अश्विनीकुमारों सहित सरस्वतीने धेनु-रूप होकर इन्द्रके निमित्त मधुको दुहा ६५

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता। समधातं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतम्मधु ।६६।

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(अश्विना सरस्वत्या गोभिः परिस्रुता सुतं मधु सोमं इन्द्रे समधातं स्वाहा) हे अश्विनीकुमारों! तुम सरस्वतीके साथ दूध घृत आदिके द्वारा महौषधोंके रससे अभिषुत मधुर सोमको इन्द्रके निमित्त स्थापन करो, उसका श्रेष्ठ होम हो ॥ ६६ ॥

अश्विना हविरिन्द्रियन्नमुचेर्द्धिया सरस्वती। आशुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥

इसका विद० ऋ० भु० अनु० छ० अश्वि० देवता है। मन्त्रार्थ-(अश्विना सरस्वती धिया नमुचेः आसुरात् इन्द्राय शुक्रं हविः इन्द्रियं मघं वसु आजभ्रिरे) अश्विनीकुमार और सरस्वती ने बुद्धि-पूर्वक नमुचिनामक दैत्यसे इन्द्रके निमित्त शुद्ध हवि बल-कारक और पूजनीय धन आहरण किया ॥ ६७ ॥

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन्। स बिभेद बलम्मघन्नमुचावासुरे सचा ।६८।

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(अश्विना सरस्वती सचा यं इन्द्रं हविषा अवर्द्धयन्) अश्विनीकुमार और सरस्वतीने एकमत होकर जिस इन्द्रको हविके द्वारा बढ़ाया

(सः आसुरे नमुचौ बलं मघं विभेद) उस इन्द्रने असुर नमुचिके साथ होकर अर्थात् नमुचिके साथ विवाद करके बल और पूजनीय मेघको विदीर्ण किया ॥६८॥

तमिन्द्रम्पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥

इसका विद० ऋ०, नि० अनु० छ० अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (पशवः उभा अश्विना सरस्वती सचा यज्ञे तं इन्द्रं हविषा इन्द्रियैः दधाना अभ्यनूषत) कर्ममें घृतादिके निमित्त अंगभूत पशु, दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वतीने एकत्र होकर यज्ञमें उस इन्द्रकी हविके द्वारा बलोंको धारण करते हुए स्तुति की ॥६९॥

य इन्द्र इन्द्रियन्दधुस्सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥

इसका विद० ऋ० अनु० छ० अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ-(ये सविता वरुणः भगः इन्द्रे इन्द्रियं दधुः) जिन सविता वरुण और भग देवताने इन्द्रमें बलको स्थापन किया (सः हविष्पतिः सुत्रामा यजमानाय सश्चत) वह हवियोंका स्वामी सुरक्षक इन्द्र यजमान को इच्छित-पदार्थ देकर सुखी करे ॥ ७० ॥

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ।७१।

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सुत्रामा नमुचेः वसु बलं इन्द्रियं आदत्त) सुरक्षक इन्द्रने नमुचि असुरसे धन, बल और इन्द्रियों की सामर्थ्य को ग्रहण किया (सविता वरुणः दाशुषे यजमानाय दधत्) सविता और वरुण देवताने हवि देनेवाले यजमानके निमित्त धन और बलको धारण किया ॥ ७१ ॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियम्भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलन्दधाना यज्ञमाशत ७२

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(क्षत्रं इन्द्रियं भगेन, श्रियं यशसा बलं दधानाः सविता सुत्रामा यज्ञं आसत) प्रहारसे रक्षा करनेकी शक्ति, बल ऐश्वर्यसहित लक्ष्मी और यशसहित सामर्थ्यको यजमानमें स्थापन करते हुए सविता और इन्द्रदेवता इस सौत्रामणि यज्ञको व्याप्त करते हैं ॥ ७२ ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यम्बलम् । हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥

इसका विद० ऋ० नि० अनु० छ० अश्वि० दे० है। मन्त्रार्थ (अश्विना सरस्वती गोभिः इन्द्रियं अश्वेभिः वीर्यं बलं हविषा इन्द्रं यजमानं अवर्द्धयन्) दोनों

अश्विनीकुमार और सरस्वतीने गौ आदि पशुओंके द्वारा इन्द्रियोंकी शक्ति और दक्षिणारूप अश्वोंसे वीरता, बलको तथा हविद्वारा इन्द्र और यजमानको बढ़ाया।

तानासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा। सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्म्मसु नोऽवत ७४

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(ता हिरण्यवर्त्तिनी सुपेशसा नरा नासत्या हविष्मती सरस्वती इन्द्र कर्मसु नः अवत) वह दोनों सुवर्ण-मार्गमें विचरने वाले सुरूप नराकार अश्विनीकुमार हवि वाली सरस्वती और हे इन्द्र! तुम इस सौत्रामणि यज्ञरूप कर्ममें हमारी रक्षा करो।७४।

ता भिषजा सुकर्म्मणा सा सुदुघा सरस्वती। स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम्॥

इसका विद० ऋ० अनु० छ० अश्वि० देवता है मन्त्रार्थ-(ता सुकर्मणा भिषजा सा सुदुघा सरस्वती सः वृत्रहा शतक्रतुः इन्द्राय इन्द्रियं दधुः) वह सुन्दर कर्मवाले दोनों वैद्य अश्विनीकुमार वह कामदुहा सरस्वती और वह वृत्रनाशक इन्द्र ऐश्वर्यवान् यजमानको इन्द्रियोंकी शक्ति देते हुए

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपानाः सरस्वतीन्द्रङ्कर्म्म स्वावत॥७६॥

इसका विद० ऋ० वि० अनु० छ० अश्वि० देवता है। मन्त्रार्थ-(अश्विना सरस्वती युवं सचा नमुचौ आसुरे सुरामं विपिपानाः कर्मसु इन्द्रं अवत) हे अश्विनीकुमार और हे सरस्वती देवी! तुम दोनों एकमत होकर नमुचि असुरमें वर्त्तमान महौषधोंके रसयुक्त ग्रहको लेकर अनेकों प्रकारसे पान करते हुए इस यज्ञकर्ममें इन्द्रकी रक्षा करो॥ ७६॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथः काव्यैर्दꣳसनाभिः यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्॥ ७७॥

इसकी व्याख्या १०।३४ में होगई॥ ७७॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः। कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिञ्जनय चारुमग्नये॥ ७८॥

इसका विद० ऋ० जगती छ० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे अग्नये हृदा मतिं चारुं जनय) अन्नरसके पानकर्त्ता सोमकी आहुति वाले श्रेष्ठ बुद्धिमान् अग्निके अर्थ हृदयसे बुद्धि को प्रकट करो अर्थात् मन बुद्धिको शुद्ध करो (यस्मिन् अश्वासः उक्षणः ऋषभासः वशा मेषाः अवसृष्टासः आहुताः) जिस शुद्ध व्यवहारमें घोड़े सेचनमें समर्थ वृषभ वध्या मेष सुशिक्षित कर छोड़े हुए ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् शिक्षितकार्यमें लगाए जाते हैं और नवीन सिखाए जाते हैं

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतञ्चम्वीव सोमः। वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरम्प्रशस्तन्धे हि यशसम्बृहन्तम् ॥ ७९ ॥

इसका विद० ऋ० भु० पंक्ति छ० अग्नि देव० है। मन्त्रार्थ-(अग्ने ते आस्ये हविः अहावि) हे अग्ने! तुम्हारे मुखमें हवि सब ओरसे हवन कियागया (इव स्रुचि घृतम्) जैसे कि स्रुवेमें घी (इव चम्वि सोमः) और जैसे अधिषवणपात्रमें सोम (अस्मे वाजसनिं सुवीरं रयिं प्रशस्तं बृहन्तं यशसं धेहि) हमें अन्नभाग वीरपुत्र धन और सब लोकमें प्रशंसित विशाल यश दीजिये ॥ ७९ ॥

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्य्यम्। वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥

इसका विद० ऋ० विराट् अनु० छ० अश्विसर० देवता है। मंत्रार्थ-(अश्विना तेजसा चक्षुः सरस्वती प्राणेन वीर्यं इन्द्रः वाचा बलेन इन्द्रियं इन्द्राय दधुः) दोनों अश्विनीकुमारोंने तेजके साथ नेत्रको सरस्वती देवीने प्राणोंके साथ सामर्थ्यको और इन्द्रने वाणी तथा बलके साथ इन्द्रियों के बलको यजमानके निमित्त स्थापन किया

गोमदूषु णासत्या अश्वावद्यातमश्विना। वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥

इसका गृत्समद ऋ० गाय० छ० अश्विनौ दे० है। मन्त्रार्थ-(नासत्या अश्विना रुद्रा उ सु गोमत् अश्वावत् वर्त्ती नृपाय्यं यातम्) हे सत्यव्यवहारयुक्त अश्विनीकुमारों! हे दुष्टोंके रुलाने वालों! अवश्य ही तुम गौओंसे युक्त अश्वोंसे युक्त वर्त्तमान मार्गमें इस सोमरस पान-योग्य यज्ञमें गमन करो अर्थात् यजमानने गौ अश्वोंका दान दिया है तुम यहाँ आगमन करो ॥ ८१ ॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षदृतृषण्वसू दुःशꣳसो मर्त्य रिपुः ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(वृषण्वसू यत् दुःशंसः रिपुः मर्त्यः परः अन्तरः न आदधर्षीत्) हे वृष्टिरूप धन देनेवाले दोनों अश्विनीकुमारो ! जो निन्दा करने वाला शत्रु मनुष्य अपने सम्बन्धसे रहित हो वा अपना सम्बन्धी हो वह हमको वा इन्द्रको धर्षणा न कर सके ॥ ८२ ॥

ता न आवोढमश्विना रयिम्पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(धिष्ण्या अश्विना ता नः पिशङ्गसदृशं वरिवोविदं रयिं आवोढम्) हे सबको धारण करने वाले अग्निरूप धैर्यशील अश्विनीकुमारो ! वह तुम हमारे निमित्त पीतवर्ण सुवर्ण धनका हेतु धन प्राप्त कराओ ॥ ८३ ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धिया वसु ॥ ८४ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० गाय० छ० सरस्वती दे० है । मन्त्रार्थ (पावक वाजेभिः वाजिनीवती धिया वसु सरस्वती नः यज्ञं वष्टु) पवित्र करनेवाली अन्नों द्वारा अन्नयुक्त बुद्धि के कर्मरूप धनवाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञको इच्छा करे ॥ ८४ ॥

चोदयित्री सूनृतानाञ्चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञन्दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सूनृतानां चोदयित्री सुमतीनां चेतन्ती सरस्वती यज्ञं दधे) सत्य और प्रिय वचनोंकी वा वैदिक शब्दोंकी प्रेरणा करने वाली सुबुद्धियोंको चेतना देने वाली सरस्वती देवी यज्ञको धारण करती हुई ॥ ८५ ॥

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति ॥ ८६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । (सरस्वती केतुना महः अर्णः प्रचेतयति) सरस्वतीदेवी कर्म वा प्रज्ञासे बड़े जलको प्रेरणा करती है अर्थात् सर्वत्र वर्षा कराती है (विश्वा धियः विराजति) सकल प्राणियोंकी बुद्धियोंको प्रदीप्त करती है, उसकी हम स्तुति करते हैं ॥ ८६ ॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ८७ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० गा० छ० इन्द्र दे० है। मन्त्रार्थ-(चित्रभानो इन्द्र आयाहि) हे अनेकोंप्रकारकी कान्तिवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! यहाँ आइये (इमे त्वायवः अण्वीभिः तना पूतासः सुताः) यह तुम्हारी इच्छा करनेवाले अंगुलियों और दशा पवित्रसे

शोधित अभिषुत सोम तुम्हारे निमित्त ही रक्खे हैं ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(इन्द्र धिया इषितः विप्रजूतः आयाहि) हे इन्द्र अपनी बुद्धिसे प्रेरित हुए तुम श्रेष्ठ ब्राह्मणों से सेवित होते हुए आइये (सुतावतः वाघतः ब्रह्माणि उप) सोमका अभिषव करने वाले यजमानको और ऋत्विजोंके स्तोत्र हविसमीपमें वर्त्तमान हैं ॥ ८८ ॥

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्वनश्चनः ॥ ८९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(हरिवः इन्द्र तूतुजानः ब्रह्माणि उप आयाहि) हे अश्व वाले इन्द्र! शीघ्रता करते हुए तुम हवियोंके समीप आइये (सुते नः चनः दधिष्व) सोमके अभिषुत होनेपर हमारे सोमरूप अन्न और हविको उदरमें धारण करो ॥ ८९ ॥

अश्विना पिबताम्मधु सरस्वत्या सजोषसा। इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬ सोम्यम्मधु ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ०,नि० अनु०छ० अश्विसर० दे० है। मंत्रार्थ-(सरस्वत्या सजोषसा अश्विना मधु पिबताम्) सरस्वती सहित प्रीतिमान् अश्विनीकुमार स्वादिष्ट सोमको पियें (सुत्रामा वृत्रहा इन्द्रः मधु सोम्यं जुषन्ताम्) सुरक्षक वृत्रासुरघाती इन्द्र मीठे सोममय हविको सेवन करें [इस यज्ञमें बुद्धि बलको तीव्र करने वाली मंत्रोंके अनुसार सम्पादन की हुई औषधोंके रसका यौगिक नाम सुरा है जो लोग इसको लौकिक मद्यवत् समझते हैं वह इस कर्मके रहस्यको न जानने वाले शास्त्रकी श्रद्धासे रहित विषयलोलुप और मूर्ख हैं यह तो मन्त्रसिद्ध वह औषधरस तयार किया जाता है कि इन्द्रपर्यन्तने इसके प्रभावसे ही इन्द्रियबल और बुद्धि को पाया था] ॥ ९० ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदसंहितान्तर्गत वाजसनेयि माध्यन्दिनीयशाखामें भारद्वाज-गोत्रोद्भूत गौड़वंश्य प० भोलानाथतनय ऋषिकुमारोपनामक रामस्वरूप-शर्मसंकलित सान्वय भाषानुवाद सहित बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

—o—

❀ अथ एकविंशोऽध्यायः ❀

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, गा० छ०, वरुण दे० है। अवभृथमें वरुणके पुरोडाशका पुरोनुवाक्य। मंत्रार्थ-(वरुण मे इमं हवं श्रुधि) हे वरुणदेव! मेरे इस आह्वानको सुनिये (च अद्य मृडय) और आज हमको सब प्रकारसे सुखी करो (अवस्युः त्वां आचके) अपनी रक्षा चाहता हुआ मैं तुमको बुलाना चाहता हूँ ॥ १ ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणो हवो-द्ध्युरुशꣳसमा नः आयुः प्रमोषीः ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या १८ । ४ . में होगई ॥ २ ॥

त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशु-चानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ३ ॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ० अग्नि वरुण दे० हैं । वरुणयागमें पुरोनुवाक्य । मन्त्रार्थ- (अग्ने विद्वान् यजिष्ठः वह्नितमः शोशुचानः त्वं नः वरुणस्य देवस्य हेडः अवयासिषीष्ठाः) हे अग्निदेव! सब कुछ जाननेवाले, यज्ञमें प्रधान, हविको पूर्णतया पहुँचाने वाले कान्तिमान् तुम हमारे प्रति वरुण देवताके क्रोधको हमसे दूर करो (विश्वा द्वेषांसि अस्मत् प्रमुमुग्धि) सकल द्वेष दुर्भाग्यको हमसे छुटा कर दूर करो ३

स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि ॥ ४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(अग्ने सः त्वं अस्याः उषसः व्युष्टौ ऊती नः अवमः नेदिष्ठः भव) हे अग्ने! ऐसे तुम इस उषः-कालकी समृद्धिमें अपनी पालनशक्तिके साथ हमारी रक्षा करनेको समीपमें स्थित हूजिये (रराणः नः वरुणं अवयक्ष्व) हवि

२७ । ३ । ३६

पहुँचाते हुए तुम हमारे वरुण देवताको तृप्त करो (मृडीकं, वीहि) सुखदायक हवि को भक्षण कीजिये (नः सुहवः एधि) हमारे श्रेष्ठ आह्वान वाले हूजिये ॥ ४ ॥

महीमूषु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्म्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥ ५ ॥

वामदेव ऋ०, त्रि० छ०, अदिति दे० है। आदित्य चरुके याज्यका मंत्रपाठ। मंत्रार्थ-(ऊषुमहीं सुव्रतानां मातरं ऋतस्य पत्नीं तुविक्षत्रां उरूचीं सुशर्माणं सुप्रणीतिं अदितिं अवसे हुवेम) परम महिमावाली शुभकर्मोंकी माता सत्य यज्ञकी पालक अनेकों प्रकारकी पीड़ासे रक्षा करने वाली जरारहित बड़े मार्गमें चलने वाली सुखरूपा सुन्दर प्रेममयी अदितिको रक्षाके निमित्त आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

सुत्रामाणम्पृथिवीन्द्यामनेहसꣳ सुशर्म्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्। देवीन्नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

गयप्लात ऋ० त्रि० छ०, अदिति दे० है। मन्त्रार्थ-(पृथिवीं द्यां अनेहसं सुत्रामाणं सुशर्माणं सुप्रणीतिं अनागसं अस्रवन्तीं देवीं स्वरित्रां अदितिं नावं स्वस्तये आरुहेम) विशाल स्वर्गरूप क्रोधरहित रक्षा करने वाली भले प्रकार शरण देने वाली सुन्दर घरोंसे युक्त परमप्रेममयी निर्दोष निन्दाशून्य देवसम्बन्धि यज्ञस्वरूपा अच्छी पतवारवाली अखण्डित अदितिनामक नाव पर कल्याण पानेके निमित्त चढ़ते हैं अर्थात् यथायोग्य पूर्णाङ्ग यज्ञमयी नौका बना कर अनेकों प्रकारके सुख भोगनेको स्वर्गमें जायँ

सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राꣳ स्वस्तये ॥ ७ ॥

गयप्लात ऋ० गाय० छ० अदिति दे० है। मन्त्रार्थ-(अस्रवन्तीं अनागसं शतारित्रां सुनावं स्वस्तये आरुहेम) छिद्ररहित अपराधरहित होनेसे मनोरथ पूर्ण करने वाली वेदमन्त्ररूप अनेकों पतवार वाली इस यज्ञमयी श्रेष्ठ नौका पर हम संसारसागरसे पार होनेके निमित्त चढ़ते हैं। ७॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ८ ॥

विश्वामित्र ऋ०, गाय० छ०, मित्रावरुण दे० है। मन्त्रार्थ-'सुक्रतू, मित्रावरुणा नः गव्यूतिं घृतैः रजांसि मध्वा) उक्षत) हे श्रेष्ठ कर्मवाले मित्रावरुण देवताओं ! हमारे यज्ञमार्गको घीसे सींचो और लोकोंको मधुसे सींचो ॥ ८ ॥

प्र बाहवा सिसृतञ्जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतङ् घृतेन। आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतम्मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ९ ॥

वशिष्ठ ऋ० गाय० छ० मित्राव० दे० है। मन्त्रार्थ-(युवाना मित्रावरुणा मे इमा हवा श्रुतं) हे तरुण मित्रावरुण देवताओं ! तुम मेरी इस पुकारको सुनो (नः जीवसे बाहवा प्रसिसृतम्) हमारे चिरकालजीवन के निमित्त भुजाओंको फैलाओ (नः गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं) हमारे अन्नक्षेत्रको शुद्ध जलसे सब प्रकार सींचो (मा जने श्रावयतम्) मुझको लोकोंमें प्रसिद्ध करो ॥९॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवता तामिदवः स्वकर्काः। जम्भयन्तोहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १० ॥

इसकी व्याख्या ८। १६ में होगई ॥ १० ॥

वाजे वाजे वत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११ ॥

इसकी व्याख्या ९। १८ में होगई ॥ ११ ॥

समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः। गायत्रीच्छन्द इन्द्रियन्त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥

इसका स्वस्त्यात्रेय ऋ० अनु० छ० आप्री दे० है। मंत्रार्थ-(समिधा समिद्धः सुसमिद्धः वरेण्यः गायत्रीच्छन्दः त्र्यविः गौः इन्द्रियं वयः दधुः) बड़ी २ समिधाओं द्वारा भलीप्रकार प्रज्वलित पूर्णतया दीप्त प्रार्थना करने योग्य अग्नि देवता, गायत्री-छन्दकी शक्ति, डेढ़वर्षकी गौ पूजित होकर यजमानमें बल और आयुको स्थापन करतेहुए

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूनपाच्च सरस्वती। उष्णिहाच्छन्द इन्द्रियन्दित्यवाड् गौर्वयो दधुः १३

ऋ० और दे० पूर्ववत् आर्षी अनु० छ० है। मन्त्रार्थ-(शुचिव्रतः तनूनपात् तनूनपाः सरस्वती उष्णिहा छन्दः च दित्यवाट् गौः इन्द्रियं वयः दधुः) शुद्धकर्मा जलों का पौत्र अग्नि, शरीरको पुष्ट करनेवाले गोघृत वा प्रयाजदेवता सरस्वती देवी उष्णिक् छन्द और दिव्यहविको वहन करने वाली दो वर्षकी गौ पूजित होकर यजमान में बल और दीर्घायुको स्थापन करतेहुए १३

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः । अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियम्पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः १४

स्वस्त्या० ऋ०, विराट् अनु० छ० अग्न्यादय दे० है। मंत्रार्थ-(इडाभिः ईड्यः अग्निः अमर्त्यः देवः सोमः अनुष्टुप् छन्दः पञ्चाविः गौः इन्द्रियं वयः दधुः) प्रयाज- देवताओंसे स्तुति कियाहुआ अग्नि देवता मरणधर्मरहित देवता सोम अनुष्टुप् छन्द ढाईवर्षकी गौ यह पूजित होनेपर यजमान में बल और दीर्घायुको धारण करतेहुए १४

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः । बृहतीच्छन्द इन्द्रियन्त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः १५

इसका स्वस्त्यात्रेय ऋ०, नि० अनु० छ०, आप्री दे० है। मन्त्रार्थ—(सुबर्हिः पूषण्वान् अग्निः स्तीर्णबर्हिः अमर्त्यः बृहती छन्दः त्रिवत्सा गौः इन्द्रियं वयः दधुः) सुन्दर बर्हि वाला पूषा प्रयाज देवता अग्नि देवता विस्तृत कुशायुक्त मरणधर्म-रहित अग्नि बृहती छन्द तीन वर्षकी गौ, बल और आयुको यजमानमें धारण करते हुए ॥१५॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । पंक्तिश्छन्द इहेन्द्रियन्तुर्य्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥

इसका ऋ० और दे० पूर्ववत्। आर्षी अनु० छ० मन्त्रार्थ-(महीः दिशः देवीः दुरः बृहस्पतिः ब्रह्मा देवः पंक्तिश्छन्दः तुर्यवाट् गौः इन्द्रियं वयः दधुः) बड़ी दिशा दीप्तिमान द्वारोंकी देवियें बृहस्पति और ब्रह्मा देवता पंक्ति छन्द तथा चार वर्ष की गौ पूजित होकर इस यजमानमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥ १६ ॥

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियम्पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः ॥

ऋ० और छ० पूर्ववत् प्रयाजा दे० है। म० (यह्वी सुपेशसा उषे अमर्त्याः विश्वे देवाः त्रिष्टुप् छन्दः पष्ठवाट् गौः इह इन्द्रियं वयः दधुः) विशाल सुन्दर रूप वाले दिनरात मरणधर्मरहित सम्पूर्ण देवता त्रिष्टुप् छंद और पीठ पर भार उठाने वाला बैल इस यजमानमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥ १७ ॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा । जगतीच्छन्द इन्द्रियमनड्वान्गौर्वयो दधुः १८

ऋ० और छ० पूर्ववत् । आप्री दे० है । मन्त्रार्थ-(दैव्या होतारा इन्द्रेण सयुजा युजा भिषजा जगतीछन्दः अनड्वान् गौः इन्द्रियं वयः दधुः) देवी आहुति देने वाले यह इन्द्र और मध्यम वायु, इन्द्रसहित दोनों वैद्य अर्थात् अन्तरिक्षमें स्थित अग्नि और वायु जगती छन्द छः वर्षका युवा वृषभ यह यजमानमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥१८॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट्छन्द इहेन्द्रियन्धेनुर्गौर्न्न वयो दधुः १९

ऋ० और दे० पूर्ववत्. आर्षी अनु० छ० है । मन्त्रार्थ-(इडा सरस्वती भारती तिस्रः मरुतः विशः विराट् छन्दः न धेनुः गौः इन्द्रियं वयः दधुः) इडाभूमि सरस्वती धारणावती बुद्धि यह तीनों देवी, इन्द्रकी प्रजा, विराट् छन्द और दुधेर गौ इस यजमानमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥ १९ ॥

तुष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्द्धना । द्विपदाच्छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न्न वयो दधुः २०

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(तुरीपः अद्भुतः त्वष्टा तुष्टिवर्द्धना इन्द्राग्नी द्विपदा छन्दः उक्षा गौः इन्द्रियं न वयः दधुः) पूर्णताको प्राप्त सर्वव्यापी अद्भुत महान् त्वष्टा देवता पुष्टिवर्द्धक इन्द्र और अग्नि द्विपात् छन्द और सेचनमें समर्थ वृषभ यह पाँचों इन्द्रमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥ २० ॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन्भगम् । ककुप्छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः २१

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(न शमिता वनस्पतिः भगं प्रसुवन् सविता ककुप् छन्दः वशा वेहद् इह इन्द्रियं वयः दधुः) हमको सुखदायक वनस्पति धनको देनेवाला सविता ककुप् छन्द वन्ध्या और गर्भघातिनी गौ इस यजमानमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥ २१ ॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजङ्करत् । अतिच्छन्दा इन्द्रियम्बृहदृषभो गौर्वयो दधुः २२

ऋ० और दे० पूर्ववत् आर्षी अनु० छ० है । मंत्रार्थ-(सुक्षत्रः वरुणः स्वाहा भेषजं यज्ञं करत् अतिच्छन्दः बृहत् ऋषभः गौः इन्द्रियं वयः दधुः) सुरक्षक वरुण देवता, स्वाहाकृत प्रयाज देवताओंके साथ औषधरूप यज्ञको इन्द्रके निमित्त करते हुए

अतिच्छन्द और बड़ा श्रेष्ठ वृषभ इन्द्रमें बल और आयुको स्थापन करते हुए ॥२२॥

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः । रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः २३

इसका स्वस्त्यात्रेय ऋ० भुरिक् आर्षी अनु० छ० लिङ्गोक्त देवता है । मंत्रार्थ- (त्रिवृता रथन्तरेण स्तुताः वसन्तेन ऋतुना वसवः देवाः इन्द्रे तेजसा हविः वयः दधुः) त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर पृष्ठसे प्राप्त स्तुतिको हुए वसन्तऋतु सहित आठों वसु देवता इन्द्रमें तेजके साथ हवि और आयुको स्थापन करते हुए ॥ २३ ॥

ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः । बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, आर्षी अनु० छ० है । मन्त्रार्थ-(पंचदशे बृहता स्तुताः ग्रीष्मेण ऋतुना रुद्राः देवाः इन्द्रे यशसा बलं हविः वयः दधुः) पञ्चदशस्तोम और बृहत्पृष्ठसे स्तुति किये हुए ग्रीष्मऋतु सहित रुद्र देवता इन्द्रियें यशसहित बल, हवि और आयुको स्थापन करते हुए २४

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सप्तदशे स्तोमे वैरूपेण स्तुताः वर्षाभिः ऋतुना आदित्याः इन्द्रे विशा ओजसा हविः वयः दधुः) सप्तदशस्तोम और विरूप पृष्ठके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुए वर्षाऋतु सहित आदित्य देवता इन्द्रमें प्रजाके द्वारा ओज सहित हवि और आयुको स्थापन करते हुए ॥ २५ ॥

शारदेन ऋतुना देवा एकविꣳश ऋभव स्तुताः । वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् । स्वराडार्षी अनु० छ० है । मन्त्रार्थ (एकविंशे वैराजे स्तुताः श्रिया शारदेन ऋतुना ऋभवः देवाः इन्द्रे श्रियं हविः वयः दधुः) एकविंश स्तोम और वैराजपृष्ठके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुए लक्ष्मी और शरद्ऋतुसहित ऋभुनामक देवता इन्द्रमें लक्ष्मी हवि और आयुको स्थापन करते हुए ॥ २६ ॥

हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः । बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः २७

ऋ० और दे० पूर्ववत् भु०आ० अनु० छ० है । मन्त्रार्थ-(त्रिणवे शक्वरीः स्तुताः हेमन्तेन ऋतुना मरुतः देवाः इन्द्रे बलेन सह हविः वयः दधुः) त्रिणवस्तोम और शक्वरीपृष्ठके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुए हेमन्त ऋतुसहित मरुत देवता इन्द्रमें बल

सहित हवि और आयुको स्थापन करते हुए ॥ २७ ॥

शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः। सत्येन रेवती क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(त्रयस्त्रिंशे रेवतीः स्तुताः शैशिरेण ऋतुना अमृताः देवाः इन्द्रे सत्येन क्षत्रं हविः वयः दधुः) त्रयस्त्रिंशस्तोम और रेवती पृष्ठसे स्तुतिको प्राप्तहुए शिशिर ऋतु सहित अमृत नामक देवताओंने इन्द्रमें सत्य सहित क्षात्रतेज हवि और आयुको स्थापन किया

होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजꣳ

मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियम्पयः सोमः परिस्रुता घृतम्मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२९॥

स्वस्त्यात्रेय ऋ०, नि० अष्टि छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है, यहाँसे १२ मंत्र प्रैष कहाते हैं। मन्त्रार्थ-(होता समिधा अग्निं अश्विना इन्द्रं सरस्वती इडः पदे यक्षत्) आहवनीय वेदीमें स्थित दिव्य होता समिधासे अग्निको, अश्विनीकुमार इन्द्रको सरस्वतीको अर्थात् इनके अर्थ आहवनीयके स्थानमें हवन करता हुआ (धूम्रः अजः गोधूमैः कुवलैः न शष्पैः मधु भेषजं न तेजः इन्द्रियं) उसमें धूम्रवर्णका अज गेहूँ बदरीफल और अंकुरित व्रीहियों सहित मधुर औषध होता है और तेज तथा बलका देने वाला होता है (पयः परिस्रुता सोमः मधु, घृतं व्यन्तु) वह अश्विसरस्वतींद्र देवताओंसे पूजित होकर जलोंके सारभूत परिस्रुत महौषधोंसहित सोम मधु घृतको पिये (होतः आज्यस्य यज) हे मनुष्य होतः ! इसप्रकार तुम भी घृतसे हवन करके देवताओंको प्रसन्न करो

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजम्पथामधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यम्ब-

दरैरुपवाकाभिर्भेषजन्तोकमभिः पयः० ॥ ३० ॥

स्वस्त्या० ऋ० भुरिगत्यष्टि छ० अश्विसर० दे० है। मन्त्रार्थ (होता तनूनपात् सरस्वती अश्विना यक्षत्) दिव्य होताने प्रयाज देवता सरस्वती और अश्विनीकुमारोंका यजन किया । (बदरैः उपवाकाभिः तोकमभिः अविः मेषः इन्द्राय मधुमता पथा वीर्यं भरन् भेषजं) उसमें बेर इन्द्रजौ अंकुरित व्रीहि अजा और मेषका दुग्ध घृत, इन्द्रके निमित्त रसवाले यज्ञमार्गसे बलको पुष्ट करने वाली औषध

होती है (न परिस्रुता पयः सोमः मधु घृतं व्यन्तु) और परिस्रुत दूध सोम मधुर घृतको अश्विनीकुमार सरस्वती आदि पान करें (होतः आज्यस्य यज) हे मनुष्य-होतः ! तुम भी इसी प्रकार घृतसे यजन करो ॥ ३० ॥

होता यक्षन्नराशꣳसन्न नग्नहुमतिꣳ सुरया भेषजम्मेषः सरस्वतीभिषग्रथो न चंद्रश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्य्यम्बदरैरुपवाकाभिर्भेषजन्तोक्मभिः पयः० ॥ ३१ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् अति धृति छ०, है। मन्त्रार्थ-(होता नराशंसं पतिं नग्नहुं यक्षत्) देवताओंके होताने मनुष्योंसे स्तुति किये हुए रक्षक पूर्वोक्त औषधोंका यजन किया (सुरया बदरैः उपवाकाभिः तोक्मभिः मेषः न भिषगश्विनोः चन्द्री रथः वपा सरस्वती इन्द्रस्य वीर्यं भेषजं परिस्रुता पयः सोमं मधु भेषजं घृतं व्यन्तु) महौषधिरस, बेर, इन्द्रजौ और व्रीहियों सहित मेषका घृत और अश्विनीकुमारका सुवर्णमय रथ घृतसारको सरस्वतीने इन्द्र के निमित्त बलकारक औषधरूप कल्पना किया उन देवताओंने उस रसके साथ दूध सोम और मधुर औषधरूप घीको पिया (होतः आज्यस्य यज) हे होतः ! तुम भी घृतके द्वारा इनका यजन करो ३१

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रम्बलेन वर्द्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमाश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्म्मधु लाजैर्न मासरम्पयः० ॥ ३२ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, सुराड्धृति छ० है। मन्त्रार्थ-(होता इडा ईडितः आजुह्वानः ऋषभेण धेन्वा बलेन वर्द्धयन् सरस्वतीं इन्द्रं अश्विना यक्षत्) देवताओंके होताने प्रशंसित वाणीसे स्तुत होकर इडादि को आह्वान करते और बलवती गौके द्वारा घृत दुग्धादिसे बलको बढ़ाते हुए सरस्वती इन्द्र और अश्विनीकुमारोंके निमित्त यज्ञ किया (यवैः कर्कन्धुभिः न लाजैः मासरं इन्द्राय इन्द्रियं मधु भेषजं परिस्रुता पयः) उस यज्ञमें जौ बेर खील और भातसे इन्द्रके निमित्त बलकारक मधुर औषधिकरी उन देवताओंने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३२ ॥

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुस्सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजम्पयः० ॥ ३३ ॥

ऋ०, और देवता पूर्ववत्, नि० अष्टि छ०, है मंत्रार्थ-(होता ऊर्णम्रदाः बर्हिः भिषजा नासत्या अश्विना सरस्वती यक्षत्) देवताओंका होता उनकी समान कोमल प्रयाज देवताको वैद्य सत्यस्वरूप अश्विनीकुमार और सरस्वतीके निमित्त यजन करता हुआ (शिशुमती अश्वा भिषक् धेनुः भिषक् इन्द्राय भेषजं दुहे पयः०) जिसमें बालकवाली घोड़ी चिकित्सक और बछड़े वाली गौ चिकित्सक है, इन्द्रके निमित्त अश्वादिकी दक्षिणारूप भेषजको पूर्ण करते हैं, शेष पूर्ववत् ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यान्न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रन्न ज्योतिरिन्द्रियम्पयः० ॥ ३४ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् । नि० अतिधृति छ० है । मंत्रार्थ-(होता दिशः कवष्यः न व्यचस्वतीः दुरः इन्द्रः न सरस्वतीं अश्विना यक्षत्) देवताओंके होताने दिशाओंकी समान अवकाश वाले झरोखों वाले गमनागमनके योग्य द्वारोंकी देवियें, इन्द्र, सरस्वती तथा अश्विनीकुमारोंके निमित्त यजन किया (दिशः दुरः अश्विभ्यां न दुघे रोदसी इन्द्राय भेषजं दुहे) जहाँ दिशाकी समान द्वार, अश्विनीकुमारों के सहित और परिपूर्णता करनेवाले द्यावा पृथिवी तथा इन्द्रके निमित्त औषधको पूर्ण किया (धेनुः, शुक्रं,ज्योतिः इन्द्रियम्) सरस्वतीने धेनु होकर इन्द्रके निमित्त शुक्र तेज और वीर्यको पूर्ण किया । शेष पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

होता यक्षत्सुपेशसो नक्तन्दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरम्पयः० ॥ ३५ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् भुरिगष्टि छ० है । मन्त्रार्थ-(होता सुपेशसा उषे न सरस्वत्या अश्विना यक्षत्) देवताओंके होताने सुन्दररूपवाले दिनरात और सरस्वती तथा अश्विनीकुमारों के निमित्त यजन किया (नक्तं दिवा रजसा हृदा न श्रिया भेषजं मासरं न श्येनः त्विषिं इन्द्रे समञ्जाते परिस्रुताः पयः०) उसमें वह रात दिन ज्योतिके द्वारा चित्त और लक्ष्मी सहित औषध भात वा उसका जल और श्येन पत्र तथा कान्तिको इन्द्रमें संश्लिष्ट करते हुए, शेष पूर्ववत् ॥ ३५ ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रन्न जागृवि दिवा नक्तन्न भेषजैः शूषꣳ

सरस्वती भिषक्सीसेन दुह इन्द्रियम्पयः० ॥ ३६ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् नि० अष्टि छ०, है। मंत्रार्थ-(होता दैव्या होतारा, भिषजा अश्विना न इन्द्रं यक्षत्) देवताओंके होता ने देवसम्बन्धी होता यह अग्नि और मध्यम प्रयाजदेव वैद्य अश्विनीकुमार और इन्द्रको यजन किया (दिवा नक्तं जागृवि भिषक् सरस्वती भेषजैः शूषं न इन्द्रियं सीसेन दुहे परि०) दिन रात जागनेवाली अपने कार्यको सिद्ध करनेमें सावधान वैद्यरूपिणी सरस्वती औषधियों सहित बल और वीर्यको सीसेकी रसायनके द्वारा दुहती हुई। शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजन्त्रयस्त्रिधातवोपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियम्पयः० ॥ ३७ ॥

ऋषि और दे० पूर्ववत्, धृति छ० है। मंत्रार्थ-(होता, इडा भारती सरस्वती तिस्रः देवीः इन्द्रे न अश्विना यक्षत्) देवताओंके होताने, इडा भारती सरस्वती तीन प्रयाज देवियोंके तथा इन्द्र और अश्विनीकुमारके निमित्त यजन किया (न अपसः त्रिधातवः त्रयः वाचा भेषजं हिरण्यं रूपं महः इन्द्रियं इन्द्राय दुहे) और कर्मवान् त्रयीरूप वेदवाणीसे औषध प्रकाशित रूप और विशाल इन्द्रिय बलको इन्द्रके निमित्त सरस्वतीने पूर्ण किया ३७

होता यक्षत्सुरेतसमृषभन्नर्य्यापसन्त्वष्टारमिन्द्रमश्विनाभिषजन्न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरम्पयः० ३८

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(होता सुरेतसं ऋषभं नर्यापसं त्वष्टारं इन्द्रं अश्विना न सरस्वतीं भिषजं यक्षत्) दिव्यहोताने सुन्दर वर्षाके लक्षणवाले वीर्यसे युक्त वर्षाकर्त्ता मनुष्योंके हितकारी त्वष्टा नामक प्रयाज देवताको इन्द्र, अश्विनी-कुमार और सरस्वती रूप चिकित्सकके अर्थ यजन किया (न रभसा भिषक् वृकः न सुरया श्रिया भेषजं मासरं न ओजः जूतिः इन्द्रियं यशः परिस्रुतः०) और उद्यमयुक्त वैद्य और महौषधरस सहित ऐश्वर्यके साथ यजन किया जिससे औषधि मासर पक्वान्नादि हुए, इस यज्ञमें अवश्य तेज वेग बल और यश इन्द्रमें प्राप्त हों। शेष पूर्ववत् ॥ ३८ ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुम्भीमन्न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रन्नमसाश्विना भामꣳसरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियम्पयः० ॥ ३९ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् नि० अष्टि छ० है। मन्त्रार्थ-(होता मन्युं भीमं शतक्रतुं शमितारं वनस्पतिं राजानं अश्विना सरस्वती नमसा यक्षत्) दिव्य होताने क्रोधरूप भय-दायक अनेकों यज्ञोंके सम्पादक संस्कार करनेवाले वनस्पतिरूप प्रयाज देवताको विशेषकर सूँघनेवाले व्याघ्रकी समान राजा शतक्रतु इन्द्रके हेतु अश्विनीकुमार और सरस्वतीके निमित्त अन्नके द्वारा यजन किया (भिषक् इन्द्राय भामं इन्द्रियं दुहे परिस्रुताः०) वैद्यरूप सरस्वतीने इन्द्रके निमित्त क्रोध और बलको दुहा। शेषं पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसाम्पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳसरस्वत्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियं स्वाहाग्निन्न भेषजꣳस्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणम्भिषजाम्पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिम्प्रियम्पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजम्पयः० ॥ ४० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(होता अग्निं यक्षत्) दिव्य होताने अग्निका यजन किया (आज्यस्य स्तोकानां स्वाहा) घृतके विन्दुओंको उत्तम कहा (मेदसां पृथक् स्वाहा) मेदोवर्द्धक पदार्थको पृथक् उत्तम कहा (अश्विभ्यां छागं स्वाहा) अश्विनीकुमारोंके निमित्त छागको उत्तम कहा (सरस्वत्यै मेषं स्वाहा) सरस्वतीके निमित्त मेषको उत्तम कहा (सिंहाय सहसे इन्द्राय इन्द्रियं ऋषभं स्वाहा) सिंहकी समान पराक्रमी बलरूप इन्द्रके निमित्त उपयोगी बलसम्पन्न ऋषभको उत्तम कहा (न भेषजं अग्निं स्वाहा) और हितकारी अग्निको उत्तम कहा (इन्द्रियं सोमं स्वाहा) बलकारी सोमको उत्तम कहा (सुत्रामाणं इन्द्रं सवितारं भिषजां पतिं वरुणं स्वाहा) सुरक्षक इन्द्र सविता देवता और वैद्योंके पति वरुणके निमित्त

पुरोडाश देनेसे उत्तम कहा (प्रियं पाथः भेषजं वनस्पतिं स्वाहा) प्रिय अन्नभूत भेषजको वनस्पतिके निमित्त उत्तम कहा (आज्यपाः देवाः भेषजं जुषाणाः परिस्रुतः) घृत पीनेवाले देवता आज्यपा देवताओंको उत्तम कहें, औषधिको सेवन करते हुए अश्विनीकुमार सरस्वती और इन्द्र परि० सोम आदिको पियें हे होतः ! तुम भी उनकी प्रीतिके निमित्त घृतकी आहुति दो शेष पूर्ववत् ॥ ४० ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताᳬ हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीम्मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳬ हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४१ ॥

स्वस्त्या० ऋ०,प्राजापत्या छ०,लिंगोक्त दे० है । मं०-(होता अश्विनौ यक्षत्) दिव्य होताने अश्विनीकुमारका यजन किया (छागस्य वपायाः मेदसः हविः जुषेताम्) छागकी वपाकी मेद करके हविको सेवन किया अर्थात् यजमानके छागोंके पूर्ण पुष्ट होने पर जानागया कि-हवि स्वीकृत हुई (होतः यज) हे होतः तुम भी यजन करो (होता सरस्वतीं यक्षत्) होताने सरस्वतीका यजन किया (मेषस्य वपायाः मेदसः हविः जुषताम्) मेषकी वपाकी मेद करके हविको सेवन किया अर्थात् यजमान के मेषोंके पूर्ण पुष्ट होने पर जाना गया कि-हवि स्वीकृत हुई (होतः यज) हे होतः ! तुम भी यजन करो (होता इन्द्रं यक्षत्) होताने इन्द्रका यजन किया (ऋषभस्य वपाया मेदसः हविः जुषताम्) वृषभकी वपाकी मेद करके हविको सेवन किया,अर्थात् यजमानके वृषभोंके पूर्ण हृष्ट पुष्ट होने पर जाना गया कि-इन्द्रने हवि को स्वीकार किया (होतः यज) हे मनुष्य होता ! तुम भी घृतसे यजन करो ॥४१॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रᳬ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न्न तोक्मभिर्ल्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬ सोम्यम्मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(होता अश्विनौ सरस्वतीं सुत्रामाणं इन्द्रं यक्षत्) होताने अश्विनीकुमार सरस्वती और सुरक्षक इन्द्रका यजन किया (इमे छागैः मेषैः ऋषभैः सुरामाणः न शष्पैः तोकमभिः लाजैः महस्वन्तः मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तः अमृताः प्रस्थिताः मधुश्चुतः सोमाः सुताः) यह छाग मेष और वृषभोंके द्वारा मनोहर और तृण, अन्न यवाङ्कुर तथा खीलोंसे तेजयुक्त प्रसन्न करने वाले पक्व तण्डुल आदिसे शोभित कान्तिमान् दुग्धयुक्त, अमृतरूप हवनकी ओरको आते हुए मधुसा टपकाने वाले सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत हैं (न अश्विना सरस्वती सुत्रामा वृत्रहा इन्द्रः तान् जुषन्ताम्) और अश्विनीकुमार सरस्वती सुरक्षक वृत्रनाशक इन्द्र उनको सेवन करें (सोम्यं मधु पिबन्तु) सोमके मधुको पियें (मदन्तु) तृप्त हों (व्यन्तु) विराजमान हों (होतः यज) हे होता तुम भी यजन करो ॥ ४२ ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्यमद्धयतो मेद उद्भृतम्पुरा द्वेषोभ्यो पुरा पौरुषेय्या गृभोघस्तान्नूनङ्घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानाम्पीवोपवसनानाम्पार्श्वतः श्रोणितः शितामतउत्सादतोङ्गादंगादवत्तानाङ्करत एवाश्विना जुषेताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(होता अश्विनौ यक्षत्) होताने अश्विनीकुमारों का यजन किया (छागस्य हविषः आत्ताम्) छागकी पोषक हविको सेवन करें (नूनं अद्य मद्धयतः मेदः उद्धृतं) अवश्य आज मध्यभागमें मेद पूर्णरूपसे स्थापन किया गया (द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभः पुरा घस्तां) यज्ञके द्वेषी असुरोंके आनेसे पहिले ही स्वीकारकी हुई पुरुषार्थवाली इडासे पहिले ही स्वीकारकी हुई हविको भक्षण करें (घासे अज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणां अग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः, उत्सादतः अङ्गादङ्गात् अवत्तानां हविः अश्विना करतः जुषेताम्) ग्रासमें नवीन रुचि करनेवाले अन्नोंमें मुख्य अपने आप रक्षित अनेकों मंत्रोंसे प्रशंसित पाक के समय प्रथम अग्नि करके आस्वादित स्थूल अंगके निकट रहनेवाले पार्श्वभाग से कटिभागसे पादस्थानसे उत्सादन स्थानसे प्रत्येक अङ्गोंसे धर्मानुसार ग्रहण की हुई हविको अश्विनीकुमार तृप्ति पूर्वक

स्वीकार करें (होतः यज) हे मनुष्य होता तुम भी घृतसे हवन करो [प्रकृतिका नियम है रातदिनरूप अश्विनीकुमार छागादिरूप हविको क्षणिकपरिणामसे लय करते रहते हैं, उनका कुछ भी शेष नहीं रहता, यह दिव्य हवन निरन्तर होता रहता है, मनुष्योंको चाहिये कि प्रतिदिन देवताओंको घृतकी आहुतिसे तृप्त करें]४३

होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत् क्षराणां शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादंगादवत्तानां करदेवᳬ सरस्वती जुषतᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

ऋ० और छ० पूर्ववत् सरस्वती देवता है । मन्त्रार्थ-(होता सरस्वतीं यक्षत्) दिव्य होताने सरस्वतीका यजन किया (मेषस्य हविषः आवयत्) मेषको पोषक हविको सेवन किया (घसत्) सकल अङ्गोंको शक्तिदानपूर्वक सेवन किया (एवं सरस्वती जुषतां) ऐसे सरस्वती हविको सेवन करे शेषं पूर्ववत् ४४

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादंगादवत्तानां करत देवमिन्द्रो जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

ऋ० और छ० पूर्ववत्, इन्द्र दे० है । मन्त्रार्थ-(होता इन्द्रं यक्षत्) दिव्य होता ने इन्द्रका यजन किया (ऋषभस्य हविषः आवयत्) ऋषभके पुष्टिकारक और उपकारक हविका सेवन किया (इन्द्रः) इन्द्र हविका सेवन करे इत्यादि पूर्ववत् ॥४५॥

होता यक्षद्वनस्पतिमतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छा-

गस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथा॑ꣳसि यत्र देवानामाज्यपानाम्प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्भीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषता॑ꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(होता वनस्पतिं अभियक्षत्) दिव्य होताने वनस्पतियूपका यजन किया (हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनया अधित) क्योंकि-रूपवान् पशुओंको रोकने वाली रज्जुके द्वारा पशुओंको निज २ स्थानमें स्थित रखता है (यत्र अश्विनोः छागस्य हविषः प्रिया धामानि) जहाँ अश्विनीकुमारके छागके उपकारक हविके प्रियस्थान हैं (यत्र सरस्वत्याः मेषस्य हविषः प्रिया धामानि) जहाँ सरस्वतीके मेषके उपकारक हविके प्रियस्थान हैं (यत्र इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि) जहाँ इन्द्रके वृषभके उपकारक हविके प्रिय स्थान हैं (यत्र अग्नेः प्रिया धामानि) जहाँ अग्निके प्रिय स्थान हैं (यत्र सोमस्य०) जहाँ सोमके प्यारे स्थान हैं (यत्र सुत्राम्णः इन्द्रस्य०) जहाँ सुरक्षक इंद्रके प्यारे स्थान हैं (यत्र सवितुः०) जहाँ सविताके प्यारे धाम हैं (यत्र वरुणस्य०) जहाँ वरुणके प्रिय स्थान हैं (यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथा॑ꣳसि) जहाँ वनस्पतिके प्यारे स्थान हैं (यत्र आज्यपानाम् देवानाम् प्रिया धामानि) जहाँ घी पीने वाले देवताओंके प्यारे धाम हैं (यत्र होतुः अग्नेः प्रिया धामानि) जहाँ होता अग्निके प्यारे धाम हैं (तत्र एतान् रभीयसः इव प्रस्तुत्येव उपस्तुत्येव उपावस्रक्षत्) तहाँ इन अति वेग वालों को युक्त करके ही भली प्रकार प्रशंसा करके ही समीपमें स्तुति करके ही पूर्वोक्त स्थान वनस्पति देवता स्थापन करे (वनस्पतिः देवः एवं करत् हविः जुषतां) वनस्पति देवता ऐसा करताहुआ हविको सेवन करे (होतः यज) हे मनुष्य होता ! तुम भी यजन करो ॥ ४६ ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रियाधामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड्वरुणस्य प्रियाधामान्ययाड्वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳस्ययाड् देवानामाज्यपानाम्प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वम्महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अद्ध्वरा जातवेदो जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४७ ॥

ऋ० और छ० पूर्ववत् स्विष्टकृत् अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-(होता स्विष्टकृत् अग्निं यक्षत्) दिव्य होताने स्विष्टकृत् अग्निका यजन किया (अग्निः अश्विनोः छागस्य, हविषः प्रिया धामानि अयाट्) स्विष्टकृत् अग्निने अश्विनीकुमारोंके छाग के उपकारक हविके प्रिय धामोंका यजन किया (सरस्वत्याः मेषस्य हविषः प्रिया धामानि अयाट्) सरस्वतीके मेषके उपकारक हविके प्रिय धामोंको यजन किया इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि अयाट्) इन्द्रके ऋषभके उपकारक हविके प्यारे धामाको यजन किया, अर्थात् तीनों देवताओंके पशुओंको हविसे पुष्ट किया (अग्नेः प्रिया धामानि अयाट्) अग्निके प्यारे धामोंको यजन किया (सोमस्य प्रिया धामानि अयाट्) सोमके प्यारे धामोंका यजन किया (सुत्राम्णः इन्द्रस्य प्रिया धामानि अयाट्) सुरक्षक इंद्रके प्यारे धामोंका यजन किया (सवितुः प्रिया धामानि अयाट्) सविताके प्यारे धामोंका यजन किया (वरुणस्य प्रिया धामानि अयाट्) वरुणके प्यारे धामोंका यजन किया (वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳसि, अयाट्) वनस्पतिके प्रिय पाशोंका यजन किया (आज्यपानां देवानां प्रिया धामानि यक्षत्) घी पीनेवाले देवताओंके प्यारे धामोंका यजन किया (होतुः अग्नेः प्रिया धामानि यक्षत्) होता अग्निके प्यारे धामोंका यजन किया (स्वं महिमानं यक्षत्) अपनी महिमाका यजन किया (आइज्या इषः आयजतां) सबप्रकारसे यजनयोग्य सकाम प्रजा भलीप्रकार यजन करे (सः जातवेदा अध्वरा कृणोतु) वह प्रज्ञावाला अग्नि यज्ञों को सम्पन्न करे (हविः जुषताम्) हविको सेवन करे, इस प्रकार देव-नियमका कार्य प्रवृत्त रहता है (होतः यज) हे मनुष्यहोतः! तुम भी शक्तिके अनुसार घृतसे यजन करो

देवम्बर्हिस्सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना। तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुव० ॥

स्वस्त्या० ऋ०, आर्षी त्रि० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है मंत्रार्थ-(सुदेवं देवं बर्हिः बर्हिषा सरस्वती अश्विना इन्द्रे तेजः दधुः) सुन्दर देवतावाले अनुयाजयाज देवता बर्हि कुशाके साथ सरस्वती अश्विनीकुमार इन्द्रमें तेजको स्थापन करते हुए (अक्ष्योः चक्षुः इन्द्रियं) दोनों नेत्रोंमें चक्षु इन्द्रियको धारण करते हुए (न वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) और धनलाभके निमित्त इन्द्रको सम्पत्तिमान् करनेवाले हविको भक्षण करें (यज) हे मनुष्य होतः! तुम भी यजन करो जैसे इन्होंने इन्द्रको तेज दिया तैसे तुझे भी दें ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती। प्राणान्न वीर्यन्नसि द्वारोदधिरिन्द्रियं वसु०४९

ऋ० और दे० पूर्ववत्, विराडार्षी त्रि० छ० है। मन्त्रार्थ (देवीः द्वारः द्वारः भिषजा अश्विना न सरस्वती इन्द्रे वीर्यं नसि प्राणं इन्द्रियं दधुः० वसुवने०) दिव्य द्वारदेवी अनुयाज देवताओंके साथ वैद्य अश्विनीकुमार और सरस्वती इन्द्रमें बल तेज, नासिकामें प्राण इन्द्रियको धारण करते हुए। शेष पूर्ववत् ॥ ४९ ॥

देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलन्न वाचमास्य उषाभ्यान्दधुरिन्द्रियं वसु० ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, आर्षी त्रि० छ० है। मन्त्रार्थ-(देवी उषासा उषाभ्यां अश्विना सुत्रामा सरस्वती न इन्द्रे बलं आस्ये वाचं इन्द्रियं दधुः वसुवने०) दिव्यगुणमयी रात्रि और उषःकालके अधिष्ठात्री देवता रात्रि और उषःकालके साथ अश्विनीकुमार सुरक्षक सरस्वती भी इन्द्रमें बल और मुखमें वाणी इन्द्रियको धारण करते हुए शेष पूर्ववत् ॥ ५० ॥

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। श्रोत्रन्न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यान्दधुरिन्द्रियं वसु० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(जोष्ट्री देवी जोष्ट्रीभ्यां सरस्वती अश्विना इन्द्रं अवर्द्धयन्) सुखका सेवन करनेवाली देवी द्यावापृथिवी वा अहोरात्रके द्वारा सरस्वती अश्विनीकुमार इन्द्रको बढ़ाते हुए (यशः न कर्णयोः श्रोत्रं इन्द्रियं दधुः वसुवने०) यश और कर्णमें श्रवणेन्द्रियका धारण करते हुए शेष पूर्ववत् ॥ ५१ ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः । शुक्रन्न ज्योतिस्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियं वसु० ॥ ५२ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, अतिजगती छ० है। मन्त्रार्थ-(दुघे सुदुघे ऊर्जाहुती आहुती देवी सरस्वती भिषजा अश्विना अवतः) कामपूरक भलेप्रकार दोहनयुक्त रसवती आह्वानरूप दिव्य सरस्वती वैद्य अश्विनीकुमार रक्षा करते हैं (इन्द्रे शुक्रं न स्तनयोः इन्द्रियं ज्योतिः धत्त) इन्द्रमें वीर्य और हृदयमें इन्द्रिय तेजको धारण करें। शेष पूर्ववत् ॥ ५२ ॥

देवा देवानाम्भिषजा होताराविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः सरस्वती त्विषिन्न हृदये मतिꣳ होतृभ्यान्दधुरिन्द्रि० ॥ ५३ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् भुरिगतिजगती छ० है। मन्त्रार्थ-(देवानां देवाः होतारौ होतृभ्यां भिषजा अश्विना न सरस्वती इन्द्रं हृदये वषट्कारैः त्विषि मतिं इन्द्रियं दधुः) देवताओंके देवता होता अनुयाजदेव होता के द्वारा वैद्य अश्विनीकुमार और सरस्वती इन्द्रको हृदयमें वषट्कारोंसे कान्ति को बुद्धि और इन्द्रियका धारण करते हुए। शेष पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीराश्विनेडा सरस्वती । शूषन्न मध्ये नाभ्यमिन्द्राय दधुरिन्द्रि० ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् त्रि० छ० है। मंत्रार्थ-(इडा सरस्वती न तिस्रः देवीः तिस्रः देवीः अश्विना इन्द्राय नाभ्यां मध्ये शूषं इन्द्रियं दधुः) इडा सरस्वती और भारती तीनों देवी तीनों देवियोंके साथ अश्विनीकुमार इन्द्रके निमित्त नाभिके मध्यमें बल इन्द्रियोंको स्थापन करते हुए शेष पूर्ववत् ॥ ५४ ॥

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः । रेतो न रूपममृतञ्च मित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसु० ॥ ५५ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, स्वराट् शक्करी छ० है। मन्त्रार्थ-इन्द्रः त्रिवरूथः त्वष्टा नराशंसः रथः रेतः न रूपं अमृतं जनित्रं इन्द्रियाणि इन्द्राय दधत्) ऐश्वर्यवान् सभामण्डप हविर्धान आग्नीध्ररूप तीन घरवाला जगत्का कर्त्ता जहाँ बैठकर मनुष्य स्तुति करते हैं ऐसा देवयागके योग्य यज्ञरूपी रथ, वीर्य और सुन्दरता अमृत उत्तम जन्म इन्द्रियोंकी शक्ति इन्द्रके निमित्त स्थापन करे (सरस्वत्या अश्विभ्यां ईयते) जो रथ सरस्वती और अश्विनीकुमार करके वहन किया जाता है अर्थात् मन्त्रोक्त देवता इस यज्ञ कर्त्ता यजमानके वीर्यरूप अमृतको बढ़ावें सब इन्द्रियोंकी शक्तियोंको बढ़ावें, विशेषकर जननेन्द्रियको निजकार्यसाधनमें समर्थ करें

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्यां सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय पच्यते मधु।

ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसु० ॥ ५६ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, नि० अत्यष्टि छन्द है। मन्त्रार्थ-(देवैः हिरण्यपर्णः अश्विभ्यां सरस्वत्या सुपिप्पलः ऋषभः वनस्पतिः देवः इन्द्राय मधु पच्यते) देवताओंसे अधिष्ठित होनेके कारण सुवर्णके पत्तेवाला अश्विनीकुमार सरस्वतीके द्वारा सुन्दर फल वाला पूज्य वनस्पति देवता इन्द्रके निमित्त मधुर फल देता है वनस्पतिः नः ओजः जूतिः न भामं न इन्द्रियाणि दधत्) वही वनस्पति हमको तेज वेग और परिमित क्रोध तथा इन्द्रियोंका बल स्थापन करे अर्थात् फलप्रद दोनों भुजा तेजस्वी हों और चरणोंमें शीघ्रगमनकी शक्ति हो। शेष पूर्ववत् ॥ ५६ ॥

देवम्बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः।

ईशायै मन्युं राजानम्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसु० ॥ ५७ ॥

ऋ० और देवता पूर्ववत्, अतिशक्करी छ०। मन्त्रार्थ—(इन्द्र, वारितीनां, देवं, ऊर्णम्रदः, स्योनं, ते, सदः, अध्वरे, अश्विभ्यां सरस्वत्या, स्तीर्णं, बर्हिः, बर्हिषा राजानं, मन्युं, इन्द्रियं, ईशायै, दधुः) हे इन्द्र! जल से उत्पन्न होने वाली औषधियोंके दीप्यमान ऊनकी समान कोमल सुखरूप तुम्हारी सभा में यज्ञ में अश्विनीकुमार और सरस्वतीके द्वारा फैलायेहुए बर्हि देवता बर्हि के द्वारा दीप्तिमान् क्रोध इन्द्रिय को ऐश्वर्य के निमित्त स्थापन करते हुए। शेष पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथꣳ होतारावेन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वती-
मग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत्स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः
स्विष्टा देवा आज्यपाः स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जम-
पचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५८ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत् । शक्वरी छ० है । मन्त्रार्थ—(स्विष्टकृत्, देवः, अग्निः, यथायथं, होतारौ, अश्विना, इन्द्रं, वाचं, सरस्वतीं अग्निं सोमं देवान् वाचा यक्षत्) सुन्दर याग करनेवाले अग्नि देवने यथायोग्य होता मित्रावरुण अश्विनीकुमार इन्द्र वाणी सरस्वती अग्नि और सोम इन देवताओंका वाणीसे यजन किया (स्विष्टकृत् सुत्रामा इन्द्रः स्विष्टः) सुन्दर यज्ञ करने वाले सुरक्षक इन्द्र भलीप्रकार यजन किया गया(सविता वरुणः भिषक् देवः वनस्पतिः इष्टः) सविता देवता वरुण वैद्य देवता वनस्पति यजन किया गया (आज्यपाः देवाः स्विष्टाः) घी पीने वाले देवता भलीप्रकार यजन किये गये (अग्निः अग्निना स्विष्टः) अग्नि अग्निके द्वारा यजन कियागया स्विष्टकृत् होता होत्रे यशः इन्द्रियं ऊर्जं अपचितिं न स्वधां दधत्) भलीप्रकार यजन करने वाले दिव्यहोताने मनुष्य होताके निमित्त यश इन्द्रियबल अन्न पूजा और पितरोंकी स्वधाको स्थापन किया (वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु)धनीकी यज्ञसिद्धिके निमित्त दीहुई आहुतिके अपने २ भागको देवता स्वीकार करें (यज) हे मनुष्य होता ! तुम भी घृतसे यजन करो ॥ ५८ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशान्वध्नन्नश्विभ्याञ्छागꣳ
सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभꣳ सुन्वन्नश्विभ्याꣳ सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥

स्वस्त्या० ऋ०नि० अष्टि छ० लिंगोक्त दे० है सूक्तवाक्यका प्रैष । मन्त्रार्थ - अयं यजमानः अद्य पक्तीः पचन् पुरोडाशान् पचन्) इस यजमानने आज पकानेके योग्य हवियोंको पकाते हुए पुरोडाशोंका पकाया (अश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै मेषं इन्द्राय ऋषभं वध्नन्) अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना करनेके निमित्त छागको, सरस्वती

से प्रार्थना करनेके निमित्त मेषको और इन्द्रसे प्रार्थना करनेके निमित्त वृषभको यूपसे बाँधते हुए हविसे सन्तुष्ट किया (अश्विभ्यां सरस्वत्यै सुत्राम्णे इन्द्राय सुरासोमान् सुन्वन् होतारं अग्निं वृणीत) अश्विनीकुमार सरस्वती और सुरक्षक इन्द्रके निमित्त महौषधोंके रस और सोम को अभिषुत करके होताने अग्निका वरण किया ॥ ५९ ॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्याञ्छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षस्तान्मेदस्तः प्रतिपचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥ ६० ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, धृति छ० है। मन्त्रार्थ-(अद्य वनस्पतिः देवः छागेन अश्विभ्यां सूपस्थः अभवत्) आज पशुपोषक वनस्पति देवता, छागवृद्धिका आशीर्वाद देनेके निमित्त करके आगत अश्विनीकुमारोंके अर्थ शोभन प्रकारसे उपस्थित हुआ (मेषेण सरस्वत्यै ऋषभेण इन्द्राय) मेषवृद्धिका आशीर्वाद देनेके निमित्तसे आगत सरस्वताके अर्थ और वृषभवृद्धिका आशीर्वाद देनेके निमित्त करके आगत इन्द्र देवताके अर्थ शोभन प्रकारसे उपस्थित हुआ (मेदस्तः तान् अक्षन्) उन देवताओंने उन छागादिकी मेदोवर्धन आदिरूप पुष्टिके निमित्तसे अर्थात् उनको पुष्ट करनेके निमित्त उनको अपने अधिष्ठात्रीपनेसे स्वीकार किया (पचत प्रत्यगृभीषत) पक्व हवियोंको ग्रहण किया (पुरोडाशैः वृधन्त) पुरोडाशोंसे वृद्धिको प्राप्त हुए (अश्विना सरस्वती सुत्रामा इन्द्रः सुरासोमान् अपुः) अश्विनीकुमार सरस्वती और सुरक्षक इन्द्रने रस और सोमको पिया ॥ ६० ॥

त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणान्नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आसङ्गतेभ्य एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देवदानान्यदुरतान्यस्मा आ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥ ६१ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्-मंत्रार्थ (ऋषे आर्षेय ऋषीणां नपात् अद्य अयं यजमानः बहुभ्यः सङ्गतेभ्यः त्वा इति आ अवृणीत) हे मन्त्रोंके द्रष्टा! ऋषियोंके पुत्ररूप वा

यजमानके द्वारा ऋषियोंके निमित्त वरण किये हुए ऋषियोंके पोते, आज यह यजमान बहुतसे मिलित देवताओंसे तुमको इसकारण सब प्रकारसे वरण करताहुआ कि-(एषः मे देवेषु वारि वसु आयच्छते) यह अग्नि मेरा देवताओंमें वरण करने योग्य धन देवताओंको देनेके निमित्त वरण किया जाता है (देव या ता दानानि देवाः अदुः) हे अग्ने जो वह दान देवताओंने दिये (तानि च अस्मै आशास्व) वह भी इस यजमानको दीजिये (च आगुरस्व च) और दानका उद्योग भी कीजिये (होतः भद्रवाच्याय इषितः) हे होतः ! तुम स्वस्ति कहनेको प्रेरणा किये गये हो (मानुषः सूक्तवाकाय प्रेषितः सूक्ता ब्रूहि) मनुष्य होता सूक्त कहनेको भेजा गया हे मनुष्य होतः तुम सूक्तोंको कहो [१९ कण्डिकासे यहाँ तक दो प्रकारके यज्ञका वर्णन है, एक दैव दूसरा मानुष, देवताओं का यज्ञ सदैव होता रहता है, अश्विनीकुमार रूप दिन रात, वाणीरूप सरस्वती इस जगतके उत्पत्तिलयको करते हुए ज्योतिरूप तेजको बढ़ाते हैं तेजःस्वरूप इन्द्रकी प्रतिदिन वृद्धि होती है, और इस यज्ञकी समाप्ति कभी नहीं होती सब संसार इस यज्ञकी सामग्री है, इस यज्ञके मुख्य तीन देवता उक्त तीन पशुओंकी पुष्टि से प्रसन्न होते हैं इन पशुओंके साथ देवताओंका आध्यात्मिक सम्बन्ध है, इन पशुओंके शरीरमें अधिष्ठात्री रूपसे रहते हुए संसारयज्ञका निर्वाह करते हैं, देवताओंने जिस समय जिस पदार्थसे इन्द्र की चिकित्सा कर उसको इन्द्रियोंको संपादन किया है उसीप्रकार उसी पदार्थसे यज्ञ करके मनुष्य होता भी यजमानको सकल इन्द्रियोंको बलिष्ठ कर सकता है। मनुष्य होताका यज्ञ देवताओंके होताकी समान नहीं होता, क्योंकि-मनुष्य होताका यज्ञ नियमित देशकालमें होता है, और इस के निमित्त घृतादि पदार्थ हैं, जिनकी वृद्धि के अर्थ इन पशुओंका सत्कार करते हुए इनके अधिष्ठात्री देवताओंसे इनके हृष्टपुष्ट रहनेकी प्रार्थना की जाती है] ॥ ६१ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनीय शाखाका अनुवाद सहित एकविंश अध्याय समाप्त।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः।

अश्वमेधप्रकरण।

सब प्रकारकी कामना वाले राजाको अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये। यह यज्ञ फाल्गुन शुक्लाष्टमीको आरम्भ किया जाता है, चक्रवर्ती राजा ही इसको करके अपने मनोरथकी सिद्धि पासकते हैं—

तेजोसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥ १ ॥

प्रजापति ऋ०, प्राजापत्यानु० छ० निष्क देवता है। अध्वर्यु यजमानके कंठ में सुवर्णका निष्क नामक कण्ठभूषण बांधे। मंत्रार्थ (तेजः असि) हे सुवर्ण ! अग्निसम्बन्धी होनेसे तेजःस्वरूप हो (शुक्रः अमृतं आयुष्पाः) अग्निके वीर्य अक्षय और आयुके रक्षक हो (मे आयुः पाहि) मेरी आयुकी रक्षा करो। रस्सी लेकर ब्रह्मासे कहे कि मैं घोड़ेको बाँधूँगा। मन्त्रार्थ (सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्यां त्वा आददे) हे रशना सविता देवताकी आज्ञामें वर्त्तमान मैं अश्विनीकुमारकी भुजा और पूषा देवता के हाथोंसे तुझको ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

इमामगृभ्णन्रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या । सा नो अस्मिन्त्सुत आबभूव ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥ २ ॥

यज्ञपुरुष ऋ० त्रिष्टु छ०, रशना दे० है। रशना हाथमें लेय मन्त्रार्थ (विदथेषु कव्या ऋतस्य पूर्वे आयुषि इमां रशनां, अगृभ्णन्) यज्ञोंमें कुशल प्रजापतिने यज्ञके आरम्भकालमें इस रशनाको ग्रहण किया (सा ऋतस्य सामन् सरं आरपन्ती नः अस्मिन् सुते आबभूव) वह यज्ञारम्भमें यज्ञके फैलावको उच्चारण करती हुई हमारे अथ इस यज्ञमें प्रकट हुई ॥ २ ॥

अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता । स त्वमग्नि वैश्वानरꣳ सप्रथसङ्गच्छ स्वाहाकृतः ॥

प्रजापति ऋ० आर्ची त्रि०छ०, अश्व दे० है, अश्वको बांधे मन्त्रार्थ-(अभिधा असि) हे अश्व ! तुम स्तुतिके योग्य हो (भुवनं असि) सबके आश्रय हो (यन्ता धर्त्ता असि) नियन्ता और जगत्के धर्त्ता हो, अर्थात् पशुओंमें प्रसिद्ध और सवारी देने वाले हो (सः त्वं स्वाहाकृतः वैश्वानरं सप्रथसं अग्निं गच्छ) वह तुम स्वाहाकार-युक्त सबके हितकारी संसारमें सर्वत्र फैले हुए अग्निके तेजको प्राप्त होओ, अथवा अग्नि देवताके अधिष्ठातृत्वको प्राप्त होओ

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वम्भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम् । तम्बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥ ४ ॥

इसमें ३ मंत्र हैं। सबका प्रजापति ऋ० छ० १ का आसुरी पंक्ति २ का साम्नी पंक्ति ३ का साम्नी अनु० है। देवता १ का अश्व २ का ब्रह्मा, ३ का अध्वर्यु है। मंत्रार्थ-(त्वा देवेभ्यः प्रजापतये स्वगा) हे अश्व ! देवताओंके और प्रजापतिके निमित्त तुमको स्वर्गगामी करता हूँ ब्रह्मासे आज्ञा मांगे मन्त्रार्थ-(ब्रह्मन् देवेभ्यः प्रजापतये अश्वं भन्त्स्यामि) हे ब्रह्मन् देवताओं और प्रजापतिकी प्रसन्नताके अर्थ घोड़ेको बाँधूँगा (तेन राध्यासम्) उस करके मैं कर्मसमाप्तिरूप सिद्धिको पाऊँ, ब्रह्मा आज्ञा देय मन्त्रार्थ (तं देवेभ्यः प्रजापतये बधान हे अध्वर्यो ! उसको देवताओंको और विशेषकर प्रजापतिकी प्रसन्नताके अर्थ बाँधो (तेन राध्नुहि) इसके बाँधनेसे तुम सिद्धिको पाओ ॥ ४ ॥

प्रजापतये त्वा जुष्टम्प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टम्प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टम्प्रोक्षामि । यो अर्वन्तञ्जिघाꣳसति तमभ्यमीति वरुणः परो मर्त्तः परः श्वा ॥ ५ ॥

इस कण्डिकामें ७ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, छ० १ का याजुषी त्रि०, २ का या० पंक्ति, ३ का या० बृहती, ४। ५ का या० जगती ६ का साम्नी अ० ७ का दैवी ज० है। दे० सबका लिंगोक्त है। कूप आदि स्थावर जलके समीप जाकर अश्व को प्रोक्षण करे। मन्त्रार्थ-(प्रजापतये जुष्टं त्वा प्रोक्षामि) हे अश्व प्रजापतिके प्रियपात्र तुझको प्रोक्षण करता हूँ इससे अश्वसे वीर्य धारण होता है (इन्द्राग्नीभ्यां जुष्टं त्वा प्रोक्षामि) इन्द्र और अग्नि देवताके प्रिय तुझको प्रोक्षण करता हूँ इससे अश्वमें ओज धारण होता है (वायवे जुष्टं त्वा प्रोक्षामि) वायुके निमित्त प्रिय तुझको प्रोक्षण करता हूँ। इससे वेग आता है (विश्वेभ्यः देवेभ्यः जुष्टं त्वा प्रोक्षामि) विश्वेदेवाओंके प्रियपात्र तुझ को प्रोक्षण करता हूँ। इससे यश पाने वाला होता है (सर्वेभ्यः देवेभ्यः जुष्टं त्वा प्रोक्षामि) सब देवताओंके प्रिय

तुझको प्रोक्षण करता हूँ सब देवताओंका अश्वमें आवाहन होता है। यजमानसे कहलावे (यः अर्वन्तं जिघांसति वरुणः तं अभ्यमीति) जो शत्रु वेगवान् अश्वको मारना चाहता है वरुण उसको मारे। कुक्कुरको वेतकी चटाईमें रखकर घोड़ेके नीचे तैरावे (मर्त्तः परः श्वा परः) इस घोड़ेको मारनेकी इच्छावाला शत्रु मनुष्य तिरस्कृत हुआ श्वानकी समान तुच्छ ताड़नाधिकारीका तिरस्कार किया गया ५

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपाम्मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ९ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, छन्द १।२।४।५।६।७।९ का दैवी पंक्ति, ३।८ का दैवी जगती १० का दैवी त्रि० देवता सबका लिंगोक्त है। जलके समीपसे अग्निके समीप लाकर इन मन्त्रोंसे घृतकी आहुति देय मन्त्रार्थ-(अग्नये स्वाहा) अग्निके अर्थ आहुति देते हैं (सोमाय स्वाहा) सोमको हवि अर्पण करते हैं (अपां आमोदाय स्वाहा) जलोंके आमोदन करने वाले देवताको हवि देते हैं (सवित्रे स्वाहा) सविता देवताको आहुति देते हैं (वायवे स्वाहा) वायु देवताको आहुति देते हैं (विष्णवे स्वाहा) विष्णुदेवताको हवि देते हैं (इन्द्राय स्वाहा) इन्द्र देवता को आहुति देते हैं (बृहस्पतये स्वाहा) बृहस्पति देवताको आहुति देते हैं (मित्राय स्वाहा) मित्र देवताको यह हवि अर्पण करते हैं (वरुणाय स्वाहा) वरुण देवता को यह आहुति देते हैं, इन देवताओंको इस अश्वकी रक्षाके निमित्त आहुति दी जाती हैं ॥ ६ ॥

हिङ्काराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्द्राय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहा सीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा सञ्हानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

इस कण्डिकामें २४ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, छन्द, १।२।६।११।१३।१४।१८।२०।२१।२३।२४। का दै० त्रि०, ३।५।७।८।९।१२।१५।१६।१७ का दै० पंक्ति, ४।१०।२२ का दैवी-जग० और १९ का याजु० अ० है। दक्षिणाग्निमें प्रक्रमनामक ४९ आहुति देय। मन्त्रार्थ-(हिङ्काराय स्वाहा।) इस अश्व का हिंकार हमारे अनुकूल हो हे अग्ने! इस निमित्तसे तुमको आहुति देते हैं (हिंकृताय स्वाहा) हिंकारकी चेष्टा अनुकूल होनेके अर्थ हवि अर्पण करते हैं (क्रन्दते स्वाहा) शब्द करते हुए घोड़े की अनुकूलताके अर्थ हवि अर्पण करते हैं (अवक्रन्दते स्वाहा) नीचा शब्द करने वालेके अर्थ हवि अर्पण करते हैं (प्रोथते स्वाहा) मुखसे फुङ्कारने वालेके अर्थ हवि देते हैं (प्रप्रोथाय स्वाहा) मुखचेष्टा घोणा करने वालेके निमित्त आहुति देते हैं (गन्धाय स्वाहा) गन्धचेष्टाके अर्थ हवि देते हैं (घ्राताय स्वाहा) सूँघनेकी क्रिया के अर्थ हवि अर्पण करते हैं (निविष्टाय स्वाहा) बैठनेकी चेष्टाके निमित्त आहुति देते हैं (उपविष्टाय स्वाहा) स्थित क्रिया को हवि देते हैं (संदिताय स्वाहा) सम्यक् बन्धन वाली चेष्टाको हवि० (वल्गते स्वाहा) चलते हुएको हवि० (आसीनाय स्वाहा) बैठते हुएको हवि० (शयानाय स्वाहा) लेटे हुएको हवि० (स्वपते स्वाहा) सोतेहुएको हवि० (जाग्रते स्वाहा) जागते को हवि० (कूजते स्वाहा) शब्द करतेको हवि० (प्रबुद्धाय स्वाहा) ज्ञानयुक्तको हवि० (विजृम्भणाय स्वाहा) जंभाई लेते हुएको हवि० (विचृत्ताय स्वाहा) विशेष दीप्तिमान्को हवि० (संहानाय स्वाहा) संगत शरीरवालेको हवि० (उपस्थिताय स्वाहा) उपस्थितको हवि० (अयनाय स्वाहा) विशेष ज्ञानको हवि० (प्रायणाय स्वाहा) और अतिगमन वालेको हवि अर्पण करते हैं ॥ ७ ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रवाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत्पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रङ्करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा

इस कण्डिकामें २५ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋषि और लिंगोक्त देवता है। छन्द १ का दैवी बृहती २। ९। १०। २३। २४। २५ का दैवी पंक्ति १३। १७। २१ का दैवी जगती ३। ४। ५। ६। ७। ८। १२। १४। १८। १९। २० का दैवी त्रि० ११। १५। १२ का याजु० अनु० और १६ का आसु० त्रि० है। मंत्रार्थ—(यते स्वाहा) जाते हुएको हवि अर्पण करते हैं (धावते स्वाहा) दौड़नेके निमित्त हवि० (उद्द्रावाय स्वाहा) अधिक गतिवाले को हवि० (शूकाराय स्वाहा) शू शब्द करने वालेको हवि० (निषण्णाय स्वाहा) बैठेको हवि० (उत्थिताय स्वाहा) उठे हुएको हवि० (जवाय स्वाहा) वेगरूप को हवि० (बलाय स्वाहा) बलरूपको हवि० (विवर्त्तमानाय स्वाहा) विशेष-रीतिसे वर्त्तमानको हवि० (विवृताय स्वाहा) तिरछी गतिको हवि० (विधून्वानाय स्वाहा) कम्पमानको हवि० (विधूताय स्वाहा) विशेष कम्पायमानको हवि० (शुश्रूषमाणाय स्वाहा) श्रवणेच्छुकको हवि० (शृण्वते स्वाहा) सुनते हुएको हवि० (ईक्षमाणाय स्वाहा) देखते हुएको हवि० (ईक्षिताय स्वाहा) देखते हुएको हवि० (निमेषाय स्वाहा) पलक लगाते को हवि अर्पण करते हैं (यत् अत्ति तस्मै स्वाहा) जो कुछ खाता है उसको हवि० (यत् पिबति तस्मै स्वाहा) जो पीता है उसको हवि० (यत् मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा) जो मूत्रक्रिया करता है उसको उसकी अनुसूनृताके अर्थ हवि० (कुर्वते स्वाहा) करते हुएको हवि० (कृताय स्वाहा) और किये हुएको हवि अर्पण करते हैं, अश्वकी यह सब क्रियाएँ अधिष्ठात्री देवताओंके अनुग्रहसे सुसम्पन्न हों

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ९ ॥

यहाँसे ६ मंत्र सावित्री इष्टिके हैं। इसकी व्याख्या ३। ३५ में होचुकी है ॥ ९ ॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये। स चेत्ता देवता पदम् ॥ १० ॥

मेधातिथि ऋ०, गायत्री छ० सविता दे० है मन्त्रार्थ-(हिरण्यपाणिं सवितारं ऊतये उपह्वये) ज्योतिःस्वरूप हाथ वाले परमात्मा देवताको अपनी रक्षाके निमित्त पुकारता हूँ (सः चेत्ता देवता पदम्) वह सर्वज्ञ प्रकाशस्वरूप ज्ञानियोंका आश्रय है

देवस्य चेततो महीम्प्रसवितुर्हवामहे सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥ ११ ॥

प्रजापति ऋ०, गायत्री छ०, सविता दे० है मंत्रार्थ-(चेततः सवितुः देवस्य

महीं सत्यराधसं सुमतिं प्रहवामहे) सबको देनेवाले सर्वज्ञ सबके प्रेरक देव को बड़ी सत्यकी साधक सुमतिकी प्रार्थना करते हैं अर्थात् परमात्मा हमको सत्यमयी बुद्धि दें यह हमारी प्रार्थना है ॥ ११ ॥

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳसवितुरीमहे । प्रदेवाय मतीविदे ॥ १२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् मंत्रार्थ-(मतीवृधे देवाय सुमतीवृधः सवितुः सुष्टुतिं गतिं प्रईमहे) सबके मनकी जाननेवाले सर्वान्तर्यामी दिव्यगुणसम्पन्न सुबुद्धिके देनेवाले सबके प्रेरक परमात्माकी स्तुति करनेकी सामर्थ्यरूप धनको हम बहुत चाहते हैं, परमात्मा हमको देय ॥ १२ ॥

रातिꣳसत्पतिम्महे सवितारमुपह्वये । आसवन्देववीतये ॥ १३ ॥

ऋ० और दे० पूर्ववत्, छन्द नि० गाय० है मंत्रार्थ-(रातिं सत्पतिं आसवं सवितारं देववीतये उपह्वये महे) चारों पदार्थ देनेवाले सत्पुरुषोंके रक्षक सब कर्मोंके प्रेरक सविता देवताको देवताओं की तृप्तिके निमित्त आह्वान करते और पूजते हैं अर्थात् परमात्माकी प्रार्थना उपासनासे सब देवता तृप्त होते हैं ॥ १३ ॥

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगम्मनामहे ॥ १४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(धिया सवितुः देवस्य मतिं आसवं विश्वदेव्यं भगं मनामहे) भक्तिमयी बुद्धिके द्वारा सबके प्रेरक परमात्माकी बुद्धिरूप सकल ऐश्वर्योंके हेतु सब देवताओंके हितू धन को याचना करते हैं ॥ १४ ॥

अग्निꣳस्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

सुतम्भर ऋ०, नि० गाय० छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (अमर्त्यं अग्निं समिधानः स्तोमेन बोधय) हे अध्वर्यो ! मरणधर्मरहित अग्निको प्रज्वलित करते हुए स्तुति के द्वारा बोध कराओ कि (नः हव्या देवेषु दधत्) हमारी हवियोंको देवताओं में स्थापन करो ॥ १५ ॥

स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ १६ ॥

विश्वामित्र ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है मन्त्रार्थ-(सः हव्यवाट् अमर्त्यः

उशिक् दूतः च नः हितः चनोहितः अग्निः धिया समृण्वति) वह हवियोंको पहुँचानेवाला अमरणधर्मा बुद्धिमान् देवताओंका दूत और हमारा हितकारी अन्नों की प्राप्ति कराने वाला अग्नि देवता बुद्धिपूर्वक देवताओंको हवि पहुँचानेके निमित्त प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

अग्निन्दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ२॥ आसादयादिह ॥ १७ ॥

विश्वरूप ऋ०, गाय० छ०, अग्नि देवता है मन्त्रार्थ-(दूतं हव्यवाहं अग्निं पुरः दधे उपब्रुवे इह देवान् आसादयात्) देवताओंके दूत हविको धारण करनेवाले अग्निको आगे स्थापन करता हूँ और उससे ही कहता हूँ कि हे अग्ने! इस यज्ञमें देवताओंको बुलाकर स्थापन करो ॥१७॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या १८

अरुणत्रसदस्यु ऋ०, कृतिरनु० छ०, पवमान दे० है मन्त्रार्थ-(पवमान पुरन्ध्या रंहमाणः सूर्यं अजीजनः) हे पवित्रकारी पवमान ! तुमने धाराके द्वारा वेगसे गमन करते सूर्यको प्रकट किया (गोजीरया शक्मना हि पयः विधारे) गौओंकी जीविकाके हेतु जलको सामर्थ्यसे अवश्य ही उत्तम जलको धारण करते हो ॥ १८ ॥

विभूर्मात्रा प्रभुः पित्राश्वोसि हयोस्यत्योसि मयोस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृम्णा असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानाम्पत्वान्विहि देवा आशापाला एतन्देवेभ्योश्वमेधाय प्रोक्षितꣳरक्षतेह रन्तिरिह रमताभिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा १९

इस कंडिकामें ६ मन्त्र हैं सबका प्रजापति ऋ० है, छन्द १ का अतिजग०, २ का आर्षी उ०, ३।५ का दैवी बृ० ४ का दैवीपंक्ति ६ का दै० जग० है। देवता-१ का अश्व, २ का देव ३।४।५।६ का अग्नि है। अध्वर्यु और यजमान घोड़ेके दाहिने कानमें पढ़ें। मन्त्रार्थ-(मात्रा विभूः) हे अश्व ! तुम पृथ्वीमाता करके समर्थ होते हो (पित्रा प्रभुः) द्युलोकरूप पिता करके विशेष समर्थ होते हो (अश्वः असि) तुम मार्गको व्याप्त करने वाले हो (हयः असि) शीघ्रगमनसे हय नाम वाले हो (अत्यः असि) निरन्तरगामी हो (मयः असि) सुख-रूप हो (अर्वा असि) शत्रु-नाशक हो (सप्तिः असि) सेनासे मिलने वाले हो (वाजी असि) अनेकों गति वाले

हो (वृषा असि) सेचनमें समर्थ हो (नृम्णा असि) यजमानका मन रखने वाले हो (ययुः नाम असि) अश्वमेधमें सर्वत्र यथेच्छ जानेसे ययु नामक हो (शिशुः नाम असि) शिशु नाम वाले हो (आदित्यानां पत्व अन्विहि) अदितिपुत्र देवताओंके मार्ग स्वर्गमें गमन कर सकते हो ॥ १ ॥ दूसरा मन्त्र पढ़ कर अश्वको बडवा और जलादिसे एक वर्ष पर्यन्त रक्षा करे, रक्षा करनेके निमित्त २४ वर्षकी आयुके १०० कवचधारी राज-पुत्र, १०० खड्गधारी क्षत्रियकुमार १०० तरकस-धारी सारथिपुत्र १०० लगुडधारी क्षात्र-संगृहीतृपुत्र साथ चलें, बहुतसी सेना हो १०० घोड़ोंके मध्यमें यह घोड़ा चले, तब तक यजमान और उसकी स्त्री भूमि पर सोती हैं, सावित्री वीणागान करती है, पारिप्लव शास्त्रपाठ और धृतिहोम होता है । मंत्रार्थ-(आशापालाः देवाः देवेभ्यः मेधाय प्रोक्षितं एतं अश्वं रक्षत) दिशाओं के पालनकर्त्ता देवताओं राजपुत्रों ! देवताओंके अर्थ यज्ञ करनेको प्रोक्षण किये इस अश्वकी तुम रक्षा करो। घोड़ेको छोड़ कर १ वर्ष तक प्रतिदिन सायंकाल अग्निहोत्रसे पहिले अग्निहोत्रकी अग्निमें चार आहुति देय (इह रन्तिः) हे अग्ने यहाँ अश्वका स्मरण हो (इह रमतां) यहाँ अश्व रमण करे (इह धृतिः) यहाँ अश्व का संन्तोष हो (इह स्वधृतिः स्वाहा) यहाँ धारण हो अर्थात् सुरक्षित यहाँ लौट आवे, यह आहुति भलेप्रकार गृहीत हो१९

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्य मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहस्पत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥

इस कण्डिकामें २१ मंत्र हैं। सबका प्रजापति ऋषि और लिंगोक्त देवता है, छन्द १।२।१३।१६ का दैवी बृहती ३।७।१०।१९ का दै० जग० ४।८ का आसुरीजग०, ५।१२।१५।१८। २१ का याजुष्यनु०, ६।१४।१७ का दै० पंक्ति, ९।१०।२० का दै० त्रि० है। हवन के मन्त्र। मन्त्रार्थ-(कायस्वाहा)प्रजापति

देवताको यह आहुति प्राप्त हो (कस्मै स्वाहा) श्रेष्ठ प्रजापतिको यह० (कतमस्मै स्वाहा) परमश्रेष्ठ प्रजापतिके निमित्त यह० (आधिमाधीताय स्वाहा) विद्या-बुद्धिको धारण करनेवाले को यह आहुति प्राप्त हो (मनः प्रजापतये स्वाहा) मनमें वर्त्तमान प्रजपतिको यह आ० (चित्तं विज्ञाताय आदित्यै स्वाहा) चित्तके साक्षी आदित्य देवताको यह आ० (अदित्यै स्वाहा) अदितिको यह आ० (मह्यै अदित्यै स्वाहा) पूजनीय अदितिको यह आ० (सुमृडीकायै अदित्यै स्वाहा) सुख-दायक अदितिको आहु० (सरस्वत्यै स्वाहा) सरस्वतीको आ० (पावकायै सरस्वत्यै स्वाहा) शोधक सरस्वतीको आ० (बृहत्यै सरस्वत्यै स्वाहा) महती सरस्वतीको आ० (पूष्णे स्वाहा) पूषा को आ० (प्रपथ्याय पूष्णे स्वाहा) मार्गमें प्राप्त पूषा देवताको आ० (नरन्धिषाय स्वाहा) वैदिक मनुष्योंके शिक्षकको आ० त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्टाको आ० (तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा) वेगके रक्षक पूषाको आ० (पुरुरूपाय त्वष्ट्रे स्वाहा) बहुरूप त्वष्टा को आ० (विष्णवे स्वाहा) विष्णुदेवको आ० (निभूयपाय विष्णवे स्वाहा) अनेक अवतारधारी रक्षक विष्णुको आ० (शिपि-विष्टाय विष्णवे स्वाहा) पशुप्राणियोंमें अंतर्यामीरूपसे प्रविष्ट विष्णुदेवके निमित्त यह आहुति देते हैं ॥ २० ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ २१ ॥

इसकी व्याख्या अ० ४ मं० ८ में होगई ॥ २१ ॥

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रेराजन्यः शूर इषव्योतिव्याधी महारथी जायतान्दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरोजायतान्निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥

प्रजापति ऋ० उत्कृति छ० लिङ्गोक्त देवता है। कृष्णाजिनकी दीक्षासे लेकर उखामें १३ समिधा रखने पर्यन्त अध्वर्यु पढ़े । मंत्रार्थ-(ब्रह्मन् राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी

ब्राह्मणः आजायताम्) हे ब्रह्मन् ! हमारे देशमें यज्ञ और वेदाध्ययनशील ब्राह्मण सब ओर उत्पन्न हों (शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः राजन्यः आजायताम्) शूर, बाणविद्यामें चतुर शत्रुको भलीप्रकार वेधनेवाला, महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हो (अस्य यजमानस्य धेनुः दोग्ध्री) इस यजमानकी गौ दुधेर हों (अनड्वान् बोढा) वृषभ बोझा उठानेमें समर्थ हों (सप्तिः आशुः) घोड़ा शीघ्रगामी हो (योषा पुरन्ध्रिः) स्त्री सर्वगुणसम्पन्न हो (रथेष्ठाः जिष्णुः) रथमें बैठने वाला जयशील हो (वीरः युवा सभेयः आजायतां) पराक्रमी युवा सभाके योग्य पुत्र हो (नः पर्जन्यः निकामे निकामे वर्षतु) हमारे यहाँ मेघ प्रत्येक चाहना पर वर्षे (ओषधयः फलवत्यः पच्यन्तां) औषध फलवती हों और पकें (नः योगक्षेमः कल्पताम्) हमको अप्राप्तवस्तुकी प्राप्ति और प्राप्तवस्तुकी रक्षा प्राप्त हो २२

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

इस कण्डिकामें ७ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ० लिंगोक्त दे० छन्द १ । ३ । ४ । ५ । ७ का दै० पंक्ति और २ का दै० त्रि० और ६ का दै० बृहती है। मन्त्रार्थ – (प्राणाय स्वाहा) प्राणके निमित्त आहुति देते हैं (अपानाय स्वाहा) अपानके निमित्त आ० (व्यानाय स्वाहा) व्यानके निमित्त आ० (चक्षुषे स्वाहा) चक्षुकी ज्योति बढ़नेके निमित्त आ० (श्रोत्राय स्वाहा) श्रवणशक्ति बढनेके निमित्त आ० (वाचे स्वाहा) वाक्शक्तिके निमित्त आ० (मनसे स्वाहा) मनोबलके निमित्त आहुति देते हैं

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणाय दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४ ॥

इस कण्डिकामें १० मंत्र हैं। सबका प्रजापति ऋ० दिक् दे० और छन्द १ का दै० त्रि० २ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ का दै० जग० और ३ का याजु० अनु० है। मंत्रार्थ–(प्राच्यै दिशे स्वाहा) पूर्वदिशाके निमित्त आहुति देते हैं (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) आग्नेय दिशाके अर्थ आ० (दक्षिणायै दिशे स्वाहा) दक्षिण

दिशाके अर्थ आ० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) नैर्ऋत्य दिशाके अर्थ आ० (प्रतीच्यै दिशे स्वाहा) पश्चिम दिशाके अर्थ आ० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) वायव्य दिशाके अर्थ आ० (उदीच्यै दिशे स्वाहा) उत्तर दिशाके अर्थ आ० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) ईशानकोणके अर्थ आ० (ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहा) ऊपरकी दिशाके अर्थ आ० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) नीचेकी दिशाके अर्थ आ० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) सबसे नीचेकी दिशाके अर्थ आ० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) पृथ्वीगोलकमें जो प्रत्येक गोल आदिके नीचेकी दिशा हैं उनको आहुति देते हैं, इससे उन दिशाओंके देवता और प्राणी तृप्त हों ।२४।

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्पन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

इस कण्डिकामें १२ मन्त्र हैं । सबका प्रजापति ऋ० जल दे० और छन्द-१ । २ का दै० बृहती, ३ । ४ । ५ । १० । ११ । १२ का दै० त्रि० ६ का दै० जगती और ७ । ८ । ९ का दै० पंक्ति है । मन्त्रार्थ—(अद्भ्यः स्वाहा) जलोंके निमित्त हवि अर्पण करते हैं (वार्भ्यः स्वाहा) वारिजलोंको आहुति अर्पण करते हैं (उदकाय स्वाहा) सूर्यकी किरणोंमेंको ऊपरको जाने वाले जलोंके अर्थ आ० (तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा) स्थित जलोंको आ० (स्रवन्तीभ्यः स्वाहा) टपकतेहुए जलोंके अर्थ आ० (स्पन्दमानाभ्यः स्वाहा) चलते हुए जलोंको आ० (कूप्याभ्यः स्वाहा) कूपके जलोंके अर्थ आ० (सूद्याभ्यः स्वाहा) वर्षासे गीला करनेवाले जलोंके अर्थ आ० (धार्याभ्यः स्वाहा) धारणयोग्य जलोंको आ० (अर्णवाय, स्वाहा) नदके जलोंको आ० (समुद्राय स्वाहा) समुद्रके जलोंको आ० (सरिराय स्वाहा) श्रेष्ठजलके निमित्त आहुति देते हैं अर्थात् सब प्रकारके जलोंके अधिष्ठात्री देवता प्रसन्न होकर यज्ञमें अनुकूल रहें २५

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहावर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः

स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

इस कण्डिकामें १८ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, मेघपय दे० और छन्द-१ २।३।४।८।१४ का दै० पंक्ति ५ का याजु० अनु० ६।१२।१५।१६।१७।१८ का दै० त्रि० ७।९।१०।११।१३ का दै० जगती है। मंत्रार्थ-(वाताय स्वाहा) वायुदेवताके निमित्त आहुति देते हैं (धूमाय स्वाहा) मेघके कारण धूमके अर्थ भली प्रकार हवन हो (अभ्राय स्वाहा) मेघके हेतु अवरके निमित्त आहुति देते हैं (मेघाय स्वाहा) मेघके निमित्त आ० (विद्योत-मानाय स्वाहा) बिजली युक्त को आ० (स्तनयते स्वाहा) गर्जन करतेको आ० (अवस्फूर्जते स्वाहा) वज्रनिर्घोषको आ० (वर्षते स्वाहा) वर्षा करते हुएको आ० (अवर्षते स्वाहा) थोड़ी वर्षा करनेवालेको आ० (उग्रं वर्षते स्वाहा) उग्र वर्षा करने वालेको आ० (शीघ्रं वर्षते स्वाहा) शीघ्र वर्षा करनेवालेको आ० (उद्गृह्णते स्वाहा) जलको ऊँचा लेजाने वालेको आ० (उद्गृ-होताय स्वाहा) ऊपर ग्रहण किये हुएको आ० (प्रुष्णते स्वाहा) बहुत जल गिराते को आ० (शीकायते स्वाहा) ठहर ठहर कर वर्षने वालेको आ० (प्रुष्वाभ्यः स्वाहा) घोर वर्षावालेको आ० (ह्रादुनीभ्यः स्वाहा) गड़गड़ शब्द करनेवालेको आ० (नीहाराय स्वाहा) कुहरवालेको आहुति देते हैं अर्थात् सब प्रकारके मेघोंके अधिष्ठात्री देवता इन आहुतियोंसे प्रसन्न होकर यज्ञ के अनुकूल हों ॥ २६ ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

इस कण्डिकामें १० मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, १।२।३।४ का दै० पंक्ति छ०, अग्न्यादि दे० है। ५।१० का दै० जगती छ० पृथ्वी दे० है। ६।७।८ का दै० बृहती छ० देवादि दे० है। ९ का दै० त्रि० छन्द दिक् दे० है, मन्त्रार्थ-(अग्नये स्वाहा) अग्नि को हवि अर्पण करते हैं (सोमाय स्वाहा) सोम दे० को हवि अर्पण० (इन्द्राय स्वाहा) इन्द्रको हवि अर्पण० (पृथिव्यै स्वाहा) पृथिवी देवताको हवि अर्पण० (अन्तरिक्षाय स्वाहा) अन्तरिक्ष देवताको आहुति अर्प० (दिवे स्वाहा) द्युलोकके अधिष्ठात्री देवताको आहुति० (दिग्भ्यः स्वाहा) दिशाओंके अधिष्ठात्री देवताओं को आ० (आशाभ्यः स्वाहा) ईशानादि-कोण दिशाओंके अधिष्ठात्री देवताओंका

आ० (उर्व्यै दिशे स्वाहा) पृथिवीकी दिशा के अधिष्ठात्री दे० को आहु० (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) नीचेकी दिशाके देवताके अर्थ आहुति देते हैं ॥ २७ ॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा सम्वत्सराय स्वाहा द्यावा पृथिवीभ्याꣳ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥२८॥

इस कण्डिकामें २३ मन्त्र हैं । सबका प्रजापति ऋ०, १ । ७ । १५ । २३ का दै० त्रि० छ०, नक्षत्रादि दे०, २ । ३ । ४ । ८ । २० का दै० जगती ५ । ६ । १० । १४ । १६ । १८ । १९ । २१ । २२ का दै० पंक्ति छ०, मासादि दे०, ९ । १७ याजु० अनु० छ०, द्यावापृथ्वी आदि दे० है । मंत्रार्थ–(नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) नक्षत्रोंके अर्थ आहुति देते हैं (नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा) नक्षत्रोंके संबंधियों के अर्थ आ० (अहोरात्रेभ्यः स्वाहा) दिन रातके देवताओंके अर्थ आ० (अर्धमासेभ्यः स्वाहा) अर्धमासके अर्थ आ० (मासेभ्यः स्वाहा) मासोंके अर्थ आ० (ऋतुभ्यः, स्वाहा) ऋतुओंके अर्थ आ० (आर्त्तवेभ्यः स्वाहा) ऋतुओंमें उत्पन्न हुए पदार्थोंके अर्थ आ० (संवत्सराय स्वाहा) संवत्सर के अर्थ आ० (द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा) द्यावापृथिवीके अर्थ आ० (चन्द्राय स्वाहा) चन्द्रमाके अर्थ आ० (सूर्याय स्वाहा) सूर्य के अर्थ आ० (रश्मिभ्यः स्वाहा) सूर्यकी किरणोंके अर्थ आ० (वसुभ्यः स्वाहा) वसुओंके अर्थ आ० (रुद्रेभ्यः स्वाहा) रुद्रों के अर्थ आ० (आदित्येभ्यः स्वाहा) आदित्योंके अर्थ आ० (मरुद्भ्यः स्वाहा) मरुत् देवताओंके अर्थ आ० (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) विश्वेदेवाओंके अर्थ आ० (मूलेभ्यः स्वाहा) मूलोंके अर्थ आ० (शाखाभ्यः स्वाहा) शाखाओंके अर्थ आ० (वनस्पतिभ्यः स्वाहा) वनस्पतियों के अर्थ आ० (पुष्पेभ्यः स्वाहा) पुष्पोंके अर्थ आ० (फलेभ्यः स्वाहा) फलोंके अर्थ आ० (ओषधीभ्यः स्वाहा) ओषधियों के अर्थ आहुति देते हैं, भली प्रकार गृहीत हो ॥ २८ ॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

इस कण्डिका में ११ मंत्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, लोकाधिष्ठात्री दे० है। छन्द-१।४।५।८ का दै० पंक्ति, २।९ १०।११ का दै० जगती, ३।७ का दै० बृहती ६ का दै० त्रि० है। मन्त्रार्थ-(पृथिव्यै स्वाहा) पृथिवीके अर्थ आहुति देते हैं, (अन्तरिक्षाय स्वाहा) अन्तरिक्षके अर्थ आ० (दिवे स्वाहा) द्युलोकके अर्थ आ० (सूर्याय स्वाहा) सूर्यके अर्थ आ० (चन्द्राय स्वाहा) चन्द्रमाके अर्थ आ० (नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) नक्षत्रोंके अर्थ आ० (अद्भ्यः स्वाहा) जलोंको आ० (औषधीभ्यः स्वाहा) औषधोंको आ० (वनस्पतिभ्यः स्वाहा) वनस्पतियोंको आ० (परिप्लवेभ्यः स्वाहा) सब ओर भ्रमण करनेवाले ग्रहोंके अर्थ आ० (चराचरेभ्यः स्वाहा) चर अचरको आ० (सरीसृपेभ्यः स्वाहा) सर्पोंको वा गतिमान् जीवोंको आहुति देते हैं, भलेप्रकार गृहीत होकर सबका कल्याण हो ॥ २९ ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा विभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा ॥ ३० ॥

इस कण्डिकामें १४ मं० हैं सबका प्रजापति ऋ०, १।२।३।९।११।१२ का दैवी पंक्ति छ० अश्वादि दे०, ४।५। ७।१० का दै० त्रि० छ०, विवस्वान् आदि दे० ६।८।१३ का दै० जग० छ०, गणपत्यादि दे०, १४ का याजु० अनु० छ० गण देवता है। मंत्रार्थ-(असवे स्वाहा) प्राणको आहुति देते हैं (वसवे स्वाहा) वसुको आ० (विभुवे स्वाहा) व्यापकको आ० (विवस्वते स्वाहा) विवस्वान् सूर्यको आ० (गणश्रिये स्वाहा) गणश्री देवताको आ० (गणपतये स्वाहा) गणपति दे० को आ० (अभिभुवे स्वाहा) सन्मुख प्राप्तको आ० (अधिपतये स्वाहा) सबके स्वामीको आ० (शूषाय स्वाहा) बलवान्को आ० (संसर्पाय स्वाहा) गमनशीलका आ०

(चन्द्राय ज्योतिषाय स्वाहा) चन्द्रमा ज्योतिर्देवताको आ० (मलिम्लुचाय स्वाहा) मलिम्लुच दे० को आ० (दिवापतये स्वाहा) दिनके पति सूर्यको आहुति देते हैं ॥३०॥

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाꣳहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

इस कण्डिकामें १३ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, मासाधिष्ठात्री देवता है, छन्द १।३।४।५।७।८।९।११ का दे० पंक्ति, २।६।१०।१२ का दै० त्रि०, १३ का याजु० अनु० है। मन्त्रार्थ (मधवे स्वाहा) चैत्रके अधिष्ठात्री देवताको आहुति देते हैं (माधवाय स्वाहा) वैशाखके अधि० दे० कोआ० (शुक्राय स्वाहा) ज्येष्ठके अधि० को आहु० (शुचये स्वाहा) आषाढके अधि० को आ० (नभसे स्वाहा) श्रावणके अधि० दे० को आ० (नभस्याय स्वाहा) भाद्रपदके अधि० दे० का आ० (इषाय स्वाहा) आश्विनके अ० दे० को आ० (ऊर्जाय स्वाहा) कार्त्तिकके अधि० द० को आ० (सहसे स्वाहा) मार्गशीर्षके अधि० दे० को० (सहस्याय स्वाहा) पौषके अधि० दे० को आ० (तपसे स्वाहा) माघके अधि० दे०का० (तपस्याय स्वाहा) फाल्गुनमासके अधि० दे० को आ० (अंहसस्पतय स्वाहा) मलमासके अधि० देवताको आहुति देते हैं

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥ ३२ ॥

इस कण्डिकामें १२ मं० हैं। सबका प्रजा० ऋ०, अन्नाधीश देवता है, छन्द १।४।८ का दै० पंक्ति, २।३।७ का दै० त्रि०, ५ का अनु० ६ का दै० बृहती, ९।१० का आसुरी जग०, ११।१२ का दै० जग० है। मंत्रार्थ-(वाजाय स्वाहा) अन्न देवताको आहुति देते हैं (प्रसवाय स्वाहा) पदार्थोंके उत्पादकको हवि अर्पण करते हैं (अपिजाय स्वाहा) जलोत्पन्न अन्नको हवि अर्पण करते हैं (क्रतवे स्वाहा) यज्ञके योग्य अन्नके अर्थ हवि अर्पण० (स्वः स्वाहा) स्वर्गीय अन्नको हवि

अर्पण करते हैं (सूर्य्ये स्वाहा) अन्नपति सूर्यको आहुति अर्पण करते हैं (व्यश्नुविने स्वाहा) व्यापक अन्नको हवि० (आन्त्याय स्वाहा) महत्रूप अन्नको हवि० (आन्त्याय भौवनाय स्वाहा) व्यवहारसे महान् सांसारिक अन्नके अर्थ हवि० (भुवनस्य पतये स्वाहा) संसारके पालक अन्नाधीश देवता को हवि० (अधिपतये स्वाहा) सबके अधिपति अन्नको० (प्रजापतये स्वाहा) प्रजाओं के पालक अन्नको हवि अर्पण करते हैं ३२

आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पतां स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पन्ताꣳ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका में १५ मं० हैं सबका प्रजा० ऋ०, प्रार्थना दे० और छन्द १। २। ४। ७। ८। १०। ११। १२। १४। १५ का आसुरी त्रि०, ३। ५। ६। ८ का याजु० त्रि० ९। १३ का आसुरी जग० है। मन्त्रार्थ—(आयुः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) हमारी आयु यज्ञके द्वारा बढ़े इसी इच्छा से यह हवि अर्पण करते हैं (प्राणः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) प्राण यज्ञके द्वारा बलिष्ठ हो, हवि अर्पण करते हैं (अपानः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) अपान यज्ञसे कल्पित हो हवि अर्पण० (व्यानः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) व्यान वायु यज्ञके द्वारा कल्पित हो हवि अर्पण० (उदानः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) उदान वायु यज्ञ करके कल्पित हो इसी निमित्त हवि० (समानः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) समान यज्ञ करके कल्पित हो इसी नि० हवि० (चक्षुः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) चक्षु यज्ञसे ज्योति पावे इसी नि० हवि० (श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) श्रोत्रेन्द्रिय यज्ञ करके कल्पित हो इसी निमित्त हवि० (वाक् यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) वाणी यज्ञ करके कल्पित हो इसी नि० हवि अर्पण० (मनः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) मेरा मन यज्ञ द्वारा निर्मल हो इसी निमित्त हवि अर्पण करते हैं (आत्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा)

आत्मा यज्ञके द्वारा सम्पन्न हो, इसी नि० हवि० (ब्रह्मा, यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) वेद यज्ञके द्वारा मुझे कृतार्थ करे इसी नि० हवि० (ज्योतिः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) आत्मज्योति यज्ञद्वारा कल्पित हो इसी नि० हवि० (स्वः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) स्वर्ग यज्ञके द्वारा प्राप्त हो इसी नि० हवि० (पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) ब्रह्मलोक यज्ञके द्वारा हमको प्राप्त हो इसी नि० हवि० (यज्ञः यज्ञेन कल्पतां स्वाहा) यज्ञ यज्ञ-फलसे सम्पन्न हो इसी निमित्त हवि अर्पण करते हैं ॥ ३३ ॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा

इसमें ६ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, संख्याधीश दे० है छन्द-१।३।६ का दै० पंक्ति, २।५ का दै० बृ०, ४ का दै० जगती है। मन्त्रार्थ—(एकस्मै स्वाहा) अद्वितीय परमात्माको आहुति अर्पण करते हैं (द्वाभ्यां स्वाहा) प्रकृति पुरुष वा जीव ईश्वर वा कार्य-कारण-स्वरूप को आ० (शताय स्वाहा) सैंकड़ों स्वरूपवालेको आहुति अर्पण करते हैं (एकशताय स्वाहा) बहुरूप होनेपर भी एकमें और सौमें भी व्याप्तको आहुति अर्पण करते हैं (व्युष्ट्यै स्वाहा) रात्रिके देवताको हवि देते हैं (स्वर्गाय, स्वाहा) दिनके स्वामीको यह आहुति देते हैं, भले प्रकार गृहीत हो [यहां पर्यन्त दिग्देवता जलदेवता आदिको प्रसन्न करनेवालीं आहुति दी हैं जिनमें आयुवृद्धिकी प्रार्थना और परमात्माकी महिमाका वर्णन करके अन्तमें संसारके मातापितारूप दिनरात्रिको आहुति देकर विश्राम लिया है] ॥ ३४ ॥

इति श्री शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनीय शाखाका सान्वय अनुवाद सहित द्वाविंश अध्याय समाप्त।

—०—

❀ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ❀

उक्थसंस्था नामक दूसरे दिन प्रातःकालके समय महिम नामक दो ग्रहोंको ग्रहण किया जाता है, पहिले महिम नामक ग्रहको सुनहरी ऊखलसे ग्रहण करे—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीन्द्यामुते-माङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या १३।४ में होगई, भावार्थ यह है कि-जो सृष्टिसे पहिले अद्वितीय हिरण्यगर्भ था, सृष्टि होने पर वही सकल विश्वका पालक हुआ, वही अपनी शक्तिसे इस पृथिवी और द्युलोकको थामे हुए है वह कैसा है सो कोई स्थूलदृष्टि नहीं बतासकता ऐसे देवकी प्रीतिके अर्थ यह आहुति देते हैं ॥ १ ॥

उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टम्गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्य्यस्ते महिमा । यस्तेहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्य्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

इसमें ३ मं० है। सबका प्रजा० ऋ० देव देवता है छन्द १ का नि० साम्नी बृह०, २ का आसु० पं० ३ का विराट्ब्राह्मी पं० है - महिमग्रहको लेकर स्थापन करके हवन करे मन्त्रार्थ -(उपयामगृहीतः असि प्रजापतये जुष्टं त्वा गृह्णामि) हे ग्रह ! उपयामपात्रमें गृहीत हो, प्रजापतिके प्रिय तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तेरा स्थान है (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरी महिमा है (यः ते महिमा अहन् सम्वत्सरे सम्बभूव) जो तेरी महिमा दिनमें प्रतिवर्ष प्रकट है (यः ते महिमा वायौ अन्तरिक्षे सम्बभूव) जो तेरी महिमा वायुमें अन्तरिक्षमें प्रकट हुई (यः ते महिमा दिवि सूर्ये सम्बभूव) जो तेरी महिमा द्युलोकमें सूर्यलोकमें प्रकट हुई (ते तस्मै महिम्ने प्रजापतये च देवेभ्यः स्वाहा) तेरी उस महिमावाले प्रजापति को और देवताओंको यह आहुति देते हैं ॥ २ ॥

यः प्राणतो निमेषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भ ऋ०, त्रि० छ०, प्रजापति दे० है। चाँदीके उलूखलमें दूसरे महिमग्रह को ग्रहण करे। मंत्रार्थ (यः प्राणतः निमेषतः जगतः एकः इत् राजा महित्वा बभूव) जो प्रजापति जीवन करते पलक लगाते जगत्के प्राणियोंके अद्वितीय ही राजा महिमासे हुए (यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे) जो इस मनुष्य पक्षी आदि द्विपाये और गौ घोड़े आदि चौपायोंका शासन करता है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस प्रजापति देवताको हविसे पूजते हैं ३

उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ सम्बत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

इस क० में ३ मन्त्र हैं। सबका प्रजा० ऋ० १ का नि० सा० बृह० छ०, ग्रह दे०, २ याजु० जग० छ०, ग्रह दे० ३ का विराड् ब्रा० छ०, प्रजापति दे० है। दूसरे महिम-ग्रहको ले स्थापन करके आहुति देय। मंत्रार्थ-(उपयामगृहीतः असि प्रजापतये जुष्टं त्वा गृह्णामि) हे ग्रह! तू उपयामपात्र में गृहीत है, प्रजापतिके प्रिय तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तेरा स्थान है (चन्द्रमाः ते महिमा) चन्द्रमा तेरी महिमा है (ते यः महिमा रात्रौ सम्बत्सरे सम्बभूव) तेरी जो महिमा प्रतिरात्रि प्रति सम्बत्सरमें प्रकट हुई (ते यः पृथिव्यां अग्नौ सम्बभूव) तेरी जो महिमा पृथिवी पर अग्निमें प्रकट हुई (ते यः महिमा नक्षत्रेषु, चन्द्रमसि, सम्बभूव) तेरी जो महिमा तारागण और चन्द्रमामें प्रकट हुई (ते तस्मै महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा) तेरी तिस महिमासम्पन्न प्रजापति और देवताओंको आहुति देते हैं ॥ ४ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषञ्चरन्तम्परितस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ०, गायत्री छ०, आदित्य दे० है एक वर्ष भ्रमण कर आये घोड़ेको ऋत्विज् रथमें जोतें। मन्त्रार्थ— (तस्थुषः अरुषं परिचरन्तं ब्रध्नं युञ्जन्ति) कर्मके निमित्त बैठे ऋत्विज् क्रोधरहित, सर्वत्र विचरते हुए प्रभावशाली अश्वको रथमें जोतते हैं (रोचना दिवि रोचन्ते) जिन आदित्यकी दीप्ति आकाशमें प्रकाशित होती है उनकी भूमि पर घूमनेसे प्रभाव-शाली अश्वको रथमें युक्त करते हैं ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गायत्री छन्द, अश्व देवता है। अन्य अश्व रथमें जोड़े। मन्त्रार्थ-(अस्य काम्या विपक्षया शोणा धृष्णू नृवाहसा हरी रथे युञ्जन्ति) इस अश्व के सहायकारी विविध पक्ष वाले रक्तवर्ण प्रगल्भ, वहनमें समर्थ दो अश्वोंको रथमें ऋत्विज् युक्त करते हैं ॥ ६ ॥

यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् । एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ॥ ७ ॥

प्रजापति ऋषि, बृहती छ०, अश्व दे० है। अध्वर्यु यजमान रथमें चढ़ सरोवरके निकट जायँ घोड़ोंके जलमें जाने पर पढ़ें मन्त्रार्थ—(वातः यत् अपः इन्द्रस्य प्रियां तन्वं अगनीगन्) हे अध्वर्यो ! वायुसमान शीघ्रगामी अश्वने जलोंको और इन्द्रके प्रिय शरीरको पाया (स्तोतः एतत् नः अश्वं अनेन पथा पुनः आवर्त्तयासि) हे अध्वर्यो ! इस हमारे घोड़ेको इसी मार्गसे फिर लौटा लाओ ॥ ७ ॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्ये एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥ ८ ॥

इसमें ५ मंत्र हैं, सबका प्रजापति ऋ० छन्द १।२ का आसुरी अनु०, ३ का याजुषी जग०, ४ का दै० बृहती, ५ का भुरिगार्ची बृहती है। देवता-१।२।३ का लिंगोक्त, ४।५ का अश्व है। लौटने पर रथसे छूटे घोड़ेके पूर्वादि शरीरको महिषी आदि घृत से सींचें, मन्त्रार्थ-(वसवः गायत्रेण छंदसा त्वा अञ्जन्तु) वसु देवता गायत्री छन्दसे तुझको लिप्त करें (रुद्राः त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वा अञ्जन्तु) रुद्रदेवता त्रिष्टुप्छन्दसे तुझको लिप्त करें (आदित्याः जागतेन छंदसा त्वा अञ्जन्तु) बारह आदित्य जगती छन्द से तुझको लिप्त करें । १०१ सुवर्ण-मय मणियोंको शिर, कन्धा और पूँछमें बाँधें। (भूः भुवः स्वः) भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तुझे शोभित करें। रातका हुतशेष सत्तू खीलें आदि घोड़ेको खानेको देय वह न खाय तो जलमें डाले (देवाः लाजीन् शाचीन् गव्ये हव्ये एतत् अन्नं अत्त) हे देवताओं ! खीलें, सत्तू, दही, दूध, जौंकी लप्सीरूप इस अन्नको भक्षण करो (प्रजापते एतत् अन्नं अद्धि) हे प्रजापते ! इस अन्नको खाओ ॥ ८ ॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजङ्किम्वावपनम्महत् ॥ ९ ॥

प्रजापति ऋ०, अनु० छ०, प्रश्न देवता है। यूपके दक्षिणमें उत्तरमुख ब्रह्मा यूपके उत्तरमें दक्षिणमुख होतासे बूझे। मन्त्रार्थ (स्वित् कः एकाकी चरति) कहो कौन अकेला विचरता है (स्वित् कः उ पुनः जायते) कहो कौन निश्चय फिर प्रकाश पाता है (स्वित् हिमस्य भेषजं किम्) कहो हिमकी औषध क्या है (महत् आवपनम् किम्) बड़ा क्षेत्र कौन है ॥ ९ ॥

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजम्भूमिरावपनम्महत् ॥

प्रजापति ऋ०, आर्षी अनु० छ०, उत्तर देवता है। उत्तर-(सूर्यः एकाकी चरति) सूर्य ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म अद्वितीय होकर व्याप्त होरहे हैं वा अकेले अपनी धुरी पर घूमते हैं (चन्द्रमा पुनः जायते) चन्द्रमा फिर प्रकाश पाता है वा मन वार २ नवीन होकर प्रकाश पाता है (अग्निः हिमस्य भेषजम्) अग्नि हिमकी औषध है ज्ञानाग्निसे अज्ञानरूपी हिम दूर होता है (भूमिः महत् आवपनम्) भूलोक कर्मबीजके बोनेका बड़ा क्षेत्र है ॥ १० ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

प्रजा० ऋषि, आर्षी त्रि० छन्द, प्रश्न देवता है, होताका प्रश्न-(स्वित् पूर्वचित्तिः का आसीत्) कहो पूर्व-स्मरणका विषय कौन था (स्वित् बृहद्वयः किम् आसीत्) कहो बहुत उड़ने वाला वा स्वर्ग-पर्यन्त पहुँचा हुआ कौन था (स्वित् पिलिप्पिला का आसीत्) कहो लक्ष्मी कौन थी (स्वित् पिशङ्गिला का आसीत्) कहो रूपको निगलने वाली कौन थी ॥ ११ ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः। अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला

प्रजा० ऋ०, नि० आर्षी अनु० छन्द, उत्तर देवता है। ब्रह्माका उत्तर-(द्यौः पूर्वचित्तिः आसीत्) सब प्राणियोंको इच्छित होनेसे वृष्टिदाता द्युलोक प्रथम स्मरणका विषय हुआ (अश्वः बृहद्वयः आसीत्) अश्वमेध स्वर्गपर्यन्त पहुँचाने वाला हुआ (अविः पिलिप्पिला आसीत्) रक्षा करने वाली पृथ्वी लक्ष्मीरूप हुई (रात्रिः पिशङ्गिला आसीत्) महामोह—रूपिणी रात्रि ज्ञानमय रूपको निगलने वाली हुई ॥१२॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या । एष स्य राध्यो वृषा-पद्भिश्चतुर्भिरेदगन् ब्रह्मा कृष्णश्च नोवतु नमोग्नये ॥ १३ ॥

प्रजापति ऋषि नि० ब्रा० बृह० छन्द, लिंगोक्त देवता है। अश्वका प्रोक्षण करे। मन्त्रार्थ-(वायुः पचतैः त्वा अवतु) हे अश्व वायु पाकोंके द्वारा तेरी रक्षा करे (असितग्रीवः छागैः) धूमसे श्यामग्रीव अग्नि छागों सहित तेरी रक्षा करे (न्यग्रोधः चमसैः) वटवृक्ष चमस—रूपसे तुम्हारी रक्षा करे (शल्मलिः वृद्ध्या) सेमल अपनी वृद्धिकी समान तुझको सब प्रकार श्रेष्ठ करे (एषः स्य वृषा रथ्यः चतुर्भिः पद्भिः आगन्) यह वह मनोरथदाता अश्वाभिमानी देव हमारे मनोरथोंके फलोंकी वर्षा करे। धर्म, अर्थ, काम मोक्षरूप ४ चरणोंसे आवे (अकृष्णः ब्रह्मा नः अवतु) निर्मल ब्रह्मा हमारी रक्षा करे (अग्नये नमः) अग्निको नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः । सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥

प्रजापति ऋ०, भुरिगार्ची पंक्ति छ०, अश्व दे० है। मंत्रार्थ—(रथः रश्मिना संशितः) रथ रश्मिसे प्रशंसित होता है (हयः रश्मिना संशितः) अश्व लगामसे शोभित होता है (अप्सुजाः अप्सु संशितः) अश्व जलोंमें शोभित होता है (ब्रह्मा सोमपुरोगवः) ब्रह्मा सोमको आगे गमन कराकर इसको स्वर्गमें पहुँचाता है ॥ १४ ॥

स्वयं वाजिँस्तन्वङ्कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयञ्जुषस्व । महिमा तेन्येन न सन्नशे १५

प्रजा० ऋ०, आर्ची प० छ०, अश्व दे० है। मंत्रार्थ-(वाजिन् स्वयं तन्वं कल्पयस्व) हे अश्व! अपने शरीरको यथायोग्य यथेच्छ कल्पना करो (स्वयं यजस्व) आप ही यजन करो (स्वयं जुषस्व) स्वयंही अपने इष्टस्थानको सेवन करो (ते महिमा अन्येन न सन्नशे) तेरी महिमा दूसरेकी महिमासे नहीं नष्ट होती ॥ १५ ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवान् इदेषि पथिभिः सुगेभिः । यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

प्रजाप० ऋ० त्रि० छ०, अश्व दे० है। मंत्रार्थ-(एतत् वै न म्रियसे) हे अश्व! यह तुम निःसन्देह नहीं मरते हो (उ न रिष्यसि) और नहीं विनष्ट होतेहो (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) किन्तु सुगम मार्गोंसे देवताओंके प्रति गमन करते हो (यत्र सुकृतः आस्ते) जहाँ पुण्यात्मा स्थित होते हैं (यत्र ते ययुः) जहाँ वे पुण्यकर्मा गए (तत्र सविता देवः त्वा दधातु) तहाँ सबका प्रेरक देव तुमको स्थापन करे ॥१६॥

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैता अपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैता अपः। सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैता अपः ॥ १७ ॥

इसमें ३ मन्त्र हैं सबका प्रजा० ऋ०, आर्षी प० छ०, अश्व दे० है। प्रोक्षणीको अश्वके मुख पर लगावे। मंत्रार्थ-(अग्निः पशुः आसीत्) अग्नि पशु हुआ (तेन अयजन्त) उससे देवताओंने यजन किया (सः एतम् लोकं अजयत्) उस अग्निने इस लोकको जीत लिया (यस्मिन् अग्निः) जिस लोकमें अग्नि है (सः लोकः ते भविष्यति) वह लोक तेरा होगा (तं जेष्यसि) उसको जीतेगा (एताः अपः पिब) इन जलोंको पी (वायुः पशुः आसीत्) वायु पशु था (तेन अयजन्त) उसके द्वारा यजन किया गया (सः एतं लोकं अजयत्) उसने इस लोकको जीता (यस्मिन् वायुः) जिस लोकमें वायु रहता है (सः लोकः ते भविष्यति) वह लोक तेरा होगा (तं जेष्यसि) उसको जीतेगा (एताः अपः पिब) इन जलोंको पियो (सूर्यः पशुः आसीत्) एक समय सूर्य पशु हुआ (तेन देवाः अयजन्त) उसके द्वारा देवताओंने यजन किया (सः एतं लोकं अजयत्) उसने इस लोकको जीत लिया (यस्मिन् सूर्यः) जिस लोकमें सूर्य है (सः लोकः ते भविष्यति) वह लोक तेरा होगा (तं जेष्यसि) उसको जीतेगा (एताः अपः पिब) इन जलोंको पी, अर्थात् यजनके निमित्त पशु बनकर ही अग्नि आदिने लोकोंको जीता है, तू भी यजन-पशुत्व स्वीकार करेगा भू आदि लोकोंको जीतकर देवत्वको पावेगा ॥१७॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा। अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मानयति

कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

इसमें ४ मन्त्र हैं, सबका प्रजा० ऋ०, छन्द-१।३ का दै० पंक्ति, २ का दै० त्रिष्टुप् ४ का भुरिगार्ची प० है। देवता-१।३ का प्राण व्यान, २ का अपान, ४ का लिङ्गोक्त है। तीन आहुति देय (प्राणाय स्वाहा) प्राणके निमित्त श्रेष्ठ होम हो (अपानाय स्वाहा) अपानके निमित्त श्रेष्ठ होम हो (व्यानाय स्वाहा) व्यानके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, इसप्रकार यज्ञीयपशुमें प्राणधारण होता है इस कारण यज्ञका साधन जीवित पशु ही होता है। अब अश्वके संस्कारको कहते हैं (अम्बे अम्बिके अम्बालिके अश्वकः काम्पीलवासिनीं सुभद्रिकां ससस्ति) महाविद्या कहती है हे अंबे, हे अंम्बिके हे अम्बालिके ! आत्मज्ञान-रहित अश्व, उस अविद्याको जोकि-कामदेव कामरूपा स्त्री भ्रमपान महामायासे ग्रहण करनेवाले संसारमें बसती है उसको ग्रहण करके शयन करता है (कश्चन मा ना नयति) कोई मुझ महाविद्याको उसके पास नहीं प्राप्त कराता है ॥ १८ ॥

गणानान्त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

इसमें चार मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, लिङ्गोक्त दे० है। छन्द १।२।३ का आर्षी बृ० ४ का साम्नीपंक्ति है। अश्वकी परिक्रमा और अश्वके समीप स्थिति। मन्त्रार्थ- यजमानपत्नी कहती हैं कि-हे अश्वके अधिष्ठात्रीदेव प्रजापति परमात्मन् ! (गणानां गणपतिं त्वा हवामहे) मनुष्यादिके गणसमुदायोंमें गणपति कहिये अधिष्ठाता-रूपसे विद्यमान तुमको हम आह्वान करती हैं (प्रियाणां प्रियपतिं त्वा हवामहे) संसारके सकल प्रिय पदार्थोंमें सबसे अधिक प्रिय होनेके कारण वा सर्वोपरि रक्षक होनेके कारण प्रिय पतिरूप आपको हम आह्वान करती हैं (निधीनां निधिपतिं त्वा हवामहे) विद्यादि पोषणकारक सुख-निधियोंमें उनके पति-रूपसे विद्यमान आपको हम आह्वान करती हैं (वसो मम) सबके प्राणरूप वा जिनमें सब प्राणी बसते हैं ऐसे हे वसु-नामक परमात्मन् ! मेरे भी रक्षक हूजिये (अहं गर्भधं आ अजानि) मैं गर्भ-धारण कराने वाले वीर्यको सब प्रकार निजपतिसे पाने वाली होऊँ (त्वं गर्भधं आ अजासि) आप गर्भके धारण कराने वाले वीर्यको सब प्रकार फलोन्मुखरूपसे क्षेपण करते हो अतः मेरे पतिमें भी उसको स्थापन करो ॥ १९ ॥

ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु

इसमें ३ मन्त्र हैं। सबका प्रजापति ऋ०, छन्द-१ का आसु० उ०, २ का याजु० अनु०, ३ का याजु० जग० है। देवता १। ३ का लिङ्गोक्त, २ का अश्व है। पत्नी निज पति यजमानसे कहती है हे स्वामिन् (तौ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयावः) वह मैं और तुम दोनों चार चरणोंको भलीप्रकार फैलावें वा धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चारों का साधन करें। हे अश्वके अधिष्ठात्री प्रजापति देव! (स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथाम्) तुम इस यज्ञशालामें निज तेज व निजैश्वर्यको आच्छादन करो (वृषा रेतोधाः वाजी रेतः दधातु) हे प्रजापते! सेचनमें समर्थ तेजोमय वीर्यका धारण करनेवाला मेरा बलवान् पति मुझमें तेजोयुक्त वीर्य को स्थापन करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या अवगुदन्धेहि समञ्जिञ्चारयावृषन्। यस्त्रीणाञ्जीवभोजनः ॥ २१ ॥

प्रजा० ऋ०, गायत्री छ०, अश्व दे० है। अब यजमान अश्वाभिमानी प्रजापति परमात्मासे प्रार्थना करता है कि-(वृषन् उत्सक्थ्याः गुदं अवधेहि) हे सकल मनोरथोंकी वर्षा करनेमें समर्थ प्रजापते! जिस की ऊरु ऊपरको हैं ऐसी पत्नीके प्राणों पर तेजको स्थापन करो (अञ्जिं सञ्चारय) उस तेजको प्रविष्ट करो (यः स्त्रीणां जीवभोजनः) जोकि-स्त्रियोंके जीवनका साधन है ॥ २१ ॥

यकासकौ शकुन्तिका ह लगिति वञ्चति। आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥

प्रजा० ऋ०, आर्षीपंक्ति छन्द, अध्वर्यु आदि देवता है। अध्वर्यु आदि देवियोंसे सम्वाद करते हैं। मन्त्रार्थ- (यका शकुन्तिका वञ्चति) जो अपरा प्रकृति है वह ठगती है (असकौ हि लगति) यह आत्मा ही सङ्गी होता है (पसः गभे आहन्ति) यज्ञीय तेज आत्मयजनकारीके ऐश्वर्यमय आत्मामें आगमन करता है (ग्ली धारका निगलगलीति) सर्वाधार पराशक्ति उस आत्मयोगी के लिङ्गशरीरको भक्षण करती है

यकोऽसौ शकुन्तक आह लगिति वञ्चति। विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥ २३ ॥

प्रजापति ऋषि, आर्षी बृ० छन्द, देवी देवता है। देवियें कहती हैं। मन्त्रार्थ- (अध्वर्यो यकः शकुन्तका वञ्चति) हे अध्वर्यो! जो अविद्यामें बँधा हुआ जीव

पक्षी है यही ठगता है (असकौ हि आ लगति) यही सब ओरसे आसक्त होता है (विवक्षतः ते मुखं इव त्वं नः मा अभिभाषथाः) बोलते हुए तुम्हारे मुखकी समान चञ्चलतासे इधर उधरको चलायमान होता है, तुम हमसे भाषण न करो अर्थात् मौनी हो आत्मविचार करो तब ही उद्धार होगा ॥ २३ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः। प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत्

प्रजा० ऋ०, भुरि० पंक्ति छन्द, ब्रह्मा देवता है। ब्रह्मा महिषीसे कहता है, मंत्रार्थ (ते माता च ते पिता च) तेरी माता महाशक्ति भूमि और तेरा पिता महानारायणकी विभूति द्युलोक भी (वृक्षस्य अग्रं रोहतः) पंचभूतरूप वृक्षके श्रेष्ठ ऊर्ध्वभाग अर्थात् ऊपरके लोकमें वर्त्तमान पैत्रादि शरीरको प्रकट करते हैं, तब (ते पिता गभे मुष्टिं अतंसयत्) तुम्हारा पिता द्युलोक पर्जन्यरूप जलमें मुट्ठीकी तुल्य संकुचित हुए जीव सम्बन्धी तेजको छोड़ता है (प्रतिलामि इति) इस प्रकार बीजप्रक्षेपसे प्रसन्न होता हूँ, ऐसा मानो ॥ २४ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः। विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु

प्रजा० ऋ० आर्षी अनु० छ० देवी दे० है। महिषीका ब्रह्मासे कथन। मन्त्रार्थ-(ते माता च ते पिता वृक्षस्य अग्रे क्रीडतः) हे ब्रह्मन्! तुम्हारा माता और तुम्हारा पिता द्यावापृथिवी जिस समय वृक्षकी समान विस्तीर्ण पञ्चभूतके ऊपर क्रीड़ा करते हैं अर्थात् पैत्र आदि शरीरमें रमण करते हैं इव विवक्षतः ते मुखं) जैसे कहने की इच्छा करनेवाले तुम्हारा मुख दीखता है (त्व बहु मा वदः) तुम बहुत मत कहो अर्थात् द्वैतभ्रममें न पड़कर ब्रह्मके एकत्व का मनन करो ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव। अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥

ऋषि छन्द पूर्ववत् लिंगोक्त दे० है। उद्गाता वावातासे कहता है। मन्त्रार्थ- (एनां ऊर्ध्वां उच्छ्रापय) हे प्रजापते! इस जीवको ऊर्ध्वलोकमें प्राप्त करो (इव गिरौ भारं हरन्) जैसे पर्वत पर भारको चढ़ाने वाला उसको ऊँचा करता है (शीते वाते पुनन्) जैसे शीतल पवनके चलने पर धान्य बोने वाला धान्यके पात्रको ऊँचा करता है अर्थात् यज्ञकर्म करने पर प्रज्ञाद्वारा ऊर्ध्वलोकगमनमें पाप दूर होकर

पुण्यवश दिव्यशरीरसम्पत्ति प्राप्त होती है (अथ अस्यै मध्यम् एधताम्) अनन्तर इसका मध्यलोक प्रतिष्ठाके द्वारा ऐश्वर्यमें हो ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव २७

ऋषि आदि पूर्ववत् । वावाता उद्गाता के प्रति । मन्त्रार्थ-(एनं ऊर्ध्वं उच्छ्रयताम्) हे प्रजापते ! इस उद्गाताको यज्ञकर्म द्वारा ऊँचा उठाओ (इव गिरौ भारं हरन्) जैसे पर्वतपर भारको चढ़ानेवाला उसको ऊँचा करता है (शीते वाते पुनन्) जैसे शीतल वायु चलनेपर धान्य बोनेवाला धान्यपात्र को ऊँचा करता है (अथ अस्य मध्यं एजतु) ऐसा होने पर इसका मध्यलोक का तेज प्रदीप्त हो ॥ २७ ॥

यदस्या अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥

प्रजापति ऋ०, भुरिगार्ची पंक्ति छ०, परिवृक्ता दे० है । होता परिवृक्ताके प्रति । मन्त्रार्थ--(यत् अस्याः अंहुभेद्याः कृधु स्थूलं उपातसत् मुष्कौ अस्याः इत् एजतः इव गोशफे शकुलौ) हे देहाभिमान ! जब इस पापीकी निवासस्थान अपराप्रकृतिका स्थूल शरीर और सूक्ष्मशरीर क्षयको प्राप्त होताहै; तब इस अपराप्रकृतिके चौर काम मोह ही मिथ्यारूप से प्रकाशित होते हैं, जैसे जलपूर्ण गोखुरमें निश्चेष्ट दो मत्स्य २८

यद्देवासो ललामगुम्प्र विष्टीमिनमाविषुः । सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥

प्रजा० ऋ०, आर्षी अ० छ०, होता दे० है । परिवृक्ता होताके प्रति । मन्त्रार्थ-(यत् देवासः विष्टीमिनं ललामगुम् प्राविषुः) जब प्राण, ज्ञानरसयुक्त ब्रह्मानन्दमय जीव को ब्रह्ममें प्रविष्ट करते हैं (नारी सक्थ्ना देदिश्यते) तब पराशक्ति विष्णुमहानारायण ब्रह्मा देवी शिवरूप से भले प्रकार दीखती है (यथा अक्षिभुवः सत्यस्य) जैसे कि प्रत्यक्ष सत्यका दर्शन होता है ॥ २९ ॥

यद्धरिणी यवमत्ति न पुष्टम्पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

प्रजा० ऋ०, नि० आर्षी अ० छ०, पालागली देवता है । क्षत्ता पालागलीसे कहता है । मन्त्रार्थ—(यत् हरिणी यवं अत्ति) जब वासनारूप हरिणी विषयरूप जौको खाती है, तब हृदयाकाशमें स्थित परमात्मा (पशुं पुष्टं न मन्यते) वासनामय संस्कार हीन पशुसमान जीवको सद्गुणों से पुष्ट नहीं मानता है (यत् शूद्रा अर्यजारा पो-

पाय न धनायते) जब द्वैतोपासक जीवकी पत्नीरूप बुद्धि, ब्रह्मभावसे रहित अन्य देवताओंकी भक्त होती है, वह मोक्षधनको दाता नहीं होती, अतः ब्रह्मभावपुरःसर अनन्य देवभक्ति करनी चाहिये ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टम्बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥३१॥

प्रजा० ऋ० आर्षी अ० छ०, क्षत्ता दे० है । पालागली क्षत्ताके प्रति । मंत्रार्थ-(यत् हरिणः यवं अत्ति बहुपुष्टं न मन्यते यत् शूद्रः अर्यायै जारः पोषं न अनुमन्यते) जब मन विषयको भोगता है तब हृदयाकाशस्थ आत्मा उसको बहुत पुष्ट नहीं मानता है, जब संस्कारहीन भेदोपासनामें तत्पर आत्मा, पूर्ण ब्रह्मको त्याग कर मायामें आसक्त होता है तब अन्तर्यामी परमात्मा उसकी पुष्टिको नहीं मानता है ॥ ३१ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्राण आयूꣳषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

दधिक्राव ऋ०, अनु० छ० अश्व दे० है । अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता, होता, क्षत्ता, यह महिषीको उठाकर पढ़ें । मन्त्रार्थ-(दधिक्राव्णः जिष्णोः वाजिनः अश्वस्य अकारिषम्) धारण कर चलते जयशील गमन-शील वेगगामी अश्वका संस्कार हमने किया (नः मुखा सुरभि करत्) मंत्र-पाठने हमारे मुखोंको सुगन्धित किया (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी बाल्यादि तीनों अवस्थाओंको बढ़ाया ॥ ३२ ॥

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पंक्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ३३

प्रजा० ऋ०, उष्णिक् छ० अश्व दे० है। इससे तथा अगले मन्त्रसे तीनों रानी ताँबा, चाँदी और सोनेकी सूचीसे अश्वके शरीर पर रेखा करें । मंत्रार्थ-(गायत्री त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप् पंक्त्या सह बृहती उष्णिहा ककुप् सूचीभिः त्वा शम्यन्तु) हे अश्व ! गायकको रक्षक गायत्री छन्द त्रि-तापरोधक त्रिष्टुप् छन्द जगत्में विस्तीर्ण जगतीछन्द संसारके दुःखका नाशक अनुष्टुप् छन्द पंक्तिसहित बृहती छन्द प्रभात-प्रियकारी उष्णिक् छन्द और अच्छे पदार्थों वाला ककुप् छन्द सूचियों द्वारा तुमको शान्त करें ॥ ३३ ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः । विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

ऋ० देवता पूर्ववत् अनु० छ० है । मन्त्रार्थ-(याः द्विपदाः चतुष्पदाः त्रिपदाः च याः षट्पदाः विच्छन्दाः च याः सूचीभिः त्वा शम्यन्तु) हे अश्व ! द्विपदा चतुष्पदा त्रिपदा जो षट्पदा और जो छन्दोलक्षण-हीन एवं छन्दोलक्षण-युक्त हैं सकल छन्द सूचियोंके द्वारा तुझको शान्त करें ॥ ३४ ॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः । मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥

ऋषि आदि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(महानाम्न्यः रेवत्यः विश्वाः आशाः प्रभूवरीः मैघीः विद्युतः वाचः त्वा शम्यन्तु) बड़े नामवाली शक्वरी ऋचा रेवत सामवाली ऋचा सम्पूर्ण दिशा सकल यज्ञकर्म मेघों की विजलियें और वेदवाणियें तुझको सूचियोंसे शान्त करें ॥ ३५ ॥

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया । देवानाम्पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(पत्न्यः नार्यः मनीषया ते लोम विचिन्वन्तु) हे अश्व ! पतिव्रता नारियें बुद्धिपूर्वक तेरे लोमोंको पृथक् करें (देवानां पत्न्यः दिशः सूचीभिः त्वा शम्यन्तु) देवताओं की पालिता पत्नीरूप दिशाएँ सूचियोंके द्वारा तुझको शान्त करें ॥ ३६ ॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्म्मभिः । अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(रजताः हरिणीः सीसाः युजः कर्मभिः युज्यन्ते) चाँदीकी सुवर्णकी सीसेकी सूची संयुक्त होकर कर्मोंमें लगती हैं (शम्यन्तीः वाजिनः अश्वस्य त्वचि सिमाः शम्यन्तु) संस्कार करती हुई वेगवान् अश्वकी त्वचामें रेखा शान्तिपूर्वक करें ॥ ३७ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वम्वियूय । इहेहैषाङ्कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

इसकी व्याख्या १० । ३२ में होगई ॥ ३८ ॥

कस्त्वाच्छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । क उ ते शमिता कविः ३९

प्रजा० ऋ०, गायत्री छ० अश्व दे० है । विशसन करें । मन्त्रार्थ-(कः त्वा आच्छ्यति) हे अश्वाभिमानी जीव ! प्रजापति तुझे छिन्न अर्थात् मायासे पृथक् करता है (कः त्वा विशास्ति) और प्रजापति तुझे आवरणरूप त्वचासे पृथक् करता है (कः ते गात्राणि शम्यति) प्रजापति तेरे भाविजन्मोंके शरीरोंको शान्त करता है (कविः कः उ ते शमिता) ज्ञानी प्रजापति तेरा शान्तिदाता है ॥ ३९ ॥

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु । संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥

प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, अश्व दे० है। मन्त्रार्थ (ऋतवः शमितारः) सत्यमयी योगशक्तियें शान्ति देती हैं (ऋतुथा सम्वत्सरस्य तेजसा शमीभिः ते पर्व विशासतु) वह समय २ पर प्रजापतिके तेजसे शांतिप्रद योगक्रियाओंके द्वारा तेरी कर्मग्रन्थि को भिन्न करें (ऋतवः त्वा शम्यन्तु) सत्यमयी योगशक्तियें तुझको शम ॥ ४० ॥

अर्धमासाः परूंषि ते मासा आच्छ्यन्तु शम्यन्तः । अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(शम्यन्तः मासाः अर्धमासाः ते परूंषि आच्छ्यन्तु) हे अश्वाभिमानी जीव शान्तिमय करतेहुए ऋत्विजोंकी योगसाधनके मास पक्ष तेरे कर्मग्रन्थियोंको छिन्न करें (अहोरात्राणि मरुतः ते विलिष्टं सूदयन्तु) दिनरात और प्राणाभिमानी देवता तेरे शन्तिप्रद कर्मोंमें की न्यूनताको पूर्ण करें ॥ ४१ ॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु । गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(दैव्याः अध्वर्यवः त्वा आच्छ्यन्तु) दिव्य शक्तियों से सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञानयज्ञके कर्त्ता अध्वर्यु तुझको देहाभिमानसे छुडावें (च विशासतु) और उपदेश दें (शम्यन्तीः माः ते गात्राणि पर्वशः सि कृण्वन्तु) संस्कार करती हुई दिव्य शक्तियें तेरे स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीरोंको सकल कर्मबन्धनोंसहित विष्णुमें लीन करें ॥ ४२ ॥

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रम्पृणातु ते । सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकङ्कृणोतु साधुया

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं ते छिद्रं पृणातु) स्वर्ग पृथिवी और अन्तरिक्ष तेरे छिद्रको पूर्ण करें (वायुः ते) वायु तेरे छिद्रको पूर्ण करे (नक्षत्रैः सह सूर्यः ते साधुया लोकम् कृणोतु) नक्षत्रों सहित सूर्यदेवता तेरे श्रेष्ठ लोकको सम्पादन करे ॥ ४३ ॥

शन्ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः । शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ४४

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(ते परेभ्यः शं अस्तु) तेरा विषयोंसे पर ज्ञानेन्द्रियोंसे सुख हो (अवरेभ्यः गात्रेभ्यः शम्) नीचेके कर चरणादिरूप कर्मेन्द्रियोंसे तेरा सुख हो (अस्थभ्यः मज्जभ्यः शम्) अस्थियोंसे मज्जाओंसे सुख हो (तव तन्वै शं उ) तेरे शरीरके निमित्त कल्याण हो हो ॥ ४४ ॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजङ्किम्वावपनम् महत् ॥ ४५ ॥

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजम्भूमिरावपनम्महत् ॥

इन दोनोंकी व्याख्या इसी अध्यायके नवम दशम मंत्रमें होगई ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

किꣳस्वित्सूर्यसमञ्ज्योतिः किꣳसमुद्रसमं सरः । किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

प्रजा० ऋ०, आर्ष्यनु० छ० प्रश्न दे० है । प्रश्न । मन्त्रार्थ-स्वित् सूर्यसमं ज्योतिः किं) कहो सूर्यकी समान ज्योति क्या है (समुद्रसमं सरः किम्) समुद्रकी समान विस्तृत सरोवर कौन है (स्वित् पृथिव्यै वर्षीयः किं) कहो पृथिवीसे महान् क्या है (कस्य मात्रा न विद्यते) किसका परिमाण नहीं है ॥ ४७ ॥

ब्रह्म सूर्यसमञ्ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः । इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्गोस्तु मात्रा न विद्यते

ऋषि देव० पूर्ववत, उत्तर दे० है । उत्तर मंत्रार्थ-(सूर्यसमं ज्योतिः ब्रह्म) सूर्यकी समान ज्योति ब्रह्म है (समुद्रसमं सरः द्यौः) समुद्रकी समान सरोवर द्युलोक है (इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्) अणिमादि ऐश्वर्यवान् इन्द्र वसुन्धरासे महान्

है (गोः तु मात्रा न विद्यते) यशोमयी गौ और वेदवाणीका परिमाण नहीं है ॥४८॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ । येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वम्भुवनमाविवेशाँ३ ॥ ४९ ॥

प्रजा ऋ०, नि० आ० त्रि० छ०, प्रश्न दे० है । ब्रह्माका प्रश्न । मंत्रार्थ-(देवसख चितये त्वा पृच्छामि) हे देवमित्र ! ज्ञानप्राप्तिके अर्थ तुमसे प्रश्न करता हूँ (अत्र यदि त्वं मनसा जगन्थ) इस प्रश्नके विषय में यदि तुम मनसे जानते हो तो बताओ (विष्णुः येषु त्रिषु पदेषु इष्टः) व्यापक परमात्मा जिन तीन पदोंमें पूजा गया (तेषु विश्वं भुवनं आविवेश) उनमें संपूर्ण संसार प्रविष्ट हुआ क्या ? ॥ ४९ ॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वम्भुवनमाविवेश सद्यः । पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनांगेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥

प्रजा० ऋ०, आ० त्रि० छ० प्राण दे० है । उद्गाताका उत्तर । मन्त्रार्थ-ईश्वरका उपदेश (अहमपि तेषु त्रिषु पदेषु अस्मि) मैं ही उन तीन पदोंमें हूँ (येषु विश्वं भुवनं आविवेश) जिनमें सकल विश्व प्रविष्ट हुआ है, (पृथिवीं उत द्यां अस्य पृष्ठं सद्यः एकेन अंगेन पर्येमि) पृथिवीको और द्युलोकको तथा इस स्वर्गके ऊपरके भागको भी क्षणमात्रमें एक ही चरणके द्वारा व्याप्त करता हूँ ॥ ५० ॥

केष्वन्तः पुरुष आविवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतद् ब्रह्मन्नुपवल्हामसि त्वा किꣳ स्विन्नः प्रतिवोचास्यत्र ॥ ५१ ॥

प्रजा० ऋ० आर्षी पं० छं०, प्रश्न दे० है । उद्गाताका प्रश्न मन्त्रार्थ (ब्रह्मन् पुरुषः केषु अन्तः आविवेश) हे ब्रह्मन् ! सकलमें व्यापक परमात्मा किन पदार्थोंके भीतर प्रविष्ट हुआ (पुरुषे अन्तः कानि अर्पितानि) पुरुषके भीतर कौन पदार्थ अर्पित हैं (एतत् त्वा उपवल्हामसि) यह तुमसे स्पर्धापूर्वक बूझता हूँ (स्वित् अत्र त्वं किं प्रतिवोचासि) कहो इस विषयमें तुम क्या कहते हो ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मिन

मायया भवस्युत्तरो मत् ॥ ५२ ॥

प्रजा० ऋ०, ब्राह्मी उष्णिक् छ०, उत्तर देवता है। ब्रह्माका उत्तर मन्त्रार्थ-(पुरुषः पञ्चसु अन्तः आविवेश) परमात्मा पाँच प्राण वा पञ्चभूत वा पञ्चतन्मात्राओंके भीतर प्रविष्ट हुआ (तानि पुरुषे अन्तः अर्पितानि) वह पुरुषमें भीतर प्रविष्ट हैं अर्थात् आत्माके बिना प्राणादिकी और प्राणादिके विना आत्माकी स्थिति नहीं हो सकती (अत्र त्वा एतत् प्रतिमन्वानः अस्मि) इस प्रश्नमें तुमको यह उत्तर प्रत्यक्ष जान कर समाधान करता हूँ (मायया मत् उत्तरः न भवसि) तू बुद्धि-शक्ति करके मुझसे अधिक नहीं होसकता

का स्विदासीत्पूर्व्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशंगिला ॥ ५३ ॥

द्यौरासीत्पूर्व्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः। अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशंगिला

इन दोनोंकी व्याख्या ११ वीं १२ वीं कण्डिकामें होगई ॥ ५३ ॥ ५३ ॥

क ईमरे पिशंगिला क ईङ्कुरुपिशंगिला। क ईमा स्कन्दमर्षति क ईम् पन्थां विसर्पति ५५

इसका प्रजा० ऋ०, आ० अनु० छ०, होता दे० है। अध्वर्यु का प्रश्न। मन्त्रार्थ-(अरे पिशंगिला का ईम्) हे होतः! रूपोंकी निगलनेवाली कौन है? (कुरु पिशिंगिला का ईम्) शब्द पूर्वक रूपोंको निगलनेवाली कौन है (का ईम् आस्कन्दं अर्षति) कौन इस उत्प्लवनगतिको चलता है (कईम् पन्थां विसर्पति) कौन मार्गमें नाना प्रकारसे चलता है ॥ ५५ ॥

अजारे पिशंगिला श्वावित्कुरुपिशंगिला। शश आस्कन्दं मर्षत्यहिः पन्थां विसर्पति ॥

प्रजा० ऋ० आर्षीपं० छ० अध्वर्यु दे० है होताका उत्तर मन्त्रार्थ-(अरे अजा पिशंगिला) हे अध्वर्यो! विद्यारूप पराशक्ति रूपों को भक्षण करने वाली है (श्वावित् कुरु पिशंगिला) देहाभिमानसे प्राप्त होने वाली अपराशक्ति कर्मकाण्डरूपको लय करती है (शशः आस्कन्दं अर्षति) शरीरमें शयन करने वाला प्राण उत्प्लवन गतिको चलता है (अहिः पन्थां विसर्पति) मध्यस्थानी जीवात्मा संसारमार्गको नानाप्रकारसे चलता है

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः । यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५७ ॥

प्रजा० ऋ० आर्षी त्रि० छ० ब्रह्माहोता दे० है । ब्रह्माहोताका संवाद । मन्त्रार्थ- (अस्य विष्ठाः कति) इस यज्ञके अन्न कितने हैं (अक्षराणि कति) वेदवचन कितने हैं (होमासः कति) हवन कितने हैं (कतिधा समिद्धः) कितने प्रकारकी समिधाओंसे अग्नि प्रज्वलित होता है (ऋतुशः कति होतारः यजन्ति) प्रत्येक ऋतुमें कितने होता यजन करते हैं (यज्ञस्य विदथा अत्र त्वा अपृच्छम्) यज्ञ के ज्ञानार्थ यहाँ तुमसे मैंने बूझा है ॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः । यज्ञस्य ते विदथा प्रब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् मन्त्रार्थ- (अस्य विष्ठाः षट्) इस यज्ञके सब अन्न षट्रस-युक्त हैं (अक्षराणि शतम्) वेदवचन सैकड़ों हैं (होमाः अशीतिः) हवन अस्सी हैं (ह समिधः तिस्रः) प्रसिद्ध समिधा तीन हैं (सप्त होतारः ऋतुशः यजन्ति) सात होता प्रत्येक ऋतुमें यजन करते हैं (यज्ञस्य वेदनेन ते ब्रवीमि) यज्ञके ज्ञानार्थ तुमसे कहता हूँ ॥ ५८ ॥

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं कश्चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ५९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ- (अस्य भुवनस्य नाभिं कः वेद) इस ब्रह्माण्डके कारणको कौन जानता है (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं कः वेद) द्युलोक भूलोक और अन्तरिक्षलोकको कौन जानता है (बृहतः सूर्यस्य जनित्रं कः वेद) महान् सूर्यके जन्मको कौन जानता है (चन्द्रमसं कः वेद) चन्द्रमाको कौन जानता है (यतोजाः उ) और यह सब जिससे उत्पन्न हुए उसको भी कौन जानता है ॥ ५९ ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्र-

मथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(अस्य भुवनस्य नाभिं अहं वेद) इस ब्रह्माण्डके कारण परब्रह्मको मैं जानता हूँ द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद) द्युलोक भूलोक और अन्तरिक्ष को ब्रह्मका विभूतिरूप जानता हूँ (बृहतः सूर्यस्य जनित्रं वेद) महान् सूर्यके उत्पत्तिकारण ब्रह्मको जानता हूँ (अथ चन्द्रमसं वेद) और चन्द्रमाको जानता हूँ (उ यतोजाः) यह सब प्रपञ्च जिससे हुआ है उस परमात्माको भी जानता हूँ ॥ ६० ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तम्पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ६१ ॥

प्रजा० ऋ०, नि० आ०, त्रि० छ०, यजमान अध्वर्यु दे० है। यजमानका प्रश्न। मन्त्रार्थ-(पृथिव्याः परं अन्तं त्वा पृच्छामि) पृथिवीके अवधिरूप अन्तको तुमसे बूझता हूँ (यत्र भुवनस्य नाभिः पृच्छामि जहाँ ब्रह्माण्डका कारण है उसको बूझता हूँ (वृष्णः अश्वस्य रेतः त्वा पृच्छामि) मनोरथ पूर्ण करने वाले प्रजापतिके सामर्थ्यको तुमसे बूझता हूँ (वाचः परमं व्योम पृच्छामि) त्रयीवाणीके उत्तरस्थानको तुमसे बूझता हूँ ॥ ६१ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ६२ ॥

प्रजा० ऋ०, ब्रा० उष्णि० छ०, यजमान अध्वर्यु दे० है। उत्तर। मन्त्रार्थ-(इयं वेदिः पृथिव्याः परः अन्तः) यह उत्तरवेदीरूप गगनमण्डल देहरूप भूमिकी अन्तिम सीमा है (अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः) यह यज्ञपुरुष ब्रह्माण्डका कारण है (वृष्णः अश्वस्य रेतः) यह मनोरथ पूर्ण करनेवाला सामर्थ्य प्रजापतिका वीर्य है (अयं सोमः अयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योम) यह सोम और यह ब्रह्मा वेदवाणीका उत्तम स्थान है ॥ ६२ ॥

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे। दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ।६३।

प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, लिंगोक्त दे०। अध्वर्यु सुवर्णमय पात्रमें महिमग्रहको ग्रहण करे। मंत्रार्थ-(ह प्रथमः सुभूः स्वयंभूः महति अर्णवे अन्तः ऋत्वियं गर्भं दधे) प्रसिद्ध है कि-सबके आदि विश्वके उत्पादक अपनी इच्छासे प्रकट होने वाले परमात्माने बड़े विस्तार वाले कल्पान्त कालके सागरमें ब्रह्माण्डरूप गर्भको स्थापन किया (यतः प्रजापतिः जातः) जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ६३ ॥

होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः। जुषताम्पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥ ६४ ॥

प्रजा० ऋ०, विराट्प्राजापत्या त्रि० छ०, प्रजा० दे० है, मन्त्रार्थ-(होता महिम्नः सोमस्य प्रजापतिं यक्षत्) होताने महान् सोमसम्बन्धी प्रजापतिका यजन किया (सोमं जुषताम्) पूजित प्रजापति सोमका सेवन करो (पिबतु) पिये (होतः यज) हे मनुष्य होतः! तुम भी यजन करो ॥६४॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६५ ॥

इसकी व्याख्या १०। २० में होगई। भाव यह है कि-हे प्रजापते! प्रजापालनादि में तुमसे अधिक निपुण कोई नहीं है, अतः तुम भी हमारी प्रार्थना पूर्ण कर सकते हो, देव! हम जिस कामनासे हवन करें वह सफल हो, आपकी कृपासे हम अपरिमित धनके स्वामी हों ॥ ६५ ॥

इति श्री शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनीय शाखाका सान्वय अनुवाद सहित त्रयोविंश अध्याय समाप्त

—०—

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः।

अश्वमेधमें २१ यूप (यज्ञस्तंभ) होते हैं, उनमें मध्यम यूपका नाम अग्निष्ठ है, उसके समीप सत्रह पशुओंको बाँधकर उनके अधिष्ठात्री देवताओंका स्मरण तथा तिन पशुओं में उन देवताओंके सम्बन्धीगुण तथा उनके चिन्होंका वर्णन करते हुए पशुविज्ञानका उपदेश किया है-

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्य-

धस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरोमौ बाह्वोः सोमापौष्णः श्यामो नाभ्यां सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥ १ ॥

प्रजापति ऋषि. भुरिक्संकृति छन्द, द्रव्य देवता है। मंत्रार्थ-(अश्वः तूपरः गोमृगः ते प्राजापत्याः) अश्व शृङ्गोत्पत्ति के समय भी शृङ्गशून्य पशु और गवय यह तीनों प्रजापति देवता वाले हैं इनको प्रजापति देवताकी प्रीतिके निमित्त बाँधता हूँ, ऐसा कहकर बाँधे, ऐसे ही आगे भी जो जिस देवताका पशु है उसका नाम लेकर बाँधे (आग्नेयः कृष्णग्रीवः पुरस्तात् ललाटे) अग्निदेवता वाले काली ग्रीवा के अजको अश्वके आगे ललाटके सन्मुख बाँधे (हन्वोः अधस्तात् सारस्वती मेषी) हनु के नीचे सरस्वती देवता वाली मेषीको बाँधे (अश्विनौ अधोरोमौ बाह्वोः) अधोभाग में जिनका देवता अश्विनीकुमार है ऐसे शुक्लवर्ण दो अज अश्वकी बाहुओंके निकट बाँधे सोमापौष्णः श्यामः नाभ्याम्) सोम और पूषा देवता सम्बन्धी और शुक्ल कृष्ण रोम वाले अजको नाभिके समीप बाँधे (श्वेतः च कृष्णः सौर्ययामौ पार्श्वयोः) श्वेत और काले पशु जिनका सम्बन्ध सूर्य और यम देवतासे है उनको अश्वके दोनों ओर बाँधे (त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योः) जिनका देवता त्वष्टा है ऐसे बहुत रोमोंको पूँछ वाले पशुको ऊरु के पीछे बाँधे (वायव्यः श्वेतः पुच्छे) वायु देवता वाले श्वेतवर्ण पशुको घोड़ेको पूँछ की ओर बाँधे (स्वपस्याय इन्द्राय वेहत् वैष्णवः वामनः) शुभकर्मा इन्द्रके निमित्त गर्भघाती विष्णुसम्बन्धी नाटेपशुको बाँधे।

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोन्यतः शितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ २ ॥

प्रजा० ऋ०, नि० संकृति छं०, द्रव्य दे० है। मंत्रार्थ-(रोहितः धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितः ते सौम्याः) सर्वरक्त धूम्रवर्णसे मिला रक्त, बेरकी समान रक्त यह तीनों पशु सोम देवता वाले हैं (बभ्रुः अरुणबभ्रुः शुकबभ्रुः ते वारुणाः) नीलेके

समान भूरे वर्णका लालभूरे रंगका और तोतेकी समान हरे तथा कपिलवर्ण पशु यह वरुण देवता वाले हैं (शितिरन्ध्रः अन्यतः शितिरन्ध्रः समन्तः शितिरन्ध्रः एते सावित्राः) मर्मस्थानमें स्वेतवर्ण, और स्थानमें स्वेतरन्ध्र वाले सब ओरसे स्वेतरन्ध्रवाले यह सविता देवता वाले हैं (शितिबाहुः अन्यतः शितिबाहुः समन्तः शितिबाहुः एते बार्हस्पत्याः) श्वेतपूर्वपद वाले, एक स्थानमें स्वेतपूर्वपद वाले सब स्वेत चरण वाले यह बृहस्पतिदेवताके हैं (पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ताः मैत्रावरुण्यः) विचित्रवर्ण बुन्दकीके शरीरवाले सूक्ष्म विचित्र बुन्दकी वाले और स्थूल विचित्र बुन्दकी वाले, यह तीनों मित्रावरुण देवतासे सम्बन्ध रखने वाले हैं ।२।

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येताः श्येताक्षोऽरुणास्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ३ ॥

प्रजा० ऋषि ज० छ० द्रव्य दे० है । मं०-(शुद्धवालः सर्वशुद्धवालः मणिशुद्धवालः ते आश्विनाः) शुद्ध केश वाला, सर्वशुद्ध केश वाला मणिकी समान स्वच्छ केशों वाला यह पशु अश्विनीकुमार देवता वाले हैं (श्येताः श्येताक्षः अरुणः ते पशुपतये रुद्राय) स्वेत स्वेत नेत्र और लालवर्ण ये पशु, पशुसमान कर्म-बद्ध जीवोंके स्वामी रुद्र-देवकी प्रीतिके निमित्त नियुक्त किये जाते हैं (कर्णाः यामाः अवलिप्ताः रौद्राः नभोरूपा पार्जन्याः) चन्द्रमाकी समान स्वेत कान वाले तीन पशु यम देवता वाले हैं गर्वीले तीन पशु रुद्रदेवता-संबन्धी हैं, आकाशकी समान नीलवर्ण तीन पशु पर्जन्य देवता वाले हैं ॥ ३ ॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः सोहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽद्धचालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ४ ॥

प्रजा० ऋ०, विराड्धृति छ०, द्रव्य दे० है । मन्त्रार्थ-(पृश्निः तिरश्चीनपृश्निः ऊर्ध्वपृश्निः ते मारुताः) चित्रवर्ण, तिरछी-रेखा युक्त ऊपर नीचेको लम्बी रेखायुक्त, यह मरुत् देवतावाले हैं (फल्गूः लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः) जो अपुष्ट-शरीर लोहितलोमवालीं, श्वेतवर्ण स्त्रीपशु हैं वह सरस्वती देवता वालीं हैं (सोहा-

कर्णः शुण्ठाकर्णः अङ्ग्यालोहकर्णः ते त्वाष्ट्राः) कानमें प्लीहा रोगवाले वा लंबकर्ण, छोटे २ कान वाले और रक्तवर्ण कान वाले यह पशु त्वष्टादेवता-सम्बन्धी हैं (कृष्णग्रीवः शितिकक्षः अञ्जिसक्थः ते ऐन्द्राग्नाः) ग्रीवामें कृष्णवर्ण लोम वाले बगलमें स्वेतवर्ण लोम वाले और ऊरु पर रेखाक्रमके रोमवाले यह पशु इंद्राग्निदेवता सम्बन्धी हैं (कृष्णाञ्जिः अल्पाञ्जिः महाञ्जिः ते उषस्याः) शरीर पर काली रेखा वाले देह पर दो चार रेखा वाले और जिनके शरीरों पर बड़ी २ रेखा हों वह पशु उषा देवता वाले हैं ॥ ४ ॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाता आदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानाम्पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

नि० बृहतीछंद, शेष पूर्ववत् मन्त्रार्थ- (शिल्पा वैश्वदेव्यः) विचित्रवर्णके पशु विश्वेदेवा देवता सम्बन्धी हैं (रोहिण्यः त्र्यवयः वाचे) रक्तवर्ण ड़ेढ़ वर्षकी अवस्था वाले वाग्देवताके निमित्त हैं (अविज्ञाताः आदित्यै) उपरोक्त लक्षणोंसे जाननेमें न आने वाले अदितिदेवताके हैं (सरूपाः धात्रे) इकरंगे धातृदेवताके निमित्त हैं (वत्सतर्यः देवानां पत्नीभ्यः) बाल छागी देवपत्नियोंकी प्रीतिके निमित्त नियुक्त हैं ५

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रयो वसूनाꣳ रोहिता रुद्राणाꣳ श्वेता अवरोकिण आदित्यानान्नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

विराड्बृहती छ०, शेष पूर्ववत्। मंत्रार्थ- (कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) काली ग्रीवा वाले तीन पशुओंका अग्नि देवता है (शितिभ्रवः वसूनां) स्वेत भौं वाले तीन पशुके देवता वसु हैं (रोहिताः रुद्राणाम्) रक्तवर्ण तीन पशुओंके देवता रुद्र हैं (श्वेताः अवरोकिणः आदित्यानाम्) श्वेतवर्ण देखने वाले तीन पशुओंके देवता आदित्य हैं (नभोरूपाः पार्जन्याः) आकाशकी समान वर्ण वाले तीन पशुओंके देवता पर्जन्य हैं ॥६॥

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रवैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा अग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

अतिजगतीछन्द शेष पूर्ववत् । मंत्रार्थ- (उन्नतः ऋषभः वामनः ते ऐन्द्रवैष्णवाः) ऊँचा पुष्ट और नाटा इन पशुओंके देवता इन्द्र विष्णु हैं (उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठः ते ऐन्द्रबार्हस्पत्याः) ऊँचा स्वेत दोनों सामनेके चरणवाला और स्वेत पीठ वाला इनके देवता इन्द्र बृहस्पति हैं (शुकरूपाः वाजिनः) शुकपक्षीकी समान वर्ण वालोंका देवता वाजी है (कल्माषाः अग्निमारुताः) कर्बुर वर्ण वालोंके देवता अग्नि वायु हैं (श्यामाः पौष्णाः) शुक्ल कृष्णवर्ण वालोंका पूषा देवता है ॥७॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यत एन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

विराट् बृहती छन्द । मंत्रार्थ- एताः ऐन्द्राग्नाः) कबरे वर्ण वालोंका इन्द्र और अग्नि देवता है (द्विरूपाः अग्नीषोमीयाः) दो वर्ण वालोंके दे० अग्नि सोम हैं वामनः अनड्वाहः आग्नावैष्णवाः) नाटे अनड्वाह नामक पशुओंके दे०अग्नि विष्णु हैं (वशाः मैत्रावरुण्यः) वन्ध्या अजाओंके दे० मित्र वरुण हैं (अन्यतः एन्यः मैत्र्यः) एक ओर कबरे अजा पशुओंका दे० मित्र है ॥ ८ ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या अविज्ञाता आदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानाम्पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

निच्यृत्पंक्ति छन्द ।-मन्त्रार्थ-(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) कृष्णग्रीवावालोंका दे० अग्नि है (बभ्रवः सौम्याः) कपिलवर्ण वालोंका दे० सोम है (श्वेताः वायव्याः) श्वेतवर्णवालोंका दे० वायु है (अविज्ञाताः अदित्यै) चिन्हविशेषसे अज्ञात पशुओंका दे० अदिति है (सरूपाः धात्रे) समानरूप वालोंका दे० धाता है (वत्सतर्यः देवानां पत्नीभ्यः) बाल अजाओंकी दे० देवपत्नी हैं ॥ ९ ॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः । शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥

निच्यृदार्षी बृहती छन्द । मंत्रार्थ- (कृष्णाः भौमाः) कृष्णवर्णवालोंका दे० भूमि है (धूम्राः आन्तरिक्षाः) धुमले वर्णवालोंका दे० अन्तरिक्ष है (बृहन्तः दिव्याः) बड़े बड़ोंका दे० स्वर्ग है (शबलाः वैद्युताः) कबरे वर्ण वालोंका दे० विद्युत् है (सिध्माः तारकाः) सिध्म रोग वालोंका दे० नक्षत्र है ॥ १० ॥

धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान्ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशंगाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

विराट् बृहती छन्द। मन्त्रार्थ-(धूम्रान् वसन्ताय आलभते) धूम्रवर्णके पशुओंको वसन्तके निमित्त नियुक्त करता है (श्वेतान् ग्रीष्माय) स्वेतवर्ण वालों को ग्रीष्मके निमित्त (कृष्णान् वर्षाभ्यः) कृष्णवर्णवालों को वर्षाके निमित्त (अरुणान् शरदे) रक्त वर्णवालोंको शरद्के निमित्त (पृषतः हेमन्ताय) अनेकों प्रकारकी बिन्दुवालोंको हेमन्तके निमित्त (पिशंगान् शिशिराय) लाली मिले कपिलवर्णवालोंको शिशिरके निमित्त नियुक्त करता है ॥ ११ ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे

भुरिगार्ची त्रि०छ०। मंत्रार्थ-(त्र्यवयः गायत्र्यै)डेढ़ वर्षवालोंको गायत्रीके निमित्त (पञ्चावयः त्रिष्टुभे) ढाईवर्ष वालोंको त्रिष्टुबभिमानी दे० के निमित्त (दित्यवाहः जगत्यै) दोवर्ष वालोंको जगतीछन्दोभिमानी दे० के निमित्त (त्रिवत्साः अनुष्टुभे) तीन वर्ष वालोंको अनुष्टुबभिमानी दे० के निमित्त (तुर्यवाहः उष्णिहे) साढ़े तीन वर्षवालोंको उष्णिक् छन्दोभिमानी दे० के निमित्त नियुक्त करता है ॥ १२ ॥

पष्ठवाहो विराज उक्षाणो बृहत्या ऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छंदसे ॥

निच्यृदनुष्टुप् छन्द। मंत्रार्थ--(पष्ठवाहः विराजे) चार वर्ष वालोंको विराट् के अभिमानी दे० के निमित्त (उक्षाणः बृहत्यै) सेचनसमर्थ तीन पशु बृहतीछंदोऽभिमानी दे० के निमित्त (ऋषभाः ककुभे) उक्षासे अधिक अवस्थावाले ३ पशु ककुबभिमानी दे०के निमित्त (अनड्वाहः पंक्त्यै) शकटवहनमें समर्थ तीन पशु अज पंक्तिछन्दोधिष्ठात्री दे० के निमित्त (धेनवः अतिच्छन्दसे) नवप्रसूता ३ अजा अतिच्छन्दोऽधिष्ठात्री देवताके निमित्त नियुक्त करता हूँ ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

भुरिगतिजगती छन्द। मन्त्रार्थ-(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) कृष्णग्रीव पशुओंका देवता अग्नि है (वभ्रवः सौम्याः) कपिलवर्णवालोंका दे० सोम है। (उपधस्ताः सावित्राः) अधः पतनशील वर्णान्तर मिश्रितोंका सविता दे० है (वत्सतर्यः सारस्वत्यः) बालछागियोंका सरस्वती दे० है (श्यामाः पौष्णाः) शुक्ल कृष्णवर्ण वालोंका पूषा दे० है। (पृश्नयः मारुताः) विचित्र वर्णवालोंका मरुत् दे० (बहुरूपाः वैश्वदेवाः) अनेक रूपवालोंके विश्वेदेवा दे० हैं (वशाः द्यावापृथिवीयाः) वन्ध्याओं का पृथिवी स्वर्ग दे० है ॥ १४ ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ।१५।

भुरिगार्षी बृहतीछन्द। मन्त्रार्थ-(संचराः उक्ताः) कृष्णग्रीव आदि १५ पशु कहे (एताः ऐन्द्राग्नाः) कर्बुर वर्ण वालोंका दे० इन्द्राग्नि है (कृष्णाः वारुणाः) कृष्णवर्णों का दे० वरुण है पृश्नयः मारुताः) दुर्बल शरीरवालोंका मरुत् दे० है (तूपराः कायाः) शृङ्गहीन पशुओंका प्रजापति दे० है ॥१५॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो वष्किहान्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

निचृत् शक्वरी छन्द। मन्त्रार्थ-(प्रथमजान् अनीकवते अग्नये आलभते) माताके प्रथमगर्भोत्पन्न पशुओंको, हविग्रहण योग्य मुख वाले अग्निके निमित्त नियुक्त करता है (सवात्यान् सान्तपनेभ्यः मरुद्भ्यः) वायुमंडलमें स्थित तीन अजोंको सान्तपन मरुद्गणोंके निमित्त (वष्किहान् गृहमेधिभ्यः वसुभ्यः) चिरकालके उत्पन्नहुओंको गृहमेधी मरुतोंके निमित्त (संसृष्टान् क्रीडिभ्यः मरुद्भ्यः) एक साथ उत्पन्नोंको क्रीड़ामें तत्पर मरुतोंके निमित्त (अनुसृष्टान् स्वतवद्भ्यः मरुद्भ्यः) अनुक्रमसे उत्पन्नोंको स्वतवान् मरुद्गणोंके निमित्त नियुक्त करता है ॥ १६ ॥

उक्तास्सञ्चरा एताः ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

भुरिग्गायत्री छन्द। मंत्रार्थ-(सञ्चराः उक्ताः) कृष्णग्रीव आदि पञ्चदश पशु कहे (एताः ऐन्द्राग्नाः) कर्बुरवर्ण वालोंके दे० इन्द्राग्नि हैं (प्राशृङ्गाः माहेन्द्राः) सुन्दर सींग वालोंका दे० महेन्द्र है (बहुरूपाः वैश्वकर्मणाः) बहुतरूपवालोंका दे० विश्वकर्मा है ॥ १७ ॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाꣳ सोमवताम्बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणाम्बर्हिषदाङ्कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानाङ्कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

भुरिगतिजगती छन्द । मंत्रार्थ-धूम्राः बभ्रुनीकाशाः सोमवतां पितृणां) कृष्णवर्ण मिले लाल वर्ण के कपिल वर्ण के पशु सोमवत् पितरोंके निमित्त नियोज्य हैं (बभ्रवः धूम्रनीकाशाः बर्हिषदां पितृणां) कपिलवर्ण धूम्रको समान वर्ण वाले पशु बर्हिषद् पितरों की प्रीतिके निमित्त नियोज्य हैं (कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः अग्निष्वात्तानां पितृणाम्) कृष्णवर्ण कपिलवर्णकेसे पशु अग्निष्वात्ता पितरोंकी प्रीतिके निमित्त हैं (पृषन्तः त्रैयम्बकाः) बिन्दुयुक्त पशुत्र्यम्बक दे० के निमित्त नियोज्य हैं ॥ १८ ॥

उक्तास्सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥ १९ ॥

आर्ची उष्णिक् छन्द । मंत्रार्थ (सञ्चराः उक्ताः) आग्नेय आदि पञ्चदश पशु कहेगए (एताः शुनासीरीयाः) कबरोंका दे० इन्द्र है (श्वेताः वायव्याः) श्वेतोंका दे० वायु है श्वेताः सौर्याः) स्वेत वर्णवालोंका दे० सूर्य । इस प्रकार अश्वसे लेकर सौर्यपर्यन्त ग्राम्यपशु २१ यूपोंमें देवताओंकी प्रीतिपूर्वक शामार्थ बाँधे ॥ १९ ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय कक्कराञ्छिशिराय विककरान् ॥ २० ॥

स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द । अब आरण्य पशुओंको कहते हैं। इक्कीस यूपोंके मध्य में २० अन्तराल होते हैं, उनमें नियुक्त करे। मन्त्रार्थ-(कपिञ्जलान्, वसन्ताय, आलभते) ३ कपिञ्जलोंको वसन्ताभिमानी देवताके अर्थ नियुक्त करे (कलविङ्कान् ग्रीष्माय) ३ चटकोंको ग्रीष्माभिमानीके अर्थ (तित्तिरीन् वर्षाभ्यः) ३ तीतरोंको वर्षाभिमानीके अर्थ (वर्त्तिकाः शरदे) ३ बत्तकोंको ग्रीष्माभिमानीके अर्थ (कक्करान् हेमन्ताय) ३ ककरोंका हेमन्ताभिमानीके अर्थ (विककरान् शिशिराय) विककरोंको शिशिराभिमानी दे० के अर्थ नियुक्त करे ॥ २० ॥

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

बृहती छन्द । मन्त्रार्थ-(शिशुमारान् समुद्राय आलभते) ३ शिशुमार जलचरों को समुद्राभिमानीके अर्थ नियुक्त करे (मण्डूकान् पर्जन्याय) ३ मण्डूकोंको पर्जन्य दे० के अर्थ (मत्स्यान् अद्भ्यः) ३ मत्स्योंको जल दे० के अर्थ (कुलीपयान् मित्राय) ३ कुलीपयोंको मित्र देवताके अर्थ (नाक्रान् वरुणाय) ३ नाक्रोंको वरुण दे० के अर्थ नियुक्त करे ॥ २१ ॥

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्मित्राय मद्गून्वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

भुरिगार्ची त्रि० छ० । मन्त्रार्थ-(हंसान् सोमाय आलभते) ३ हंसोंको सोम दे० के अर्थ नियुक्त करे (बलाकाः वायवे) बकपंतियोंको वायुके अर्थ (क्रुञ्चान् इन्द्राग्निभ्याम्) क्रञ्चोंको इन्द्र अग्नि दे० के अर्थ (मद्गून् मित्राय) ३ जलकाकोंको मित्र दे० के अर्थ (चक्रवाकान् वरुणाय) ३ चक्रवाकोंको वरुणके अर्थ नियुक्त करे २२

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्याञ्चाषानश्विभ्याम्मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥

पंक्तिछन्द । मन्त्रार्थ-(कुटरून् अग्नये) ३ कुक्कुटोंको अग्निके अर्थ (उलूकान् वनस्पतिभ्यः) ३ उलूकोंको वनस्पतियोंके अर्थ (चाषान् अग्नीषोमाभ्याम् ३ चाषोंको अग्निसोमके अर्थ (मयूरान् अश्विभ्यां) ३ मोरोंको अश्विनीकुमारोंके अर्थ (कपोतान् मित्रावरुणाभ्यां आलभते) ३ कपोतोंका मित्रावरुण दे० के अर्थ नियुक्त करे २३

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानामत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥

त्रि० ब्राह्मी उष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ-(लवान् सोमाय) लवोंको सोमके अर्थ (कौलीकान् त्वष्ट्रे) ३ कौलीकोंको त्वष्टाके अर्थ (गोषादीः देवानां पत्नीभ्यः) ३ गोषादियोंको देवपत्नियोंके अर्थ (कुलीकाः देवजामिभ्यः) ३ कुलीकाओंको देवबंधुओं के अर्थ (पारुष्णान् गृहपतये अग्नये आलभते) ३ पारुष्णोंको गृहपति अग्निके अर्थ नियुक्त करे ॥ २४ ॥

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्भासेभ्यो दात्यौहान्तसम्वत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

आर्ची उष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ-(पारावतान् अह्ने) ३ पारावतोंको दिनाभिमानी दे० के अर्थ (सीचापूः रात्र्यै) ३ सीचापूको रात्रिके अभि० दे० के अर्थ (जतूः अहोरात्रयोः सन्धिभ्यः) ३ जतूको अहोरात्र की सन्धियोंके अर्थ (दात्यूहान् मासेभ्यः) ३ नीलकण्ठोंको मासाभि० देवताके अर्थ (महतः सुपर्णान् संवत्सराय आलभते) ३ बड़े सुपर्णोंको संवत्सराभि० देवताके अर्थ नियुक्त करे ॥ २५ ॥

भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान्दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

आर्ची त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ--(आखून् भूम्यै) ३ मूषकोंको भूमिके अर्थ (पांक्त्रान् अन्तरिक्षाय) ३ पांक्त्रोंके अन्तरिक्षके अर्थ (काशान् दिवे) ३ काशोंको स्वर्गके अर्थ (नकुलान् दिग्भ्यः) ३ नकुलोंको दिशाओं के अर्थ (बभ्रुकान् अन्तरदिशाभ्यः आलभते) ३ बभ्रुकोंको कोणदिशाओंके अर्थ नियुक्त करे ।

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून्विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

नि० आर्षीबृहती छन्द । मन्त्रार्थ-(ऋश्यान् वसुभ्यः) ३ ऋश्यमृगोंका वसुओं के अर्थ (रुरून् रुद्रेभ्यः) ३ रुरुमृगोंको रुद्रोंके अर्थ (न्यंकून् आदित्येभ्यः) ३ न्यंकुमृगोंको आदित्योंके अर्थ (पृषतान विश्वेभ्यः देवेभ्यः) ३ पृषत् मृगोंको विश्वेदेवाओं के अर्थ (कुलुंगान् साध्येभ्यः आलभते) ३ कुलंगोंको साध्योंके अर्थ नियुक्त करे२७

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान्बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्रे उष्ट्रान् ॥

आर्षी बृहती छन्द मंत्रार्थ-(परस्वतः ईशानाय) ३ परस्वतमृगोंको ईशानके अर्थ (गौरान् मित्राय) ३ गौरमृगोंको मित्रके अर्थ (महिषान् वरुणाय) ३ महिषमृगों को वरुणके अर्थ (गवयान् बृहस्पतये) ३ गवयोंको बृहस्पतिके अर्थ (उष्ट्रान्

त्वष्ट्रे आलभते) ३ उष्ट्रोंको त्वष्टाके अर्थ नियुक्त करे ॥ २८ ॥

प्रजापतये पुरुषान्हस्तिन आलभते वाचे प्लुशींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गः ॥२९॥

आर्षीपंक्ति छन्द म०-(पुरुषान् हस्तिनः प्रजापतये) ३ नर हाथियोंको प्रजापतिके अर्थ (प्लुशीन् वाचे) ३ वक्रतुण्डोंको वाणी के अर्थ (मशकान् चक्षुषे) ३ मशकोंको चक्षु के अर्थ (भृङ्गाः श्रोत्राय आलभते) ३ भौरों को श्रोत्रके अर्थ नियुक्त करता है ॥ २९ ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

नि० अतिधृतिछन्द । मन्त्रार्थ-(प्रजापतये च वायवे च गोमृगाः) प्रजापति और वायु दे० के अर्थ गवय (वरुणाय आरण्यः मेषः) वरुणके अर्थ वनका मेष (यमाय कृष्णः) यमके अर्थ काला मेष (मनुष्यराजाय मर्कटः) मनुष्य राजाके अर्थ मर्कट (शार्दूलाय रोहित्) शार्दूलके अर्थ रोहित् (ऋषभाय गवयी) ऋषभके अर्थ गवयी (क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिकाः) शीघ्रगामी श्येनाधिष्ठात्री देवताको वर्त्तिका (नीलङ्गोः कृमिः) नीलङ्गवके अर्थ क्षुद्रकीट (समुद्राय शिशुमारः) समुद्रके अर्थ शिशुमार (हिमवते हस्ती) हिमवान् दे०के अर्थ हस्ती नियुक्त करे ॥ ३० ॥

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविंको लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

विराट् त्रिष्टुप्छन्द । मन्त्रार्थ-(मयुः प्राजापत्यः) तुरङ्गवदन किन्नर प्रजापति देवतासम्बन्धी है (उलः हलिक्ष्णः वृषदंशः ते धात्रे) उलमृग हलिक्ष्ण सिंह और बिडाल यह धाताके अर्थ (कंकः दिशाम्) बक दिशाओंके निमित्त (धुङ्क्षा आग्नेयी) धुंक्ष अग्नि दे०के निमित्त(कलविंकः लोहिताहिः पुष्करसादः ते त्वष्ट्राः) चटक लाल सर्प और कमलभक्षी पक्षी यह त्वष्टा दे० के अर्थ (क्रुञ्चः वाचे) क्रुञ्चका वाग्दे० के अर्थ नियुक्त करे ॥ ३१ ॥

सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥

भुरिग्जगती छन्द मन्त्रार्थ-(सोमाय कुलुङ्गः) सोमके अर्थ कुलङ्ग हरिण (आरण्यः अजः नकुलः शका ते पौष्णाः) वनका छाग, नकुल शकुन्ती यह पूषा देवता सम्बन्धी हैं (क्रोष्टा मायोः) शृगाल मायुदेवतासम्बन्धी है (गौरमृगः इन्द्रस्य) गौरमृग इन्द्रका है (न्यंकुः पिद्वः कक्कटः ते अनुमत्यै) न्यंकु पिद्व और कक्कट यह मृग अनुमती देवीके अर्थ हैं (चक्रवाकः प्रतिश्रुत्कायै) चक्रवाक प्रतिश्रुत्क देवके अर्थ नियुक्त करे ॥ ३२ ॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

भुरिगतिजगती छन्द । मन्त्रार्थ- (बलाका सौरी) बलाका सूर्य देवता वाली है (शार्गः सृजयः शयाण्डकः ते मैत्राः) शार्ग सृजय शयाण्डक यह पक्षी मित्रदेवता वाले हैं (पुरुषवाक् शारिः सरस्वत्यै) पुरुषके समान बोलनेवाली मैना सरस्वती के अर्थ (श्वाविद् भौमी) सेही भूमि दे० सम्बन्धी (शार्दूलः वृकः पृदाकुः ते मन्यवे) व्याघ्र, चीता, सर्प यह मन्यु दे० के अर्थ (पुरुषवाक् शुकः सरस्वते, पुरुषकी समान बोलता तोता समुद्रके अर्थ नियुक्त करे ॥

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपत्ये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

स्वराट् शक्वरी छन्द । मन्त्रार्थ- (सुपर्णः पार्जन्यः) सुपर्ण पर्जन्य दे० के अर्थ (आतिः वाहसः दर्विदा ते वायवे) आति वाहस कठकुटा यह पक्षी वायुके अर्थ (पैंगराजः वाचस्पतये बृहस्पतये) पैंगराज पक्षी वाणीके स्वामी बृहस्पतिके अर्थ (अलजः आन्तरिक्षः) अलज अन्तरिक्षके अर्थ (प्लवः मद्गुः मत्स्यः ते नदीपतये) प्लव कारंडव मत्स्य यह समुद्रके अर्थ (कूर्मः द्यावापृथिवीयः) कच्छप भूमि स्वर्गके अर्थ है ॥ ३४ ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाङ्कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

नि० शक्वरी छन्द । मन्त्रार्थ– पुरुषमृगः चन्द्रमसः) पुरुषमृग चन्द्रमासंबंधी (गोधा कालका दार्वाघाटः ते वनस्पतीनाम्) गोधा कालका सारस यह वनस्पति दे० सम्बन्धी हैं (कृकवाकुः सावित्रः) ताम्रचूड सविता देवता वाला है (हंसः वातस्य) हंस वायु दे० का है (नाक्रः मकरः कुलीपयः ते अकूपारस्य) नाका मगर कुलीपय यह समुद्र के हैं (शल्यकः ह्रियै) सेही ह्री दे० के अर्थ नियुक्त करे ॥ ३५ ॥

एणयह्रो मण्डको मूषिका तिलिरिस्ते सर्पाणांल्लोपाश आश्विनः कृष्णो राज्या ऽऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानाञ्जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

नि० जगती छन्द । मन्त्रार्थ–(एणी अह्रः) मृगी अह्री दे० की (मण्डूकः मूषिका तिलिरिः ते सर्पाणाम्) मण्डूक मूषक तीतर यह सर्पोंके (लोपाशः आश्विनः) लोपाश अश्विनीकुमारका (कृष्णः राज्यै) कृष्णमृग रात्रिके अर्थ (ऋक्षः जतूः सुषिलीकः ते इतरजनानाम्) भल्लूक जतू सुषिलीका यह इतर जन देवताओंके हैं (जहका वैष्णवी) जहका विष्णु दे० के अर्थ नियुक्त करे ॥ ३६ ॥

अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासां कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसाम्मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

भुरिग्जगती छन्द । मंत्रार्थ–(अन्यवापः अर्धमासानाम्) कोकिल पक्षोंका (ऋष्यः मयूरः सुपर्णः ते गन्धर्वाणाम्) ऋष्य मृग मोर सुपर्ण यह गन्धर्वोंके (उद्रः अपाम्) कर्कट जल दे० का (कश्यपः मासाम्) कच्छप मासदे० का (रोहित् कुण्डणाची गोलत्तिका ते अप्सरसाम्) रोहित वनचरी गोलत्तिका यह अप्सराओं के (असितः मृत्यवे) कृष्णपशु मृत्यु दे० के अर्थ नियुक्त करे ॥ ३७ ॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्यालस्ते पितॄणाम्बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

विराडतिजगती छन्द । मन्त्रार्थ-(वर्षाभूः ऋतूनां) मेघकी ऋतुओंका (आखुः कशः मान्थालः ते पितॄणाम्) मूषक कश मान्थाल यह पितरोंके (अजगरः बलाय) अजगर बलके अर्थ (कापिञ्जलः वसूनाम्) कपिञ्जल वसुदेवताओंका (कपोतः उलूकः शशः ते निर्ऋत्यै) कपोत, उलूक शश यह निर्ऋतिके अर्थ (आरण्यः मेषः वरुणाय) वनका मेष वरुणके अर्थ नियुक्त करे ।३८।

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्बाध्रीनसस्ते मत्या ऽअरण्याय सृमरो रुरु रौद्रः कवियः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द मंत्रार्थ-(श्वित्रः आदित्यानाम्) चितकबरा मृग आदित्यदे० का (उष्ट्रः घृणिवान् बाध्रीनसः ते मत्यै) ऊँट बील कंठ नं स्तनवाला यह मति दे० के अर्थ (सृमरः अरण्याय) गवय अरण्य के अर्थ रुरुः रौद्रः) रुरु रुद्र देवताओंका (कवियः कुटरुः दात्यौहः ते वाजिनाम्) कवि मुरगा कालकंठ यह वाजी दे० के (पिकः कामाय) काकिल कामके अर्थ नियोज्य है ॥ ३९ ॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिष्टका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषान्देवानाम्पृषतः ॥ ४० ॥

शक्वरी छन्द । मन्त्रार्थ-खड्गः वैश्वदेवः) गैंडा विश्वेदेवोंका (कृष्णः श्वा कर्णः गर्दभः तरक्षुः ते रक्षसाम्) काला कुत्ता लंबकान वाला गधा व्याघ्र यह राक्षसोंके सम्बन्धी हैं (सूकरः इन्द्राय) सूकर इन्द्रके अर्थ (सिंहः मारुतः) सिंह मरुत् दे० सम्बन्धी (कृकलासः पिष्टका शकुनिः ते शरव्यायै) सरट पिष्टका शकुनि यह शरव्याके अर्थ (पृषतः विश्वेषां देवानाम्) पृषत् मृग विश्वेदेवोंके अर्थ नियुक्त करे ॥ ४० ॥

शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका चतुर्विंश अध्याय समाप्त

—०—

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

आगे लिखे नौ मन्त्रोंसे देवताओंका अंश अर्पण करे और घृतसे हवन करता जाय, क्योंकि शतपथ १ । ३ । ५२ मे लिखा है कि-आज्यमवदानानि कृत्वा प्रत्याख्यायं देवताभ्य

आहुतीर्जुहोति, अर्थात् घृतके भागोंको मानो अश्वके अंग कल्पना करके उन अंगोंका नाम लेकर आहुति देता है। यह आगेके नौ मन्त्र ब्राह्मणभाग हैं अतः इनका विनियोग नहीं है।

शादन्दद्भिरवकान्दन्तमूलैर्मृदम्बस्वैस्तेगान्दष्ट्राभ्याꣳसरस्वत्या अग्रजिह्वꣳजिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजꣳ हनुभ्यामप आस्येन वृषणमण्डाभ्यामादित्याँश्मश्रुभिः पथानम्भ्रूभ्यान्द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतङ्कनीनकाभ्याꣳ शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ-(दद्भिः शादम्) दाँतोंसे शाद नामक महाकालको प्रसन्न करता हूँ (दन्तमूलैः अवकाम्) दन्तमूलोंसे अवका नामक महाकालीको प्रस० (बस्वैः मृदम्) दन्तपीठोंसे अपराप्रकृति मृदको (दंष्ट्राभ्यां तेगाम्) दाढोंसे पराप्रकृति तेगाको अथवा हे प्रजापते! (ते गाम्) तेरी वाणीको (अग्रजिह्वम् सरस्वत्य) जिह्वाग्रको सरस्वतीके अर्थ (जिह्वायाः उत्सादम्) जिह्वासे प्रलयाग्निके अधिष्ठात्री उत्साद देवताको (तालु अवक्रन्देन) तालुको जलदेवता अवक्रन्दसे युक्त करता हूँ (हनुभ्यां वाजम्) हनुअंगोंसे अन्नाधिष्ठात्री देवताको (आस्येन अपः) मुख करके अप् देवताको (आण्डाभ्यां वृषणं) वृषणोंसे कामनादाता दे० को (श्मश्रुभिः आदित्यान्) मुख परके केशोंसे आदित्योंको (भ्रूभ्यां पन्थानम्) दोनों भौंसे देवयानमार्गके अधिष्ठात्री दे० को (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) पलकोंसे पृथिवी स्वर्गको (कनीनकाभ्यां विद्युतं) नेत्रकी पुतलियोंसे विद्युत् दे०को प्रसन्न करता हूँ (शुक्लाय स्वाहा) सत्त्वगुणमय विष्णुदेवके अर्थ श्रेष्ठ होम हो (कृष्णाय स्वाहा) तमोगुणमय रुद्र दे० के निमित्त श्रेष्ठ होम हो (पक्ष्माणि पार्याणि) नेत्रोंके पलकोंका देवता पार है (इक्षवः अवार्याणि) नीचेके पलक अवार देवता संबंधी हैं ॥ १ ॥

वातम्प्राणेनापानेन नासिके उपयामधरेणोष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यन्निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुन्निर्बाधेनाशनिम्मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्याङ्कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रꣳ श्रोत्राभ्याङ्कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तम्मन्याभिरदितिꣳ

शीर्ष्णा निर्ऋतिन्निर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान्रेष्माणꣳ स्तुपेन ॥ २ ॥

मंत्रार्थ-(प्राणेन वातं)प्राणसे वायुको(अपानेन नासिके) प्राणनिरोधसे विराट् पुरुष की नासिकाके छिद्रोंको (अधरेण ओष्ठेन उपयामं) नीचेके ओठसे उपयाम दे० को (उत्तरेण सत्)ऊपरके ओठसे सत् देवता को (प्रकाशेन अन्तरम्) ऊपरकी शारीरिक कान्तिसे अन्तर दे०को (अनूकाशेन बाह्यम्) नीचेके शरीरकी कांतिसे बाह्य दे०को(मूर्ध्ना निवेष्यम्) मस्तकसे प्रवेशयोग्य व्यापक परमात्माको (निर्बाधेन स्तनयित्नुम्) शिरकी अस्थिमें लगे मज्जाभागसे स्तनयित्नु दे०को (मस्तिष्केण अशनिं) शिरमें स्थित जर्जरमांसभागसे अशनिदे० को (कनीनकाभ्यां विद्युतं) आंखोंकी पुतलियोंसे ब्रह्मशक्ति विद्युत्को (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) कानोंसे समष्टिश्रोत्र दे० को (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) श्रोत्रेन्द्रियोंसे समष्टिकर्णोंको (अधरकण्ठेन तेदनीं) कण्ठके अधोभागसे तेदनी दे०को (शुष्ककण्ठेन अपः) निर्मांसकण्ठसे जल देवता को (मन्याभिः चित्तम्) ग्रीवाकी पिछली नाड़ियोंसे समष्टिचित्तको (शीर्ष्णा अदितिं शिरसे अदितिको (निर्जल्पेन शीर्ष्णा निर्ऋतिं) अतिजर्जरित शिरोभाग से मृत्युभार्याको (संक्रोशैः प्राणान्) शब्दयुक्त अंगोंसे प्राणोंको (स्तुपेन रेष्माणं) शिखारूप ऊँचे अंगसे अनाहतशब्दमयी ब्रह्मज्योतिको तृप्त करता हूँ ॥ २ ॥

मशकान्केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिं शकुनिसादेन कूर्माञ्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवञ्जंघाभ्यामध्वानम्बाहुभ्याञ्जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्याम्पूषणन्दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳरुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

मन्त्रार्थ-(केशैः मशकान्) केशोंसे मशक वा गगनमेघोंको (स्वपसा वहेन इन्द्रम्) शुभकर्मकर्ता स्कन्धके द्वारा इन्द्र को (शकुनिसादेन बृहस्पतिं) पक्षिसमान गमनवाले जीवात्माके आचरणसे बृहस्पति को (शफैः कूर्मान् शफोंसे कूर्मदेवताओंको (स्थूराभ्यां आक्रमणं) गुल्फोंसे आक्रमण को (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) गुल्फके नीचे की नाड़ियोंसे कपिञ्जलोंको (जंघाभ्यां जवं) जंघाओंसे वेगके दे०को (बाहुभ्यां अध्वानं) भुजाओंसे मार्गके दे०को (जांबीलेन आरण्यम्) जंबीर फलाकार जानुके मध्यभागसे आरण्यके दे०को (अतिरुग्भ्याम् अग्निं) अति शोभित जानुओंसे अग्निको (दोर्भ्यां पूष्णं) दोनों करसे पूषा को (अंशाभ्यां अश्विनौ) कंधोंसे अश्विनीकुमारोंको (रोराभ्यां रुद्रम्) कंधोंकी गांठोंसे रुद्रदेवताको तृप्त करता हूँ ॥ ३ ॥

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

मंत्रार्थ-(पक्षतिः अग्नेः) दक्षिणपार्श्वकी अस्थि अग्नि देवताकी (निपक्षतिः वायोः) दक्षिणपार्श्वकी दूसरी अस्थि वायुकी (तृतीया इन्द्रस्य) तीसरी इन्द्रकी (चतुर्थी सोमस्य) चौथी सोमकी (पञ्चमी अदित्यै) पाँचवीं अदितिके अर्थ (षष्ठी इन्द्राण्याः) छठी इन्द्राणीकी (सप्तमी मरुताम्) सातवीं मरुत्देवताओंकी(अष्टमी बृहस्पतेः) आठवीं बृहस्पतिकी (नवमी अर्यम्णः) नौमी अर्यमाकी (दशमी धातुः) दशवींधाताकी (एकादशी इन्द्रस्य) ग्यारहवीं इन्द्रकी (द्वादशी वरुणस्य) बारहवीं वरुणकी (त्रयोदशी यमस्य) तेरहवीं यमकी है ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपाञ्चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाꣳ सप्तमो विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणम्पार्श्वं विश्वेषान्देवानामुत्तरम् ॥ ५

मंत्रार्थ-(पक्षतिः इन्द्राग्न्योः) वामपार्श्वकी अस्थि इन्द्राग्निकी है (निपक्षतिः सरस्वत्यै) दूसरी सरस्वतीके अर्थ (तृतीया मित्रस्य) तीसरी मित्र देवताकी (चतुर्थी अपाम्) चौथी जल देवताओंकी (पञ्चमी निर्ऋत्यै) पाँचवीं निर्ऋतिकी (षष्ठी अग्नीषोमयोः) छटी अग्नि और सोमकी (सप्तमी सर्पाणाम्) सातवीं सर्पोंकी (अष्टमी विष्णोः) आठवीं विष्णुकी (नवमी पूष्णः) नौमी पूषाकी (दशमी त्वष्टुः)दशवीं त्वष्टाकी(एकादशी इन्द्रस्य)ग्यारहवीं इन्द्रकी (द्वादशी वरुणस्य) बारहवीं वरुणकी (त्रयोदशी यम्यै , तेरहवीं यमके निमित्त (दक्षिणं पार्श्वं द्यावापृथिव्योः) दहना पार्श्व द्यावापृथिवीका (उत्तरं विश्वेषां देवानां) वामपार्श्व सकल देवताओंका है

मरुताꣳ स्कन्धा विश्वेषान्देवानाम्प्रथमा कीकसा रुद्राणान्द्वितीयादित्यानान्तृतीया

वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती उरुभ्यामित्रावरुणा-

वल्गाभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्याम्बलङ्कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ-(स्कन्धाः मरुतां) कन्धे मरुत् देवताओंके (प्रथमा कीकसा विश्वेषां देवानां) पहिली पीठेपरकी अस्थि विश्वेदेवाओंकी (द्वितीया रुद्राणां) दूसरी रुद्रों की (तृतीया आदित्यानां) तीसरी आदित्यों की (पुच्छं वायोः) पुच्छ वायुकी (भासदौ अग्नीषोमयोः) दोनों नितम्ब अग्नि सोम देवताके (श्रोणिभ्यां क्रुञ्चौ) कटिप्रदेशों से क्रुंच देवताओंको (ऊरुभ्यां इन्द्राबृहस्पती) ऊरुसे इन्द्र बृहस्पतिको (अल्गाभ्यां) मित्रावरुणौ) जंघाओंसे मित्रावरुणको (स्थूराभ्यां आक्रमणं) स्थूलनितम्बोंके अधोभागसे आक्रमण देवताको (कुष्ठाभ्यां बलम्) नितम्बके दोनों आवर्त्तोंसे बलदेवताको प्रसन्न करता हूँ ॥ ६ ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषण-

माण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान्पित्तेन प्रदरान्पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः

मन्त्रार्थ-(वनिष्ठुना पूषणम्) स्थूलान्त्र के स्थानीभूत घृतसे पूषा देवताको तृप्त करता हूँ (स्थूलगुदया अन्धाहीन्) स्थूलगुदानिमित्तक घृतसे अन्धे सर्पों को (गुदाभिः सर्पान्) अन्यगुदाभागनिमित्तक घृतसे सर्पोंको (आन्त्रैः विह्रुतः)अन्त्र निमित्तक घृतसे विह्रुतदेवको (वस्तिना अपः) वस्तिसे जल देवताको (आण्डाभ्यां वृषणम्)वृषणोंसे कामनावर्षी वृषणदेवको (शेपेन वाजिनं) मेढ्रसे वाजीको (रेतसा प्रजां) वीर्यसे प्रजाको (पित्तेन चाषान्) पित्तसे चाषको (पायुना प्रदरान्) पायुसे प्रदरको (शकपिण्डैः कूष्मान्) लीदके पिण्डोंसे कूष्मोंको प्रसन्न करता हूँ ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यन्दिशाञ्जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरि-

क्षम्पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यान्दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिरुप-

लान्प्लीहा वल्मीकान्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान्हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान्कुक्षिभ्याꣳ समुद्रमु-

दरेण वैश्वानरम्भस्मना ॥ ८ ॥

मन्त्रार्थ (क्रोडः इन्द्रस्य) वक्षःस्थल का मध्यभाग इन्द्रका (पाजस्य अदित्यै) बलकारक अन्न अदितिका (जत्रवः दिशाम्) कन्धे और कोखोंकी सन्धि दिग्देवताओं की (भसत् अदित्यै) मेढ़का अग्र अदितिका (हृदयोपशेन जीमूतान्) हृदयस्थ मांससे मेघोंको (पुरीतता अंतरिक्षं) हृदयाच्छादक अन्नसे अन्तरिक्षको (उदर्येण नभः) उदरस्थ मांससे आकाशको (मतस्नाभ्यां चक्रवाकौ) हृदयकी दोनों ओरकी अस्थि से चक्रवाकोंको (वृक्काभ्यां दिवं) कुक्षिस्थमांस निमित्त घृतसे दिवदेवता को (प्लाशिभिः गिरीन्) मेढ़मूलकी नाड़ियों से पर्वताधिष्ठात्री देवताओं को (प्लीह्ना उपलान्) फुप्फुस से उपलदेवताओं को (क्लोमभिः वल्मीकान्) गलनाडीसे बल्मीकों को (प्लीभिः गुल्मान्) हृदयकी नाडियोंसे गुल्मोंको (हिराभिः स्रवन्तीः) अन्नवाहिनी नाडियोंसे स्रवन्तियोंको (कुक्षिभ्यां ह्रदान्) कोखोंसे ह्रदोंको (उदरेण समुद्रं) उदरसे समुद्रको (भस्मना वैश्वानरम्) भस्मसे वैश्वानरको प्रसन्न करता हूँ ॥ ८ ॥

विधृतिन्नाभ्या घृत ँ रसेनापो पूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षा ँसि चित्राण्यंगैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीन्त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

मंत्रार्थ-(नाभ्या विधृतिं) नाभिसे विधृतिको(रसेन घृतं)वीर्यसे घृतको(पूष्णा अपः) पक्वान्नरस से जलको (विप्रुड्भिः मरीचीः) वसाविन्दुओं से मरीचियों को (ऊष्मणा नीहारं) शरीरकी उष्णतासे नीहार को (वसया शीनं) वसासे शीनको(अश्रुभिः प्रुष्वाः) अश्रुओंसे प्रुष्वादेवताको(दूषीकाभिः ह्रादिनीः) नेत्रमलोंसे ह्रादनीदेवताओं को (अस्ना रक्षांसि) रुधिरसे राक्षसोंको (अङ्गैः चित्राणि) शेष अङ्गोंसे चित्र देवताओंको (रूपेण नक्षत्राणि) रूपसे नक्षत्रों को (त्वचा पृथिवीं) त्वचासे पृथ्वीको तृप्त करता हूँ यहाँ तकके मंत्रोंको चतुर्थ्यन्त बोलकर घृतसे हवनकरै, अगले ब्रह्महत्यानाशक मंत्रको पढकर जलमें घृतकी आहुति देय (जुम्बकाय स्वाहा) वरुणदेवताको दी हुई यह आहुति भलेप्रकार गृहीत हो हारीतऋषिने कहा है कि-'जुम्बकानाम गायत्री वेदे वाजसनेयके अन्तर्जले सकृज्जप्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति।' वाजसनेयवेदमें यह जुम्बुकानाम गायत्री है जलके भीतर एक बारभी जपनेपर ब्रह्महत्याको दूर करती है ॥ यज्ञीय अश्वके सब अंग देवताओंका भाग है और यज्ञीय अश्वदिव्यगुणयुक्त

होजानेसे सकल देवताओंको प्रसन्न कर सकता है अतः प्रत्येक अंगका नाम लेकर घृतकी आहुति देनेपर उसके फलसे देवता प्रसन्न और तृप्त होतेहैं। इस अश्वमेध का यह भी अभिप्राय है कि-अश्वका अधिष्ठात्री देवता प्रजापति है वा अश्व ही प्रजापति है उसके विराट्शरीरमेंके उपरोक्त सकल अंग और अवयवोंसे सकल देवताओंकी तृप्ति और पुष्टि होती है, यह अभिप्राय कल्पित नहीं है, किन्तु बृहदारण्यक उपनिषद्के प्रारम्भमें ही अश्वमेध का ऐसा अभिप्राय दिखाया है ॥ ९ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥

इसकी व्याख्या २३। १ में होगई १०

यः प्राणतो निमेषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११ ॥

इसकी व्याख्या २३। ३ में होगई ११

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

हिरण्यगर्भ ऋ०, त्रिष्टुप् छन्द, प्रजा० देवता है। मन्त्रार्थ-(इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः) यह शिखर वाले पर्वत जिसकी महिमाको कहते हैं (रसया सह समुद्रं यस्य) पृथिवीसहित समुद्रको जिस की महिमा कहाहै (इमाः प्रदिशः यस्य) यह सब दिशाएं जिसकी महिमाको कहतो हैं (यस्य बाहू) जिसकी भुजा जगत्की रक्षक हैं (कस्मै देवाय हविष आविधेम) उस अनिर्वचनीय प्रजापतिके अर्थ हवि अर्पण करते हैं ॥ १२ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(यः आत्मदाः) जो परमात्मा भक्तोंको सायुज्य देता है अचेतन शरीरमें आत्मसंचार करता है (बलदाः) बल देता है (विश्वे यस्य) सब जिसके शासनमें हैं (देवाः यस्य प्राशिषं उपासते) देवता जिसके अनुग्रहको चाहते हैं वा सूर्यादि देवता जिसके शासनके आधीन हैं (यस्य छाया अमृतम्) जिसकी छाया अमृत-मुक्ति है (यस्य मृत्युः) जिसका न जानना मृत्यु कहिये जन्ममरण का कारण है (कस्मै देवाय हविष आविधेम) उस प्रजापति देवके अर्थ हवि अर्पण करते हैं ॥ १३ ॥

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १४ ॥

गौतमऋ०, जगती छ०, विश्वेदेवा देवता है मन्त्रार्थ-(विश्वतः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः भद्राः क्रतवः नः आयन्तु) सब ओरसे निर्विघ्न अज्ञात दूसरे यज्ञोंको प्रकट करनेवाले कल्याणकारीयज्ञ हमको प्राप्त हों (यथा अप्रायुवः दिवे दिवे रक्षितारः देवाः सदमित् नः वृधे असन्) जिस प्रकार आलस्यरहित प्रतिदिन रक्षा करने वाले देवता सदैव हमारी वृद्धिके निमित्त प्रवृत्त हों ॥ १४ ॥

देवानाम्भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवाना ५ रातिरभि नो निवर्तताम् । देवानां ५ सख्यमुपसेदिमा वयन्देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ १५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(ऋजूयतां देवानां भद्रा सुमतिः नः अभिनिवर्त्तताम्) यजमानकी इच्छावाले देवताओं की कल्याणकारिणी श्रेष्ठ बुद्धि हमारे सन्मुख हो (देवानां रातिः) देवताओंका दान हमको प्राप्त हो (वयं देवानां सख्यं उपसेदिम) हम देवताओंकी मित्रताको पावें (देवाः नः आयुः जीवसे प्रतिरन्तु) देवता हमारी आयुको जीवनके निमित्त बढ़ावें ॥ १५ ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयम्भगम्मित्रमदितिन्दक्षमस्रिधम् । अर्यमणं वरुण ७ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(वयं पूर्वया निविदा अस्मिन्नं भगं मित्रं अदितिं दक्षं अर्यमणं वरुणं सोमं अश्विना तान् हूमहे) हम देवरूप सनातन वाणीके द्वारा अच्युतरूप भग मित्र अदिति प्रजापति अर्यमा वरुण चन्द्रमा अश्विनीकुमार इन सबको आह्वान करते हैं (सुभगा सरस्वती नः मयः करत्) ऐश्वर्यमयी सरस्वती महावाक् हमारे सुखको करै ॥ १६ ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजन्तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(वातः नः तत् मयोभु भेषजं वातु) वायुदेवता हमको वह सुखकारी औषध प्राप्त करैं (माता पृथिवी तत्) माता पृथिवी उसको ही देय (पिता द्यौः तत्) पिता स्वर्ग उसको देय (सोमसुतः मयोभुवः ग्रावाणः तत्) सोम का अभिषव करनेवाले सुखदाता ग्रावा उस औषधरूप अदृष्टको प्रकटकरैं(अश्विना धिष्ण्या युवं यत् शृणुतं) हे अश्विनी कुमार सर्वाधार तुम दोनों उस हमारी प्रार्थनाको सुनो ॥ १७ ॥

तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षितापायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(वयम् तं जगतः तस्थुषः पतिं धियञ्जिन्वं ईशानं अवसे हूमहे) हम उस जंगम स्थावरके स्वामी बुद्धिको सन्तोष देनेवाले रुद्रदेवको रक्षाके अर्थ आह्वान करते हैं (यथा वेदसां रक्षिता पायुः अदब्धः पूषा नः वृधे स्वस्तये असत्) जिसप्रकार वैदिकज्ञान व धनकी रक्षा करनेवाले पुत्रादिके पालक अविनाशी पुष्टिकर्त्ता देवता हमारी वृद्धि और कल्याणके निमित्त हों ॥ १८ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १९ ॥

गोतम ऋ० विराट्स्थाना त्रिप० छ० विश्वेदेवा देवता है । मन्त्रार्थ-(वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति दधातु महती कीर्त्तिवाला ऐश्वर्यशाली इन्द्र हमारा कल्याण करै

(विश्वेवेदाः पूषा नः स्वस्ति) सर्वज्ञ सब के पोषणकर्त्ता सूर्य हमारा कल्याण करें (अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति) जिनकी चक्रधाराकी समान गतिको कोई नहीं रोक सकता वह गरुड़जी हमारा कल्याण करें (बृहस्पतिः नः स्वस्ति) वेदवाणीके स्वामी बृहस्पति हमारा कल्याण करें ॥ १९ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ २० ॥

गोतम ऋ०, जगती छ०, मरुत् दे० हे मन्त्रार्थ- पृषदश्वाः पृश्निमातरः शुभंयावानः विदथेषु जग्मयः अग्निजिह्वाः मनवः सूरचक्षसः मरुतः विश्वेदेवाः अवसा नः इह आगमन्) सबल विचित्रवर्णके घोड़ोंवाले अदितिमातासे उत्पन्न कल्याण करनेवाले यज्ञशालाओंमें जानेवाला अग्नि रूप मुखवाले सर्व सूर्यरूप नेत्रवाले मरुत् सब देवता हविरूप अन्नके अर्थ हमारे इस यज्ञमें आओ ॥ २० ॥

भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ९ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

गोतम ऋ०, त्रि० छ०, विश्वेदेवा दे० है । मन्त्रार्थ-(यजत्राः देवाः स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः कर्णेभिः भद्रं शृणुयामः) हे यजमानके रक्षक देवताओं हम दृढ़अंगों वा शरीर पुत्रादिसहित आपकी स्तुति करते हुए कानोंसे कल्याणोंको सुनें (अक्षभिः भद्रं पश्येम) नेत्रोंसे कल्याणको देखें (यत् देवहितं आयुः व्यशेमहि) देवताओं-की उपासनायोग्य आयुको पावें ॥ २१ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ २२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(देवाः शतं शरदः इत् अन्ति) हे देवताओं ! सौ वर्ष पूर्णआयु पर्यन्त हमारे समीप होओ (यत्र उ नः तनूनां जरसं चक्रा) जिस आयु में हमारे शरीरोंकी जरा अवस्थाको प्राप्त कराओ (यत्र नः पुत्रासः पितरः भवन्ति) जिस आयुमें हमारे पुत्र पिता अर्थात् पुत्र-वान् हों(गन्तोः आयुः मध्या मा रीरिषत्) हमारा गमनशील आयु मध्यमें खण्डित न हो ॥ २२ ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ २३ ॥

गोतम ऋ०, त्रि० छ०, अदिति दे० मन्त्रार्थ-(अदितिः द्यौः) अखण्डित पराशक्ति स्वर्ग है (अदितिः अन्तरिक्षं) पराशक्ति अन्तरिक्षरूप है (अदितिः माता) पराशक्ति माता है (सः पिता) वह पिता (सः पुत्रः) वह पुत्र (अदितिः) पराशक्ति है (विश्वेदेवाः अदितिः) सकल देवता पराशक्ति है (पञ्चजनाः अदितिः) अन्त्यज और चारोंवर्ण ऐसे सकल मनुष्य पराशक्ति है (जातं जनित्वम् अदितिः) जो उत्पन्न हो चुका और जो उत्पन्न होगा सब पराशक्ति ही है ॥ २३ ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ २४ ॥

दीर्घतमा ऋ०, त्रि० छ०, अश्व दे० है। मन्त्रार्थ—(विदथे देवजातस्य सप्तेः वाजिनः वीर्याणि यत् प्रवक्ष्यामः) यज्ञमें सूर्यसे उत्पन्न देवताओंके सम्बन्धी अश्व के चरित्रोंका जो हम वर्णन करेंगे (मित्रः वरुणः अर्यमा आयुः इन्द्रः ऋभुक्षाः मरुतः नः मा परिख्यन्) मित्र वरुण सूर्य वायु इन्द्र प्रजापति और मरुत् देवता हमारी निन्दा न करें ॥ २४ ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(यत् निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य मुखतः गृभीतां रातिं नयन्ति) जिस समय ब्राह्मण स्नान से और सुवर्णमणि आदिसे संस्कारको प्राप्त हुए अश्वके मुखाग्रमें ग्रहण किये घृतसक्तु-धानरूप दानको प्राप्त कराते हैं (सुप्राङ् मेम्यत् विश्वरूपः अजः इन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथः अप्येति) ललाटके निकट बँधा हुआ शब्दकारी विचित्रवर्ण छाग इन्द्र और पूषा देवताके प्रिय अन्नभावको प्राप्त करता है २५

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥ २६ ॥

नि० आर्षी जगती छन्द । मंत्रार्थ-(यत् एषः पूष्णः भागः विश्वदेव्यः छागः वाजिना अश्वेन पुरः नीयते) जब यह अग्नि देवताका भाग सब देवताओंका हितकारी अज वेगवान् अश्वके आगे किया जाता है (त्वष्टा इत् अर्धता अभिप्रियं पुरोडाशं एनं सौश्रवाय जिन्वति) तब प्रजापति ही वेगवान् अश्वके द्वारा सब प्रकार देवताओंको तृप्त करने वाले आगे देने योग्य इस अजको श्रेष्ठ कीर्त्तिके लिये तृप्त करता है२६

यद्धविष्यमृतुशो देवयानन्त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञन्देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ २७ ॥

आर्षी त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ-(यत् मानुषाः हविष्यं ऋतुशः देवयानं अश्वं त्रिः परिणयन्ति) जिस समय ऋत्विज् हवियोग्य यज्ञकालमें देवयानमार्गमें जाने वाले अश्वकी तीन परिक्रमा करते हैं (अत्र पूष्णः भागः अजः प्रथमः देवेभ्यः यज्ञं प्रतिवेदयन् एति) इसमें अग्निका भागरूप अज अग्रगामी होता हुआ देवताओंके निमित्त यज्ञको जताता हुआ प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वम् ॥ २८ ॥

दीर्घतमा ऋ०, ब्रा० उष्णिक् छ०, होत्रादि दे० है मन्त्रार्थ-(होता, अध्वर्युः आवयाः अग्निमिन्धः ग्रावग्राभः शंस्ता सुविप्रः उत तेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन वक्षणाः आपृणध्वम्) होता अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता आग्नीध्र ग्रावस्तोता प्रशास्ता ब्रह्मा इतने ऋत्विज् उस हविदक्षिणा आदिसे शोभित भलीप्रकार इष्ट अश्वमेध यज्ञके द्वारा घृत कुल्यावाली नदियोंको पूर्ण करो ॥ २८ ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

दीर्घ० ऋ०, आर्षी त्रि० छन्द, ऋत्विज् दे० है । मन्त्रार्थ-(ये यूपव्रस्काः उत ये यूपवाहाः च अश्वयूपाय चषालं तक्षति) जो यूपके निमित्त वृक्षके काटने वाले और जो यूपके उठानेवाले हैं तथा जो अश्व बाँधनेके यूपके निमित्त चषालको बनाता है

(उतो ये अर्वते पचनं सम्भरन्ति) और जो अश्वके निमित्त पाकसाधन काष्ठ भाण्ड आदिको लाते हैं (तेषां अभिगूर्त्तिः न इन्वतु) उन ऋत्विजोंका उद्यम हमको तृप्त करें २९

उपप्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः। अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानाम्पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ३० ॥

ऋ० छन्द पूर्ववत् अश्व दे० है। मन्त्रार्थ-(मन्म सुमत् उपप्रागात्) विचारने योग्य फल स्वयं समीप प्राप्त हो (मे अधायि) मैंने धारण किया (वीतपृष्ठः देवानां आशाः उप) पुष्ट पीठवाला अश्व देवताओंके मनोरथ पूर्ण करनेको आवे (देवानां पुष्टे आ सुबन्धुं चकृम) हमने देवताओंकी पुष्टि के निमित्त सब प्रकार सुबन्धु किया (एनं विप्राः ऋषयः अनुमदन्ति) इसको वेदोंके जाननेवाले ऋषि अनुमोदन करते हैं ॥ ३० ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य। यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(अस्य वाजिनः अर्वतः यत् दाम सन्दानं या शीर्षण्या रशना रज्जुः) इस वेगवान् अश्वकी जो ग्रीवाबन्धनकी रज्जु है चरणबन्धनकी रज्जु है जो शिरोबन्धनकी रज्जु है कटिबन्धनकी रज्जु है (वा घ अस्य आस्ये अपि यत् तृणं प्रभृतं) अथवा प्रसिद्ध इसके मुखमें भी जो तृण धारित हुआ है (ते ताः देवेषु अस्तु) हे अश्व! तेरी यह सब वस्तु देवताओंके उपयोगी हों ॥३१॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति। यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(अश्वस्य यत् क्रविषः मक्षिका आश) इस अश्वाभिमानी जीवको जिस हाथ हृदय मन मुख नासिका और बुद्धिके अंशका आवरण करने वाली विषयवासनारूप मक्षिकाने भक्षण किया (यत् स्वरौ वा स्वधितौ रिप्तम् अस्ति) जो अंश भूतात्मखण्ड वा हिंसासाधन अहम्मय शस्त्ररूप मनमें लिप्त है (यत् शमितुः हस्तयोः यत् नखेषु) जो भूतात्माके हाथोंमें और जो दश इन्द्रियों में लिप्त है (ते ताः सर्वाः अपि देवेषु अस्तु) हे अश्व तेरे वह सब देवताओंमें प्राप्त हों २२

यदूवध्यमुदरस्यापवाति यं आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति । सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृतपाकम्पचन्तु ॥ ३३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(उदरस्य यत् ऊवध्यं अपवाति) उदरका जो योगी करके वध करने योग्य भोगलेश समाधिमें दूर होता है (आमस्य क्रविषः यः गन्धः अस्ति) योगसे अपक्व हृत हृदय मन मुख नेत्र नासिका और बुद्धिका जो गन्ध मात्र भी है (शमितारः तत् सुकृता कृण्वन्तु) कामको शामक वृत्तियें उस सबको शोभन संस्कारयुक्त करें (उत मेधं शृतपाकं पचन्तु) और पवित्र देवयोग्य करें एवं ब्रह्माग्निमें पकावें ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूलन्निहतस्यावधावति । मातद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ३४ ॥

भुरिगार्षी त्रि० छन्द, शेष पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(निहतस्य ते अग्निना पच्यमानात् गात्रात् यत् शूलं अभि अवधावति) हे अश्वाभिमानी जीव ! जिसके बन्धन नष्ट हुए हैं ऐसे तेरे ब्रह्माग्निसे पकते शरीरसे जो आत्मांशु किसी विषयवासनाके कारण रुद्रशूलके सन्मुख दौड़ता है (तत् भूम्यां मा आश्रिषत्) वह पुनर्जन्ममयी संसारभूमि में न स्पर्श करे (तृणेषु मा) तृणसमान असार भोगोंमें न आसक्त हो (तत् उशद्भ्यः देवेभ्यः रातं अस्तु) वह हवि चाहने वाले देवताओंके अर्थ अर्पित हो अर्थात् दिव्यभावको प्राप्त हो यह दिव्यशरीर होकर देवलोकमें जाते हुए अश्वके प्रति कथन है॥

ये वाजिनम्परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति । ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ ३५ ॥

दीर्घतमा ऋ०, स्वराडार्षी छ०, देवा दे० है । मन्त्रार्थ—(ये पक्वं वाजिनं परिपश्यन्ति) जो ऋत्विज् ब्रह्माग्निमें पक्व अश्वअभिमानी जीवको देखते हैं (ये ईम् इति आहुः) जो पराशक्तिको ऐसा कहते हैं (सुरभिः निर्हर) कि—पाक श्रेष्ठ हुआ ग्रहण करो (ये च अर्वतः मांसभिक्षां उपासते) और जो देवता अश्वाभिमानी शुद्ध जीवआत्माकी स्वरूपभिक्षाको चाहते हैं (तेषां उतो अभिगूर्त्तिः नः इन्वतु) उनका भी सङ्कल्परूप उद्यम हमको तृप्त करे ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणम्माꣳस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

दीर्घ० ऋ०, नि० आर्षीपंक्ति छ०, अश्व देवता है। मन्त्रार्थ—(यत् मांस्पचन्याः उखायाः निरीक्षणं यूष्णः आसेचनानि या पात्राणि चरूणां ऊष्मण्या अपिधाना अङ्काः सूनाः अश्वं परिभूषन्ति) जो जीवके पकने का पात्र आत्माका दिव्यदृष्टि से दर्शन है तथा ज्ञानामृतरूप रसके रखनेके जो पात्र रूप इन्द्रियें हैं तथा जीवशक्तिसे पूर्णपात्र कमलोंके ऊष्माधारक जो प्राणायामरूप ढक्कन हैं तथा उन कमलोंमें देवताओंके जो स्वरूप हैं तथा उपाधिनाशक जो ज्ञानादि हैं ये सब अश्वाभिमानी जीवको शोभित करते हैं ॥ ३६ ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः । इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतन्तन्देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

ऋषि देवता पूर्ववत्, त्रा० उष्णि० छ० । मन्त्रार्थ–(धूमगन्धिः अग्निः त्वा माध्वनयीत्) हे अश्वाभिमानी जीव ! प्राण की गन्ध रखनेवाला ब्रह्माग्नि तुझसे अहंकार ममत्वकी ध्वनि न करावे (भ्राजन्ती जघ्रिः उखा मा अभिविक्त) दीप्तिमान् गन्ध ग्रहण करने वाला आत्माग्नि पाककर्मसे चलित न हो (तं इष्टं वीतं अभिगूर्तं वषट्कृतं अश्वं देवासः प्रतिगृभ्णन्ति) उस प्रिय विशेष प्राप्त निरन्तर संकल्पित वषट्कारसे संस्कृत अश्वाभिमानी जीवको दिव्यशक्तियें ग्रहण करें ॥ ३७ ॥

निक्रमणन्निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः । यच्च पपौ यच्च घासिजघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

ऋषि देवता पूर्ववत् । निचृद् त्रा० उष्णि० छन्द । मन्त्रार्थ–(अर्वतः यत् निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं च यत् पड्वीशं) अश्वाभिमानी जीवकी जो पादविक्षेपरूप गति स्थिति तथा इन्द्रियरूपोंसे रूपान्तर करना है और जो गतिनिरोध है (च यत् पपौ) और जो पान किया (च यत् घासि जघास) और जो अन्नको भक्षण किया (ताः सर्वाः ते अपि देवेषु अस्तु) वे सब तेरी गति आदि भी देवताओंको अर्पण कीं॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै । सन्दानमर्वन्तम्पड्वीशम्प्रिया देवेष्वायामयन्ति ॥ ३९ ॥

ऋषि देवता पूर्ववत्, स्वराडार्षी पंक्ति छन्द । मन्त्रार्थ-(अस्मै अश्वाय यत् अधीवासं वासः या हिरण्यानि सन्दानं पड्वीशं उपस्तृणन्ति) इस अश्वाभिमानी जीवके निमित्त जो देहाच्छादकरूप त्वक् इन्द्रिय है जो ज्योतिरूप इन्द्रियें हैं जो शिरमें स्थित ज्ञानेन्द्रियोंका निरोध है और जो गतिनिरोध है इन सबको ऋत्विज दर्भार्पण करते हैं (प्रिया अर्वन्तं देवेषु आयामयन्ति) उन प्रिय इन्द्रियोंको और अश्वाभिमानी जीवको देवताओंके अर्पण करते हैं ॥ ३९ ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद । स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ४० ॥

नि० आर्षी त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ-(शूकृतस्य ते सादे महसा पार्ष्ण्या वा कशया वा यत् तुतोद) हे अश्वाभिमानी जीव ! तुझ लक्ष्मीनारायणसे रचितके विषयोंमें जाने पर कामदेवने बल एड़ी वा कोड़ेसे जो पीड़ा दी (ते ता सर्वा अध्वरेषु ब्रह्मणा सूदयामि इव स्रुचा हविषः ताः) तेरी उन सबको योगयज्ञमें महावाक्द्वारा दूर करता हूँ जैसे स्रुक्पात्रद्वारा हविकी उन आहुतियोंको ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति । अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ ४१ ॥

आर्षी त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ-(स्वधितिः वाजिनः देवबन्धोः अश्वस्य चतुस्त्रिंशत् वंक्री समेति) ज्ञानखड्ग इस वेगवान् देवताओंके प्रिय अश्वाभिमानी जीवकी मनसहित ग्यारह इन्द्रियें दश प्राण, दश विषय और जाग्रत् आदि ३ अवस्था इस प्रकार चौंतीस अस्थिरूपको छेदनके निमित्त प्राप्त होता है (वयुना गात्रा अच्छिद्रा कृणोत) हे ज्ञानचक्षुः ब्रह्मज्ञानके द्वारा अश्वाभिमानी जीवके अंगोंको छिद्रहीन करो (परुः परुः अनुघुष्य विशस्त) और प्रत्येक अंगको महावाक्से शब्दित करके उपाधिका नाश करो ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः । या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानाम्प्रजुहोम्यग्नौ ॥ ४२ ॥

विराडार्षी त्रि० छन्दा मन्त्रार्थ-(त्वष्टुः अश्वस्य अविशस्ता एकः ऋतुः तथा यन्तारा द्वा भवतः) दीप्तिमान् अश्वाभिमानी जीवका अमरपदका दाता एक प्रारब्ध समाप्तिकाल तथा नियमकर्त्ता दो प्रकृति और पुरुष होते हैं (ते पिण्डानां गात्राणां या कृणोमि ऋतुथा ता ता अग्नौ प्रजुहोमि) तेरे आत्मा में एकत्वका प्राप्त अंगोंके जिन आवरणों को काटता हूँ, प्रारब्धसमाप्तिकाल पर उन आवरणोंको ज्ञानाग्निमें होमता हूँ ॥ ४२ ॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मा प्रियन्तमा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते । मा ते गृध्नुरविशस्ता-तिहायच्छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ४३ ॥

निचृदार्षी त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ— (प्रियः आत्मा अप्रियन्तं त्वा मा तपत्) हे अश्वाभिमानी जीव ! प्रिय मन, परा-शक्तिमें जानेवाले तुझको दुःखी न करे (स्वधितिः ते तन्वः मा आतिष्ठिपत्) ज्ञान-खड्ग तेरी भोगायतन शरीरकी स्थितिको न रक्खे (गृध्नुः अविशस्ता ते गात्राणि अतिहाय असिना मिथु उ छिद्रा मा कः) लोभी मन तेरे हस्तादि इन्द्रियरूप अंगों को त्यागकर ज्ञानखड्गसे मिथ्या छिद्रोंको न करे ॥ ४३ ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवान् इदेषि पथिभिः सुगेभिः । हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

भुरिगार्षी त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ- (एतत् उ वै न म्रियसे) हे अश्वाभिमानी जीव ! तुम ब्रह्म ही हो, निश्चय नहीं मरते हो (न रिष्यसि) नहीं हिंसित होते हो (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) सुगम योगमार्गोंसे ब्रह्मकी दिव्यशक्तियों को प्राप्त होते हो (ते हरी युञ्जा अभूतां) तेरी जीव ईशज्योति ब्रह्ममें युक्त हों (पृषती रास-भस्य धुरि वाजी उपास्थात्) मन बुद्धि तेरे आत्मामें युक्त हैं, प्राणकी धुरमें आत्म-प्रतिबिम्ब स्थित हो ॥ ४४ ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यम्पुंसः पुत्रान् उत विश्वापुषꣳ रयिम् । अनागास्त्वन्नो अदितिः कृणोतु क्षत्रन्नो अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥ ४५ ॥

विराडार्षी त्रि० छन्द । मंत्रार्थ-(वाजी नः सुगव्यं स्वश्व्यं पुंसः पुत्रान् उत विश्वापुषं रयिं कृणोतु) यह दिव्यभागको प्राप्त अश्वाभिमानी जीव हमारे श्रेष्ठ गौ अश्व पुरुषार्थसाधक पुत्र और सबके पोषणमें समर्थ धनको प्राप्त करावे (नः अनागास्त्वं कृणोतु) हमारे निष्पापत्वको करे (हविष्मान् अश्वः अदिति न क्षत्रं वनताम्) हविवाला प्रजापति और पराशक्ति हमारे बलको सबसे अधिक करे ॥ ४५ ॥

इमा नुकम्भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यम्भेषजा करत् । यज्ञञ्च नस्तन्वञ्च प्रजाञ्चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

भौवन ऋषि द्विपदा छन्द, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ (इमा भुवनानि नुकं सीषधाम) इन भुवनों और त्रिदेवरूपधारी नारायणको हमने प्राप्त किया (इन्द्रः सगणः इन्द्रः च विश्वेदेवाः आदित्यैः मरुद्भिः अस्मभ्यं भेषजा करत्) ऐश्वर्यवान् निजपरिवारयुक्त इन्द्र और विश्वेदेवा बारह आदित्य मरुत्गणों सहित हमारे हितोंको करें (च इन्द्रः आदित्यै नः यज्ञं च तन्वं प्रजां सीषधाति) तथा इन्द्र द्वादश आदित्यों सहित हमारे यज्ञ और शरीर तथा पुत्रादिको सिद्ध करे ॥ ४६ ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छानक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः । तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४७ ॥

इसकी व्याख्या अ० ३ मंत्र २५ । २६ में होगई ॥ ४७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत-माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृभारद्वाजगोत्रोद्भूत-गौड़वंशावतंस-श्रीमद्भोलानाथात्मज-रामस्वरूपशर्मा-द्वारा उव्वटमहीधरादिप्राचीनभाष्योंके अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भाषार्थ सहित पञ्चविंश अध्याय समाप्त.

——०——

❀ षड्विंशोऽध्यायः ❀

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षश्च सन्नते ते मे सन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः । सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ २ ॥ अध्वनस्कुरु सञ्ज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

१।२।४ का गायत्री छन्द ३।५।६ का प्राजापत्यानुष्टुप्छन्द सबका विवस्वान् ऋषि, लिंगोक्त देवता है । प्रार्थना । मन्त्रार्थ–(अग्निः च पृथिवी च सन्नते ते मे अदः सन्नमतां अग्नि और भूमि भी भोगके निमित्त प्राप्त हैं, वह दोनों मेरे अमुक अभिलाषको वशवर्त्ती करें (वायुः च अन्तरिक्षं च सन्नते ते मे अदः सन्नमतां) वायु और अन्तरिक्ष भी भोगके लिये प्राप्त हैं वह मेरे लोभको वशवर्त्ती करें (आदित्यः च द्यौ च सन्नते ते मे अदः सन्नमतां) सूर्य और स्वर्ग भोगके अर्थ प्राप्त हैं वह दोनों मोहको मेरे वशवर्ती करें (आपः च वरुणः च सन्नते ते मे अदः सन्नमतां) जल और वरुण भी भोगके अर्थ प्राप्त हैं वह दोनों क्रोधको मेरे वशवर्त्ती करें सप्त, संसदः अष्टमी भूतसाधनी अध्वनः सकामान् कुरु सात अधिष्ठान अर्थात् अग्नि वायु अन्तरिक्ष सूर्य स्वर्ग जल वरुण और आठवीं प्राणियोंकी आधार भूमि, तुम सब हमारे मार्गोंको सफल करो (अमुना मे संज्ञानं अस्तु) इस समस्तसे मेरा संगति हो ॥ १ ॥

यथेमां वाचङ्कल्याणीमादवानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

प्राजापत्यानुष्टुप्छन्द। मंत्रार्थ-(यथा इमां कल्याणीं वाचं ब्रह्मराजन्याभ्यां च शूद्राय च अर्याय स्वाय अरणाय च जनेभ्यः आवदामि) जैसे इस कल्याणकारक वाणी को ब्राह्मण और क्षत्रियोंके अर्थ और शूद्र के अर्थ तथा वैश्यके अर्थ अपने जनोंके अर्थ जिससे वाक्सम्बन्ध नहीं उन शत्रुओं के अर्थ और सम्पूर्ण जनोंके अर्थ 'दीयतां, भुज्यतां' दियाजाय भोजन किया जाय, यह सब ओरसे कहता हूँ, अतः (इह देवानां दक्षिणायैः दातुः प्रियः भूयासं) इस यज्ञ में देवताओंका दक्षिणाके अर्थ धन देने वालोंका प्यारा होऊँ (मे अयं कामः समृध्यतां) मेरा यह पुत्र धनादिकी प्राप्तिरूप मनोरथ सिद्ध हो (अदः मा उपनमतु) यह कामना मुझको प्राप्त हो ॥ २ ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा

गृत्समद ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, ब्रह्म देवता है। मन्त्रार्थ-(ऋतप्रजात बृहस्पते तत् चित्रं द्रविणं अस्मासु धेहि) हे सत्य से प्रकट वेदोंके पालक सर्वाधार! उस अनेक प्रकारके धनको हम यजमानोंमें स्थापन करो (यत् अर्यः अति अर्हात् द्युमत् क्रतुमत् जनेषु विभाति) जो धन ईश्वरके अधिकतर सत्कारयोग्य है कान्तिमान् है यज्ञके योग्य है प्राणियोंमें अनेक प्रकारसे शोभित होता है (शवसा दीदयत्) अपने बलसे दूसरे धनको लाता है (उपयामगृहीतः असि) हे ग्रह! तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो (बृहस्पतये त्वा) बृहस्पतिकी तुष्टिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (बृहस्पतये त्वा) बृहस्पतिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ ३ ॥

इन्द्र गोमन्निहायाहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो। विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

रम्याक्षि ऋषि, गायत्री छन्द, इन्द्र देवता है। मंत्रार्थ-(शतक्रतो गोमन् इन्द्र इह आयाहि) हे सौ यज्ञ वा अनन्तकर्म वाले गौ स्तुति वा किरणयुक्त परमैश्वर्यसम्पन्न इन्द्र! इस यज्ञमें आइये (विद्यद्भिः ग्रावभिः सुतं सोमं पिब) विशेष खण्डन वाले पाषाणोंसे अभिषुत हुए सोमको पीजिये (उपयामगृहीतः असि) हे ग्रह! तुम

उपयामपात्रमें गृहीत हो (गोमते इन्द्राय त्वा गोमान्) इन्द्रकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (गोमते इन्द्राय त्वा) गोमान् इन्द्रकी प्रीतिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ ४ ॥

इन्द्रायाहि वृत्रहन्पिबा सोमꣳ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतो-सीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

विवस्वान् ऋषि भुरिगार्षी जगती छंद इन्द्र देवता है। मंत्रार्थ—(वृत्रहन् शतक्रतो इन्द्र आयाहि गोमद्भिः ग्रावभिः सुतं सोमं पिब) हे वृत्रनाशक शतयज्ञकर्त्तः देवेन्द्र यहाँ आइये, स्तुतियुक्त ग्रावाओंसे अभिषुत सोमको पीजिये। उपयामेत्यादि पूर्ववत् ॥ ५ ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे । उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ६ ॥

प्रादुराक्षि ऋषि, गायत्री छंद, वैश्वानर देवता है। मंत्रार्थ ऋतावानं ऋतस्य ज्योतिषः पतिं अजस्रं, घर्मं वैश्वानरं ईमहे) सत्यस्वरूप अविनाशी तेजके पालक अनुपहिंसनीय दीप्तिकारी सब प्राणियोंके हितकारी परमात्मरूप अग्निकी प्रार्थना करते हैं (उपयामगृहीतः असि) हे ग्रह ! तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो (वैश्वानराय त्वा) वैश्वानरकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (वैश्वानराय त्वा वैश्वानरकी तुष्टिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द वैश्वानर देवता है। मन्त्रार्थ (वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम) सम्पूर्ण जगत्के हितकारी देवकी सुबुद्धिमें हम गृहीत हों (हि भुवनानां

अभिश्रीः वैश्वानरः इतः जातः) क्योंकि-वह सम्पूर्ण भुवनों प्राणियोंके आश्रय-योग्य वैश्वानरः इन भूलोक वा ज्ञानाग्निसे प्रकट हुआ (इदं विश्वं विचष्टे) इस चराचर जगत्को देखता है (सूर्येण यतते) सूर्य के साथ स्पर्धा करता है (कं राजा यतते) सब प्रकार दीप्तिमान् है अथवा सूर्यरूपसे वृष्टि आदि कर्मोंमें यत्न करता है। उपयामेत्यादि पूर्ववत् ॥ ७ ॥

वैश्वानरो न ऊतय आप्रयातु परावतः अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ८ ॥

विवस्वान् ऋषि, गायत्री छंद, वैश्वानर देवता है। मन्त्रार्थ-(वैश्वानरः अग्निः नः ऊतये उक्थेन वाहसा परावतः आप्रयातु) सब जगत्का हितकारी अग्नि देवता हमारी रक्षाके निमित्त स्तोम रूप वाहनद्वारा दूरदेशसे आओ। शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥ ९ ॥

वशिष्ठ भरद्वाज ऋ०, गायत्री छंद, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (अग्निः ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तं महागयं ईमहे जो अग्नि प्रकाशक मंत्रद्रष्टा पवित्रकारी सकल मनुष्योंका हितकारी यज्ञमें हितकारी होनेसे आगे स्थापित है उस महान् स्तुति वालेको प्रार्थना करते हैं (उपयामगृहीतः असि) हे ग्रह! तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो (वर्चसे अग्नये त्वा) तेजोरूप अग्निकी तुष्टिके निमित्त तुझको ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तेरा स्थान है (वर्चसे अग्नये त्वा) तेजोयुक्त अग्निके निमित्त तुझको स्थापन करता हूँ

महाँ २॥ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योस्मान्द्वेष्टि । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ १० ॥

वशिष्ठ ऋ०, गा० छंद, महेन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(महान् वज्रहस्तः षोड़शी इन्द्रः शर्म यच्छतु) श्रेष्ठ वज्रधारी पाँच प्राण दश इन्द्रिय एक मन इस प्रकार सोलह पदार्थमय लिङ्गशरीरवाला वा परिपूर्ण आत्मस्वरूप परमैश्वर्यवान् इन्द्रदेव

हमको कल्याण देय (पाप्मानं हन्तु) उस पापको नष्ट करे (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हमारे प्रति द्वेष करता है (उपयामगृहीतः असि) हे ग्रह ! तुम उपयाममात्रमें गृहीत हो (महेन्द्राय त्वा) महेन्द्रके निमित्त तुम को ग्रहण करता हूँ (एषः ते योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (महेन्द्राय त्वा) महेन्द्र की पुष्टिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ

तम्वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः । अभिवत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे

नोधागोतम ऋषि पथ्याबृहती छंद, इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ-(तं ऋतीषहं वः दस्मं वसोः अन्धसः मन्दानं इन्द्रं गीर्भिः अभिनवामहे) हे यजमानों ! उस निजगति से शत्रुओंको जीतने वाले तुम्हारे दर्शनीय स्थितिहेतु अन्नसे प्रसन्न ऐश्वर्यवान् परमात्माको स्तुतिकी वाणियोंसे हम सब प्रकार प्रणाम करते हैं (न धेनवः स्वसरेषु वत्सं) जैसे गौएं चरनेके स्थानोंमें अपने शब्दोंसे बछड़ेको बुलाती हैं ॥ ११ ॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ १२ ॥

वसूयु ऋषि, अनुष्टुप् छंद, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(यत् वाहिष्ठं तत् बृहत् अग्नये अर्च) जो इच्छित पदार्थको प्राप्त कराने वाला है उस बृहत्सामको अग्निके निमित्त गान करो (विभावसो त्वत् रयिः उदीरते) और सामगानसे प्रत्यक्ष हुए अग्निके प्रति कहो हे ज्योतिर्मय अग्ने ! आपसे धन प्राप्त होता है (त्वत् वाजाः) आपसे अन्न प्राप्त होते हैं (इव महिषीः) जैसे पटरानी पतिको भोगपदार्थ देती हैं १२

एह्यूषु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १३ ॥

भरद्वाजऋषि । (मन्त्रार्थ-अग्ने उ एहि) हे अग्ने ! भलीप्रकार आइये (इत्था इतराः गिरः ते सु ब्रुवाणि) इस प्रकार दूसरी स्तुति की वाणियें तुम्हारे अर्थ शोभनप्रकारसे कहता हूँ (एभिः इन्दुभिः वर्धासे) इन सोमोंसे वृद्धिको प्राप्त हूजिये

ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः । सम्वत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजाञ्च परिपातु नः ॥ १४ ॥

विवस्वान् ऋ०, बृहती छ० । मन्त्रार्थ —(ऋतवः ते यज्ञं वितन्वन्तु) हे अग्ने ! सब ऋतुएँ तुम्हारे इस यज्ञको विस्तीर्ण करें (मासाः ते हविः रक्षन्तु) महीने तुम्हारे

पुरोडाशादिकी रक्षा करें (सम्वत्सरः ते नः यज्ञं दधातु) सम्वत्सरके अधिष्ठात्री देवता तुम्हारे और हमारे निमित्त यज्ञको पुष्ट करें (च नः प्रजां परिपातु) और हमारी सन्तानकी रक्षा करें ॥ १४ ॥

उपह्वरे गिरीणाꣳ संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ १५ ॥

वत्स ऋषि, गायत्री छन्द, सोम देवता है । मन्त्रार्थ-(गिरीणां उपह्वरे च नदीनां सङ्गमे धिया विप्रः अजायत) पर्वतोंके निकट अर्थात् हृषीकेशादि पवित्रस्थानोंके समीप और नदियोंके सङ्गम अर्थात् गङ्गा-सागरादिमें अपने २ साधन और बुद्धिके प्रभावसे विप्रत्व वा ब्रह्मत्व प्राप्त किया जाता है ॥ १५ ॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे । उग्रꣳ शर्म महिश्रवः ॥ १६ ॥

आमहीयव ऋषि, गायत्री छन्द, सोम देवता है मन्त्रार्थ-(ते अन्धसः उच्चा भूम्या जातं दिवि सत् उग्रं शर्म महि श्रवः आददे) हे सोम ! तेरे रसरूप अन्नसे वेदीरूप उच्च-भूमिके द्वारा उत्पन्न हुए स्वर्गमें विद्यमान उत्तम सुख और महान् कीर्त्तिरूप धनको मैं ग्रहण करता हूँ ॥ १६ ॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परिस्रव ॥ १७ ॥

ऋषि, छन्द, देवता पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सः वरिवोवित् यज्यवे इन्द्राय वरुणाय मरुद्भ्यः नः परिस्रव) हे सोम ! वह आप कीर्त्तिरूप धनके ज्ञाता वा प्राप्त करनेवाले तुम यजनयोग्य इन्द्रके निमित्त वरुणके निमित्त और मरुतोंकी तृप्तिके निमित्त हमको रसरूप होकर आहुतिभावको प्राप्त करो ॥ १७ ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

ऋषि, छन्द, देवता पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(अर्यः मनुषाणां एना विश्वानि द्युम्नानि आसिषासन्तः वनामहे) हे देवेश स्वामिन् ! मनुष्योंके इन सम्पूर्ण धन वा यशोंको सब प्रकार प्राप्त कराओ, दान करनेवाले हम सोमके दियेहुए उन धनोंको सेवन करें १८

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः । अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १९ ॥

मुद्गल ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द देवा देवता है। मन्त्रार्थ-(वयं वीरैः अनुपुष्यास्म) हम वीर पुत्रोंसे पुष्ट हों (गोभिः अनु)गौओं से पुष्ट हों (अश्वैः अनु) अश्वोंसे पुष्ट हों (सर्वेण पुष्टैः अनु) सब कामना और गृह आदिसे पुष्ट हों (द्विपदा अनु) दास आदि से पुष्ट हों (चतुष्पदा अनु) हाथी आदिसे पुष्ट हों (ऋतुथा देवाः नः यज्ञं नयन्तु) हर एक समय पर देवता हमारे यज्ञको प्राप्त करावें ॥ १९ ॥

अग्ने पत्नीरिहावह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारꣳ सोमपीतये ॥ २० ॥

मेधातिथि ऋषि, गायत्री छन्द अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने देवानां उशतीः पत्नीः त्वष्टारं सोमपीतये इह उपावह) हे अग्ने ! देवताओंकी हविकी इच्छा करने वाली पत्नियोंको और त्वष्टा देवताको सोमपानके निमित्त इस यज्ञमें प्राप्त करो २०

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्रावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वꣳ हि रत्नधा असि ॥ २१ ॥

मेधातिथि ऋषि, गायत्री छन्द, ऋतु देवता है। मन्त्रार्थ-(ग्रावः नेष्टः नः यज्ञं अभिगृणीहि) हे पत्नीयुक्त नेष्टा अग्निदेव ! हमारे यज्ञको सराहना करो (ऋतुना पिब) ऋतु देवताके साथ सोमपान करो (हि त्वं रत्नधा असि) क्योंकि-तुम रमणीय धनों के धारण करनेवाले हो ॥ २१ ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥

मेधातिथि ऋषि गायत्री छन्द, ऋतु देवता है। मन्त्रार्थ-(द्रविणोदाः पिपीषति) धनका दाता अग्नि सोमपानको चाहता है (जुहोत च) और होम करो (प्रतितिष्ठत) और अनुष्ठान करो (नेष्ट्रात् ऋतुभिः इष्यत) नेष्टाके धिष्ण्यस्थानसे ऋतुदेवताओंके साथ सोमदेवताके प्रति जाओ२२

तवायꣳ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ २३

विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ-(इन्द्र अयं सोमः तव) हे इन्द्र यह सोम तुम्हारा है (त्वं अर्वाङ् एहि) तुम हमारे सन्मुख आओ (सुमनाः

शश्वत्तमं अस्य पाहि) प्रसन्नचित्त तुम बहुत काल तक इस सोमकी रक्षा करो (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि निषद्य इमं इन्दुं जठरे निधष्व) इस यज्ञमें स्थित होकर इस सोमको उदरमें धारण करो ॥ २३ ॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन । अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ २४ ॥

गृत्समद ऋषि, जगती छंद, त्वष्टा देवता है । मंत्रार्थ-(सुहवाः अमेव नः आगन्तन) हे देवपत्नियों घरकी समान हमारे यज्ञमें आगमन करो (हि बर्हिषि निषदतन रणिष्टन) अवश्य कुशासन पर बैठो परस्पर वार्त्ता करके प्रसन्न रहो (त्वष्टः अथ अन्धसः जुजुषाणः देवेभिः जनिभिः सुमद्गणः मदस्व) हे त्वष्टः। देवपत्नियोंके आने पर हविरूप अन्नको सेवन करते हुए देवता और देवपत्नियोंके साथ देवता और देवगणोंके सन्तुष्ट होने पर तृप्त हूजिये ॥ २४ ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २५ ॥

मधुच्छन्दा ऋषि, गायत्री छंद, सोम देवता है । मंत्रार्थ-(सोम स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व) हे सोम अतिस्वादु अतिहर्ष करानेवाली धाराके साथ दशापवित्रसे द्रोणकलशमें आओ क्योंकि तुम (इन्द्राय पातवे सुतः) इन्द्रके पानके निमित्त अभिषुत हुए हो ॥ २५ ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

मधुच्छंदा ऋषि, गायत्री छन्द, सोम देवता है । मन्त्रार्थ (रक्षोहा विश्वचर्षणिः अयोहते द्रोणे सधस्थं योनिं अभि आसदत्) राक्षसोंका नाशक सब शुभाशुभका देखनेवाला वा सकल ऋत्विज् यजमानों से युक्त तक्षाके शस्त्रसे संस्कार किये हुए द्रोणकलशमें साथ स्थित यज्ञस्थानमें सन्मुख स्थित होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका
सानुवाद षड्विंश अध्याय समाप्त

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु सम्वत्सरा ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥

प्रजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छंद, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ -(अग्ने समाः ऋतवः सम्वत्सराः ऋषयः यानि सत्या त्वा वर्धयन्तु) हे अग्ने ! महीने महीने ऋतु ऋतु और प्रत्येक सम्वत्सरमें ऋषिगण जिन सत्यरूप मंत्रोंसे तुमको वृद्धि दें (दिव्येन रोचनेन सन्दीदिहि) दिव्य कान्तिद्वारा प्रदीप्त हूजिये (विश्वाः प्रदिशः चतस्रः आभाहि) सम्पूर्ण विदिशा और चारों दिशाओंको प्रकाशित कीजिये ॥ १ ॥

सञ्चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥

प्रजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (अग्न समिध्यस्व) हे अग्ने ! प्रदीप्त हूजिये (च एनं प्रबोधय च) और इस यजमानको बोधयुक्त भी करो (च महते सौभगाय उत्तिष्ठ च) और बड़े ऐश्वर्यके निमित्त उठिये भी (च अग्ने ते उपसत्ता मा रिषत्) और हे अग्ने ! तुम्हारी उपासना करने वाला भक्त मत नष्ट हो (ते ब्रह्माणः यशसः सन्तु) तुम्हारे ऋत्विज् यजमान ही यशस्वी हों (अन्ये मा) अभक्त न हों ॥ २ ॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः । सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ ३ ॥

प्रजापति ऋषि, विराट् त्रिष्टुप्, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ -(अग्ने इमे ब्राह्मणाः त्वा वृणते) हे अग्ने! ये ब्राह्मण तुमको भजते हैं (अग्ने संवरणे नः शिवः भव) हे अग्ने ! ब्राह्मणोंके साथ वरण होने पर हमको कल्याणकारी हूजिये(नः सपत्नहा च अभिमातिजित् स्वे गये अप्रयुच्छन् जागृहि) हमारे शत्रुओंके नाशक और अभिमानियों के जीतने वाले तथा अपने गृहमें प्रमाद-रहित होकर जागिये ॥ ३ ॥

इहैवाग्ने अधिधारया रयिम्मा त्वा निक्रन्पूर्वचितो निकारिणः । क्षत्रमग्ने सुयमम्
मस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतान्ते अनिष्टृतः ॥४॥

प्रजापति ऋषि, स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है मन्त्रार्थ-(अग्ने इह एव रयिं अधिधारय) हे अग्ने ! इन यजमानोंमें ही धनको अधिक करके दीजिये (निकारिणः पूर्वचितः त्वा मा विक्रन्) अधिक यज्ञ करनेवाले ऋत्विज् तुम्हारी अवज्ञा न करें (अग्ने क्षत्रं तुभ्यं सुयमं अस्तु) हे अग्ने ! क्षत्रियजाति तुम्हारे निमित्त सुख से वश करनेयोग्य हो (ते उपसत्ता अनिष्टृतः सम्वर्धताम्) तुम्हारा भक्त किसी प्रकार भी दुःखित न होकर धन पुत्रादिके द्वारा वृद्धि पावे ॥ ४ ॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सऽरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व । सजातानाम्मध्यमस्था
एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ५ ॥

प्रजापति ऋषि, विराट् त्रिष्टुप छन्द, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने स्वायुः क्षत्रेण संरभस्व) श्रेष्ठ दशावाले तुम वा यजमान क्षत्रियके साथ यज्ञका आरम्भ करो (अग्ने मित्रेण मित्रधेये यतस्व) हे अग्ने ! सूर्यके सहित तुम यजमानके करने योग्य यज्ञमें यत्न करो (सजातानां मध्यस्थाः एधि) सजन्माओंके मध्य स्थित होकर वृद्धि पाओ (अग्ने राज्ञां विहव्यः इह दीदिहि) हे अग्ने ! राजाओंके आह्वान करनेयोग्य तुम इस यज्ञमें दीप्त हूजिये ५

अति निहो अति सिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने । विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ
सहवीराꣳ रयिन्दाः ॥ ६ ॥

प्रजापति ऋषि, भुरिग् बृहती छन्द, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने हि निहः अति सिधः अति अचित्तिं अति अरातिं अति विश्वा दुरिता सहस्व) हे अग्ने ! अवश्य ही जीवघातियोंको अतिक्रमण करके दुराचारियोंको अतिक्रमण करके चञ्चलचित्त वालोंको अतिक्रमण करके कृपणको अतिक्रमण करके सकल पापोंको दूर करो (अथ अग्ने अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः) तदनन्तर हे परमात्मन् ! हमको वीरपुत्रों सहित धन दीजिये ॥ ६ ॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्न क्षत्रभृद्दीदिहीह। विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे ॥ ७ ॥

प्रजापति ऋषि, निच्यृद् जगती छ०, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अग्ने अनाधृष्यः जातवेदाः अनिष्टृतः विराट् क्षत्रभृत् इह विश्वाः आशाः दीदिहि) हे अग्निदेव! तिरस्कारके अयोग्य सर्वज्ञ अविनाशी विराजमान क्षात्र तेजको पुष्ट करनेवाले तुम इस कर्ममें सकल आशाओंको प्रकाशयुक्त करो (मानुषीः भियः प्रमुंचन् अद्य वृधे शिवेभिः नः परिपाहि) मनुष्यसम्बन्धी भयोंको निवृत्त करते हुए अब वृद्धिके निमित्त शान्तभावसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितञ्चित्सन्तराꣳ सꣳशिशाधि। वर्धयैनम्महते सौभगाय विश्व एनमनुमदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

प्रजापति ऋ०, त्रिष्टुप् छ०, बृहस्पति सविता देवता है। मन्त्रार्थ—(बृहस्पते सविता एनम् बाधय) हे बृहस्पति! हे सवितः! इस यजमानको कर्मका ज्ञाता करो (संशितं चित् सन्तराम संशाधि) और शिक्षितको भी अत्यन्त शिक्षा दो (महते सौभगाय एनम् वर्धय) बड़े ऐश्वर्य के लिये उसको बढ़ाओ (विश्वे देवाः एनम् अनुमदन्तु) सब देवता इस यजमानका अनुमोदन करें ॥ ८ ॥

अमुत्र भूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः। प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ९ ॥

प्रजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, बृहस्पत्यादि देवता है। मन्त्रार्थ--(बृहस्पते अमुत्र भूयात् अथ यत् यमस्य अभिशस्तेः अमुञ्चः) हे बृहस्पति तुम मरणसे और जो यमराजका नरकपात आदि है उससे और शापसे छुटाओ (अग्ने देवानाम् भिषजा अश्विना अस्मात् मृत्युम् शचीभिः प्रत्यौहताम्) हे अग्ने! देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार इस यजमानसे मृत्युको कर्मद्वारा हटावें ॥ ९ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

इसकी व्याख्या अ० २० मन्त्र २१ में होगई ॥ १० ॥

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः। द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ११

प्रजापति ऋषि, उष्णिक् छन्द, आप्री देवता है। मन्त्रार्थ-(अस्य सुप्रतीकस्य सूनोः अग्नेः समिधः ऊर्ध्वाः भवन्ति) इस सुमुख पुत्रवत् आदरयोग्य अग्निकी समिधा ऊर्ध्वगामिनी होती हैं (शुक्रा द्युमत्तमा शोचींषि ऊर्ध्वा) शुद्ध विश्वप्रकाशक किरणें ऊर्ध्वगामिनी होती हैं ॥ ११ ॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः। पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

ऋषि, छन्द, देवता पूर्व मन्त्रवत्। मन्त्रार्थ--(तनूनपात् असुरः विश्ववेदाः देवेषु देवः देवः मध्वा घृतेन पथः अनक्तु) जलोंका पौत्र प्राणवान् सब धनका स्वामी देवताओंमें श्रेष्ठ अग्नि मधुर घृतसे यज्ञ-मार्गोंको व्याप्त करें ॥ १२ ॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो अग्ने। सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥१३॥

प्रजापति ऋषि, निचृदुष्णिक् छन्द, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ (अग्ने प्रीणानः नराशंसः सुकृत् देवः सविता विश्ववारः मध्वा यज्ञम् नक्षसे) हे अग्ने देवताओंके तृप्त करनेवाले ऋत्विजोंसे स्तुति कियेहुए शुभकर्त्ता दीप्तिमान् विश्वको उत्पन्न करने वाले सबसे वरणयोग्य तुम स्वादयुक्त घृत से यज्ञको व्याप्त करते हो ॥ १३ ॥

अच्छयामेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा। अग्निꣳ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥१४॥

भुरिगुष्णिक् छन्द, आप्रीदेवता है। मन्त्रार्थ-(शवसा ईडानः वह्निः अयम् अध्वरेषु प्रयत्सु घृतेन नमसा स्रुचः अग्निम् अच्छ एति) ज्ञानबलसे स्तुति करनेवाला यज्ञनिर्वाहक यह अध्वर्यु यज्ञोंके वर्त्तमान होनेपर घृत और हविरूप अन्नसे उपलक्षित जुहूको लेकर अग्निके समीप जाता है

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः। वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥

स्वराड् उष्णिक् छन्द। मन्त्रार्थ-(सः वसुः चेतिष्ठः च वसुधातमः अस्य सुप्रयसः अग्नेः महिमानम् यक्षत्) वह यज्ञकर्ममें स्थित चैतन्य करनेवाला और अत्यन्त धनोंका दाता इस शुभान्नवाले अग्निकी महिमाका यजन करें (सः ईम् मन्द्रा) वही अध्वर्यु मदजनक हवियोंको अर्पण करे १५

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः॥ १६॥

निचृदुष्णिक् छ० । मन्त्रार्थ-(उरुव्यचसः धाम्ना पत्यमानाः देवीः द्वारः अस्य अग्नेः व्रताः ददन्ते) सुन्दर अवकाशवाले स्थानसे ऐश्वर्यवान् दिव्यद्वार इस अग्निके कर्मोंको धारण करते हैं पीछे सब देवता अग्निके व्रतको धारण करते हैं ॥ १६ ॥

ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासा नक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥

निचृदुष्णिक् छ० । मन्त्रार्थ-(न अस्य योषणे दिव्ये ते उषानक्ता नः इमम् अध्वरम् यज्ञम् योनौ अवताम्) और इस अग्नि की भार्या स्वर्गमें स्थित हैं वे अहोरात्री नाम देवी हमारे इस कुटिलतारहित शास्त्रोक्त यज्ञको यज्ञपुरुषमें रक्षा करें ॥१७।

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभिगृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥

भुरिगार्षी गायत्री छ० मन्त्रार्थ-(दैव्या होतारौ नः स्विष्टं कृणुतम्) हे दिव्य होता अग्नि वायु तुम हमारे शुभयज्ञको सम्पादन करो (नः अध्वरं अग्नेः जिह्वां ऊर्ध्वं अभिगृणीतम्) हमारे यज्ञ और अग्निकी ज्वाला को देवमार्गगामी वर्णन करो ॥ १८ ॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ॥ १९ ॥

गायत्री छन्द । मन्त्रार्थ—(मही इडा गृणाना सरस्वती भारती तिस्रः देव्यः इदम् बर्हिः आसदन्तु) सर्वाधाररूप इडा और स्तुतिको प्राप्त सरस्वती और भारती यह तीनों देवी इस कुशासनपर बैठें ॥१९॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

निचृदुष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ-(त्वष्टा तम् अद्भुतम् पुरुक्षु सुवीर्यम् नः तुरीपम् रायः पोषम् अस्मे नाभिम् विष्यतु) त्वष्टा देवता उस अद्भुत बहुतप्राणियोंमें अथवा शरीरोंमें निवास करनेवाली श्रेष्ठ सामर्थ्ययुक्त हमको शीघ्र अभीष्ट देनेवाली धन वा यागफलदमोकी पुष्टिको हमारी गोदमें छोड़े

वनस्पतेऽवसृजाररास्त्मना देवेषु । अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥

विराडुष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ- शमिता अग्निः हव्यम् सूदयाति) शान्तिकर्त्ता अग्नि हव्यको संस्कार करता है (वनस्पते त्मना देवेषु रराणः अवसृज) इस कारण हे वनस्पति अपने आत्माद्वारा देवताओंको हवि देतेहुए हव्यको छोड़ो ॥ २१ ॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदञ्जुषन्ताम् ॥२२॥

विराडुष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ-(जातवेदः अग्ने हव्यम् इन्द्राय स्वाहा कृणुहि) हे सर्वज्ञ अग्ने ! घृतआदिको इन्द्रके लिये स्वाहाकारपूर्वक होमो (विश्वे देवाः इदम् हविः जुषन्ताम्) और सब देवता इस हविका सेवन करो ॥ २२ ॥

पीवोअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः । ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ २३ ॥

वशिष्ठ ऋषि त्रिष्टुप् छंदवायु देवता । मंत्रार्थ-(सुमेधाः नियुताम् अभिश्रीः श्वेतः पीवोअन्नाः रयिवृधः सिषक्ति) शुभबुद्धि वाला नियुतनाम घोड़ोंका आश्रययाग्य वायु पुष्ट अन्नवाले धन वृद्धि करनेवाले घोड़ोंको सेवन करता है (ते समनसः वायवे, वितस्थुः) वे मनस्वी घोड़े वायुके लिये रथ में जुड़ते हैं (नरः विश्वा इत् स्वपत्यानि चक्रुः) ऋत्विजोंने शुभ संतान प्राप्त कराने वाले सब कर्मोंको किया ॥ २३ ॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् । अध वायु नियुतः सश्चतः स्वा उत श्वेतं वसुधितिन्निरेके ॥ २४ ॥

वसिष्ठ ऋषि त्रिष्टुप् छन्द वायुदेवता । मंत्रार्थ -(इमे रोदसी यम् राये नु जज्ञतुः) इन पृथिवी स्वर्गने जिस वायुको जलरूप धनके निमित्त शीघ्र उत्पन्न किया (धिषणा देवी राये देवम् धाति) ब्रह्मशक्ति दिव्य धनके निमित्त वायु देवताको धारण करती है (अध उत नियुतः श्वेतम् स्वा वसुधितिं वायुम् निरेके सश्चत) और निश्चय निज घोड़े श्वेत वर्ण धनके धारण करने वाले वायुको बहुजनाकीर्ण स्थानमें सेवन करते हैं

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवानाᳬ समवर्त्तताসुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २५ ॥

हिरण्यगर्भ ऋषि त्रिष्टुप् छंद प्रजापति देवता है । मन्त्रार्थ -(ह यत् गर्भम् दधाना अग्निम् जनयन्तीः बृहतीः आपः विश्वम् आयन्) प्रसिद्ध है जब ब्रह्माण्डको धारण करते अग्निरूप हिरण्यगर्भको उत्पन्न करना चाहते महान् ब्रह्मांशुरूप जलोंने विश्वरूपको प्राप्त किया (ततः देवानाम् असुः एकः समवर्त्तत) उस एक वर्ष

पर्यन्त स्थितगर्भसे देवताओंका प्राणरूप आत्मा लिङ्गशरीररूप हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ (कस्मै देवाय हविषा आविधेम) उस प्रजापतिरूप देवताके अर्थ हवि देते हैं २५

यश्चिदापो महिना पर्य्यपश्यद्दक्षन्दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् । यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २६ ॥

मंत्रार्थ-(यः आ महिम्ना दक्षम् दधानाः यज्ञम् चित् जनयन्तीः अपः पर्यपश्यत) जिस अविनाशी ब्रह्मने अपनी महिमासे प्रजापतिरूप हिरण्यगर्भको धारण करनेवाले यज्ञवाली प्रजाको भी उत्पन्न करनेवाले निज किरणरूप जलोंको सब ओर से देखा (यः देवेषु अधि एकः देवः आसीत्) और जो देवताओंमें अधिक मुख्य एक ही नानाप्रकारके अवतारोंसे क्रीडन शील हुआ (कस्मै देवाय हविषा आविधेम) उस ब्रह्मदेवके अर्थ यह हवि देते हैं ॥ २६ ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे । नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरङ्गव्यमश्व्यञ्च राधः ॥ २७ ॥

वसिष्ठ ऋषि, त्रिष्टुप् छंद, वायु देवता है। मन्त्रार्थ-(वायो याभिः नियुद्भिः इष्टये दुरोणे दाश्वांसं अच्छ प्रयासि) हे सर्वव्यापी वायुदेव ! तुम जिन घोड़ोंके द्वारा यज्ञके निमित्त यज्ञशालामें वर्त्तमान हवि देते हुए यजमानके सन्मुख जाते हो (नः सुभोजसं रयिं नियुवस्व) हमारे अर्थ सुखसे भोगने योग्य धनको दीजिये (च वीरं गव्यं अश्व्यं राधः नियुवस्व) और वीरपुत्र गौ घोड़ारूप धनको भी दीजिये २७

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् । वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २८ ॥

वसिष्ठ ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, वायु देवता । मन्त्रार्थ-(वायो शतिनीभिः सहस्रिणीभिः नियुद्भिः नः अध्वरं यज्ञं उपायाहि) हे वायु ! शत सहस्र संख्या वाले घोड़ोंके द्वारा हमारे सत्पथदाता यज्ञको प्राप्त करो (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस तीसरे सवनमें तृप्त हुजिये (यूयम् स्वस्तिभिः नः सदा पात) हे ऋत्विजो ! तुम कल्याणोंसे हमको सदा रक्षा करो २८

नियुत्वान्वायवागह्ययꣳ शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २९ ॥

गृत्समद ऋषि, गायत्री छन्द, वायु देवता । मन्त्रार्थ-(वायो सुन्वता गृह गन्ता असि) हे वायु तुम यजमानके गृहमें गमनशील हो (नियुत्वान् आगहि) इस कारण अश्वारूढ़ होते हुए आओ (अयम् शुक्रः ते अयामि) यह शुक्र ग्रह तेरे अर्थ अर्पण करता हूँ ॥ २९ ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रन्दिविष्टिषु । आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

पुरुमीढाजमीढ ऋषि, अनुष्टुप् छंद, वायु देवता । मन्त्रार्थ-(वायो शुक्रः दिविष्टिषु मध्वः अग्रम् ते अयामि) हे वायु यह शुक्र ग्रह है ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंमें रसके सारभूत उस ग्रहको तेरे अर्पण करता हूँ (देव स्पार्हः सोमपीतये नियुत्वता आयाहि) हे वायुदेवता यजमान आदिसे चाहने योग्य तुम सोमपानके लिये अश्वयुक्त रथ के द्वारा आओ ॥ ३० ॥

वायुरग्रेगा यज्ञपीः साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥

प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, वायु देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्रगाः यज्ञपीः शिवः वायुः शिवाभिः नियुद्भिः मनसा साकं यज्ञम् गन्) अग्रगामी यज्ञसे तृप्त होनेवाला कल्याणकारी वायु कल्याणरूप घोड़ियोंके द्वारा चित्तसहित यज्ञमें आओ ३१

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, वायु देवता है । मन्त्रार्थ-(वायो ये ते सहस्रिणः रथासः नियुत्वान् सोमपीतये तेभिः आगहि) हे वायु जो तेरे सहस्र संख्यावाले रथ हैं अश्वयुक्त तुम सोमपानके निमित्त उन रथोंसहित आओ ॥ ३२ ॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च । तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च नियुद्भिर्वायविह ता विमुञ्च ॥ ३३ ॥

त्रिष्टुप्छन्द । मन्त्रार्थ-(स्वभूते वायो एकया च द्वाभ्याम् च तिसृभिः च दशभिः

च विंशती च त्रिंशता नियुद्भिः इष्टये वहसे ता विमुञ्च) हे आत्मरूप समृद्धिवाले वायो एक और दो और तीन और दश और बीस और तीस वाहनोंके द्वारा यज्ञके अर्थ जिन पात्रोंको धारण करते हो उनको त्यागो ३३

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्यावृणीमहे ॥ ३४ ॥

व्यश्व ऋ०, निचृद्गायत्रीछन्द, वायु देवता । मन्त्रार्थ-(ऋतस्पते त्वष्टुः जामातः अद्भुत वायो तव अवांसि आवृणीमहे) हे सत्यपालक सूर्यके जामातः आश्चर्यरूपवायो तेरे अन्नोंको वा रक्षाओंको हम चाहते हैं ॥ ३४ ॥

अभि त्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः

वशिष्ठ ऋ०, बृहती छन्द, इन्द्र दे० । मन्त्रार्थ—(शूर इन्द्र अस्य जगतः ईशानं स्वर्दृशं तस्थुषः ईशानं त्वा अभिनोनुमः) हे शूर परमेश्वर हम इस जगत्के प्रभु सूर्य-रूप नेत्रवाले स्थावरके स्वामी तुम्हारी सन्मुख होकर स्तुति करते हैं (इव अदुग्धाः धेनवः)जिसप्रकार अदुग्धा गौ बछड़ों के सन्मुख होती हैं ॥ ३५ ॥

न त्वावान् अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

वसिष्ठ ऋषि सतोबृहती छन्द इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(मघवन् इन्द्र त्वावान् अन्यः दिव्यः न) हे पूर्णधनवान् परमेश्वर तेरी समान दूसरा देवता नहीं है (न पार्थिवः) न मनुष्य हैं (न जातः) न उत्पन्न हुआ (न जनिष्यते) न उत्पन्न होगा(अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः त्वा हवामहे) इस कारण अश्वोंको चाहनेवाले गौओंकी कामना करते हुए हवियुक्त हम तुमको आह्वान करते हैं ॥ ३६ ॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिन्नरस्त्वाङ्काष्ठास्वर्वतः

शम्युऋषि बृहती छ०, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(इन्द्र कारवः नरः सत्पतिम् त्वाम् इत वाजस्य सातौ हवामहे) हे परमेश्वर यज्ञोंके कर्त्ता ऋत्विज् हम सत्पुरुषों के पालक तुमको ही अन्नका लाभ होनेके विषयमें आह्वान करते हैं (त्वाम् हि वृत्रेषु) तुमको ही शत्रु वा पापके नाशार्थ आह्वान करते हैं (त्वाम् अर्वतः काष्ठासु) तुमको अश्वके दिग्विजयके निमित्त आह्वान करते हैं ॥ ३७ ॥

सत्त्वन्नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः । गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र सङ्किर सत्रा वाजन्न जिग्येषु ॥ ३८ ॥

सतोबृहती छन्द । मन्त्रार्थ-(चित्र वज्रहस्त अद्रिवः इन्द्र सः धृष्णुया महः स्तवानः त्वम् नः गाम् रथ्यम् अश्वं संकिर) हे आश्चर्यकारी वज्रधारी ब्रह्मा विष्णु महेश शक्तिरूप वाले परमेश्वर वह प्रगल्भता और तेजसे स्तूयमान तुम हमारे अर्थ गो वा रथके योग्य अश्वोंको दीजिये (न जिग्येषु सत्रा वाजम्) इसप्रकार संग्राम जीतने वाले अश्वके निमित्त रक्षा सहित अन्नको देते हैं ॥ ३८ ॥

कयानश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥

वामदेव ऋ०, गा० छन्द इन्द्र इन्द्र दे० है । मन्त्रार्थ-(सदावृधः चित्रः कया ऊती कया वृता शचिष्ठया नः सखा आभुवत्) सदा वृद्धि करनेवाला आश्चर्यरूप परमेश्वर किस तर्पण वा प्रीतिसे किस वर्त्तमान योगक्रियासे हमारा सहायक होता है ।३९।

कस्त्वा सत्योमदानाम्मꣳ हिष्ठोमत्सदन्धसः दृढाचिदारुजे वसु ॥ ४० ॥

मन्त्रार्थ-(अन्धसः कः मदानाम् मंहिष्ठः अंशः त्वा मत्सत्) हे परमेश्वर ! सोमरूप अन्नका कौन अंश जोकि मदजनक हवियों में श्रेष्ठ हो तुम्हें प्रसन्न करता है (दृढा अचित् वसु आरुजे) आपकी जिस प्रसन्नतामें दृढतासे रहनेवाले धनको भक्तों के अर्थ विभाग करके देते हो ॥ ४० ॥

अभी षु गाः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतम्भवास्यूतये ॥ ४१ ॥

मन्त्रार्थ-(सखीनाम् जरितॄणां नः अविता ऊतये सु अभी शतं शतं भवासि) हे इन्द्र ! मित्ररूप स्तुति करनेवाले हम भक्तोंके रक्षक तुम रक्षणार्थ भले प्रकार अभिमुख होकर राम कृष्णादि अनन्त रूप वाले होते हो ॥ ४१ ॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । प्र प्र वयममृतञ्जातवेदसम् । प्रियम्मित्रन्न शꣳसिषम् ॥ ४२ ॥

शम्यु ऋ० बृहती छ० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ-(वयम् यज्ञायज्ञा गिरागिरा वः

दक्षसे अमृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न अग्नये प्र प्रशंसिषम्) हम अनेक यज्ञोंमें प्रत्येक अनन्य स्तुतियों द्वारा तुम्हारे निमित्त अतिबली अविनाशी सर्वज्ञ प्रीतिजनक मित्रकी समान अग्निके अर्थ अधिक प्रशंसा करते हैं ॥ ४२ ॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥

शम्युऋषि बृहती छन्द अग्निर्देवता । मंत्रार्थ-(ऊर्जां पते वसो अग्ने एकया नः पाहि) हे अन्नोंके स्वामी सर्वालय अग्ने ॐकार वा अद्वैतरूप वचनद्वारा हमको रक्षा करो (द्वितीयया उत पाहि) सगुण निर्गुण प्रतिपादक वेदवाणीसे भी रक्षा करो (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) ऋक् यजु सामरूप तीन वाणियोंसे रक्षा करो (चतसृभिः पाहि) चारों वेदोंके मन्त्रों से रक्षा करो ॥ ४३ ॥

ऊर्ज्जो नपात्ꣳसहिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये । भुवद्वाजेष्ववितास्मभुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ४४ ॥

सतोबृहतीछन्द मन्त्रार्थ-(सः ऊर्जः नपातम् हिनु) हे अध्वर्यु तुम जलोंके पौत्र अग्निको तृप्त करो (अयम् अस्मयुः हव्यदातये दाशेम) यह अग्नि हमको इच्छा करता है इस कारण हविदानके अर्थ हम संकल्प करते हैं (वाजेषु अविता भुवत्) और यह अन्नोंका रक्षक होता है (उत वृधे तनूनाम् त्राता भुवत्) और वृद्धिके निमित्त शरीरों का रक्षक होता है ॥ ४४ ॥

सम्वत्सरोसि परिवत्सरोसीदावत्सरोसीद्वत्सरोसि वत्सरोसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पान्ताम्मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳसम्वत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्या एत्यै सञ्चाञ्च प्र च सारय । सुपर्ण चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

प्रजापति ऋ० अति कृति छ०, अग्नि देवता । मंत्रार्थ—(सम्वत्सरः असि)

ज्योतिषशास्त्रोक्त योगाध्यक्ष पंचसंम्वत्सर-रूप प्रजापतिकी स्तुति करते हैं अग्ने तुम सम्वत्सर हो (परिवत्सरः असि) परिवत्सर हो (इदावत्सरः असि) इदावत्सर हो (इद्वत्सरः असि) इद्वत्सर हो (वत्सरः असि) वत्सर हो (ते उषसः कल्पन्ताम्) तेरे प्रातःकाल आदि अवयवरूपसे कल्पित हों (ते अहोरात्राः कल्पन्ताम्) तेरे दिन रात्रि अवयवरूपसे कल्पित हों (ते अर्द्ध-मासाः कल्पन्ताम्) तेरे पक्ष अवयवरूपसे कल्पित हों (ते मासाः कल्पन्ताम्) तेरे महीने चैत्र आदि अवयवरूपसे कल्पित हों (ते ऋतवः कल्पन्ताम्) तेरे वसन्त आदि ऋतु अवयवरूपसे कल्पित हों (ते सम्वत्सरः कल्पताम्) तेरा सम्वत्सर काल अवयवरूपसे कल्पित हो (प्रेत्यै च ऐत्यै समञ्च च प्रसारय) और गमन और आगमनके निमित्त इच्छापूर्वक संकोच विकास करो (सुपर्ण चित् असि) सुपर्णाकार तुम चैतन्य हो (तया देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवः सीद) उस वाग्रूप देवताके साथ अंगिराकी समान अचल ठहरो ॥ ४५ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखा का
सानुवाद सप्तविंश अध्याय समाप्त

---:o:---

❀ अथ अष्टविंशोऽध्यायः ❀

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि । दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥

प्राजापत्याश्विसरस्वती ऋषयः आर्षी त्रि० छन्द आप्रीदे० है । मन्त्रार्थ-(होता समिधा इन्द्रं यक्षत्) दिव्य होताने समिधा द्वारा इन्द्रको यजन किया जो इन्द्र तीनों स्थानोंमें दीप्त होता है (इडः पदे पृथिव्याः नाभौ अधि दिवः वर्ष्मणि समिध्यते) पृथ्वीके यजनीय देशमें अग्नि आत्मासे पृथ्वीकी नाभि अन्तरिक्षमें विद्युत् आत्मासे ऊपर तीसरे स्वर्गके श्रेष्ठस्थान में आदित्यरूपसे प्रदीप्त होता है (चर्षणिसहां ओजिष्ठः आज्यस्य वेतु) मनुष्योंका अभिभव करने वालोंमें अतितेजस्वी इन्द्र घृतको पान करे (होतः यज) हे मनुष्य-होतः ! तुम भी यजन करो ॥ १ ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्ज्जेतारमपराजितम् । इन्द्रन्देवꣳ स्वर्विदम्पथिभिर्म्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्य्यज ॥ २ ॥

अतिजगती छन्द। मन्त्रार्थ-(होता तेजसा नराशंसेन तनूनपातं जेतारं अपराजितं स्वर्विदे देवं इन्द्रं ऊतिभिः मधुमत्तमैः पथिभिः यक्षत्) दैवी होता तेजस्वी मनुष्योंसे प्रशंसनीय देवके सहित तनूनपातको तथा शत्रुओंको जीतने वाले किसीसे न हारने वाले अपनेको वा स्वर्ग को जाननेवाले देव इन्द्रको तृप्तिकारी रक्षा और अति मधुर यजमानको स्वर्गमें ले जानेवाली हवियों द्वारा यजन करो, इस प्रकार दो देवताओंसे युक्त इन्द्र (आज्यस्य वेतु) घृतको पान करो (होतः यज) हे मनुष्य होतः! तुम भी यजन करो ॥२॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्। देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३ ॥

ब्राह्मी उष्णिक् छन्द। मन्त्रार्थ-(होता इडाभिः ईडितं आजुह्वानं अमर्त्यं इन्द्रं यक्षत्) दैवी होता प्रयाज देवताके साथ वेदमंत्रोंसे स्तुत यजमानोंसे आह्वयमान मरणधर्मरहित इन्द्रको यजन करे (देवैः सवीर्यः वज्रहस्तः पुरन्दरः देवः आज्यस्य वेतु) देवताओंसे समानधर्मवाले वज्रधारी पुरन्दर देव घृतका पान करें (होतः यज) हे मनुष्य होतः! तुम भी यजन करो ॥३॥

होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रन्निषद्वरं वृषभन्नर्यापसम्। वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४ ॥

आर्षी त्रिष्टुप्छन्द। मन्त्रार्थ-(होता निषद्वरं वृषभं नर्यापसं इन्द्रं बर्हिषि यक्षत्) दैवी होताने बैठनेवालोंमें श्रेष्ठ वर्षणकारी यजमानोंके हितकारी इन्द्रको कुशासन पर पूजा (सुयुग्भिः वसुभिः रुद्रैः आदित्यैः बर्हिः आसदत् आज्यस्य वेतु) समान योग वाले वसु रुद्र आदित्यों सहित कुशा पर बैठकर घृतको पान करें (होतः यज) हे मनुष्य होतः! तुम भी इसी अभिप्रायसे यजन करो ॥ ४ ॥

होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहोद्वार इन्द्रमवर्धयन्। सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधोद्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ५ ॥

अतिजगतीछन्द। मन्त्रार्थ-(होता इन्द्रं यक्षत्) होताने इन्द्रका यजन किया (न द्वार-

ओजः वीर्यं सहः अवर्धयन्) और द्वार देवताने इन्द्रियके शरीरके और मनके बल को बढ़ाया (सुप्रयाणाः ऋतावृधः द्वारः मीढुषे इन्द्राय विश्रयन्ताम्) सुखसे जाने योग्य यज्ञसे बढ़े हुए द्वार अमृतसे सींचने वाले इन्द्रके अर्थ खुल जायँ (अस्मिन् यज्ञे आज्यं व्यन्तु) इस यज्ञमें घीको पियो, शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही सबातरौ न तेजसा वत्सयिन्द्रमवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ६ ॥

आर्षी त्रि० छन्द । मन्त्रार्थ-(होता इन्द्रस्य मातरा सुदुघे धेनू मही उषे यक्षत्) दैवी होताने इन्द्रकी मातृरूप सुन्दर दुधेर दो धेनुरूप महान् नक्त और उषाको यजन किया (तेजसा इन्द्रं अवर्द्धतां) उन्होंने तेजसे इन्द्रको बढ़ाया (न सबातरौ वत्सं आज्यं वीतां) जैसे एक ही बछड़े वाली दो गौ बछड़ेको पुष्ट करती हैं, घृतको पियो । शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रम् भिषज्यतः । कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीता० ॥ ७ ॥

मन्त्रार्थ-(होता भिषजा सखाया देवौ कवी प्रचेतसो दैव्या होतारौ यक्षत्) दैवी होताने वैद्य मित्र दीप्तिमान् क्रान्तदर्शी परमज्ञानी देवताओंके दोनों होताओंका यजन किया (इन्द्रं भिषज्यतः) जो इन्द्रकी चिकित्सा करते हुए (इन्द्राय इन्द्रियं धत्तः) इन्द्रमें वीर्यको धारण करते हुए (आज्यं वीतां) वह घृतको पियें। शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोपस इडा सरस्वती भारती महीः इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्य० ॥ ८ ॥

त्रा० उष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ-(होता भेषजं त्रयः त्रिधातवः अपसः महीः इन्द्रपत्नीः न हविष्मतीः इडा सरस्वती भारती तिस्रः देवीः यक्षत्) दिव्य होताने भेषजरूप तीन लोक और अग्नि वायु सूर्य इन तीन धातुओंको धारण करनेवाले शीत उष्णादि कर्मधारी महती इन्द्रकी पत्नी और हविसे युक्त इडा सरस्वती भारती इन तीन देवियोंका यजन किया (आज्यं व्यन्तु) घीको पियें । शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रन्देवम्भिषज ँ सुयजंघृतश्रियम् । पुरुरूपं सुरेतसम्मघोनमिन्द्रया त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्य० ॥ ९ ॥

अतिजगती छन्द । मंत्रार्थ—(होता इन्द्रं देवं भिषजं सुयजं घृतश्रियं पुरुरूपं सुरेतसं मघोनं त्वष्टारं यक्षत्) दैवी होता ने परमैश्वर्ययुक्त दिव्य रोगनिवर्त्तक सुपूज्य किरणजालसे शोभित बहुरूपके आदिकारण सुवीर्यवान् धनवान् त्वष्टाका यजन किया (त्वष्टा इन्द्राय इन्द्रियाणि दधत्) त्वष्टाने इन्द्रके अर्थ पराक्रमको धारण किया (आज्यं वेतु) घीको पिये शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

होता यक्षद्वनस्पति ँ शमितार ँ शतक्रतुन्धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञम्मधुना घृतेन वेत्वाज्य० ॥ १० ॥

शक्वरी छन्द । मंत्रार्थ-(होता शमितारं शतक्रतुं धियः जोष्टारं इन्द्रियं वनस्पतिं यक्षत्) दैवी होताने संस्कारकर्त्ता बहुकर्मी बुद्धिके सेवक इन्द्रके हितकारी वनस्पति देवताका यजन किया (मध्वा समञ्जन् सुगेभिः पथिभिः मधुना घृतेन यज्ञं स्वदाति) स्वादु घृतसे सींचते हुए सुगम मार्गोंसे स्वादु घृतके द्वारा यज्ञको देवताओंको प्राप्त कराता है (आज्यस्य वेतु) घीको पिये शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

होता यक्षदिन्द्र ँ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकाना ँ स्वाहा स्वाहा कृताना ँ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११॥

मन्त्रार्थ-(होता इन्द्रं स्वाहा यक्षत्) दैवी होताने इन्द्रको स्वाहाकारपूर्वक यजन किया (आज्यस्य स्वाहा) घृतभाग सुगृहीत हो (मेदसः स्वाहा) मेदोवर्धक हवि सुगृहीत हो (स्तोकानां स्वाहा) सोमबिन्दुएँ सुगृहीत हों (स्वाहा स्वाहाकृतीनां) स्वाहाकारसे देवताओं के स्वाहाकृति प्रयाज देवता का यजन करे (स्वाहा हव्यसूक्तीनां) स्वाहाकार से हव्यसम्बन्धी सुवचनोंके देवताओंका यजन करे जुषाणाः आज्यपाः देवाः इन्द्रः आज्यं व्यन्तु) स्वाहाकारसे प्रसन्न घृत पीनेवाले देवता और इन्द्र घीको पियें । शेष पूर्ववत् ॥११॥

देवम्बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवन्देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत् । वस्तोर्वृत्तम्प्राक्तोभृतꣳ राया बर्हिष्मतोत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १२ ॥

नि० अतिजगती छन्द, अनुयाज प्रैषा दे० । मन्त्रार्थ-(सुदेवं देवैः वीरवत् वेद्यां स्तीर्णं वस्तोः वृत्तं अक्तोः प्रवृत्तं बर्हिः देवं इन्द्रं अवर्धयन्) श्रेष्ठ देवता वाले देवताओंसे वीरयुक्त वेदीमें बिछाए दिन में काटे रातमें रक्खे हुए कुशाके देवता इन्द्रको पुष्ट करते हैं (राया बर्हिष्मतः अत्यगात्) जो धन करके बर्हि वाले अन्य यागोंको लाँघ गया (वसुवने वसुधेयस्य वेतु) धन देनेके अर्थ तथा यजमानके घर में धनस्थितिके अर्थ घी पियें । शेष पूर्ववत् ॥ १२ ॥

देवीर्द्वार इन्द्रꣳ संघाते वीड्वीर्यामन्नवर्धयन् । आवत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवता पार्याणꣳ रेणुककाटमनुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १३ ॥

शक्वरी छन्द, द्वार दे० । मन्त्रार्थ- (संघाते वीड्वी द्वारः देव्यः यामन् इन्द्रं अवर्द्धयन्) देहली कपाटादिमें दृढ़ द्वार देवीने कर्मोंमें इन्द्रको बढ़ाया (मीवता तरुणेन च कुमारेण वत्सेन आ अर्वाणं रेणुककाटं अपनुदन्तां) मरखने तरुण और कुमार वत्सद्वारा अभिमुखगमन तथा कुत्सित धूल और वृष्टिको हटावें । शेष पूर्ववत् ॥ १३ ॥

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् । दैवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥

त्रा० उष्णिक् छन्द उषासानक्ता दे० । मंत्रार्थ-(सुप्राते सुधिते देवी उषासानक्ता यज्ञे प्रयति इन्द्रं अह्वेतां) पूर्ण प्रीतिमान् परमहितकारी देवी उषःकाल और रात्रिके देवता यज्ञके वर्त्तमान होनेपर इन्द्रको पुकारें (देवीः विशः प्रायासिष्टां) देवता सम्बन्धी प्रजा वसु रुद्रादि निरन्तर प्रवृत्त करें । शेष पूर्व० ॥ १४ ॥

देवी जेष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम् । अया व्यन्याघा द्वेषाꣳस्यान्यावक्षद्वसुपार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने० ॥ १५ ॥

अतिजगती छन्द, जोष्ट्री देवता । मन्त्रार्थ-(जोष्ट्री शिक्षिते वसुधिती देवी देवं इन्द्रं अवर्धतां) प्रीतियुक्त तत्त्वज्ञाता धनकी स्थान द्यावापृथिवीने देव इन्द्रको बढ़ाया (अन्या अघा द्वेषांसि अयावि) उन दोमेंसे एक पाप और दुर्भाग्योंको दूर करती है (अन्या वार्याणि वसु यजमानाय आयक्षत्) दूसरी वरणीय भोगयोग्य धन यजमानको देती है । शेष पूर्ववत् ॥ १५ ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पय सेन्द्रमवर्धताम् । इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिथं सपीतमन्या नवेन पूर्वन्दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १६ ॥

विकृति छन्द, देव्यः दे० है । मन्त्रार्थ-(ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे देवी पयसा इन्द्रं अवर्धतां) अन्न जल सहित आह्वानवाली कामदुघा कामनारूप दूधसे परिपूर्ण दोनों देवीने दूधसे इन्द्रको बढ़ाया (अन्या इषं ऊर्जं वक्षत्) उनमेंसे एक अन्न और रस रूप जलको वहन करती है (अन्या सग्धिम् सपीतिं) दूसरी सह भोजन और सहपानको वहन करती है (दयमाने ऊर्जाहुती ऊर्जं ऊर्जयमाने शिक्षिते नवेन पूर्वं पुराणेन नवं अधातां) कृपामयी ऊर्जयुक्त आह्वानवाली रसको बढ़ानेवाली तत्त्वको जाननेवाली देवी नवीन अन्नके परिवर्त्तनमें पुरातन और पुरातनके परिवर्तनमें नूतन अन्नको धारण करती है (वार्याणि वसु यजमानाय) वरणीय धन यजमानको देती है । शेष पूर्ववत् ॥ १६ ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्धताम् । हताघशꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसु० ॥ १७ ॥

अति जगती छन्द, देवा देव० है । मन्त्रार्थ-(हताघशंसौ शिक्षितौ दैव्या देवा होतारा देवं इन्द्रं अवर्धतां) पापकर्मके प्रशंसकोंको निवृत्त करने वाले, जिनके द्वारा ईश्वरीय नियमानुसार शुभाशुभ होता है वह देवसम्बन्धी दिव्य दोनों होता देवता इन्द्रको बढ़ाते हुए (वार्याणि वसु यजमानाय अभार्ष्टां) वरणीय धन यजमानके अर्थ आहरण करे शेष पूर्ववत्

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्वारती दिवꣳ रुद्रैर्यꣳ सरस्वतीडा

वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

मंत्रार्थ-(तिस्रः देवीः पतिं इन्द्रं अवर्धयन्) तीनों देवियोंने पति इन्द्रको बढ़ाया (भारती दिवं) भारतीने द्युलोकको (रुद्रैः सरस्वती यज्ञं) रुद्रोंसहित सरस्वतीने यज्ञको (वसुमती इड़ा गृहान् अस्पृक्षत्) धनवाली इडा गृहोंको स्पर्श करती हुई (तिस्रः देवीः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) तीनों देवी धनप्राप्ति और उसकी स्थितिके निमित्त घी पियें। शेष पूर्ववत् ॥ १८ ॥

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहिनः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणोदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

कृति छन्द। मन्त्रार्थ-(नराशंसः त्रिवरूथः त्रिबन्धुरः देवः देवं इन्द्रं अवर्धयत्) देवताओंकी प्रशंसाका स्थान यज्ञ सदोमण्डप हविर्धान अग्नीध्रयुक्त ऋक् यजुः सामरूप बन्धनवाला यज्ञदेव दिव्यरूप इन्द्रको बढ़ाता हुआ (शितिपृष्ठानां शतेन सहस्रेण आहिनः प्रवर्तते) श्याम पृष्ठवाली गौओंके सैंकड़ों सहस्रोंद्वारा युक्त हुआ वर्त्तता है (अस्य होत्रं मित्रावरुणा) इस यज्ञके होतृकर्ममें मित्रावरुण हैं (स्तोत्रं बृहस्पतिः) स्तोता बृहस्पति हैं (इत् आध्वर्यवं अश्विना अर्हतः) अवश्य ही अध्वर्यु कर्ममें अश्विनीकुमार योग्य हैं। शेष पूर्ववत् ॥ १९ ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षम्पृथिवीमदꣳहीद्वसुवने ॥ २० ॥

अतिशक्वरी छन्द। -मन्त्रार्थ-(हिरण्यपर्णः मधुशाखः सुपिप्पलः वनस्पतिः देवः देवैः देवं इन्द्रं अवर्धयत्) सुवर्णमय पत्र वाले मधुमय शाखाओंसे युक्त अतिस्वादुफलवाले वनस्पति देवने देवताओं सहित कान्तिमान् इन्द्रको बढ़ाया (अग्रेण दिवं अस्पृक्षत्) अग्रभागसे स्वर्गको स्पर्श करा (अन्तरिक्षं पृथिवीं आ अदंहीत्) मध्यभागसे अन्तरिक्षको और मूलभागसे पृथिवीको स्पर्श करता दृढ़ता करता हुआ। शेष पूर्ववत् ॥ २० ॥

देवम्बर्हिर्वारितीनान्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीꣳष्यभ्य-

भूद्वसुवने० ॥ २१ ॥

आर्षी त्रि० छ० बर्हि दे० मन्त्रार्थ- वारितीनां देवं स्वासस्थं इन्द्रेण आसनं बर्हिः देवं इन्द्रं अवर्द्धयत्) जलाश्रित औषधोंके मध्यमे दीप्तिमान् सुखासनसे बैठनेयोग्य इन्द्र करके आश्रित अनुयाज देवताने इन्द्रको बढ़ाया (अन्या बर्हींषि अभ्यभूत्) और बर्हियों को तिरस्कृत किया । शेष पूर्ववत् ॥ २१ ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टङ्कुर्वन्त्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने

वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥

अग्नि देवता । मन्त्रार्थ-(स्विष्टकृत् देवः अग्निः देवं इन्द्रं अवर्धयत्) श्रेष्ठ अभिलाषसाधकको करनेवाले दिव्य अग्नि ने इन्द्र देवताको बढ़ाया (अद्य स्विष्टकृत् स्विष्टं कुर्वन् नः स्विष्टं करोतु) आज स्विष्टकृत देवता श्रेष्ठ कर्म करता हुआ हमारे अर्थ श्रेष्ठ इष्टको करे अर्थात् मनोरथ पूर्ण करे । शेष पूर्ववत् ॥ २२ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशम्बध्नन्निन्द्राय छागम् ।

मूषस्या अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन । अधत्तमेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्

पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे० ॥ २३ ॥

इसकी व्याख्या अ० २१ मन्त्र ५९ । ६० । ६१ में होगई ॥ २३ ॥

होता यक्षत्समिधानम्महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् । गायत्रीञ्छन्द

इन्द्रियन्त्र्यविङ्गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥

शक्वरी छन्द आप्री देवता । मन्त्रार्थ- (होता गायत्रीछन्दः वीर्यं त्र्यविं गां वयः दधत्) दिव्य होताने गायत्री छन्द बल डेढ़वर्षकी गौ और आयुको स्थापन किया (समिधानं महत् यशः समिद्धं वरेण्यं अग्निं वयोधसं इन्द्रं यजत्) दीप्यमान

बड़े यशसे प्रदीप्त वरणीय अग्निका और आयुके देने वाले इन्द्रका यजन किया। शेष पूर्ववत् ॥ २४ ॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यद्गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम्। उष्णिहञ्छन्द इन्द्रियन्दित्यवाहङ्गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य० ॥ २५ ॥

जगती छन्द। मन्त्रार्थ-(होता शुचिं उद्भिदं तनूनपातं अदितिं यं गर्भं दधे वयोधसं इन्द्रं यक्षत्) दिव्य होताने पवित्र यज्ञफलोंको प्रकट करने वाले अग्नि और अदितिने जिसको गर्भमें धारण किया उस आयुके दाता इन्द्रका यजन किया (उष्णिहञ्छन्दः इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयः दधत्) शुचि देवताने उष्णिक् छन्द सहित इन्द्रिय दो वर्ष की गौ और आयुको स्थापित किया। शेष पूर्ववत् ॥ २५ ॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यं सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्। अनुष्टुभञ्छन्द इन्द्रियम्पञ्चावि गां वयोदधद्वेत्वा० ॥ २६ ॥

शक्वरी छन्द। मंत्रार्थ-(होता ईडेन्यं ईडितं वृत्रहंतमं इडाभिः ईड्यं वयोधसं सहः सोमं इन्द्रं यक्षत्) दिव्य होताने स्तुतियोग्य देवताओंसे स्तुत वृत्रनाशक इडा वा प्रयाज देवता सबसे स्तुतियोग्य आयु देनेवाले बलके द्वारा सोमकी समान प्रसन्न करने वाले इन्द्रका यजन करे। (अनुष्टुभं छन्दः इन्द्रियं पञ्चावि गां वयः दधत्) अनुष्टुप्छन्द बल ढाई वर्षकी गौ और पूर्णायुको यजमान वा इन्द्रमें स्थापन किया। शेष पूर्ववत् ॥२६॥

होता यक्षत्सुबर्हिषम्पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तम्बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहतीच्छन्द इन्द्रियन्त्रिवत्सङ्गां वयोदधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥

शक्करीछन्द। मन्त्रार्थ-(होता सुबर्हिषं पूषण्वन्तं अमर्त्यं प्रिये अमृते बर्हिषि सीदन्तं वयोधसं इन्द्रं यक्षत्) दिव्य होताने सुबर्हि पोषणमें समर्थ अमर रुचिर अविनाशी कुशाओंपर स्थित आयुदाता इन्द्रका यजन किया (बृहतीछन्दः इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयः दधत्) बृहतीछन्द बल तीनवर्षकी गौ और आयुको स्थापन किया। शेष पूर्ववत् ॥ २७ ॥

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्।

पंक्तिश्छन्द इहेन्द्रियन्तुर्यवाहङ्गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

अतिशक्करीछन्द । मन्त्रार्थ—(होता व्यचस्वतीः सुप्रायणाः ऋतावृधः हिरण्ययीः द्वारः देवीः ब्रह्माणं इन्द्रं यक्षत्) दिव्य होताने बड़े अवकाश वाले श्रेष्ठगति सत्यवर्द्धक स्वर्णमयी द्वारदेवी तथा महान् इन्द्रका यजन किया (पंक्तिछन्दः इन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयः इह दधत् व्यन्तु) पंक्तिछन्द इन्द्रियबल साढ़ेतीन वर्षकी गौ और आयुको इस इन्द्र यजमानमें स्थापन करते हुए प्रयाजदेवता घृतपियें । शेषपूर्ववत् २८

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्।

त्रिष्टुभञ्छन्द इहेन्द्रियम्पष्ठवाहं गां वयो दधद्घृतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

मन्त्रार्थ—(होता सुपेशसा सुशिल्पे बृहती दर्शने उभे नक्तोषासा न विश्वं वयोधसं इन्द्रं यक्षत्) दैवी होताने सुरूप और सुन्दर परस्पर एकरूप महान् दर्शनीय दोनों नक्त एवं उषा और सर्वात्मक आयु दाता इन्द्रको पूजा (त्रिष्टुभं छन्दः इन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयः इह दधत् घृतां) त्रिष्टुप् छन्द बल भार उठानेमें समर्थ वृष और आयु नक्तोषासा इस यजमान इन्द्रमें स्थापन करतेहुए घी पियें । शेष पूर्ववत् २९

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीच्छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद् घृतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

मन्त्रार्थ—(होता प्रचेतसा देवानां उत्तमं यशः कवी सयुजा दैव्या होतारा वयोधसं इन्द्रं यक्षत्) दैवी होताने सुचित्त देवताओंमें श्रेष्ठ यशस्वी क्रान्तदर्शी परस्पर सखा दोनों दिव्य होताओंसहित आयुधारक इन्द्रका यजन किया (जगती छन्दः इन्द्रियं अनड्वाहं गां वयः दधत् घृतां) दैवी होता जगती छन्द इन्द्रियबल शकटयोग्य वृष और आयुको इस यजमान इन्द्रमें स्थापन करते घृतपियें । शेषपूर्ववत् ३०

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्।

विराजञ्छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गान्न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

एकाधिकाशक्करी छंद । मंत्रार्थ-(होता पेशस्वतीः हिरण्यवतीः बृहतीः महीः भारतीः तिस्रः देवीः न वयोधसं पतिं इन्द्रं यक्षत्) होताने रूपसम्पदावाली सुवर्णमयी बड़ी आदित्य इन्द्र अग्निके तेजसे बढ़ीहुई इडा सरस्वती भारती तीनों देवी और आयु दाता पालक इन्द्रका यजन किया (विराजं छंदः इन्द्रियं धेनुं गां वयः इह दधत् वयन्तु) विराटछंद इन्द्रियबल दुधेर गौ और आयुको इस यजमान इन्द्रमें स्थापन करतेहुए वह घृत पियें । शेष पूर्ववत् ॥३१॥

होता यक्षत्सुरेतसन्त्वष्टारम्पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतम्पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् । द्विपदश्छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गान्न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

मंत्रार्थ—(होता सुरेतसं पुष्टिवर्द्धनं पृथक् रूपाणि पुष्टिं बिभ्रतं त्वष्टारं वयोधसं इन्द्रं यक्षत्) दैवी हाताने जगदुत्पादक सुन्दर वीर्यवाले, पुष्टिवर्द्धक सबमें पृथक पृथक् रूपोंको और पुष्टिको धारण करने वाले पूषा देवता और आयुवर्द्धक इन्द्र का यजन किया (द्विपदं छन्दः इन्द्रियं उक्षाणं गां न वयः दधत् वेतु) द्विपदाछन्द इन्द्रिय बल अनड्वान् वृष और आयुका यजमान में स्थापन करता त्वष्टा घी पियें शेषप०३२

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनाम्बिभ्रतं वशिभगमिन्द्रं वयोधसम् । ककुभञ्छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

अत्यष्टि छन्द । मंत्रार्थ-(होता शमितारं शतक्रतुं हिरण्यपर्णं उक्थिनं रशनां बिभ्रतं वशिं भगं वनस्पतिं वयोधसं इन्द्रं यक्षत्) दैवी होताने संस्कारकर्त्ता बहुकर्मी सुवर्णमयपत्र वाले यज्ञयुक्त रज्जुधारी मनोहर भजनीय वनस्पति और आयुवर्धक इन्द्रका यजन किया (ककुभं छन्दः इन्द्रियं वशां वेहत् गां वयः इह दधत् वेतु) वनस्पति देवता ककुप् छंद बल वन्ध्या गौ गर्भघातिनी गौ और आयु इस यजमानमें धारण करता घीपियें । शेष पूर्ववत् ॥३३॥

होता यक्षत्स्वाहा कृतीरग्निं गृहपतिम्पृथग्वरुणम्भेषजङ्कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् । अतिशक्वरीश्छन्दसम् छन्द इन्द्रियम्बृहदृषभं गां वयो दधद्वयन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

अतिशक्वरी छंद । मंत्रार्थ—(होता पृथक् गृहपतिं वरुणं भेषजं कविं क्षत्रं वयो-

धसं अग्निं इंद्रं स्वाहाकृतीः यक्षत) दिव्य होताने भिन्न२ यज्ञोंमें गृहोंके पति वरणीय रोगनाशक क्रान्तदर्शी रक्षक आयुदाता अग्रगामी इन्द्र और स्वाहाकृति प्रयाज देवताका यजन किया (अतिछन्दसं छन्दः इन्द्रियं बृहत् ऋषभं गां वयः दधत् व्यन्तु) अतिछन्दस् छन्द बल महान् पुष्ट वृषभ और आयुको यजमानमें स्थापन करतेहुए प्रयाज देवता घी पिये। शेष पूर्ववत् ॥३४॥

देवम्बर्हिर्वयोधसन्देवमिन्द्रमवर्धयत् । गायत्र्या छन्दसेन्द्रियञ्चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ३५ ॥

आर्षी त्रिष्टुप्छंद, बर्हिर्देवता। मंत्रार्थ-(बर्हिः देवं वयोधसं देवं इन्द्र अवर्धयत्) बर्हिने दिव्य आयुको बढ़ाने वाले इन्द्र देवको बढ़ाया (गायत्र्या छंदसा चक्षुः इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज) गायत्रीछंदके द्वारा नेत्र इन्द्रियबल और आयुको इन्द्र यजमानमें स्थापनपूर्वक धनप्राप्ति और उसकी स्थिति के निमित्त घृतपान करे। हे मनुजहोतः ! तुम भी यजन करो ॥ ३५ ॥

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियम्प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

द्वार देवता। मन्त्रार्थ-(द्वारः देवीः उष्णिहा, छंदसा प्राणं इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् वयोधसं शुचिं इन्द्रं अवर्धयन्) द्वारदेवियोंने उष्णिक् छन्दके द्वारा प्राण इंद्रियबल और आयुको यजमानमें स्थापन करते हुए आयुदाता पवित्र इंद्रको बढ़ाया वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसन्देवी देवमवर्धताम् । अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियम्बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३७ ॥

ब्राह्मीबृहती छंद। उषासानक्ता दे० मंत्रार्थ-(देवी, उषासानक्ता, देवी अनुष्टुभा छंदसा बलं इंद्रियं वयः इंद्रे दधत् वयोधसं देवं इंद्रं अवर्धतां) प्रकाशवान् उषा और नक्त दोनों देवी अनुष्टुप् छंदके द्वारा बल इंद्रिय आयुको यजमानमें धारण पूर्वक आयुदाता देवता इंद्रको बढ़ावें। वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३७ ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसन्देवी देवमवर्धताम् । बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने० ॥ ३८ ॥

देवी देवता । मंत्रार्थ-(देवी जोष्ट्री वसुधिती देवी बृहत्या छन्दसा श्रोत्रं इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् देवं वयोधसं देवं इन्द्रं अवर्धतां) प्रकाशवान् परस्पर प्रीतियुक्त धन को धारण करनेवालीं दोनों देवी बृहती-छन्दके द्वारा कर्ण इन्द्रिय और आयुको यजमानमें धारणपूर्वक दीप्तिमान् आयु-दाता देवता इन्द्रको बढ़ाती हुईं । वसु-वने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३८ ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसन्देवी देवमवर्धताम् । पंक्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयोदधद्वसुवने० ॥ ३९ ॥

शक्वरी छन्द । मंत्रार्थ-(दुघे सुदुघे देवी ऊर्जाहुती देवी पंक्त्या छन्दसा शुक्रं इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् पयसा वयोधसं देवं इन्द्रं अवर्धतां) कामपूरक कामनादुग्ध से परिपूर्ण दीप्तिमान् अन्नजलको बुलाने वालीं दोनों देवी पंक्ति छंदके द्वारा वीर्य इन्द्रिय और आयुको इंद्रमें धारणपूर्वक अपने दुग्धसे आयु दाता देवता इन्द्रको बढ़ाती हुई । वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ३९

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसन्देवौ देवमवर्धताम् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियन्त्विषिमिन्द्रे वयोदधद्वसुवने० ॥ ४० ॥

अतिजगती छन्द, देव देवता । मन्त्रार्थ (दैव्या देवा होतारा देवा त्रिष्टुभा छन्दसा त्विषिं इंद्रियं वयः इन्द्रे दधत् वयोधसं देवं इन्द्रं देवं अवर्धतां) दिव्य दीप्तिमान् होता दोनों देवता त्रिष्टुप् छंद के द्वारा कान्ति इन्द्रिय और आयुको यजमानमें स्थापन करते हुए आयुदाता दीप्तिमान् इन्द्रदेवताको बढ़ाते हुए । वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४० ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसम्पतिमिन्द्रमवर्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

ब्रा० अनु० छन्द देवी देवता। मंत्रार्थ (तिस्रः देवीः जगत्या छन्दसा शूषं इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् वयोधसं पतिं इन्द्रं अवर्धयन्) इडा भारती सरस्वती तीन देवियोंने जगती छन्दके द्वारा बल इन्द्रिय और आयुको यजमानमें धारणपूर्वक आयुदाता पालक इन्द्रको बढ़ाया। वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४१ ॥

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसन्देवो देवमवर्धयत्। विराजाछन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४२ ॥

अति जगती छंद, देव देवता। मंत्रार्थ- (देवः नराशंसः देवः विराजा छन्दसा रूपं इन्द्रियं वयः इन्द्र दधत् देवं वयोधसं देवं इन्द्रं अवर्धयत्) दानशील मनुष्यों से स्तुतिको प्राप्त यज्ञ देवताने विराट् छंदके द्वारा रूप इन्द्रिय और आयुको इन्द्रमें धारणपूर्वक दीप्तिमान् आयुदाता देवता इन्द्रको बढाया वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ४२

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसन्देवो देवमवर्धयत्। द्विपदा छन्दसेन्द्रियम्भगमिन्द्रे वयोदधद्वसुवने० ॥ ४३ ॥

अति जगती छन्द, वनस्पति देवता। मंत्रार्थ-(देवः वनस्पतिः देवः द्विपदा छन्दसा भगं इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् देवं वयोधसं देवं इन्द्रं अवर्धयत्) दानशील वनस्पति देवताने द्विपाद छन्दद्वारा सौभाग्यरूप इन्द्रिय और आयुको यजमानमें स्थापनपूर्वक दीप्तिमान् आयुदाता देवता इन्द्रको बढाया। वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४३ ॥

देवम्बर्हिर्वारितीनान्देवमिन्द्रं वयोधसन्देवन्देवमवर्धयत् ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने० ॥ ४४ ॥

ब्रा० बृहती छन्द, देव देवता। मंत्रार्थ- (वारितीनां देवं बर्हिः देवं ककुभा छंदसा यशः इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् देवं वयोधसं इन्द्रं देवं अवर्धयत्) जलोत्पन्न औषधोंमें दीप्तिमान् कुशाधिष्ठात्री देवताने ककुप् छन्दके द्वारा कीर्त्तिरूप इन्द्रिय और आयुको यजमानमें स्थापन करते हुए दीप्तिमान् आयुदाता इन्द्र देवताको बढाया। वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४४ ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसन्देवो देवमवर्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयोदधद्वसु० ॥ ४५ ॥

अग्नि देवता । मंत्रार्थ -(देवः स्विष्टकृत् देवः अग्निः अतिच्छन्दसा छन्दसा क्षत्रं इन्द्रियं वयः इन्द्रे दधत् देवं वयोधसं देवं इन्द्रं अवर्धयत्) दानशील शोभनकर्त्ता देवता अग्निने अतिच्छन्द छन्दके द्वारा क्षत से त्राणरूप इन्द्रिय और आयुको यजमान में स्थापन करते हुए दीप्तिमान् आयुदाता देवता इन्द्रको बढ़ाया वसुवने इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशम्बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् । सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन । अधक्षन्मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषे० ॥ ४६ ॥

इसकी व्याख्या इसी अध्याय की ❀ २३ वीं कण्डिकामें होगई ॥ ४६ ॥

इति श्री शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें
सानुवाद अष्टविंश अध्याय समाप्त

अथ ऊनत्रिंशोऽध्यायः ।

समिद्धो अञ्जन् कृदरम्मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः । वाजी वहन्वाजिनञ्जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

बृहदुक्थ त्रिष्टुप्छन्द अग्निदेवता । मन्त्रार्थ -(जातवेदः अग्ने समिद्धः वाजी मतीनाम् कृदरं अञ्जन् मधुमत् घृतं पिन्वमानः वाजिनम् वहन् देवानाम् सधस्थं प्रियम् आवक्षि) हे जातप्रज्ञात अग्ने दीप्त वेगवान् तुम बुद्धियोंके रहस्य को प्रकाशित करते स्वादु घृतको देवताओंमें सींचते हविको देवताओं को देते देवताओंके वांछितको और प्रीतिको प्राप्त कराओ ॥ १ ॥

घृतेनाञ्जन्त्सम्पथो देवयानान्प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् । अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

अश्वो देवता । मन्त्रार्थ-(वाजी घृतेन देवयानान् पथः समञ्जन् प्रजानन् देवान् अप्येतु) घोड़ा घृतसे देवयान मार्गों को प्रकाशित करता देवताओंकी हविको जानता देवताओंको प्राप्त हो (सप्ते प्रदिशः त्वा अनुसचन्ताम्) हे अश्व दिगाश्रय प्राणी तुझे सेवन करें (अस्मै यजमानाय स्वधाम् धेहि) इस यजमानके अर्थ अन्न दो

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते । अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीत वन्हिं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

मंत्रार्थ—(च वाजिन् सप्ते ईड्यः च वन्द्यः असि) और हे वेगवान् अश्व तुम स्तुतियोग्य और नमनीय हो (च आशुः च मेध्यः असि) और शीघ्र ही अश्वमेधयोग्य हो (वसुभिः देवैः सजोषाः जातवेदाः अग्निः प्रीतम् वह्निम् त्वा वहतु) वसुदेवताओंके साथ प्रीतिमान् सर्वज्ञ अग्नि तुझ तुष्ट हविधारकको देवार्पण करे ३

स्तीर्णम्बर्हिः सुष्टुरीमा जुषाणोरुपृथु प्रथमानम्पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनङ्कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

अदितिर्देवता है । मंत्रार्थ-(बर्हिः सुष्टुरीम) हम कुशाको भलेप्रकार बिछावें (सजोषाः स्योनं कृण्वाना जुषाणा अदितिः उरु पृथु पृथिव्याम् प्रथमानम् देवेभिः युक्तम् आस्तीर्णम् सुविते दधातु) और प्रीतियुक्त सुख करनेवाली प्रीयमान अदिति देवी बहुत विस्तीर्ण पृथिवी पर विस्तारित देवताओंसे युक्त बिछाई हुई कुशाको शुभ करनेके निमित्त यज्ञगृहमें स्थापन करो ४

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा विपक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः । ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥ ५ ॥

द्वार देवता है मन्त्रार्थ—(वः एताः द्वारः देवीः सुभगाः विश्वरूपाः उत् आतैः

पक्षोभिः विश्रयमाणाः ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमानाः सुप्रायणाः उ भवन्तु) हे ऋत्विक् यजमानों तुम्हारी ये द्वारदेवियाँ सुन्दर शोभासे युक्त नानारूप विचित्र ऊँचे उठे हुए पक्षरूप कपाटोंसे विस्तार-युक्त गतियोग्य श्रेष्ठ खोलने बन्द करनेके समय शब्द करनेवाली शोभायमान और सुगम ही हों ॥ ५ ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभिसंविदाने । उषासा वाᳬ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥ ६ ॥

नक्तोषसौ देवता हैं । मन्त्रार्थ-(वाम् इह मित्रावरुणा अंतरा सञ्चरन्ती यज्ञानाम् मुखम् अभिसंविदाने सुहिरण्ये सुशिल्पे उषासा ऋतस्य योनौ सादयामि) हे पत्नी यजमान ! तुम दोनोंके इस लोकमें पृथ्वी स्वर्गके मध्य विचरने वाली अग्निहोत्रके होमकालको कहने वाली अच्छी ज्योतिसे युक्त परस्पर प्रतिरूप उषा और रात्रिको यज्ञमें स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

प्रथमा वाᳬ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा । अपिपयश्चोदना वाम्मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥

वाक्प्राणौ देवता । मन्त्रार्थ-(वाम् प्रथमा सरथिना सुवर्णा देवौ विश्वा भुवनानि पश्यन्तौ वाम् चोदना मिमाना प्रदिशा ज्योतिः दिशन्तौ होतारा अपिप्रयं) हे पत्नी यजमान ! तुम दोनोंके मुख्य एक रथपर आरूढ़ सुन्दर वर्ण वाले दीप्यमान सब भुवनोंके द्रष्टा तुम दोनोंके कर्मोंका निर्माण करने वाले और उपदेश द्वारा ब्रह्मज्योतिका दर्शन करानेवाले दोनों होताओंको मैंने तृप्त किया ॥ ७ ॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञᳬ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् । इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञन्नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

देव्यो देवता मन्त्रार्थ-(आदित्यैः भारती नः यज्ञम् वष्टु) आदित्योंसे युक्त भारतीदेवी हमारे यज्ञको चाहे (उपहूता वसुभिः रुद्रैः सह सजोषाः सरस्वती इडा नः आवीत्) आह्वानकी हुई वसुरुद्रोंसह प्रीतियुक्त सरस्वती और इडादेवी हमारे यज्ञकी रक्षा करे (देवीः नः यज्ञम् अमृतेषु धत्त) इस प्रकार परोक्ष कहकर प्रत्यक्ष

कहते हैं कि-हे भारती सरस्वती इडा देवियों ! हमारे यज्ञको देवताओंमें स्थापन करो ॥ ८ ॥

त्वष्टा वीरन्देवकामञ्जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः । त्वष्टेदं विश्वम्भुवनञ्जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥ ९ ॥

त्वष्टा देवता । मन्त्रार्थ-(त्वष्टा देवकामम् वीरम् जजान) त्वष्टाने देवताओंके प्रार्थनीय वीरपुत्रको प्रकट किया (त्वष्टुः अर्वा आशुः अश्वः जायते) और त्वष्टा से ही गतिशील दिशाओंमें व्याप्त सूर्य प्रकट होता है (त्वष्टा इदम् विश्वम् भुवनम् जजान) और परमात्माने इस सब भुवन को उत्पन्न किया (होतः बहोः कर्त्तारम् इह यक्षि) हे मानुष होता कार्यके कर्त्ता परमात्माका इस यज्ञमें यजन करो ॥ ९ ॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२॥ ऋतुशः पाथ एतु । वनस्पतिर्देवलोकम्प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत ॥ १० ॥

अश्वोदेवता । मन्त्रार्थ—(घृतेन त्मन्या समक्तः अश्वः पाथः ऋतुशः देवान् उपेतु) घृतसे देहमें पत्नियोंसे सींचाहुआ अन्न रूप हवि यज्ञकाल पर देवताओंको प्राप्त हो (देवलोकं प्रजानन् वनस्पतिः अग्निना स्वदितानि हव्या वक्षत्) और देवलोकको जानता वनस्पति देवता अग्नि से आस्वादित हवियोंको देवताओंको प्राप्त करो ॥ १० ॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

अग्निर्देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने प्रजापते तपसा वावृधानः सद्यः जातः यज्ञम् दधिषे) हे अग्ने ! प्रजापतिके तप से वृद्धि युक्त शीघ्र अरणिकाष्ठसे उत्पन्न तुम यज्ञको धारण करते हो स्वाहा कृतेन हविषा पुरोगाः याहि) और स्वाहाकार कह कर होमे हुए हविके साथ अग्रगामी होते तुम देवताओंको प्राप्त करो (साध्याः देवाः हविः अदन्तु) तेरे जाने पर साध्य-देवता हविको भक्षण करो ॥ ११ ॥

यदक्रन्दः प्रथमञ्जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य

बाहू उपस्तुत्यम्महि जातन्ते अर्वन् ॥ १२ ॥

जमदग्नि दीर्घतमा ऋ०, त्रि० छ०, अ० दे० है। मन्त्रार्थ-(अर्वन् यत् प्रथमम् समुद्रात् जायमानः उतवा पुरीषात् उद्यन् अक्रन्दः) हे अश्व ! जब तुमने प्रथम समुद्रसे उच्चैःश्रवा रूपमें उत्पन्न होकर अथवा पशुसे उत्पन्न होकर हेषा-शब्द किया (ते महि उपस्तुत्यम् जातम् श्येनस्य पक्षौ हरिणस्य बाहू) तब तेरा माहात्म्य स्तुति योग्य हुआ जैसे श्येनके पक्ष शौर्यसे और हरिणकी भुजा वेगसे १२

यमेन दत्तन्त्रित एनमायुनगिन्द्र एणम्प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ १३ ॥

मन्त्रार्थ-(वसवः सूरात् अश्वम् निरतष्ट) अष्टवसुने सूर्यमण्डलसे अश्व को निकाला (त्रितः यमेन दत्तम् एनम् अयुनक्) वायुने यमके दिये हुए इस अश्वको जोड़ा (प्रथमः इन्द्रः एनम् अध्यतिष्ठत्) पहिला इन्द्र इस अश्व पर चढ़ा (गंधर्वः अस्य रशनाम् अगृभ्णात्) विश्वावसु गन्धर्वने इस अश्वकी रस्सी को ग्रहण किया ॥ १३ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समयाविपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥

मन्त्रार्थ-(अर्वन् गुह्येन व्रतेन यमः असि) हेअश्व ! तुम गोप्य कर्मद्वारा यम हो (आदित्यः असि) सूर्य हो (त्रितः असि इन्द्र हो (सोमेन समया विपृक्तः असि) सोमके साथ एकत्वको प्राप्त हो (दिवि ते त्रीणि बंधनानि आहुः) आकाशमें तेरे तीन ऋक्यजुसामरूप मण्डलान्तर पुरुष अर्चिधर्वन कहे हैं ॥ १४ ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परञ्जनित्रम् ॥ १५ ॥

मन्त्रार्थ-(अर्वन् यत्र ते परमम् जनित्रम् आहुः) हे अश्व ! जहाँ पर तेरा श्रेष्ठ जनक सूर्य कहा (दिवि ते त्रीणि बंधनानि आहुः) वहाँ स्वर्गमें तेरे तीन

पूर्वोक्त बन्धन कहे (अप्सु त्रीणि) जलोंमें तीन बन्धन खेती वर्षा बीज कहे (अन्तः समुद्रे त्रीणि) अन्तरिक्षमें तीन बंधन मेघ बिजली गरज कहे (उत वा वरुणः मे आ-छन्त्सि) और वरणीय तुम दोनों मेरी प्रशंसा करते हो ॥ १५ ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाᳬ सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्यया अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

मन्त्रार्थ-(वाजिन् ते इमा अवमार्जनानि अपश्यम्) हे अश्व ! तेरे इन अवमार्जनसाधन वेतस कटादिको मैं देखता हूँ (शफानाम् सनितुः इमा निधाना) पादनिवासके इन स्थानोंको देखता हूँ (अत्र ते भद्राः गोपाः रशनाः) इस यज्ञमें तेरी कल्याणरूप रक्षा करनेवाली रस्सियोंको देखता हूँ (याः ऋतस्य अभिरक्षन्ति) जो रस्सी यज्ञकी रक्षा करती हैं ॥ १६ ॥

आत्मानन्ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तम्पतङ्गम् । शिरो अपश्यम्पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानम्पतत्रि ॥ १७ ॥

मन्त्रार्थ-(अवः दिवा पतङ्गम् पतयन्तम् ते आत्मानम् मनसा आरात् अजानाम्) हे अश्व ! नीचेसे आकाशमार्गद्वारा सूर्यमें गिरते तेरे आत्माको दूर गया जानता हूँ (सुगेभिः अरेणुभिः पथिभिः जेहमानम् पतत्रि शिरः अपश्यम्) और सुगम उपद्रव रहित देवयानमार्गोंसे चलने वाले गमनशील तेरे शिरको सूर्यरूप देखता हूँ ॥१७॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यञ्जिगीषमाणामिष आ पदे गोः । यदा ते मर्तो अनुभोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ १८ ॥

मन्त्रार्थ—(अ यदा मर्तः ते भोगम् अन्वानट्) हे अश्व ! जब मनुष्यने तेरे भोगको समर्पण किया (ग्रसिष्ठः आत् इत् ओषधीः अजीगः) अत्यन्त भक्षक तुमने उसी समय ओषधियोंको भक्षण किया (अत्र गोः पदे ते उत्तमम् इषः जिगीषमाणं रूपम् आ अपश्यम्) इस सूर्यमंडलमें तेरे उत्तम अन्नोंको यज्ञ करना चाहते रूपको सब ओरसे देखा ॥ १८ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोनु भगः कनीनाम् । अनु व्राता सस्तन

सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यन्ते ॥ १९ ॥

मन्त्रार्थ-(अर्वन् रथः त्वा अनु) हे अश्व ! रथ तेरे पीछे वर्त्तमान है(मर्यः अनु) मनुष्य तेरे पीछे वर्त्तमान है (गावः अनु) गौ पीछे वर्त्तमान हैं (कनीनाम् भगः अनु) कन्याओंका सौभाग्य पीछे वर्त्तमान है (व्रातासः तव सख्यम् अन्वीयुः) मनुष्योंके समूहने तेरी मित्रताको प्राप्त किया (देवाः ते वीर्यम् अनुममिरे) और देवताओंने तेरी सामर्थ्यको अनुमित किया ॥ १९ ॥

हिरण्यशृङ्गो यो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् । देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तम्प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ २० ॥

मन्त्रार्थ--(यः प्रथमः हिरण्यशृङ्गः) जो मुख्य स्वर्णमय मुकुटधारी है (यः अर्वन्तम् अध्यतिष्ठत्) जो अश्वपर आरूढ़ हुआ (अवरः इन्द्रः आसीत्) वह क्षुद्र ऐश्वर्यवान् हुआ (अस्य पादाः मनोजवाः देवाः) इस अश्वके पाद मनकी समान वेगवाले हैं (इत् अस्य अद्यम् हविः आयन्) देवताने ही इस अश्वके भक्षणयोग्य हविको प्राप्त किया ॥ २० ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳशूरणासो दिव्यासो अत्याः । हꣳसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ २१ ॥

मन्त्रार्थ- यत् ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः शूरणासः दिव्यासः अत्याः अश्वाः श्रेणिशः हंसाः इव संयन्ते) जब पृथुजघन वक्षःस्थलवाले कृशोदर अति पराक्रमी दिव्य सूर्यके रथमें युक्त घोड़े श्रेणीभूत हंसोंकी समान प्रयत्न करते हैं (दिव्यम् अज्मम् आक्षिषुः) तब दिव्य गमन वा संग्रामको प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

तव शरीरम्पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् । तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

मन्त्रार्थ-(अर्वन् तव शरीरम् पतयिष्णु) हे अश्व ! तेरा शरीर पतनशील है (तव चित्तम् वातः इव ध्रजीमान्) तेरा चित्त वायुकी समान गतिमान् है (पुरुत्रा विष्ठिता जर्भुराणा शृङ्गाणि अरण्येषु चरंति) इस प्रकार तुझ सायुज्य मोक्ष प्राप्त करनेवालेकी बहुप्रकारसे स्थित विकसित दीप्तियाँ वनोंमें दवाग्निरूपसे फैलती हैं २२

उपप्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

मन्त्रार्थ—(वाजी देवद्रीचा मनसा दीध्यानः अर्वा शसनम् उपप्रागात्) गमनशील देवार्पण मनसे दीप्यमान अश्व शमनस्थानपर प्राप्त हुआ (अस्य पुरः नाभिः अजः नीयते) और इस अश्वके आगे नाभि है उसमें अज स्थापन किया जाता है (पश्चात् रेभाः कवयः अनुयन्ति) पीछे स्तुति करनेवाले ऋत्विज चलते हैं ॥२३॥

उपप्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वान् अच्छा पितरम्मातरञ्च । अद्या देवान् जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

मन्त्रार्थ—(यत् अर्वान् पितरम् च मातरम् अच्छा परमम् सधस्थं उपप्रागात्) जिसकारण अश्व पृथिवी स्वर्गके समीप सहस्थान देवलोकमें प्राप्तहुआ (अ अद्य जुष्टतमः देवान् गम्याः) हे यजमान ! अब परमप्रिय तुम देवताओंको प्राप्त करो (अथ हि दाशुषे वार्याणि आशास्ते) तदन्तर ही देवत्वको प्राप्त हविदाता यजमानके अर्थ वरणीय भोग वस्तुएं देवतादें २४

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवा देवान्यजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वन्दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २५ ॥

जमदग्निऋषि अग्निर्देवता मन्त्रार्थ—(मित्रमहः जातवेदः अद्य समिद्धः देवः मनुषः दुरोणे देवान् आवह) हे यजमानसे पूजित सर्वज्ञाग्ने आज दीप्त दानादि गुणयुक्त तुम यजमानके यज्ञगृहमें देवताओंको लाओ (च यजसि) जिस कारण तुम ही यजन करते हो (त्वम् दूतः कविः चिकित्वान् प्रचेताः असि) तुम ब्रह्मा विष्णु महेश रूप वेदवक्ता चैतन्य प्रकृष्ट चित्तसे युक्त हो ॥ २५ ॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरन्नः ॥ २६ ॥

मन्त्रार्थ-(तनूनपात् सुजिव्हा ऋतस्य यानान् पथः मध्वा समञ्जन् स्वदय) हे आत्माके पौत्र श्रेष्ठ जिव्हा वाले अग्ने ब्रह्म-प्राप्ति साधनमार्गोंको मधुररससे सींचते तुम हवियोंको भक्षण करो (च धीभिः मन्मानि उत यज्ञम ऋन्धन् अध्वरम् देवत्रा कृणुहि) और बुद्धिओंके साथ ज्ञानों और यज्ञको वृद्धि देतेहुए हमारे यज्ञको देवताओंको प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥

नराशंसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः । ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २७ ॥

नाराशंसो दे० मन्त्रार्थ-(यज्ञैः यजतस्य नाराशंसस्य महिमानम् एषाम् उपस्तोषाम) यज्ञोंसे पूजित भक्तोंसे स्तुत अग्निकी महिमाको इन देवताओंके मध्य हम स्तुत करते हैं (ये सुक्रतवः शुचयः धियन्धाः देवाः उभयानि हव्या स्वदन्ति) जो शुभकर्मकर्त्ता शुद्ध ज्ञानीदेवता अधिदैव आध्यात्म दोनों प्रकारके हवियोंको भक्षण करतेहैं

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥

अग्नि देवता मन्त्रार्थ-(अग्ने आजुह्वानः ईड्यः वन्द्यः च वसुभिः सजोषाः आयाहि) हे अग्ने ! देवताओंका आव्हान करनेवाले स्तुत योग्य नमनीय और वसुदेवताओंसे समान प्रीतिवाले तुम आओ (यह्व त्वम् देवानाम् होता असि) हे महन् तुम देवताओंका आव्हान करनेवाले हो (सः इषितः यजीयान् एनान् यक्षि) वह प्रेषित वा अभीष्ट अत्यन्त यष्टा तुम इन देवताओंको तृप्त करो ॥ २८ ॥

प्राचीनम्बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्युप्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

बर्हिदेवता । मन्त्रार्थ-(वितरम् वरीयः देवेभ्यः च अदितये स्योनम् प्राचीनम् बर्हिः अन्हाम् अग्रे अस्याः पृथिव्याः वस्तोः प्रदिशा उ वृज्यते) अतिश्रेष्ठ देवताओं और अदिति सुखदाता प्रागग्र कुशा पूर्वाह्नकालपर इस वेदीके आच्छादन करनेका श्रुतिवाक्यसे ही फैलाई जाती है (विप्रथते) नाना प्रकारसे विस्तीर्ण होती है ॥ २९ ॥

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्ताम्पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥३० ॥

द्वारो देवता । मन्त्रार्थ-(उर्विया व्यचस्वतीः द्वारः देवीः विश्रयन्ताम्) बड़ी होनेसे अवकाशवाली द्वाराभिमानी देवियां विवृत्त हों (न जनयः पतिभ्यः) जैसे स्त्रियाँ पतियोंके अर्थ (बृहतीः विश्वमिन्वा शुम्भमानाः देवेभ्यः सुप्रायणाः भवत) अब प्रत्यक्ष कहते हैं कि-बड़ी विश्वकी गमनस्थान शोभायमान तुम देवताओंके निमित्त सुगम होओ ॥ ३० ॥

आसुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतान्नियोनौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधिश्रियꣳ शुक्रपिशन्दधाने ॥ ३१ ॥

त्रिष्टुप्छन्द अहोरात्र दे० । मन्त्रार्थ—(सुष्वयन्ते यजते उषाके दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे शुक्रपिशम् श्रियम् अधिदधाने उषासानक्ता योनौ अनिसदताम्) परस्पर हंसती वा भलेप्रकार सोती यजनयोग्य परस्पर समीपस्थ दिव्यस्त्री महान् सुन्दर आभरण वा ज्योतिसे युक्त शुक्लबहुरूप शोभाको धारण करनेवाली दिन रात्रिरूप देवी यज्ञगृहमें भलेप्रकार बैठा३१

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञम्मनुषो यजध्यै । प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ३२ ॥

होतारौ देवता । मन्त्रार्थ—(दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा कारू प्राचीनम् ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता मनुषः यजध्यै यज्ञम् मिमाना) दिव्य दोनों होता आद्य वेदवक्ता स्वयंकर्त्ता जो हैं वे पूर्वदिशामें होनेवाली आहवनीयको श्रुतिवाक्यसे कहने वाले मनुष्योंके यज्ञको निर्माण करते यज्ञों में प्रेरणा करनेवाले हैं ॥ ३२ ॥

आ नो यज्ञम्भारती तूयमेत्विडामनुषवदिह चेतयन्ती । तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳसरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ ३३ ॥

देव्यो देवता है। मन्त्रार्थ-(इह मनुष्वत् चेतयन्ती भारती इडा सरस्वती नः यज्ञम् तूयम् आ एतु) इस कर्ममें मनुष्यकी समान कर्मज्ञान करानेवाली भारती इडा सरस्वतीदेवी हमारे यज्ञमें शीघ्र आओ (स्वपसः तिस्रः देवीः इदम् बर्हिः आसदन्तु) शुभकर्मा तीनों देवी इस सुखरूप कुशापर बैठो ॥ ३३ ॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा। तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवन्त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ३४ ॥

होता देवता है। मन्त्रार्थ-(होतः यजीयान् विद्वान् इषितः अद्य तम् त्वष्टारम् देवम् इह यक्षि) हे होता! अत्यन्त यष्टा अपने अधिकार के ज्ञाता प्रेषित वा ईप्सित तुम अब उस मायासे पृथक् करने वाले परमात्मा देवको इस यज्ञमें पूजो (यः इमे जनित्री द्यावापृथिवी विश्वा भुवनानि रूपैः अपिंशत्) जिस महानारायणने इन जीवोत्पादक पृथिवी स्वर्ग और सब भुवनों को देवता मनुष्य पशु पक्षी आदिसे युक्त किया ॥ ३४ ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानामपाथ ऋतुथा हवींषि। वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यम्मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

देवा देवता है। मन्त्रार्थ (देवानाम् पाथः मधुना घृतेन समञ्जन् ऋतुथा त्मन्या हवींषि उपावसृज) यजमान कहता है कि कि हे होता! तुम देवताओं के हवि को मधुर रस घृतसे सींचते यज्ञकाल पर परमेश्वर में हवियों को छोड़ो (वनस्पतिः शमिता देवः अग्निः हव्यम् स्वदन्तु) यूप शमिता देवता अग्नि ये तीनों हवियों को स्वाद करो ॥ ३५ ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहा कृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

अग्नि देवता। मन्त्रार्थ-(सद्यः जातः अग्निः देवानाम् पुरोगाः अभवत्) शीघ्र प्रादुर्भूत अग्नि देवताओं का अग्रगामी हुआ (यज्ञम् व्यमिमीत) यज्ञको विशेषकर निर्माण किया (अस्य होतुः ऋतस्य प्रदिशि वाचि स्वाहाकृतम् हविः देवाः

अदन्तु) इस देवताओं का आह्वान करने वाले आहवनीयरूपसे स्थित अग्निकी पूर्व- में वागिन्द्रिय उपलक्षित मुखमें स्वाहाकार पूर्वक होमेहुए हविको देवता भक्षण करें॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

मधुच्छन्दा ऋ०, गायत्री छन्द । मन्त्रार्थ-(अकेतवे मर्याः केतुम् अपेशसे पेशः कृण्वन् उषद्भिः समजायथाः) हे अग्ने अज्ञानी मनुष्यके अर्थ ज्ञानको तथा रूप-हीनको रूप प्राप्त कराते अग्निमें होम करने वाले यजमानों के द्वारा प्रकट हुए हो ३७

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे । अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ ३८ ॥

भरद्वाजसुत पायुऋषि, त्रिष्टुप्छन्द वर्म देवता । इस प्रकार अग्निकी स्तुति करके अश्वरक्षणके अर्थ योधा और युद्धोपकरणों की स्तुति करते हैं मंत्रार्थ-(यत्, वर्मी, समदाम्, उपस्थे, याति, प्रतीकम्, जीमूतस्य, इव भवति) जब कवचका धारण करने वाला संग्रामोंके बीचमें जाता है तब सेनाका मुख मेघकी समान होता है (अनाविद्धया, तन्वा, त्वम्, जय) हे कवचधारी अक्षत शरीरके साथ तुम जयकरो (वर्मणः महिमा, त्वा, पिपर्तु) और कवचकी महिमा तुमको रक्षा करै ॥ ३८ ॥

धन्वना गा धन्वनाजिञ्जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥

धनु देवता । मंत्रार्थ-(धन्वना, गाः, जयेम) धनुषकी स्तुति करते हैं धनुषके प्रताप से गोरूप धन को जीतें (धन्वना, आजिम्) धनुषके द्वारा राजमार्गको जीतें (धन्वना तीव्राः, समदः, जयेम) धनुषसे उग्रशत्रु संग्रामोंको जीतें (धनुः शत्रोः,अपकामम्, कृणोति) दोनों प्रकारका धनुष शत्रुके मनोरथाभावको करता है (धन्वना, सर्वाः,प्रदिशः जयेम) धनुषसे सब दिशाओं को जीतें ॥ ३९ ॥

वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णम्प्रियꣳ सखायम्परिषस्वजाना । योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥ ४० ॥

ज्या देवता है। मंत्रार्थ-(इमम्, समने पारयन्ती, ज्या, धन्वन्, अधि, वितता, योषा, इव, शिक्ते, प्रियम्, सखायम्, परिषस्वजाना, इत्, वदयन्ती, इव, कर्णम्, आगनीगन्ति) ज्याकी स्तुति करते हैं यह संग्राममें विजय करती प्रत्यंचाके ऊपर विस्तारित होती स्त्रीकी समान अव्यक्त शब्द करती है प्रिय बाणरूप सखा को आलिंगन करती सी और कहना चाहती सी योधाके कान तक आती है ॥ ४० ॥

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रम्बिभृतामुपस्थे । अप शत्रून्विध्यताꣳ संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४१ ॥

धनुःकोटी देवता है। मन्त्रार्थ-(समना योषा, इव, आचरन्ती, संविदाने, अमित्रान् विष्फुरन्ती, ते, इमे, आर्त्नी, उपस्थे, बिभृताम्) धनुषकोटीकी स्तुति करते हैं एक पतिमें मन लगाने वाली स्त्री की समान आचरणवाली परस्पर संकेत करती शत्रुओं पर टंकार करती वे ये धनुषकोटी मध्यभागमें बाणको धारण करो (इव, माता, पुत्रम्, शत्रून्, अपविध्यताम्) जैसे माता पुत्रको और शत्रुको ताड़न करो ॥ ४१ ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य । इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निबद्धो जयति प्रसूतः ॥ ४२ ॥

इषुधि देवता है। मंत्रार्थ —(इषुधिः, बह्वीनाम्, पिता) इषुधिकी स्तुति करते हैं तरकस बहुत बाणोंका पालक है (अस्य, पुत्रः बहुः) इसका पुत्र बहुत संख्यावाला है (समना, अवगत्य, चिः आकृणोति) संग्रामोंको जानकर चि शब्द करता है (च, पृष्ठे, निबद्धः, प्रसूतः सर्वाः, संकाः, पृतनाः, जयति) फिर पृष्ठ पर बंधाभी आज्ञा दिया हुआ सब योधाओंके गतिस्थान शत्रुसेना को जीतता है ॥ ४२ ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरा यत्र यत्र कामयते सुषारथिः । अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ४३ ॥

जगती छन्द सारथ्यादयो देवता । मन्त्रार्थ-(रथे, तिष्ठन्, सुषारथिः, यत्र २, कामयते, पुरः वाजिनः, नयति) आधे मंत्र से सारथि की और आधे से वागडोरों की स्तुति करते हैं रथमें बैठता अच्छा सारथि जहां जहां चाहता है आगे वर्त्तमान घोड़ों

को पहुंचाता है (पश्चात्, रश्मयः, मनः, अनु यच्छन्ति) पीछे वर्त्तमान होती वागडोर अश्वके चित्तको वशवर्त्ती करती है (अभीशूनाम्, महिमानम्, पनायत) हे मनुष्यों वागडोरों की महिमा को स्तुत करो ॥ ४३ ॥

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः । अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ २॥ रनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

त्रिष्टुप्छन्द अश्व देवता । मन्त्रार्थ—(वृषपाणयः, तीव्रान्, घोषान्, कृण्वते) घोड़ों की स्तुति करते हैं अश्वावार पुरुष जय जय शब्दों को करते हैं (रथेभिः, सह वाजयन्तः, प्रपदैः, अमित्रान्, अवक्रामन्तः अश्वाः, शत्रून्, क्षिणन्ति) रथ सहित चलते घोडे खुरों से शत्रुओंको आक्रमण करते समर्थ घोडे शत्रुओंको नष्ट करते हैं ।४४।

रथवाहणꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधन्निहितमस्य वर्म । तत्रा रथमुपशग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ॥ ४५ ॥

रथ देवता । मन्त्रार्थ—(अस्य, रथवाहनम्, नाम, हविः) इस रथ का रथवाहन नाम हविर्धान शकट है (यत्र, अस्य वर्म, आयुधम्, निहितम्) जिसमें इस योधाका कवच आयुध स्थापित है (तत्र, अ, विश्वाहा सुमनस्यमानाः, वयम्, शग्मम् रथम्, उपसदेम) उसमें सदा अनुकूलचित्तवाले हम सुखदाता रथको स्थापन करें

स्वादुषꣳ सदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रे श्रितः शक्तीवन्तो गभीराः । चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतो वीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ४६ ॥

रथगोपा देवता । मन्त्रार्थ—(स्वादुषंसदः, पितरः, वयोधाः, कृच्छ्रेश्रितः, शक्तीवन्तः, गभीराः, चित्रसेनाः, इषुबलाः अमृध्राः सतोवीराः, उरवः व्रातसाहाः) रथगोपोंकी स्तुति करते हैं सुख से बैठने वाले रक्षक अन्न वा आयुध के धारण करने वाले कष्टमें सेवन योग्य सामर्थ्य वा आयुधधारी गम्भीर बल वा बुद्धिवाले नाना प्रकारकी सेनावाले वाणरूप बलयुक्त कठिनांग वा उग्रशासनकर्त्ता विद्यमानबल के प्रेरक विशाल वा पृथुजघनोरस्क शूर समूहों को जीतने वाले ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावा पृथिवी अनेहसा । पूषा नः पातु दुरिता-दृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ४७ ॥

स्वराट् त्रिष्टुप्छन्द रथगोपा देवता । मन्त्रार्थ-(ब्राह्मणासः, सोम्यासः, पितरः, ऋतावृधः, नः) ब्राह्मण सोमपान योग्य पितर और सत्यकी वृद्धि करनेवाले देवता हमारी रक्षा करें (शिवेन, अनेहसा, द्यावा-पृथिवी, पूषा, नः, पातु) कल्याणकारी अपराधनिवर्तक पृथिवी स्वर्ग सूर्य हमारी रक्षा करो (दुरितात्, रक्ष) पापसे रक्षा करो (किः, अघशंसः, नः मा, ईशत) कोई दुष्ट हमारे ऊपर ऐश्वर्यको मत पाओ

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता । यत्रा नरः सञ्च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन् ॥ ४८ ॥

इषु देवता । मन्त्रार्थ-(सुपर्णं, वस्ते) जो बाण श्रेष्ठ पक्षिपिच्छ को धारण करता है (अस्याः, दन्तः, मृगः) इस बाणका फल शत्रुओंका अन्वेषक है (गोभिः सन्नद्धा प्रसूता पतति) और किरणोंसे सन्नद्ध धनुषधारी से प्रेरित होता गिरता है अर्थात् शत्रुसेनामें जाता है (च यत्र नरः सन्द्रवन्ति) और जहाँ पर योधा जाते हैं (च, विद्रवन्ति) और नाना प्रकार की गति करते हैं (तत्र, इषवः अस्मभ्यम्, शर्म आयंसन्) उस युद्धमें बाण हमारे अर्थ सुखको दें ॥ ४८ ॥

ऋजीते परिवृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥

इषु देवता । मन्त्रार्थ-(ऋजीते नः परिवृङ्धि) हे ऋजुगामी बाण हमको त्यागो अर्थात् हम पर मत पड़ो (नः तनूः अश्मा भवतु) हमारा शरीर पाषाणतुल्य दृढ़ होओ (सोमः नः अधिब्रवीतु) ईश्वर हमको अधिक कहो (अदितिः शर्म यच्छतु) अखंडता भगवती सुख दो ॥ ४९ ॥

आजंघन्ति सान्वेषाञ्जघनान् उपजिघ्नते । अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥

कशा देवता । मन्त्रार्थ -(अश्वाजनि समत्सु प्रचेतसः अश्वान् चोदय) कशा की स्तुति करते हैं हे कशे संग्रामों में तुम शूर मन वाले घोड़ोंको जयके लिये प्रेरित करो (एषाम् सानु आजंघन्ति) इन घोड़ों की सानुतुल्य मांसोपचित अंगों को ताड़न करते हैं (जघनात् उपजिघ्नते) कटिभागों का ताड़न करते हैं ॥ ५० ॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुञ्ज्याया हेतिम्परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमाꣳ सम्परिपातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

त्रिष्टुप् छन्द, हस्तघ्न देवता । मंत्रार्थ-(विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् हस्तघ्नः पुमांसम् विश्वतः परिपातु) हस्तघ्न की स्तुति करते हैं सब ज्ञानोंका ज्ञाता शूर खेटक वा प्रकोष्ठत्राण मुझको सब ओरसे रक्षा करो (ज्यायाः हेतिम् परिबाधमानः बाहुम् पर्येति इव अहिः भोगैः) जो कि ज्या के प्रहारको निवारण करता भुजाको वेष्टन करता है जैसे सर्प अपने देहसे हस्त आदिको वेष्टित करता है ॥ ५१ ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ ५२ ॥

भुरिगार्षी पंक्ति छन्द रथ देवता । मन्त्रार्थ-(वनस्पते वीड्वङ्गः भूयाः) हे वनस्पतिविकार काष्ठमय रथ दृढ़ अङ्ग हो (अस्मत् सखा प्रतरणः सुवीरः गोभिः सन्नद्धः असि) हमारा सखारूप संग्राम-पारगामी शुभ रथीवाला रत्नों की किरणों से सन्नद्ध हो (वीडयस्व) आपको स्तम्भित कर (आस्थाता जेत्वानि हि जयतु) तेरा रथी वीर जेतव्य पदार्थों को ही जय करो ॥ ५२ ॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः । अपामोजमानम्परि-गोभिरावृतमिंद्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥ ५३ ॥

निचृदार्षी जगती छन्द । मन्त्रार्थ—(दिवः पृथिव्याः पर्यद्भृतम् ओजः वनस्पतिभ्यः पर्याभृतम् सह अपाम् ओजमानम् गोभिः पर्यावृतम् इन्द्रस्य वज्रम् रथम् हविषा यज) हे अध्वर्यु तुम स्वर्ग पृथिवीसे उद्धृत तेजःस्वरूप वृक्षों से बलरूप जलों के सार किरणों से वेष्टित वज्रसे उत्पन्न रथको हविसे यजन करो ॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकम्मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः । सेमान्नो हव्यदातिञ्जुषाणो देवरथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ५४ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द। मन्त्रार्थ-(देवरथ इन्द्रस्य वज्रः मरुताम् अनीकम् मित्रस्य गर्भः वरुणस्य नाभिः) हे देवरथ तुम वज्रसे उत्पन्न जयदाता मरुत् गणके साधक सूर्य के गर्भरूप वरुणके नाभिरूप हो (सः नः इमाम् हव्यदातिम् जुषाणः हव्या प्रतिगृभाय) वह तुम हमारे इस हविर्दानको सेवन करते हवियोंको ग्रहण करो

उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥ ५५ ॥

भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द दुन्दुभि देवता मन्त्रार्थ-(दुन्दुभे पृथिवीम् उत द्याम् उपश्वासय) हे दुन्दुभे पृथिवी और अन्तरिक्षको शब्दित करो (वेष्टितम् जगत् पुरुत्रा ते मनुताम्) नाना प्रकारसे स्थित स्थावर जङ्गमरूप विश्व बहुत प्रकारसे तुझको जानो (सः इन्द्रेण देवैः सजूः दूराद् दवीयः शत्रून् अपसेधय) वह इन्द्र और देवताओंसे प्रीतियुक्त तुम बहुत दूर भी शत्रुओंको हटादो ॥ ५५ ॥

आक्रन्दय बलमोजो न आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः। अपप्रोथ दुन्दुभे दुच्छना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ ५६ ॥

त्रिष्टुप्छन्द दुन्दुभि देवता। मन्त्रार्थ-(दुन्दुभे बलम् आक्रन्दय) हे दुन्दुभे! शत्रुसेना को रुलाओ (नः ओजः आधाः) हमको तेज दो (दुरिता बाधमानः निष्टनिहि) पापोंका निरादर करते शब्द करो (इतः दुच्छुनाः अपप्रोथ) हमारी सेना के सकाशसे श्वानसदृश शत्रुओंको नष्ट करो (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) क्योंकि तुम इन्द्र की मुष्टि हो (वीडयस्व) इस कारण हम को दृढ़ करो ॥ ५६ ॥

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥

प्रजापतिर्ऋषि भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्द इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(इन्द्रः अमूः आ अज) हे परमेश्वर! तुम इन वैरी सेनाओं को सब ओरसे हटाओ (दुन्दुभिः केतुमत् वावदीति) जिस कारण दुन्दुभि बुद्धिपूर्वक अत्यन्त शब्द करती है (इमाः प्रत्यावर्त्तय) इन हमारी सेनाओं को जय के साथ लौटाओ (नः अश्वपर्णः नरः

संचरन्ति) और हमारे अश्वसमान चलने वाले योधा घूमते हैं (अस्माकम् रथिनः जयन्तु) हमारे रथी जयको प्राप्त करें ॥ ५७ ॥

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सरस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः सꣳहितोऽधो रामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

मन्त्रार्थ-(कृष्णग्रीवः आग्नेयः मेषी सरस्वती बभ्रुः सौम्यः श्यामः पौष्णः शितिपृष्ठः बार्हस्पत्यः शिल्पः वैश्वदेवः अरुणः ऐन्द्रः कल्माषः मारुतः संहितः ऐन्द्राग्नः अधो रामः सावित्रः एकशितिपात् कृष्णः पेत्वः वारुणः) कृष्णग्रीव पशुका देवता अग्नि है, मेषीका देवता सरस्वती है, पिङ्गलवर्ण पशु का देवता सोम है, कृष्णवर्ण पशुका देवता पूषा है, श्यामपृष्ठ पशुका देवता बृहस्पति है, चित्रवर्ण पशुके देवता विश्वेदेवा हैं, रक्तवर्ण पशुका देवता इन्द्र है, कर्बुरवर्ण पशुके देवता मरुत हैं, दृढांग पशुका देवता इन्द्राग्नि है, अधोदेशमें श्वेतपशुका देवता सविता है, एक श्वेतपादवाले पशु एक पांव श्वेत अन्यत्र कृष्णवर्ण पशु वेगवान् पशुका देवता वरुण है ॥ ५८ ॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णोजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ५९

मन्त्रार्थ—(रोहिताञ्जिः अनड्वान् अनीकवते अग्नये अधोरामौ सावित्रौ रजतनाभी पौष्णौ पिशङ्गौ तूपरौ वैश्वदेवौ कल्माषः मारुतः कृष्णः अजः आग्नेयः मेषी सरस्वती पेत्वः वारुणः) रक्ततिलकवाला वृषभ मुख या सेनावाले अग्निके निमित्त है अधोभाग में श्वेत दो पशु सविता देवतावाले हैं, रजतवर्ण नाभिवाले दो पशु पूषा देवता वाले हैं, पीत और निश्टङ्ग दो पशु विश्वेदेवा देवताके हैं, कर्बुरवर्ण पशु का देवता मरुत् है श्यामवर्ण मेषका देवता अग्नि है मेषीका देवता सरस्वती है, वेगवान् पशुका देवता वरुण है ॥ ५९ ॥

अग्नये गायत्राय त्रिवृते रथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायै-

कादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविꣳशाभ्यां वैराजाभ्याम्पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रिꣳशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

मन्त्रार्थ-(गायत्राय त्रिवृते रथन्तराय अग्नये अष्टाकपालः त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हताय इन्द्राय एकादशकपालः जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यः वैरूपेभ्यः विश्वेभ्यः देवेभ्यः द्वादशकपालः अनुष्टुभाभ्याम् एकविंशाभ्याम् वैराजाभ्याम् मित्रावरुणाभ्याम् पयस्या पांक्ताय त्रिणवाय शक्वराय बृहस्पतये चरुः औष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय सवित्रे द्वादशकपालः प्राजापत्यः चरुः विष्णुपत्न्यै अदित्यै चरुः वैश्वानराय अग्नये द्वादशकपालः अनुमत्यै अष्टाकपालः) गायत्रीसे स्तुत त्रिवृत्सोमसे स्तुत रथन्तर सामसे स्तुत अग्निके निमित्त अष्टाकपाल में संस्कृत पुरोडाश करना चाहिये त्रिष्टुप्से स्तुत पञ्चदश स्तोमसे स्तुत बृहत्सामसे स्तुत इन्द्रके लिये एकादशकपाल में संस्कृत पुरोडाश करना चाहिये जगतीछन्दसे स्तुत सप्तदश स्तोमसे स्तुत वैरूप सामसे स्तुत विश्वेदेवाओं के लिये द्वादशकपालमें संस्कृत पुरोडाश करना चाहिये अनुष्टुप्से स्तुत एकविंशस्तोमसे स्तुत वैराजसामसे स्तुत मित्रावरुण देवताओं के लिये दुग्धमें श्रितचरु करना चाहिये पंक्तिछन्दसे स्तुत त्रिणवस्तोमसे स्तुत शक्वरसामसे स्तुत बृहस्पति के लिये चरु करना चाहिये उष्णिक् छन्दसे स्तुत त्रयस्त्रिंशस्तोमसे स्तुत रैवत सामसे स्तुत सविता वा शिवके अर्थ द्वादशकपालमें संस्कृत पुरोडाश करना चाहिये प्रजापति देवताका चरु करना चाहिये विष्णु पत्नी अदितिके लिये चरु करना चाहिये वैश्वानर अग्निके लिये द्वादशकपालमें संस्कृत चरु करना चाहिये अनुमतिदेवीके लिये अष्टकपालमें संस्कृत पुरोडाश करना चाहिये ॥ ६० ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त

❀ अथ त्रिंशोऽध्यायः ❀

अथ पुरुषमेध

इन ३०।३१ दो अध्यायोंको नारायण पुरुषने देखा है इसमें पुरुषरूप परमात्मा का यजन होता है इस कारण इसको पुरुषमेध कहते हैं ॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञम्प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु ॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्र की व्याख्या अध्याय ११ । ७ और ३ । ३५ में होगई ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ ३ ॥

नारायण ऋषि गायत्री छन्द सविता देवता । मंत्रार्थ-(देव. सवितः, विश्वानि, दुरितानि, परासुव) हे देव सूर्य वा नाना प्रकारके अवतारोंसे क्रीडनशील विष्णो सब पापोंको हमसे दूर करो (यत्, भद्रम्, तत् नः, आसुव) जो कल्याण है वह हमको प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः सवितारन्नृचक्षसम् ॥ ४ ॥

मंत्रार्थ—(चित्रस्य, वसोः, राधसः, विभक्तारम्,नृचक्षसम्, सवितारम्, हवामहे) हम नाना प्रकारके धन और योग- धन को विभाग कर देने वाले अन्तर्यामी सब के प्रेरक परमेश्वर को आव्हान करते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यन्तपसे शूद्रन्तमसे तस्करन्नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीवमाक्रयाया अयोगूङ्कामाय पुंश्चलूमतिपुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

विराडतिशक्वरी छन्द द्रव्य देवता । अब पुरुषमेध के पशु और देवताओं को कहते हैं ये सब पशु यज्ञान्तमें छोड़ दिये जाते हैं । मंत्रार्थ—(ब्रह्मणे, ब्राह्मणम्, क्षत्राय,राजन्यम् ,मरुद्भ्यः, वैश्यम्, तपसे शूद्रम्, तमसे, तस्करम्, नारकाय, वीर-

हणम्. पाप्मने,क्लीबम्, आक्रयायै, अयोगूम्, कामाय, पुंश्चलूम्, अतिक्रुष्टाय, मागधम्) ब्रह्मके अर्थ ब्राह्मणको नियुक्त करता है क्षत्रके लिये क्षत्रियको मरुद्गणों के लिये वैश्यको, तपके लिये शूद्रको, तम के लिये स्तेनको, नारक के लिये नष्टाग्नि वा शूरको,पापके लिये नपुंसकको,आक्रया देवता के लिये आयोगू को, काम के लिये व्यभिचारिणीको,अतिक्रुष्टके लिये मागध को नियुक्त करता है ॥ ५ ॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषन्धर्माय समाचरन्नरिष्ठायै भीमलन्नर्माय रेभ ँ हंसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखम्प्रमदे कुमारीपुत्रम्मेधायै रथकारन्धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

निचृदष्टि छन्द,द्रव्य देवता । मंत्रार्थ-(नृत्ताय,सूतम्, गीताय, शैलूषम्. धर्माय सभाचरम्, नरिष्ठायै भीमलम्, नर्माय, रेभम्, हंसाय, कारिम्, आनन्दाय, स्त्रीषखम्, प्रमदे कुमारीपुत्रम्, मेधायै, रथकारम्, धैर्याय, तक्षाणम्) नृत्त के लिये सूतको, गीतके लिये नटको, धर्मके लिये सभाचरको, नरिष्ठदेवता के लिये भयंकर पुरुष को, नर्मके लिये वाचाट को, हंसके लिये करणविशिष्टको, आनन्दके लिये स्त्रीके सखाको प्रमदके लिये कानीन को, मेधाके लिये रथकारको, धैर्यके लिये सूत्रधारको नियुक्त करता है ॥ ६ ॥

तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया इषुकारꣳ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारन्दिष्टाय रज्जुसर्ज्जमृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ७

विराडतिशक्वरी छन्द, द्रव्य देवता मंत्रार्थ-(तपसे, कौलालम्, मायायै, कर्मारम्, रूपाय, मणिकारम्, शुभे, वपम् शरव्यायै, इषुकारम्, हेत्यै, धनुःकारम्, कर्मणे, ज्याकारम्, दिष्टाय, रज्जुसर्जम्, मृत्यवे, मृगयुम्, अन्तकाय, श्वनिनम्) तपके लिये कुलालपुत्र को मायाके लिये लोहकार को, रूप के लिये रत्नकर्त्ता को, शुभके लिये बीजवप्ता को, शरव्याय के लिये बाणकर्त्ताको, हेतिके लिये धनुःकर्त्ता को कर्मके लिये ज्याकर्त्ताको, दिष्टके लिये रज्जुस्रष्टाको, मृत्युके लिये मृगग्राहीको, अन्तक के लिये श्वाननेता को नियुक्त करता है ॥ ७ ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्टमृक्षीकाभ्यो नैषादम्पुरुषव्याघ्राय दुर्मदङ्गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम्प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्यो प्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवम्पिशाचेभ्यो

विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

कृति छन्द, द्रव्य देवता । मन्त्रार्थ- (नदीभ्यः, पौञ्जिष्ठं, ऋक्षीकाभ्यः, नैषादं पुरुषव्याघ्राय, दुर्मदं, गंधर्वाप्सरोभ्यः, व्रात्यम्, प्रयुग्भ्यः, उन्मत्तं, सर्पदेवजनेभ्यः, अप्रतिपदं, अयेभ्यः कितवं, ईर्यतायै अकितवं, पिशाचेभ्यः, विदलकारीम्, यातुधानेभ्यः, कण्टकीकारीम्) नदियोंके लिये पुल्कस की संतान को, ऋक्षीकों के लिये निषादपुत्रको, पुरुषव्याघ्रके लिये उन्मत्त को, गन्धर्व अप्सराओं के लिये सावित्रीपतितको, प्रयुगोंके लिये उन्मत्त को, सर्पदेवजनोंके लिये विकलको, अयों के लिये द्यूतकारको, ईर्यता देवीके लिये अद्यूतकृत्को, पिशाचोंके लिये वंशपात्रकारिणीको, यातुधानों के लिये कण्टकी कर्म करनेवालीको नियुक्त करता है । ८ ।

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवृत्तन्निर्ऋत्यै परिविविदानमराद्ध्या एदिधिषुः पतिन्निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीम्प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधम्बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

भुरिगत्यष्टि छन्द, द्रव्य देवता । मंत्रार्थ (सन्धये, जारम्, गेहाय, उपपतिं, आर्त्यै, परिवित्तं, निर्ऋत्यै, परिविविदानं, आराद्ध्यै, एदिधिषुः पतिं, निष्कृत्यै, पेशस्कारीं, संज्ञानाय, स्मरकारीं प्रकामोद्याय, उपसदं, वर्णाय, अनुरुधं, बलाय, उपदाम्) सन्धिके अर्थ उपपतिको, गेहके लिये उपपतिको आर्तिके लिये छोटे भाई का विवाह होजाने पर अनविवाहे को, निर्ऋतिके लिये ज्येष्ठ भाईका विवाह न होने पर विवाहेको आराध्याके लिये बड़ी बहिनका विवाह न होने पर विवाहीके पतिको निष्कृतिके लिये रूपकर्त्रीको संज्ञानके लिये कामदीप्तिकरीको प्रकामोद्यके लिये समीपस्थको वर्ण देवता के लिये अनुसर को बलके लिये उपायनदाता को नियुक्त करता है ॥ ९ ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जम्प्रमुदे वामनन्द्राभ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरम्पवित्राय भिषजम्प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनम्मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

मन्त्रार्थ-(उत्सादेभ्यः, कुब्जम्, प्रमुदे वामनम्, द्वार्भ्यः,स्त्रामम्, स्वप्नाय, अन्धम् अधर्माय, वधिरम्, पवित्राय, भिषजम्, प्रज्ञानाय, नक्षत्रदर्शम्, आशिक्षायै, प्रश्निनम्, उपशिक्षायै, अभिप्रश्निम्, मर्यादायै, प्रश्नविवाकम्) उत्साद देवताओंके लिये वक्रांगको प्रमुदके लिये ह्रस्वांगको, द्वार देवताओं के लिये सर्वदा जलक्लिन्ननेत्र को, स्वप्न के लिये नेत्रहीन को, अधर्मके लिये कर्णेन्द्रियहीनको, पवित्रके लिये वैद्य को, प्रज्ञानके लिये गणकको, अशिक्षाके लिए शकुनादि पूछनेवालेको, उपशिक्षाके लिये अभिप्रश्नवन्तको, मर्यादाके लिये प्रश्नवक्ताको नियुक्त करता है ॥ १० ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपञ्जवायाश्वपम्पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालन्तेजसेजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारम्भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥११॥

विराडष्टि छन्द, द्रव्य देवता। मंत्रार्थ (अर्मेभ्यः, हस्तिपम्, जवाय, अश्वपं, पुष्ट्यै, गोपालं, वीर्याय, अविपालं, तेजसे अजपालं, इरायै, कीनाशं, कीलालाय, सुराकारम्, भद्राय, गृहपं, श्रेयसे, वित्तधं आध्यक्ष्याय, अनुक्षत्तारम्) अर्मनाम देवताओंके लिये गजपालको, जबके लिये अश्वपालको पुष्टिदेवीके लिये धेनुपाल को वीर्यके लिये अविपालको, तेजके लिए अजपालको, इराके लिए कर्षुको, कीलाल के लिए सुराकारको भद्रके लिए गृहपाल को, श्रेयके लिए धनकर्त्ता को आध्यक्षके लिए सारथ्यनुसारी को नियुक्त करता है ॥ ११ ॥

भायै दार्वाहारम्प्रभाया अग्नयेधम्ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारन्देवलोकाय पेशितारम्मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमवऋत्यै वधायोपमन्थितारम्मेधाय वासः पल्पूलीम्प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

विराट् संकृति छन्द, द्रव्य देवता। मन्त्रार्थ—(भायै दार्वाहारं प्रभायै अग्नयेधम् ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम् वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेषणकर्त्तारम् देवलोकाय पेशितारम् मनुष्यलोकाय प्रकरितारम् सर्वेभ्यः लोकेभ्यः उपसेक्तारम् अवऋत्यै वधाय उपमन्थितारम् मेधाय वासः पल्पूलीम् प्रकामाय रजयित्रीम्) भावके अर्थ काष्ठाहर्त्ताको प्रभावके अर्थ, अग्निवर्धक को सूर्यलोकके अर्थ अभिषेक्ताको, उत्कृष्ट स्वर्गके अर्थ परिवेषणकर्त्ताको, देवलोक के अर्थ प्रतिमा आदि अवयवकर्त्ताको, मनुष्यलोकके अर्थ विक्षेपको, सबलोकोंके अर्थ उपसेचनकर्त्ताको, अवऋति वधके

अर्थ उपमंथनकर्त्ताको, मेधाके अर्थ वस्त्र-प्रक्षालनकर्त्रीको,प्रकामके अर्थ वस्त्ररङ्गका-रिणी स्त्रीको नियुक्त करता है ॥ १२ ॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारम्बलायानुचरम्भूम्ने परिष्कन्दम्प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

कृति छन्द, द्रव्य देवता। मंत्रार्थ-(ऋतये, स्तेनहृदयम् वैरहत्याय, पिशुनम्, विविक्त्यै, क्षत्तारम्, औपद्रष्ट्र्याय, अनुक्षत्तारम्, बलाय, अनुचरम्, भूम्ने, परिस्कन्दम्, प्रियाय, प्रियवादिनम्, अरिष्ट्यै, अश्वसादम्, स्वर्गाय, लोकाय, भागदुघम् वर्षिष्ठाय, नाकाय, परिवेष्टारम्) ऋतिके लिये स्तेनहृदयको वैरहत्याके लिये परवृत्तसूचकको विविक्तिके लिये प्रतीहारको औपद्रष्ट्र्यके लिये प्रतिहारसेवकको बलके लिये सेवकको भूमाके लिये परिष्कन्दको प्रियके लिये मधुरभाषीको अरिष्टि के लिये अश्वारोहको स्वर्ग लोकके लिये विभागदाताको उत्कृष्ट स्वर्गके लिये परिवेष्टाको १३

मन्यवेयस्तापङ्क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीन्निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥

भुरिगत्यष्टिश्छन्द,मंत्रार्थ-(मन्यवे, अयस्तापम्, क्रोधाय निसरम् योगाय, योक्तारम् शोकाय अभिसर्त्तारम् क्षेमाय, विमोक्तारम् उत्कूलनिकूलेभ्यः, त्रिष्ठिनम्, वपुषे मानस्कृतम्, शीलाय, अञ्जनीकारीम्, निर्ऋत्यै, कोशकारीम्, यमाय, असूम्) मन्यु के लिये लोहतापकको क्रोधके लिये नितरां-सर्ताको योगके अर्थ योगकर्ताको शोकके अर्थ अभिसर्त्ताको क्षेमके अर्थ विमोचनकर्ताको उत्कूल निकूलोंके अर्थ विद्याआदि में स्थित शीलवान्को वपुके अर्थ अभिमानी को शीलके अर्थ अञ्जविद्या कर्त्रीको निर्ऋति के लिये कोशकारी स्त्री को यम के लिये वन्ध्या को नियुक्त करता है ॥ १४ ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योवतोकाꣳ सम्वत्सराय पर्यायिणीम्परिवत्सरायाविजातामिदावत्स-

रायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳसम्वत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

स्वराडतिधृतिश्छन्दः, मंत्रार्थ-(यमाय, यमसूम्, अथर्वभ्यः, अवतोकाम्, सम्वत्सराय, पर्यायिणीम्, परिवत्सराय, अविजाताम्, इदावत्सराय, अतीत्वरीम्, इद्वत्सराय, अतिष्कद्वरीम्, वत्सराय, विजर्जराम्, सम्वत्सराय, पलिक्नीम्, ऋभुभ्यः अजिनसन्धम् साध्येभ्यः चर्मम्नम्) यमके लिये युग्मप्रसवित्री स्त्रीको अथर्वोंके अर्थ निरपत्य स्त्रीको सम्वत्सरके लिये अनुक्रमश्च स्त्रीको परिवत्सरके लिये अप्रसूता स्त्रीको इदावत्सरके अर्थ अत्यन्त कुलटाको इद्वत्सरके अर्थ अतिष्कद्वरी स्त्रीको वत्सरके लिए शिथिलशरीरको सम्वत्सरके अर्थ श्वेतकेशाको ऋभुदेवताओंके लिये चर्मसंधाताको साध्यदेवताओंके अर्थ चर्माभ्यासकर्त्ताको ॥ १५ ॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दन्नड्वलाभ्यः शौष्कलम्पाराय मार्गारमवाराय कैवर्तन्तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकङ्गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकम्पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

भुरिगतिधृतिश्छन्दः द्रव्यं दैवतम् । मन्त्रार्थ-(सरोभ्यः धैवरम् उपस्थावराभ्यः दाशम् वैशन्ताभ्यः वैन्दम् नड्वलाभ्यः शौष्कलम् पाराय मार्गारम् आवाराय कैवर्तम् तीर्थेभ्यः आन्दम् विषमेभ्यः मैनालम् स्वनेभ्यः पर्णकम् गुहाभ्यः किरातम् सानुभ्यः जम्भकम् पर्वतेभ्यः किम्पुरुषम्) सरोवरोंके अर्थ कैवर्त्तापत्यको उपस्थावरजलोंके अर्थ धीवरको वैशन्तनाम जलोंके लिए निषादापत्यको नड्वलाओंके लिए मत्स्यजीवीको पारके लिए मृगारिकी सन्तानको अवारके अर्थ कैवर्तको तीर्थोंके लिए बन्धनकर्त्ताको विषमोंके अर्थ मानग्राहीकी संतानको स्वनोंके अर्थ भिल्लूको गुहाओंके लिए किरातको सानुओंके लिए हिंसकको पर्वतोंके अर्थ कुत्सितनरको ॥ १६ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारन्तुलायै वाणिजम्पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलम्भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्युद्ध्या अपगल्भꣳसꣳशराय प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

विराट्धृतिश्छन्द मन्त्रार्थ-(बीभत्सायै पौल्कसम् वर्णाय हिरण्यकारम् तुलायै वाणिजम् पश्चादोषाय ग्लाविनम् विश्वेभ्यः भूतेभ्यः सिध्मलम् भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम् आर्त्यै जनवादिनम् व्यृद्धयै अपगलभम् संशराय प्रच्छिदम्) बीभत्साके अर्थ पुल्कसापत्यको वर्णके अर्थ स्वर्णनिष्पादक को तुलाके अर्थ वानिजको पश्चादोषके अर्थ अहृष्टको सब भूतोंके लिए सिध्मारोग वालेको भूतिके अर्थ जागरणको अभूतिके लिए शयालुको आर्तिके अर्थ जनवादीको व्यृद्धिके लिए अपगलभ को संशरके लिए प्रच्छेदनकर्ताको ॥ १७ ॥

अक्षराजाय कितवङ्कृतायादिनवदर्शन्त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातङ् क्षुधेयागां विकृन्तन्तम्भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यम्पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

निच्यृत्प्रकृतिश्छन्दः, मन्त्रार्थ-(अक्षराजाय कितवम् कृताय आदिनवदर्शम् त्रेतायै कल्पिनम् द्वापराय अधिकल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम् मृत्यवे गोव्यच्छम् अन्तकाय गोघातम् यः गाम् विकृन्तन्तम् भिक्षमाणः उपतिष्ठति क्षुधे दुः कृताय चरकाचार्यम् पाप्मने सैलगम्) अक्षराजके लिए धूर्तको कृतयुगके लिए आदिनवदोष के द्रष्टाको त्रेतायुग के लिए कल्पकको द्वापरके लिए अधिकल्पनाकर्त्ताको आस्कन्ददेवताके लिए सभामें स्थितको मृत्युके लिए गौप्रतिगमनशीलको अन्तकके लिए गौहन्ताको जो गोहिंसकसे भिक्षा मांगता समीप खड़ा होता है उसको क्षुधादेवीके लिये नियुक्त करै दुःकृतके लिये चरकोंके गुरु को पापके लिये दुष्टकी संतानको नियुक्त करै

प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमंताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातम्महसे वीणावादङ्क्रोशाय तूणवध्मम्वरस्पराय शंखध्मं वनाय वनपमन्यतोरण्याय दावपम्

भुरिग्धृतिश्छन्दः मन्त्रार्थ-(प्रतिश्रुत्कायै अर्तनम् घोषाय भषम् अन्ताय बहुवादिनम् अनन्ताय मूकम् शब्दाय आडम्बराघातम् महसे वीणावादम् क्रोशाय तूणवध्मम् अवरस्पराय शंखध्मम् वनाय वनपम् अन्यतोरण्याय दावपम्) प्रतिश्रुतिकायादेवी के लिये दुःखीको घोषके लिये जल्पकको अन्नके लिये बहुवादी को अनन्त के लिए मूकको शब्दके अर्थ आडम्बराघात को महस्के लिए वीणावादको

क्रोश के लिए तूणव बजाने वालेको अवरस्पर के लिए शंख बजाने वालेको वनके लिए वनपालको अन्यतोरण्यके लिये वन्हिपालकको ॥ १९ ॥

नर्माय पुंश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शावल्यां ग्रामण्यङ्गणकमभिक्रोशकन्तान्महसे वीणावादम्पाणिघ्नन्तूणवध्मन्तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

भुरिगतिजगतीछन्द । मन्त्रार्थ-(नर्माय पुंश्चलूम् हसाय कारिम् यादसे शावल्यां ग्रामण्यं गणकं अभिक्रोशकं तान् महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान् नृत्ताय आनन्दाय तलवं) नर्म देवता के लिये दुष्टानारी को हसके लिये करणशीलको यादस के लिए कर्बुरवर्णकी पुत्री को ग्रामनेता ज्योतिर्विद् निन्दक उन तीनोंको महसदेवताके लिए वीणावादक हस्ततालवादक तूणव बजाने वाला इन तीनोंको नृत्तदेवताके लिए आनन्दके लिए वाद्यवादक को नियुक्त करै ॥ २० ॥

अग्नये पीवानम्पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वꣳशनर्त्तिनन्दिवे खलतिꣳ सूर्याय हर्य्यक्षन्नक्षत्रेभ्यः किर्मिरञ्चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लम्पिंगाक्षꣳ रात्र्यै कृष्णम्पिङ्गाक्षम् ॥ २१ ॥

भुरिगत्यष्टिश्छन्द । मन्त्रार्थ-(अग्नये पीवानम् पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालं अन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम् दिवे खलतिं सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम् चन्द्रमसे किलासं अन्हे शुक्लं पिंगाक्षम् रात्र्यै कृष्णं पिंगाक्षं) अग्निके लिए स्थूल को पृथिवीके अर्थ पीठसर्पी को वायुके अर्थ चण्डालकर्मा को अन्तरिक्षके अर्थ वंशपर नाचनेवालेको स्वर्ग के अर्थ अलोमशिरवालेको सूर्यके अर्थ हरितनेत्रवालेको नक्षत्रों के अर्थ कर्बुरवर्णको चन्द्रमा के अर्थ सिध्मरोगवालेको दिवस के अर्थ शुक्लवर्ण पिङ्गाक्षको रात्रिके अर्थ कृष्णवर्ण पिंगाक्षको नियुक्त करै ॥ २१ ॥

अथैतानष्टौ विरूपानालभतेतिदीर्घश्चातिह्रस्वश्चातिस्थूलश्चातिकृशश्चातिशुक्लश्चातिकृष्णश्चातिकुल्वञ्चातिलोमशश्च । ऽ शूद्रा ऽ ब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबो शूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ २२ ॥

निच्यृत्कृतिश्छन्द । मन्त्रार्थ -(अथ एतान् अष्टौ विरूपान् आलभते अतिदीर्घं च अतिह्रस्वम् च अतिस्थूलं च अतिशुक्लम् च अतिकृष्णम् च अतिकुल्वं च अतिलोमशं च ते अशूद्राः अब्राह्मणाः प्राजापत्याः मागधः पुंश्चली कितवः क्लीवः एते अशूद्राः अब्राह्मणाः ते प्राजापत्याः) तिस के पीछे इन आठ परस्पर विरुद्धरूप पशुओं को नियुक्त करता है उनको कहते हैं, अतिदीर्घ और अतिह्रस्व और अतिस्थूल और अतिकृश और अतिशुक्ल और अतिकृष्ण और रोमरहित और सर्वाङ्गव्यापी रोमवाला और वे शूद्र ब्राह्मण से व्यतिरिक्त पशु होते हैं वे आठों। प्रजापति देवता वाले हैं तथा मागध पुंश्चली कितव क्लीब ये चारों शूद्र ब्राह्मणसे व्यतिरिक्त हैं,वे प्रजापति देवतावाले हैं उन नियुक्त पुरुषोंको सहस्रशीर्षा नाम ऋचासे दक्षिण ओर बैठा हुआ होताकी समान स्तुति करता है फिर आलम्भन क्रमसे यथा देवन प्रोक्षण आदि होता है फिर उन ब्राह्मण आदिको पर्यग्निकरके देवतोद्देशसे त्याग करे फिर उन सबको यूपोंसे अलग कर छोड़ देवे फिर अध्वर्यु घृतका संस्कार कर के एक बार लिये हुए घृतको लेकर (ॐ पुरुषदेवेभ्यो ब्रह्मादिभ्यः) इन मन्त्रों से आहवनीय अग्निमें होम करे ओं ब्रह्मणे स्वाहा क्षत्राय स्वाहा मरुद्भ्यः तपसे तमसे इत्यादि घृताहुती देवताओं को देकर स्विष्टकृत् आदि उदवसानीय तक कर्म करके फिर यजमान (अयं ते योनिः) इस मन्त्र से अग्नियोंको अपने आत्मामें समारोपण कर (अद्भ्यः सम्भृतं) इन ऋचाओंके अनुवाकसे सूर्य का उपस्थान कर फिर न देखता वनमें जाकर वास करे यदि पुरुषमेधके पीछे ग्राममें बसनेकी इच्छा हो उदवसानीयके अन्तमें सायंकाल पर आहुतियोंको होम कर अरणीमें अग्नियोंको समारोपण कर महानारायणरूपसे सूर्यका उपस्थान कर गृहमें जावे और अग्नि स्थापन करे यथेच्छ यज्ञोंको भी करे अर्थात् द्रव्ययज्ञके पीछे गृहवास और अध्यात्मयज्ञके पीछे संन्यास है ॥ २२ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें
सानुवाद त्रिंश अध्याय समाप्त

❀ अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ❀

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् १

नारायण ऋषिः निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः, पुरुष देवता। मन्त्रार्थ (पुरुषः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्) सर्वलोकोंमें व्याप्त जो महानारायण सर्वात्मा होनेसे अनन्त शिरवाला अनन्त नेत्र वाला अनन्त पाद वाला है (सः भूमिम् सर्वतः स्पृत्वा दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्) वह पंचतत्त्वरूप व्यष्टि वा ब्रह्माण्ड गोलकरूप समष्टि रूप स्थानको तिरछा ऊँचा नीचे व्याप्त करके नाभिसे दशांगुल परिमित देश हृदयको अतिक्रमण कर अंतर्यामी रूपसे स्थित हुआ

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति २

मन्त्रार्थ-(इदम् यत् भूतम् च यत् भाव्यम् उत् यत् अन्नेन अतिरोहति) यह जो अतीत ब्रह्मसंकल्पजगत् है और जो भविष्य ब्रह्मसंकल्पजगत् है और जो जगत् बीज वा अन्न परिणामवीर्यसे वृक्ष नर पशु आदि रूप प्रकट होता है वह (सर्वम् अमृतस्य ईशानः पुरुषः एव) सब मोक्ष का स्वामी महानारायण पुरुष ही है ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि३

मन्त्रार्थ-(अस्य महिमा एतावान्) इस महानारायण पुरुषकी विभूति इतनी है यह नहीं (च पुरुषः अतः ज्यायान्) चिदात्मा महानारायण इस संसारसे अतिशय अधिक है (विश्वा भूतानि अस्य पादः) जिसकारण सब ब्रह्मांड इस महानारायण का चतुर्थांश है (दिवि अस्य त्रिपादस्य अमृतम्) गोलोकमें इस त्रिपादका स्वरूप विनाशरहित है क्योंकि अनन्त ब्रह्म हो अपने भागमें अपनी ज्योतिद्वारा महानारायणरूप हुआ ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि

नारायण ऋषिः आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः पुरुषो देवता। मन्त्रार्थ-(त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्) महानारायण ब्रह्मांडसे ऊर्ध्व उत्कर्षपूर्वक स्थित हुआ (पुनः अस्य पादः इह अभवत्) फिर इस महानारायणका चतुर्थांश इस संसारमें व्याप्त हुआ (ततः विष्वङ् साशनानशने अभि व्यक्रामत्) मायामें प्रवेशके अनन्तर देवता तिर्यक् आदि रूपसे नानारूप हो चराचर जगत् को देखकर व्याप्त किया ॥ ४ ॥

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः५

मन्त्रार्थ-(ततः विराट् विराजः पुरुषः अधि अजायत) उस महानारायण पुरुष

से ब्रह्मांड देह तथा उस देहका अभिमानी पुरुष उसी देहमें प्रकट हुआ (सः जातः अत्यरिच्यत) वह उत्पन्न विराट् पुरुष श्रेष्ठ हुआ (पश्चात् भूमिम् अथ उ पुरः) पश्चात् भूमिको उत्पन्न किया, तदनन्तर ही देव मनुष्य आदिके शरीरोंको उत्पन्न किया ५

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम् । पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये

आर्ची पंक्ति छंद । मन्त्रार्थ-(तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः पृषदाज्यम् सम्भृतं) उस सर्वात्मा पुरुष जिसमें पूजा जाता है ऐसे यज्ञसे दधिमिश्र घृत सम्पादित हुआ (तान् वायव्यान् पशून् चक्रे) तथा उस महानारायणने उन वायु देवता वाले पशुओंको उत्पन्न किया (ये आरण्याः च ग्राम्याः) जो हरिण आदि वनवासी और अश्वआदि ग्रामवासी हैं ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत

आर्ष्यनुष्टुप् छंद मंत्रार्थ- तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे) उस सर्वहुत यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद सामवेद उत्पन्न हुए (तस्मात् यजुः अजायत) उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः

निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द । मन्त्रार्थ-(तस्मात् अश्वाः च ये के उभयादतः अजायन्त) उसीसे अश्व और जो कोई दूसरे पशु नीचे ऊपरके दांत वाले हैं उत्पन्न हुए (ह तस्मात् गावः जज्ञिरे) और उसीसे गौ बैल उत्पन्न हुए (तस्मात् अजावयः जाताः) उसीसे भेड़ बकरी उत्पन्न हुई ८

तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥

मन्त्रार्थ-(ये साध्याः देवाः च ऋषयः अग्रतः जातम् तम् यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन्) जो साध्य देवता और सनकादि ऋषि हैं उन्होंने सृष्टिके पूर्व उत्पन्न उस यज्ञ साधनभूत विराट्पुरुषको मानसयज्ञमें प्रोक्षण किया (तेन अयजन्त) उस विराट्-रूप पशुद्वारा मानसयागको निष्पादन किया९

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते

मन्त्रार्थ-(यत् पुरुषं व्यदधुः) जब विराट्पुरुषको महानारायणसे प्रेरित महत्

अहंकार आदिने उत्पन्न किया (कतिधा व्यकल्पयन्) तब कितने प्रकारोंसे कल्पित किया (अस्य मुखं किम् आसीत्) इस विराट् पुरुषका मुख कौन हुआ (किं बाहू ऊरू) कौन भुजा ऊरू हुए (किम् पादौ उच्येते) कौन पाद कहे जाते हैं ॥ १० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत

मन्त्रार्थ—पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तरको कहते हैं (ब्राह्मणः अस्य मुखं आसीत्) ब्राह्मण इस विराट्पुरुषका मुख हुआ (राजन्यः बाहूकृतः) क्षत्रिय बाहुरूपसे निष्पादित हुआ (अस्य यत् ऊरू तत् वैश्य) इसकी जो ऊरू हैं तद्रूप वैश्य हुआ (पद्भ्याम् शूद्रः अजायत) चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥

नारायण ऋषिः आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः पुरुषो देवता। मन्त्रार्थ (मनसः चन्द्रमा जातः) विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ (चक्षोः सूर्यः अजायत) नेत्रसे सूर्य उत्पन्न हुआ (श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च मुखात् अग्निः अजायत) कर्णसे वायु और प्राण और मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ १२

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २॥ अकल्पयन् ॥ १३ ॥

मन्त्रार्थ—(नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत्) नाभिसे अन्तरिक्ष हुआ (शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत) शिरसे स्वर्ग उत्पन्न हुआ (पद्भ्यां भूमिः श्रोत्रात् दिशः तथा लोकान् अकल्पयन्) चरणोंसे भूमि श्रोत्रसे दिशा उसी प्रकार भूआदिलोकोंको विराट् पुरुषके देहसे कल्पना किया ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः १४

निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्द यज्ञ देवता है। मन्त्रार्थ—(यत् देवाः पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत) जब विद्वानोंने विराट्देहरूप हविद्वारा ज्ञानयज्ञको रचा (वसन्तः अस्य आज्यं आसीत्) तब वसन्त इस ज्ञानयज्ञका घृत हुआ (ग्रीष्मः इध्मः शरत् हविः आसीत्) ग्रीष्म समिध तथा शरद्ऋतु हवि हुई ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन्पुरुषम्पशुम्

अनुष्टुप्छंद । मन्त्रार्थ-(यत् यज्ञम् तन्वानाः देवाः पुरुषम् पशुम् अबध्नन्) जब मानस यज्ञको करते देवताओंने विराट् पुरुषरूप पशुको भावित किया (सप्त अस्य परिधयः आसन्) तब गायत्री आदि सात छन्द इस यज्ञकी परिधि हुए (त्रिः सप्त समिधः कृताः) बारह मांस पांच ऋतु तीनों लोक सूर्य अथवा गायत्री आदि सात अतिजगती आदि सात कृति आदि सात छन्द इसकी समिधा किये १५

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकम्महिमानस्सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

ब्राह्म्युष्णिक् छन्द । मन्त्रार्थ—(देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त) सिद्धसंकल्पदेवताओंने विराट्रूप हविसम्बन्धी मानसयज्ञसे यज्ञपुरुष महानारायणको पूजा (तानि धर्म्माणि प्रथमानि आसन्) वे महानारायणपूजन-सम्बन्धी धर्म मुख्य हुए (यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति) जिस विराटप्राप्तिरूप स्वर्गमें पुरातन साध्य देवता रहतेहैं(नाकम् ह ते महिमानः सचन्त) उस दुःखरहित लोकको ही उन महानारायण पुरुषके भक्त महात्माओंने प्राप्त किया ॥१६॥

पुरुषसूक्तानुवाक समाप्त

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्द आदित्यदेवता है । मन्त्रार्थ—(पृथिव्यै रसात् च अद्भ्यः सम्भृतः) महानारायणकी उपासना—पृथिवीसे और जलोंसे अर्थात् पञ्चभूतसे जो रस पुष्टहुआ (विश्वकर्मणः अग्रे समवर्तत) और जिसका विश्वकर्म है उस कालके प्रीतिको रस सबसे प्रथम हुआ (त्वष्टा तस्य रूपम् विदधत् एति) उस रसके रूपको धारण करता हुआ आदित्य उदय होता है (अग्रे मर्त्यस्य तत् आजानम् देवत्वम्) प्रथम मनुष्यरूप उस पुरुषमेधयाजीके सूर्यरूपसे मुख्य उस देवत्वको प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेयनाय ॥ १८ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द पुरुष देवता । मन्त्रार्थ-मन्त्र कहताहै (अहम् एतम् आदित्यवर्णम् तमसः परस्तात् महान्तम् पुरुषम् वेद) मैं इस सूर्यरूप अविद्याशून्य ज्ञानस्वरूप महानारायण पुरुषको जानता हूँ (तम् एव विदित्वा मृत्युम् अति एति) उसी महानारायण पुरुषको जानकर मृत्युको अतिक्रमण करता है (अयनाय अन्यः पन्थाः न विद्यते) आश्रयके निमित्त दूसरा मार्ग विद्यमान नहीं है ॥ १८ ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिम्परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १९ ॥

भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द मन्त्रार्थ-(प्रजापतिः गर्भे अन्तः चरति) सर्वात्मा प्रजापति अन्तर्यामीरूपसे गर्भके मध्यमें प्राप्त होता है (अजायमानः बहुधा विजायते) जन्म न लेताहुआ भी देवता तिर्यक् मनुष्यआदि रूपसे उत्पन्न होता है (धीराः तस्य योनिम् परिपश्यन्ति) ब्रह्मज्ञानी उस ब्रह्मके उत्पत्तिस्थान महानारायण पुरुषको सब ओरसे देखते हैं (यस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थुः) जिसमें ही सब ब्रह्मांड स्थित हैं ॥ १९ ॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानाम्पुरोहितः । पूर्व्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

आर्ष्यनुष्टुप्छन्द । मन्त्रार्थ-(यः देवेभ्यः आतपति) जो महानारायण सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओंके अर्थ अपने प्रकाशको देता है (यः देवानाम् पुरोहितः) जो ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवताओंका आगे हितकर वा पूज्य है (यः देवेभ्यः पूर्वः जातः) जो ब्रह्मादि देवताओंसे पूर्व प्रादुर्भूत हुआ (ब्राह्मये रुचाय नमः) उस ब्रह्मज्योतिके अर्थ नमस्कार है ॥ २० ॥

रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवम्ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥ २१ ॥

मन्त्रार्थ-(देवाः रुचं ब्राह्मं जनयन्तः अग्रे तत् अब्रुवन्) इन्द्रियोंके देवताओं ने शोभन ब्रह्मज्योतिरूप आदित्यको प्रकट करतेहुए प्रथम यह कहा कि हे आदित्य !

(यः ब्राह्मणः त्वा एवं विद्यात् देवाः तस्य वशे असन्) जो ब्राह्मण तुमको ऐसा अजरामर जानै देवता उस उपासकके वशमें होते हैं ॥ २१ ॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्म इषाण सर्व्वलोकं म इषाण ॥ २२ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द । मन्त्रार्थ-(श्रीः च लक्ष्मीः ते पत्न्यौ) हे महानारायण पुरुष ! श्री और लक्ष्मी तेरी पत्नीरूप हैं (च अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपम् अश्विनौ व्यात्तम्) और ब्रह्माके अहोरात्र तेरे पार्श्वरूप हैं आकाशमें स्थित नक्षत्र आपका रूप हैं द्यावा पृथिवी विकासित मुख हैं (इष्णन् इषाण) स्वयं चाहते तुम अपने आत्माको मेरे अर्थ इच्छा करो अर्थात् प्राप्त कराओ (अमुम् मे इषाण) इस अपने लोकको मुझै प्राप्त कराओ(सर्वलोकम् मे इषाण) सब योगैश्वर्यको मुझै प्राप्त कराओ ॥ २२ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें
सानुवाद एकत्रिंश अध्याय समाप्त

❀ अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ❀

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रन्तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः १

स्वयम्भूऋषि, अनुष्टुप्छन्द पुरुष देवता है । मन्त्रार्थ--(अग्निः तत् एव) अग्नि वह ब्रह्म ही है (आदित्यः तत्) सूर्य वही है (वायुः तत्) वायु वही है (चन्द्रमाः तत्) चन्द्रमा वही है (उ शुक्रम् तत् एव) संसारका बीज वही है (ता आपः सः प्रजापतिः तत् ब्रह्म) वे प्रसिद्ध जल वह प्रजापति वही ब्रह्म है ॥ १ ॥

सर्व्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि । नैनमूर्ध्वन्न तिर्य्यञ्चन्न मध्ये परिजग्रभत् २

मंत्रार्थ-(विद्युतः पुरुषात् सर्वे निमेषाः अधिजज्ञिरे) विशेष द्योतमान महानारायण पुरुषसे सब काल प्रकट हुए (एनम् ऊर्ध्वम् न परिजग्रभत्) कोई भी इसको ऊपर भागमें नहीं ग्रहण करता है (न तिर्यञ्चं) न चारों दिशामें (न मध्ये) न मध्यमें ग्रहण करसकता है क्योंकि प्रत्यक्ष आदिका विषय नहीं है ॥ २ ॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥ ३ ॥

स्वयंभू ऋषि द्विपदा गायत्री छन्द पुरुष देवता है । मन्त्रार्थ-(तस्य प्रतिमा न अस्ति) उस महानारायण पुरुषका प्रतिमान उपमान कोई नहीं है (यस्य नाम महद्यशः) जिसका नाम महद्यश है । अथवा जिसका प्रसिद्ध बड़ा यश है । इसमें वेद ही प्रमाण है। जैसा कि-'हिरण्यगर्भ इत्येषः अ० २५ में 'मा मा हिंसीदित्येषा' अ० १२ में "यस्मान्न जात इत्येषः" अ० ८में कहाहै

एषो ह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्व्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्व्वतोमुखः ॥ ४ ॥

त्रिष्टुप्छन्द । मन्त्रार्थ-(एषः ह देवः सर्वाः प्रदिशः अनुतिष्ठति) यही पुरुष सब दिशाओंमें व्याप्त होकर स्थित है (जनाः ह पूर्वजातः) हे भक्तजनों प्रसिद्ध है कि यही सबसे पूर्व प्रकट हुआ अर्थात् ब्रह्मभावसे पुरुषरूपको प्राप्त हुआ (गर्भे अन्तः सः उ) ब्रह्माण्डरूप गर्भके मध्य वही स्थित होता है (जातः जनिष्यमाणः सः एव) उत्पन्न और उत्पत्स्यमान वही है (प्रत्यङ् सर्वतोमुखः सः) सर्वव्यापी और सब ओर मुखवाला वही है ॥ ४ ॥

यस्माज्जातन्न पुरा किञ्चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ५ ॥

मन्त्रार्थ—(यस्मात् पुरा किञ्चन न जातम्) जिससे पूर्व कोई दूसरा प्रकट नहीं हुआ (यः एव विश्वा भुवनानि आबभूव) जो ही सब ब्रह्माण्ड वा प्राणियों में व्याप्त हुआ (सः षोडशी प्रजापतिः प्रजया संरराणः त्रीणि ज्योतींषि सचते) वह षोडशकला सम्पन्न प्रजापालक पुरुष नाना देहरूप प्रजा करके आत्मरूपसे क्रीड़ा करता हुआ तीन ज्योति सूर्य चन्द्र अग्निरूपको सेवन करता है अर्थात् सूर्यादिरूप से प्रकट होता है ॥ ५ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो

विमानः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ-(येन द्यौः उग्रा च पृथिवी दृढ़ा) जिस पुरुषने स्वर्गको वर्षा करनेमें उद्यत किया और पृथिवी दृढ़की है अर्थात् प्राणधारण वृष्टिग्रहण और अन्ननिष्पादक की है (येन स्वः स्तभितम्) जिस करके स्वर्ग स्तम्भित है (येन नाकः) जिसकी कृपासे दुःखरहित गोलोक भक्तोंको दृष्टिगोचर है (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) जो आकाशमें जलका निर्माता है (कस्मै देवाय हविष् आविधेम) उस महानारायण पुरुषके अर्थ हवि देते हैं ॥ ७ ॥

यन्क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेताम्मनसा रेजमाने। यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषाविधेम। आपो ह यद्बृहतीर्य्यश्चिदापः ॥ ७ ॥

मन्त्रार्थ-(अवसा तस्तभाने रेजमाने क्रन्दसी मनसा यम् अभ्यैक्षेताम्) वृष्टिजनक हविरूप अन्नसे प्राणियोंको स्तंभित करनेवाली शोभायमान पृथिवी स्वर्गके देवताने मनसे जिस पुरुषको साधुकर्त्ता देखा (यत्र सूरः।उदितः अधिविभाति) जिन पृथ्वी स्वर्गके मध्य सूर्य उदय होता अधिक प्रकाश करता है (कस्मै देवाय हविष् आविधेम) उस प्रजापतिके अर्थ हवि देते हैं ॥ ७ ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितङ्गुहासद्यत्र विश्वम्भवत्येकनीडम् । तस्मिन्निदꣳ सञ्च वि चैति सर्व्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द। मंत्रार्थ-(वेनः तत् गुहानिहितम् सत् पश्यत्) वेदान्त रहस्यज्ञाता विद्वान् उस बुद्धि वा हृदयमें स्थित नित्य ब्रह्मको देखता जानता है (यत्र विश्वम् एकनीडम् भवति) जिस ब्रह्ममें विश्व अद्वैत महानारायणका वासस्थान होता है (च तस्मिन् इदम् सर्वम् समेति) और उस ब्रह्ममें यह सब भूतजात संहारकाल प्रलयमें एकीभूत होता है (च वि च सः विभूः प्रजासु ओतः प्रोतः) और उत्पत्तिकाल पर प्रकट होता है और वह महानारायण प्रजाओंमें ओतप्रोतभाव से व्याप्त है ॥ ८ ॥

प्र तद्वोचेदमृतन्नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतङ्गुहासत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ ९ ॥

भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्द । मन्त्रार्थ-(गन्धर्वः विद्वान् नु अस्य तत् अमृतम् गुहासत् धाम विभृतम् प्रवोचेत्) वेद-वचनोंका धारक पंडित शीघ्र इस महा-नारायणके उस अविनाशी बुद्धि वा हृदय में विद्यमान तेजःस्वरूप नानारूप विराट् ब्रह्मा विष्णु महेश आदिरूपसे विभक्त एक-पदको वर्णन करे (त्रीणि पदानि गुहा निहिता यः तानि वेद सः पितुः पिता असत्) तीन पद गुहामें स्थित हैं जो उनको जानता है वह ब्रह्माका भी पिता होता है अर्थात् विष्णुभावको प्राप्त करता है

स नो बन्धुर्ज्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥

मंत्रार्थ-(सः नः बन्धुः) वह परमात्मा हमारा बन्धु है (जनिता) उत्पन्नकर्त्ता है (सः विधाता) वह विधाता है (सः विश्वा भुवनानि धामानि वेद) वह सब प्राणी और स्थानोंको जानता है (देवाः यत्र अमृतम् आनशानाः तृतीये धामन् अध्यैरयन्त) देवता जिस मोक्षप्रापक ज्ञानको प्राप्त करते स्वर्गमें स्वेच्छानुसार वर्त्तते हैं आनन्द करते हैं ॥ १० ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ ११ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्द अनन्यभक्त देवता। अनन्यभक्त ज्ञाननिष्ठ सर्वमेध-याजीकी मुक्तिको वर्णन करते हैं। मन्त्रार्थ-(भूतानि परीत्य) प्राणियोंको ब्रह्मरूप जानकर (लोकान् परीत्य) भूआदि लोकों को ब्रह्मरूप जानकर (सर्वाः प्रदिशः च दिशः परीत्य) सब विदिशा और दिशाओं को ब्रह्मरूप जानकर (प्रथमजाम् उप-स्थाय आत्मना ऋतस्य आत्मानम् अभि-संविवेश) प्रथमोत्पन्न वेदत्रयीरूप बचनों को सम्यक् सेवन कर अर्थात् यज्ञ और उपासनाको करके जीवरूपसे ब्रह्मस्वरूप यज्ञके अधिष्ठाता परमात्मामें प्रवेश करता है अर्थात् उसके सायुज्यको पाता है ॥११॥

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

आर्षी त्रिष्टुप्छन्द कैवल्यमोक्षार्ह देवता। मन्त्रार्थ-(द्यावापृथिवी सद्यः परीत्य) ज्ञानी पृथिवी स्वर्गको शीघ्र ब्रह्मरूप जानकर (लोकान् परि) लोकोंको ब्रह्मरूप जानकर (दिशः परि) दिशाओंको ब्रह्मरूप जानकर (स्वः परि) सूर्यको ब्रह्मरूप जानकर (ऋतस्य तन्तुम् विततम् विचृत्य) यज्ञकी कर्त्तव्यताको अनुष्ठान पूर्वक (तत् अपश्यत्) उस ब्रह्मको देखा (तत् अभवत्) वही ब्रह्म हुआ (तत् आसीत्) वही ब्रह्म था, अज्ञान निवृत्ति ही दर्शन और ब्रह्मभाव है ॥ १२ ॥

सदसस्पतिमद्भुतम्प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिम्मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥ १३ ॥

भुरिगार्षी गायत्री छन्द, प्रार्थना देवता। अब तीन ऋचासे मेधा आदि को चौथीसे लक्ष्मीको माँगते हैं। मंत्रार्थ- (सदसः पतिम् अद्भुतम् इन्द्रस्य प्रियम् काम्यम् सनिम् मेधाम् अयासिषꣳ स्वाहा) यज्ञगृहके पालक अचिन्त्यशक्ति परमेश्वर की प्रिय मेधार्थियोंसे कामनीय अग्निको धनदानको तथा धारणावती बुद्धि को याचना करता हूँ उसके निमित्त श्रेष्ठवचन गृहीत हो ॥ १३ ॥

याम्मेधान्देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनङ्कुरु स्वाहा १४

निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्द अग्नि देवता। मन्त्रार्थ-(अग्ने अद्य तया मेधया माम् मेधाविनम् कुरु) हे अग्ने! अब उस मेधा के द्वारा मुझे मेधावी करो (याम् मेधाम् देवगणाः च पितरः उपासते स्वाहा) जिस मेधाको देवसमूह और पितर सेवन करते हैं तेरे अर्थ श्रेष्ठ होम हो ॥ १४ ॥

मेधाम्मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधान्धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

स्वयम्भु ऋषि निचृदार्षी बृहती छंद, प्रार्थना देवता। मंत्रार्थ-(वरुणः मे मेधाम् ददातु) वरुण मुझे तत्त्वज्ञानोपयोगिनी बुद्धिको दो (अग्निः प्रजापतिः मेधाम्) अग्नि और प्रजापति मेधाको दो (च इन्द्रः च वायुः मेधाम्) और इन्द्र और वायु मेधा दो (धाता मे मेधाम् ददातु स्वाहा) धाता मुझे मेधा दो उन देवताओंके अर्थ श्रेष्ठ होम हो ॥ १५ ॥

इदम्मे ब्रह्म च क्षत्रञ्चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमान्तस्यै ते स्वाहा

आर्ष्यनुष्टुप् छन्द । मन्त्रार्थ-(इदम् ब्रह्म च क्षत्रं उभे मे श्रियं अश्नुताम्) यह ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति दोनों मेरी लक्ष्मीको भोगो (च देवाः मयि उत्तमाम् श्रियं दधतु) और देवता मुझमें उत्तम लक्ष्मीको स्थापन करो (तस्यै ते स्वाहा) उस तुझ लक्ष्मीके अर्थ श्रेष्ठ होम हो ॥ १६ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें
सानुवाद द्वात्रिंश अध्याय समाप्त

॥ अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अस्याजरासोदमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः । श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥ १ ॥

वत्सप्री ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द अग्नि देवता । मन्त्रार्थ-(अस्य अग्नयः अजरासः दमाम् अरित्राः अर्चद्धूमासः पावकाः श्वितीचयः श्वात्रासः भुरण्यवः वनर्षदः वायवः न सोमाः) इस यजमानकी अग्नियें जरारहित शत्रुओंसे लोकोंकी रक्षक तथा देवयान पितृयान मार्गसे सम्बन्ध रखने वालीं शोधक यजमानोंका सुख कल्याण तुष्टि शक्ति पुष्टिरूप उज्ज्वलताको बढ़ाने वालीं शीघ्र फल देनेवालीं भरण पोषण करनेवालीं वनके काष्ठोंमें विद्यमान वायु की समान यजमानके मनोरथ पूर्ण करने वाली हैं ॥ १ ॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता उपद्यवि । यतन्ते पृथगग्नयः ॥ २ ॥

विश्वरूपऋषि गायत्री छन्द अग्नि देवता । मंत्रार्थ-(हरयः वातजूताः धूमकेतवः अग्नयः उपद्यवि पृथक् यतन्ते) हरितवर्ण वायुसे गतिमान् धूमको ज्ञापक रखनेवालीं यज्ञयोग्य अग्नियाँ नानारूपसे स्वर्गमें गमन करनेको यत्न करती हैं ॥२॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२॥ ऋतम्बृहत् । अग्ने यक्षि स्वन्दमम् ॥ ३ ॥

गोतमऋषि गायत्री छन्द अग्निदेवता । मन्त्रार्थ-(अग्ने न मित्रावरुणा आयज) हे अग्ने ! हमारे मित्रावरुण देवताओंको यजन करो (देवान् यज) देवताओंको यजन करो (बृहत् ऋतम् स्वम् दमम् यक्षि) महान् यज्ञस्वरूप अपने गृहको पूजो

युक्ष्वाहि देवहूतमाँ२॥ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । निहोता पूर्व्यः सदः ॥ ४ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १३ मन्त्र ३७ में होगई ॥ ४ ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापयेते । हरिरन्यस्याम्भवति स्वधावा-ञ्छुक्रो अन्यस्यान्ददृशे सुवर्चाः ॥ ५ ॥

कुत्स ऋषि त्रिष्टुप्छन्द मार्गौ देवता। मन्त्रार्थ-(अन्या अन्या विरूपे स्वर्थे द्वे वत्सम् उपधापयेते चरतः) प्रत्येक पृथक् रूपवाले मोक्ष और दिव्य विषय वाले दोनों रात और दिन वा पितृयान देवयानरूप दो मार्ग (जीवात्माको क्षीरपान कराते हैं और निरन्तर घूमते हैं (अन्यस्यां हरिः स्वधावान् भवति) एक रात्रिमें अग्नि स्वधावान् होता है (अन्यस्यां शुक्रः सुवर्चाः ददृशे) दिनमें सूर्य दीप्तिमान् दीखता है ॥ ५ ॥

अहमिह प्रथमोधायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे ॥ ६ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ३ मन्त्र १५ में होगई ॥ ६ ॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निन्त्रिꣳशच्च देवा नव चासपर्यन् । औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारन्न्यसादयन्त ॥ ७ ॥

विश्वामित्र ऋषि त्रिष्टुप्छन्द अग्निदेवता। मंत्रार्थ-(त्री सहस्राणि त्रीणि शता त्रिंशत् च नव देवाः अग्निम् असपर्यन्) तीन सहस्र तीनसौ उन्तालीस देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं (घृतैः औक्षन्) उन्होंने घृतसे अग्निको सींचा अस्मै बर्हिः अस्तृणन्) और इस अग्निके अर्थ कुशाओंको आच्छादन करते हुए (आदित् होतारम् न्यसादयन्त) तदनन्तर ही होताको होत्रकर्ममें नियुक्त किया

मूर्द्धानन्दिवो अरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः ॥ ८ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ७ मंत्र २४ में होगई ॥ ८ ॥

अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया समिद्ध शुक्र आहुतः ॥ ९ ॥

भरद्वाज ऋषि गायत्री छन्द अग्नि देवता। मन्त्रार्थ -(समिद्धः शुक्रः आहुतः अग्निः द्रविणस्युः विपन्यया वृत्राणि जंघनत्) दीप्त शुद्ध निमन्त्रित अग्नि हविरूप धनको चाहता हुआ नानाप्रकारकी पूजा द्वारा पापोंको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

विश्वेभिः सोम्यम्मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

मेधातिथि ऋषि । मन्त्रार्थ-(अग्ने मित्रस्य धामभिः विश्वेभिः इन्द्रेण वायुना सोम्यम् मधु आपिब) हे अग्ने ! मित्रके तेजसहित सब देवता इन्द्र और वायुके साथ सोममय मधुको पान करो ॥ १० ॥

आ यदिषे नृपतिन्तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तन्द्यौरभीके । अग्निः शर्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यञ्जनयत्सूदयच्च ॥ ११ ॥

पराशरऋषि त्रिष्टुप्छन्द । मन्त्रार्थ - (यत् इषे निषक्तम् शुचि तेजः नृपतिम् आनट्) जब अन्न जलके अर्थ देवोद्देशसे अग्निमें सींचा होमा हुआ मंत्रसे संस्कृत घृत यजमानके रक्षक अग्निको व्याप्त करता है (अग्निः शर्धम् अनवद्यम् युवानम् स्वाध्यम् रेतः द्यौरभीके जनयत् च आसूदयत्) तब अग्नि बल रूप निर्दोष दृढ़ सबसे चिन्तनीय जगद्बीजरूप जलको स्वर्गके समीप अन्तरिक्षमें प्रकट करता है और वृष्टिरूपसे छोड़ता है ॥ ११ ॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु । सञ्जास्पत्यꣳ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महाꣳसि ॥ १२ ॥

विश्ववार ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द । मन्त्रार्थ-(अग्ने महते सौभगाय शर्ध) हे अग्ने ! बड़े सौभाग्यके अर्थ बलको प्रकट करो (तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु) तेरे हविरूप अन्न वा यश उत्तम हों (जास्पत्यम् सुयमम् समाकृणुष्व) पत्नी यजमानको जितेन्द्रिय वा परस्पर प्रीतियुक्त करो (शत्रूयताम् महांसि अभितिष्ठ) शत्रुता चाहने वालोंके तेजोंको आक्रमण करो १२

त्वाᳬ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने । इन्द्रन्न त्वा शवसा देवता वायु-

म्पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ १३ ॥

भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप्छन्द अग्नि-देवता । मन्त्रार्थ-(अग्ने मन्द्रतमम् त्वा हि अर्कशोकैः ववृमहे) हे अग्ने ! हमने तुझ अतिगम्भीरको ही सूर्यवद्दीप्त वैदिक मन्त्रोंके द्वारा वरण किया (नः महि श्रोषि) हमारे स्तोत्रको तुम सुनते हो (नृतमाः देवताः शवसा इन्द्रम् न च वायुम् त्वा राधसा पृणन्ति) और नरोंसे उत्तम देवता बलके द्वारा इन्द्रसमान और वायु रूप तुमको हविरूप अन्नसे पूर्ण करते हैं १३

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त

गोनाम् ॥ १४ ॥

वसिष्ठ ऋषि बृहतीछन्द अग्निदेवता । मन्त्रार्थ-(स्वाहुत अग्ने जनानाम् ये यन्तारः मघवानः गोनाम् ऊर्वान् दयन्ति) हे भले प्रकार आहुत अग्ने मनुष्योंके मध्य जो निगृहीतेन्द्रिय धनवान् विद्वान् पुरुष गो दुग्ध दधि सहित अन्नविशेषको तेरे अर्पण करते हैं (सूरयः त्वे प्रियासः सन्तु) वे विद्वान् तेरे प्रिय हों ॥ १४ ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्या-

वाणो अध्वरम् ॥ १५ ॥

प्रस्कण्व ऋषि बृहतीछन्द देवा देवता । मन्त्रार्थ-(श्रुत्कर्ण अग्ने सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरम् श्रुधि) हे श्रवण गुणयुक्त कर्णवाले अग्ने सहगामी हविग्राही देवताओंके साथ यज्ञको सुनो (मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः बर्हिषि आसीदन्तु) और मित्र देवता अर्यमा प्रातःसवनमें हवि पाने वाले देवता कुशासन पर विराजमान हों१५

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् । अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृ-

डीको भवतु जातवेदाः ॥ १६ ॥

गोतमऋषि त्रिष्टुप्छन्द अग्निदेवता । मन्त्रार्थ-(जातवेदाः विश्वेषाम् यज्ञिया-

नाम् अदितिः विश्वेषाम् मानुषाणाम् अतिथिः अग्निः देवानाम् अवः आवृणानः सुमृडीकः भवतु) सर्वज्ञ सवयज्ञयोग्य देवताओंके मध्य अदीन सब मनुष्योंका अतिथि समान पूज्य अग्नि देवताओंके हविरूप अन्नको समर्पण करता हमको श्रेष्ठ सुखकर्त्ता होय ॥ १६ ॥

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये । श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ १७ ॥

लुपोधानाक ऋषि त्रिष्टुप छन्द प्रार्थना देवता । मन्त्रार्थ-(सवितुः श्रेष्ठे सवीमनि देवानाम् तत् अव अद्यः वृणीमहे) सूर्यकी श्रेष्ठ आज्ञा होनेपर देवताओंके उस अन्नरूप हविको अब हम संस्कार करते हैं (महः समिधानस्य अग्ने शर्म्मणि मित्रे वरुणे अनागाः स्वस्तये स्याम) पूज्य दीप्यमान अग्निके आश्रयमें मित्र और वरुण के निरपराध हम स्वस्तिमान् हों ॥ १७ ॥

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतञ्जरितारस्त इन्द्र । याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वꣳहि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥

वसिष्ठ ऋषि त्रिष्टुप्छन्द इन्द्र देवता। मंत्रार्थ-(इन्द्रः तर्यः जरितारः गावः ते ऋतम् नक्षन्) हे इन्द्र ! वेदवाणियोंके द्वारा स्तुतिकर्त्ता ऋत्विज तेरे यज्ञको व्याप्त करते हैं (नः आपः चित् पिप्युः) और निम्नाभ्यरूप जल भी वृद्धि देते हैं (त्वम् न अच्छ आयाहि) तुम हमारे सन्मुख आओ (न वायुः नियुतः) जैसे वायु अपने अश्वोंके सन्मुख आता है (हि धीभिः वाजान् विदयसे) क्योंकि बुद्धिओं के साथ अन्नोंको देते हो ॥ १८ ॥

गाव उपावतावतम्मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १९ ॥

पुरुमीढाजमीढ ऋषि गायत्री छन्द गावो देवता । मन्त्रार्थ-(गावः मही यज्ञस्य रप्सुदा उभा कर्णा हिरण्यया अवतम् उपावत्) हे गौ वा वृष्टिधाराओं ! महती द्यावापृथिवी यज्ञको देनेवाली हैं दोनों सुवर्णमय कर्णों द्वारा चत्वालरूप कूपके प्रति प्राप्त करो ॥ १९ ॥

यदद्य सूर उदितेनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ २० ॥

वसिष्ठ ऋषि निचृद्गायत्री छन्द देवा देवता मंत्रार्थ—(यत् अद्य सूरे उदिते अनागाः मित्रः अर्यमा सवितः भगः सुवाति) जिस कारण अब सूर्यके उदय होनेपर मोक्षकालमें निरपराध मित्र अर्यमा देवता सविता भगदेवता प्रेरणा करता है वह कर्म करें ॥ २० ॥

आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् । तम्पत्नयायं वेनः ॥ २१ ॥

वसिष्ठ ऋषि गायत्री छन्द नदी देवता । मन्त्रार्थ—(रसः रोदस्याः श्रियं अभिश्रियं वृषभं दधीत सुते आसिञ्चत) आत्मारूप नदी पृथिवी स्वर्गके सब ओर से शोभित धर्मको धारण करती है सोमके अभिषुत होनेपर ऋत्विज उसको सींचें२१

आतिष्ठन्तम्परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ २२ ॥

विश्वामित्र ऋषि, निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ (विश्वे आतिष्ठन्तम् पर्यभूषन्) सम्पूर्ण देवताओंने चिरस्थित इस देवताको शोभित किया (श्रियः वसाना स्वरोचिः चरति) देवताओंकी दीप्तिको आच्छादन करता हुआ अपने प्रकाशसे विचरता है (विश्वरूपः अमृतानि आतस्थौ) विश्वका निरूपक वृष्टिके निमित्त जलोंको स्थित करता है (असुरस्य वृष्णः तत् महत् नाम) सावधान बुद्धि वाले फलवर्षी इन्द्रका वह प्रसिद्ध नाम है ॥ २२ ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे । इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णञ्च रोदसी सपर्यतः ॥ २३ ॥

सुचीक ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ—(वः अन्धसः मन्दमानाय विश्वाभुवे महे विश्वानराय प्रार्च) ऋत्विजो ! तुम्हारे हविरूप अन्नसे मोदमान सर्वव्यापी महनीय सब मनुष्य जिसके यजमान हैं उसके अर्थ पूजन करो (रोदसी यस्य सुमखम् सहः महि श्रवः च नृम्णम् सपर्यतः) पृथिवी स्वर्ग जिस यजमानके शोभन यज्ञ बल महान् यश और धनको स्तुत करते हैं ॥ २३ ॥

बृहन्निदिध्म एषाम्भूरि शन्तम्पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २४ ॥

त्रिशोक ऋषि, गायत्री छन्द इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ—(येषाम् सखा युवा इन्द्रः) जिन ऋत्विजोंका मित्र जराहीन इन्द्र है (एषाम् इध्म बृहन् इत्) उनका प्राण महान् नहीं होता है (स्वरुः पृथु शस्तं भूरि) ज्ञानखड्ग विशाल और शरीर महान् होता है ॥ २४ ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोम पर्वभिः । महाँ२॥ अभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥

मधुच्छन्दा ऋषि गायत्री छन्द इन्द्र देवता। मंत्रार्थ-(इन्द्र एहि) हे इन्द्र ! यहाँ आओ (ओजसा महान् अभिष्टिः विश्वेभिः सोमपर्वभिः अन्धसः मत्सि) तेजसे श्रेष्ठ पूजनीय सब सोमरसों सहित अन्नसे तृप्त हूजिये ॥ २५ ॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्द्धनीतिः प्रमायिनाममिनाद्वर्पणीतिः । अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वा-विर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ २६ ॥

विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(शर्धनीतिः वर्पणीतिः उषधक् इन्द्रः मायिनाम् वृत्रम् अवृणोत् प्रामिणात् बलवान् नानारूपधारी चोरोंके दाहक इन्द्रने मायावी असुरोंको युद्धके अर्थ चाहा और मारा (व्यंसम् वनेषु अहन्) दुष्टोंका वनोंमें नाश किया (राम्याणाम् धेनाः आविः अकृणोत्) ऋत्विजोंके महा-वचनोंको प्रकट किया ॥ २६ ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको या सत्पते किन्त इत्था । सम्पृच्छसे समराणः शुभा-नैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे । महाँ२॥ इन्द्रो य ओजसा कदाचनस्तरीरसि । कदा-चन प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥

अगस्त्य ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(सत्पते इन्द्र त्वम् एकः सत् कुतः यासि) हे सत्पुरुषोंके पालक इन्द्र तुम असहाय कहाँ गमन करते हो (ते माहिनः इत्था किम्) पूजनीय आपके गमनका हेतु क्या है (शुभानैः सम् पृच्छसे) सम्यक् जाते हुए श्रेष्ठ वचनोंसे भलेप्रकार बूझे जाते हो (हरिवः तत् नः वोचेः)

हे हरितवर्ण अश्ववाले इन्द्र हमारे प्रति उस एकाकीगमनके कारणको कहो (यत् अस्मे ते) क्योंकि हम तुम्हारे हैं महान् इत्यादिकी व्याख्या ७। ३९ में होगई ॥२७॥

आतत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वङ्गोमन्तन्तितृत्सान् । सकृत्स्वं ये पुरुपुत्राम्महीं सहस्रधाराम्बृहतीन्दुदुक्षन् ॥ २८ ॥

गौरीविति ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता। मंत्रार्थ-(इन्द्र ये आयवः गोमंतम् ऊर्ध्वम् तितृत्सान्) हे इन्द्र ! जो मनुष्य जलसे युक्त सोमरूप अन्नको अभिषव करना चाहते हैं (ये सकृत्स्वं पुरुपुत्रां सहस्रधारां बृहतीम् महीम् दुदुक्षन) जो एक ही बार धन देनेवाली बहुत पुत्रवाली अनन्त धारा वाली महती भूमिको दुहना चाहते हैं (ते तत् आपनन्त) तुम्हारे उस कर्मको पूजते हैं ॥ २८ ॥

इमान्ते धियम्प्रभरे महो महीमस्यस्तोत्रे धिषणायत्त आनजे । तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रन्देवासः शवसा मदन्ननु ॥ २९ ॥

कुत्सऋषि, जगती छन्द, इन्द्र देवता। मंत्रार्थ-(ते महः इमाम् महीम् धियम् प्रभरे) हे इन्द्र तुझ पूज्यके अर्थ इस महती स्तुतिको समर्पण करता हूँ (यत् अस्य धिषणा ते स्तोत्रे आनजे) जिसकारण इस यजमानकी बुद्धि तेरे स्तोत्रमें युक्त होती है (देवासः उत्सवे च प्रसवे ।तम् शवसा सासहिं इन्द्रं अन्वमदन्) देवता अभ्युदय में और पुत्रोत्सवादिमें उस बलसे शत्रुओं के जेता इन्द्रको अनुमोदन करते हैं ॥२९॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यम्मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ॥ ३० ॥

विभ्राड् ऋषि जगती छन्द,सूर्यदेवता। मन्त्रार्थ—(विभ्राट् यज्ञपतौ अविहुतम् आयुः दधत्) सूर्य यजमानसे अखण्डित आयुको स्थापन करते हुए (बृहत् मधु सोम्यम् पिबतु) महत् स्वादु सोमरूप हविको पान करो (यः वातजूतः त्मना प्रजाः अभिरक्षति पुपोष) जो वायुसे प्रेरित आत्माद्वारा प्रजाको पालन करता है पोषण करता है (पुरुधा विराजति) अनेक रूपसे शोभित होता है ॥ ३० ॥

उदुत्यज्जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यꣳ स्वाहा ॥ ३१ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ७ मंत्र ४१ में × होगई है ॥ ३१ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तञ्जनां २ ॥ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥

प्रस्कण्व ऋषि गायत्री छन्द, सूर्य देवता । मन्त्रार्थ-(पावक, वरुण त्वम् येन चक्षसा तम् भुरण्यम् पश्यसि) हे शोधक ! वरुण तुम जिस अनुग्रहदृष्टिसे उस सुपर्णरूपको देखते हो (आजनान् अनु) उसी चक्षुसे हम ऋत्विजोंको भी देखो

दैव्यावध्वर्यू आगतꣳ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे । तम्प्रत्नथा वेनः । चित्रन्देवानाम् ॥ ३३ ॥

दैव्यावध्वर्यू देवते। मन्त्रार्थ-(देव्यौ अध्वर्यू सूर्यत्वचा रथेन आगतम्) हे दिव्य अश्विनीकुमार ! तुम सूर्यकी समान कांतिमान् रथके द्वारा प्रकट हूजिये (मध्वा यज्ञम् समञ्जाथे) पुरोडाश दधि आदिसे यज्ञको सींचकर बहुत हविवाला करो ॥ ३३ ॥

आ न इडा भिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु । अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वञ्जगदभिपित्वे मनीषा ॥ ३४ ॥

अगस्त्य ऋषि, त्रिष्टुप्छंद सविता देवता । मन्त्रार्थ (विश्वानरः सविता देवः न इडाभिः सुशस्ति विदथे आएतु) सब जीवोंका हितकारी ईश्वर अन्तर्यामी हमारे सुन्दर अन्नोंके द्वारा प्रशंसायोग्य यज्ञशालामें प्रकट हो (युवानः अभिपित्वे यथा मत्सथ विश्वं जगत् नः मनीषा आ) हे जरा रहित देवताओं आगमनकाल पर जिस प्रकारसे तुम तृप्त हो उसीप्रकार सब जगत्को हमारी प्रज्ञासे तृप्त करो ॥ ३४ ॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वन्तदिन्द्र ते वशे ॥ ३५ ॥

श्रुतकक्ष सुकक्ष ऋषि, गायत्री छंद, सूर्य देवता । मन्त्रार्थ -(वृत्रहन् इन्द्र सूर्य अद्य यत् कच्च अभ्युदगाः तत् सर्वं ते वशे) हे अन्धकारनाशक ऐश्वर्ययुक्त सूर्यदेव आज जहाँ कहीं तुम उदय हो वह सब आपके वशमें है ॥ ३५ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ३६ ॥

प्रस्कण्व ऋषि गायत्री छन्द, सूर्य देवता। मंत्रार्थ-(सूर्य तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि) हे सूर्य संसारसागरके नौकारूप सबके दर्शनयोग्य तुम तेजके कर्त्ता हो (रोचनं विश्वम् आभासि) आप के प्रकाशसे दीप्यमान संसारको तुम प्रकाश करते हो ॥ ३६ ॥

तत्सूर्यस्य देवत्वन्तन्महित्वन्मध्या कर्त्तोर्विततꣳ सञ्जभार। यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥

कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सूर्य दे० मन्त्रार्थ-(सूर्यस्य तत् देवत्वम् तत् महत्वम् कर्त्तो मध्ये आविततम् सञ्जभार) सूर्यका वह देवत्व है वह ऐश्वर्य है जो विराट्रूप देहके मध्य सब ओरसे विस्तारित ग्रहमण्डलको आकर्षणसे नियमित रखता है (यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त) जब ही हरितवर्ण किरणों को आकाशमण्डल से अपने आत्मामें युक्त करता है (आत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते) तदनन्तर ही रात्रि सबके अर्थ वस्त्राच्छादन करती है ॥ ३७ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ ३८ ॥

मन्त्रार्थ-(सूर्यः द्योः उपस्थे मित्रस्य वरुणस्य रूपम् कृणुते) सूर्य स्वर्गलोकके उत्संगमें पुण्यात्माओंके अनुग्राहक मित्र और पापियोंके निग्राहक वरुणके रूपको करता है (तत् अभिचष्टे) उसको सर्वात्मरूप देखता है (अस्य अन्यत् पाजः अनन्तम् रुशत्) इस सूर्यका अनन्यरूप अनन्त अर्थात् देशकालके परिच्छेदसे रहित मायोपाधिका नाशक ब्रह्म ही है (अन्यत् कृष्णम् हरितः सम्भरन्ति) दूसरे रूप साकारको इन्द्रियवृत्तियाँ वा किरणें धारण करती हैं अर्थात् सूर्य सगुण निर्गुण ब्रह्म है ॥ ३८ ॥

बण्महाँ२॥ असि सूर्य बडादित्य महाँ२॥ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२॥ असि ॥ ३९ ॥

जमदग्नि ऋषि, बृहती छन्द सूर्य देवता। मन्त्रार्थ-(सूर्य बट् महान् असि) हे जगत्प्रेरक सत्य है तुम श्रेष्ठ हो (आदित्य बट् महान् असि) हे पराशक्तिके पुत्र सत्य

है तुम महान् हो (महः सतः ते महिमा पनस्यते) महान् नित्य तुम्हारी महिमा वेदोंसे स्तुतिकी जाती है (देव अद्धा महान् असि) हे दीप्यमान सत्य है तुम महान् हो

वट् सूर्य श्रवसा महाँ२॥ असि सत्रा देव महाँ२॥ असि । मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४० ॥

जमदग्नि ऋषि, सतोबृहती छन्द सूर्य देवता । मन्त्रार्थ-(सूर्य वट् श्रवसा महान् असि) हे सूर्य सत्य है तुम धन वा यशसे महान् हो (देव असुर्यः देवानाम् पुरोहितः विभु अदाभ्यम् ज्योतिः सत्रा मह्ना महान् असि) हे नानारूपोंसे क्रीड़नशील प्राणियों के हितकारी देवताओंके आगे हितकारी व्यापक अनुपहिंस्य ज्योतिःस्वरूप तुम लक्ष्मी अमृत शक्तिके दाता महत्वसे महान् हो ॥ ४० ॥

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रतिभागन्न दीधिम ॥ ४१ ॥

नृमेध ऋषि, बृहती छ०, सूर्य देवता । मंत्रार्थ-(सूर्यम् श्रायन्तः इव इन्द्रस्य इत् विश्वा वसूनि भक्षत) सूर्यको पूजते ही उस इन्द्ररूपके ही सब धनोंको अर्थात् धान्य निष्पत्ति वृष्टि आदिको भोगो (न ओजसा जाते जनमाने भागं प्रतिदीधिम) और हम तेज द्वारा सूर्यका उदय होनेपर यज्ञमें देवभागको देवें ॥ ४१ ॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ४२ ॥

कुत्सऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, देवा देवता । मंत्रार्थ-(देवा अद्या सूर्यस्य उदिता नः अंहसः अवद्यात् निःपिपृत मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत् द्यौः तत् मामहन्तां) हे सूर्यरश्मिरूप देवताओं अब इस दिनमें सूर्यके उदय पर हमको पाप और दुर्यशसे मुक्त करो मित्र वरुण अदिति समुद्र पृथिवी और स्वर्ग हमारे वचनको अंगीकार करो ॥ ४२ ॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ४३ ॥

हिरण्यस्तूप ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द सविता देवता। मन्त्रार्थ-(सविता देवः हिरण्ययेन रथेन आवर्त्तमानः कृष्णेन रजसा अमृतं च मर्त्यं निवेशयन् भुवनानि पश्यन् आयाति) सूर्यदेवता ज्योतिर्मय निजमंडलरूप रथके द्वारा सुमेरु पर्वतको परिक्रमण करता अंधकार और ज्योतिसे देवता आदि और मनुष्य आदिको अपने व्यापारमें स्थापन करता भुवनोंको देखता अर्थात् साधु असाधु कर्मोंको विचारता गमन करता है॥३

प्रवावृजे सुप्रया बर्हिरेषामाविश्पतीव बीरिट इयाते। विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ ४४ ॥

वशिष्ठऋषि त्रिष्टुप्छन्द विश्वेदेवा देवता। मन्त्रार्थ-(एषां स्वस्तये नियुत्वान् वायुः पूषा अक्तोः उषस पूर्वहूतौ बीरिट, विश्पती इव आइयाते) इन यजमानोंके कल्याणार्थ अश्ववान् वायु और पूषा दिनरातके पूर्व आह्वानकाल पर अर्थात् अग्निहोत्रके समय अन्तरिक्षमें राजाओंकी समान आवें (सुप्रयाः बर्हिः प्रवावृजे) जिनका अच्छी विधिसे प्रस्तीर्ण कुशासन बिछाया जाता है॥ ४४ ॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ४५ ॥

मेधातिथि ऋषि गायत्री छन्द देवा देवता। मंत्रार्थ-(इन्द्रवायू बृहस्पतिम् मित्रम् अग्निम् पूषणम् भगम् आदित्यान् मारुतम् गणम्) इन्द्र वायु बृहस्पति मित्र अग्नि पूषा भग बारह आदित्य और मरुद्गणको आह्वान करता हूँ ॥ ४५ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः ॥ ४६ ॥

मन्त्रार्थ-(वरुणः मित्रः विश्वाभिः ऊतिभिः प्राविता भुवत्) वरुण मित्र सब रक्षण प्रकारोंके द्वारा अच्छे रक्षक हों (नः सुराधसः करताम्) हमको शुभ धनवाला करें

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना। तं प्रत्नथायं वेनो ये देवास आ न इडाभिर्विश्वेभिः सोम्यं मध्वोमासश्चर्षणीधृतः ॥ ४७ ॥

कुसीदि ऋषि गायत्रीछन्द, देवा देवता। मंत्रार्थ--(इन्द्र विष्णो मरुतः अश्विना नः एषां सजात्यानां अधि आइत) हे इन्द्र हे विष्णो हे मरुतो हे अश्विनीकुमारो हमारे इन समान जातिवालोंके मध्य आइये। शेषकी व्याख्या पहिले होगई

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्रयन्त मारुतोत विष्णो । उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥ ४८ ॥

प्रतिक्षत ऋषि गायत्री छन्द देवा देवता । मन्त्रार्थ--(अग्ने इन्द्र वरुण मित्र देवाः मारुत उत विष्णोः शर्धः प्रयन्त) हे अग्ने हे इन्द्र हे वरुण हे मित्र हे देवताओं हे मरुद्गण और हे विष्णो आप बलको दीजिये (उभा नासत्या रुद्रः अधग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त) दोनों अश्विनीकुमार रुद्र और देवपत्नियाँ पूषा भग और सरस्वती हवियोंको सेवन करो

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२॥ अपः । हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥ ४९ ॥

वत्सार ऋषि, जगती छन्द देवा दे० । मन्त्रार्थ-(इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ अदितिम् स्वः आदित्यम् पृथिवीम् द्याम् मरुतः पर्वतान् अपः विष्णुम् पूषणम् ब्रह्मणस्पतिम् भगम् शंसं सवितारम् नु ऊतये हुवे) इन्द्र अग्नि मित्र वरुण अदिति स्वर्ग आदित्य पृथिवी द्युलोक मरुद्गण पर्वत जल विष्णु पूषा ब्रह्मणस्पति भग स्तुतियोग्य सविता इन देवताओंको शीघ्र रक्षाके अर्थ आह्वान करता हूँ ॥ ४९ ॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः । यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२॥ अवन्तु देवाः ॥ ५० ॥

प्रगाथ ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, देवा देवता । मन्त्रार्थ-(यः शंसते स्तुवते पज्रः अधायि) जो यजमान शस्त्रस्तोत्र का जप करता है अर्थात् जपपाठपरायण है भलेप्रकार सम्पादित धनोंसे युक्त हवियोंको स्थापन करता है (अस्मे मेहना रुद्राः पर्वतासः वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः इन्द्रज्येष्ठाः देवाः अस्मान् अवन्तु) उसको और हमपर धन आदिके सेक्ता शत्रुरोदक उत्सव वाले पापवधके लिये संग्रामके आव्हानमें एकमति इन्द्रको ज्येष्ठ रखनेवाले देवता हमारी रक्षाकरें ५०

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् । त्राध्वं नो देवा

निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥ ५१ ॥

कूर्मऋषि त्रिष्टुप् छन्द देवा देवता। मंत्रार्थ-(यजत्राः देवाः अद्य अर्वाञ्चः आभवत) हे यजन करनेवालोंके रक्षक देवताओं अब हमारे सन्मुख आओ (भयमानः वः हार्दि आव्ययेयम्) संसारसे डरता मैं आप के मनको सन्मुख प्राप्त करूँ (यजत्राः नः वृकस्य निजुरः त्राध्वम्) हे देवताओं हम को मनके हिंसक पापसे रक्षा करो (अवपदः कर्तात् त्राध्वम्) प्रतिपदमें होनेवाले संसार कूपसे वा लोकापवादसे रक्षा करो ॥५१॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ५२ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १८ मंत्र ३१ में होगई ॥ ५२ ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप विष्टः। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥ ५३ ॥

सुहोत्र ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वेदेवा देवता। मन्त्रार्थ-(विश्वे देवाः ये अन्तरिक्षे स्थ) हे विश्वेदेवाओं! जो तुम अन्तरिक्षमें हो (ये द्यवि उप) जो स्वर्गमें हो (उत ये अग्निजिह्वाः यजत्रा) और जो अग्निरूप मुखवाले यजनयोग्य हो (इमम् मे हवम् शृणुत) वे सब तुम मेरे आह्वान को सुनो (अस्मिन् बर्हिषि आसद्य मादयध्वम्) और इस कुशा पर बैठकर हवि से तृप्त हूजिये ॥ ५३ ॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम्। आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ ५४ ॥

वामदेव ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता। मन्त्रार्थ-(सवितः प्रथमम् हि यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः उत्तमं भागं अमृतत्वं सुवसि) हे सबके प्रेरक सविता देव तुम प्रथम ही यज्ञयोग्य देवताओंके अर्थ उत्तमभाग अग्निहोमरूप अमृतमय देते हो (आत् इत् दामानम् न अनूचीनानि जीवितानि व्यूर्णुषे) तदनन्तर ही प्रकाश रूप किरणों का विस्तार करते हो और मनुष्योंके निमित्त किरणोंके अनुगत जीवनमात्रका विस्तार देते हो। सर्वमेध समाप्त हुआ५४

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम् । द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥

ऋजिश्वऋषि, त्रिष्टुप्छन्द वायुदेवता। मन्त्रार्थ-(प्रयज्यो कविः द्युतद्यामः नियुताः पत्यमानः बृहद्रयिम् विश्ववारम् रथप्राम् कविम् वायुम् प्र इयक्षसि) हे ईश्वरके कार्यमें नियुक्त अध्वर्यु ज्ञानी दीप्यमान नियमनवाले शरीरपातपर्यन्त संकल्पयुक्त सर्वव्यापक धनसे रथके पूरक क्रान्तदर्शन वायुको पूजना चाहते हो ॥ ५५ ॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि० ॥ ५६ ॥

इसकी व्याख्या अ० ७म० ८ में होगई ॥ ५६ ॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥ ५७ ॥

मधुच्छन्दा ऋषि, गायत्री छन्द, लिङ्गोक्त-देवता । मंत्रार्थ—(पूतदक्षम् मित्रम् च रिशादसम् वरुणं हुवे) पवित्र सदाचार की वृद्धि करनेवाले मित्र देवता और हिंसक काम आदिके नाशक वरुणदेवता को आव्हान करता हूँ (घृताचीम् धियं साधन्ता) जोकि घृतसे हवन करनेकी बुद्धि को साधन करतेहैं ॥ ५७ ॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आयातꣳ रुद्रवर्तनी । तम्प्रत्नथा । यं वेनः

मन्त्रार्थ-(दस्रौ रुद्रवर्त्तनी नासत्यौ आयातं) हे दर्शनीय रुद्रकी समान गमन-शील सत्यशील अश्विनीकुमार आप आओ (युवाकवः वृक्तबर्हिषः सुताः) अग्नि में मिश्रित होनेवाले जहाँ कुशा बिछी हो वह सोम अभिषुत हुए ॥ ५८ ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः । अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥

कुशिकऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(सुपदी अक्षराणां रवम् जानती प्रथमा सरमा अच्छगात्) सुन्दर पदों वाली अक्षरोंकी ध्वनिको जानती आद्या त्रयीलक्षणा वाक् सन्मुख प्राप्त हुई (यदि विदत् अद्रेः रुग्णम् महि पूर्व्यम् सध्र्यक् पाथः कः अग्रं नयत्) यदि उसे जाने तो अध्वर्यु प्रस्तरसे अभिषुत महत्पूर्व ग्रहण किये एकसाथ हवनके निमित्त प्राप्त होने योग्य सोमलक्षणअन्न कौन प्रथम प्राप्तकरता

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर एतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥

विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, अग्नि देवता । मन्त्रार्थ-(देवाः अस्मात् वैश्वानरात् अग्नेः अन्यम् पुरः एतारम् स्पशम् नहि अविदन्) देवताओंने इस विश्वके हितकारी अग्निसे अन्य सब कार्योंमें अग्रगामी दूतको नहीं पाया (आइम अमृताः एनम् वैश्वानरम् क्षैत्रजित्याय अवृधन्) फिर देवताओंने इस अमरणधर्मा अग्नि को यजमानकी क्षेत्रप्राप्तिके निमित्त बढ़ाया ॥ ६० ॥

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥ ६१ ॥

भरद्वाज ऋषि गायत्रीछन्द, इन्द्राग्नी देवता । मन्त्रार्थ-(उग्रा विघनिना इन्द्राग्नी हवामहे) तीक्ष्ण बलवाले असुरोंके विशेष हन्ता इन्द्राग्नीको हम आह्वान करते हैं (ता नः ईदृशे मृधे मृडातः) वे दोनों हम को ऐसे भयानक युद्धमें सुख दें ॥ ६१ ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभिदेवाँ२॥ इयक्षते ॥ ६२ ॥

मन्त्रार्थ—(नरः अस्मै पवमानाय देवान् अभि इयक्षते) हे यज्ञके नेता ऋत्विजों इस गतिमान् देवताको सन्मुख पूजना चाहते (इन्दवे उपगायत) सोमके लिये स्तोत्रगान करो ॥ ६२ ॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ । ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥ ६३ ॥

विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(मघवन् ये विप्राः अहिहत्ये त्वा अवर्धन्) हे इन्द्र ! जिन मेधावी मरुद्गणोंने वृत्रासुरके वधरूप कर्ममें तुझे बढ़ाया (हरिवः ये शाम्बरे ये गविष्टौ ये नूनम् त्वा अनुमदन्ति) हे हरिनाम अश्वों से युक्त जिन मरुद्गणोंने शम्बरके युद्धमें तुझे बढ़ाया जिन्होंने यज्ञमें असुरोंसे हरी हुई गौओंके लानेकी इच्छामें तुझे बढ़ाया जो निश्चय तुझे तृप्त करतेहैं (इन्द्रः मरुद्भिः सगणः सोमम् पिब) हे इन्द्र ! उन मरुद्गणों के साथ गणसहित तुम सोमका पान करो

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः। अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ ६४ ॥

गौरीविति ऋषि त्रिष्टुप्छन्द इन्द्र देवता मन्त्रार्थ-(उग्रः मन्द्रः ओजिष्ठः बहुलाभिमानः तुराय सहसे जनिष्ठा) हे इन्द्र उत्कृष्ट स्तुतियोग्य अत्यन्त तेजस्वी सब जगत् मेरी विभूति है ऐसे बहुत अभिमानवाले वेगवान् बलके लिये प्रकट हुए हो (अत्र मरुतः चित् इन्द्रम् अवर्धन्) यहाँ मरुद्गणोंने भी इन्द्रको स्तुतियोंद्वारा बढ़ाया (यत् माता धनिष्ठा वीरम् दधनत्) जिस कारण अतिशय धनवती माता आदितिने इन्द्रको गर्भमें धारण किया ॥ ६४ ॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि। महान्महीभिरूतिभिः ॥ ६५ ॥

वामदेव ऋषि, गायत्री छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(वृत्रहन् इन्द्र महीभिः ऊतिभिः महान् नः तू) हे पापनाशक इन्द्र बड़ी रक्षाओंद्वारा महान् तुम हमारे पास शीघ्र आओ (आ अस्माकम् अर्धम् आ) हमारी सामीप्यताको प्राप्त करो ॥ ६५ ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः। अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वन्तूर्ये तरुष्यतः ॥ ६६ ॥

नृमेध ऋषि, पथ्याबृहती छन्द इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(इन्द्र त्वं प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभ्यसि) हे इन्द्र तुम संग्रामोंमें सब शत्रुसेनाको जय करतेहो(त्वं विश्वतूः असि) तुम सब शत्रुओंके नाशक हो (अशस्तिहा जनिता तरुष्यतः तूर्य) उस कारण दुष्टोंके हन्ता अपने पक्षकी प्रशंसा कराने वाले तुम मारते शत्रुको मारो ॥ ६६ ॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा। विश्वास्ते स्पृधः श्रथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६७ ॥

नृमेध ऋषि, सतोबृहती छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(इन्द्र क्षोणी ते तुरयन्तं शुष्मम् अन्वीयतुः) हे इन्द्र पृथिवी स्वर्ग शत्रुओंपर शीघ्रता करनेवाले तेरे बलको बहुत मानते हैं (न मातरौ शिशुम्) जैसे माता पिता बालकको (विश्वा स्पृधः ते मन्यवे श्रथयन्त) सब शत्रुसेना तेरे क्रोध से खिन्न होती हैं (यत् वृत्रम् तूर्वसि) जिसकारण देवता असुरोंसे अवध्य असुरको तुम मारते हो ॥ ६७ ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳ होश्चिद्या वरिवो वित्तरासत्० ॥ ६८ ॥

इसकी व्याख्या अ० ८ मंत्र ४ में होगई ॥ ६८ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा मा किर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ६९ ॥

भरद्वाज ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता । मंत्रार्थ (सवितः हिरण्यजिह्वः त्वम् अद्य अदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिः नः गयम् परिपाहि) हे सबके प्रेरक ज्योतिरूप जिह्वा वाले तुम अब अनुपहिंसित आनन्दस्वरूप रक्षाओंसे हमारे अनन्यभक्तिके कारण देहरूप गृहको रक्षा करो (नव्यसे सुविताय आरक्ष) नवीन सुखके लिये हमको पालन करो (किः अघशंसः नः मा ईशत) कोई पापेच्छु हमारे ऐश्वर्यको मत पाओ ॥६९॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः । वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ ७० ॥

वसिष्ठ ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द वायुदेवता मंत्रार्थ-(वाम् प्रवीरया शुचयः अध्वर्युभिः सुतासः मधुमन्तः दद्रिरे) हे पत्नी यजमान तुम दोनोंके प्रकृष्ट वीर निर्मल ऋत्विजों से अभिषुत निग्राभ्यजलमय सोम एकरस हुए (वायो नियुतः वह अच्छ याहि) हे वायो अश्वोंको देवयजनस्थानमें प्राप्त करो सोम के सन्मुख चलो (मदाय सुतस्य अंधसः पिब) तृप्तिके लिये अभिषुत सोमका पान करो ॥ ७० ॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ७१ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ३३ मन्त्र १९ में होगई ॥ ७१ ॥

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थ आ ॥ ७२ ॥

दक्षऋषि, गायत्री छन्द, मित्रावरुणौ देवते । मन्त्रार्थ --(रिशादसा दक्षस्य सधस्थे दुरोणे काव्ययोः आजानेषु क्रत्वा आ) हे शत्रुपक्षविनाशक मित्रावरुणो ! उत्साही यजमानके देवमनुष्योंके एकसाथ सोमपान स्थानवाले यज्ञस्थानमें कवियोंके हितकारी

२७ । ६ । ३९

तुम दोनोंकी देवयजन, भूमियोंमें यज्ञकर्म से सम्पादन करके आओ ॥ ७२ ॥

दैव्यावध्वर्यू आगतꣳ रथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे तम्प्रत्नथायं वेनः ७३

इसकी व्याख्या ३३। ३३। ७। १२ और ७। १६। में होगई ॥ ७३ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३ दुपरि स्विदासी३त् । रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ७४ ॥

प्रजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, भाववृत्त देवता। मन्त्रार्थ-(एषाम् रश्मिः तिरश्चीनः स्वित् विततः अधः आसीत्) इन व्यष्टि समष्टि सूर्योंकी किरणें तिरछी ही विस्तारित हैं और द्युलोकसे नीचे विद्यमान हुईं (उपरि स्वित् आसीत्) स्वर्ग में विद्यमान हुई (रेतोधाः आसन्) वे व्यष्टि समष्टि सूर्य जलोंके धारक हुए (महिमानः आसन्) उत्कृष्ट हुए (स्वधा अवस्तात्) अन्नके निष्पादक वह सूर्य भूमिके सन्मुख हुए (प्रयतिः परस्तात्) प्रयत्नसे ऊर्ध्वमुख होती हुई उत्तम दर्शन मात्रसे ही देवताओंको तृप्त करती है ॥ ७४ ॥

आ रोदसी अपृणदास्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् । सो अध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७५ ॥

विश्वामित्र ऋषि जगती छन्द वैश्वानर देवता। मन्त्रार्थ-(यत् अपसः एनम् जातम् अधारयन्) जब कर्मवन्त ऋत्विजों ने इस प्रादुर्भूत अग्निको धारण किया (रोदसी महत् स्वः आ अपृणत्) तब उस अग्निने द्यावापृथिवी और गगनमंडल को सब ओरसे पूर्ण किया (सः कविः वनः हितः अध्वराय परिणीयते) वह सर्वज्ञ और हमारा हितकारी यज्ञके लिये प्राप्त किया जाता है (नः अत्यः वाजसातये) जैसे सूर्य अन्नलाभके लिये ॥ ७५ ॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा। आंगूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥

वशिष्ठऋषि, गायत्री छन्द, इन्द्राग्नी देवता। मन्त्रार्थ-(या वृत्रहन्तमा मन्दाना चिदा आंगूषैः उक्थेभिः गिरा आविवासतः) जो अत्यन्त पापनाशक मोदमान इन्द्राग्नी देवता हैं वह मन्त्रोंके घोष और वेदवचन से ब्रह्माग्निको सेवन करते हैं ॥ ७६ ॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥

सुहोत्र ऋषि, गायत्री छन्द विश्वेदेवा देवता । मन्त्रार्थ--(ये अमृतस्य सूनवः नः गिरः उपशृण्वन्तु) जो प्रजापतिके पुत्र-विश्वेदेवा हैं वे हम यजमानोंके वचनोंको सुनो (नः सुमृडीकाः भवन्तु) हमारे सुख-कारी होवो ॥ ७७ ॥

ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः । आशासते प्रतिहर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ७८ ॥

अगस्त्य ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(मे ब्रह्माणि मतयः सुतासः शम्) मेरे मन्त्रवाक्यरूप स्तुति-वचन बुद्धि वृत्तियाँ और ऋत्विज परमानन्दके उत्पादक हैं (मे प्रभृतः शुष्मः अद्रिः इयर्ति) मुझसे धारण किया हुआ बल-रूप वज्र लक्ष्यको प्राप्त ही करता है (उक्था आशासते) अप्रगीत मन्त्रसाध्य स्तोत्र प्रार्थना करते हैं (ता प्रतिहर्यन्ति) वे स्तोत्रशस्त्र मुझको चाहते हैं (नः इमा हरी अच्छ वहतः) हमारे ये अश्व यज्ञके अभिमुख वहन करते मुझे प्राप्त करते हैं ७८

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२॥ अस्ति देवता विदानः । न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ७९ ॥

अगस्त्य ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(मघवन् ते नकिः आ अनुत्तमं) हे धनवन् इन्द्र तुमसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है यह हम स्मरण करते हैं (नु त्वावान् विदानः देवता न अस्ति) और अवश्य ही तुम्हारी समान विद्वान् तथा देवता नहीं है (प्रवृद्ध यानि कृणुहि) हे पुराणपुरुष जिन कर्मोंको आप करते हो (जायमानः जातः न नशते न करिष्यां) उनको वर्त्तमानमें पूर्वकालमें देव मनुष्योंमें नहीं व्याप्त करेगा न कोई करेगा ॥ ७९ ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः । सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ ८० ॥

बृहद्दिव ऋषि त्रिष्टुप् छन्द, माहेन्द्र देवता । मंत्रार्थ-(भुवनेषु तत् इत् ज्ये-

ष्ठम् आस) भुवनोंमें वही ब्रह्म ज्येष्ठ था (यतः त्वेषनृम्णः उग्रः जज्ञे) जिससे तेजोधन उत्कृष्ट इन्द्र प्रकट हुआ (जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति) जो प्रकट होता ही शीघ्र यजमानके शत्रु कामादिको नष्ट करता है (विश्वे ऊमाः यम् अनुमदन्ति) सब देवता जिसको तृप्त करते हैं ॥ ८ ॥

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम । पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८१ ॥

मेधातिथि ऋ० बृहती छन्द, आदित्य देवता । मन्त्रार्थ—(पुरुवसो उ याः मम गिरः इमाः त्वा वर्धन्तु) हे महाधनवन् ! अवश्य ही जो मेरे शस्त्ररूप वचन हैं ये तुमको बढ़ाओ (पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्यनूषत) अग्नितुल्य तेजस्वी ब्रह्मवर्चस युक्त शुद्ध विद्वानोंने स्तोत्रोंसे तुमको स्तुत किया ॥ ८१ ॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः । तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ ८२ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(अयम् विश्वः आर्यः, यस्य दासः) यह सब वर्णाश्रमविहित कर्मके अनुष्ठाताओंका समूह जिस परमात्माका सेवक है (शेवधिपाः अरिः) निधिरक्षक कृपण शत्रु है (पवीरवि रुशमे अर्य तिरः सः रयिः चित् तुभ्येत्, अज्यते) आयुधधारी धनके निमित्त दूसरे के हिंसक धनस्वामी वा वैश्य आदि के पास भूमिगर्त आदिमें निक्षिप्त जो धन है वह धनसमूह भी आपके अर्थ प्रकट होता है अर्थात् दूसरा पुरुष उस धनको लेकर आपके अर्थ धनव्यय करता है ॥ ८२ ॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ८३ ॥

मेधातिथि ऋषि, सतोबृहती छन्द, आदित्य देवता । मन्त्रार्थ-(अयम् ऋषिभिः सहस्कृतः सत्यः सः समुद्रः इव पप्रथे) यह वेदके मन्त्रोंसे बलयुक्त किया हुआ सूर्य समुद्रकी समान व्यापक हुआ (अस्य शवः महिमा सहस्रम् यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे) इसके बल महिमा और ज्योति के दाता महानारायणस्वरूपको यज्ञोंमें और समाधि में मैं वेदस्तुत करता हूँ ॥ ८३ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुवि-
ताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ८४ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ३३ मन्त्र ६९ में होगई ॥ ८४ ॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः । अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽग्रꣳ
शुक्रो अयामि ते ॥ ८५ ॥

जमदग्नि ऋषि, बृहती छन्द, वायु देवता । मन्त्रार्थ-(वायो नः दिविस्पृशम् यज्ञम् याहि) हे वायो ! हमारे स्वर्गलोक-व्यापी यज्ञको प्राप्त करो (अन्तः पवित्रे उपरि श्रीणानः अयम् शुक्रः सुमन्मभिः ते अयामि) पात्रमध्यस्थ तथा दशापवित्रके ऊपर सींचा हुआ यह सोम स्तोत्रोंके साथ तुझे प्राप्त कराता हूँ ॥ ८५ ॥

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे। यथा नः सर्व इज्जनोनमीवः सङ्गमे सुमना असत् ८६

तापस ऋषि बृहती छन्द, इन्द्र वायु देवते । मन्त्रार्थ—(इह सुसंदृशा सुहवा इन्द्रवायू हवामहे) इस यज्ञमें सम्यक् द्रष्टा शोभन आह्वानवाले इन्द्र वायु देवता हम आह्वान करते हैं (यथा नः सर्वः इत् जनः अनमीवः सङ्गमे सुमनाः असत्) जिस प्रकार हम यजमानके सब ही पुत्र पौत्र आदि व्याधिरहित और धनप्राप्तिमें उदार हों

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये। यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ८७

जमदग्नि ऋषि, बृहती छन्द, मित्रावरुण देवता । मन्त्रार्थ-(नूनम् यः मर्त्यः अभिष्टये हव्यदातये मित्रावरुणौ आचक्रे) निश्चय जो मनुष्य अभिमतलाभके लिये हविके दानार्थ मित्रावरुण देवताको सेवन करता है (सः देवतातये ऋधक् इत्था शशमे) वह यज्ञके अर्थ समृद्धिमान् होता सेवनरूप हेतुसे शान्त होता है ॥ ८७ ॥

आयातमुपभूषतं मध्वः पिबतमश्विना । दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मानो मर्धिष्टमागतम्

वसिष्ठ ऋषि, बृहती छन्द, अश्विनौ देवता । मन्त्रार्थ-(अश्विना आयातम् उपभूषतम् मध्वः पिबतम्) हे अश्विनीकुमारो यज्ञमें आओ यज्ञको अलंकृत करो सोमका पान करो (वृषणा जेन्यावसू पयः दुग्धम्) हे यज्ञफलके सेक्ताओ धनजयके कारण आप जलको गगनमण्डलसे गिराओ (आगतम् मा नो मर्धिष्टम्)मुझ प्राप्तको मत मारो

प्रैत ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यम्पंक्तिराधसन्देवा यज्ञन्नयन्तु नः ८९

कण्व ऋषि, बृहती छन्द विश्वेदेवा देवता। मन्त्रार्थ-(ब्रह्मणस्पतिः नः अच्छ प्रैतु) वेदका रक्षक हिरण्यगर्भ हमारे यज्ञके अभिमुख आगमन करे (सूनृता देवी प्रैतु) सत्यस्वरूपा पराशक्ति ज्ञानदृष्टिगोचर हो (देवाः वीरम् नर्यम् पंक्तिराधसम् यज्ञम् नयन्तु) देवता हमारे शत्रुओंका उन्मूलन करने वाले परमेश्वर के योग्य हविपाकसे समृद्ध द्रव्ययज्ञको परमेश्वरमें प्राप्त करो ॥ ८९ ॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि। रयिं पिशङ्गम्बहुलम्पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ९० ॥

त्रितऋषि, बृहती छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ--(चन्द्रमा अप्सु अन्तः सुपर्णः दिवि अधावते) देवताओंका आल्हादक सोम अभिषुत होकर अग्निमें हुत हुआ गरुड़की समान शीघ्रगामी होकर द्युलोक में वेगसे धावमान होता है (हरिः कनिक्रदत् पिशङ्गम् बहुलम् पुरुस्पृहम् रयिम् एति) हरितवर्ण सोम पर्जन्यरूपसे ध्वनि करता हुआ यवादि धान्याकारसे पीतवर्ण पर्याप्त बहुतोंकी इच्छावाले अन्नरूप धनको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

देवं देवं वोऽवसे देवं देवमभिष्टये। देवं देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ९१

मनुऋषि, बृहती छन्द, देवा देवता। मन्त्रार्थ—(देव्या धिया वः गृणन्ता अवसे देवं देवम् हुवेम) हे देवताओ देवताओंके याथात्म्य अनुसन्धानमें तत्पर बुद्धिके द्वारा तुमको स्तुत करते ऋत्विज हम रक्षाके अर्थ नाना प्रकारके अवतारोंसे क्रीडनशील देवको आह्वान करते हैं (अभिष्टये देवम् देवम्) अभीष्टफलप्राप्तिके अर्थ देवदेवको आह्वान करते हैं (वाजसातये देवम् देवम्) अन्नलाभके लिये देवदेवको आह्वान करते हैं ॥ ९१ ॥

दिवि पृष्ठो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन्। क्ष्मया वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥ ९२ ॥

मेधाऋषि बृहती छन्द, अग्नि देवता। मन्त्रार्थ-(वैश्वानरः बृहत् अग्निः पृष्टः दिवि आरोचत) सब नरोंका हितकारी महान् अग्नि आदित्यस्वरूपसे स्थित स्वर्गमें प्रका-

शित हुआ (दमया वृधानः च ओजसा नः हितः ज्योतिषा तमः बाधते) भूलोकवासी मनुष्योंकी दी हुई हवि द्वारा वर्धमान और तेजसे हमारा हितकारी अग्नि अपने प्रकाश से अन्धकारको दूर करता है ॥ ९२ ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत् त्रिꣳशत् पदान्यक्रमीत् ॥ ९३ ॥

सुहोत्र ऋषि बृहती छन्द इन्द्राग्नी देवता मंत्रार्थ-(इन्द्राग्नी इयं अपात् पद्वतीभ्यः पूर्वा अगात्) हे इंद्राग्नी यह उषा पादरहित होकर भी पादसहित प्रजाओंसे पहिले आगमन करती है (शिरः हित्वी जिह्वया वावदत् अचरत्) उन प्रजाओंके शिरको निद्रात्याग द्वारा प्रेरणा करती हुई प्राणियों की वाणीके द्वारा शब्द करती हुई फैलती है (त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत्) एक दिनमें ३० मुहूर्त्तोंको आक्रमण करती है ॥ ९३ ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः । ते नो अद्य ते अपरं तुचेतु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ ९४ ॥

मनु ऋषि सतो बृहती छन्द विश्वेदेवा देवता । मन्त्रार्थ-(मनवे समन्यवः सरातयः ते विश्वे देवाः अद्य नः साकम् वरिवोविदः भवन्तु) मनके निमित्त एकमतिको प्राप्त हुए दाता वह प्रसिद्ध विश्वेदेवा अब हमारे साथ धन प्राप्त करनेवाले हों (तु ते हिष्माः अपरम् नः तुचे) फिर वह अवश्य धन देने वाले भविष्यकालमें हमारे पुत्रपौत्रादिके दाता हों ॥ ९४ ॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ ९५ ॥

नृमेधऋषि, सतोबृहती छन्द, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(मरुद्गण बृहद्भानो इन्द्रः देवाः ते सख्याय, येमिरे) हे मरुद्गण हे महादीप्तिवाले इन्द्र देवताओंने तुम्हारी मित्रताके निमित्त आत्माको संयत किया (अथ अशस्तिहा इन्द्रः अभिशस्तीः अपाधमत्) और असुरोंके नाशक इन्द्रने शत्रुकृत अपवादोंको दूर किया (द्युम्नी आ अभवत्) यशस्वी हुआ सब ओरसे धनवान् होता है ॥ ९५ ॥

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत । वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ९६

नृमेध ऋषि, बृहती छन्द इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ—(मरुतः वः बृहते इन्द्राय ब्रह्म प्रार्चत) हे मरुतो ! तुम्हारे महान् इन्द्रके अर्थ सामरूप स्तोत्रको उच्चारण करो (वृत्रहा शतक्रतु; शतपर्वणा वज्रेण वृत्रम् हनति) पापका नाशक अनन्त यज्ञों वाला इन्द्र अनन्तधारावाले वज्रसे पापको नष्ट करता है ॥ ९६ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि । अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा । इमा उ त्वा । यस्यायमयꣳ सहस्रमूर्ध्व ऊ षु णः ॥ ९७ ॥

मेधातिथि ऋषि सतोबृहती छन्द माहेन्द्र देवता । मंत्रार्थ—(इन्द्रः विष्णवि सुतस्य मदे अस्य इत् वृष्ण्यम् शवः वावृधे) इन्द्र यज्ञमें अभिषुत सोमके मदमें इसी यजमानके वीर्य और बलको बढ़ाता है (अद्या आयवः पूर्वथा अस्य तम् महिमानम् अनुष्टुवन्ति) अद्यतन मनुष्य पूर्व ऋषियोंकी समान इस इन्द्रकी उस महिमाको स्तुत करते हैं ॥ ९७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखामें सानुवाद
त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त

❀ अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ❀

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, मन देवता । मंत्रार्थ—(यत् जाग्रतः दूरं उदैति) जो मन जागतेका चक्षु आदिकी अपेक्षासे दूर होता है (दवं तत् उ सुप्तस्य तथैव एति द्युतिमान्) वह ही सोते हुएके उसी प्रकारसे सुषुप्तिमें आता है (दूरंगमं ज्योतिषां एकं ज्योतिः तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) त्रिकालके पदार्थोंको ग्रहण करने वाला और प्रकाशक श्रोत्रादिकोंका एक ज्योति वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्पवाला धर्ममें तत्पर हो ॥ १ ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । २ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(अपसः धीराः मनीषिणः यज्ञे येन कर्माणि कृण्वन्ति) कर्मनिष्ठ होनेसे कर्मरूप बुद्धिमान् मेधावी पुरुष यज्ञमें जिस मनकेद्वारा कर्मोंको करते हैं (प्रजानाम् अन्तः विदथेषु यत् अपूर्वम् यक्षम् तत् मे मनः शिवसंकल्पम्अस्तु)प्रजाओंके शरीरमें और यज्ञीयपदार्थोंके ज्ञानमें जो मन अद्भुत पूज्यभावसे स्थित है वह मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्प वाला वा शान्तसंकल्प हो ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्च न कर्म्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(प्रजासु अन्तः यत् प्रज्ञानम् उत चेतः च धृतिः) प्रजाओंमें जो मन प्रकर्षज्ञानस्वरूप है और चित्तस्वरूप है और धैर्यरूप है (यत् अमृतं ज्योतिः) जो मन अविनाशी ज्योति है (यस्मात् ऋते किञ्चन कर्म न क्रियते) जिसके विना कोई कर्म नहीं कियाजाता है (तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्प वाला वा शान्तसङ्कल्प हो ॥ ३ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(येन अमृतेन इदम् सर्वम् भूतं भुवनम् भविष्यत् परिगृहीतम्) जिस मनके द्वारा यह सब भूतकाल संबन्धी वस्तु वर्तमान काल सम्बन्धी वस्तु और भविष्यकाल संबन्धी वस्तु सब ओरसे ज्ञात होती हैं (यन सप्तहोता यज्ञः तायते) जिस मनके द्वारा सात होता वाला यज्ञ विस्तारित किया जाता है (तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्पवाला वा शान्तसंकल्प हो४

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चित्तꣳ सर्व-

मोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(यस्मिन् ऋचः प्रतिष्ठिताः) जिस मनमें ऋग्वेदके मंत्र प्रतिष्ठित हैं (यस्मिन् साम यजूंषि) जिस मनमें साममंत्र और यजुर्वेदके मंत्र प्रतिष्ठित हैं (इव रथनाभौ आराः) जैसे रथचक्रकी नाभिमें आरा (प्रजानाम् सर्वम् चित्तम् यस्मिन् ओतम्) प्रजाओंका सब ज्ञान जिस मनमें ओतप्रोत है (तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु)वह मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्पवाला वा शान्तसंकल्प हो ॥ ५ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(यत् मनुष्यान् नेनीयते) जो मन जीवोंको इधर उधर लेजाता है (इव सुषारथिः अभीशुभिः वाजिनः अश्वान्) जैसे अच्छा सारथि बागडोरोंसे बेगवान् घोड़ोंको (यत् अजिरम् जविष्ठं इव हृत्प्रतिष्ठत्) जो मन बाल्ययौवन वृद्धता जरासे रहित अति वेगवान् जैसे हृदयमें स्थित है (तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्पवाला वा शांतसंकल्प हो

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ ७ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, उष्णिक् छन्द अन्न देवता । मन्त्रार्थ-(महः तविषीम् धर्माणम् पितुम् स्तोषम्) बड़े बलके धारक अन्नको स्तुत करता हूँ (नु यस्य ओजसा त्रितः विपर्वम् वृत्रम् व्यर्दयत्) अवश्य ही जिसके बलसे तीनों स्थानके स्वामी इन्द्रने विविध पर्व वाले पापको बहुप्रकारसे पीड़ित किया ॥ ७ ॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्रण आयूꣳषि तारिषः

याज्ञवल्क्य ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, अनुमति देवता । मन्त्रार्थ-(अनुमते त्वम् इत् अनुमन्यासै) हे शुक्लचतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा तिथ्यभिमानिनि देवी तुम ही हमारे कथनको जानो (च नः शम् कृधि) और हमारे कल्याणको करो (क्रत्वे दक्षाय नः हिनु) संकल्पके विषयमें सिद्धिके लिये हमको प्राप्त करो (नः आयुषि प्रतारिषः) हमारी आयुको बढ़ाओ ॥ ८ ॥

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥ ९ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(अनुमतिः च हव्यवाहनः अग्निः अद्य नः यज्ञम् देवेषु अनुमन्यताम्) अनुमति देवी और हविको पहुँचाने वाला अग्नि अब हमारे यज्ञको देवताओंमें वर्त्तमान जाने (दाशुषे मयः भवतम्) हविदाता यजमानके अर्थ सुखरूप हूजिये ॥ ९ ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः

याज्ञवल्क्य ऋषि, अनुष्टुप् छन्द सिनीवाली देवता मन्त्रार्थ (पृथुष्टुके सिनीवालि या देवानाम् स्वसा असि) हे पृथुकामा चतुर्दशीयुक्त अमावास्याभिमानिनि देवि जो तुम देवताओंकी भगिनी हो (आहुतम् हव्यम् जुषस्व) होमे हुए हव्यको प्रीति पूर्वक ग्रहण करो (देवि नः प्रजाम् दिदिड्ढि) हे देवि हमारे अर्थ सन्तानको दीजिये

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ११

याज्ञवल्क्य ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, सरस्वती देवता । मन्त्रार्थ-(सस्रोतसः पञ्च नद्यः सरस्वतीम् उ अपियन्ति) समान प्रवाह वाली पांच नदियें सरस्वतीको ही प्राप्त होती हैं (सा सरस्वती तु देशे पञ्चधा सरित् अभवत्) वह सरस्वती ब्रह्मर्षिदेश में पंच नदरूपा प्रकट हुई है ॥ ११ ॥

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा । तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १२ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, जगती छन्द, अग्नि देवता मन्त्रार्थ-अग्ने त्वम् अङ्गिरः ऋषिः देवः शिवः देवानाम् प्रथमः सखा अभवः) हे अग्ने तुम यजमानोंके सुखदाता द्रष्टा द्योतमान कल्याण रूप देवताओंके मुख्य सखा हुए (मरुतः तव व्रते कवयः विद्मनापसः भ्राजदृष्टयः अजायन्त) मरुद्गण तेरा कर्म वर्त्तमान होने पर क्रान्तदर्शी विदितकर्मा शोभयमान आयुध वाले हुए ॥ १२ ॥

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य । त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १३ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ—(देव वन्द्य अग्ने तव व्रते मघोनः च नः तन्वः तव पायुभिः रक्ष) हे द्योतमान स्तुति योग्य अग्ने तेरे यज्ञकर्ममें वर्त्तमान धनवान् यजमानोंको और हम ऋत्विजोंके शरीरों को अपनी रक्षाओंसे रक्षा करो (अनिमेषम् रक्षमाणः तोकस्य तनये गवाम् त्राता असि) सावधान पालन करते तुम अपने पुत्र यजमानके पुत्रमें इन्द्रियोंके रक्षक हो ॥ १३ ॥

उत्तानायामवभरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान। अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ १४ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द अग्नि देवता। मन्त्रार्थ—(इडायाः पुत्रः अरुषस्तूपः वयुने अजनिष्ट) पृथ्वीका पुत्र हिंसारहित ऊँची ज्वालाओंवाला अग्नि प्रज्ञानके कर्त्तव्यमें प्रकट हुआ है। (अस्य चिकित्वान् रुशत् पाजः उत्तानाम् अवभर) इसके चेतनावान् प्रदीप्तबलको उत्तान अरणीमें धारण करो (प्रवीता वृषणम् सद्यः आजजान) जो अरणी कामना की हुई सेचनसमर्थ अग्निको शीघ्र प्रकट करती है ॥ १४ ॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि। जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे १५

याज्ञवल्क्य ऋषि, अनुष्टुप् छन्द अग्नि देवता। मंत्रार्थ—(जातवेदः अग्ने इडायाः पदे पृथिव्याः नाभा अभि वयम् त्वा हव्याय वोढवे, निधीमहि) हे सर्वज्ञ अग्ने पृथिवीके स्थान देवयजननाममें पृथिवीकी उत्तर वेदीमें हम तुझे हव्यधारणके निमित्त स्थापन करते हैं ॥ १५ ॥

प्रमन्महे शवसानाय शूषमांगूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्। सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १६ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि त्रिष्टुप्छन्द इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ-(शूषम् आंगूषम् प्रमन्महे) हम ऋत्विज इन्द्रके निमित्त बलके कारण त्रिवृत आदि स्तोमको जानते हैं (शवसानाय गिर्वणसे सुवृक्तिभिः स्तुवते, ऋग्मियाय विश्रुताय नरे अङ्गिरस्वत् अर्कम् अर्चाम्) बलकी अभिलाषा वाले वेदवचनसे स्तुतिके इच्छुक शोभन स्तुतियों से स्तुति करनेवाले ऋचाओंका व्यवहार करने वाले भक्ति ज्ञानके अनुष्ठान से वा

शूरता आदिसे विख्यात यजमानके अर्थ अंगिराकी समान मंत्रको उच्चारण करते हैं

प्र वो महे महि नमो भरध्वमांगूष्यꣳ शवसानाय साम। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ १७ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(वः महे शवसानाय महि नमः आंगूष्यम् साम प्रभरध्वम्) हे ऋत्विजों तुम अपने महान् इन्द्र के अर्थ महान् हविको स्तोमके हितकारी सामको समर्पण करो (येन नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः अङ्गिरसः अर्चन्तः गाः अविंदन्) जिस अन्न वा सामके द्वारा हमारे पूर्वपितर ब्रह्मज्ञानियोंने, स्तुति करते हुए वृष्टि पृथिवी ज्योति, गौ और सूर्यकी किरणोंको पाया ॥ १७ ॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयाꣳसि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १८ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(इन्द्र कश्चन प्रकेतः त्वत् हि आ सोम्यासः सखायः त्वाम् इच्छन्ति) हे इन्द्र कोई श्रेष्ठज्ञानविशेष आपसे ही लब्ध होता है सोमसम्पादक ऋत्विज तुमको चाहते हैं (सोमम् सुन्वन्ति) सोमको अभिषुत करते हैं वा आत्मप्रतिबिंबको देहाभिमानसे पृथक् करतेहैं (प्रयांसि दधति) अन्नोंको धारण करते हैं (जनानाम् अभिशस्तिम् तितिक्षन्ते मनुष्योंके दुर्वचनोंको सहते हैं॥१८॥

न ते दूरे परमा चिद्रजाꣳस्या तु प्रयाहि हरिवो हरिभ्याम्। स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ १९ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ-(हरिवः अग्नौ समिधाने स्थिराय वृष्णे इमा सवना कृता) हे अश्ववान् इन्द्र! अग्निके प्रज्वलित होनेपर तुझ अचलसेक्ताके अर्थ ये प्रातःसवन आदि किये (ग्रावाणः युक्ताः तु हरिभ्याम् प्रयाहि) प्रस्तर अभिषव कर्म में युक्तहुए इसकारण अश्वोंके द्वारा आगमन करो (परमा रजांसि चित् ते दूरे न) दूरदेशस्थ स्थान भी तुमसे दूर नहीं है ॥ १९ ॥

अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्। भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ

सुश्रवसं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ १० ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, सोम-देवता। मन्त्रार्थ—(सोम युत्सु अषाढम् जयन्तं पृतनासु पप्रियम् स्वर्षाम् अप्साम् वृजनस्य गोपाम् भरेषुजाम् सुक्षितिं सुश्रवसम् त्वाम् अनुमदेम) हे सोम युद्धमें अनभिभूत उत्कर्षतासे वर्त्तमान सेनाओंमें पालक द्युलोकसेवी जलोंके दान कर्त्ता बलोंके रक्षक संग्रामोंमें जयशील श्रेष्ठ निवास वाले श्रेष्ठ कीर्त्तिमान् आपको अनुमोदन करते हैं ॥ २० ॥

सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २१ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ—(यः अस्मै ददाशत् (जो यजमान इस सोमके लिये हवि देता है (सोमः अस्मै धेनुम्) उसको सोमरूप ईश्वर धन देता है (सोमः आशुम् अर्वन्तम्) सोम शीघ्रगामी घोड़ा देता है (सोमः कर्मण्यम् सादन्यम् विदथ्यम् सभेयम् पितृश्रवणम् वीरम् ददाति) सोम कर्ममें कुशल गृहकार्यमें कुशल यज्ञमें कुशल सभायोग्य पिताके आज्ञाकारी वीरपुत्रको देता है ॥ २१ ॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः। त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ—(सोम त्वम् इमाः विश्वाः ओषधीः अजनयः) हे सोम तुमने इन सब औषधियोंको उत्पन्न किया ((त्वम् अपः) तुमने जलोंको उत्पन्न किया (त्वम् गाः) तुमने गौओंको उत्पन्न किया (त्वम् उरु अन्तरिक्षम् आततन्थ) तुमने विस्तीर्ण अन्तरिक्षको विस्तार दिया (त्वम् ज्योतिषा तमः विववर्थ) तुम तेजसे अन्धकारको दूर करते हो ॥ २२ ॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभियुध्य। मा त्वातनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मंत्रार्थ—(सहसा- ❀ वन् देव सोम देवेन मनसा नः रायः भागम्

अभियुध्य) हे बलवन् दीप्यमान सोम देवता मनके साथ हमको धनका भाग दो (त्वा मा आतनत्) तेरा प्रतिबंधन कोई मत करो (वीर्येस्य ईशिषे) बलके स्वामी हो (गविष्टौ उभयेभ्यः प्रचिकित्स) स्वर्गकी इच्छामें दोनों लोककी चिकित्सा करो अर्थात् दोनों लोकके प्रतिबन्धके पापरूप उपाधिको दूर करो ॥ २३ ॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् । हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप् छन्द सविता देवता । मन्त्रार्थ–(हिरण्याक्षः सविता देवः दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत् आगात्) ज्योतिरूप नेत्रवाला सबका प्रेरक देवता हविदाता यजमानके लिये वरणीय रत्नोंको देते प्रकट होवें (पृथिव्याः अष्टौ ककुभः त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् व्यख्यत्) जिस सविताने भूमिकी आठ दिशाका तीन लोकोंके योजन आदि परिमाणोंको और समुद्रोंको प्रकाशित किया ॥ २४ ॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ २५ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, जगती छंद, सविता देवता मन्त्रार्थ–(हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता उभे द्यावापृथिवी अन्तः सूर्यम् ईयते) ज्योतिरूप हाथ वाला कृताकृतका साक्षी सविता देवता दोनों द्यावाभूमिके मध्यमें सूर्यको प्राप्त करता है (अमीवाम् अपबाधते) रोगको निवृत्त करता है (वेति) अन्तर्धान होता है (कृष्णेन रजसा द्याम् अभिऋणोति) तब अन्धकाररूप रजसे द्युलोकको व्याप्त करता है ॥ २५ ॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववां यात्वर्वाङ् । अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ २६ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, सविता देवता । मन्त्रार्थ–(हिरण्यहस्तः असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववान् देवः प्रतिदोषम् गृणानः रक्षसः यातुधानान् अपसेधन् अस्थात् अर्वाङ् यातु) ज्योतिरूप हाथ वाला प्राणदाता कल्याणरूप स्तुतिवाला अच्छा सुखदाता धनवान् षडैश्वर्यसम्पन्न अन्तर्यामी देव प्रतिदिन बुद्धिमें शिक्षा करता राक्षसरूप दुःखदाताओंको दूर करता लौटता हुआ हमारे सन्मुख आवे २६

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे । तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ २७ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(सवितः देव अन्तरिक्षे ये पूर्व्यासः अरेणवः पन्थाः ते सुकृताः) हे सबके प्रेरक ज्योतिःस्वरूप अन्तरिक्षमें जो पूर्वकालजनित अपांसुल मार्ग कर्मफल भोगके लिये हैं वे तुमने रचे हैं (तेभिः सुगेभिः पथिभिः नः रक्ष) उन सुगम मार्गोंसे हमको रक्षा करो (च अद्य च नः अधिब्रूहि) फिर अब भी हमको उपदेश करो ॥ २७ ॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ २८ ॥

याज्ञ० गायत्री छन्द, अश्विनौ देवता । मन्त्रार्थ-(अश्विना उभा पिबतम) हे अश्वि तुम दोनों सोमपान करो (उभा अविद्रियाभिः ऊतिभिः शर्म यच्छतम्) दोनों ही अखंडित पालनाओं द्वारा हमको कल्याण दो ॥ २८ ॥

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् । अद्यूत्येऽवसे निह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २९ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, अनुष्टुप् छन्द अश्विनौ देवता । मन्त्रार्थ (दस्रा वृषणा अश्विना अस्मे वाचम् नः मनीषाम् अप्नस्वतीम् कृतम्) हे दर्शनीय सेक्ता अश्विदेव हमारी वाणीको हमारी मनकी इच्छा को कर्मवती करो (च अद्यूत्ये अवसे वाम् निह्वये)और सन्मार्गसे प्राप्त होनेवाले अन्न के निमित्त आप दोनों को आह्वान करता हूँ (वाजसातौ नः वृधे भवतम्) यज्ञमें हमारी वृद्धिके अर्थ तत्पर हूजिये ॥२९॥

द्युभिरक्तुभिः परिपातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३० ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-(अश्विना द्युभिः अक्तुभिः अरिष्टेभिः सौभगेभिः अस्मान् परिपातम्) हे अश्विदेव दिनों से रात्रियोंसे अखंडित सुन्दर धनों द्वारा हमको सब ओरसे रक्षा करो (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः नः तत् मामहन्ताम्) और मित्र वरुण देवमाता समुद्र पृथिवी तथा स्वर्ग हमारे उस रक्षकको प्रशंसा करो ॥ ३० ॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ३१ ॥

इसकी व्याख्या ३३। ४३ में होगई ३१

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदाꣳसि बृहती वितिष्ठस आत्वेषं वर्त्तते तमः ॥ ३२ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, पथ्या बृहती छन्द, रात्रि देवता। मन्त्रार्थ-(रात्रि पार्थिवम् रजः पितुः धामभिः आ अप्रायि) हे रात्रि जो तुमसे अन्तरिक्षसम्बन्धी लोक पितृ-सम्बंधी स्थानोंसे सब ओर पूरित होता है (बृहती दिवः सदांसि वितिष्ठसे) महती तुम स्वर्गलोकके स्थानोंको व्याप्त करती हो (त्वेषम् तमः आ वर्तते) दीप्त अन्धकार सब ओरसे वर्तमान होता है ॥ ३२ ॥

उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकञ्च तनयञ्च धामहे ॥ ३३ ॥

याज्ञ० पुरोष्णिक् छन्द, उषा देवता। मन्त्रार्थ-(वाजिनीवति उषः अस्मभ्यम् तत् चित्रम् आभर) हे अन्नवति देवि हमारे अर्थ उस अद्भुत धनको दो (येन तोकम् च तनयम् च धामहे) जिसके द्वारा हम पुत्र और पौत्र और सब सन्तानवर्गको पोषण करें ॥ ३३ ॥

प्रातरग्निम्प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगम्पूषणम्ब्रह्मणस्पतिम्प्रातस्सोममुत रुद्रꣳ हुवेम ॥ ३४ ॥

याज्ञ०, जगती छन्द, इन्द्र देवता। मन्त्रार्थ—(प्रातः अग्निम् हवामहे) हम प्रातःकाल अग्निको आह्वान करते हैं (प्रातः इन्द्रम्) प्रातःकाल इन्द्रको (प्रातः मित्रावरुणा) प्रातःकाल मित्रा वरुणको (प्रातः अश्विना) प्रातःकाल अश्विनीकुमारको (प्रातः भगम् पूषणम् ब्रह्मणस्पतिम्) प्रातःकाल भग पूषा ब्रह्मणस्पतिको (प्रातः सोमम् उत रुद्रम् हुवेम) प्रातःकाल सोम और रुद्रको आह्वान करते हैं ॥ ३४ ॥

प्रातर्जितम्भगमुग्रꣳ हुवेम वयम्पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद्यम्मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा

चिद्यम्भगम्भक्षीत्याह ॥ ३५ ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप् छंद, भग देवता। मन्त्रार्थ-(वयम् तम् प्रातर्जितम् उग्रम् अदितेः पुत्रम् भगम् हुवेम) हम उस प्रातःकाल में जयशील उत्कृष्ट अदितिपुत्र सूर्यको आह्वान करते हैं (यः विधर्त्ता) जोकि जगत्को धारण करने वाला है (यम् आध्रः चित् मन्यमानः तुरः चित् राजा-चित्) जिसको दरिद्र भी इच्छा करता, रोगी भी राजा भी (यम् भगम् भक्षि इति आहुः) जिस सूर्यको उदय करो ऐसा कहते हैं ॥ ३५ ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३६ ॥

विनियोग पूर्ववत्। (भगप्रणेतः भग-सत्यराध भग ददत् नः इमाम् धियम् उदव) हे ऐश्वर्यप्रापक ऐश्वर्यरूप सत्य-धन वाले सूर्य ! धनको देते तुम हमारी इस प्रज्ञाको बढ़ाओ (भग नः गोभिः अश्वैः प्रजनय) हे सूर्य हमको गौ अश्वों द्वारा बढ़ाओ (भग नृभिः नृवन्तः प्रस्याम) हे सूर्य हम पुत्रादिसे मनुष्यवान् होवें ॥३६॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाꣳ सुमतौ स्याम ॥ ३७ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ—(मघवन् इदानीम् उत सूर्यस्य उदिता उत प्रपित्वे उत अह्नां मध्ये उत भगवन्तः स्याम) हे धनवन् ! अब भी हम प्रातःकालमें और सायंकालमें तथा मध्याह्नमें भी धनवान् हों (वयम् देवानाम् सुमतौ स्याम) हम देवताओंकी श्रेष्ठ बुद्धिमें स्थित होवें ॥ ३७ ॥

भग एव भगवाँ २॥ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥ ३८ ॥

विनियोग पूर्ववत् मन्त्रार्थ-(देव भगः एव भगवान् अस्तु) हे देवताओं भग ही धनवान् हो (तेन वयम् भगवन्तः स्याम) उसके द्वारा हम धनवान् हों (भगः सर्वः

इत् तम् त्वा जोहवीति) हे भग सबही उस तुमको आह्वान करते हैं (भग सः नः इह पुरएता भव) हे भग वह तुम हमारे इस यज्ञमें अग्रगामी हूजिये ॥ ३८ ॥

समध्वरायोषसोऽनमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय । अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आवहन्तु ॥ ३९ ॥

विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ-' उषसः अध्वराय सन्नमन्त इव दधिक्रावा शुचये पदाय वसुविदम् भगम् नः अर्वाचीनम् आवहन्तु) उषःकालके अधिष्ठाता देवता यज्ञके लिये स्थिर भावसे नियमित हैं जैसे सामुद्रिक अश्व शुचि पदक्षेपके अर्थ सन्नत होते हैं वे देवता धनके ज्ञाता अर्थ ऐश्वर्यको हमारे सन्मुख प्राप्त करो (इव वाजिनः अश्वाः रथम्) जैसे वेगवान् घोड़े रथको ॥ ३९ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४० ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप् छन्द, उषा देवता । मन्त्रार्थ-(अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः घृतम् दुहानाः विश्वतः प्रपीताः उषसः सदम् न उच्छन्तु) अश्ववालीं, गौओंवालीं वीर सन्तान वालीं कल्याणरूप नीहारको क्षरण करतीं सब ओर और धर्म अर्थ कामसे तृप्त प्रातःसंध्याभिमानिनी देवियाँ सदा हमारे अज्ञानरूपपाशको दूर करो (यूयम् स्वस्तिभिः सदा नः पात) हे देवियो तुम कल्याणोंसे सदा हमको रक्षा करो ॥ ४० ॥

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४१ ॥

याज्ञ० गायत्री छन्द पूषा देवता । मन्त्रार्थ—(पूषन् तव व्रते वयम् कदाचन न रिष्येम) हे पूषन् तेरे कर्ममें वर्त्तमान हम कभी विनाशको न पावें (इह ते स्तोतारः स्मसि) इस यज्ञमें तेरे स्तुतिकर्त्ता हों ॥ ४१ ॥

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यनाडर्कम् । स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियꣳ सीषधाति प्र पूषा ॥ ४२ ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप् छन्द, पूषा देवता। मन्त्रार्थ-(कामेन वचसा कृतः पूषा पथस्पथः परिपतिम् अर्कम् अभ्यानट्) वांछित वेदवाणीसे सन्मुख किया पूषा देवता देवयान पितृयान मार्गके स्वामी सूर्य को व्याप्त होता है (सः नः चन्द्राग्राः शुरुधः रासत्) वह सूर्य हमको आल्हाद करनेमें अग्रणी उन शोकनाशक साधनोंको दो (धियम् धियम् प्रसीषधाति) और अधिदैवाध्यात्म बुद्धिओंको भले प्रकार साधनकरो

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४३ ॥

याज्ञ० गायत्री छन्द, विष्णु देवता। मन्त्रार्थ-(गोपाः अदाभ्यः विष्णुः त्रीणि पदा विचक्रमे) जगत्के रक्षक अविनाशी विष्णुने तीन पदोंको व्याप्त किया (अतः धर्माणि धारयन्) इस पदत्रयसे धर्मको धारण किया ॥ ४३ ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसस्समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ४४ ॥

विनियोग पूर्ववत्। मन्त्रार्थ- विष्णोः यत् परमम् पदम् विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः तत् समिन्धते) साकार ब्रह्मा विष्णुका जो ब्रह्मरूप परमपद है निष्काम जागरणशील विद्वान् पुरुष उसकी उपासना करते हैं ॥ ४४ ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ४५ ॥

याज्ञ० जगती छन्द, द्यावा पृथिवी देवता। मंत्रार्थ-(घृतवती भुवनानाम् अभिश्रिया उर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा अजरे भूरिरेतसा द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्म्मणा विष्कभिते) जलवती भुवनोंकी आश्रय योग्य विस्तीर्ण मधुदोहनमें समर्थ सुरूप जरारहित सब प्राणियोंके वीर्ययुक्त पृथिवी स्वर्ग वरुणकी धारण शक्तिसे स्तम्भित हैं ॥ ४५ ॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामवबाधामहे तान्। वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ ४६ ॥

याज्ञ० जगती छन्द, लिङ्गोक्त देवता। मन्त्रार्थ-(ये नः सपत्नाः ते अवभन्तु) जो हमारे शत्रु हैं वे निर्वीर्य निरुद्यम हों (तान् इन्द्राग्निभ्याम् अवबाधामहे) उन शत्रुओं

इन्द्र अग्निके द्वारा हम नष्ट करते हैं (वसवः रुद्राः आदित्याः मा उपरिस्पृशम् उग्रम् चेत्तारम् अधिराजम् अक्रन्) और वसु रुद्र आदित्य देवता मुझको उच्चस्थानस्थ उत्कृष्ट ज्ञाता अधिराज करें ॥ ४६ ॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना । प्रायुस्तारिष्टं नी रपाꣳसि मृक्षतꣳ सेधतं द्वेषो भवतꣳ सचाभुवा ॥ ४७ ॥

याज्ञ० ऋषि, जगती छन्द, विश्वेदेवा देवता। मन्त्रार्थ-(नासत्या अश्विनौ त्रिभिः एकादशैः देवेभिः इह मधुपेयम् आयातम्) हे अविनाशी दोनों अश्वि त्रिगुणित किये ग्यारह अर्थात् तैंतीस संख्यावाले देवताओंके साथ इस यज्ञमें सोमपानार्थ आओ (आयुः प्रतारिष्टम्) आयुको बढ़ाओ (रपांसि निर्मृक्षतम्) पापोंका दूर करो (द्वेषः सेधतम्) दोर्भाग्यको नष्ट करो (सचाभुवा भवतम्) कार्योंमें संयुक्त होओ ।४७।

एष : वस्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः । एषायासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ४८ ॥

याज्ञ० ऋषि, त्रिष्टुछन्द, मरुत् देवता। मन्त्रार्थ-(मरुतः मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः एषः स्तोमः इमम् गीः वः) हे मरुतो वीतराग माना है यजमानका यह स्तोम यह सत्यप्रिय वाणी तुम्हारे निमित्त है (वयाम् तन्वे इषा आयासीष्ट) बाल्यादि अवस्था के सम्बन्ध वाले शरीरके अर्थ अन्नके अर्थ आगमन करो (जीरदानुम् इषम् वृजनम् विद्याम) जीवन देनेवाले बलके साधक अन्नको हम प्राप्त करें ॥ ४८ ॥

सहस्तोमाः सहच्छन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः । पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥ ४९ ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप्छन्द वागाद्यृत्विज देवता मंत्रार्थ-(सहस्तोमाः सहच्छन्दसः आवृतः सहप्रमाः धीराः दैव्याः सप्त ऋषयः पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य अन्वालेभिरे न रथ्यः रश्मीन्) स्तोम सहित छन्दोंसहित कर्मसहित श्रुतिप्रमाण सहित बुद्धिमान् प्रजापति सम्बन्धी सप्तऋषियोंने मार्गको देख कर सृष्टियज्ञको किया जैसे रथी वागडोरों को इष्टदेशकी प्राप्तिके अर्थ ग्रहण करते हैं ॥ ४९ ॥

आयुष्यं वर्चस्य॒ रायस्पोषमौद्भिदम् । इद॒ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ५०

दक्षऋषि उष्णिक् छन्द हिरण्य देवता मन्त्रार्थ-(इदम् आयुष्यम् वर्चस्यम् रायः पोषम् औद्भिदम् वर्चस्वत् हिरण्यम् जैत्राय माम् उ आविशतात्) यह पूर्ण आयुका कर्त्ता तेजका दाता पुष्टिका बढ़ाने वाला स्वर्णका प्रकाशक अन्नसे संयुक्त सुवर्ण जयके निमित्त मुझ आत्मामें ही प्रवेश करो ॥ ५० ॥

न तद्रक्षा॒ सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज॒ ह्येतत् । यो बिभर्त्ति दाक्षायण॒ हिरण्य॒ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥

दक्षऋषि शक्करी छन्द हिरण्य देवता, मन्त्रार्थ-(तत् रक्षांसि न तरन्ति) उस सुवर्णको राक्षस नष्ट नहीं करते हैं (न पिशाचाः) न पिशाच (हि एतत् देवानाम् प्रथमजम् ओजः) क्योंकि-यह सुवर्ण देवताओंका प्रथमोत्पन्न तेज है (यः दाक्षायणम् हिरण्यम् बिभर्त्ति) जो पुरुष अलंकाररूपसे सुवर्णको धारण करता है (सः देवेषु आयुः दीर्घम् कृणुते) वह देवलोकों में बड़ी आयुको करता है (सः मनुष्येषु आयुः दीर्घम् कृणुते) वह मनुष्यलोकोंके मध्य आयुको करता है ॥ ५१ ॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्य॒ शतानीकाय सुमनस्यमानाः । तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ ५२ ॥

दक्षऋषि त्रिष्टुप् छन्द हिरण्य देवता मन्त्रार्थ-(सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः यत् हिरण्यम् शतानीकाय अबध्नन्) ईश्वरको ही मनमें ध्यान करते २ प्रजापतिके पुत्रोंने जिस सुवर्णको राजारूप अनन्त सेनावाले ब्रह्ममें बाँधा (तत् शतशारदाय मयि आबध्नामि) उस सुवर्णको पूर्णायुलाभके लिये शरीरमें बाँधता हूँ (यथा आयुष्मान् जरदष्टिः आसम्) जैसे दीर्घजीवी वृद्धशरीर होऊँ ॥ ५२ ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः । विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मंत्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ५३ ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप् छन्द अहिर्बुध्न्यादि देवता मन्त्रार्थ-(अहिर्बुध्न्यः अज एकपात् पृथिवी समुद्रः उत विश्वे देवाः शृणोतु) हे अहिर्बुध्न्यनामरुद्र अजएकपात्रुद्र विशेष पृथिवी देवी समुद्र और सब देवता सुनो (ऋतावृधः हुवानाः मन्त्राः स्तुताः कविशस्ताः नः अवन्तु) वे यज्ञ वृद्धिकर्त्ता आह्वयमान मन्त्रोंसे स्तुत मेधावी पूजित देवता हमको रक्षा करा ॥ ५३ ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ ५४ ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप् छन्द आदित्य देवता। मन्त्रार्थ-(इमाः घृतस्नूः गिरः जुह्वा सनात् राजभ्यः आदित्येभ्यः जुहोमि) ये घृत छोड़ने वाला वेद वचन बुद्धिरूप जुहू द्वारा सदैव दीप्यमान आदित्योंके अर्थ समर्पण करता हूँ (मित्रः अर्यमा भगः तुविजातः वरुणः दक्षः अंशः नः शृणोतु) मित्र अर्यमा भग त्वष्टा वा वायु वरुण दक्ष अंश देवता हमारी वाणीको सुनो ॥ ५४ ॥

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

कण्वऋषि बृहती छन्द ब्रह्मणस्पति देवता। मन्त्रार्थ-(सप्त ऋषयः शरीरे प्रतिहिताः) प्राण त्वचा चक्षु श्रवण रसन घ्राण मन यह सात शरीरमें व्यवस्थित हैं (सप्त सदम् अप्रमादम् रक्षन्ति) वे सातों सदा सावधानीसे शरीरकी रक्षा करते हैं (सप्त आपः स्वपतः लोकम् ईयुः) सातों देहमें व्यापक होते सोतेहुए मनुष्यके हृदयाकाशमें स्थित विज्ञानात्माको प्राप्त करते हैं (तत्र अस्वप्नजौ च सत्रसदौदेवौ जागृतः) उस स्वप्न अवस्थामें जागरण शील और जीवितदाता प्राण अपान जागते हैं ॥५५॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ५६

याज्ञ०, बृहती छन्द, ऋषि देवता। मन्त्रार्थ—(ब्रह्मणस्पते उत्तिष्ठ) हे वेदके रक्षक अन्तर्यामिन् आरब्धकार्य हूजिये (देवयन्तः त्वा ईमहे) देवताओंको चाहते हम तुमसे याचना करते हैं (सुदानवः मरुतः उपप्रयन्तु) सुन्दर देनेवाले मरुत आपके समीप जाओ (इन्द्र सचा प्राशूः भवा) हे यजमान तुमभी साथ गमनको अतिशीघ्रगामी होओ ॥ ५६ ॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५७ ॥

याज्ञ०, बृहतीछन्द, ब्रह्मणस्पति देवता मन्त्रार्थ-(ब्रह्मणस्पतिः नूनम् उक्थ्यम् प्रवदति) ब्रह्मणस्पदेव निश्चय शस्त्रयोग्य मन्त्रको उच्चारण करता है (यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिस मन्त्रमें इन्द्र वरुण मित्र देवताओंने निवास किया ॥ ५७ ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व । विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः । य इमा विश्वा विश्वकर्मा । यो नः पिता अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥ ५८ ॥

याज्ञ० त्रिष्टुप्छन्द, ब्रह्मणस्पति देवता । मन्त्रार्थ-(ब्रह्मणस्पते त्वम् अस्य सूक्तस्य यन्ता बोधि) हे ब्रह्मणस्पदेव तुमही इस सूक्तके नियन्ता हो प्रबुद्ध होओ (च तनयम् जिन्व) और सन्तातको तृप्तकरो(देवाः यत् विश्वम् भद्रम् अवन्ति) देवता जिस सकल कल्याणका रक्षा करते हैं (सुवीराः विदथे तत् बृहत् वदेम) पुत्रोंवाले हम यज्ञमें उसको बहुत उच्चारण करें ॥ ५८ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त.

❀ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ❀

(अथ पितृमेधः)

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः । अस्य लोकः सुतावतः । द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥ १ ॥

आदित्य ऋषि, गायत्री छन्द, पितर देवता । मन्त्रार्थ--(असुम्नाः देवपीयवः पणयः इतः अपयन्तु) दुःखदाता देवद्वेषी असुर इस स्थानसे हटजाओ (अस्य सुतावतः लोकः यमः द्युभिः अहोभिः अक्तुभिः व्यक्तम् अवसानम् अस्मै ददातु) इस सोमाभिषवकर्त्ता यजमानका स्थान है यमराज ऋतु दिवस और रात्रिसे स्पष्टीकृत स्थानको इस यजमानके लिये दो ॥ १ ॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥ २ ॥

आदित्य ऋषि, गायत्री छन्द, पितर देवता । मन्त्रार्थ-(सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याम् लोकम् इच्छतु) हे यजमान सूर्य तेरे अस्थिरूप शरीरोंके लिये पृथिवीमें स्थानको चाहो (तस्मै उस्रियाः युज्यन्ताम् उस सूर्यदत्त क्षेत्रके संस्कारार्थ बैल युक्त हों

वायुः पुनातु । सविता पुनातु । अग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा । विमुच्यन्तामुस्रियाः ३

इसमें ३ मन्त्र हैं, सबका आदित्य० ऋ०, छन्द १ का दैवीपंक्ति २ का दै० त्रि, ३ का दै० जग०, है। देवता १, २ का लिङ्गोक्त ३ का वृषभ है। मन्त्रार्थ-(वायुः पुनातु) हे पृथिवी वायु तुझे पवित्र करे (सूर्यः पुनातु) सूर्य तुझे पवित्र करे (अग्नेः भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा उस्रियाः विमुच्यंताम्) अग्निकी दीप्ति और सूर्यके तेजसे शुद्ध हो बैल हलसे अलग हों ॥ ३ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ४

इसकी व्याख्या अ० १२ मन्त्र ७९ में होगई ॥ ४ ॥

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आवपतु । तस्मै पृथिवि शं भव ॥ ५ ॥

आदित्या ऋषयः, गायत्री छन्द, सविता देवता । मन्त्रार्थ-(सविता ते शरीराणि मातुः उपस्थे आवपतु) हे यजमान सूर्य तेरे हाड़ोंको पृथिवीके उत्संगमें स्थापन करो (पृथिवि तस्मै शम् भव) हे पृथिवि उस अस्थिरूप यजमानके लिये सुखरूपा हो

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ । अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

आदित्या ऋषयः, उष्णिक् छन्द, प्रजापति देवता । मन्त्रार्थ—(असौ उपोदके लोके प्रजापतौ देवतायाम् त्वा निदधामि) यह मैं जलसमीपवर्त्ती स्थानमें प्रजापति देवताकी स्मृतिमें तुझे स्थापन करता हूँ (अप नः अघम् शोशुचत्) वह प्रजापति हमारे पापोंको दूर करो ॥ ६ ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाꣳ रीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥

संकल्प ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द मृत्यु देवता मन्त्रार्थ-(मृत्यो परा परम् पन्थाम् अन्विहि) हे मृत्यो पराङ्मुख होकर दूसरे मार्गको प्राप्त कर (यः ते देवयानात् इतरः अन्यः चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि) जो तेरा मार्ग देवयान मार्गसे तुच्छ पितृयान नाम है ज्ञानी सुननेवाले आपसे कहता हूँ (नः प्रजाꣳ मा हिंसीः) हमारी सन्तान वंश-परंपराको मत नाश करो (वीरान् उत मा) पुत्रोंको भी मत मारो ॥ ७ ॥

शं वातः शꣳ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः । शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिशूशुचन् ॥ ८ ॥

सङ्कल्प ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, विश्वे-देवा देवता । मन्त्रार्थ-(वातः ते शम्) हे यजमान वायु तेरा सुखरूप हो (हि घृणिः शम्) फिर सूर्यकिरण तेरे सुखरूप हों (इष्टकाः ते शम् भवन्तु) मध्यमें और दिशाओंमें स्थापित इष्टका तेरे सुखरूप हों (पार्थिवासः अग्नयः ते शम् भवन्तु) पृथिवीकी अग्नि तेरे सुखरूप हों (त्वा मा अभिशूशुचन्) तुझे तापित मत करो ८

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ९ ॥

संकसुक ऋषि, बृहती छन्द, विश्वे-देवा देवता । मन्त्रार्थ-(दिशः ते कल्पन्ताम् हे यजमान पूर्व आदि दिशा तेरे लिये कल्पित हों (आपः तुभ्यम् शिवतमाः भवन्तु) जल तेरे लिये कल्याणकारी हों (सिन्धवः तुभ्यम्) समुद्र तेरे लिये कल्याणरूप हों (अन्तरिक्षम् तुभ्यम् शिवम्) अन्तरिक्ष तेरे लिये कल्याणकारी हो (सर्वाः दिशः ते कल्पन्ताम्) सब विदिशा, तेरे लिये कल्पित हों ॥ ९ ॥

अश्मन्वती रीयते सꣳरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥ १० ॥

सुचीक ऋषि त्रिष्टुप्छन्द, विश्वेदेवा देवता । (मंत्रार्थ-(सखायः अश्मन्वती रीयते) हे मित्रो पाषाणवती नदी जाती है (संरभध्वं उत्तिष्ठत प्रतरत) उतरनेके लिये प्रयत्न करो सन्मुख होओ उस नदी को तरो (अत्र ये अशिवाः असन् जहीमः)

इस प्रदेशमें जो अशान्त दुष्ट राक्षस आदि हों हम उनको परित्याग करें (शिवान् वाजान् वयम् अभ्युत्तरेम) कल्याणरूप अन्नोंको हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

अपाघमप किल्विषमप कृत्यामपो रपः । अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ।११।

शुनःशेप ऋषि, अनुष्टुप छन्द, लिङ्गोक्त देवता । मन्त्रार्थ—(अपामार्ग त्वम् अस्मत् अघम् अपसुव) हे अपामार्ग तुम हमसे मानसपापको दूर करो (किल्विषम् अप (कीर्तिभेदक कायिक पापको दूर करो (कृत्याम् अप) परकृत अभिचारको दूर करो (रपः अप) वाचिक पापको दूर करो (उ दुःस्वप्न्यम् अप) और दुःस्वप्नजनित दुःखरूप फलको दूर करो ॥ ११ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

इसकी व्याख्या अ० ६ मं० २२ में होगई ॥ १२ ॥

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये । स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तारणो भव

शुनःशेप ऋषि, अनुष्टुप्छन्द अनुडुद् देवता । मन्त्रार्थ—(सौरभेयम् अनड्वाहम् स्वस्तये अन्वारभामहे) गौके पुत्र वृषभ को कल्याणके अर्थ हम स्पर्श करते हैं (सः नः सन्तरणः भव देवानां वह्निः) हे वृष वह तुम हमारे तारक होओ जिस कारण तुम ज्ञानियोंके धारण कर्त्ता हो (इव इन्द्रः देवेभ्यः) जैसे इन्द्र देवताओंके लिये ॥ १३ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् । १४ ।

इसकी व्याख्या अ० २० मंत्र २१ में होगई ॥ १४ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

संकल्प ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, मनुष्य देवता । मंत्रार्थ—(जीवेभ्यः इमम् परिधिम् दधामि) विद्यमान जीवोंके लिये इस मर्यादाको स्थापन करता हूँ (एषाम्,अपरः नु एतम् अर्थम् मा गात्) इन जीवोंके मध्य कोई शीघ्र अर्थात् प्रारब्ध समाप्तिसे पूर्व इस पितृलोकगमन नाम कार्यको उद्देश करके मत जाओ (पुरूचीः शरदः जीवन्तु) दान अध्ययन यागके अनुकूल पूर्णायु-पर्यंत जीवो (पर्वतेन नः मृत्युम् अन्तर्दधताम्) और ब्रह्माण्ड स्तम्भरूप मर्यादा वा कर्म उपासना ज्ञान द्वारा मृत्युको अन्तर्धान करो

अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६ ॥

इसकी व्याख्या अ० १९ मं० ३८ में होगई ॥ १६ ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥ १७ ॥

वैखानस ऋ०, त्रिष्टुप् छन्द, अग्नि देवता । मन्त्रार्थ-(अग्ने आयुष्मान् हविषा वृधानः घृतप्रतीकः घृतयोनिः एधि) हे अग्ने चिरंजीवी तुम हविसे वृद्धियुक्त घृतयुक्त मुखवाले घृतरूप उत्पत्तिस्थान वाले तुम वृद्धिको पाओ (गव्यम् मधु चारु घृतम् पीत्वा इमान् अभिरक्षतात्) गो सम्बन्धि मधुर सुगंधित घृतको पान करके इन जीवोंको रक्षा करो (इव पिता पुत्रम् स्वाहा) जैसे पिता पुत्रको रक्षा करता है आपके लिये श्रेष्ठ होम हो ॥१७॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२॥ आदधर्षति ॥ १८ ॥

रिरिम्विठि ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(इमे गाम् पर्यनेषत) इन जीवोंने वृषको स्पर्श किया (अग्निम् पर्यहृषत) अग्निको तृप्त किया (देवेषु श्रवः अक्रत) ऋत्विजोंमें धन वा दक्षिणा को धारण किया किया (इमान् कः आदधर्षति) इन जीवोंको कौन धर्षणा कर सकता है अर्थात् कोई नहीं ॥ १८ ॥

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ १९ ॥

दमनऋषि, साम्नी त्रिष्टुप्छन्द अग्नि देवता । मन्त्रार्थ-(क्रव्यादम् अग्निम् दूरम् प्रहिणोमि) मैं शवदाहक अग्निको अपुनरागमनके लिये दूर भेजता हूँ (रिप्रवाहः यमराज्यम् गच्छतु) वह पापनाशक अग्नि यमके राज्यमें जाओ (अयम् इतरः जातवेदाः प्रजानन् -इहैव देवेभ्यः हव्यम् वहतु) यह दूसरा सर्वज्ञ अग्नि अपने अधिकारको जानता इसी गृहमें देवताओं के लिये हविको प्राप्त कराओ ॥ १९ ॥

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके । मेदसः कुल्या उप तान्

स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्नमताꣳ स्वाहा ॥ २० ॥

आदित्या ऋषयः त्रिष्टुप्छन्द अग्नि दे० मन्त्रार्थ--(जातवेदः पितृभ्यः वपाम् वह) हे ज्ञानसम्पन्न अग्ने ! पितरोंके अर्थ सार भागको प्राप्त कराओ (यत्रापराके निहितान् एनान् वेत्थ) जिस दूर देशमें स्थापित इन पितरोंको तुम जानते हो (मेदसः कुल्याः तान् उपस्रवन्तु) मेदोवर्द्धक घृत की नदियां उनके प्रति वहें (एषाम् सत्याः आशिषः सन्नमन्ताम् स्वाहा) इनकी सत्य कामनाएँ प्राप्त हों यह आहुति भले प्रकार गृहीत हो ॥ २० ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः । अप नः शोशुचदघम्

मेधातिथिर्ऋषि, गायत्री छन्द, पृथ्वी देवता । मन्त्रार्थ-(पृथिवि अनृक्षरा निवेशनी सप्रथाः नः स्योना भव) हे पृथिवि निष्कंटक सुखमें स्थितियोग्य विस्तारवती तुम हमारे लिये सुखरूप हूजिये (नः शर्म यच्छ) हमको शरण दीजिये (अप नः अघम् शोशुचत्) जल पापको दूर करें २१

अस्मात्त्वमधि जातोसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा २२

आदित्या ऋषयः गायत्री छन्द अग्नि देवता मन्त्रार्थ-(त्वम् अस्मात् अधिजातः असि) हे अग्ने तुम इस यजमानसे आधान काल पर प्रकट किये गये (अयम् पुत्रः त्वत् जायताम्) इस कारण यह यजमान फिर तुमसे उत्पन्न अर्थात् संस्कृत हो (असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा) यह यजमान स्वर्गलोकके योग्य हो ॥ २२ ॥

इति श्रीशुक्लजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त.

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ शान्तिपाठः

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ १ ॥

दधीच ऋषि, जगतीछन्द, लिंगोक्त देवता मन्त्रार्थ-(ऋचम् वाचम् प्रपद्ये) ऋ चा-

रूप वाणीकी शरण लेता हूँ (यजुः मनः प्रपद्ये) यजुःरूप मनको शरण लेता हूँ (प्राणं साम प्रपद्ये) प्राणरूप सामकी शरण लेता हूँ (चक्षुः श्रोत्रम् प्रपद्ये) चक्षु श्रोत्र इन्द्रिय की शरण लेता हूँ (वागोजः सहौजः प्राणापानौ मयि) वाक्बल, देहबल और प्राण अपान मुझमें स्थिर हों ॥ १ ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति तृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

दधीच ऋषि, पंक्तिश्छन्द, बृहस्पति देवता । मन्त्रार्थ-(मे चक्षुषः यत् छिद्रम् हृदयस्य वा मनसः अतितृणम् बृहस्पतिः मे तत् दधातु) मेरे चक्षु इन्द्रियकी जो न्यूनता है हृदय वा मनकी जो न्यूनता है परमात्मा मेरी उस न्यूनताको दूरकरे (नः शं भवतु) हमारा सुखरूप हो (यः भुवनस्य पतिः) जो परमात्मा ब्रह्मांड समूह का स्वामी है ॥ २ ॥

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।३।

इसकी व्याख्या अध्याय ३ मंत्र ३५ में होगई ॥ ३ ॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय २७ मंत्र ३९ में होगई ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय २७ मंत्र ४० में होगई ॥ ५ ॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् शतं भवास्यूतये ॥ ६ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय २७ मन्त्र ४१ में होगई ॥ ६ ॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्रमन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आभर ॥ ७ ॥

दधीच ऋषि, गायत्री छन्द, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ-(वृषन् त्वम् कया ऊत्या नः अभिप्रमंदसे) हे धर्म अर्थ काम मोक्ष से सींचनेवाले परमेश्वर तुम किस तृप्ति के द्वारा हमको आनन्द देतेहो (कया स्तोतृभ्यः आभर) उस कारण दिव्यरूपसे स्तुति करने वाले उपासकोंके लिये मनवांछित कामना देते हो ॥ ७ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥ ८ ॥

दधीच ऋषि, द्विपदा विराट् छन्द, इन्द्र देवता । मन्त्रार्थ—(विश्वस्य इन्द्रः राजति) सबका स्वामी परमेश्वर प्रकाश करता है (नः द्विपदे शं अस्तु) वह हमारे पुत्रादिमें कल्याणरूप हो (चतुष्पदे शं) चौपायोंमें वा कर्म उपासना ज्ञान विज्ञान से प्राप्य निर्वाण मुक्तिमें कल्याणरूप हो ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः

दधीच ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, सूर्यादि देवता मन्त्रार्थ-(मित्रः नः शं भवतु) मित्र देवता हमारे अर्थ कल्याणरूप हो (अर्यमा नः शं) अर्यमा हमारे अर्थ कल्याणरूप हो (इन्द्रः नः शं) इन्द्र हमारे निमित्त कल्याणरूप हो (बृहस्पतिः उरुक्रमः विष्णुः नः शं) बृहस्पति तथा विस्तीर्ण पदन्यास वाले विष्णु हमारे अर्थ कल्याणरूप हों ॥ ९ ॥

शन्नो वातः पवताꣳशन्नस्तपतु सूर्यः । शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु १०

दधीच ऋषि, अनुष्टुप् छन्द सूर्यादि देवता । मन्त्रार्थ-(वातः नः शं पवताम्) वायु हमारा, सुखकारी चलो (सूर्यः नः शं तपतु) सूर्य हमारे निमित्त सुखरूप तपो (कनिक्रदत् पर्जन्यः देवः नः शं अभिवर्षतु) शब्द करता हुआ पर्जन्य देवता हमारे निमित्त सुखरूप वर्षा करो ॥ १० ॥

अहानि शम्भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिःशं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ११

अहानीत्यस्य दधीच ऋषि, द्विपदा गायत्री छन्द, अहोरात्र्यादि देवता । शन्नइत्यस्य, दधीच ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्राग्न्यादि देवता । मन्त्रार्थ-(अहानि नः शं भवन्तु) दिन हमारे सुखरूप हों (रात्रीः शं प्रतिधीयताम्) रात्रि सुखरूप हों (इन्द्राग्नी अवोभिः नः शं भवताम्) इन्द्र और अग्नि देवता रक्षाओंके द्वारा हमारे सुखरूप हों (रातहव्यौ इन्द्रावरुणौ नः शं) हविसे तृप्त इन्द्र और वरुण देवता हमारे सुखरूप हों (वाजसातौ इन्द्रा पूषणा नः शं) अन्नदानमें इन्द्र और पूषादेवता हमारे सुखरूप हों (इन्द्रा सोमा सुविताय शं) इन्द्र और सोम देवता यजमानके यज्ञार्थ सुखरूप हों (योः शम्) रोगभयके दूर करनेको सुखकारी हों ॥ ११ ॥

शनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १२ ॥

दधीच ऋषि, गायत्री छन्द, आपो देवता । मन्त्रार्थ-(देवीः आपः नः अभिष्टये पीतये शं भवन्तु) दीप्यमान जल हमारे अभीष्ट पानके निमित्त सुखरूप हों (नः शंयोः अभिस्रवन्तु) तथा रोगके शमन और भयको दूर करनेको बहें ॥ १२ ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ३५ मन्त्र २१ में होगई ॥ १३ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे १४ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ११ मन्त्र ५० में होगई ॥ १४ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ११ मन्त्र ५१ में होगई ॥ १५ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय ११ म० ५२ में होगई ॥ १६ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शांतिर्विश्वे देवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वꣳ शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि

दधीच ऋषि, शक्करी छन्द, महालक्ष्मी देवता । मन्त्रार्थ-(द्यौः शान्तिः) द्युलोक रूप शान्ति (अन्तरिक्षं शान्तिः) अन्तरिक्ष रूप शान्ति (पृथिवी शान्तिः) पृथिवीरूप शान्ति (आपः शान्तिः) जलरूप शान्ति (ओषधयः शान्तिः) औषधरूप शान्ति (वनस्पतयः शान्तिः) वनस्पतिरूप शान्ति (विश्वेदेवाः शान्तिः) विश्वदेवासम्बन्धी शान्ति (ब्रह्म शान्तिः) वेदरूप शान्ति) (सर्वम् शान्तिः) सर्वजगत्‌रूप शान्ति (शान्तिः एव शान्तिः) स्वरूपसे ही जो शान्ति है (मा एधि) वह शान्ति मेरेप्रति वृद्धिको प्राप्त हो ॥ १७ ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा

सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

दधीच ऋषि, भुरिगार्षी जगती छन्द, मूर्तिदेवता । मन्त्रार्थ-(दृते मा दृंह) हे परमेश्वर मुझको दृढ़ करो (सर्वाणि भूतानि मा मित्रस्य चक्षुषा समीक्षन्ताम्) सब प्राणी मुझको मित्रदृष्टिसे देखें (अहम् सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे) मैं भी सब प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे देखता हूं (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे) हम मित्र दृष्टिसे देखते हैं ॥ १८ ॥

दृते दृंह मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

दधीच ऋषि आर्ष्युष्णिक् छन्द, महावीर देवता । मंत्रार्थ-(दृते मा दृंह) हे भगवन् मुझको दृढ़ करो (ते सन्दृशि ज्योक् जीव्यासम्) आपके दर्शनमें दीर्घकालतक जीवता रहूँ (ते संदृशि ज्योक् जीव्यासम्) आपके दर्शनमें दीर्घकालतक जीवता रहूँ१९

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

इसकी व्याख्या १७ । ११ में होगई ॥ २० ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे२१

मंत्रार्थ-(भगवन् ते विद्युते नमः अस्तु) हे परमेश्वर तुझ विद्युत्रूपके लिये नमस्कार हो (स्तनयित्नवे ते नमः) तुझ गर्जितरूपके लिये नमस्कार हो (यतः स्वः समीहसे ते नमः अस्तु) जिस कारण स्वर्गसुख देनेकी चेष्टा करते हो इस कारण आपको नमस्कार हो ॥ २१ ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः२२

दधीच ऋषि, भुरिग् प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्द परमेश्वर देवता मंत्रार्थ-(यतः यतः समीहसे) हे परमेश्वर तुम जिस २ रूप से चेष्टा करते हो (ततः नः अभयं कुरु) उस रूपसे हमारी अभय करो (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) हमारी संतानोंके लिये सुख करो (पशुभ्यः अभयम्) हमारे पशुओंके लिये अभय करो ॥ २२ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः

इसकी व्याख्या अध्याय ६ मन्त्र २२ में होगई ॥ २३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् २४

दधीच ऋषि, ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द सूर्य देवता । मन्त्रार्थ-(तत् देवहितम् चक्षुः शुक्रम् पुरस्तात् उच्चरत्) वह देवताओंके हितकारी परमेश्वरका चक्षुरूपसूर्यरूप ब्रह्म पूर्वदिशामें उदय होता है (शतं शरदः पश्येम) हम उसको पूर्णायुपर्यन्त देखें (शतं शरदः जीवम) पूर्णायुपर्यन्त जीवें (शतम् शरदः शृणुयाम पूर्णायु पर्यन्त सुनें (शतं शरदः प्रब्रवाम) पूर्णायुपर्यन्त स्पष्ट वाणीसे कथन करें (शतं शरदः अदीनाः स्याम) पूर्णायुपर्यन्त अदीन हों (शतात् शरदः भूयः) शतवर्षसे ऊपर भी योगशक्ति द्वारा बहुकाल जीवें ॥ २४ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद षट्त्रिंश अध्याय समाप्त.

❀ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ❀

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नारिरसि १

दधीच ऋषि, निचृदार्ष्युष्णिक् छन्द, अभ्र देवता । मन्त्रार्थ-(सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्ण हस्ताभ्याम् त्वा आददे) हे अभ्र ! सविता दे० की आज्ञामें वर्तमान मैं अश्विनीकुमारोंकी भुजाओं और पूषाके हाथोंसे तुझे ग्रहण करता हूँ (नारिः असि) तुम स्त्रीनाम्नी हो ॥ १ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । विहोत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या अ० ५ मंत्र १४ में होगई ॥ २ ॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा

मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

दधीच ऋषि, ब्राह्मी गायत्री छन्द, द्यावापृथिवी देवता। मन्त्रार्थ-(देवी द्यावापृथिवी अद्य पृथिव्याः देवयजने वाम् मखस्य शिरः राध्यासम्) हे दीप्यमान पृथ्वी स्वर्ग अब देवयजनस्थानमें मृत्तिका जलको लेकर यज्ञका शिर साधन करूँ

इस प्रकार पृथिवी स्वर्गसे प्रार्थना कर मृत्तिकासे कहते हैं हे मृत्तिका यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे) यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ४ ॥

दधीचऋषि, आर्षीपंक्तिश्छन्द वल्मीक वपादेवता। मन्त्रार्थ-(भूतस्य प्रथमजाः दव्यः वम्र्यः वः पृथिव्याः देवयजने मखस्य शिरः अद्यः राध्यासम्) प्राणियोंसे प्रथम उत्पन्न दीप्यमान हे उपजिह्वकाओं तुमको

लेकर देवयजनस्थानमें यज्ञके शिर अर्थात् महावीरको अब सम्पादन करूँ यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ ॥ ४ ॥

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ५ ॥

दधीचऋषि ब्राह्मी गायत्री छन्द, मृद्देवता। मन्त्रार्थ-(अग्रे इयती आसीत्) वाराहजीके उठाते समय पृथिवी इतनी अर्थात् प्रादेशमात्री थी (अद्य ते पृथिव्याः देवयजने मखस्य शिरः राध्यासम्) हे

पृथिवि अब तुझ पृथिवीके देवयजनस्थान में यज्ञका शिर महावीर साधन करूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ ॥ ५ ॥

इन्द्रस्यौजः स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ६ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य । दधीच ऋषि, त्रिष्टुप्छंद, आदार देवता । ॐ मखायेत्यस्य, दधीच ऋषि आसुरी त्रिष्टुप्छन्द, सम्भारपयसी देवते । मन्त्रार्थ –(इन्द्रस्य ओजः स्थ) हे पूतिकाओ तुम इन्द्रके तेजरूप हो (वः पृथिव्याः देवयजने अद्य मखस्य शिरः राध्यासम्) तुमको लेकर देवयजनस्थानमें अब यज्ञका शिर महावीर संपादन करूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूँ यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) हे दुग्ध यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे ग्रहण करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) हे सम्भार यज्ञके लिये तुझे स्पर्श करता हूँ यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे स्पर्श करता हूँ ॥ ६ ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्ये तु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यम्पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ७ ॥

विनियोग पूर्ववत् । पूर्व मन्त्रकी व्याख्या अ० ३३ मं० ८९ में होगई । मन्त्रार्थ- (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) हे संभार समूह यज्ञके लिये तुझे स्थापन करता हूँ यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे स्थापन करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) हे सम्भारसमूह यज्ञके लिये तुझे मृत्पिंडमें मिलाता हूँ यज्ञके शिर महावीरके लिये तुझे मृत्पिंडसे मिलाता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) हे महावीर यज्ञके लिये तुझे बनाता हूँ, यज्ञके शिर सूर्यके लिये तुझे बनाता हूँ ॥ ७ ॥

मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे

ओं मखायेत्यस्य, दधीच ऋषि, प्राजापत्यानुष्टुप्छन्द, महावीर देवता १ । २ । ३ ओं मखायेत्यस्य विनियोग पूर्ववत् । मन्त्रार्थ (मखस्य शिरः असि) हे महावीर तुम यज्ञपुरुषके शरीर अर्थात् सूर्यरूप तेज हो (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपु-

रुष विष्णुके लिये तुझै ईशरूप करता हूँ यज्ञपुरुष विष्णुके शिर समष्टि सूर्यके लिये तुझ निष्पन्नका स्पर्श करता हूँ (मखस्य शिरः असि) हे महावीर तुम यज्ञपुरुषके शिर अर्थात् सूर्यरूप तेज हो (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्ण त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझै अंतर्यामीरूप करताहूँ यज्ञपुरुष विष्णु के शिर समष्टिसूर्यके लिये तुझ निष्पन्नका स्पर्श करता हूँ (मखस्य शिरः असि) हे महावीर तुम यज्ञपुरुष विष्णुके तेज हो (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझै मानस सूर्यरूप करताहूँ यज्ञपुरुष विष्णुके शिर तेजोरूपके लिये तुझ निष्पन्नको स्पर्श करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझै ईशरूप करता हूँ यज्ञपुरुष विष्णुके शिर समष्टिसूर्यके लिये तुझ ईशरूपको गवेधुकासे सचिक्कण करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझ अन्तर्यामीरूपको ग्रहण करता हूँ यज्ञपुरुष विष्णुके शिर समष्टिसूर्यके लिये तुझ अन्तर्यामीरूपको गवेधुका से सचिक्कण करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझ मानस सूर्यरूप को ग्रहण करताहूँ यज्ञपुरुषके विष्णुके शिर समष्टिसूर्यके लिये तुझको गवेधुकासे सचिक्कण करता हूँ ॥ ८ ॥

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ९

दधीच ऋषि, आर्षी पंक्तिश्छन्द, महावीर देवता । मन्त्रार्थ—(पृथिव्याः देवयजने मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा वृष्णः अश्वस्य शक्ना धूपयामि) हे महावीर देवयजन स्थानमें यज्ञपुरुष विष्णुके लिये यज्ञकार्यके लिये तुझको सेक्ता अश्वकी लीदसे धूप देता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये यज्ञकार्यके लिये तुझको धूप देता हूँ यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझ अन्तर्यामी रूपको धूप देता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये यज्ञकार्यके लिये तुझ अन्तर्यामीरूपको धूप देताहूँ मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझ घर्मको पकाता हूँ यज्ञपुरुष विष्णुके लिये यज्ञकार्यके लिये तुझ घर्मको पकाता हूँ ९

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ १० ॥

दधीचऋषि, दैवी बृहतीछन्द, महावीर देवता। मन्त्रार्थ-(ऋजवे त्वा) हे महावीर ऋजु देवताको प्रीतिके निमित्त तुझको उद्वपन करता हूँ (साधवे त्वा) अन्तरिक्षके वायुदेवताके लिये तुझको अग्निमें पकाकर निकालता हूँ (सुक्षित्यै त्वा) पृथिवी लोकके लिये तुझको उद्वपन करता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञके लिये तुझको अजादुग्धसे सींचता हूँ यज्ञके शिरःस्वरूप प्रधान कार्यके लिये तुझको अजादुग्धसे सींचता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञके लिये तुझको अजादुग्धसे सींचता हूँ यज्ञके प्रधान कार्यके लिये तुझको अजादुग्धसे सींचता हूँ (मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे त्वा) यज्ञके लिये तुझको अजादुग्धसे सींचता हूँ यज्ञके प्रधान कार्यके लिये तुझको अजादुग्धसे सींचता हूँ ॥ १० ॥

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु। पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोसि ॥ ११ ॥

मन्त्रार्थ- यमाय त्वा) हे महावीर सबके नियामक सूर्यके लिये तुझे प्रोक्षण करता हूँ (मखायत्वा) यज्ञरूप सूर्यके लिये तुझे प्रोक्षण करता हूँ (सूर्यस्य तपसे त्वा) सूर्यके तेज प्रवर्ग्यके लिये तुझे प्रोक्षण करता हूँ (सविता देवः मध्वा त्वा अनक्तु) सविता देवता मधुर आज्यसे तुझे लिप्त करे (पृथिव्याः संस्पृशः पाहि) हे रजत तुम महावीरको पृथिवीसम्बंधी राक्षससे रक्षाकरो (अर्चिः असि) हे महावीर तुम चन्द्रकान्तिरूप हो (शोचिः असि) अग्नि तेजोरूप हो (तपः असि) सूर्यतापरूप हो ११

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः। पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः। सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः। आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः। विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि। मनोरश्वासि ॥ १२ ॥

मन्त्रार्थ-(पुरस्तात् अनाधृष्टा अग्नेः आधिपत्ये मे आयुः दाः) हे पृथिवी तुम पूर्वदिशामें राक्षसोंसे अनाधर्षित हो वह तुम अग्निका स्वामित्व होनेपर मुझे आयु दीजिये (दक्षिणस्याम् इन्द्रस्य आधिपत्ये पुत्रवती मे प्रजाम् दाः) तुम दक्षिणदिशा

में इन्द्रका स्वामित्व होनेपर पुत्रवती हो वह तुम मुझे सन्तान दीजिये (पश्चात् सवितुः देवस्य आधिपत्ये सुखदा मे चक्षुः दाः) तुम पश्चिम दिशामें सूर्य देवताका स्वामित्व होने पर सुखसे स्थित योग्य हो वह तुम मुझे चक्षु दीजिये (उत्तरतः धातुः आधिपत्ये आश्रुतिः मे रायः पोषं मे दाः) तुम उत्तर दिशामें ब्रह्माका स्वामित्व होने पर यज्ञयोग्य हो वह तुम मुझे धनकी पुष्टि दीजिये (उपरिष्टात् बृहस्पतेः आधिपत्ये विधृतिः मे ओजः दाः) जो तुम ऊपरकी दिशामें बृहस्पतिका स्वामित्व होनेपर विशेषधारक हो वह तुम मुझे बल दीजिये (विश्वाभ्यः नाष्ट्राभ्यः नः पाहि) हे महावीर की दक्षिणभूमि ! हिंसक सब पिशाच आदि से हमारी रक्षा करो (मनो अश्वः असि) हे महावीरकी उत्तरभूमि तुम मनुकी बडवा हो ॥ १२ ॥

स्वाहा मरुद्भिः परिश्रीयस्व । दिवः सꣳस्पृशस्पाहि । मधु मधु मधु ॥ १३ ॥

मन्त्रार्थ-(स्वाहा मरुद्भिः परिश्रीयस्व) हे घर्म ! स्वाहारूप तुम मरुतोंके द्वारा परिपक्व होओ (दिवः संस्पृशः पाहि) हे शतमान सुवर्ण स्वर्गवासी देवताओं की रक्षा करो (मधु मधु मधु) हे प्राण हे उदान हे व्यान तुम अग्निको झपको ॥१३॥

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्येण रोचते

दधीच ऋषि पंक्ति छन्द घर्म देवता । मन्त्रार्थ-(देवः सवित्रा देवेन संगत) दीप्यमान महावीर सूर्य, देवताके साथ योगको पाता है (देवानाम् गर्भः मतीनाम् पिता प्रजानाम् पतिः सूर्येण संरोचते) दीप्ति किरणोंका गृहीता बुद्धियोंका पालक प्रजाओंका स्वामी महावीर सूर्यके साथ एकत्वको पाता भलेप्रकार प्रकाश करता है

समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा सꣳ सूर्येणारोचिष्ट । स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सꣳ सूर्येणारुरुचत ॥ १५ ॥

मन्त्रार्थ-(अग्निः अग्निना संगत) घर्म अग्निके साथ संयोगको पाता है (सवित्रा दैवेन सम्) सविता देवताके साथ संयोग पाता है (सूर्येण समरोचिष्ट) सूर्यके साथ प्रकाश करता है (स्वाहा अग्निः तपसा संगत) स्वाहासहित घर्म सूर्यतेज के साथ संयोग पाता है (दैव्येन सविता सम्) सविता देवताके साथ संयोगको पाता है (सूर्येण समरुरुचत) सूर्यके साथ एकत्वको पाता सबको प्रकाश करता है१५

धर्ता दिवो विभाति तपसस्पृथिव्यां धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः। वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

मन्त्रार्थ-(दिवः तपसः धर्त्ता देवानाम् धर्त्ता अमर्त्यः तपोजाः देवः पृथिव्याम् विभाति) स्वर्गलोकका तथा रश्मिजाल का धारण करनेवाला देवताओंका धारक अजर अमर महानारायणकी ज्योतिसे उत्पन्न सूर्य ब्रह्माण्डमें प्रकाश करता है (अस्मे देवयुवम् वाचम् नियच्छ) हमको देवताओंकी प्राप्ति करानेवाली वाणीदीजिये

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् । स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥ १७ ॥

मन्त्रार्थ-(विषूचीःसध्रीचीः वसानः सः भुवनेषु अन्तः आवरीवर्त्ति) दिशा और किरणोंको धारण करता हुआ सूर्य भुवनों के मध्यमें वारंवार घूमता है (गोपाम् अनिपद्यमानम् च पथिभिः आचरन्तम् च परा अपश्यम्) उस रश्मिपालक अन्तरिक्षमें चलतेहुए नीचे न गिरनेवाले देवमार्गोंसे आनेवाले और जानेवाले सूर्यको मैं देखता हूं ॥ १७ ॥

विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते। देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान्पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये। मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम्

मन्त्रार्थ-(विश्वासाम् भुवाम् पते विश्वस्य मनसः पते विश्वस्य वचसः पते सर्वस्य वचसः पते देवश्रुत् देव घर्म देवः त्वम् देवान् पाहि) हे सब भुवनोंके स्वामी समष्टिमनकेअधिपति विश्वसंबन्धी वाणी के रक्षक ब्रह्मरूप महावाक्के स्वामी देवताओंमें प्रसिद्ध दीप्यमान हे घर्मदेवता तुम देवताओंकी रक्षा करो (अत्र देववीतये अनुप्रावीः) इस यज्ञमें देवताओंकी विशेष प्राप्तिके अर्थ अश्वि देवताको तृप्त करो (मधु वाम् माध्वीभ्याम्) हे अश्विदेवों मधु आपके अर्थ है जो कि आप मधु ब्राह्मणको प्राप्त करते हो (मधु माधूचीभ्याम्) मध्र भी आपके लिये है जो कि आप मधु ब्राह्मणकी प्रशंसा करनेवाले हो

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥१९॥

मन्त्रार्थ-(हृदे त्वा) हे देव ! हृदय की स्वस्थताके लिये तुम्हारी स्तुति करता हूँ (मनसे त्वा) मनकी शुद्धिके लिये तुम्हारी स्तुति करता हूँ (दिवे त्वा) स्वर्गके निमित्त तुम्हारी स्तुति करता हूँ (सूर्याय त्वा) सूर्य की तृप्तिके अर्थ तुम्हारी स्तुति करता हूँ (ऊर्ध्वः अध्वरम् दिवि देवेषु धेहि) सावधान होकर हमारे यज्ञको देवताओंमें स्थापन करो ॥ १९ ॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः । त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सह पत्या भूयासम् ॥ २० ॥

मंत्रार्थ-(नः पिता असि) हे महावीर ! तुम हमारे पिता हो (पिता नः बोधि) पिताके समान हमको बोध कराओ (ते नमः अस्तु) तुमको नमस्कार हो (मा मा हिंसीः) मुझे मत मारो (त्वष्टृमन्तः त्वा सपेम) यजमानपत्नी कहती है-हे धर्म त्वष्टा देवता वाली हम तुमको स्पर्श करती हैं (पुत्रान् पशून् मयि धेहि) पुत्रोंको और पशुओंको मुझमें स्थापन करो (प्रजाम् अस्मासु धेहि) संतति को हमारे विषें स्थापन करो (अहम् पत्या सह अरिष्टा भूयासम्) मैं भर्त्ताके साथ निर्विघ्न होजाऊँ ॥ २० ॥

अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥ २१ ॥

मन्त्रार्थ-(अहः केतुना जुषताम्) दिन कर्मके साथ तृप्त हो (सुज्योतिः ज्योतिषा स्वाहा) अच्छी ज्योति अपने तेजके साथ तृप्त हो श्रेष्ठ होम हो (रात्रिः केतुना) पितृयानमार्ग वा रात्रि कर्मसहित तृप्त हो (सुज्योतिः ज्योतिषा स्वाहा) अच्छी ज्योति अपने तेजके साथ तृप्त हो श्रेष्ठ होम हो२१

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त.

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽदित्यै रास्नासि

मन्त्रार्थ-(सवितुः देवस्य प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णः हस्ताभ्याम्

त्वा आददे) हे रज्जुके अधिष्ठात्री देव ! सविता देवताकी आज्ञामें वर्त्तमान मैं अश्विनीकुमारोंकी भुजाओंसे पूषाके हाथों से तुझे ग्रहण करता हूँ (आदित्यै रास्ना असि) इस कारण तुम अदितिरूप गौकी मेखला होओ ॥ १ ॥

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥

मन्त्रार्थ-(इडे एहि) हे इडानाम गौ आओ (अदिते एहि) हे अदितिनाम गौ आओ (सरस्वति एहि) हे सरस्वतिनाम गौ आओ (असौ एहि) हे धवलि आओ (असौ एहि) हे श्याम आओ (असौ एहि) हे रक्तवर्ण आओ ॥ २ ॥

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः पूषासि । घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥

मंत्रार्थ-(अदित्यै रास्ना असि) हे रज्जुपाश तुम गौके लिये रसना हो (इन्द्राण्यै उष्णीषः) गौके लिये शिरोवेष्टन हो (पूषा असि) हे वत्स तुम वायुरूप हो (घर्माय दीष्व) इस कारण घर्मके लिये दूधको शेष छोड़ो ॥ ३ ॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व । सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व । स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

मंत्रार्थ-(अश्विभ्याम् पिन्वस्व) हे दुग्ध अश्वि देवताओंके लिये निकलो (सरस्वत्यै पिन्वस्व) वागधिष्ठात्री सरस्वती देवीके लिये निकलो (इन्द्राय पिन्वस्व) इन्द्रके लिये निकलो (स्वाहा इन्द्रवत्) दोहनेमें जो दुग्धकण गिरे उनका होम हो और इन्द्रसे युक्त हो ॥ ४ ॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥

मन्त्रार्थ-(सरस्वति यः ते स्तनः शशयः) हे गौ जो तेरा स्तन सुखसे शयन करानेवाला है (यः मयोभूः) जो सुखप्रापक है (यः रत्नधा वसुवित्) जो स्तन घृत आदिका धारक धनवान् है (यः सुदत्रः जो स्तन श्रेष्ठ दाता है(येन विश्वा वार्याणि पुष्यसि) जिस स्तनसमूहसे सब वरणयोग्य वस्तुओंको तुम पुष्ट करती हो (तम् इह धातवे अकः) उस स्तनसमूहको इस यज्ञमें पानके अर्थ दान करो (उरु अन्तरिक्षम् अन्वेमि) विशाल अन्तरिक्षको जानता हूँ ॥ ५ ॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् । स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ-(गायत्रम् छन्दः असि) हे परीशास तुम गायत्री छन्दरूप हो (त्रैष्टुभम् छन्दः असि) त्रिष्टुप् छन्दरूप हो (द्यावापृथिवीभ्याम् त्वा परिगृह्णामि) हे महावीर ! पृथिवी स्वर्गकी प्रीतिके अर्थ तुझे ग्रहण करता हूँ (अन्तरिक्षेण त्वा उपयच्छामि) हे घर्म आकाशमें तुझे ग्रहण करता हूँ (इन्द्र अश्विना वसवः सारघस्य मधुनः घर्मम् पात) हे इन्द्र हे अश्विनीकुमारों हे वसु देवताओंका मधुमक्षिकासम्पादित मधुरसतुल्य दुग्धके रसको पान करो (वाट् स्वाहा) वषट्कार द्वारा श्रेष्ठ होम हो (सूर्यस्य वृष्टिवनये रश्मये यजत) सूर्यकी वृष्टिदाता किरणों के अर्थ यजन करो ॥ ६ ॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा । अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा । अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥ ७ ॥

मन्त्रार्थ-(समुद्राय वाताय त्वा स्वाहा) हे घर्म प्राणियोंके गतिदाता वायुके अर्थ तुझे होमता हूँ (सरिराय वाताय त्वा स्वाहा) सिद्धार्थ प्राणी जिसके द्वारा सात चेष्टा करते हैं उस वायुके अर्थ तुझे होमता हूँ (अनाधृष्याय वाताय त्वा स्वाहा) अधृष्य वायुके अर्थ तुझे होमता हूँ (अप्रतिधृष्याय वाताय त्वा स्वाहा) अजेय वायुके अर्थ तुझे होमता हूँ (अवस्यवे वाताय त्वा स्वाहा) रक्षणशील वायु के निमित्त तुझे होमता हूँ (अशिमिदाय वाताय त्वा स्वाहा) क्लेशनिवर्त्तक वायु के अर्थ तुझे होमता हूँ ॥ ७ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा । सवित्रे त्वा ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा । बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा

मन्त्रार्थ-(वसुमते रुद्रवते इन्द्राय त्वा स्वाहा) हे घर्मवसुरुद्रवान् इन्द्र देवताके लिये तुझे होमता हूँ (आदित्यवते इन्द्राय त्वा स्वाहा) आदित्यवान् वायुके अर्थ तुझे होमता हूँ (अभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा स्वाहा) शत्रुनाशक वायुके अर्थ तुझे होमता हूँ (ऋभुमते त्रिभुमते वाजवते सवित्रे त्वा स्वाहा) ऋभुदेवता वाले विष्णुदेवता वाले अन्नवान् वायुके लिये तुझे होमता हूँ (विश्वेदेव्यावते बृहस्पते त्वा स्वाहा) विश्वेदेव वाले वायुके लिये तुझे होमता हूँ ॥ ८ ॥

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥

मन्त्रार्थ-(आङ्गिरस्वते पितृमते यमाय त्वा स्वाहा) हे घर्म अङ्गिरा पितृयुक्त यमरूप वायुके लिये तुझे होमता हूँ (घर्माय स्वाहा) घर्मके लिये घृतका होम होय घर्मः पित्रे स्वाहा) घर्म पितृके लिये सुहुत हो ॥ ९ ॥

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना

मन्त्रार्थ-(इह दक्षिणसत् विश्वाः आशाः विश्वान् देवान् अयाट्) इस यज्ञमें दक्षिणस्थ अध्वर्यु ने सब दिशा सब देवताओंको पूजा (अश्विना स्वाहाकृतस्य मधोः घर्मम् पिबतम्) हे अश्विनीकुमारों वषट्कारके पीछे होमे हुए मधुरस्वाद घर्मको पान करो ॥ १० ॥

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः । स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥

मन्त्रार्थ—(इमम् यज्ञम् दिवि धाः) हे महावीर इस मेरे यज्ञको स्वर्गमें स्थापन करो (इमम् यज्ञम् दिवि धाः) इस यज्ञको स्वर्गमें स्थापन करो (यज्ञियाय अग्नये स्वाहा) यज्ञिय अग्निके लिये श्रेष्ठ होम हो (यजुर्भ्यः शम्) यजुर्मंत्रोंसे हमारा कल्याण हो ॥ ११ ॥

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः । तंत्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् १२

मन्त्रार्थ—(अश्विना हार्द्वानम् घर्मम् अहर्दिवाभिः ऊतिभिः पातम्) हे अश्विनीकुमारो हृदयप्रिय घर्मको प्रातः सायंकालोपलक्षित रक्षाओंके साथ पान करो (तन्त्रायिणे द्यावापृथिवीभ्याम् नमः) सूर्य और पृथिवी स्वर्गके लिये नमस्कार है १२

अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳ साताम् । इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥

मन्त्रार्थ-(अश्विना घर्मम् अपाताम्) हे अश्विनीकुमारो घर्मको पानकरो (द्यावापृथिवी अन्वमंसाताम्) पृथिवी स्वर्ग अनुमोदन करो (इहएव रातयः सन्तु) इसी हमारे स्थानमें धनकी प्राप्तियें हों ॥ १३ ॥

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्माऽमेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥१४॥

मन्त्रार्थ-(इषे पिन्वस्व) हे घर्म वृष्टि के लिये पुष्ट हो (ऊर्जे पिन्वस्व) अन्नके लिये पुष्ट हो (ब्रह्मणे पिन्वस्व) ब्राह्मणोंके लिये पुष्ट हो (क्षत्राय पिन्वस्व) क्षत्रियों के लिये पुष्टहो (द्यावापृथिवीभ्याम् पिन्वस्व) पृथिवी स्वर्गके लिये पुष्ट हो (सुधर्म घर्मः असि) हे साधु धारणशील तुम आहुति परिणामद्वारा सब जगत्के धारक हो (अमेनिः अस्मे नृम्णानि धारय) क्रोध न करते हमारे पास धनोंको स्थापन करो (ब्रह्म धारय) ब्राह्मण जातिको धारण करो (क्षत्रम् धारय) क्षत्रिय जातिको पुष्ट करो (विशम् धारय) वैश्यजातिको पुष्ट करो१४

स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः । स्वाहा पितृभ्यः ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यो घर्मपावभ्यः । स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥ १५ ॥

मन्त्रार्थ-(शिरसे पूष्णे स्वाहा) रस सहित पुष्टिकारक प्राणके लिये श्रेष्ठ होम हो (ग्रावभ्यः स्वाहा) विषयोंको ग्रहण करनेवाले प्राणोंके लिये श्रेष्ठ होम हो(प्रतिरवेभ्यः स्वाहा) शब्दकारी प्राणोंके लिये श्रेष्ठ होम हो (ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यः घर्मपावभ्यः पितृभ्यः स्वाहा) प्रागग्र आसनवाले घर्म पान करनेवाले पितरोंके लिये श्रेष्ठ होमहो (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) प्राण उदानके लिये श्रेष्ठ होम हो (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) विश्वेदेवानाम प्राणोंके लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ १५ ॥

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः । अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ १६ ॥

मन्त्रार्थ-(रुद्रहूतये रुद्राय स्वाहा)स्तोता से स्तुत रुद्रके लिये श्रेष्ठ होमहो (सुज्योतिः ज्योतिषा जुषताम् स्वाहा) घर्ममें स्थित घृत उपयमनीमें स्थित घृतसे मिलजाओ श्रेष्ठ होमहो (अहः केतुना सुज्योतिः ज्योतिषा जुषताम् स्वाहा) दिन कर्मद्वारा ज्योतियुक्त तेज अपने तेजसे मिलै श्रेष्ठ होम हो(रात्रिः केतुना सुज्योतिः ज्योतिषा जुषताम् स्वाहा) रात कर्मद्वारा संगत होकर ज्योतियुक्त तेज अपने तेजसे मिलै श्रेष्ठ होमहो (देव घर्म इन्द्रतमे अग्नौ हुतम् ते मधु अश्याम) हे घर्मदेव वीर्यवत्तम अग्निमें होमहुए तेरे घर्माज्य अंशको हम भक्षण करें (ते नमः अस्तु) तेरेलिये नमस्कार हो (मा मा हिंसीः) मुझको मत मारो ॥ १६ ॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः । उत श्रवसा पृथिवीꣳ संꣳसीदस्व महाँ२॥

असि रोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्य दर्शतम् ॥ १७ ॥

मन्त्रार्थ-(अग्ने विप्रः सप्रथाः महिमा श्रवसा इमम् दिवम् उत पृथिवीम् अभिबभूव) हे अग्ने ! तुम्हारी विशेषकर सब को पूर्ण करनेवाली विस्तारमयी कीर्त्ति यशोरूपी धनसे इस द्युलोक और पृथिवीको व्याप्त करती है (देववीतमः महान् असि) सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त करनेवाले महान् हो (संसीदस्व रोचस्व) पुष्करपर्ण पर भलीप्रकार स्थित हूजिये और दीप्त हूजिये (मियेध्य प्रशस्त अग्ने दर्शतम् अरुषम् धूमम् विसृज) हे यज्ञयोग्य उत्कृष्ट अग्निदेव! दर्शनीय रोषहीन धूमको छोड़िये ॥ १७ ॥

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याꣳ हविर्धाने । सा त आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा । या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुब्भ्याग्नीध्रे । सा त आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा । या ते घर्म पृथिव्याꣳ शुग्या जगत्याꣳसदस्या । सा त आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥ १८ ॥

मन्त्रार्थ-(घर्म या ते शुक् दिव्या) हे घर्म जो तेरी दीप्ति द्युलोकमें है (या गायत्र्याम् हविर्धाने) जो गायत्रीमें यज्ञगृहमें है (सा ते आप्यायताम् निष्ट्यायताम्) वह तेरी दीप्ति बढ़ो दृढ़ हो (तस्यै ते स्वाहा) उस तेरी दीप्तिके लिये श्रेष्ठ होम हो (घर्म या ते शुक् अन्तरिक्षे) हे घर्म जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्षमें है (या त्रिष्टुभि

आग्नीध्रे) जो त्रिष्टुपमें है आग्नीध्र स्थापन में है (सा ते आप्यायताम् निष्ट्यायताम्) वह तेरी दीप्ति बढ़ो दृढ़हो (तस्मै ते स्वाहा) उस तेरी दीप्तिके लिये श्रेष्ठ होमहो (घर्म या ते सदस्या शुक् पृथिव्याम्) हे घर्म जो तेरी सभाके यज्ञस्थानमें स्थित दीप्ति पृथ्वी में है (या जगत्याम्) छो जगती छन्दमें है (सा ते आप्यायताम् निष्ट्यायताम्) वह तेरी दीप्ति बढ़ो दृढ़ हो तस्यै ते स्वाहा) तेरी उस दीप्तिके लिये श्रेष्ठ होमहो ॥१८॥

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि। विशस्त्वा धर्मणा वयमनुक्रामाम सुविताय नव्यसे

मन्त्रार्थ-(वयम् क्षत्रस्य परस्पाय त्वा अनुक्रामाम) हे घर्म हम क्षत्रिय देवसूर्यके परम पालनार्थ तेरे पीछे चलते हैं ब्रह्मणः तन्वम् पाहि) ब्रह्मके शरीरको रक्षा करो (विशः धर्मणा नव्यसे सुविताय त्वा) यज्ञ के धारण निमित्त नूतन सर्वकारक युक्त यज्ञके लिये हम तेरे पीछे चलते हैं ॥१९॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः।

अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ २० ॥

मन्त्रार्थ-(सः चतुःस्रक्तिः न ऋतस्य यज्ञस्य नाभिः सप्रथाः विश्वायुः नः सर्वायुः) वह दिशारूप चारकोणवाला तथा सत्य यज्ञका बंधनस्थान सविस्तार पूर्णायुदाता हमें पूर्णायुदाता हो (सः नः सप्रथाः द्वेषः अपः) वह हमारा बढ़ानेवाला हो उसके अनुग्रहसे द्वेष दूर जाओ (ह्वरः अप) जन्म मरण लक्षणवाला संसरण दूर हो जाओ (अन्यव्रतस्य सश्चिम) हम परमात्मा का सेवन करें अर्थात् सायुज्य मोक्षको प्राप्त करें ॥ २० ॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि

मंत्रार्थ-(च घर्म एतत् ते पुरीषम्) और हे घर्म यह दुग्ध तेरा अन्न है (तेन वर्धस्व) उस दुग्धके द्वारा बढ़ो (च आप्यायस्व) और पुष्ट हो (च वयम् वर्धिषीमहि) और हम वृद्धि पावें (च (आप्यासिषीमहि) और पुष्ट होवें ॥२१॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सꣳसूर्येण विद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥

मन्त्रार्थ-(महान् मित्रः न दर्शतः वृषा हरिः अचिक्रदत्) प्रभासम्पन्न और मित्र की समान दर्शनीय निजकिरणोंकी वर्षा करनेवाले सूर्यने शब्द किया (उदधिः निधिः सूर्येण सन्दिद्युतत्) जलोंके धर्त्ता धनोंके निधिने सूर्यरूपसे प्रकाश किया २२

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः

इसकी व्याख्या अ० ६ मन्त्र २२ में होगई ॥ २३ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२४॥

इसकी व्याख्या अ० २० मन्त्र २१ में होगई ॥ २४ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि । समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय २० मन्त्र २३ में होगई है ॥ २५ ॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे । तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥ २६ ॥

मन्त्रार्थ-(इन्द्र यावता द्यावापृथिवी) हे इन्द्र जितना पृथिवी स्वर्ग है (च यावत् सप्त सिन्धवः वितस्थिरे) और जिस प्रमाण वाले देशमें सात समुद्र स्थित हैं (तावन्तम् ते अक्षितम् ग्रहम् ऊर्जा गृह्णामि) उस प्रमाण वाले आपके अनुपक्षीण ग्रहको अन्न सहित ग्रहण करता हूँ (मयि अक्षितम् गृह्णामि) जिस कारण वह मुझमें है इस कारण अनुपक्षीणको ग्रहण करता हूँ ॥ २६ ॥

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः । घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥ २७ ॥

मन्त्रार्थ—(त्रिशुक घर्मः विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा ज्योतिषा सह मयि विराजति) तीन दीप्तिवाला घर्म विराट-ज्योतिके साथ तथा ब्रह्मज्योतिके साथ मुझमें विराजता है (त्यत् बृहत् इन्द्रियम् मयि) वह समष्टि प्राण महान् बल मुझमें विराजता है (क्रतुः दक्षः मयि) संकल्प संकल्पसिद्धि मुझमें विराजती है ॥ २७ ॥

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराꣳ समाम् । त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्पते सुषुम्णाग्निहुतः । इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

मन्त्रार्थ-(पयसः रेतः आभृतम्) जलों के सारको अग्निमें होमा (तस्य दोहम् उत्तराम् उत्तराम् समाम् अशीमहि) उसकी पूर्णताके उत्तरोत्तर वर्ष मैं प्राप्त करूँ (त्विषः संवृक् सुषुम्ण अग्निहुतः उपहूतः) हे कान्तिके कर्त्ता सुखदाता घर्म अग्निमें होमा हुआ उपहव हुआ (क्रत्वे दक्षस्य सुषुम्णस्य इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमतः उपहूतस्य ते भक्षयामि) संकल्प सिद्धिके दाता शुभ सुखरूप इन्द्रसे पीत प्रजापतिसे भक्षित मधुरस्वाद वाले क्रतोपहव तेरे अंशको भक्षण करता हूँ ॥ २८ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद
अष्टात्रिंश अध्याय समाप्त.

---o---

❀ अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ❀

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहा अग्नये स्वाहा अन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ-(साधिपतिकेभ्यः प्राणेभ्यः स्वाहा) सर्वान्तर्यामी सहित प्राणोंके वा प्राणियोंके लिये श्रेष्ठ होम हो (पृथिव्यै स्वाहा) पृथिवीके लिये होम हो (अग्नये स्वाहा) अग्निके लिये होम हो (अन्तरिक्षाय स्वाहा) अन्तरिक्षके लिये होम हो (वायवे स्वाहा) वायुके लिये होम हो (दिवे स्वाहा) स्वर्ग के लिये होम हो (सूर्याय स्वाहा) सूर्यके लिये होम हो ॥१॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥

मन्त्रार्थ- दिग्भ्यः स्वाहा) दिशाओं के लिये होम हो (चन्द्राय स्वाहा) चन्द्रमा के लिये होम हो (नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) नक्षत्रों के लिये होम हो (अद्भ्यः स्वाहा) जलोंके लिये होम हो (वरुणाय स्वाहा) वरुण के लिये होम हो (नाभ्यै स्वाहा) विष्णुनाभिके लिये होम हो (पूताय स्वाहा) प्रजापतिके लिये होम हो ॥ २ ॥

८।७।३९

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा । चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥ ३ ॥

मन्त्रार्थ-(वाचे स्वाहा) वाणीकी प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ होम हो (प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा) वाम दक्षिण नासिकाकी प्राप्तिके लिये श्रेष्ठ होम हो (चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा) वाम दक्षिण नेत्रोंकी प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ होम हो (श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा) वाम दक्षिण कानोंकी प्राप्तिके लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ३ ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥ ४ ॥

मन्त्रार्थ-(मनसः कामम् आकूतिम् अशीय) मैं मनकी अभिलाषा और प्रयत्न को प्राप्त करूँ (वाचः सत्यम्) वाणीकी सत्यताको प्राप्त करूँ (पशूनाम् रूपस्य अन्नस्य रसः यशः श्रीः मयि श्रयताम्) पशुओंकी शोभा अन्नके रस कीर्त्ति और लक्ष्मी मुझमें ठहरें ॥ ४ ॥

प्रजापतिः संभ्रियमाणः सम्राट् संभृतो वैश्वदेवः सꣳसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन् मैत्रः शरसि संताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

मन्त्रार्थ-(सम्भ्रियमाणः प्रजापतिः) निश्चित अभिमर्शनसे लेकर अजादुग्धके सेचनतक उस नामवाले महावीरका देवता प्रजापति है इस अवस्था में भेद होने पर प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र 'प्रजापतये स्वाहा' (सम्भृतः सम्राट्) दुग्धसेचनके पीछे कुशासादनसे पूर्व सम्भृत नाम महावीर का देवता सम्राट् है वहाँ भेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मंत्र 'सम्राजे स्वाहा' (संसन्नः वैश्वदेवः) आसादनसे लेकर मुञ्जप्रलवों पर अधिश्रयणसे पूर्व संसन्न नाम महावीरके देवता विश्वेदेवा हैं वहाँ भेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' (प्रवृक्ता घर्मः) अभिश्रयण से से लेकर परिशासोंसे ग्रहण पूर्व प्रवृक्तनाम महावीर घर्मनाम है वहाँ भेद होने पर

प्रायश्चित्तका मंत्र घर्माय स्वाहा (उद्यतः तेजः) उद्यमनसे लेकर अजापय सेचनसे पूर्व उद्यत नाम महावीर तेजरूप है वहाँ भेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र तेजसे स्वाहा (पयसि आनीयमाने आश्विनः) अजा-दुग्धके सींचने पर महावीरके देवता अश्विनीकुमार हैं, वहाँ भेदमें प्रायश्चित्ता-हुतिका मन्त्र अश्विभ्यां स्वाहा (विष्यन्द-माने पौष्णः) विशेष स्यन्दमान होने पर महावीरका देवता पूषा है वहाँ भेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र पूष्णे स्वाहा (कल-थन् मारुतः). घृतके मध्यवर्त्तन समय महा-वीरके देवता मरुत हैं वहाँ भेद होने पर प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र मरुद्भ्यः स्वाहा (शरसि सन्ताप्यमाने मैत्रः) शरमें ध्य-मान महावीरका देवता मित्र है वहाँ भेद होनेपर प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र मित्राय स्वाहा (ह्रियमाणः वायव्यः) होमसे पूर्व आहवनीयके निकट ह्रियमाण महावीरका देवता वायु है वहाँ भेद होने पर प्राय-श्चित्ताहुतिका मन्त्र वायवे स्वाहा (हूय-मानः आग्नेयः) हूयमान महावीरका देवता अग्नि है वहाँ भेद होने पर प्रायश्चित्ताहुति का मन्त्र अग्नये स्वाहा (हुतः वाक्) हुत होमसे पीछे उत्तर कर्मारंभसे पूर्व महावीर का देवता वाक् है वहाँ भेद होने पर प्राय-श्चित्ताहुतिका मन्त्र वाचे स्वाहा ये सब आहुति एकवार लिये हुए घृतसे होती हैं

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ६

मन्त्रार्थ –(प्रथमे अहन् सविता) प्रथम दिनका देवता सविता है उस दिन घर्म भेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र सवित्रे स्वाहा (द्वितीये अग्निः) दूसरे दिन अग्नि देवता है उस दिन घर्म भेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र अग्नये स्वाहा (तृतीये वायुः) तीसरे दिन वायु देवता है उस दिन घर्मभेद में प्रायश्चित्ताहुतिका मंत्र वायवे स्वाहा (चतुर्थे आदित्यः) चौथे दिन आदित्य देवता है उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र आदित्याय स्वाहा (पञ्चमे चन्द्रमाः) पाँचवे दिन चन्द्रमा देवता है उस दिन घर्मभेद में प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र चन्द्रमसे स्वाहा (षष्ठे ऋतुः) छठे दिन ऋतु देवता है उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र ऋतवे स्वाहा (सप्तमे मरुतः) सातवें दिन मरुद्देवता हैं उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चि-त्ताहुतिका मन्त्र मरुद्भ्यः स्वाहा (अष्टमे बृहस्पतिः) आठवें दिन बृहस्पति देवता है उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मंत्र बृहस्पतये स्वाहा (नवमे मित्रः) नवें दिन मित्र देवता है उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चि-त्ताहुतिका मंत्र मित्राय स्वाहा (दशमे वरुणः) दशवें दिन वरुण देवता है उस

दिन घर्मभेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र वरुणाय स्वाहा (एकादशे इन्द्रः) ग्यारहवें दिन इन्द्र देवता है उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र इन्द्राय स्वाहा (द्वादशे विश्वेदेवाः) बारहवें दिन विश्वेदेवा देवता हैं उस दिन घर्मभेदमें प्रायश्चित्ताहुतिका मन्त्र विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ६

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासहाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ ७ ॥

मंत्रार्थ-(उग्रः च भीमः च ध्वान्तः च धुनिः च सासहान् च अभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा) उग्र और भीम और ध्वान्त और धुनि और सासहान् और अभियुग्वा और विक्षिप नामवाले मरुतोंके लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ७ ॥

अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना । शर्वं मतस्नाभ्यामी-

शानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ८

मन्त्रार्थ-(अग्निम् हृदयेन) अग्निको हृदयद्वारा प्रसन्न करता हूँ (अशनिम् हृदयाग्रेण) अशनिदेवको हृदयाग्रसे प्रसन्न करता हूँ(पशुपतिम् कृत्स्नहृदयेन) पशुपतिको कृत्स्न हृदयसे प्रसन्न करता हूँ (भवम् यक्ना) भवको कालखंडसे प्रसन्न करता हूँ (शर्वम् मत्स्नाभ्याम्) शर्वको मत्स्नानाम हृदयस्थ से प्रसन्न करता हूँ, (ईशानम् मन्युना) ईशान देवताको क्रोधसे प्रसन्न करता हूँ, (महादेवम् अन्तःपर्शव्येन) महादेवको पार्श्वास्थि सम्बंधी मांससे युक्त करता हूँ (उग्रम् देवम् वनिष्ठुना) उग्र देवताको स्थूल आन्त्रसे युक्त करता हूँ (शिङ्गीनि वसिष्ठहनुः कोश्याभ्याम्) शिङ्गिनाम देवताओंको हृदयकोशस्थ मांसपिंडोंसे युक्त करता हूँ ॥ ८ ॥

उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौव्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ।

भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरी त् ९

मन्त्रार्थ—(उग्रम् लोहितेन) उग्रदेवताको लोहितसे युक्त करता हूँ (मित्रम् सौव्रत्येन) मित्रदेवताको शुभगति आदि कर्मानुष्ठानसे युक्त करता हूँ (रुद्रम् दौर्व्रत्येन) रुद्रदेवताको शिष्यादिताडनरूप कर्मानुष्ठानसे युक्त करता हूँ (इन्द्रम् प्रक्रीडेन) इन्द्र देवताको प्रकृष्टक्रीडनसे युक्त करता हूँ (मरुतः बलेन) मरुत् देवताओंको बलसे युक्त करता हूँ (साध्यान् प्रमुदा) साध्यदेवताओंको हर्षसे युक्त करता हूँ

(कण्ठ्यम् भवस्य) कंठस्थमांस भव देवता का स्थान है (अन्तः पार्श्व्यम् रुद्रस्य) पार्श्व-मध्यस्थमांस रुद्रका स्थान है (यकृत् महादेवस्य) कालखण्ड महादेवका स्थान है (वनिष्ठः शर्वस्य) स्थूलान्त्र शर्व देवता का स्थान है (पुरीतत् पशुपतेः) हृदाच्छादक अन्त्र पशुपतिका स्थान है ॥ ९ ॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा । माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ १० ॥

मन्त्रार्थ-(लोमभ्यः स्वाहा) समष्टिलोमों के लिये श्रेष्ठ होम हो (लोमभ्यः स्वाहा) व्यष्टिलोमोंके लिये सुहुत हो (त्वचे स्वाहा) समष्टित्वचाके लिये श्रेष्ठ होम हो (त्वचे स्वाहा) व्यष्टित्वचाके लिये सुहुत हो (लोहिताय स्वाहा) समष्टि रुधिरके लिये श्रेष्ठ होम हो (लोहिताय स्वाहा) व्यष्टि रुधिरके लिये सुहुत हो (मेदोभ्यः स्वाहा) समष्टिमेदाके लिये होम हो (मेदोभ्यः स्वाहा) व्यष्टिमेदा के लिये सुहुत हो (मांसेभ्यः स्वाहा) समष्टि मांसोंके लिये होम हो (मांसेभ्यः स्वाहा) व्यष्टि मांसोंके लिये सु० (स्नावभ्यः स्वाहा) समष्टि नसोंके लिये होम हो (स्नावभ्यः स्वाहा) व्यष्टि नसोंके लिये सु० (अस्थभ्यः स्वाहा) समष्टि अस्थिके लिये होम हो (अस्थभ्यः स्वाहा) व्यष्टि अस्थि के लिये सु० (मज्जभ्यः स्वाहा) समष्टि मज्जाओंके लिये होम हो (मज्जभ्यः स्वाहा) व्यष्टि मज्जाओंके लिये सुहुत हो (रेतसे स्वाहा) वीर्यके लिये सु० (पायवे स्वाहा) पायु इंद्रियके लिये सुहुत हो ॥ १० ॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा । शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥

मन्त्रार्थ-(आयासाय स्वाहा) आयास देवताके लिये सुहुत हो प्रायासाय स्वाहा) प्रयासके लिये सुहुत हो (संयासाय स्वाहा) संयासके लिये सु० (वियासाय स्वाहा) वियासके लिये सु० (उद्यासाय स्वाहा) उद्यासके लिये सु० (शुचे स्वाहा) शुचके

लिये सु० (शोचते स्वाहा) शोचत्के लिये सु० (शोचमानाय स्वाहा) शोचमानके लिये सु० (शोकाय स्वाहा) शोकके लिये सु० ॥ ११ ॥

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा । निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥ १२ ॥

मन्त्रार्थ-(तपसे स्वाहा) तपके लिये सुहुत हो (तप्यते स्वाहा) तपःकर्त्ताके लिये सु० (तप्यमानाय स्वाहा) तप्यमानके लिये सु० (तप्ताय स्वाहा) तप्तके लिये सु० (घर्माय स्वाहा) घर्मके लिये सु० (निष्कृत्यै स्वाहा) निष्कृतिके लिये सु० (प्रायश्चित्यै स्वाहा) प्रायश्चित्ति लियेके सु० (भेषजाय स्वाहा) औषधके लिये सु० ॥ १२ ॥

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥ १३ ॥

मन्त्रार्थ-(यमाय स्वाहा) यमके लिये सु० (अन्तकाय स्वाहा) अन्तकके लिये सु० (मृत्यवे स्वाहा) मृत्युके लिये सु० (ब्रह्मणे स्वाहा) ब्रह्मके लिये सु० (ब्रह्महत्यायै स्वाहा) ब्रह्महत्याके लिये सु० (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) सब देवताओंके लिये सु० (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) पृथ्वी स्वर्ग के लिये सु० ॥ १३ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखामें सानुवाद एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त.

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्

प्रायः इस अध्यायके मन्त्रोंके द्रष्टा दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि अनुष्टुप् छन्द, और आत्मा देवता है (जहाँ ऋषि और देवता अन्य हैं, तहाँ वर्णन कर दिये हैं) मन्त्रार्थ-(इदम् सर्वम् ईशा वास्यम्) यह सब ब्रह्मांड आत्मा करके आच्छादन योग्य है (जगत्याम् यत् किञ्च जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः) ब्रह्मांडमें जो कुछ भी वस्तु है उस सबके अपनापनके संबन्धको त्यागकर प्रारब्ध समाप्ति तक देहधारण के निमित्त अन्नपान आदिको ग्रहण करो (स्वित् कस्य धनम् मा गृधः) किसीके धनको मत चाहो

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे २

मन्त्रार्थ-(इह कर्माणि कुर्वन् एव शतꣳ समाः जिजीविषेत्) इस मनुष्यलोक में अग्निहोत्र आदि कर्मोंको कर्त्ता हुआ ही अर्थात् कर्मफलको न चाहता पूर्णायुपर्यन्त जीवना चाहे (एवम् त्वयि नरे कर्म न लिप्यते) इसप्रकार निष्काम कर्मके अनुष्ठानसे तुझ समष्टिनरभावापन्नमें कर्म लेपको नहीं पाता है (इतः अन्यथा न अस्ति) इससे अन्यप्रकार नहीं है निष्काम कर्मके अनुष्ठानसे शुद्धान्तःकरणकी मुक्ति होती है ॥ २ ॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः ताँस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः

मन्त्रार्थ-(ये केच जनाः आत्महनः) जो कोई काम्य कर्म कर्त्ता अविद्या दोष करके अजर अमर आत्माके तिरस्कारसे आत्महन्ता हैं (ते प्रेत्य तान् लोकान् अपिगच्छन्ति) वे मरकर उन लोकोंको जाते हैं (ते लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः असुर्याः नाम) वे लोक अदर्शनात्मक अज्ञानसे आच्छादित असुरोंके हैं अर्थात् प्राणपोषकोंके हैं यह प्रसिद्ध है ॥३॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

इसका त्रिष्टुप् छन्द है। मन्त्रार्थ-(अनेजत् एकम्) जो ब्रह्म अचल अद्वैत है (मनसः जवीयः पूर्वम् अर्शत्) जो आत्मा मनसे वेगवत्तर है वह सर्ववत् मनोगमन से पहिले ही प्राप्त है (देवाः एनत् न आप्नुवन्) इन्द्रियोंने इस आत्मतत्त्वको नहीं पाया (तत् तिष्ठत् अन्यान् धावतः अत्येति) वह सर्वगत अचल आत्मतत्त्व दूसरे शीघ्रगामियोंको अतिक्रमण कर प्राप्त करता है (मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति) व्यष्टि समष्टि प्राण उस आत्मामें कर्मोंको स्थापन करता है अर्थात् वास्तवमें आत्मा अकर्त्ता है ॥ ४ ॥

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ५

मन्त्रार्थ—(तत् एजति) वह आत्मतत्त्व ब्रह्म प्रकृति विकारों करके मूढ़ दृष्टिमें में चलतासा भासता है (तत् न एजति) वह अचल होनेसे नहीं चलता है (तत्

दूरे) वह अज्ञानियोंको कोटि वर्षमें भी प्राप्त न होनेसे दूर है (तत् अन्तिके) वह ज्ञानियोंको आत्मारूप भासनेसे निकट हो है (तत् अस्य अंतः) वह इस सब नाम रूप क्रियात्मक जगत्के भीतर है (उ तत् अस्य सर्वस्य बाह्यतः) वही इस सब ब्रह्मांड से बाहर भी विराजमान है ॥ ५ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ६

मन्त्रार्थ-(यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मन् एव अनुपश्यति) जो मुमुक्षु तो अव्यक्तसे लेकर स्थावर पर्यन्त सब प्राणियोंको आत्मामें ही देखता है (च सर्वेषु तेषु आत्मानम्) और सब प्राणियों में आत्मरूपको देखता है (ततः न विचिकित्सति) उस दर्शनसे संसारबन्धनका संशय नहीं करता है ॥ ६ ॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ७

मन्त्रार्थ-(यस्मिन् विजानतः सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत्) जिस अवस्था में विज्ञानी पुरुषके सब प्राणी आत्मा ही हुए (तत्र एकत्वम् पश्यतः कः मोहः कः शोकः) उस अवस्थामें आत्माके एकत्वको देखनेवाले पुरुषको कौन मोह है कौन शोक है अर्थात् कुछ नहीं है ॥ ७ ॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

इसका जगती छन्द है मन्त्रार्थ-(सः कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् पर्यगात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः अर्थान् याथातथ्यतः व्यदधात्) वह सर्वज्ञ मेधावी ज्ञानबलसे सर्वरूप ब्रह्मरूप विज्ञानी शुद्ध अशरीर अक्षत स्नायुरहित सत्व रज तमसे अनुपहित होनेके कारण निर्मल क्लेश कर्म विपाक आशयोंसे पृथक् और व्यापक है, वह अनन्तकालस्थायी संवत्सर नामक प्रजापतियोंके अर्थ यथोपयुक्तभाव से पदार्थोंको विभक्त कर देता हुआ ॥८॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः

मन्त्रार्थ—(ये असम्भूतिम् उपासते) जो मनुष्य काम्यकर्मोंको उपजाने वाली अव्याकृत मायाकी उपासना करते हैं (अन्धन्तमः प्रविशन्ति) अदर्शनरूप अज्ञाना-

न्धकारमें प्रवेश करते हैं (ये सम्भूत्याम् उ रताः) जो मनुष्य कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भमें में ही आसक्त हैं (ते ततः भूयः इव तमः) वे उससे महत्तर तम अर्थात् अदर्शनात्मक संसारमें प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥

अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे १०

मन्त्रार्थ-(सम्भवात् अन्यत् एव आहुः) कार्य ब्रह्मकी उपासनासे अन्य ही फल कहते हैं (असंम्भवात् अन्यत् आहुः) प्रकृतिकी उपासनासे अन्य ही फल कहते हैं (इति धीराणाम् शुश्रुम) ऐसे वचन महर्षियोंके हमने सुने हैं (ये नः तत् विचचक्षिरे) जिन धीरोंने हमसे उस उपासना के तत्त्वको कहा ॥ १० ॥

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह । विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ११

मंत्रार्थ-(च यः तत् सम्भूतिम् च विनाशम् उभयम् सह वेद) और जो विद्वान् उ । सकल जगत्की उत्पत्तिके हेतु परब्रह्मको और विनाशधर्मी शरीरको शरीरी शरीर दोनोंको साथ जानता है (विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते) वह विनाशी शरीरद्वारा मृत्युको तरकर अर्थात् शुद्धान्तः करण होकर आत्मज्ञानके द्वारा मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः १२

मन्त्रार्थ-(ये अविद्याम् उपासते) जो मनुष्य सकाम कर्म और अज्ञानको उपासना करते हैं (अन्धं तमः प्रविशन्ति) वे अदर्शनात्मक संसारमें प्रवेश करते हैं (ये विद्यायाम् उ रताः) जो भेदभाव से देवोपासनामें ही आसक्त हैं (ते ततः भूयः इव तमः) वे मनुष्य उस पूर्वोक्तसे अधिक अज्ञानपूर्ण पशु आदि देहमें प्रवेश करते हैं

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे १३

मन्त्रार्थ- विद्यायाः अन्यत् एव आहुः) विद्याका अन्य ही फल कहा है (अविद्यायाः अन्यत् आहुः) तथा अविद्याका अन्य फल कहा है (इति धीराणाम् शुश्रुम) ऐसे वचन धीर पुरुषोंके हमने सुने हैं (ये नः तत् विचचक्षिरे) जिन ज्ञानियोंने उस तत्त्वको हमारे अर्थ कथन किया ॥ १३ ॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते १४

मन्त्रार्थ-(विद्याम् च अविद्याम् च यः तत् उभयं सह वेद) जो देवोपासना और

कर्म इन दोनोंको एक हीके करने योग्य वा मिलकर फल देने वाले जानता है (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतं अश्नुते) वह कर्मानुष्ठानसे स्वरूपका विस्मरण करानेवाले चित्तकी अस्थिरताको तरकर देवत्वज्ञानसे देवात्मभावको प्राप्त होता है

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् । ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर

इसका ब्रह्म ऋषि, गायत्रीछन्द और परमात्मा देवता है तथा इसका वेदारंभ, होम, शांतिपौष्टिककर्म और नैमित्तिक कर्मोंमें विनियोग होता है । मन्त्रार्थ-(अथ वायुः अमृतम् अनिलम्) इस समय गमन करतेमें प्राणवायु सूत्रात्मा वायुको प्राप्त हो (इदम् शरीरम् भस्मान्तं) यह शरीर अंत में भस्मरूप होता है (क्रतो ओ३म् स्मर स्मर) इसकारण हे संकल्पात्मक ! जिसको स्मरण करना चाहिये उस ब्रह्मको स्मरण कर स्मरण कर क्लिबे कृतम् स्मर) लोकप्राप्तिके लिये अपने कियेको स्मरण कर१५

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

इसका अगस्त्य ऋषि त्रिष्टुप्छंद अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ -(देव अग्ने विश्वानि वयुनानि विद्वान् अस्मान् राये सुपथा नय) हे दिव्य अग्निदेव ! हमारे सकल कर्मोंको जानने वाले तुम हम निष्कामकर्म करनेवालों को मुक्तिरूप धनके लिये उत्तरायण मार्गसे पहुँचाओ (जुहुराणम् नः एनः अस्मत् युयोधि) कुटिल वचनरूप पापोंको हमसे दूर करो (ते नमः उक्तिम् विधेम) तुम्हारे अर्थ अधिकतर नमस्कार वचनको विधान करते हैं ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ॐ खं ब्रह्म

इस मंत्रका छंद उष्णिक् है, मन्त्रार्थ -(हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य मुखम् पिहितम्) तेजोरूप पात्रसे सत्यरूप परमात्माका मुख आच्छादित है अर्थात् तेजोमण्डलसे आदित्यमण्डलमें स्थित अविनाशी पुरुष आच्छादित है (यः असौ पुरुषः आदित्ये सः असौ अहम्) जो यह सर्वव्यापक पुरुष आदित्यमण्डलमें स्थित है वह मैं हूँ, अर्थात् आदित्यमण्डलसे लेकर सर्वत्र मैंही प्रविष्ट हूँ ऐसी उपासना करे (ॐ खं ब्रह्म) ॐ, यह आकाशकी समान व्यापक ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्मका ॐकार के द्वारा स्मरण और ध्यान करे ॥ १७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ भारद्वाजगोत्रोद्भूत गौड़वंशावतंस श्रीमद्भोलानाथात्मज रामस्वरूपशर्माद्वारा उव्वटमहीधरादि प्राचीनभाष्योंके अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भाषार्थ सहित चत्वारिंश अध्याय समाप्त.